शिवपूजन-रचनावली

[भीष्म, अर्जुन, ग्राम-सुधार, दो घड़ी, माँ के सपूत, अन्नपूर्णा के मन्दिर में, महिला-महत्त्व, बालोद्यान, साहित्यिक भाषणावली, सेवाधर्म, आदर्श-परिचय]

[दूसरा खण्ड]

श्री शिवपूजन सहाय

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना-३

नवीन संस्करण, वैशाख १८७९ शकाब्द,
विक्रमाब्द २०१४, खीष्टाब्द १९५७

मूल्य सात रुपये पचहत्तर नये पैसे : सजिल्द नव रुपये

मुद्रक
युनाइटेड प्रेस लिमिटेड,
पटना-४

श्रद्धास्पदेषु मातृ-पितृचरणेषु

जिनके पुण्यप्रभाव से

"टाट में पाट के सीवन-सा इस जीवन में साहित्य सधा"

शिव

वक्तव्य

हमारी 'रचनावली' का यह दूसरा खंड ईश्वर की कृपा से हिन्दी-संसार के सामने उपस्थित है। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से इसका प्रकाशन विशेष परिस्थिति में हुआ है। ऐसी साधारण श्रेणी की आधुनिक रचनाएँ प्रकाशित करना न परिषद् का उद्देश्य है, न परिषद् की प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत है। अतः परिषद् को प्रकाशन-कार्य के लिए सरकार से जो धनराशि मिलती है उससे इसका प्रकाशन नहीं हुआ है। इसके लिए बिहार-सरकार ने अतिरिक्त धनराशि देने की कृपा की थी। उसी से इसके सभी खण्ड छपे हैं या छपेंगे।

'रचनावली' के प्रथम खण्ड में यह सूचना दी जा चुकी है कि हमारी लम्बी बीमारी में बिहार-सरकार ने आर्थिक सहायता देने की उदारता दिखाई थी और उसी के क्रम में यह भी आदेश दिया था कि परिषद् से हमारी सभी रचनाओं के प्रकाशन का आयोजन करने के लिए अतिरिक्त धनराशि भी दी जाय। तदनुसार परिषद् को पृथक् धनराशि मिल गई, जिससे हमें सरकारी सहायता के साथ-साथ पेशगी पारिश्रमिक भी प्राप्त हुआ।

वास्तव में यह इस युग की एक अनहोनी घटना है; क्योंकि हमारी रचनाओं का परिषद् से खण्डशः प्रकाशित हो जाना बड़े विस्मय की बात है। इन रचनाओं में कोई ऐसी विशेषता नहीं कि परिषद् के प्रकाशनों में इन्हें स्थान मिले, पर यह तो हमारी बीमारी की बलिहारी है कि संयोगवश अनिष्ट के अन्दर से अभीष्ट निकल आया। इसे तो हम ईश्वर की असीम कृपा का प्रत्यक्ष फल ही कह सकते हैं; क्योंकि बिहार में एक-से-एक लब्धकीर्त्ति साहित्यसेवी हो चुके हैं और आज भी हैं, जिनके सामने हमारी कोई हस्ती नहीं और जिनकी रचनाओं का संग्रह प्रकाशित होने से सचमुच साहित्य की श्रीवृद्धि और गौरव-वृद्धि होती ; पर उन श्रद्धेय साहित्य-सेवियों के एक श्रद्धालु को ही यह श्रेय अनायास ईश्वर ने दे दिया।

बिहार-सरकार से यदि हमें आर्थिक सहायता न मिलती तो शायद ये पंक्तियाँ आज न लिखी जातीं। हमारी रचनाओं के प्रकाशनार्थ सरकार ने परिषद् को जो पृथक् अनुदान दिया, वह भी हमारे स्वास्थ्य और जीवन का रक्षक सिद्ध हुआ। ईश्वरीय कृपा की शक्ति का चमत्कार जिन्हें देखना हो वे अपने मनश्चक्षु से देख सकते हैं।

इस दूसरे खण्ड में हमारी छोटी-मोटी दस पुस्तकें संगृहीत हैं, जिनमें छह पूर्व-प्रकाशित हैं और चार अबतक अप्रकाशित थीं—यद्यपि उनकी प्रेस-कापी पहले से तैयार हो चुकी थी। इस खण्ड के अंत में परिशिष्ट के अन्तर्गत सबकी भूमिका अलग-अलग दे दी गई है। उन वक्तव्यों के पढ़ने से पाठकों के मन में कोई कुतूहल न रहेगा।

'भीष्म', 'अर्जुन' और 'ग्राम-सुधार' को छोड़कर सभी पुस्तकें लेख-संग्रह-मात्र हैं। जो लेख पहले पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके थे, उन्हीं का विषयानुसार संग्रह करके पुस्तकें तैयार कर दी गईं। लेखों के अन्त में उनका प्रकाशन-काल भी अंकित है। केवल 'माँ के सपूत' नामक पुस्तक में लेखों के साथ प्रकाशन-काल का उल्लेख नहीं है। वे सभी लेख 'बालक' में, उसके आरंभिक जीवन के दस वर्षों के अन्दर, प्रकाशित हुए थे। 'अन्नपूर्णा के मन्दिर में' ग्राम-समस्या-सम्बन्धी पुस्तक है। उसके लेख पटना और काशी के दैनिक पत्रों में छपे थे, जिनका समय यथास्थान अंकित है।

अन्तिम पुस्तक 'आदर्श-परिचय' अधूरा है; क्योंकि वह एक लेखमाला थी, जिसके कुछ लेख मिले ही नहीं। किन्तु, उस लेखमाला का प्रत्येक लेख स्वतंत्र था, इसलिए जो पाँच लेख छपे हैं, वे अपने-आप में पूर्ण हैं। यों तो अधूरी रचनाएँ और भी हैं—भीम, अभिमन्यु, भरत-चरित, तोतामैना, तन-मन-धन आदि; पर उनका कोई अंश स्वतंत्र रूप में पूर्ण नहीं कहा जा सकता। अतः उनके प्रकाशन से कोई लाभ नहीं।

आशा है कि परिषद् से प्रकाशित गंभीर और ठोस साहित्य के पाठकों को यह सरल-तरल साहित्य रुचि-परिवर्त्तन के लिए कुछ उपयोगी जान पड़ेगा।

श्रीरामनवमी, शकाब्द १८७९ विक्रमाब्द २०१४, सन् १९५७ ई०	**शिवपूजन सहाय** (संचालक)

विषयानुक्रमणिका

१—भीष्म

२—अर्जुन

३—ग्राम-सुधार

४—दो घड़ी

५—माँ के सपूत

६—अन्नपूर्णा के मन्दिर में

७—महिला-महत्त्व

८—बालोद्यान

९—साहित्यिक भाषणावली*

---

*किसी भाषण का कोई शीर्षक नहीं था। प्रत्येक भाषण का कोई महत्त्वपूर्ण वाक्य चुनकर शीर्षक बना दिया है। — ले०

१०—सेवाधर्म [The way of Service का भावानुवाद]

११—आदर्श-परिचय

१२—परिशिष्ट

शिवपूजन-रचनावली

[दूसरा खण्ड]

भीष्म

"शुभ-सौम्य-मूर्ति तेजोनिधान !
हो अन्य भानु ज्यों भासमान ।
ध्यानस्थ स्वस्थ सद्धर्म-धाम !
भगवान व्यास तुमको प्रणाम ॥"

वंश-परिचय और जन्म-कथा

एक बार ब्रह्मा की सभा में जह्नु ऋषि की कन्या गङ्गा का अञ्चल हवा के झोंके से सरक गया। उसी सभा में बैठे हुए इक्ष्वाकु-वंशी राजा महाभिष ने गंगा की ओर प्रेम से देखा। ब्रह्मा ने अनुचित समझकर उन्हें शाप दिया—"तुम देवलोक में रहने योग्य नहीं हो, जाकर मर्त्यलोक में जन्म लो, फिर स्वर्ग प्राप्त करोगे।"

ब्रह्मलोक से जब गंगा चलीं तब रास्ते में आठ वसुओं से भेंट हुई। आठो वसु वसिष्ट मुनि के शाप से व्याकुल थे। गंगा को देखकर वे विनयपूर्वक बोले—"माता! वसिष्ठजी ने हमलोगों को शाप दिया है कि तुम लोग जाकर नर लोक में जन्म-ग्रहण करो, हमलोग मनुष्य-लोक के दुःखों की याद कर बड़े चिन्तित हैं; कृपा कर तुम हमलोगों की जननी बनो और ऐसा उपाय करो कि हमलोगों को अधिक दिन तक मर्त्य-लोक में रहकर कष्ट न सहना पड़े।"

गंगा ने वसुओं की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

प्रतीप नामक कुरु-वंशी, राजा भागीरथी के तीर पर, तपस्या कर रहे थे। उनका तेजस्वी रूप देखकर गंगा मोहित हो गई। उनकी दाहिनी जङ्घा पर जा बैठीं। बोलीं—"राजन्! आप का दिव्य रूप देखकर मेरा मन मुग्ध हो गया है, दया कर मुझे अपने प्रेम से सन्तुष्ट कीजिए।"

एक रूपवती युवती के मुख से ऐसी प्रेममयी वाणी सुनकर राजा ने कहा—"देवि! इस समय मैं तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं कर सकता। यदि मेरे साथ प्रेम करने की इच्छा थी तो पहले ही मेरे वाम-भाग में बैठना चाहिए था; दाहिनी जङ्घा का आसन तो केवल पुत्र, पुत्री या पतोहू के ही बैठने योग्य है, तुमने स्वयं धर्मविरुद्ध आचरण किया है; मैं धर्म की मर्य्यादा नहीं भंग कर सकता। हाँ, अपने पुत्र के साथ तुम्हारा विवाह कर दूँगा।

गंगा ने कहा—"आप पुण्यात्मा चक्रवर्ती राजा हैं, आपकी मैं भक्ति करती हूँ; इसलिए आपकी बात न टालूँगी; पर आपके पुत्र को मेरी ही इच्छा के अनुकूल आचरण करना होगा; नहीं तो मैं उनको छोड़ दूँगी।"

यह कह गंगा चली गई। महाराज प्रतीप अपनी धर्मपत्नी के साथ पुत्र के लिए तपस्या करने लगे। राजा महाभिष, ब्रह्मा के शाप से प्रतीप के पुत्र हुए। प्रतीप अपनी तपस्या का उत्तम फल पाकर बड़े सुखी हुए। पुत्र का नाम पड़ा शान्तनु।

शान्तनु बड़े सुन्दर, सुशील, सदाचारी और आज्ञाकारी थे। उनका भोलाभाला रूप, शान्त स्वभाव और मधुर वचन उनके माता-पिता के लिए बड़ा ही सुखदायक हुआ। जब वे सयाने हुए तब प्रतीप ने उनकी युवावस्था देखकर कहा—"बेटा, मैं एक सुन्दरी को तुम्हारे साथ विवाह कर देने का वचन दे चुका हूँ। उसके साथ तुम सहर्ष विवाह कर लो। मगर याद रहे, उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न करना, नहीं तो वह तुम्हें छोड़कर चल देगी। पर, इसमें सन्देह नहीं कि उससे विवाह कर तुम सुखी होगे, वह तुम्हें संसार में यश देगी, अपने प्रेम से वह तुमको जीत लेगी, तुम्हारा मनोरथ सफल हो जायगा।"

शान्तनु ने नम्रतापूर्वक कहा—"आपकी आज्ञा का अवश्य पालन करूँगा। मुझे विश्वास है, आपके आशीर्वाद से निश्चय ही मेरा कल्याण होगा।"

शान्तनु को राजतिलक देकर प्रतीप जंगल में भगवद्-भजन करने चले गये। रानी भी साथ गईं। इधर राज-सिंहासन पर विराजते ही शान्तनु का प्रचण्ड प्रताप सारे राज्य में चमक उठा। वे पुत्र के समान प्रजा का पालन करने लगे। राजधानी हस्तिनापुर में थी।

शान्तनु का राज्य हिमालय से समुद्र तक फैला हुआ था। सारे राज्य में शान्ति की तूती बोलती थी। प्रजा चैन की वंशी बजाती। पृथ्वी सदा हरी-भरी और फूली-फली रहती। न किसी को पेट का दुःख, न कहीं रोग का भय। न कभी अकाल पड़ता, न कोई अन्याय की चक्की में पिसने पाता। पुरुष हट्टे-कट्टे, सच्चे विद्यानुरागी, परिश्रमी, धर्म-परायण और राजभक्त। स्त्रियाँ गृहलक्ष्मी और पतिव्रता। घर-घर में गौ की सेवा, शास्त्र की चर्चा, हवन और अतिथि-सत्कार। चारों ओर आनन्द ही आनन्द!

एक दिन शान्तनु आखेट के लिए गंगा-तट के एक वन में पहुँचे। शिकार खेलते-खेलते जंगल पार कर पड़ाव से बहुत दूर जा निकले। वहाँ देखा, एक अप्सरा-सी सुन्दरी बैठी हुई है। उस के अंग-अंग से मनोहर छटा छिटकती थी। बड़ी-बड़ी आँखों में प्रसन्नता की ज्योति, लाल-लाल ओठों में मन्द मुस्कान की माधुरी, सिरिस के फूल-सी सुकुमारता, गुलाब के फूल-सी कान्ति, लोनी लता-सी देह, उज्ज्वल रेशमी साड़ी, कोमल पल्लव-से हाथ, खिले हुए लाल कमल-से चरण, खुले हुए लच्छेदार काले-घुँघराले बाल, हरिचन्दन के फूलों के कँगने, बालों में सुगन्धित फूलों के गुच्छे गुँथे हुए! अपूर्व शोभा थी! कुण्डलों के मोती गालों की ललाई से मूँगे बन गये थे। जंगल की हरियाली उस स्वर्गीय पुष्प की छवि से रमणीय बन गई थी। उस देवी के केशों पर मँडरानेवाले भौरों को उड़ाकर चंचल हवा सारे जंगल में सुगन्ध फैला रही थी।

अनूप रूप देखकर राजा की आँखें जुड़ा गईं, पर उनकी प्यास न बुझी। उन्होंने पहले कभी वैसा रूप देखा न था। इसलिए उनके हृदय पर उस अनूठे रूप का जादू चल गया। मुग्ध होकर बोले—"देवि! तुम कौन हो? किन्नरी हो या राजकिशोरी? मेरा बड़ा सौभाग्य है कि तुम्हारे दर्शन से नेत्र सफल हुए। आज पिता की आज्ञा याद कर मैं तुम्हें अपने हृदय की देवी बनाना चाहता हूँ। मेरे प्राण-चातक के लिए तुम स्वाती हो। मुझे प्रेम से अपनाकर कृतार्थ करो।"

गंगा ने जब आँखें उठाकर शान्तनु की ओर देखा तो जी भर गया। राजा का रूप आँखों में बस गया, दिल की दीवार पर तस्वीर की तरह खिंच गया। दोनों ने एक दूसरे के दिल में घर कर लिया। गंगा बोली—"राजन्! आपके पिता का वचन मुझे भी याद है। मैं आपको वर सकती हूँ यदि आप प्रतिज्ञा करें कि मेरी स्वतन्त्रता में बाधा न डालेंगे; अपनी इच्छा में किसी तरह का विघ्न पड़ते ही आपका साथ छोड़कर मैं स्वर्ग चली जाऊँगी। मैं जो कुछ करूँगी, उसे सहना पड़ेगा और कभी मुझसे अप्रिय वचन न कहना होगा।"

उस देवी के दिव्य रूप ने राजा से जो चाहा सो मंजूर करा लिया। 'हाँ' के सिवा वे कुछ कर न सके। सौन्दर्य का अमृत पीकर जो छक जाते हैं, वे सचमुच अपने-आपको भूल जाते हैं।

राजा ने गङ्गा से विवाह कर लिया। सुन्दरता, प्रेम और आनन्द का खजाना पाकर वे सुख से जीवन बिताने लगे। गंगा के गर्भ से वे आठ वसु पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। पर गंगा एक-एक कर अपने पुत्रों को नदी में डालती गई। वसुओं से यही तय हुआ था।

गंगा की निर्दयता से शान्तनु घबरा उठे। सात बच्चों की हत्या से उनका दिल हिल गया। पर वे तो प्रतिज्ञा के बन्धन में जकड़े हुए थे। इसलिए लहू के घूँट पीकर रह जाते थे। सात पुत्रों का नाश देखते-देखते उनकी आँखें पथरा गईं।

जब आठवाँ बालक उत्पन्न हुआ, तब उसका सुन्दर रूप देखकर राजा का कठोर हृदय वात्सल्य से भर आया! वे इस बार पहले की तरह मन मसोसकर चुप न रह सके; गंगा से बिगड़कर बोले—"पुत्र-घातिनी! छाती पर पत्थर रखकर मैं सात पुत्रों का नाश देख चुका; अब देखा नहीं जाता! तुम्हारा रूप जैसा चितचोर है; हृदय वैसा ही कठोर है। देखने से तो तुम प्रेम की मूर्ति जान पड़ती हो; पर तुम्हारे हृदय में लेशमात्र भी करुणा नहीं है। करुणा के बिना माता कैसी? स्त्रियों का प्रधान गुण मातृत्व है, वह तुम में बिल्कुल नहीं है। जो स्त्री सन्तानवत्सला नहीं है, वह दानवी है, मानवी नहीं। तुमने इतने दिनों तक अपने रूप के जादू से मेरी मति मारकर सात पुत्रों की हत्या कर डाली; पर आज तुम्हारे प्रेम की मदिरा का नशा टूट गया, आँखें खुल गईं। शिशु-हत्या के महापाप की धधकती हुई आग में मेरी आत्मा जल रही है। अब इस सन्तान का भी नाश कर उस आग की ज्वाला में फिर आहुति मत डालो। तेजस्वी सन्तान को देखकर मेरे हृदय

में स्नेह और करुणा की बाढ़-सी आ गई है। इसके वध करने की स्वतन्त्रता मैं तुम्हें नहीं दे सकता, चाहे मेरी प्रतिज्ञा रहे या न रहे, तुम रहो या चली जाओ।"

शान्तनु की बात सुनकर गंगा का हृदय द्रवित हो उठा। गंगा मुस्कराती हुई बोली—"भगवन्! मैं आपके पुत्र का नाश न करूँगी। जह्नु-ऋषि की कन्या हूँ। मेरा नाम गंगा है। मैं वसुओं का कार्य्य साधने के लिए आपकी सेवा में आई थी। आप मेरे पुत्रों को साधारण मनुष्य न समझें। वसिष्ठ जी के शाप से वसुओं ने मेरे गर्भ से जन्म लिया था। उन्हें नरलोक के दुःखों से बचाने के लिए ही मैं उनको एक-एक करके स्वर्ग भेजती चली गई। आज मेरा प्रण पूर्ण हो गया। यह लीजिए अपना प्यारा पुत्र। यह बड़ा भारी विद्वान्, ब्रह्मचारी, पराक्रमी और प्रतापी वीर होगा। लड़ाई में इसे कोई हरा न सकेगा। शत्रु इसके सामने टिक न सकेंगे। बस, अब मैं आपसे विदा होती हूँ।"

शिक्षा, प्रतिज्ञा और कन्या-हरण

गंगा को सहर्ष विदा कर शान्तनु ने प्यारे को छाती से लगा लिया। बड़े लाड़-प्यार से लड़के का लालन-पालन करने लगे। हस्तिनापुर में उत्सव होने लगे। बालक को लोग 'गंगादत्त' पुकारने लगे। प्रजा ने बड़ा आनन्द मनाया।

एक दिन राजा ने ऋषियों और विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाकर बालक का नामकरण कराया। ज्योतिषियों ने बालक का नाम 'देवव्रत' रखा। अन्न-प्राशन, चूड़ा-कर्म आदि संस्कार विधिपूर्वक किये गये। नान्दीमुख-श्राद्ध के समय राजा ने ऋषिमुनियों और ब्राह्मणों को छप्पन प्रकार के व्यंजन खिलाकर तृप्त किया; उपनयन-संस्कार के समय यज्ञों द्वारा देवताओं को और मुँहमाँगी वस्तुओं के दान द्वारा याचकों को संतुष्ट किया।

सयाना होने पर देवव्रत को कसरत करने, घोड़े पर चढ़ने, मुग्दर हिलाने और तीर-तलवार चलाने की शिक्षा दी जाने लगी। घर पर थोड़ा अभ्यास हो जाने के बाद वे भारतवर्ष के परम प्रसिद्ध धनुर्द्धर परशुराम की सेवा में भेजे गये। गुरु की कृपा से उनकी प्रतिभा खूब विकसित हुई। वे सब तरह के अस्त्र-शस्त्र सीखकर थोड़े ही दिनों में महान् योद्धा बन गये। उनके हाथ की सफाई, शरीर की फुर्ती, मन की सरलता, चरित्र की शुद्धता, वचन की सत्यता, हृदय की पवित्रता, मुखमण्डल की कान्ति और स्वभाव की मधुरता देखकर गुरुदेव बड़े प्रसन्न हुए। बोले—"बेटा, जबतक तुम्हारे हाथ में शस्त्र रहेगा, त्रिदेव भी तुम्हारा बाल बाँका न कर सकेगा; जाओ, संसार में अभय होकर यश प्राप्त करो।"

गुरुदेव का आशीर्वाद पाकर राजकुमार देवव्रत कृतार्थ हुए। गुरुचरणों की वन्दना कर वे पिता के पास पहुँचे। शान्तनु भी उन्हें युवराज-पद सौंपकर निश्चिन्त हो गये। पिता को विश्राम करने का अवकाश देकर वे बड़ी चतुरता के साथ प्रजा का पालन-पोषण करने लगे। उनके न्याय ने प्रजा के दिल पर सिक्का जमा लिया। अपने पिता से भी बढ़कर उनकी धाक जम गई।

सुयोग्य पुत्र की प्रशंसा सुनते-सुनते शान्तनु को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि मेरे न रहने पर भी देवव्रत अच्छी तरह राज-काज सँभाल सकता है। इसलिए शासन की बागडोर देवव्रत के हाथों में थमाकर शान्तनु जंगल में शिकार खेलने चले गये।

ब्रह्म-शाप से 'अद्रिका' नामक अप्सरा मछली होकर यमुना-नदी में रहती थी। दैव-योग से उसके पेट में वसु नामक विरही राजा का वीर्य पड़ गया। उस अमोघ वीर्य्य से एक अतीव सुन्दरी कन्या पैदा हुई। उस कन्या को एक मल्लाह ने पाला-पोसा, और नाम रखा 'सत्यवती'।

एक बार पराशर-मुनि उस कन्या के रूप पर लट्टू हो गये। उन्होंने अपने तपोबल से उसके शरीर की मछली-की-सी दुर्गन्ध दूर कर दी। अब उसके अंगों से चन्दन की सुगन्ध निकलने लगी। उसी समय से उसका नाम 'योजनगन्धा' प्रसिद्ध हुआ। उसीके गर्भ से व्यासजी की उत्पत्ति हुई। पराशरजी अपने पुत्र व्यास को साथ लेकर तपस्या करने चले गये। सत्यवती उसी मल्लाह के घर रहने लगी।

एक दिन योजनगन्धा नदी-तट के जंगल में घूम रही थी। उसी जंगल में शान्तनु शिकार खेलते फिरते थे। जंगल की निराली हरियाली छटा देखते-देखते शान्तनु एकाएक ठिठककर खड़े हो गये। इतने में चन्दन की मनोहर सुगन्ध ने उन्हें मतवाला कर दिया। बड़े कुतूहल के साथ वे चारों ओर घूम-घूमकर अनुभव करने लगे। बड़ी चेष्टा करने पर भी उन्हें यह पता न लगा कि सुगन्ध की लहरें किधर से उमड़ी आ रही हैं। जब वे कुछ दूर आगे बढ़े, तो देखा कि एक सुन्दरी युवती कुञ्जों के पास टहल रही है। उसके देख पड़ते ही सुगन्ध की तरंगें और भी लहराने लगीं। उनका धीरज छूट गया।

सोने में सुगन्ध देखकर शान्तनु का दिल लुभा गया। उन्होंने वह रमणीय रमणी-रूप आँख-भरकर देखा। देखकर निहाल हो गये; पर मन बेहाल हो गया। बड़ी हिम्मत करके उन्होंने उससे नाम-धाम पूछा। कुछ सकुचाती और कुछ मुस्कुराती हुई वह बोली—"मैं केवट की कन्या हूँ।"

शान्तनु कुछ बोल न सके। चुपचाप एकटक उसका रूप निहारते हुए चले गये केवट के पास। उससे अपना परिचय देकर विवाह की इच्छा प्रकट की। मल्लाह बोला—"शादी उसी हालत में हो सकती है, जब मेरी लड़की की सन्तान को ही राजगद्दी देने का का आप प्रण करें।"

किन्तु प्यारे देवव्रत के अधिकार को तुच्छ लालसा के लिए बेचना राजा ने उचित नहीं समझा। उस रूपसी युवती को ललचाई आँखों से देखते हुए हताश हो लौट आये।

वह सुन्दरी उनकी आँखों में समा गई। रास्ते-भर वही सलोनी सूरत चित्त पर चढ़ी रही। घर पहुँचकर उन्होंने किसी से कुछ कहा नहीं; पर उसके बिछुड़ने से कलेजा सुलग रहा था—न दिन में चैन, न रात में नींद! हर घड़ी वही 'सोने की सुगन्धित मूर्ति' आँखों में फिर रही थी। न भूख लगती, न आँख लगती, न जी लगता। आँखों में रातें काटते और बेचैनी में दिन। आँख क्या लगी, कलेजे में आग लग गई! कलेजे की कसक कहें तो किससे कहें! किन्तु प्रेम का दर्द छिपाये नहीं छिपता। मंत्रियों को इस रहस्य का पता लग गया। उनकी राय हुई कि छल-बल से वह सुन्दरी हर लाई जाय;

पर राजा ने गम्भीरतापूर्वक कहा—"यदि मैं चाहूँ, तो आज ही उस मल्लाह से उसे छीन लाऊँ; पर निर्बल प्रजा पर ऐसा अत्याचार करना राजधर्म के विरुद्ध होगा। प्राण भले ही चले जायँ, पर जीते-जी प्रजा पर जोर-जबरदस्ती नहीं कर सकता।"

अपने आदर्श की रक्षा करनेवाले ऐसे ज्ञानी और धर्मात्मा राजा भारत में बहुत हुए हैं।

शान्तनु को अपने दिल की लगन पूरी होने की कोई आशा न रही। गंगा के वियोग से जी उड़ा, तो जंगल में जी की जलन मिटाने गये; पर कहाँ जी का बोझ हल्का करने गये, एक नई बला और उठा लाये।

जो हो, शान्तनु का धैर्य निश्चय ही सराहनीय है। ऐसे अवसर पर सब तरह के ज्ञान लुप्त हो जाते हैं, पर पुत्र-वत्सल शान्तनु अपनी टेक से टुक न टले।

देवव्रत ने अपने पिता से उनकी चिन्ता का कारण पूछा; पर लज्जावश वे कुछ कह न सके। बड़ी चेष्टा करके देवव्रत ने मंत्रियों से असल भेद जान लिया। सोचा—"यदि मैं पिता की चिन्ता दूर न कर सका, तो मेरा जीना बेकार है। इस संसार में पिता ही धर्म, पिता ही स्वर्ग, और पिता ही तप है। पिता के प्रसन्न होने से सब देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं। माता, पिता और गुरु को सदा सुखी रखना ही पुत्र और छात्र का कर्तव्य है; क्योंकि इन्हीं की प्रसन्नता से सारी तपस्या पूरी होती है। यही शास्त्रों का उपदेश है।"

यह सोचकर देवव्रत उस मल्लाह के पास पहुँचे। उसने उनकी बड़ी आवभगत की। राजकुमार को घर आया देखकर वह कृतार्थ हो गया। एक गरीब प्रजा के घर पर भावी सम्राट् का शुभागमन कितना आनन्ददायक है! भारतीय राजाओं की उदारता का कैसा ज्वलन्त उदाहरण है! एक निर्धन मल्लाह का अतिथि—एक क्षत्रिय राजकुमार! धन्य!

देवव्रत ने मल्लाह को लाख समझाया; पर ऊसर भूमि में वर्षा की तरह उनके वाक्य व्यर्थ हो गये। किसी तरह के प्रलोभन से मल्लाह का मन नहीं डिगा। तब पिता के कष्ट का अनुमान कर देवव्रत बोले—"हे धीवर! जो कुछ तुम्हारी इच्छा है, सब मैं पूरी करूँगा; तुम अपनी कन्या मेरे पिता के लिए दे दो। मैं जबतक जीता रहूँगा, तुम्हारा उपकार मानूँगा। यदि तुम मेरे विषय में किसी तरह का सन्देह करते हो, तो लो, मैं तुम्हारे विश्वास और सन्तोष के लिए, सब देवताओं को साक्षी मानकर, यह अटल प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं स्वप्न में भी राज्य की इच्छा न करूँगा और जिन्दगी-भर ब्रह्मचारी रहकर तुम्हारी कन्या की सन्तान के लिए गद्दी छोड़ दूँगा। मैंने अबतक अगर केवल पिता को ही परमेश्वर मानकर पूजा हो; प्राणों से भी प्यारी प्रजा को न्याय और दया के साथ पाला हो, पर-स्त्री को अपनी माता समझकर अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया हो, सदा अपनी सत्य और मधुर वाणी से समस्त प्राणियों को सुख पहुँचाया हो तो मेरी आज की यह प्रतिज्ञा परमात्मा अवश्य पूरी करें!"

देवव्रत ने भुजा उठाकर जिस दिन यह भीष्म (भयंकर) प्रतिज्ञा की, उसी दिन से उनका नाम 'भीष्म' प्रसिद्ध हुआ!

उनकी भीषण प्रतिज्ञा सुनकर बेचारा मल्लाह दाँतों अँगुली दबाकर रह गया! उसने प्रसन्न मन से अपनी कन्या को भीष्म के रथ पर चढ़ा दिया।

सत्यवती को पाकर शान्तनु बड़े प्रसन्न हुए। देवव्रत को आशीर्वाद दिया—'बेटा! जब तुम चाहोगे, तभी मर सकोगे; तुम्हारी इच्छा-मृत्यु होगी।'

शान्तनु का मन; रूप और यौवन की तरंग में डूब गया! उन्हें बाहरी दुनिया की कुछ सुध न रही। उनका एक अपना संसार अलग ही बन गया, जिसमें केवल लालसा और प्रणय का राज्य था। नवीन और मधुर स्नेह ने उनकी बुझती हुई वासनाओं को जगा दिया। जो अवस्था भगवद्भजन के योग्य थी, वह एक रूपवती युवती में आसक्त होकर मृत्यु की घड़ियाँ गिनने लगी!

शान्तनु के जीवन का आखिरी पर्दा गिरने से पहले चित्रांगद और विचित्रवीर्य्य नामक दो सुन्दर पुत्र पैदा हुए। सत्यवती को रँड़ापा का दुःख इन्हीं दोनों लाड़लों को देखकर न अखरा। पिता की तरह भीष्म ने अपने इन छोटे भाइयों को पाल-पोसकर सयाना किया। चित्रांगद राजगद्दी पर बैठकर राजकाज करने लगे। किंतु, कुछ दिनों के बाद चित्रांगद नाम के ही एक गन्धर्वराज के साथ उन्हें युद्ध करना पड़ा। उस युद्ध में वे मारे गये। भीष्म यह सुनकर आग-बबूला हो गये। किन्तु, वह गन्धर्व उनके डर से भाग गया। क्रोध और शोक की ज्वाला ने भीष्म का हृदय बहुत जलाया। विचित्रवीर्य बालक थे। उन्हीं को सिंहासन पर बिठाकर भीष्म राजपाट सँभालने लगे। जब विचित्रवीर्य युवा हुए, तब भीष्म को उनके विवाह की चिन्ता हुई।

काशी-नरेश ने अपनी तीन कन्याओं के स्वयंवर की बड़ी तैयारी की थी। देश के बड़े-बड़े राजा-महाराजा उस स्वयंवर में पधारे थे। भीष्म भी, सत्यवती की आज्ञा से विचित्रवीर्य्य का विवाह कर देने के लिए उस स्वयंवर में कन्या-हरण करने गये थे।

वहाँ बहुत दूर तक लोहे से घिरा मैदान था। उसमें ग्यारह बड़े-बड़े बलिष्ठ साँड़ खुला छोड़ दिये गये थे। वे मस्त होकर दौड़ रहे थे! उन्हें पकड़-पकड़ कर एक ही रस्सी में बाँधना और नाथना था। भीष्म ने उन्हें अपने बाहुबल से सर करके ही छोड़ा। उनका पौरुष देखकर सभी राजा दंग रह गये। उनसे कन्याओं को छीन लेने के लिए सभी कानाफूसी करने लगे।

जिस सभा में एक-से-एक वीर और तेजस्वी राजा बैठे थे, वहाँ—हाथियों के झुण्ड में सिंह की तरह—गरज कर भीष्म बोले—'मैं आजन्म ब्रह्मचारी हूँ। मुझे विवाह की लालसा नहीं है। मैं इन कन्याओं को बरने की कामना से यहाँ नहीं आया हूँ। मेरा छोटा भाई कुँवारा है। उसीके लिए मैं इन कन्याओं को हर ले जाऊँगा। जिस किसी को इन्हें बरने की इच्छा हो, वह मुझे युद्ध में जीतकर इन्हें ले जा सकता है।'

इतना सुनते ही राजाओं के कान खड़े हो गये। वे अपनी मूँछों पर ताव देने लगे। सबकी भौहें टेढ़ी होकर जुट गईं। आँखें लाल हो गईं। हीरे-मोती के गहने और भड़कीली पोशाकें उतारकर वीरों ने कवच पहन लिये। शस्त्रों की झनकार से काशीपुरी का मैदान गूँज उठा। जो भीष्म की अपार शक्ति जानते थे, वे नौ-दो-ग्यारह हुए।

सुन्दरी राजकुमारियों को अपने रथ पर चढ़ाकर भीष्म ने ललकारा। कुछ राजा मैदान में उतरे; पर थोड़ी देर की मुठभेड़ के बाद भेड़ों की तरह भाग चले। मैदान भीष्म के हाथ रहा। वे तीनों राजकन्याओं (अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका) को लेकर हस्तिनापुर चले आये।

अम्बा ने भीष्म से हाथ जोड़कर कहा—'अपने मन में मैं शाल्वराज के साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ। अब मैं किसी दूसरे से विवाह नहीं कर सकती; क्योंकि नारी-धर्म पर धक्का पहुँचेगा—आप-जैसे वीर के यश में भी धब्बा लगेगा।'

भीष्म ने कहा—'देवि! तुम अबला हो, मैं जबरदस्ती किसी के साथ विवाह करने के लिए तुम्हें मजबूर न करूँगा। मैं सत्य का उपासक हूँ, न्याय का भक्त हूँ। सत्य और न्याय के समान मुझे अपने प्राण भी प्रिय नहीं हैं। तुम्हें सत्य से भ्रष्ट न होने दूँगा। तुम निर्भय रहो। अपने को पति की सेवा में पहुँचा ही समझो।' *

बड़े सामान के साथ अम्बा को शाल्वराज के पास भेजकर भीष्म, विचित्रवीर्य के विवाह की, तैयारियाँ करने लगे। बड़ी शान-शौकत के साथ शादी हुई। अम्बिका और अम्बालिका इन्द्र के समान सुन्दर पति पाकर कृतार्थ हुईं। सत्यवती भी सुशीला बहुओं का मधुर स्वभाव देखकर अपने सारे दुःख भूल गई; पर थोड़े ही दिनों तक! फिर तो ऐसा बिना बादल का वज्र गिरा कि सत्यवती का हृदय खण्ड-खण्ड हो गया!

विचित्रवीर्य्य कुरुवंश के बस एक ही अंकुर थे। उस अंकुर को सत्यवती और भीष्म ने प्रेम से सींचा था। पर, अंकुर पनपने नहीं पाया! विचित्रवीर्य्य की वही दशा हुई, जो दो युवती सुन्दरियों में आसक्त एक पति की होती है! उनके जीवन की कली खिलने से पहले ही टूट गई! दोनों विधवाओं को देख सत्यवती और भीष्म निराशा के अथाह समुद्र में डूब गए! कुरुवंश का जहाज मँझधार में डूब गया!

धैर्य्य धारण कर भीष्म ने सत्यवती से कहा—'माता! अब रोने का समय नहीं है। अब ऐसा कोई उपाय बताओ कि कुरुवंश का संहार न हो। हाय-हाय करने से कुछ होने का नहीं। संसार में जो जन्म लेता है, उसका मरना निश्चित है।'

सत्यवती ने कहा—'वत्स! एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन बर्छियाँ कलेजे को पार कर गईं! कैसे धैर्य धरूँ? तुम अगर धैर्य्य देना चाहते हो, तो मेरी शान्ति के लिए विवाह करो और वंश बढ़ाओ।'

भीष्म बड़ी दुबिधा में पड़कर सकुचाते हुए बोले—'माता! प्रण मुझे प्राणों से भी प्यारा है। व्रत-भंग हो जाने पर, इस लोक में मेरा अपयश फैलेगा, परलोक में मुझे नरक-दण्ड मिलेगा। क्षत्रिय के लिए प्रतिज्ञा से बढ़कर संसार में दूसरी कोई प्यारी वस्तु नहीं।

---

* अम्बा जब शाल्वराज के पास गई तब उन्होंने उसे रानी बनाने से इनकार कर दिया। फिर वह भीष्म के पास आई। कहने लगी कि आपने मेरा हरण किया है, आपही विवाह कीजिए। भीष्म अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहे। इसके बाद की कथा आगे मिलेगी।

हिमालय टल सकता है, समुद्र सूख सकता है, चन्द्रमा चिनगारियाँ बरसा सकता है, सूरज पच्छिम की ओर उग सकता है, गंगा उलटी बह सकती हैं, आग ठंडी हो सकती है ; पर मेरी प्रतिज्ञा सपने में भी झूठी नहीं हो सकती—मेरा सत्यव्रत टूट नहीं सकता। चाहे कुरु-वंश का सर्वनाश हो जाय, चाहे तुम मुझे शाप दे दो, पर अपनी टेक न छोड़ूँगा।'

पुत्र का दृढ़ सिद्धान्त सुनकर माता की छाती फूल उठी। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा—'चिन्ता मत करो, दोनों वधुएँ गर्भवती हैं।'

भीष्म की मुरझाई आशा-लता पर अमृत बरस गया। प्रसन्न होकर अपने मन में कुरुवंश के उज्ज्वल भविष्य का चित्र बनाने लगे।

लड़ाई की चिनगारियाँ

दोनों गर्भिणी विधवाओं से दो पुत्र हुए। एक का नाम पड़ा धृतराष्ट्र और दूसरे का पांडु। पहला लड़का बड़ा ही हृष्टपुष्ट, पर अन्धा था। दूसरा लड़का बहुत ही सुन्दर, पर दुबला-पतला था। दोनों को भीष्म ने पुत्र की तरह पाला-पोसा। शिक्षा-दीक्षा हो जाने पर दोनों का विवाह हुआ—गान्धारी से धृतराष्ट्र का और कुन्ती तथा माद्री से पांडु का।

यद्यपि धृतराष्ट्र बड़े भाई थे, तथापि अन्धा होने के कारण राजा न हुए। छोटे भाई पांडु ही सिंहासन पर बैठे। पांडु प्रतापी और न्यायी राजा थे। वे जवानी में ही स्वर्गवासी हो गये। उनके साथ कुन्ती की आज्ञा से माद्री सती हो गई। माद्री के पुत्रों को कुन्ती ने ही पाला-पोसा।

धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे और पांडु के पाँच। धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में दुर्योधन और दुःशासन, पांडु के पाँच पुत्रों में भीम और अर्जुन बड़े वीर थे। धृतराष्ट्र का बड़ा बेटा दुर्योधन बड़ा अहंकारी, हठी, क्रोधी और गदा-युद्ध में अत्यन्त निपुण था। पांडु के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर बड़े सत्यवादी धर्मात्मा थे। उन्हें धर्मराज के नाम से सारा संसार जानता है, भीष्म उनको बड़ा प्यार करते थे। धृतराष्ट्र के सौ बेटे बड़े ही कुटिल थे। इसीलिए पाण्डवों पर ही भीष्म का अधिक स्नेह था। वे प्रायः अर्जुन की बहादुरी की बड़ाई किया करते थे। युधिष्ठिर की सचाई की बड़ाई करने से तो उन्हें कभी सन्तोष नहीं होता था।

पाण्डु के मरने से पाण्डवों पर भीष्म का स्नेह और भी बढ़ गया। धृतराष्ट्र को राजा बनाकर भीष्म ही राज-काज करने लगे। अपने पिता को राजा समझकर दुर्योधन को बड़ा अभिमान हुआ। वह अहंकार के मारे अन्धा बना फिरता था। पाण्डवों को तो फूटी नजर से भी देखना नहीं चाहता था। भीष्म उसे बहुत समझाया करते थे; पर वह उनके उपदेशों पर क्यों कान देने लगा ? उसकी आँखों में तो चरबी छा गई थी। पाण्डव उसकी आँखों के काँटे हो रहे थे। भीष्म को उन्हें प्यार करते देखकर वह जले तेल का बैंगन हो जाता था।

दुष्ट सन्तान हृदय को जलाने के लिए बड़ी भयंकर अग्नि है। दुर्योधन की दुष्टता से उसके माता-पिता आजिज आ गये थे; पर स्नेह के मारे कभी जीभ तक न हिलाते थे—इस डर से कि शायद ऐंठ में आकर कहीं मुँह काला कर जाय।

भीष्म भी बड़ी दुबिधा में थे। पाण्डवों का स्नेह उनसे छूटता न था। वे धृतराष्ट्र को अन्धा और सरल तथा गान्धारी को सच्ची पतिव्रता समझकर उन्हें बड़ा प्यार करते थे। उन्हीं के दिलों को चोट पहुँचने के भय से दुर्य्योधन पर दबाव डालना नहीं चाहते थे। वे धृतराष्ट्र की ओर से प्रजा का पालन भी करते थे, राज्य में उन्हीं की हुकूमत भी चलती थी; परन्तु दुर्य्योधन पर किसी तरह का अंकुश लगाना उन्हें पसन्द नहीं था।

सत्यवती ने भीष्म से सलाह पूछकर अपनी दोनों विधवा पुत्र-वधुओं के साथ, जंगल में जाना निश्चित किया; क्योंकि उनसे दुर्य्योधन का दुर्व्यवहार देखा न गया। भीष्म उन्हें रथ पर चढ़ाकर गंगातट के एक तपोवन में छोड़ आये। वहाँ ऋषि-मुनियों की स्त्रियों के साथ वे बड़े आनन्द से रहने लगीं। जिस घर में कलह होता रहता है, उस घर से जंगल कहीं अच्छा। जंगल में ही शान्ति के साथ ईश्वर-भजन करते-करते वे सुरधाम सिधार गईं।

धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों को भीष्म ही धर्म और राजनीति की शिक्षा देते थे। उन्हें धनुर्विद्या सिखाने के लिए वे एक सुयोग्य गुरु की तलाश में थे। एक दिन सब लड़के गेंद खेल रहे थे। अचानक गेंद कुएँ में गिर गई। वे निकालने के लिए बड़े आतुर हो रहे थे। इतने में एक दरिद्र ब्राह्मण उसी तरफ से आ निकला। लड़कों ने स्वभावतः उससे गेंद निकाल देने की प्रार्थना की। ब्राह्मण ने तीर मारकर गेंद निकाल दी। लड़के बड़े चकित हुए। वे भीष्म-पितामह के पास दौड़े हुए गये। सब हाल कह सुनाया। भीष्म मुस्कुराये। उन्होंने समझ लिया, हो न हो, यह ब्राह्मण द्रोण ही हैं। वे लड़कों के साथ चले।

वहाँ द्रोण को घेरकर बहुत-से लड़के खड़े थे। पितामह को आते देखकर सब लड़के शिष्टता के साथ अलग खड़े हो गये। भीष्म ने दूर से ही द्रोण को पहचानकर प्रणाम किया; फिर दौड़कर छाती से लगा लिया। लड़कों से बोले—'यही मेरे पूज्य गुरु परशुरामजी के प्यारे शिष्य द्रोणाचार्य्य हैं। ये मेरे गुरुभाई हैं। इनके चरण छूकर प्रणाम करो।'

लड़कों ने श्रद्धा के साथ पितामह की आज्ञा का पालन किया। उसी दिन से कुरु-वंश के बालकों को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देने के लिए द्रोणाचार्य नियुक्त हुए। राजकुमारों के गुरु बनकर वे बड़े सुख और सम्मान के साथ हस्तिनापुर में रहने लगे। जिसके पास विद्या और कला होती है वह कहीं-न-कहीं, भी-कन-कभी, प्रतिष्ठा पाता ही है। द्रोण की दरिद्रता उनके गुणों के प्रभाव से दूर हो गई। सच्चा गुणी सच्चे पारखी के पास ही आदर मान पाता है। भीष्म सच्चे गुणगाहक थे।

धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव कहलाते थे। वे पाण्डवों के जानी दुश्मन थे। उन्हें दिन-रात पाण्डवों का अहित करने की चिन्ता बेचैन रखती थी। यद्यपि पाण्डव उनसे द्वेष नहीं करते थे तथापि दुर्य्योधन के कपट का बुरा प्रभाव उनपर पड़ता जाता था। वे भीष्म से सारी बातें कहते जाते थे। पर भीष्म उन्हें यही कहकर समझा देते थे कि बुराई

करनेवाले के साथ भलाई करते जाने से ही पूरा पड़ता है—तुमलोगों की नेकी भविष्य में फल देगी और उसकी बदी आगे चलकर उसका तथा कुरुवंश का संहार करेगी—तुमलोग सत्य और धर्म के सहारे कष्ट से भी दिन काट ले चलो—सारी प्रजा तुमलोगों का हित चाहती है—मैं भी तुमलोगों का एकान्त हितैषी हूँ—द्रोणाचार्य तुमलोगों के ही शुभचिन्तक हैं—तुमलोगों को भगवान् का भरोसा है, इसलिए दुर्योधन तुमलोगों का कुछ बिगाड़ नहीं सकता—मैं उसे समझाकर हार गया वह भी मुझे तुम्हीं लोगों के समान प्रिय है; किन्तु मैं यह अच्छी तरह समझे बैठा हूँ कि उसकी बुरी नियत और मूर्खता निश्चय ही कौरवों का सर्वनाश करेगी।

कौरव और पाण्डव जब अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीखकर तैयार हुए, तब उनकी परीक्षा का दिन नियत हुआ। परीक्षा के लिए रंगशाला बनाई गई। रंगशालामें उस दिन भीष्म भी गये। विविध प्रकार से परीक्षा हुई उसमें अर्जुन ही सर्वोत्तम निकले। द्रोण ने उन्हें गले से लगाकर, उनका माथा सूँघकर, अत्यन्त आनन्द के साथ आशीर्वाद दिया—'बेटा तुम संसार के धनुर्द्धरों के सिरमौर होगे। जाओ, विश्व-विजयी होने का यश प्राप्त करो। जबतक तुम अस्त्र-शस्त्र से युक्त रहोगे तबतक तुम्हें त्रिलोक में कोई जीत न सकेगा और तीनों लोक में तुम्हारी विजय का डंका बजता रहेगा—देवता या गन्धर्व, राक्षस या मनुष्य, कोई तुम्हारा बाल बाँक न कर सकेगा।'

गुरु के चरणों में सिर टेककर अर्जुन आगे बढ़े। भीष्म ने बड़ी ललक के साथ अपने प्यारे पोते को अंक में भर लिया। वे बड़ी देर तक उन्हें असीसते और उनके सिर पर हाथ फेरते रहे। भीष्म की आँखों में स्नेह के आँसू उमड़ आये। उनके रोंगटे खड़े हो गये। उनकी छाती फूल उठी। बार-बार उन्होंने अर्जुन को अपनी बाँहों में समेटा, पर जी न भरा। बोले—'हे वत्स! तुम्हीं कुरुवंश के सच्चे सपूत हो, तुम्हीं कुरुवंश के एकमात्र अखंड दीपक हो, तुम्हीं क्षत्रियों के तेज की मर्यादा हो, तुम्हीं वीरता-देवी के अमूल्य अलंकार हो। तुम्हारी पूजा से रणचंडी सन्तुष्ट होगी, तुम्हारी कीर्ति से भरतभूमि धन्य होगी, तुम्हारी शक्ति से प्रजा सुखशान्ति पावेगी, तुम्हारी विजय पर क्षत्रिय-जाति सदा गर्व करेगी। हे कुन्तीनन्दन! तुमने स्वयं धन्य होकर अपने कुल को भी धन्य किया, माता की कोख की लाज रख ली। मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि इस संसार में तुम अपना और अपने वंश तथा आचार्य का नाम अमर करके दोनों लोक में यश और सुख के भागी होगे।'

पितामह के चरणों की धूलि सिर और आँखों में लगाकर बड़ी विनय के साथ, अर्जुन विदा हुए। फिर अपनी माता कुन्ती के पास गये। कुन्ती ने उन्हें अपने पैरों में सिर झुकाते देखकर कलेजे से सटा लिया। बड़ी देर तक, अञ्चल से ढँककर, प्रेममयी माता, स्नेह के आँसुओं से उनका मस्तक सींचती और सूँघती रही।

अर्जुन की बेहद बड़ाई देख-सुनकर दुर्योधन अंगार पर लोट गया। इधर अर्जुन-जैसा अद्वितीय शिष्य पाने पर भीष्म लगे द्रोणाचार्य को बधाई देने, उधर वह पाण्डवों की

हत्या करने के उपाय सोचने लगा—उनका अभ्युदय वह कब देख सकता था! वह तो भीष्म और द्रोण की भी कुछ नहीं सुनता था। कर्ण की उलटी-सीधी बातों को ही वह वेदवाक्य मानता था। पर, भीष्म पितामह से बहुत डरता भी था।

युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठा पर प्रजा मुग्ध ही थी, अर्जुन का हस्तकौशल देखकर प्रजा का हृदय बाँसों उछल पड़ा। सब लोग यही कहने लगे, युधिष्ठिर को ही राजा बनाया जाय। भीष्म की भी यही राय थी। युधिष्ठिर कुरुपाण्डव-परिवार के सब भाइयों में बड़े भी थे इसलिए, भीष्म ने यह प्रस्ताव धृतराष्ट्र से किया। किन्तु दुर्योधन ने अपने अन्धे पिता को पहले से ही अपनी मुट्ठी में कर रखा था। अतएव, भीष्म को अन्ध-राज ने स्पष्ट उत्तर नहीं दिया।

भीष्म समझ गये कि पांडवों के साथ अन्याय करने का सिलसिला शुरू हो गया। उन्होंने धृतराष्ट्र से साफ-साफ कह दिया—'युधिष्ठिर को सब भाइयों में बड़ा जानकर, और उनके साधु स्वभाव को देखकर ही, मैं कुरुवंश की प्रथा के अनुसार, उनको राजा बनाने पर जोर देता था। तुम दुर्योधन की बातों में आकर आज अन्याय कर रहे हो; पर याद रहे, इसका कड़वा फल तुम्हें चखना पड़ेगा।'

भीष्म बड़े दूरदर्शी और राजनीति के महान् पण्डित थे। इसलिए, परिवार में फूट फैलते देखकर उनके मन में बड़ी चिन्ता हुई। कुरुवंश की भावी दुर्दशा का भयंकर चित्र उनकी आँखों के सामने झूलने लगा।

कर्ण की सलाह से दुर्योधन पाण्डवों की हत्या करने का षड्यन्त्र रच रहा था। उसने अपने पिता को भी पाण्डवों के विरुद्ध उभाड़ा। उन्हें ऐसी पट्टी पढ़ाई कि पाण्डवों की उन्नति उनको भी खलने लगी। अपने मन्दमति पुत्र की राय से उन्होंने पाण्डवों को बुलाकर कहा—'तुमलोग सपरिवार वारणावत-तीर्थ देखने चले जाओ। वहाँ का मेला और महोत्सव देखने योग्य होता है! वैसा रमणीय स्थान तुमलोगों ने कभी नहीं देखा होगा। मन बहलाकर फिर यहाँ लौट आना।'

युधिष्ठिर इस रहस्य को समझ गये। भीष्म, द्रोण, गान्धारी और धृतराष्ट्र को प्रणाम कर वे अपनी माता और अपने चारों भाइयों के साथ वारणावत चले गये।

अम्बिका और अम्बालिका की एक प्यारी सखी के पुत्र विदुर बड़े धर्मात्मा और राजनीतिज्ञ थे। भीष्म भी उनपर बड़ा स्नेह रखते थे। वे भी पाण्डवों के सच्चे हितैषी थे। उन्होंने युधिष्ठिर को वारणावत का सारा गुप्त भेद बतला दिया।

दुर्योधन ने वारणावत में पहले से ही लाक्षा-गृह बनवा रखा था। उसीमें जाकर पाण्डव ठहरे। पुरोचन नामक दुष्ट वहाँ पांडवों का स्वागत करने के लिए नियुक्त था। पहले तो उसने पाण्डवों को बड़ा आराम पहुँचाया; पर अन्त को अचानक लाक्षा-गृह में आग लगा दी। पाण्डव तो एक गुप्त सुरंग से भाग निकले; पर वही दुष्ट लाह के उस गृह में जलकर खाक हो गया। जो दूसरे के लिए गढ़ा खोदता है, उसके लिए विधाता पहले से ही कुँआ तैयार रखता है।

लाह के घर से निकलकर पांडव जंगल में चले गये। पर यह जानकर कि पाण्डव जल मरे, दुर्योधन के आनन्द की सीमा न रही। किन्तु सत्य को कभी असत्य जला ही नहीं सकता। पाण्डव जंगलों और पहाड़ों की खाक छानते फिरते थे। जिस समय वे एकचक्रापुरी के किसी ब्राह्मण के यहाँ थे, उसी समय उन्हें द्रौपदी-स्वयंवर की सूचना मिली। वे वहाँ जाकर द्रौपदी को जीत लाये, और कुन्ती की आज्ञा से पाँचों भाई उसके पति हुए।

पाण्डवों की जीत और नई शादी की खुशखबरी सुनकर भीष्म अत्यन्त प्रसन्न हुए। जबतक उनकी यह धारणा थी कि पाण्डव जल मरे, या बचे भी तो वन-वन मारे फिरते होंगे; तबतक उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। वे शोक और चिन्ता के मारे अनमने-से हो रहे थे। उन्हें प्रजा से मुँह दिखाने में भी लज्जा आती थी। पाण्डव उनके कलेजे के टुकड़े थे—आँखों के तारे और हथेली के फूल थे। उनके विना वे बहुत बेचैन थे। कभी किसी बड़ी-से-बड़ी विपत्ति में भी वे ऐसे व्याकुल नहीं हुए थे। अपनी ही आँखों के सामने पांडवों की घोर दुर्दशा उनसे देखी नहीं जाती थी। वे आत्म-ग्लानि से खिन्न हो गये थे। उनका चित्त चंचल बना रहता था। उन्हें अपना जीवन भार मालूम होता था।

अचानक, एक दिन, पांडवों का पता लगा। भीष्म की राय से विदुर जाकर उन्हें बुला लाये। भीष्म और द्रोण ने पांडवों की अगवानी की। प्रजा के सूखते हुए धान में पानी पड़ गया। भीष्म-द्रोण की आशा की खेती हरी-भरी हो गई। दुर्योधन का दर्द दुगुना हो गया। धृतराष्ट्र का मुँह धूमिल हो गया। कर्ण दाँत पीस और हाथ मलकर रह गये।

भीष्म ने धृतराष्ट्र को समझा-बुझाकर पांडवों को आधा राज्य दिलवा दिया। बेचारे खांडवप्रस्थ में अपनी राजधानी बनाकर राज करने लगे। युधिष्ठिर के पुण्य-प्रताप से राज्य में सुख-सम्पत्ति छा गई। पांडवों के प्रताप और सौभाग्य की दिन-दूनी रात चौगुनी वृद्धि होने लगी। युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ की तैयारी की। उनके चारों भाई दिग्विजय के लिए चारों दिशाओं में निकले। वे भूमंडल के बड़े बड़े राजाओं को जीतकर बहुत से धन-रत्न के साथ खांडवप्रस्थ लौट आये।

राजसूय का निमंत्रण लेकर नकुल हस्तिनापुर गये। यज्ञ का संवाद सुनकर भीष्म के आनन्द का ठिकाना न रहा। वे कौरवों के साथ खांडवप्रस्थ गये। युधिष्ठिर ने पितामह की खूब खातिरदारी की, कौरवों का भी यथेष्ट स्वागत किया।

पांडवों का धन-वैभव देखकर भीष्म फूले अंग न समाये; पर कौरव तो जल-भुन गये। युधिष्ठिर ने सारे प्रबन्धों का भार भीष्म और द्रोण पर छोड़ दिया। भीष्म और द्रोण की ही आज्ञा से सारी व्यवस्था हुई। सब प्रबन्ध करके, द्रोण को साथ लेकर, भीष्म निरीक्षण का काम करने लगे।

युधिष्ठिर के ममेरे भाई भगवान् श्रीकृष्ण भी द्वारकापुरी से आये हुए थे। युधिष्ठिर के सलाह पूछने पर भीष्म-पितामह ने कहा—सबसे पहले यज्ञ-मंडप में भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की पूजा होनी चाहिए, वे ही सर्वश्रेष्ठ महापुरुष हैं, वे ही संसार के माननीय आदर्श

व्यक्ति हैं, वे ही हमलोगों के पूजनीयों में प्रथम-पूज्य हैं, वे ही भारतवर्ष में धर्म के साक्षात् अवतार हैं, एकमात्र वे ही सब ऋषियों के रक्षक, दुष्टों के शासक, अनाथों के नाथ, गो-ब्राह्मण के प्रतिपालक, दीनों के बन्धु और धर्म के उद्धारक हैं, वे ही सत्य और न्याय के आधार हैं; उन्हीं की पूजा तुम्हारा कल्याण करेगी, उन्हीं की प्रसन्नता से तुम्हारे सारे विघ्न टल जायँगे, उन्हीं की तृप्ति से सारा लोक सन्तुष्ट होगा, एकमात्र उन्हीं के सन्तोष से तुम्हारा यज्ञ सफल हो जायगा।

पितामह के आदेशानुसार यज्ञ-मंडप में सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्ण के चरण धोये गये। चेदिराज शिशुपाल रुक्मिणी-हरण के कारण भगवान् श्रीकृष्ण से घोर शत्रुता रखता था। वह जलते तेल का बैंगन हो गया, बड़े क्रोध के साथ यज्ञशाला से उठकर जाने के लिए तैयार हुआ। पाण्डवों ने हाथ जोड़कर बड़ी विनती की; पर उसने सब अनसुनी कर दी।

भीष्म ने पांडवों से कहा—'जो मनुष्य उचित को भी अनुचित समझता है, न्याय को भी अन्याय मानता है, उसके रुष्ट होने की परवा करना ठीक नहीं। श्रीकृष्णचन्द्र भारतवर्ष के अलंकार, धर्म के त्राता, ज्ञान के भाण्डार, प्रेम की मूर्ति और जीवमात्र के परम हितैषी हैं। इनके सिवा किसी दूसरे की पूजा पहले नहीं हो सकती। जिसे इनका यह यथोचित सम्मान नहीं रुचता, वह सहर्ष अपनी राह ले।'

भरी सभा ने भीष्म की उचित सम्मति का समर्थन किया। शिशुपाल के क्रोध की ज्वाला और भी भभक उठी। श्रीगणेश में ही विघ्न होते देखकर कौरव बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु पराये के हित की हानि देखकर जो प्रसन्न होते हैं, उन्हें ईश्वर खूब जलाता है।

भीष्म की बातें सुनकर शिशुपाल की एँड़ी से चोटी तक आग लग गई। वह आपे से बाहर हो गया। मन-ही-मन भीष्म को कोसने लगा, क्योंकि उनकी अद्भुत शक्ति की महिमा भली-भाँति जानता था। किन्तु पितामह का पराक्रम जानते हुए भी वह अपने क्रोध का वेग रोक न सका। भीष्म तो प्रशान्त महासागर के समान गम्भीर और अटल हिमालय की तरह धीर बने रहे।

भीष्म का अपमान अर्जुन से देखा न गया। उनकी भुजाएँ फड़कने लगीं; पर युधिष्ठिर का इशारा पाकर वे दाँतों ओठ चाँपकर रह गये। शिशुपाल बकता ही जाता था। उसका मुँह बन्द न हुआ। उसने जी-भर भगवान् श्रीकृष्ण की निन्दा की। उसकी बहकी-बहकी बातें सबको बेतुकी लगीं। उधर वह गिन-गिनकर गालियाँ सुना रहा था, इधर भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कुरा रहे थे! हाथी कभी भूँकते हुए कुत्ते की ओर ध्यान नहीं देता। सिंह मेघ का गर्जन सुनकर हुँकार करता है, स्यारों की आवाज सुन-कर नहीं।

अहंकारी शिशुपाल अपनी करनी का फल पा गया। भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे तलवार के घाट उतार दिया। श्रीकृष्णचन्द्र की तेजस्विता देखकर कौरव काँप गये।

पाण्डव परम प्रसन्न हुए। यज्ञ विधि-पूर्वक सम्पूर्ण हुआ। युधिष्ठिर ने सबको आदर-पूर्वक विदा किया।

दुर्योधन घर पहुँचकर उदास रहने लगा। उसके मामा शकुनि ने उदासी का कारण पूछा। उसने सारी कहानी कह सुनाई। शकुनि बोला—'चिन्ता न करो, युधिष्ठिर की दवा मेरे पास है। उन्हें जूआ खेलने का बड़ा शौक है, और मैं इस विद्या में बड़ा प्रवीण हूँ। तुम जूआ खेलने के लिए उन्हें बुलाओ, मैं सब दिनों की कसर निकाल लूँगा। अब तो उन्हें रसातल भेजकर ही मेरी छाती ठंडी होगी।'

मामा की बात सुनकर दुर्योधन के जी-में-जी आया। उसने युधिष्ठिर को बुला भेजा। बेचारे सीधे-सादे धर्मराज, द्रौपदी और अपने भाइयों के साथ हस्तिनापुर जाकर, दुर्योधन के मेहमान हुए। जूआ खेला गया। शकुनि ने धूर्त्तता से युधिष्ठिर का सर्वस्व जीत लिया। जूए के शौक ने युधिष्ठिर का सर्वनाश कर दिया।

उसी जूए ने भारत में महाभारत मचाया, भारतमाता को रक्त की नदी में स्नान कराया, भाई के हाथ से भाई की गर्दन कटवाई, आपस का विरोध बढ़ाकर भारत के वीर क्षत्रियों को जुझा मारा, फूट फैलाकर इस स्वर्ग-सहोदर भारत को नरक से भी गया-बीता बना दिया।

नरक कहीं और ठौर नहीं है—जहाँ भाई के खून के लिए भाई प्यासा हो, कलह का बाजार गरम हो, पद-पद पर अनीति होती हो, धर्म को धत्ता बताया जाता हो; केवल कपट से ही काम लिया जाता हो, विश्वास के अमृत में धोखेबाजी का विष घोला जाता हो और स्वार्थ के लिए भोंड़ी छुरी से प्रेम की गर्दन रेती जाती हो—वहीं नरक है, वहीं यमपुरी है, वहीं पाप का अड्डा है, वहीं असत्य का राज्य है—

'जूआ खेले होतु है, सुख-सम्पति को नास।
राजपाट नल ते छुट्यो, पाण्डव किय बनवास ॥'

पाण्डव सचमुच बनवासी हुए। उन्हें बारह वर्ष का बनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास मिला। इतना ही नहीं, दुर्योधन के झाँसे में आकर, उन्हें वह घृणित दृश्य भी देखना पड़ा, जिसे क्या मनुष्य, क्या देवता, क्या राक्षस—किसी की आँखें देख नहीं सकतीं। वह दृश्य क्या था? वही था द्रौपदी-चीर-हरण! वही था महाभारत का मूल कारण! वही था अबला-जाति का अपमान, जिसे भगवान् भी सहन नहीं कर सकते।

भीष्म भी उस द्यूत-सभा में मौजूद थे, जिसमें ये सारे अनर्थ हुए। वे युधिष्ठिर की सुधाई और दुर्योधन की चालबाजी देखकर दंग थे। उन्होंने युधिष्ठिर से कई बार कहा—'धर्मराज होकर तुम इस बुरे व्यसन में क्यों फँसते हो। इस कुवासना को मन से निकाल बाहर करो। तुम अमृत के घड़े हो; यह जूए का शौक उसमें एक बूँद हलाहल है। इस दुर्गुण का त्याग करके तुम निष्कलंक चन्द्रमा बन सकते हो। ये पासे तुम्हारे खून के प्यासे हैं, शकुनि के छल के तमाशे हैं। क्यों व्यर्थ पासे के झाँसे में आकर अपने पैरों में आप ही कुल्हाड़ी मार रहे हो? क्यों जान-बूझकर अपने आपको धोखा देते हो?'

किन्तु युधिष्ठिर के 'भावीवश कछु मनहिं न भावा !' पितामह की बातें हाथी के स्नान की तरह व्यर्थ हो गईं।

द्रौपदी को दाँव पर रखते देखकर भीष्म के क्रोध का पारा चढ़ गया। उसे सभा में लाने के लिए जब दुर्योधन ने दुःशासन को आदेश दिया, तब ज्वालामुखी पर्वत की तरह उनका क्रोध उबल पड़ा। गरजकर बोले—'दुःशासन ! ठहरो। ऐसा भयंकर अन्याय मत करो। दुर्योधन ! क्या तुम्हें धर्म का कुछ भी भय नहीं है ? कुरुकुल-कुठार क्यों बनते हो ? धृतराष्ट्र ! तुम्हीं सारे अनर्थों की जड़ हो। तुम भी शीघ्र ही इन कुकर्मों का फल पाओगे। याद रक्खो, जिस राज्य में अबला सताई जाती है, वह राज्य बादल की छाया की तरह हवा हो जाता है।'

किन्तु, पितामह की फटकार कारगर न हुई। पांडवों की छाती पर मूँग दली गई। दुर्योधन ने मनमानी कर ही डाली। पितामह और आचार्य अपने कानों पर हाथ दिये और सिर नीचा किये ही रह गये। किन्तु—

'कहा करै बैरी प्रबल, जो सहाय रघुबीर।
दस हजार गज-बल घट्यो, घट्यो न दस गज चीर ॥'

फलतः पांडव बेचारे जंगल में चले गये, और बारह वर्ष तक फकीरी बाना धारे घूमते फिरे, बेचारी द्रौपदी भी अपने पतियों के साथ 'जंगल में मंगल' मनाती फिरती थी। माता कुन्ती, विदुर के घर रहकर, जिन्दगी के दिन भरती थीं। दुर्योधन तो पांडवों का राज्य हड़पकर भी उनकी गर्दन उतारने की चिन्ता में चूर रहने लगा, किन्तु—

'राखनहारा साइयाँ, मारि न सकिहैं कोइ।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होइ ॥'

वही बात हुई भी। दुर्योधन सिर पटक कर रह गया, मगर वन में पांडवों पर आफत न ढा सका।

एक बार वह कर्ण को साथ लेकर पांडवों का सिर कलम करने के लिए वन में स्वयं गया, पर उसे अपना-सा मुँह लेकर लौट आना पड़ा।

पांडव, बारह वर्ष का बनवास बिताकर, एक वर्ष का अज्ञातवास राजा विराट के यहाँ बिता रहे थे। राजा विराट का साला कीचक बड़ा बलिष्ठ था। उसके मरने का हाल सुनकर, दुर्योधन दल-बल के साथ, विराटनगर पर धावा कर बैठा।

भीष्म भी उस चढ़ाई में गये थे। उन्होंने ही विराट की सेना में अर्जुन को पहचाना। जब से पांडव बनवासी हुए तबसे पितामह दुःखी ही रहा करते थे। अर्जुन को एकाएक देखकर वे आनन्दमग्न हो गये।

उस दिन अचानक पांडवों का पता पाकर भीष्म आनन्द के मारे ऐसे शिथिल हो गये कि अच्छी तरह लड़ भी न सके, सिर्फ अर्जुन की प्रशंसा ही करते रह गये। दुर्योधन ने मुँह की खाई, और अर्जुन ने भी उसे चढ़ाई की चाशनी खूब चखाई।

हस्तिनापुर लौटकर धृतराष्ट्र के सामने ही भीष्म ने दुर्योधन से कहा—'बेटा ! मेरी नजर में कौरव और पांडव बराबर हैं। मैं दोनों में से किसी की अवनति नहीं देख सकता।

तुम दोनों मेरी आँखों की पुतलियों के समान हो। पाँचों अँगुलियाँ एक-सी ही प्यारी होती हैं, किसी एक को भी काटते नहीं बनता। मैं पांडवों की ओर से तुम्हारे साथ कोई अनुचित व्यवहार होते नहीं देखता। पर तुम्हारी ज्यादती बरदाश्त से बाहर हो गई है। पांडवों के कष्ट देखकर मेरी छाती फट रही है। मैं धृतराष्ट्र और गान्धारी को जितना अधिक प्यार करता हूँ, उतना ही विधवा कुन्ती और असहाय युधिष्ठिर को भी। युधिष्ठिर इस देश का भूषण है। वह हरिश्चन्द्र के समान सत्य-व्रतधारी है। सरबस गँवाकर भी वह धर्म नहीं छोड़ सकता। इसीलिए वह विजयी भी होगा। अन्त में तुम्हीं को पीठ दिखानी पड़ेगी; क्योंकि धर्म के साथ ही विजय रहती है। तुम अदबदाकर उन्हें सता रहे हो। वे बेचारे तो तुम्हारे किसी अपकार का बदला नहीं चुका पाते, चुपचाप तुम्हारे अन्यायों को सह लेते हैं। यह उनकी चुप्पी और लाचारी ही तुम्हारे भविष्य को सङ्कटमय बना रही है। सच मानो, पीड़ित की 'सबसे भली चुप' वाली नीति से ईश्वर का आसन भी डोल उठता है। सत्य के नाम पर मर मिटनेवाले की आह सारे ब्रह्माण्ड को भस्म कर सकती है, तुम्हारी क्या बिसात है। अब भी आँखें खोलो। सुबह का भूला अगर शाम को घर चला आता है, तो भूला नहीं कहा जाता। अपनी करतूतों को हिये की आँखों से देखो। व्यर्थ का टण्टा न खड़ा करो। अजगर को न छेड़ो। नाहक झगड़ा मोल लेकर कौरवकुल को काल के गाल में मत भेजो। कर्ण के भरोसे कूदना छोड़ दो। जिस दिन पाण्डव मैदान में डट जायँगे, उस दिन 'सौ बार सुनार की, एक बार लुहार की' कहावत सच्ची साबित हो जायगी। छठी का दूध याद हो जायगा। इस समय तो उन्हें तुम नाकों चना चबवाते हो, पर अपने भविष्य की भी तो चिन्ता करो। उनका राज्य तुम पचा न सकोगे। गेहूँ की रोटी के लिए फौलाद का पेट चाहिए। यह पृथ्वी आजतक न किसीकी हुई है, न किसी की होगी। आजतक समय के समुद्र में तुम-जैसे पानी के बुलबुले न जाने कितने गायब हो गये। तुम हो किस खेत की मूली? बेकार राज्य के लोभ में पड़कर पांडव-जैसे उदार भाइयों पर अत्याचार कर रहे हो। क्या तुम्हारे दिन ऐसे ही बने रहेंगे?'

भीष्म ने बहुत समझाया। किन्तु, जिस भैंस के आगे उन्होंने बीन बजाई; उस पर यमराज सवार थे। इसीलिए 'काल विवश कछु मनहिं न आवा।'

दुर्योधन की शह पाकर कर्ण ने पितामह को बहुत-कुछ जली-कटी सुना दी; पर कंकड़ी फेंकने से समुद्र विचलित नहीं होता। भीष्म ने 'छोटा मुँह की बात' समझ एक ही झिड़की में कर्ण को 'सटक सीताराम' कर दिया। धृतराष्ट्र ने क्षमा-प्रार्थना कर अवसर सँभाल लिया।

पाण्डवों ने; दुर्योधन के पास, अभिमन्यु के विवाह में आये हुए महराज द्रुपद के पुरोहित द्वारा, सन्धि का सन्देश भेजा; पर कुछ मतलब न सधा। भीष्म ने बड़ा जोर देकर, उस पुरोहित के सामने ही, भरी सभा में धृतराष्ट्र से कहा—'स्वार्थ से अन्धा होकर दूसरे का हक न हड़पो। फल अच्छा न होगा।'

इसी तरह भीष्म ने और भी बहुत-कुछ कहा; पर 'अन्धा आगे रोवे, अपना दीदा खोवे' वाली कहावत सच निकली। द्रुपद के पुरोहित मुँह लटकाये लौट गये।

धृतराष्ट्र ने संजय द्वारा पाण्डवों को बुला भेजा। पाण्डवों ने संजय से 'केवल पाँच ही गाँव लेकर सन्तोष कर जाने की बात' कह दी। संजय ने आकर धृतराष्ट्र से कहा—वे राजी हो गये; पर दुर्य्योधन बोला—'विना युद्ध के सुई की नोक के बराबर पृथ्वी भी न दूँगा।'

वह युद्ध की तैयारियाँ करने लगा। भगवान् श्रीकृष्ण को यह बात मालूम हुई। वे दोनों दलों में सन्धि कराने के लिए हस्तिनापुर पहुँचे। उनका आगमन सुनकर धृतराष्ट्र ने स्वागत की बड़ी तैयारी की। उनकी इच्छा हुई कि चापलूसी और राजसी ठाट से आदर सत्कार करके श्रीकृष्ण को अपने वश में कर लिया जाय।

किन्तु भीष्म पितामह ने कह दिया—'महालक्ष्मी श्रीकृष्ण के चरणों की दासी हैं, इन्द्र और कुबेर उनके किंकर हैं। सारे संसार की सम्पत्ति भी उन्हें लुभा नहीं सकती। समूचे ब्रह्माण्ड का ऐश्वर्य तो उनकी कृपा का एक विन्दु-मात्र है। उनपर किसी प्रलोभन का जादू चल नहीं सकता।'

दुर्य्योधन अलग ही बन्दिशें बाँध रहा था। वह श्रीकृष्ण को पकड़कर बन्दी बनाने की धुन में था। भीष्म इस षड्यन्त्र का पता पा गये। क्रोध से वे अधीर हो उठे। वे श्रीकृष्ण की बड़ी भक्ति करते थे। धृतराष्ट्र से दुर्य्योधन के सामने ही बोले—'श्रीकृष्ण के साथ यदि किसी तरह का अनुचित व्यवहार किया गया, तो कुरुवंश का निश्चय ही क्षय हो जायगा—इसमें तिल-भर भी सन्देह नहीं है। तुम अपने बेटे को मना करो। वह अब अति करने पर तुल गया है। श्रीकृष्ण हमलोगों के सबसे प्रिय और प्रतिष्ठित सम्बन्धी हैं। दुर्य्योधन को अभी उनके बल-पराक्रम का पता नहीं है। इच्छा करने मात्र से वे अपने शत्रुओं का संहार कर सकते हैं। उनका क्रोध प्रलय मचा देगा। वे अवतारी पुरुष हैं। बड़े-बड़े सिद्ध ऋषि-मुनि भी उनकी कृपा के भिखारी हैं। पृथ्वी का भार टालने के लिए ही वे इस लोक में आये हैं! उनके साथ जहाँ दुष्टता की गई कि बस कुशल नहीं है। उनकी दिव्य आत्मा में सत्य की ज्योति है, उनके सामने एक क्षण भी असत्य टिक नहीं सकता। दुर्य्योधन यदि कुरुवंश का समूल नाश ही कराना चाहता है तो करावे। तुम अपने पुत्र की इस बुरी करनी का फल शीघ्र पाओगे।'

भीष्म इतना कहकर चले गये। बेचारे धृतराष्ट्र ने दुर्य्योधन को लाख समझाया, पर वह न माना।

श्रीकृष्ण आये; पर धृतराष्ट्र की तैयारियों का उनपर कुछ प्रभाव न पड़ा। वे भीष्म के स्वागत से बड़े प्रसन्न हुए। वे तो भाव के भूखे थे; आते ही विदुर के घर चले गये। वहाँ कुन्ती को प्रणाम कर उन्हें बड़ा धैर्य्य दिया। फिर कौरवों की सभा में जाकर सन्धि का प्रस्ताव छेड़ा। शान्ति और प्रीति के साथ दुर्य्योधन को समझाया। किन्तु, पत्थर पर तीर मारने से कुछ लाभ न हुआ।

श्रीकृष्ण के पकड़ने की कानाफूसी चलने लगी। कर्ण और शकुनि इशारेबाजी करने लगे। श्रीकृष्ण ताड़ गये। झट अपना विराट रूप प्रगट किया। उस अद्भुत रूप को देखकर

कौरव काँप उठे। कर्ण और शकुनि तो हक्का-बक्का हो रहे। दुर्योधन के देवता कूच कर गये। भीष्म, द्रोण, विदुर आदि हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे! भीष्म की आँखें एकटक उस रूप को निहारने लगीं। भक्ति की गंगा उनके हृदय से उमड़ी और आँखों की राह बह चली।

कौरव-सभा से हताश होकर श्रीकृष्ण पाण्डवों के पास गये। उन्होंने पांडवों को युद्ध करने के लिए उत्साहित किया। उनके ढाढ़स बँधाने से युधिष्ठिर का साहस बढ़ गया। फिर क्या था, अर्जुन और भीम के प्रचंड भुजदंड तो पहले ही से खुजला रहे थे। भीम तो गदा लेकर पैंतरे करने लगे। जंगी जोश के मारे उनके सिर के बाल तक खड़े हो गये। उन्हें वीरता के रस से छका देखकर भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कुराने लगे।

इधर पांडवों को उभाड़कर श्रीकृष्ण द्वारका चले गये—उधर कौरवों की ओरसे सारे भारतवर्ष के क्षत्रिय वीरों और राजा-महाराजाओं के पास लड़ाई का निमंत्रण भेजा जाने लगा। इस काम में पांडव कुछ पिछड़ गये। उन्हें केवल श्रीकृष्ण का भरोसा था।

पांडवों ने भी अपने सगे-सम्बन्धियों को न्यौता भेजा। किन्तु, कौरवों के जाल में पहले ही अधिकांश वीर फँस चुके थे। हताश होकर युधिष्ठिर ने अर्जुन को श्रीकृष्ण के पास भेजा। यह बात दुर्योधन को भी मालूम हुई। वह भी दौड़ा हुआ द्वारका पहुँचा। श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कह दिया—'इस लड़ाई में मैं हथियार न उठाऊँगा। क्योंकि मेरी नजर में तुम दोनों ही एक-से हो। पर मैं अपनी सारी सेना दे सकता हूँ। तुम लोग मेरी सेना और मुझ निहत्थे के बीच चुनाव कर लो।'

अन्धराज के पुत्र ने सेना ही लेना स्वीकार किया। अर्जुन ने कहा—'मुझे अपने गांडीव का पूरा भरोसा है, केवल आपकी कृपा चाहिए। यदि आप मेरी आँखों के सामने मेरे रथ पर सदा विराजते रहें तो मैं अकेला ही संसार में प्रलय मचा सकता हूँ।'

भीष्म ने जब सुना कि श्रीकृष्ण तटस्थ रहेंगे और अपनी सेना कौरवों को देकर उन्होंने अर्जुन का सारथी होना स्वीकार कर लिया है तब उनके आनन्द का ओर छोर न रहा। वे भगवान् श्रीकृष्ण की नीति समझ गये। कौरवों से उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि जहाँ युधिष्ठिर हैं, वहीं धर्म है; जहाँ धर्म रहता है, वहीं श्रीकृष्ण रहते हैं; और जहाँ श्रीकृष्ण रहेंगे वहीं जय तथा यश प्राप्त होगा।'

किन्तु कौरव तो दीपक के पतंग हो रहे थे। उन्हें कुछ सूझता न था। दुर्योधन चाहता था कि कर्ण सेनापति बनाये जायँ। किन्तु धृतराष्ट्र और निमन्त्रित राजाओं की राय से भीष्म ही सेनापति बनाये गये।

इसपर कर्ण रुष्ट हो गये। भीष्म के साथ उनकी चखचख भी हो गई। भीष्म ने उन्हें खूब फटकारा। कहा—'मुझे सेनापति होने का लोभ नहीं है। तुम्हारी तरह मैं उस पद का भूखा नहीं हूँ। मैं तो पांडवों से लड़ना भी नहीं चाहता। किन्तु, अपने अन्धे भतीजे से लाचार हूँ। वही मुझे इस बुढ़ापे में भी तंग कर रहा है। पर, इतना पक्का समझ लो, कुरुवंशी क्षत्रिय होकर मैं तुम जैसे सारथी-पुत्र की अधीनता में न लड़ूँगा।

सिंह किसी के पीछे नहीं चलता, हमेशा आगे ही रहता है। तुम्हें दुर्योधन ने आसमान पर चढ़ा दिया है; नहीं तो मेरे साथ सरबर या होड़ करने की हिम्मत तुम नहीं रखते।'

भीष्म की ओज-भरी बातें सुनकर कर्ण का चेहरा तमतमा उठा। किन्तु सिर न उठा सके।

इस प्रकार कर्ण तो रह गये कोरे, और पितामह बनाये गये सेनापति। किन्तु कर्ण भी अपनी आन पर अड़ गये। जबतक पितामह सेनापति रहे, वे लड़ाई से किनारा कसे रहे।

भीष्म के सिर पर सेनापति की पगड़ी बाँधी गई। उन्होंने युद्ध की नियमावली बनाई; लड़ाई का कार्य्य-क्रम भी निश्चित किया। एक विशाल रथ पर चढ़कर वे कौरव-सेना के आगे-आगे चले।

जुझाऊ बाजे बजने लगे। हाथियों के चिग्घाड़, घण्टों के घनघोर शब्द, रथों की घरघराहट और घोड़ों की हिनहिनाहट से दशों दिशाएँ काँप उठीं। भीष्म, द्रोण, शल्य, कृप, अश्वत्थामा, दुर्योधन आदि महारथियों और वीरों के रथ, भिन्न-भिन्न चिह्नों की ध्वजाओं के साथ, कुरुक्षेत्र में जा डटे।

उस समय भीष्म की शोभा देखने ही योग्य थी। सबसे ऊँचे, सबसे सुन्दर और सबसे बड़े रथ पर वह विश्वविजयी वीर विराजमान था। उसके मुखड़े से अखण्ड ब्रह्मचर्य्य का दिव्य तेज फूट पड़ता था। नेत्रों में वीरता की प्रचण्ड ज्योति चमकती थी। सफेद बालोंवाले सिर पर रत्नों की लड़ियों से भूषित सोने का शिरस्त्राण सोभता था—मानों बर्फ से ढँके हुए शुभ्र हिमालय की चोटी पर सूर्य्यनारायण की रंग-बिरंगी किरणें जगमगा रही हों। कन्धे से काल-सर्प के समान कठोर धनुष लटक रहा था। हाथ में अनोखे चोखे तीर शोभा पा रहे थे—मानों दो जीभवाले उड़ाकू साँप शत्रुओं को काट खाने के लिए कमल के सम्पुट में बैठे हों। कमर से एक रत्नजटित तलवार लटक रही थी—मानों सत्यरूपी पर्वत के सहारे शान्तिफल फलनेवाली विजय-लता खड़ी हो। शरीर पर मँजा हुआ चमकीला कवच सोभता था—मानो वृद्धावस्था से क्षात्र तेज लिपट रहा हो अथवा मेघ के अंक में बिजली छिपी हो। सचमुच उस सुसज्जित रथ पर वह धुरन्धर वीर यों सोभता था, जैसे सुमेरुपर्वत पर प्रभावशाली सूर्य्य।

इधर कौरव-सेना कतार बाँधकर खड़ी थी, उधर पांडवसेना भी मैदान में आ डटी थी। पांडव-सेना से कौरव-सेना डेढ़-गुनी अधिक थी। कौरव-सेना में महारथी भी अधिक थे—सब-के-सब एक-से-एक बढ़े-चढ़े थे।

किन्तु पांडव-सेना के शृंगार केवल भीम और अर्जुन थे। प्रधान नायक थे द्रौपदी के प्यारे भाई धृष्टद्युम्न। उनके हाथ में पांडवों के भाग्य की बागडोर देखकर पितामह की आँखों से करुणा के झरने फूट निकले। इतने में युधिष्ठिर को अपनी ओर आते देख, रथ से उतरकर, बड़ी उत्सुकता के साथ, उहें हृदय से लगा लिया।

युधिष्ठिर बार-बार पितामह के चरणों में झुके। पितामह ने भी अपने परमप्रिय पौत्र को बड़े प्यार से अपनी उमड़ी हुई छाती से लगा लिया। वह अपूर्व दृश्य देखकर पांडव-सेना मुग्ध और कौरव-सेना चकित हो गई।

भीष्म बोले—'प्यारे धर्मराज ! मुझसे जो कुछ आशा रखते हो, सो सब माँग लो; मैं आज तुम्हें सब-कुछ दे सकता हूँ। मेरी नजर में तुम दुर्य्योधन एक-से हो। पर, मैं बेचारे अन्धे धृतराष्ट्र का बड़ा कृतज्ञ हूँ। उसे किसी तरह छोड़ नहीं सकता। पहले ही प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। मुझे आशा नहीं थी कि उसके दुर्य्योधन-ऐसा कुलाङ्गार कुपुत्र उत्पन्न होगा। मैं कौरवों की ओर से लड़ता हूँ तो क्या, हृदय से तुम्हारी विजय चाहता हूँ। मैं तुम्हें युद्ध के विषय में अच्छी सलाह देता रहूँगा। विश्वास करो, कौरव इस युद्ध में अवश्य ही परास्त होंगे। तुम और कृष्ण साक्षात् धर्म के अवतार हो। तुम दोनों जहाँ रहोगे, वहीं विजय होगी। कौरवों के पास शक्ति और सम्पत्ति है तो क्या, उन्हें विजय-लक्ष्मी नहीं मिल सकती; क्योंकि वह तो अत्याचारी से कोसों दूर रहती हैं। तुम निश्चिन्त रहो। अन्तःकरण से आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारी ही जीत होगी।'

युधिष्ठिर ने विनयपूर्वक कहा—'दादाजी ! मैं धर्म की रक्षा के लिए प्राण तक दे सकता हूँ। मैं आपसे प्रतिज्ञा तोड़ने के लिए नहीं कह सकता। आपका व्रत-भंग होने से मेरे कुल की मान मर्य्यादा घट जायगी। आप ही कुरुवंश के यशस्तम्भ हैं। मैं तो केवल आपका आशीर्वाद ही चाहता था। आपके आशीर्वाद को मैं आकाशवाणी की तरह सत्य समझता हूँ। उसमें मेरा इतना दृढ़ विश्वास है कि निश्चय ही मेरा मनोरथ पूर्ण होगा। किन्तु, संकोच सिर्फ एक बात का है। आप हमलोगों के परमपूज्य पितामह हैं, आपने अपनी गोद में हमलोगों के पिता के पिता को भी खेलाया है, हमलोग भी आप ही की गोद में पले हैं; फिर भला किस हृदय से हमलोग आप पर हथियार चलावेंगे; हम-लोगों के जिस शरीर को चूम-चाटकर आपने अपना कलेजा ठंडा किया है, उसपर आप भी किस प्रकार बाणों का प्रहार कीजिएगा।'

भीष्म हँसकर बोले—'प्यारे धर्मराज ! तुम बड़े भोले-भाले हो। तुम मनुष्य नहीं, देवता हो। अब अधिक स्नेह के जाल में मत बाँधो। छाती उमड़ी आती है। बीती बातों की याद आते ही कलेजा टूक-टूक हो जाता है। किन्तु, इस समय उनकी चर्चा करना क्षात्र-धर्म के विरुद्ध है। क्षत्रिय को तो युद्ध में बाप-बेटा, भाई-भतीजा, चाहे जो कोई हो, सबसे बिना संकोच लड़ना चाहिए। क्षत्रिय के लिए युद्ध से बढ़कर मोक्ष का दूसरा कोई उपाय नहीं। युद्ध में मरने से ही क्षत्रिय मुक्ति पाता है। जाओ, श्रीकृष्ण से ये बातें सीखो। इस समय मुझे इतना अवकाश कहाँ है कि मैं तुम्हें क्षत्रियता का मुख्य धर्म समझाऊँ। तो भी इतना याद रखना, हमलोगों के लिए युद्ध ही स्वर्ग का द्वार है।'

फिर युधिष्ठिर ने बड़ी ग्लानि और दीनता से पूछा—'दादाजी ! आपको जीतनेवाला वीर तो आज तक संसार में पैदा ही नहीं हुआ, फिर हमलोग आपके रहते किस प्रकार विजयी हो सकेंगे ?'

पितामह फिर मुस्कुराये। हसते-ही-हँसते बोले—'धर्मराज ! तुम सचमुच बड़े ही सरल हो। जब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही तुम्हारे सहायक हैं, तब मैं तो कोई चीज ही नहीं हूँ; यदि देवराज इन्द्र और यमराज भी तुम्हारे शत्रु हों तो भी तुम श्रीकृष्ण की कृपा से उनका नाश कर सकते हो। किन्तु, मैं हृदय से तुम्हारी विजय चाहता हूँ; इसलिए

अपने मारे जाने का उपाय तुम्हें बता देता हूँ। मैं स्त्री, नपुंसक या कायर पर कभी वार नहीं करता। तुम्हारी सेना में द्रौपदी का भाई शिखण्डी * पूर्वजन्म का स्त्री है। यदि वह मेरे सामने आ जायगा, तो मैं हथियार रख दूँगा। उस समय अर्जुन मेरा वध कर सकता है। नहीं तो हाथ में हथियार रहते मेरा नाश करना बड़ी टेढ़ी खीर है।'

पितामह की मृत्यु का भेद जानकर युधिष्ठिर उदास मन से अपनी सेना में लौट गये। उनके चले जाने पर पितामह के पास दुर्योधन पहुँचा। उसको भीष्म और युधिष्ठिर की बातचीत पर संदेह हुआ।

दुर्योधन का कौतूहल दूर करने के लिए पितामह ने सब बातें कह दीं। पितामह की बातें सुनकर वह बोला—'मुझे तो आप ही का भरोसा है; पर जब आप ही पांडवों की विजय चाहते हैं, तब तो मेरी जीत हो चुकी।'

दुर्योधन को कातर होते देखकर पितामह बोले—'बेटा! हिम्मत न हारो। भरोसा भगवान् का करो। मैं तो मनुष्य हूँ। मनुष्य को मनुष्य का भरोसा न करना चाहिए। किन्तु, तुम्हारा अत्याचार देखकर मैं तुमको अधिक उत्साह देना नहीं चाहता। संसार में ऐसा कौन वीर है, जो लड़ाई में मुझसे आँखें मिला सके। अर्जुन और कृष्ण के सिवा पांडव-सेना में मेरे सामने आनेवाला एक भी वीर नहीं है। तुम निर्भय रहो। जबतक मैं धनुष धारण किये रहूँगा, यम और इन्द्र भी मेरा कुछ नहीं कर सकते। मैं दस दिन तक लड़ूँगा, पर प्रतिदिन दस हजार रथियों को मारूँगा।'

दुर्योधन फूलकर कुप्पा हो गया। अपनी तथा शत्रुओं की सेना के महारथियों और अधिरथियों का परिचय पितामह से पूछने लगा। पितामह ने सभी वीरों का भली-भाँति

*** काशीराज की बड़ी लड़की 'अम्बा' को स्वयंवर-सभा से हर लाने के बाद उसी की इच्छा के अनुसार, भीष्म ने आदरपूर्वक शाल्वराज के पास भेज दिया; क्योंकि वह शाल्वराज से प्रेम करती थी। पर, शाल्वराज ने भी उसे अङ्गीकार नहीं किया। वह सब तरह से हताश होकर जंगल में चली गई। वहाँ एक ऋषि के आश्रम में अपने मातामह होत्रवाहन से उसकी भेंट हुई। राजर्षि होत्रवाहन ने परशुरामजी से उसकी सहायता करने के लिए प्रार्थना की। परशुरामजी ने भीष्म को बुलाकर कहा कि इस कन्या को तुम्हीं शरण दो। भीष्म बोले कि यह कन्या पहले ही शाल्वराज को बर चुकी है। अब मैं किसी प्रकार इनको शरण नहीं दे सकता। मैं अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ और मेरे भाई भी इसको ग्रहण करने में असमर्थ हैं। परशुरामजी यह सुनकर बड़े क्रुद्ध हुए। बोले—'मेरी बात मानो या युद्ध करो।' भीष्म ने उन्हीं के चरणों की धूलि शिरोधार्य्य करके विजयी होने का आशीर्वाद पाया और युद्ध करना आरम्भ किया। गुरु-शिष्य की भयंकर लड़ाई सप्ताहों तक जारी रही। अन्त में गुरुजी हार गये! तब निराश होकर अम्बा ने भीष्म का संहार करने की इच्छा से बहुत दिनों तक कठिन तपस्या की। फिर गंगातट पर चिता बनाकर जल मरी। उसीने द्रुपदराज के पुत्र-रूप में जन्म ग्रहण किया। उसी पुत्र का नाम 'शिखण्डी' हुआ, जिसे अपने रथ पर आगे बिठाकर अर्जुन ने पितामह का वध किया।**

परिचय दिया—रथी, अधिरथी और महारथी के भेद भी बताये। भारतवर्ष के—उस समय के सभी वीरों को भीष्म जानते थे।

इसके बाद उन्होंने दोनों दल के मुखिया वीरों को अपने पास बुलाया। फिर सबके एकत्र हो जाने पर बोले—"वीरो! महल के अन्दर तोशक-तकिया पर मरना क्षत्रिय के लिए महापाप है। रक्त की गङ्गा में स्नान करनेवाला क्षत्रिय ही मोक्ष पाता है। लड़ाई ही क्षत्रिय के लिए मनोरंजन की सामग्री है। जो क्षत्रिय युद्ध से डरता है, वह नरकगामी होता है। भाइयो, दिल खोलकर लड़ो! निर्भय होकर भिड़ जाओ, और दम-में-दम रहते, पीछे पैर न हटाओ। यही अवसर है क्षत्रियत्व दिखाने का। यही समय है वीरता सफल करने का। बड़े सौभाग्य से क्षत्रिय को ऐसा अवसर मिलता है, फिर कब ऐसा सुयोग मिलेगा, कौन जानता है? सारे देश के क्षत्रिय इस लड़ाई के मैदान में आये हैं; इसलिए सब भाइयों का रक्त एक में मिल जाने से यह रणभूमि तीर्थ बन जायगी। वीरों के रक्त से ही पृथ्वी की प्यास ठण्डी होती है! जो पृथ्वी को रक्त से स्नान कराता है, वही इसका भोग करता है। जबतक पृथ्वी को अपने शत्रु के रक्त से न सींचोगे, तबतक शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। इसलिए खूब मन लगाकर लड़ो। संसार में अपना नाम अमर कर जाओ।

"हाँ, मैंने जो युद्ध की नियमावली बनाई है, उसका पालन सबको करना पड़ेगा। युद्ध का जो कार्य्यक्रम मैंने बनाया है, उसी के अनुसार लड़ाई करने से सबको हर तरह की सुविधा होगी। प्रातःकाल सब लोग नित्य-क्रिया, सन्ध्या-वन्दन, पूजन-पाठ, जप-ध्यान और दान-पुण्य तथा भोजनादि करके लड़ने-भिड़ने में लग जायँ। फिर दोपहर को सन्ध्या-वन्दन कर लेने के लिए थोड़ी देर, लड़ाई बन्द कर दी जाय। उसके बाद शुरू होने पर सूर्य्यास्त से पहले ही फिर समाप्त कर दी जाय, ताकि सबको सन्ध्या-गायत्री करने का सुभीता रहे। रात को सब लोग विश्राम करें, प्रेम-पूर्वक आपस में मिल-जुलकर सलाह-बात किया करें। सब लोग जोड़ बाँधकर लड़ें। जो हथियारों को छोड़कर सिर्फ कड़ी-कड़ी बातों से ही युद्ध करे, उसके साथ बात ही की लड़ाई की जाय, उसपर कोई हथियार न उठावे। जो पीठ दिखाकर भाग चलें, उन्हें कोई पीछे से न खदेड़े या ललकारे। महारथी महारथी के साथ, घुड़सवार घुड़सवार के साथ, हाथीवाला हाथीवाले के साथ और पैदल पैदल के साथ लड़े। जो डर जाय, जिसके हाथ में कोई हथियार न रहे, और जो लड़ने के लिए पूरे तौर से तैयार न हो, उसपर कोई वार न करे। जो जिस हथियार से लड़ना चाहे, उसी हथियार से उससे लड़ा जाय। शरणागत को हर हालत में आश्रय दिया जाय। सारथी, घोड़े, हथियार ढोनेवाले छकड़ों में जुते हुए पशु, बाजा बजानेवाले और विजय की सूचना के शंख फूँकनेवाले आदमी कदापि न मारे जायँ।

"बस, इसी प्रकार जो धर्मयुद्ध करेगा, वही क्षत्रिय कहलाने का अधिकारी होगा। नहीं तो वह क्षत्रियकुल का कलंक समझा जायगा; क्योंकि जो क्षत्रिय लड़ाई में अधर्म से काम लेता है, वह अपने साथ-साथ पूर्वजों का भी परलोक बिगाड़ता है।"

भीष्म का जोशीला भाषण सुनकर सब वीरों का शरीर रोमांचित हो उठा। सब

लोग "धन्य पितामह ! धन्य पितामह" कहते हुए, नियमावली और कार्यक्रम स्वीकार करके, युद्ध करने में लग गये। भीष्म ने भी शंख फूँककर अपना रथ आगे बढ़ाया।

रक्त की धारा और शर-शय्या

भीष्म ने आठ दिनतक ऐसा घोर युद्ध किया कि युधिष्ठिर विजय की आशा छोड़ बैठे। श्रीकृष्ण से अत्यन्त दीनभाव से बोले—"अबतक मुझे अर्जुन पर बड़ा भरोसा था; पर जान पड़ता है कि पितामह के सामने ठहरनेवाला कोई वीर मेरी सेना में नहीं है ! अपने पक्ष का संहार होते देखकर मेरी आशाओं पर पानी फिर गया। अब युद्ध छोड़कर मैं जंगल में जाना ही अच्छा समझता हूँ।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हे बहुत समझाया। वचन दिया कि कल यदि अर्जुन उनका वध न करेगा, तो मैं स्वयं ही उनका और कौरव-दल का ध्वंस कर डालूँगा; आप क्यों घबराते हैं ? जिसके रक्त में यह पृथ्वी डूब जायगी, वही इसे भोगेगा—जिसकी ओर से अधिक बलिदान होगा, उसी के पक्ष की विजय होगी। नवें दिन फिर भीष्म पितामह ने प्रलय मचाना शुरू किया। फलतः पांडव- सेना तितर-बितर हो गई। जैसे उन्मत्त हाथियों के दल को सिंह मथ डालता है, वैसे ही भीष्म ने पांडव-सेना मथ डाली—मैदान साफ कर दिया।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—"अब कबतक भीष्म पितामह से संकोच करते रहोगे ? ऐसी दिल की कमजोरी तुम-जैसे बाँके-लड़ाके क्षत्रिय को नहीं शोभती। अब किस दिन अपनी अलौकिक शक्ति का परिचय दोगे ?"

अर्जुन—"भगवन् ! मैं कितना भी अपने दिल को कड़ा करता हूँ; परन्तु पितामह पर बाण-प्रहार करने का साहस नहीं होता। यही कारण है कि जब-जब उनसे मुठभेड़ होती है, मैं संकोच में पड़ जाता हूँ। उन्हें जब देखता हूँ, हृदय में स्वभावतः भक्ति उमड़ आती है, मेरा क्रोध उसीकी अगाध धारा में डूब जाता है। विना उत्तेजित क्रोध के पितामह से लड़ना असम्भव है। किन्तु अब मैं अपनी सेना का ध्वंस नहीं देख सकता। मेरा रथ पितामह के रथ से भिड़ाइए। मैं अब उनसे लड़ने में कोताही न करूँगा। देखते रहिए, क्षण-भर में पृथ्वी और आकाश को बाणों से पाट देता हूँ।"

अर्जुन की बातें सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने रथ आगे बढ़ाया। अर्जुन ने कान तक धनुष तानकर बाण बरसाना शुरू किया। उनके मण्डलाकार धनुष से प्रलयकाल की वर्षा की तरह तीर बरसने लगे। कौरव-दल में खलबली मच गई। मन्दराचल ने जैसे समुद्र को मथ डाला था, अर्जुन ने वैसे ही कौरव-दल का मन्थन कर डाला—पृथ्वी से आकाश तक बाणों का जाल बिछा दिया।

अर्जुन का पराक्रम देखकर पितामह मुस्कुराये। 'धन्य वत्स ! धन्य वत्स !!' कहकर लड़ने लगे। फिर तो अस्त्र-शस्त्रों की आँधी आ गई। पितामह के बाण बूँदियों की तरह अर्जुन पर गिरने लगे। दादा और पोते का युद्ध देखकर दोनों ओर के सैनिक मुग्ध हो गये। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी मन-ही-मन भीष्म के पराक्रम की प्रशंसा की।

अर्जुन इतनी तत्परता से लड़े कि पितामह को ललाट का पसीना पोंछने का भी अवकाश न मिला। जैसे धार्मिक पुरुषों के पाप किसी के देखने में नहीं आते, वैसे ही दादा और पोते की वीरता में भी किसी को कोई त्रुटि नजर नहीं आई।

अर्जुन ने जोर से बाण मारा, तो—जैसे समुद्र का तूफान जहाज को रास्ते से दूर ले जाकर फेंक देता है, वैसे ही भीष्म का रथ बहुत दूर पीछे हट गया। किन्तु क्रोध से भरकर जब भीष्म ने बाण चलाया, तब वेगवती आँधी से टली हुई शिला की तरह अर्जुन का रथ भी तीन पग पीछे हट गया।

भगवान् श्रीकृष्ण धन्य-धन्य कह उठे। अर्जुन के बाणों ने कई बार भीष्म के रथ को दूर फेंक दिया, पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन की कभी प्रशंसा नहीं की; किन्तु भीष्म के बाणों ने जब-जब अर्जुन के रथ को तीन पग पीछे हटाया, तब-तब भगवान् श्रीकृष्ण 'साधु-साधु' कह उठे! अर्जुन को यह अच्छा न लगा झुँझलाकर बोले—"आप तो व्यर्थ ही उलटी प्रशंसा कर रहे हैं। यह कहाँ का न्याय है।"

श्रीकृष्ण ने मुस्कुराते हुए कहा—"अर्जुन! तुम अज्ञानी हो। तुम मेरी वाहवाही का मतलब ही नहीं समझते। मैं करोड़ों ब्रह्मांड का भार लेकर इस रथ पर बैठा हुआ हूँ। तुम्हारी ध्वजा पर बजरंगबली महावीर हनुमान विराजमान हैं, तुम्हारा अक्षय धनुष और अक्षय रथ भी साधारण भारी नहीं हैं। इतना सब होने पर भी पितामह कमाल करते हैं। मैं बिना प्रयोजन शाबाशी नहीं देता।"

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा पितामह के बल-विक्रम की बड़ाई सुनकर फिर अर्जुन के हृदय में पितामह के प्रति भक्ति उत्पन्न हुई। वीरता की उपासना में अर्जुन पहुँचे हुए भट थे। उन्हें प्रणाम करते देख पितामह ने गरजकर आशीर्वाद दिया—"हे अर्जुन! तुम्हारी जय हो। आजतक लड़कर मुझे किसी ने सन्तुष्ट नहीं किया था; पर आज तुमसे लड़कर मेरा मन भर गया। धन्य है तुम्हारी वीरता! धन्य है तुम्हारा गाण्डीव!! तुम जैसा धनुर्धर आजतक मुझे कहीं नहीं मिला। तुम कुरु-वंश के अभिमान हो, क्षत्रिय-समाज के महान गौरव हो। अब भूमण्डल का कोई वीर तुम्हें जीत न सकेगा। विजय-लक्ष्मी सदा तुम्हारे मुकुट की मणि बनी रहेगी—तुम्हारे सिर पर सदा उसकी छाया घनी बनी रहेगी।"

लड़ाई बन्द होने पर, शाम को जब सब लोग अपने-अपने शिविर (कैम्प) में चले गये, पितामह के पास दुर्योधन पहुँचा। बोला—'दादाजी! आपको आज आठ दिन लड़ते हो गये; पर आजतक एक भी पाण्डव मारे नहीं गये। आपने कहा था कि केवल दस दिन ही लड़ूँगा, और प्रतिदिन दस हजार रथियों का वध करके पाण्डवों को मार गिराऊँगा। किन्तु अभी पाण्डव ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं। अब आपको केवल दो दिन ही लड़ना बाकी है। किस प्रकार मेरा झंडा फहरायगा? अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आप प्रति-दिन दस हजार रथियों को यमपुर भेजते हैं; पर सिर्फ सेना का निधन होने से ही मेरी विजय-पताका नहीं उड़ेगी। जबतक मेरे हृदय के काँटे पाण्डव नहीं मारे जायँगे, तबतक मेरी अभिलाषा कभी पूरी नहीं हो सकती।"

दुर्योधन की बात सुनकर पितामह एँड़ी से चोटी तक जल उटे। अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोले—'लो, आज ही महाकालशर निकालकर रख देता हूँ। कल इसी की महिमा से पाण्डवों को सदा के लिए रणभूमि में सुला दूँगा। यदि श्रीकृष्ण कोई चाल चलेंगे, तो उनकी माया अपार है, मैं कुछ कह नहीं सकता; पर यह निश्चय हैं कि अब पाण्डवों का वध करके ही शान्ति पाऊँगा।"

पितामह की पतिज्ञा सुनकर दुर्योधन की सूखती हुई खेती हरी हो गई। वह प्रसन्न होकर अपने शिविर में चला गया।

किन्तु भीष्म के मन में बड़ी ग्लानि हुई। बड़े खेद के साथ सोचने लगे—'मैंने क्रोध के आवेश में यह क्या कर डाला? किस हृदय से पाण्डवों का वध करूँगा? क्या अपने कलेजे में आप ही कटार भोंकूँगा? क्या अपनी रोपी हुई कोमल गाँछी पर अपने ही हाथों से कुठार मारूँगा? क्या अपने वंशवृक्ष की जड़ आप ही उखाड़ डालूँगा? हे परमात्मन्! तुमने मुझसे यह कैसी प्रतिज्ञा करा डाली? भगवन्! पाण्डवों की हत्या क्या मेरे हाथ से? प्रभो! ऐसा निष्ठुर व्यापार करने के लिए मेरे पास हृदय कहाँ है! नाथ, तुम्हारी इच्छा बड़ी जबरदस्त है; अपने इस दास से जो चाहो, करा लो।"

गहरी चिन्ता में डूबे हुए पितामह अपने शिविर में लेटे हुए थे। उद्वेग के कारण नींद नहीं आई।

उधर प्रसिद्ध ज्योतिषी सहदेव ने युधिष्ठिर से कहा—"महाराज! पितामह ने बड़ी विकट प्रतिज्ञा कर डाली। वे कल हमलोगों को मार डालने के लिए पाँच महाकाल शर निकाल कर रख चुके।"

सहदेव की गणना का फल सुनकर युधिष्ठिर काँप उठे। झट श्रीकृष्ण की शरण ली! एकमात्र श्रीकृष्ण का ही अवलम्ब भी था। भला श्रीकृष्ण के आश्रित को भय कहाँ?

धर्मराज की बात सुनते ही भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कुराये। कठिन-से-कठिन संकट आ पड़ता था, तब भी श्रीकृष्ण केवल गंभीर हँसी ही हँसा करते थे। आनन्दकन्द की मुस्कान में ऐसी माधुरी थी कि उनके मुखारविन्द को विकसित देखकर ही पाण्डव अपनी सारी विपत्ति भूल जाते थे! वे हँसते-हँसते बोले—"डरने का काम नहीं है। मेरे जीते-जी पाण्डव अमर रहेंगे। कल मैं महाकाल-शर लील कर पचा जाऊँगा। आप निश्चिन्त रहें।"

युधिष्ठिर को आश्वासन देकर भगवान झट अर्जुन के पास गये। बोले—"अर्जुन! भीष्म की प्रतिज्ञा का हाल सुनकर तुम्हारी सेना में आतंक फैल रहा है। फौरन दुर्योधन के पास जाकर उसका मुकुट माँग लाओ। उसे पहनकर जल्दी पितामह के पास चलो। तुम्हारा रूप दुःशासन से मिलता-जुलता है। इस अँधेरी रात में वे तुम्हें पहचान न सकेंगे। आज की लड़ाई में तुमने उन्हें खूब थकाया है। थके-माँदे वृद्ध पितामह नींद में अलसाये पड़े होंगे। वे कदापि तुम्हें परखने की चेष्टा न करेंगे; क्योंकि वे बड़े सरल हैं, और इस समय अपनी प्रतिज्ञा की कठोरता पर उन्हें पछतावा भी हो रहा है। उनसे यह कहकर पाँचों महाकाल-शर माँग लाओ कि मैं अपने ही हाथों अपने शत्रुओं का वध करना चाहता

हूँ। बस, सारा काम बन जायगा। काम्यक वन में तुमने गन्धर्व के हाथ से दुर्योधन की जान बचाई थी। उसने तुम्हें मुँहमाँगी वस्तु दान देने की प्रतिज्ञा की थी। आज उससे जाकर वही थाती माँगो। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वह अवश्य ही तुम्हें मनचाही चीज देगा। अच्छा अवसर हाथ आया है। जाकर माँग ही लो, नहीं तो फिर वह दुष्ट अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए जीता न रहेगा। उसके सिर पर हर घड़ी काल नाच रहा है।"

श्रीकृष्ण के उपदेशानुसार अर्जुन ने सारे कार्य्य सिद्ध किये। पितामह निश्चिन्त हो गये। पाण्डव भी सुखपूर्वक सो रहे।

किन्तु जब पहरेवालों ने जाकर भीष्म से कहा कि शिविर से निकलकर महाराज दुर्योधन श्रीकृष्ण के साथ बातें करते पाण्डवों के शिविर की ओर गये हैं, तब पितामह को असली रहस्य का पता लग गया। वे भगवान् श्रीकृष्ण की चाल ताड़ गये। उन्होंने झट प्रतिज्ञा की—"हे वासुदेव! यदि तुमने छल करके आज मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग ही करा दी, तो क्या हुआ, कल मैं इसकी कसर पूरा कर लूँगा। यदि मैं सचमुच गाङ्गेय हूँ, तो कल निश्चय ही तुम्हारी प्रतिज्ञा भंग कर दूँगा। इस छल का बदला चुका कर कल तुम्हें अच्छी तरह मजा चखाऊँगा।"

भीष्म की इस प्रतिज्ञा का हाल भी युधिष्ठिर को मालूम हो गया। वे भयभीत हो गये। सोचा—"हमलोगों के लिए यदि श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा भङ्ग हो गई, तो फिर हमलोगों का जीना ही व्यर्थ है।"

उन्हें चिन्तित देखकर भगवान ने हँसते हुए कहा—"आप व्यर्थ चिन्ता करते हैं। मैं भक्त की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए अपनी प्रतिज्ञा तोड़ देने को सहर्ष तैयार हूँ। मुझे अपनी प्रतिज्ञा से बढ़कर भीष्म की प्रतिज्ञा प्यारी है। निर्भय रहिए। कल मैं अर्जुन के हाथ से पितामह का अवश्य ही वध करा दूँगा। इसे पत्थर की लकीर समझिए।

दसवें दिन फिर जोर-शोर से लड़ाई शुरू हुई। भगवान ने अर्जुन से कह दिया कि तुम यदि आज भी पितामह का वध न करोगे, तो मैं स्वयं शस्त्र-ग्रहण करूँगा।

भगवान श्रीकृष्ण की बात सुनते ही अर्जुन का हृदय भर आया। सोचने लगे—"किस प्रकार आज पितामह का प्राणनाश करूँगा? हाय! क्षत्रिय का धर्म बड़ा भयङ्कर है! अपने धर्म का ज्ञान रखते हुए भी मेरा हृदय पितामह का वध करने के लिए तैयार नहीं होता। तो क्या मेरे जीवित रहते ही श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा भङ्ग होगी? कदापि नहीं।"

इस प्रकार की दुविधाओं और चिन्ताओं ने अर्जुन का हृदय मथ डाला। उनके हृदय में करुणा-किरीटिनी वीरता-देवी की उज्ज्वल मूर्ति का दिव्य प्रकाश छा गया। तब तक तो उधर भीष्म ने पाण्डव-सेना में त्राहि-त्राहि मचा दी।

जब भगवान ने अर्जुन का रथ भीष्म के सामने ले जाकर भिड़ाया, तब भीष्म ललकार कर अर्जुन पर टूट पड़े। उन्होंने बाणों के जाल से अर्जुन का रथ ढक दिया। श्रीकृष्ण को भी मारे बाणों के घायल कर डाला। भगवान के साँवले-सलोने शरीर से रक्त की धारा बह चली। उनकी शोभा ही निराली हो गई।

किन्तु भीष्म को इस तरह प्रलय मचाते देख श्रीकृष्ण चुप न रह सके, क्रुद्ध हो उठे। सोचा, अर्जुन की क्रोधाग्नि भड़काये विना कुछ न हो सकेगा। बस, झट बागडोर छोड़ और सुदर्शनचक्र ले, भीष्म की ओर, दौड़ पड़े।

उस समय उनका अत्यन्त सुन्दर रूप महाकाल की तरह भयङ्कर देख पड़ा। जिन सुन्दर ओठों पर सदा मीठी मुस्कान की शुभ्र रेखा खिंची रहती थी, उन्हीं ओठों को भेदकर क्रोध की फुफकार निकलने लगी। जिन सुन्दर आँखों में प्रेम का जादू बसता था, करुणा की छटा बिराजती थी, उन्हीं आँखों से शंकर के तीसरे नेत्र की तरह ज्वाला की लपट निकल पड़ी। जो रूप संसार की रक्षा और जीवों का पालन करनेवाला था, वह प्रलय मचाने के लिए एकाएक अतीव भयंकर हो उठा।

कौरव-सेना त्रस्त होकर भाग चली। भीष्म ने देखा कि भक्तवत्सल भगवान दौड़े चले आ रहे हैं—पीताम्बर का दुपट्टा फहराता आता है, कुण्डल हिलते आते हैं, मोतीमाला झूलती आती है। फिर क्या था, अस्त्र-शस्त्र छोड़कर रथ से उतर पड़े। घुटने टेककर, हाथ जोड़, भक्तिपूर्वक बोले—"आओ, हे भक्तप्रणपालक केशव, आओ! मेरी लाज बचाओ, मेरा भव-बन्धन छुड़ाओ; अपने ही हाथों मुझे मार गिराओ, मेरा इहलोक-परलोक बनाओ, मुझे अपना जान अपनाओ, मेरा पाप-ताप मिटाओ, मेरे जीवन की नैया किनारे लगाओ, आओ, आओ, नाथ! मेरा अहो भाग्य कि तुम स्वयं मुझे मारने आये। भगवन्! मैं धन्य हो गया! प्रभो! आज मैं कृतार्थ हो गया! हे नारायण! जगदाधार! हे श्रीकृष्ण! हे भक्त-कल्पद्रुम! झटपट मुझे मारकर अमर करो।"

दौड़ते हुए ही भगवान श्रीकृष्ण ने क्रोध-भरे शब्दों में कहा—"हे भीष्म! तुम्हीं इस भयानक रक्त-पात के मूल कारण हो! तुम धर्म के मर्मज्ञ होकर भी अन्यायियों को रोक न सके। आज तुम्हें विना मारे न छोड़ूँगा। लगे हाथों आज दुर्योधन का भी ध्वंस कर डालूँगा।"

भगवान की बात सुनकर भीष्म विनयपूर्वक बोले—"हे श्रीकृष्ण, मेरा कुछ दोष नहीं। भावी प्रबल है। मैंने अन्धराज को बहुत समझाया है, पर भाग्य के फेर से उस अन्धे के कान भी बहरे हो गये। भगवन्! यह तुम्हारी ही लीला है।"

इधर श्रीकृष्ण को दौड़े जाते देखकर अर्जुन झट अपने रथ से उतरे और दौड़कर उन्हें अंक-भर पकड़ लिया। किन्तु वह प्रलय की आँधी नहीं रुकी। अर्जुन ने कितना भी जोर मारा, पर उनका वेग कम न हुआ। वे ज्वारभाटे की तरह आगे बढ़ते ही चले गये। अर्जुन ने बहुत घबराकर उनके पैरों को जोर से पकड़ लिया।

भगवान झुँझलाकर—बोले—"अर्जुन! मत रोको, मैं कहता हूँ—मत रोको, छोड़ो, हटो, मुझे जाने दो, अभी समस्त कौरवदल का विध्वंस किये देता हूँ। मेरे सामने से दूर चले जाओ। मैं तुम जैसा अन्याय सहनेवाला क्षत्रिय नहीं हूँ। मुझे क्रोध की ज्वाला में क्यों जलाते हो? पैर छोड़ दो, हट जाओ, क्षात्रधर्म जाननेवाले वीर का हृदय तुम्हारे हृदय जैसा कोमल नहीं होता। तुम्हारी करतूत मैं देख चुका। तुम वीरता को लजाते हो। तुम्हारी ऐसी करामात से अत्याचारी पर विजय नहीं होगी।"

भगवान ने लाख कहा, पर अर्जुन तिल-भर न टले। वे पैर पटकते ही रह गये, वीर अर्जुन टस-से-मस न हुए। भगवान शान्त होकर खड़े हो गये। अर्जुन विनयपूर्वक बोले—"हे भगवन्, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। अब मुझे अधिक लज्जित न कीजिए। आपके लिए यह कौरव-दल तो क्या, एक क्षण में विश्व-ब्रह्माण्ड का नाश कर देना भी सहज है। आपकी इच्छामात्र से ही संसार का जन्म, पालन और प्रलय होता है। बस, अब इसी कड़ी कनैठी से मुझे होश हो गया। चलकर रथ पर बैठिए। देखते रहिए, मैं अभी पितामह को समर-भूमि में सुला देता हूँ। यदि आप आज्ञा दें, तो केवल एक ही अस्त्र से शत्रुओं का सर्वनाश कर डालूँ। अपना क्रोध आप शान्त कीजिए।"

भगवान श्रीकृष्ण लौटकर रथ पर बैठे। फिर तो क्रोधान्ध अर्जुन कौरव-दल पर आफत ढाने लगे। भीष्म को उन्होंने अपने युद्ध-कौशल से मुग्ध कर दिया।

जी-जान से अर्जुन का लड़ना देखकर भी भगवान ने अनुभव किया कि अपनी सारी शक्ति लगाकर भी अर्जुन कदापि भीष्म का वध न कर सकेंगे। इसलिए उन्होंने द्रौपदी के भाई शिखंडी को बुलाकर रथ पर सामने बिठा लिया।

शिखंडी को देखते ही पितामह ने धनुष-बाण रख दिये। जैसे पहाड़ पर चुटीली बूँदियाँ आघात पहुँचाती हैं, वैसे ही शिखंडी उनपर चोखे-चोखे तीर बरसाने लगा। किन्तु अर्जुन अपना अस्त्र-शस्त्र छोड़कर बैठ गये। बोले—"अस्त्र-शस्त्र-हीन पितामह पर मैं कदापि बाण न चलाऊँगा।"

भगवान ने कहा—"हे अर्जुन! आचार्य्य बृहस्पति ने कहा है कि अपना परम प्रिय या पूज्य व्यक्ति भी यदि शत्रु-रूप में आगे खड़ा हो, तो किसी तरह उसको जरूर मार डालना चाहिए। यदि तुम बार-बार प्रतिज्ञा करके भी अब भीष्म का संहार न करोगे, तो तुम-जैसा गया-बीता, कायर और मूर्ख दूसरा कौन होगा? भीष्म तो अपनी इच्छा से मरेंगे। उन्हें घायल कर देना ही काफी है। यही अच्छा मौका है। फिर जब वे हाथ में धनुष उठा लेंगे तब उन्हें यमराज भी नहीं जीत सकता। क्यों लड़कपन करते हो? जैसे मेरे शरीर को उन्होंने बाणों से छेदकर चलनी कर डाला है, वैसे ही उनके शरीर को भी चोखे-चोखे तीरों से झाँझर कर डालो। नहीं तो, भीष्म की जिन्दगी में तुम-जैसे सैकड़ों अर्जुन के भरोसे भी युधिष्ठिर न जीत सकेंगे।"

भगवान की बातों ने तीर की तरह अर्जुन पर असर किया। लगे छूटकर पितामह पर चोट करने। शिखण्डी और अर्जुन के बाण पितामह के बूढ़े शरीर के रोम-रोम में चुभ गये। वे पीड़ा से व्याकुल हो उठे। उनका शरीर काँप कर गिर पड़ा।

पितामह के गिरते ही कुरुक्षेत्र की रणभूमि में, ओर-से-छोर तक, हाहाकार मच गया। कौरव मूर्छित हो गये। पांडव-दल में सन्नाटा छा गया। पाँचो भाई पांडव पितामह के पास दौड़े हुए पहुँचे। पितामह का कष्ट देखकर पांडव फूट-फूटकर रोने लगे। युधिष्ठिर और अर्जुन तो काँपने लग गये। वे बहुत पछताने लगे।

"हाय पितामह! हाय पितामह!" की आवाज से कुरुक्षेत्र भर गया। सब लोग लड़ाई-भिड़ाई छोड़कर पितामह को देखने आये। लाखों आँखों ने देखा कि अपने रोम-रोम में चुभे हुए बाणों के सेज पर पितामह पड़े हुए हैं।

जब पितामह व्यथा के मारे छटपटाकर शिथिल हो गये, तब उनकी आँखें खुलीं। चारों ओर से असंख्य वीरों के जुड़े हुए हाथों और झुके हुए मास्तकों को देखकर धीमे स्वर से पितामह ने सबको आशीर्वाद दिया। कुरुवंश के उस अस्त होते हुए सूर्य्य को भी सब लोगों ने आँसुओं की अञ्जलि भर-भर कर अर्घ्य दिया! वह वीरता का अथाह समुद्र करुणा की करोड़ों नदियां का जल पाकर भी ज्यों-का-त्यों शान्त, स्थिर, गंभीर और धीर बना रहा।

भक्तवर भीष्म के हृदय से उस समय सांसारिक ममता-माया अथवा मोह-छोह की छाया दूर हो गई। बस केवल आत्म-चिन्तन और आत्म-दर्शन में वे मग्न होने लगे। जब उनका सिर नीचे लटकने लगा, तब वे बोले—'तकिया के विना मेरे सिर में बड़ी पीड़ा हो रही है, सिर ऊँचा कराओ।"

फिर क्या, दुर्य्योधन की आज्ञा की देर थी; तकियों का ढेर लग गया! किन्तु पितामह ने कहा—'ऐसे-ऐसे मुलायम तकियां की जरूरत नहीं है। ये तो विलासियों और कायरों को आराम देनेवाली चीजें हैं। वीरों के लिए तो बाण-शय्या ही सर्वोत्तम है। इसलिए बाणों के तकियों से ही मेरे सिर को ऊँचा करो।'

बेचारा दुर्य्योधन द्रोणाचार्य का मुँह ताकने लगा। तबतक अर्जुन ने बाणों को आधार देकर पितामह का सिर ऊँचा कर दिया। सब लोग चकित रह गये! पितामह कह उठे—"वत्स! तुम धन्य हो! तुम्हारे विना वीरां के योग्य तकिया कौन देगा? अब मुझे बड़ा आराम मिल रहा है। वीरो, पांडु-पुत्र अर्जुन की करामात देखो। अच्छा मैं तबतक इसी तरह शर-शय्या पर पड़ा रहूँगा, जबतक सूर्य उत्तरायण न होंगे। सूर्य्य के उत्तरायण होने पर मैं इस संसार से विदा होऊँगा। किन्तु अब तुम लोग मिल-जुल कर रहो, सन्धि कर लो, युद्ध बन्द कर दो।"

पितामह की दवा दारू करने के लिए दुर्योधन की ओर से कई अच्छे-अच्छे चिकित्सक और वैद्य आये। वे चुभे हुए बाणों को निकाल मरहम-पट्टी की व्यवस्था करने लगे।

पितामह ने दुर्य्योधन से कहा—"मेरे शरीर से बाणों को मत निकलवाओ। बाणों के साथ ही मुझे चिता पर जला देना। बड़े भाग्य से मुझे क्षात्र-धर्म के अनुकूल ऐसी मृत्यु प्राप्त हुई है। इन निपुण चिकित्सकों को यथेष्ट पुरस्कार आदि देकर विदा कर दो। प्यास लगी है, थोड़ा ठण्डा जल मँगाओ।"

दुर्य्योधन ने वैद्यों को आदरपूर्वक विदा करके तरह तरह के ठण्डे शर्बत मँगवाये। पितामह ने घृणा के साथ कहा—"ये भोग के सामान तो मेरे लिए व्यर्थ हैं। मैं शुद्ध जल चाहता हूँ।"

इतना सुनते ही अर्जुन ने अपने बाण से पृथ्वी को इतने जोर से बेधा कि उसके अन्दर से शीतल जल की एक पतली-सी स्वच्छ धारा निकलकर प्यासे पितामह के खुले हुए सूखे मुँह में गिरने लगी। पितामह की देह का दाह दूर हो गया। वे तृप्त होकर अर्जुन से बोले—"वत्स! तुमने मेरे कलेजे को तर कर दिया। जीभ तालू में सट गई थी। आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। प्राण व्यग्र थे। जान-में-जान आ गई। तुम्हारा कल्याण

हो। तुम अवश्य विजयी होगे। तुम्हारी शक्ति की जाँच मैंने अच्छी तरह की है। दुर्योधन शुरू से ही युद्ध के लिए लालायित है। मेरे मारे जाने पर अब भी यदि वह न चेतेगा, तो युद्ध का मजा खूब चखेगा।"

पितामह की बातें सुनकर दुर्योधन बड़ा दुःखी हुआ। उसे दुःखी देख पितामह बोले—"वत्स दुर्योधन! दुःखी मत हो। मैंने जो कुछ कहा है, सब सच है और भविष्य में भी वह सच होगा। मैंने तुमको लाख समझाया, पर तुमने मेरी एक भी न सुनी! अब भी समय है, चाहो तो चेत जाओ। वंश-नाश के पाप के भागी मत बनो। मेरी मृत्यु के साथ ही यह भयङ्कर रक्तपात बन्द करो। पाण्डवों को आधा राज्य बाँट दो। युधिष्ठिर को इन्द्रप्रस्थ में अकण्टक राज करने दो। सब राजा-महाराजाओं को परस्पर मिल-जुलकर प्रेम से रहने दो। मेरी बात न मानने से बहुत पछताओगे।"

पितामह के उपदेशों की ओषधि से दुर्योधन का अभिमानज्वर नहीं उतरा। वह ऐंठता ही रह गया। तबतक महावीर कर्ण आये। पितामह के चरणों में सिर झुकाकर गद्गद कण्ठ से बोले—"भगवन्! मैंने आपकी बातें न मानकर पाण्डवों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए दुर्योधन को बड़ा सहारा दिया है। मेरे ही शह देने से उसने इतना बड़ा युद्ध ठाना है। इसलिए, आपके सामने मैं बहुत बड़ा अपराधी हूँ! आप मेरे सब प्रकार से पूज्य हैं। आपकी नीतिज्ञता और वीरता संसार-प्रसिद्ध है। छोटे यदि अपराध भी करते हैं तो बड़े क्षमा कर देते हैं। यह आपका अन्तिम समय है। शुद्ध हृदय से प्रसन्न होकर, मेरा अपराध क्षमा कीजिए और आशीर्वाद दीजिए।"

कर्ण को हाथ जोड़े सामने खड़ा देखकर पितामह की आँखों में स्नेह के आँसू भर आये। बोले—"वत्स! तुम भी दुःखी मत हो। तुम्हारे प्रति मेरा भाव बिल्कुल शुद्ध है। मैं किसी के साथ द्वेष नहीं रखता था। मैं सदा सबको हितकर शिक्षा ही दिया करता था। मेरी सीख न माननेवाला भी मेरा शत्रु नहीं है। मेरा अन्तकाल उपस्थित है। इस समय मेरे हृदय में लेशमात्र विकार नहीं है। मैंने सदा तुमको और दुर्योधन को क्षमा-प्रदान किया है। यदि फिर भी तुम क्षमा चाहते हो, तो मैं तुम्हें दृढ़ विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारे दोषों को मैं एकदम भूल गया हूँ। मैं किसी का दोष सदा के लिए स्मरण नहीं रखता। समयानुसार कड़े और कोमल शब्दों द्वारा शिक्षा देकर विकार से रहित और उदासीन हो जाना मेरा सहज स्वभाव है। हृदय से मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ। जाओ, अपने कर्तव्य-पालन में दृढ़ बने रहो। तुम्हारी वीरता, धीरता, दान-शीलता, ब्रह्मण्यता और अटल कर्तव्य-बुद्धि का मैं बड़ा कायल हूँ। केवल कृतज्ञता निबाहने के लिए ही तुम दुर्योधन के हर एक काम में हाथ बँटाते रहे, यह भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ। संसार के कृतघ्न मनुष्य तुम्हारी इस आदर्श नीति से शिक्षा पायेंगे। अधिक बोलने से मुझे कष्ट हो रहा है। इसलिए, तुम्हारी और कौरवों तथा पाण्डवों की शुभ कामना करते हुए अब मैं मौन होता हूँ।"

अन्तिम झलक

पितामह योग-समाधि में लीन हो गये। इधर उत्तरायण सूर्य होने तक प्राण-धारण किये रहने के लिए वे शर-शय्या पर पड़े हुए थे; उधर द्रोणाचार्य को सेनापति बनाकर दुर्योधन लड़ने लगा!

दस दिन तक तो भीष्म ही लड़े थे, पाँच दिनों तक लड़कर आचार्य भी मारे गये। फिर ढाई दिन तक कर्ण लड़े और आधा दिन शल्य। अठारहवें दिन भीम ने दुर्योधन का भी काम तमाम कर दिया। अन्त में द्रौणी (अश्वत्थामा) ने पाण्डवों की बची-खुची सेना और रात में द्रौपदी के सोते हुए पाँच पुत्रों को तलवार के घाट उतार दिया।

इस प्रकार अठारह दिनों में ही समस्त भारत के शूर-वीरों का संहार हो गया। केवल पाँच भाई पाण्डव, श्रीकृष्ण, अर्जुन का प्यारा शिष्य सात्यकि, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य बच गये।

उन्नीसवें दिन, भीष्म पितामह से आज्ञा लेकर, युधिष्ठिर हस्तिनापुर पहुँचे। पितामह ने उनसे कह दिया था कि उत्तरायण सूर्य होने पर वे अपना नश्वर शरीर त्याग देंगे।

युधिष्ठिर के हस्तिनापुर पहुँचने पर प्रजा ने बड़ा स्वागत किया। परिवार का श्राद्ध करके वे राजगद्दी पर बैठे। किन्तु विजय और सिंहासन पाने पर भी वे सुखी न हुए—चित्त में शान्ति न हुई। विजयलक्ष्मी और राज्यलक्ष्मी के अधीश्वर होने पर भी उनके हृदय में भयङ्कर शोक-ज्वाला धधकने लगी। सगे-सम्बन्धियों के रक्त से सना हुआ राज सुख तृप्तिकर न हुआ। भला, अजातशत्रु को रक्तपात से कैसे शान्ति मिले!

युधिष्ठिर को अत्यन्त अधीर और ग्लानियुक्त देखकर भगवान् वेद-व्यास ने सलाह दी कि भीष्म के पास जाकर ज्ञानोपदेश श्रवण करो, उन्हीं के उपदेश से तुम्हारे खिन्न चित्त का उद्वेग शान्त होगा।

तब श्रीकृष्ण के साथ वे पितामह के पास पहुँचे। बड़ी नम्रता से बोले—"दादाजी! अपने ही हाथों अपने वंश का ध्वंस करने से मुझे घोर आत्मग्लानि हो रही है। किसी काम में जी नहीं लगता। यह जीवन बोझ-सा मालूम होता है। जान पड़ता है, यह संसार मुझे काट खायगा। राजसिंहासन मेरे लिए काँटों की सेज हो रहा है।"

इतना कहकर युधिष्ठिर चुप हो गये, सिर नीचा कर आँसू ढालने लगे। पितामह ने उन्हें धर्मनीति, राजनीति, समाजनीति और आत्मज्ञान का विमल उपदेश दिया। उनके अमृतमय वचनों से युधिष्ठिर का शोक, मोह, अनुताप और विषाद दूर हो गया।

अन्त में सूर्य को उत्तरायण हुआ जानकर पितामह ने माघ शुक्ला अष्टमी को शरीर छोड़ दिया। आजतक वह पवित्र दिन भारतवर्ष में 'भीष्माष्टमी' के नाम से प्रसिद्ध है।

अर्जुन

" अर्जुनस्यप्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम् "

[१]

"सारथ्यमर्जुनस्यादौ कुर्वन् गीतामृतं ददौ ।
सर्वलोकोपकारार्थं तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥"

वंश-परिचय, जन्म और बाल्यावस्था

द्वापर-युग में, चन्द्रवंशी राजा कुरु के वंश में, शान्तनु बड़े प्रतापी राजा हुए। उनकी पहली पत्नी का नाम गंगा और दूसरी का सत्यवती था। गंगा से भीष्म और सत्यवती से विचित्रवीर्य पैदा हुए। भीष्म बड़े भारी योगी, ज्ञानी और वीर थे। विचित्रवीर्य बड़े सुन्दर, सुशील और तेजस्वी थे। उनपर भीष्म का बड़ा स्नेह था। भीष्म ने काशी के राजा इन्द्रद्युम्न की अम्बिका और अम्बालिका नामक सुन्दरी कन्याओं को स्वयंवर से हर लाकर अपने सौतेले भाई का ब्याह कर दिया। विचित्रवीर्य विलासी होने के कारण जवानी में ही क्षय-रोग से मर गये—उनकी दोनों स्त्रियाँ विधवा हो गईं।

भीष्म जिन्दगी-भर के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत ले चुके थे। इसलिए वंश का नाश होते देखकर सत्यवती का मन बड़ा चिन्तित और दुःखित हुआ। उन्होंने अपने प्रथम पुत्र व्यासजी को बुलाया। सत्यवती जब क्वाँरी थीं, तभी पराशर मुनि से व्यासजी पैदा हुए थे। वे अगाध विद्वान् और तपस्वी थे। उन्हीं की कृपा से विचित्रवीर्य की दोनों विधवाएँ गर्भवती हुईं।

अम्बिका से धृतराष्ट्र और अंबालिका से पाण्डु का जन्म हुआ। सुकुमारी अम्बिका व्यासजी का अखण्ड तेज न सँभाल सकी। उनको देखते ही उसने आँखें मूँद लीं; इसलिए धृतराष्ट्र अंधे हुए। अंबालिका भी उस प्रचण्ड तेज के सामने कदराकर पीली पड़ गई, इसलिए पाण्डु पीले रंग के—'पियरी-रोग के शिकार'—हुए। रनवास की एक मुख्य दासी से व्यासजी ने विदुर को उत्पन्न किया।

भीष्म ने अपने दोनों भतीजों और विदुर को बड़े प्यार से पाला-पोसा। विधिवत् उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। धृतराष्ट्र के अन्धे होने के कारण पाण्डु को राजगद्दी मिली। विदुर बड़े नीतिज्ञ थे, इसलिए मंत्री की जगह काम करने लगे। धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार-देश के राजा सुबल की कन्या गान्धारी से हुआ। उसके गर्भ से दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ पुत्र, जो कौरव कहलाए, और दुःशला नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। राजा पाण्डु का विवाह शूरसेन यादव की कन्या और वसुदेव की बहन कुन्ती से हुआ।

भोज-देश के राजा कुन्तिभोज ने कुन्ती को गोद लिया था। वे कुन्ती के चचा थे।

जब कुन्ती क्वाँरी थीं, तभी दुर्वासा ऋषि की सेवा करके उन्होंने पाँच मंत्र सीखे थे। उन मंत्रों के बल से वे जिस-किसी देवता को अपने पास बुला सकती थीं। एक दिन उन्होंने मंत्र-शक्ति की परीक्षा ली। स्मरण करते ही भगवान सूर्यनारायण आ पहुँचे। उनके पवित्र सौन्दर्य पर सूर्यदेव मुग्ध हो गये। उसी समय कर्ण का जन्म हुआ। उस महातेजस्वी बच्चे को, लोक-लाज के कारण, कुन्ती ने नदी में बहवा दिया। धृतराष्ट्र के सारथी अधिरथ ने भाग्यवश उसे पाया। सारथी की स्त्री राधा ने कर्ण को बड़े लाड़-प्यार से पाला। इसीलिए कर्ण सूतपुत्र और राधेय कहलाये।

भीष्म ने मद्र-देश के राजा शल्य की बहन माद्री से पाण्डु का एक और विवाह कर दिया। कुन्ती की तरह माद्री भी बड़ी रूपवती और गुणवती थीं। विवाह के कुछ दिनों के बाद पाण्डु ने असंख्य राजाओं को परास्त करके दिग्विजय किया। फिर सुख से प्रजा का पालन करने लगे।

एक बार पाण्डु अपनी दोनों रानियों के साथ जंगल में मौज करने चले गये। संयोग की बात, एक दिन पाण्डु शिकार खेलने निकले। देखा, हिरनी के साथ हिरन विहार कर रहा है। असल में किमिन्दय-ऋषि, दिन का समय होने के कारण संभोग करने के लिए जंगली जानवर बनकर, अपनी पत्नी के साथ रमण कर रहे थे। प्राचीन भारत में दिन में स्त्री-पुरुष का प्रेम-मिलन-संयोग पशु-कर्म माना जाता था।

पाण्डु ने उन्हें साधारण हिरन-हिरनी समझकर तीर मार दिया। तीर लगते ही दोनों धरती पर लोट गये। ऋषि ने पाण्डु को शाप दिया कि जिस दशा में तुमने हमें मारा है, उसी दशा में मरोगे। पाण्डु बड़े दुखी हुए। सांसारिक सुखों से विरक्त होकर वे नागशत-पर्वत पर तपस्या करने लगे। रानियाँ भी साथ ही थीं।

वंश-नाश की चिन्ता से पीड़ित होकर पाण्डु ने कुन्ती से सारा वृत्तांत कह सुनाया। कुन्ती ने अपने उन्हीं मंत्रों का सहारा लिया। धर्मराज का आवाहन किया, तो सत्यव्रतधारी युधिष्ठिर की पैदाइश हुई। पवनदेव को याद किया, तो महाबली भीम का जन्म हुआ। देवराज इन्द्र का स्मरण करने से परम पराक्रमी अर्जुन उत्पन्न हुए। माद्री ने भी कुन्ती का अनुसरण किया। उन्हें अश्विनीकुमार से नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र प्राप्त हुए। ये पाँचों भाई पाण्डव कहलाये।

एक बार वसंत-ऋतु में माद्री के साथ विहार करते समय पाण्डु अचानक चल बसे। किमिन्दय-ऋषि का शाप पूरा हो गया। माद्री उनके साथ सती हो गईं। कुन्ती ने ही पाँचों पाण्डवों का पालन-पोषण किया।

पाँचों पाण्डवों में तीसरे अर्जुन थे। इन्द्रदेव के समान दिव्य रूप और अलौकिक विक्रम, सिंह की-सी छाती, साँड़ के-से कंधे, पूनो के चाँद-सा मुखड़ा, लम्बी-लम्बी वज्र-दण्ड-सी भुजाएँ, लोहे के मुद्गर-सी जाँघें, दमकता हुआ ऊँचा ललाट, ज्योति छिटकाती हुईं बड़ी-बड़ी आँखें, कानों में झूलते हुए जगमगे कुंडल, गले में मंजुल मोतियों के हार, हाथों में रत्न-जटित धनुष-बाण, बड़ा ही तेजस्वी और आकर्षक रूप-रंग, बड़ी ही सुन्दर और मनोहर कान्ति, बड़े ही होनहार और सुशील ;—जो देखता, वही बिक जाता—उसी की आँखों में बस जाते।

भीष्म अपने एक सौ पाँच पोतों में अर्जुन को बहुत मानते, बड़े लाड़-प्यार से रखते और उनपर विशेष स्नेह प्रकट करते। कुन्ती भी अर्जुन की शोभा और तेज देखकर मन-ही-मन उनपर प्रसन्न रहतीं। परन्तु दुर्योधन लड़कपन से ही भीम और अर्जुन का बल देखकर कुढ़ता रहता। वह केवल अपने सारथी के पुत्र कर्ण से ही गाढ़ी दोस्ती और मेलजोल रखता।

पाण्डु के मरने पर धृतराष्ट्र ही राजसिंहासन पर बैठकर, भीष्मपितामह की सलाह से, सारा राज-काज करते थे। इसलिए, दुर्योधन को अपने पिता के राजत्व का बड़ा अभिमान था। घोर अहंकार के कारण वह यहाँ तक अन्धा हो गया कि भीष्म-पितामह तक का तिरस्कार करने लगा। उसके पिता की तो बाहरी आँखें बन्द थीं और उसकी भीतरी भी।

सचमुच हिये की आँखें फूट जाने पर मनुष्य, घोर स्वार्थ का चोला पहनकर, पिशाच और राक्षस से भी बढ़ जाता है।

दुर्योधन बचपन से ही घमंडी और डाही था। वह विद्यागुरु की पाठशाला में भी अर्जुन की प्रतिभा का अद्भुत चमत्कार देखकर जला करता था। भीम मन-ही-मन यह सब ताड़ते रहते और भोले-भाले अर्जुन की शरीर-रक्षा में सदा तत्पर रहा करते। पर अर्जुन के हृदय में किसी के साथ किसी प्रकार के ईर्ष्या-द्वेष का लेश भी न था। वे तो बस तन-मन से गुरु की आज्ञा का पालन करते और चुपचाप चित्त देकर विद्या पढ़ते ; न ऊधो का लेना न माधो का देना ; अपने काम से काम।

राजकुमारों के विद्यागुरु कृपाचार्य थे। पर अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा देने के लिए एक सुयोग्य गुरु की तलाश हो रही थी। एक दिन हस्तिनापुर-नगर से बाहर खुले मैदान में लोहे का एक बड़ा भारी गोला लेकर सब राजकुमार गेंद खेल रहे थे। अकेले भीम और अर्जुन से ही गेंद खेलने में सौ कौरव हार-पर-हार खा जाते थे। अचानक वह लोहे का गेंद दूर के एक गहरे कुएँ में जा गिरा। सब राजकुमार कुएँ की जगत पर जा डटे। बहुत कोशिश करने पर भी गेंद न निकल सका। सब-के-सब हताश हो गये। वीर क्षत्रिय-कुमारों को अपनी बेबसी पर बड़ी ग्लानि हुई। वे अपनी विवशता को धिक्कारने लगे।

इतने ही में एक बूढ़े बाबाजी उधर आ निकले। उनकी लंबी दाढ़ी पककर सन हो गई थी। बुढ़ापा के कारण देह का चमड़ा सिकुड़ गया था। मगर तीर-कमान और तरकस-तलवार बाँधे हुए थे। शरीर की हड्डियाँ फौलाद की तरह दृढ़ और कठोर थीं। चेहरे से तेज बरसता था।

राजकुमारों को मन-मारे तन-हारे बैठे देखकर विप्र-देव ने कारण पूछा। लड़कों ने निवेदन किया। बाबाजी ने तीर मार कर गेंद बाहर निकाल दिया। लड़के उछल पड़े। वे बूढ़े की करामात देखकर चकित हो गये। भीष्म-पितामह के पास जाकर सारा हाल कह सुनाया। वे झट भाँप गये कि द्रोणाचार्य ही होंगे। अत्यन्त हर्ष के साथ झटपट उठे और शीघ्र ही स्वयं जाकर उन्हें बड़े आदर से राजमहल में ले आये। बड़ी आवभगत की। आचार्य आनन्द-गद्गद हो गये।

भीष्म ने आचार्य को राजकुमारों का अस्त्र-गुरु नियुक्त किया। आचार्य ने सब राजकुमारों को एकत्र बुलाकर कहा—"मैं तुमलोगों को अस्त्र-शस्त्र तो खूब सिखलाऊँगा ; पर सबसे पहले तुमलोग यह वचन दो कि अन्त में जो कुछ मैं आज्ञा दूँगा, उसका पालन करके मेरी अभिलाषा पूरी करोगे।"

आचार्य के वचन सुनकर सब राजकुमार एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे ; पर अर्जुन ने बड़े उत्साह के साथ आगे बढ़कर कहा—"पूज्य गुरुदेव, आपका यह दास निश्चय ही आपकी आज्ञा और इच्छा की पूर्ति करेगा।"

आचार्य ने ललक के साथ लपककर अर्जुन को छाती से लगा लिया, और बड़े प्यार से माथा सूँघकर बोले—"बेटा, तू ही मेरा सच्चा शिष्य होगा। तू ही मेरा मुख उज्ज्वल करेगा। तू ही मेरा नाम अमर करेगा। धन्य है तू, जिसे पाकर मैं भी धन्य हो गया।"

[२]

"लक्ष्मणो लघुसंधानी दूरपाती च राघवः ।
कर्णो दृढप्रहारी च पार्थस्येते त्रयो गुणाः ॥"

अस्त्र-शिक्षा, परीक्षा और गुरु-दक्षिणा

नगर के बाहर खुली हवा में विशाल रंगशाला बनी। आचार्य द्रोण राजकुमारों को अस्त्र-विद्या पढ़ाने लगे। दुर्योधन और भीम गदा, नकुल और सहदेव तलवार, युधिष्ठिर रथ और अर्जुन बाण चलाने में बड़े ही सिद्धहस्त निकले। लड़ने-भिड़ने, तीर-तलवार चलाने, गदा-मुद्गर भाँजने और घुड़सवारी आदि कलाओं में तो अर्जुन इतने तेज, फुरतीले, चौकस और चुस्त-दुरुस्त निकले कि अपने परमप्रिय शिष्य की प्रशंसनीय निपुणता देखकर आचार्य द्रोण फूले अंग न समाये। अर्जुन की आदर्श गुरु-भक्ति से वे इतने प्रसन्न रहते कि अपने पुत्र अश्वत्थामा के साथ-साथ एकान्त में उन्हें भी अनेक गुप्त और अलौकिक अस्त्र सिखलाया करते। अर्जुन भी दिन-रात धनुष-बाण लिये गुरु के पीछे-पीछे परछाईं की नाईं फिरा करते—विनयी और आज्ञाकारी बनकर, दृढ़ विश्वास और श्रद्धा के साथ निरन्तर गुरु की पूजा और सेवा-शुश्रूषा में लगे रहते।

एक दिन एक वृक्ष पर एक बनावटी पक्षी चुपके-से रखवाकर आचार्य ने अचानक अपने शिष्यों से कहा—"सब कोई धनुष-बाण लेकर मेरे सामने हाजिर हो। जिस दम मैं आज्ञा दूँ, फौरन तीर छोड़ देना।"

आज्ञानुसार सभी राजकुमार एकत्र हुए। गुरुदेव उँगली से इशारा करके बोले—"तुमलोग इस वृक्ष पर जो वह पक्षी देख रहे हो, उसका सिर काट गिराना होगा। पहले मेरे प्रश्न का उत्तर देना, पीछे मेरी आज्ञा पाते ही तीर छोड़ना। अच्छा—"युधिष्ठिर, तुम उस पक्षी को देखते हो?"

युधि०—"हाँ गुरुदेव, अच्छी तरह देखता हूँ।"

गुरु०—"उसके सिवा और कुछ देखते हो?"

युधि०—"देखने को तो आँखों के सामने फैला हुआ सारा संसार ही देख रहा हूँ। इतना बड़ा वृक्ष तो आगे ही खड़ा है!"

आचार्य मुस्कुराये। युधिष्ठिर को अलग किया। सब राजकुमारों से एक-एक करके पूछा। किसीने कहा—मैं पेड़ की डाल और उसपर बैठी हुई चिड़िया के सिवा कुछ नहीं देखता। किसी ने कहा—मैं सिर्फ चिड़िया ही देखता हूँ; उसके दो पैर और दो पंख हैं। आचार्य मुस्कुराते ही रहे। सब की ओर से नजर फेरकर अर्जुन पर निगाह डाली। वे चुपचाप एक तरफ खड़े थे। गुरु की निगाह पड़ते ही सावधान हो गये; तीर-कमठा सँभाल लिये। आचार्य बोले—"अर्जुन! तुम उस पक्षी को अच्छी तरह देखते हो?"

अर्जुन झटपट निशाना साधते हुए बोले—"गुरुदेव, मुझे पक्षी की गर्दन और तीर की बारीक नोक के सिवा और कुछ तो बिल्कुल नहीं सूझता।"

आचार्य अत्यंत प्रसन्न होकर बोले—"शाबाश बेटा! मारो बाण।"

इधर आचार्य के मुँह से 'बाण' शब्द निकला, उधर अर्जुन के धनुष से चोखा बाण। पक्षी का सिर कटकर जमीन पर आ गिरा। आचार्य ने अर्जुन को भुजाओं में समेट कर छाती से चाँप लिया। फिर माथा सूँघा, सिर सहलाया, पीठ ठोकी और आनन्द के आँसुओं से सींच दिया। गद्गद होकर बोले—"अर्जुन, तू ही मेरे यश की ध्वजा का विशाल दंड बनकर प्रलयकाल तक इस पृथ्वी की छाती पर गड़ा रहेगा।"

अर्जुन ने आचार्य के चरणों की धूल आँखों में लगा ली।

एक बार और। आचार्य गंगा में स्नान कर रहे थे। चेले गंगा की रेत में कबड्डी खेल रहे थे। एक मगर ने अचानक आचार्य की टाँग पकड़ ली। चाहते तो मगर को मजा चखा देते। पर चेलों की जाँच करनी थी। इसलिए जोर-जोर से चिल्लाने लगे—"दौड़ो, जान गई।"

चेले दौड़े। लेकिन हालत देखते ही काठ हो गये। ऐन मौके पर गुरु का सिखाया-पढ़ाया हवा खाने चला गया। सब की बुद्धि तो चरने चली गई; पर गुरु-भक्त अर्जुन तनिक भी न घबराये। झट धनुष पर बाण चढ़ाकर जल के अन्दर जोर मारते हुए मगर को टुकड़े-टुकड़े कर डाला। मगर के रक्त से गंगा की धारा लाल हो उठी। गुरु के आशीर्वादों से अर्जुन की छाती फूल उठी। चेले चकित हो गये।

हाँ, एक समय की बात है, आचार्य ने चेलों को गंगाजल लाने के लिए भेजा। प्रायः भेजा करते थे। इसी बीच में अपने पुत्र अश्वत्थामा को बहुत-से महत्त्वपूर्ण अस्त्र बतलाते थे। एक दिन अर्जुन गये ही नहीं। बैठे-ही-बैठे 'वरुण-अस्त्र' चलाकर कमण्डल भर दिया। आचार्य अचंभे में आ गये। उसी दिन से अश्वत्थामा के साथ-साथ उन्हें भी महत्त्वपूर्ण अस्त्र बतलाने लगे। गुरु गुड़ ही रहे, चेला चीनी हो गया।

अस्त्र-विद्या में अर्जुन की एकाग्र कुशाग्र बुद्धि और अत्यंत प्रशंसनीय कुशलता देखकर दुर्योधन के हृदय में ईर्ष्या का ज्वालामुखी फूट पड़ा। कर्ण उसकी डाह की धधकती हुई आग में घी डालने लगे। उसी आग की भयंकर ज्वाला में सारा कुरुवंश स्वाहा हुआ। वही नरक की आग आजतक भारत के घर-घर में धधक रही है। प्रेम का शीतल जल ही उसे बुझा सकता है।

अस्तु। एक बार आचार्य अपने चेलों को साथ लेकर जंगल में बड़ी दूर निकल गये। अर्जुन का शिकारी कुत्ता साथ छोड़कर घने जंगल में भटक गया। बेचारा इधर-उधर घूम रहा था। इतने में जंगली जाति का एक आदमी देख पड़ा। स्वभाव-वश कुत्ता भूकने लगा।

उस जंगली आदमी का नाम एकलव्य था। वह एक बार गुरु द्रोणाचार्य के पास धनुर्विद्या सीखने हस्तिनापुर गया था। आचार्य ने उसे निषाद जानकर शिक्षा नहीं दी। उसने घर लौटकर मिट्टी की एक मूर्ति बनाई। उसी को आचार्य मानकर उसकी पूजा और धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। एकान्त गुरुभक्ति और सच्ची निष्ठा खूब सफल हुई। बड़ा भारी तीरंदाज निकला। विश्वास सदा फल देता है।

उसने भूकते हुए कुत्ते का मुँह चोखे बाणों से भर दिया। कुत्ता चीखता-चिल्लाता और दुम हिलाता हुआ जोर से भागा। अचानक अर्जुन मिल गये। अपने प्यारे कुत्ते की दुर्दशा देखकर अर्जुन के क्रोध का ठिकाना न रहा। कुत्ते के अपराधी को दण्ड देने के लिए गुरु की आज्ञा से वे कुत्ते के पीछे-पीछे चले। अर्जुन के स्नेहवश पीछे से आचार्य भी गये।

एकलव्य के झोपड़े के पास कुत्ता खड़ा हो गया, फिर अर्जुन के चरणों पर लोटकर रोने लगा। अर्जुन आग-बबूला हो गये। उन्होंने दातों ओठ चाँप कर ज्योंही एकलव्य पर निशाना साधा, त्योंही आचार्य ने पीछे से पुकार कर कहा—"बेटा अर्जुन, ठहरो; मैं पहुँच गया।"

हिमालय टर जाय; पर गुरु की आज्ञा नहीं टल सकती थी। अर्जुन शान्त हो गये। आचार्य ने आते ही एकलव्य से पूछा—"तू कौन है? किसका चेला है?"

एकलव्य ने आचार्य को पहचाना। मन-ही-मन प्रणाम किया। अपनी सारी राम-कहानी कह सुनाई। आचार्य अचंभे में आ गये। सोचा, यह तो अपनी अखंड गुरुभक्ति के प्रताप से अर्जुन के जोड़ का धनुर्द्धर हुआ चाहता है; फिर तो अर्जुन को दिया हुआ मेरा आशीर्वाद झूठा साबित हो जायगा। बोले—"अभी तक तूने गुरु-दक्षिणा नहीं चुकाई है; इसलिए तेरी विद्या शीघ्र सफल न होगी। यदि तू मुझे प्रसन्न करना चाहता है, तो अपने बाएँ हाथ का अँगूठा मुझे दे।"

गुरु की इच्छा पूरी करने में एकलव्य ने जरा भी देर न लगाई। आचार्य ने मुस्कुराते हुए अर्जुन की ओर देखा। एकलव्य की गुरुभक्ति देखकर अर्जुन ने दिल-ही-दिल में उसे जी-भरकर सराहा। अपने ऊपर गुरुदेव की असीम कृपा समझकर उनकी गुरुभक्ति कृतार्थ हो गई। सच्ची गुरुभक्ति की ऐसी महिमा है।

बाएँ हाथ के अँगूठे के साथ एकलव्य की आधी से अधिक शक्ति निकल गई; क्योंकि बाएँ अँगूठे के बल से ही धनुष तानकर तीर दूर फेंका जा सकता है। आचार्य के स्नेह से अर्जुन अद्वितीय धनुर्द्धर बने ही रह गये। गुरुभक्ति कभी निष्फल नहीं होती।

जंगल से लौटने पर सब लोग मामूली बातों की तरह इस घटना को भूल गये। परन्तु महामना अर्जुन के लिए यह घटना साधारण-सी नहीं थी। सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते, बोलते-बतराते और चलते-फिरते, हर घड़ी, हर जगह, उनके हृदय में एकलव्य की गुरुभक्ति का महान् आदर्श जगमगाता रहा। गुरुदेव की उस अपूर्व कृपा के बदले में मुँहमाँगी दक्षिणा देने की तीव्र लालसा दिन-दिन प्रबल होती गई।

दैवयोग से वह लालसा पूरी होने का समय आ गया। राजकुमारों की शिक्षा समाप्त हुई। परीक्षा की तैयारी बड़ी धूमधाम से होने लगी। नगर से बाहर एक लंबे-चौड़े मैदान में रंगभूमि बन गई। मैदान के चारों ओर दर्शनीय अटारियाँ बनीं। ऊँचे-ऊँचे सुन्दर मंच बने। पुरुषों और स्त्रियों के बैठने के लिए अलग-अलग सुन्दर स्थान बने। सबके ऊपर रंग-बिरंगी पताकाएँ फहराने लगीं।

परीक्षा की निश्चित तिथि के दिन बड़े-बड़े राजा-महाराजा निमंत्रित होकर आये। दूर-दूर के लाखों दर्शक जमा हुए। नगर के स्त्री-पुरुष, लड़के, जवान और बूढ़े जाकर यथास्थान बैठे। राजवंश के स्त्री-पुरुष भी अपने-अपने स्थानों पर जा विराजे। तरह-तरह के बाजे बजने लगे। शंखध्वनि से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। चारों ओर उत्साह और आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा।

ठीक समय पर आचार्य रंगभूमि में पधारे। जयजयकार से आकाश काँप उठा। एक-एक करके, बड़ाई-छोटाई के अनुसार, राजकुमार भी आने लगे। उनके चमकीले-भड़कीले कपड़े और मँजे हुए हथियार, सूरज की किरणें पड़ने से, चमचमाने लगे। दर्शकों की आँखों में चकाचौंध छा गई। ब्राह्मणों की मण्डली मंगल आशीर्वाद के वचन उच्चारण करने लगी। बन्दीजन गुणगान करने लगे। गायक मंगल-गीत गाने लगे।

आचार्य ने इशारा किया। रंगभूमि में सन्नाटा छा गया। अस्त्र-परीक्षा देने के लिए खड़े हुए वीर राजकुमारों पर एक ही बार दर्शकों की लाखों आँखों ने प्रसाद-पुष्प बरसा दिये। आचार्य का संकेत पाकर राजकुमार बारी-बारी से अपना कौशल दिखाने लगे। घुड़सवारी, कुश्ती, गदा-युद्ध, खड्ग-युद्ध, बाण-वृष्टि, सब तरह का कौशल दिखाकर राजकुमारों ने दर्शकों का बड़ा मनोरंजन किया। लोग बड़े प्रसन्न हुए। भीष्म और द्रोण आनन्द में मगन थे।

अन्त में अर्जुन को आज्ञा मिली। पितामह और आचार्य, चचा और बड़े भाई तथा माता और गुरुआनी के चरणों की वंदना करके रंगस्थल में अर्जुन आ खड़े हुए, मानों नर-लोक में इन्द्रदेव उतर आये। दर्शकों की टकटकी बँध गई। लगे अस्त्रलीला दिखलाने। 'अग्नि-बाण' चलाते ही रंगभूमि आग की लपटों से भर गई। लोगों ने समझा, प्रलय हो गया। हाहाकार मच गया। इतने में 'वरुण-अस्त्र' छोड़ा। फिर क्या, सावन-भादो की झड़ी बँध गई। आग की लपटों की जगह वर्षा की बूँदों ने ले ली। चारों ओर से धन्य-धन्य की ध्वनि उठने लगी। युधिष्ठिर और भीम पुलकित हो गये। पितामह और आचार्य ने खूब शाबाशी दी। कुन्ती के आनन्द की सीमा न रही। विदुर मन-ही-मन फूल रहे थे।

दुर्योधन अपनी ही आग से जल रहा था। वह कर्ण को रंगभूमि में उतारना चाहता था; पर सारथी-पुत्र को चंद्रवंशी राजकुमारों की श्रेणी में स्थान मिलना कठिन था! लाचारी थी। मन मसोस कर रह गया। भीम को मुस्कुराते और मूँछें मरोड़ते देखकर और भी जल मरा।

अस्त्र-परीक्षा हो जाने पर आचार्य ने चेलों से गुरु-दक्षिणा माँगी। चेले रत्न-धन आदि लाने लगे। आचार्य बोले—"मैं ब्राह्मण हूँ। धन-धान्य की मुझे चाह नहीं। पाञ्चाल-देश के राजा द्रुपद ने मेरा घोर अपमान किया है। उन्हें ही बाँध लाकर मेरे चरणों पर गिरा दो। बस, इतनी ही मेरी दक्षिणा है। इसके सिवा मैं और कुछ न लूँगा।"

ऐसी दक्षिणा चुकाना आसान नहीं था। राजकुमार सकपकाये। परन्तु साहसी अर्जुन झट तैयार हो गये। पाञ्चाल देश पर जबरदस्त चढ़ाई हुई। द्रुपद ने बड़ी वीरता से सामना किया। पर अर्जुन के सामने उनकी एक भी न चली। अर्जुन ने उन्हें गुरुदेव के चरणों पर ला गिराया।

आचार्य की अभिलाषा पूरी हो गई। उन्होंने द्रुपद के पिछले अपराधों को भुलाकर बड़े प्रेम से गले लगाया, बंधन छुड़ाया और सहर्ष क्षमा-प्रदान कर आदर के साथ विदा किया। फिर अर्जुन को बार-बार असीसा, सराहा, गले लगाया और आनन्द में मस्त होकर कहा—"मैं पूरी गुरु-दक्षिणा पा चुका, पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो गया; अब और कुछ न चाहिए। तुम विश्व-विजयी धनुर्धर हो।"

गुरुदेव के संतोष से अर्जुन को बड़ी तृप्ति मिली।

[३]

"लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषां हृदिस्थो भगवान्मङ्गलायतनो हरिः॥"

लाक्षा-गृह-दाह, लक्ष्य-वेध और विवाह

अर्जुन हर जगह वाहवाही लूटें और दुर्योधन आँख पसारे देखता रह जाय, यह कैसे हो सकता था? उसने अपने मामा शकुनि और मित्र कर्ण की सलाह से पाण्डवों का शीघ्र नाश करना चाहा। अनेक उपाय सोचे गये।

अन्त में यही राय ठहरी कि पाण्डवों को वारणावतनगर भेजकर छल से मार डाला जाय। पहले तो युधिष्ठिर को विविध भाँति से वारणावत की प्रशंसा सुनाई जाय। उनके सामने सब लोग यही कहें कि शास्त्रों में वारणावत-तीर्थ की बड़ी भारी महिमा है, वह पुण्य क्षेत्र है, उसका माहात्म्य वाराणसी से भी बढ़ा-चढ़ा है, बड़ा ही रमणीय और पवित्र स्थान है, शान्ति और आनन्द का भाण्डार ही है। बस, युधिष्ठिर वहाँ बिना गये न मानेंगे—भोले-भाले, सीधे-सादे और भोंदू तो हैं; इन्हें झाँसापट्टी देना कौन बड़ी बात है। इधर उन्हें यह पट्टी पढ़ाई जाय, उधर वारणावत में लाह का एक महल बनवा दिया जाय, जिसमें वे अपने भाइयों के साथ जाकर आराम से रहने लगें। तब एक रोज रात को, उनके सो जाने पर, उस महल में, चारों ओर से, आग लगा दी जाय। हमेशा के लिए खटका दूर हो जायगा।

चण्डाल-चौकड़ी की राय काम में लाई जाने लगी। बेचारे युधिष्ठिर पर तरह-तरह की षड्यन्त्र-लीलाएँ रची जाने लगीं। वे अपनी सिधाई के कारण गुप्त रहस्य समझ न सके। परन्तु विदुर को पता लग गया कि पांडवों के नाश की तैयारियाँ की जा रही हैं। अब उन्हें चैन कहाँ? लगे जासूसी करने। पाण्डवों से उन्होंने गुपचुप कह दिया कि तुम लोगों को वारणावत भेजने पर इतना जोर देने में जरूर कोई गूढ़ मतलब छिपा हुआ है, सावधान रहना।

पाण्डव तो कौरवों के झाँसे में आकर अपनी माता के साथ वारणावत चले गये! कौरवों ने अपने मित्र पुरोचन को भेजकर वहाँ लाह का महल बनवा रखा था। पाण्डव जाकर उसी में ठहरे। पुरोचन ने बड़ा आदर-सत्कार किया। उस मायावी को पाण्डव भलीभाँति पहचान न सके। परन्तु भीम और अर्जुन उस नये सुन्दर महल की विचित्र रचना देखकर बड़े चकित हुए। सोचने लगे, हम लोगों के लिए खास तौर से यहाँ ऐसा बढ़िया नया महल बनवाने का कुछ-न-कुछ मतलब जरूर है। सोचते-सोचते उनकी आत्मा भड़की। पर वे इस मायाजाल का असली भेद न जान सके। जब विदुर का गुप्त दूत हस्तिनापुर से आया, तब भेद खुला। उस भूलभूलैया से निकल भागने के लिए एक गुप्त मार्ग का भी पता लग गया।

दुर्योधन की धोखेबाजी पर भीम और अर्जुन बहुत बिगड़े। युधिष्ठिर ने समझा-बुझाकर दोनों क्रोधित सिंहों को शान्त किया। वे ऊपर से तो शान्त हो गये; पर उनके भीतर प्रतिहिंसा की आग सुलगने लगी।

रात को भीम ने माया-महल में आग लगा दी। पुरोचन उसी में जल मरा। पाण्डव उसी गुप्त मार्ग से निकल भागे। पर बात फैल गई कि पाण्डव जल मरे। दुर्योधन निष्कण्टक हो गया। उसकी छाती ठण्ढी हो गई। धृतराष्ट्र मन-ही-मन प्रसन्न हुए। राखनहार साइयाँ ....!

विदुर के भेद बतलाने से भीष्म-पितामह को कुछ शान्ति मिली। पर पाण्डवों को वे बहुत प्यार करते थे। इसलिए विदुर के भेद बतलाने पर भी, उनके सन्देह और चिन्ता का समूल नाश न हुआ। धृतराष्ट्र ने तो दिखावे के आँसू बहाकर पाण्डवों का श्राद्ध तक कर डाला!

पाण्डव बेचारे अपनी माता के साथ, कपट के इस भयानक अग्निकुण्ड से निकल कर, कोसों दूर का रास्ता तय करके, एकचक्रापुरी में पहुँचे। वहाँ एक ब्राह्मण के घर में टिके। वहीं भीम ने 'बक' नामक राक्षस का वध किया, जो पुरवासियों को बहुत सताया करता था।

एक दिन एक ब्राह्मण-यात्री से पाण्डवों को यह खबर लगी कि पाञ्चाल-देश के राजा, बड़ी धूम-धाम से, अपनी कन्या द्रौपदी का स्वयंवर-यज्ञ कर रहे हैं। स्वयंवर देखने के लिए पाण्डव बड़े उत्सुक हुए। पुत्रों के मन का भाव ताड़कर माता ने स्वयंवर देखने की सहर्ष आज्ञा दे दी।

पाण्डव चले पाञ्चाल देश, माता उसी ब्राह्मण के यहाँ रह गई। रास्ते में गंगा मिली। वहीं शाम हो गई। चारों ओर अँधेरा छा गया। अर्जुन मशाल जलाकर आगे-आगे चले। तटपर गंधर्वराज चित्ररथ अप्सराओं के साथ जल-विहार कर रहा था। उसने तट की ओर आने से पाण्डवों को मना किया। भला पाण्डव कब रुकनेवाले थे? आगे ही बढ़ते गये। चित्ररथ ने बड़े क्रोध और गर्व से फिर मना किया। पर पाण्डव तो निडर और बेधड़क चले ही जा रहे थे।

गंधर्व ने क्रोधांध होकर बाण चला दिया। अब तो अर्जुन का क्रोध, छेड़े हुए विषधर भुजंग की तरह, भड़क उठा। भीम के हाथ में मशाल देकर मारा कसकर अग्निबाण। गन्धर्व तो प्राण लेकर भागा। लेकिन पाण्डवों के सामने से शत्रु का भाग निकलना आसान नहीं था। पकड़ा दौड़कर अर्जुन ने। लाये युधिष्ठिर के पास। बेचारा लज्जित हो गया। जबान न खुली। सिर न उठा। आँखें बराबर न हुईं। किसी-किसी तरह उसकी स्त्री कुम्भनसी ने युधिष्ठिर के पैरों पड़कर उसे छुड़ाया।

बड़े भाई की आज्ञा से अर्जुन ने अपराधी को अभयदान दे दिया। गंधर्व ने प्रसन्न होकर अर्जुन को एक ऐसी विद्या बतलाई, जिसके द्वारा इच्छा होते ही वे संसार की कोई भी वस्तु पा सकते थे। एक सौ ऐसे दिव्य घोड़े देने की भी प्रतिज्ञा की जो पृथ्वी की परिक्रमा करने पर भी थक नहीं सकते। अर्जुन ने भी बदले में ब्रह्मास्त्र दिया। इस लेन-देन से दोनों परस्पर घनिष्ठ मित्र हो गये। विदा होते समय गंधर्वराज ने पाण्डवों को अच्छे-अच्छे उपदेश भी दिये; समय पड़ने पर यथोचित सहायता करने का संकल्प भी किया।

पाण्डवों की यात्रा बन गई—सफलता हुई, विजय हुई, लाभ हुआ। बड़े आनन्द और उत्साह से आगे बढ़े। पाञ्चाल-देश की राजधानी में पहुँचकर देखा, तो बड़ी धूमधाम, बड़ी चहल-पहल, बड़ी सजधज थी। देश-देश के वीर राजा पहुँचे थे। भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि भी पधारे थे। द्रौपदी पंचकन्याओं में एक थी, इसलिए देवता भी उतर आये थे।

शुरू से ही राजा द्रुपद की इच्छा थी कि पाण्डु-पुत्र अर्जुन के साथ द्रौपदी का विवाह हो। इसलिए स्वयंवर में लक्ष्य-वेध का ऐसा बीहड़ बखेड़ा लगा दिया कि अर्जुन के सिवा किसी दूसरे के किये कुछ हो ही न सके। बहुत ऊँचे स्थान में, ऊपर की ओर मणि की आँखवाली सोने की एक मछली लटकाई गई थी। नीचे एक कुण्ड में तेल भरा हुआ। था। तेल में ही मछली की छाया देखकर उसकी आँख में निशाना बेधना था। बड़े-बड़े वीर उठे, पर सब चूक गये। कितने तो लोहे का धनुष ही नहीं उठा सके, उसे खींचकर चढ़ाना और निशाना मारना तो दूर की बात है। पाण्डव ब्राह्मण के भेष बनाये एक तरफ अलग चुपचाप बैठे सब तमाशे देख रहे थे।

द्रौपदी के बड़े भाई धृष्टद्युम्न ने जब देखा कि स्वयंवर निछत्र हो गया, तब हाथ उठाकर जोर से कहा कि इस स्वयंवर में उपस्थित चाहे जो कोई लक्ष्य-भेद करेगा, द्रौपदी उसी को बरेगी। क्या कोई क्षत्रिय-वीर ऐसा है यहाँ?

अब अर्जुन चुप न रह सके। एक तो भीम उन्हें पहले ही से बार-बार उकसाते थे, दूसरे, धृष्टद्युम्न की वाणी ने और भी शह दे दी। बड़े भाई की आज्ञा पाकर अर्जुन उठे। मन-ही-मन पितामह और आचार्य को प्रणाम किया। सिंह की तरह अकड़ते हुए आगे बढ़े।

राजा-महाराजा भिक्षुक का भेष और साहस देखकर, हँसने और ताने मारने लगे। परन्तु उस साधारण दरिद्र भेष के अन्दर छिपी हुई सुन्दर वीर-मूर्ति ने द्रौपदी का चित्त चुरा लिया। गदराया गठीला बदन, ब्रह्मचर्य्य के अखण्ड तेज से दमकता हुआ मनोहर मुखमण्डल, अथाह शक्तिवाले वीर की-सी इठलाती चाल, चेहरे पर शान्ति और गम्भीरता की छाप, अंग अंग में प्रसन्नता और उत्साह की झलक, एक अपूर्व शोभा, अपूर्व छवि और अपूर्व छटा थी। अनायास द्रौपदी की बाईं आँख फड़क उठी।

तेल के कुण्ड के पास बने हुए श्वेत पत्थर के चबूतरे पर चढ़कर, तेल के कुण्ड में मछली की छाया देखते हुए, अर्जुन ने लोहे का धनुष उठाया। भुजाएँ ऊपर उठाकर इतने जोर से कमान का रोदा खींचा कि चेहरा लाल हो गया। आँखों में वीर-रस उमड़ आया। ठीक निशाना साधकर तीर छोड़ दिया। लक्ष्य के नीचे लगे हुए चक्के के छेद को पार कर सुनहली मछली की नगजड़ी आँख में तीर चुभ गया। मछली नीचे गिर पड़ी। भीम ने दौड़कर अर्जुन को अँकवार-भर उठा लिया।

नगाड़े बज उठे। राजे-महराजों में खलबली मच गई। सब लगे युद्ध की तैयारियाँ करने। भीम और अर्जुन की भुजाएँ तो बहुत पहले से ही खुजला रही थीं। अच्छा अवसर मिल गया। पाण्डव ललकार कर भिड़ गये। घमासान लड़ाई छिड़ गई। अर्जुन ने सबके दाँत खट्टे कर दिये। भीम की गदा ने कितनों के छक्के छुड़ा दिये।

पाण्डव अब और अधिक अपने को छिपा न सके। भीष्म और द्रोण उन्हें जीवित देखकर फूले अंग न समाये। दुर्योधन और कर्ण के आश्चर्य का ठिकाना न रहा! राजा द्रुपद का हृदय आनन्द से नाच उठा। द्रौपदी ने हँसते-हँसते अर्जुन के गले में जयमाल डाल दी। नगर-भर में आनन्द के बधावे बजने लगे। मंगल-गान होने लगा। सारे देश में अर्जुन की विजय-कीर्त्ति का डंका पिट गया।

द्रौपदी बड़ी सुन्दरी और गुणवती थी। उसे साथ लेकर जब पाण्डव, उस ब्राह्मण के घर पर, अपनी माता के पास पहुँचे, तब देखा कि द्वार बन्द था। अत्यन्त प्रसन्न होकर अर्जुन ने माता से पुकार कर कहा—"हम लोग आज बड़ी सुन्दर भिक्षा माँग लाये हैं।" माता ने भी प्रसन्न होकर भीतर से आवाज दी—"मिलजुल कर पाँचों भाई बाँट खाओ।"

पृथ्वी तो कभी भूकम्प में डिग भी जाती है; पर पाण्डव तो कभी माता की आज्ञा से बाल बराबर भी इधर-उधर नहीं हो सकते थे। माता की ही आज्ञा से पाँचों भाइयों का द्रौपदी से विवाह हुआ। द्रौपदी के पिता को यह बात अच्छी न लगी। वे केवल अर्जुन से ही उसे ब्याहना चाहते थे। पर अर्जुन के हृदय से माता की आज्ञा का महत्त्व कैसे दूर हो सकता था?

खैर, पांचाली-सी पत्नी पाकर पाण्डव परम प्रसन्न हुए। पाँच भाइयों के बीच में एक ही सुन्दरी स्त्री होने के कारण नारदजी को बुलाकर व्यवस्था पूछी गई। उन्होंने हर-एक भाई को बहत्तर दिन द्रौपदी के साथ रहने की आज्ञा दी। नियम के साथ यह भी निश्चय हुआ कि एक के समय में यदि दूसरा चला जाय, तो बारह वर्ष वनवास करे।

पाण्डवों के इस अपूर्व सौभाग्य और अनूठे लाभ को जीते-जी देखते रहना दुर्योधन के लिए असंभव था। पाण्डवों की उन्नति से कुढ़कर वह उनका नाश करने पर तुल गया। कर्ण से सलाह पूछी। शकुनी से राय ली। दिल को किसी तरह चैन न मिला! खान-पान और रंग-राग में रुचि न रही। दिन-दिन उदासी बढ़ने लगी। धृतराष्ट्र बड़े चिन्तित हुए। भीष्म, द्रोण, विदुर आदि को बुलाकर उपाय पूछा। वे स्पष्ट बोले—"पाण्डवों से लड़ना-झगड़ना ठीक न होगा। उन्हें आधा राज्य बाँट दीजिए। इसी में कल्याण है।"

दुर्योधन, कर्ण और शकुनी ने पितामह, आचार्य और विदुर पर पक्षपात करने का दोष लगाया; उनकी सम्मति को घोर अन्याय-पूर्ण बतलाया; परन्तु धृतराष्ट्र ने बड़े-बूढ़ों की सलाह खुशी से मान ली। विदुर जाकर पाण्डवों को बुला लाये। धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को बहुत समझाकर आधा राज्य दे दिया। खाण्डवप्रस्थ में राजधानी बनाकर पाण्डव सन्तोष के साथ प्रजा का पालन करने लगे। यही खाण्डवप्रस्थ पीछे इन्द्रप्रस्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अब भी दुर्योधन को शान्ति न मिली। किन्तु पाण्डव तो यथा-लाभ-सन्तोष से ही सुखी हो गये। वे एकान्त भाव से प्रजा का पालन करने में ही लग गये।

एक दिन एक गरीब ब्राह्मण, आधी रात को, रोता-चिल्लाता, पाण्डवों के मुख्य राज-द्वार पर पहुँचा। बेचारे की गाय चोर चुराये लिये जा रहे थे। अर्जुन के कानों में उसकी आवाज पहुँची। वे चौंक उठे। कान देकर सुनने लगे। बड़ी करुणा-भरी कातर वाणी थी। पीड़ित प्रजा की पुकार चुपचाप सही न गई। उठकर दौड़े उसके पास। अर्जुन को देखकर और भी रो-रोकर कहने लगा—"पाण्डवों के राज्य में बसने से मेरी गाय चोर ले जा रहे हैं। नहीं तो, मुझ-जैसे गरीब के घर में चोर क्यों आते?"

अर्जुन ने उसे बहुत समझाया-बुझाया। अनेक प्रकार से धैर्य धारण कराया। चोर से गाय छीन लाने की दृढ़ प्रतिज्ञा करके हथियारखाने की ओर दौड़े। उधर ही द्रौपदी के साथ बैठकर युधिष्ठिर बातचीत कर रहे थे। अर्जुन असमंजस में पड़ गये। सोचने का समय भी न था। यह ध्यान में रखते हुए भी कि उधर जाने से उनके प्रेमालाप में बाधा पड़ेगी और मुझे बारह वर्ष वनवास झेलना पड़ेगा, अर्जुन पीछे न हटे। हथियार बाँधकर उसी समय चोरों का पीछा किया और उनसे लड़कर ब्राह्मण की गाय छुड़ा लाये।

गाय पाकर ब्राह्मण असीसता हुआ घर गया; पर अर्जुन अपने कर्त्तव्य पर बड़ी गंभीरता से विचार करने लगे। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि धर्म की रक्षा के लिए बारह वर्ष

तक अवश्य ही वनवास करूँगा। युधिष्ठिर से अपना निश्चय सुनाया। उन्होंने कहा—"संकट के समय में, कर्त्तव्य की रक्षा के लिए, दैवयोग से यदि नियम-भंग हो गया, तो तुम्हारा क्या दोष ?"

नियम-व्रत-धारी अर्जुन ने सोचा—स्नेह के कारण बड़े भैया मुझे अपनी आँखों से ओट न होने देंगे। मुझे स्वयं अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होना चाहिए !

यह सोचकर उन्होंने बड़ा आग्रह करके बड़े भाई से आज्ञा ली। घरवालों और नगर-वालों को दुःख तो बहुत हुआ ; पर ऐसे विकट धर्मसंकट में अर्जुन को उनके संकल्प से विचलित करना भी तो बड़ी टेढ़ी खीर थी।

तेजस्वी अर्जुन तपस्वी के वेश में घर से निकल पड़े। देशाटन और तीर्थाटन करके दिन काटने लगे ! जितने तीर्थस्थान हैं, जितनी पवित्र नदियाँ हैं, सब देखे। वनों में मुनियों से मिले। पर्वतों के कन्दरां में तपस्वियों से मिले। स्वदेश की प्राकृतिक शोभा निरखते फिरे। देशाटन से ज्ञान और अनुभव की वृद्धि होती है।

एक दिन वे गंगा में स्नान कर रहे थे। ऐरावतवंशी कौरव्य नाग की अतीव सुन्दरी कन्या उलूपी उनपर मुग्ध हो गई। वह उन्हें अपने पिता की राजाधानी में ले गई। उसने विवाह करना चाहा। पर वे बहुत हिचके। अन्त में विवाह करना ही पड़ा। उलूपी के सच्चे प्रेम से वे बड़े सन्तुष्ट हुए। कुछ दिनों तक नई ससुराल में मौज उड़ाकर, फिर तीर्थयात्रा करने निकले। उलूपी के गर्भ से बभ्रुवाहन नामक वीर पुत्र हुआ।

घूमते-फिरते अर्जुन कलिंग देश के मणिपुर नामक नगर में जा पहुँचे। चित्रभानु वहाँ के राजा थे। उनके एक कन्या थी। नाम था उसका चित्रांगदा। रूप की खान और गुणों की पिटारी थी। वे उसपर मोहित हो गये। वह भी उनको चाहने लगी। परस्पर परिचय हो गया। प्रेमालाप होने लगा। मिलाप भी हो गया। फिर तो विवाह हो जाने पर अर्जुन तीन वर्षों तक वहीं घर-जमाई बनकर चैन की वंशी बजाते रहे।

न-जाने कैसी अच्छी सायत में घर से निकले थे। अनायास दो-दो विवाह हो गये। आधे से अधिक वनवास रनवास में ही कट गया ! भगवान देने लगते हैं, तो छप्पर फाड़कर देते हैं।

यात्रा निस्संदेह शुभ थी। लाभ-ही-लाभ आगे आया। मन बढ़ता गया, और आप भी आगे बढ़ते गये। मणिपुर से दक्षिण के समुद्र-तट की ओर चले। वहाँ मनमोहिनी प्रकृति की निराली छटा नजर आई। बड़ी ही सुहावनी शोभा थी। ठौर-ठौर बड़े ही रमणीय तपोवन थे। कहीं-कहीं मुनियों के आश्रम में ब्रह्मचारी विद्यार्थियों की मंडली विद्याभ्यास कर रही थी।

अर्जुन ने वहाँ के तीर्थों के दर्शन और नदियों में स्नान करने की इच्छा प्रकट की। विद्यार्थियों और मुनियों ने मना किया ; क्योंकि घाटों पर घड़ियालों का उपद्रव यहाँ तक बढ़ गया था कि नहाते-ही-नहाते कितने आदमी पानी में लापता हो चुके थे।

परन्तु अर्जुन-जैसा निडर वीर जल-जन्तुओं के भय से स्नान कैसे छोड़ सकता था ? जबरदस्ती गये स्नान करने । बस पकड़ी ग्राह ने टाँग । वह जल में खींचने लगा, वे तीर से जमीन पर खींचने लगे । इस खींच-तान में अर्जुन विजयी हुए । खींच लाये उसे जल से बाहर तीर पर । तबतक देखते क्या हैं कि घड़ियाल की जगह एक सुन्दर स्त्री निकल आई !

चकित होकर उससे नाम-धाम पूछा । वह बोली—"मैं अलकापुरी की अप्सरा हूँ । एक बार ब्राह्मण का अपमान किया था । उसी के शाप से घड़ियाल हुई थी । उसने कहा था कि जल से बाहर होते ही तेरा उद्धार हो जायगा । अबतक मैं ही सबको खींच ले जाती थी । आज आप ही मुझे खींच लाये । कृपा करके मेरी सङ्गिनी तीन सखियों का भी इसी प्रकार उद्धार कर दीजिए । वे भी शापग्रस्त हैं ।"

अर्जुन ने उन तीनों को भी शाप से छुड़ाया । इसी तरह चारों को तारकर प्रभास तीर्थ चले गये ; वहाँ से द्वारकापुरी बहुत दूर नहीं थी । भगवान श्रीकृष्ण को पता लग गया कि अर्जुन प्रभास-क्षेत्र में आये हुए हैं । झट रथ लेकर पहुँचे । उन्हें द्वारका ले गये । बड़ा आदर-सत्कार किया । बड़े प्रेम से राजमहल में रखा ।

दैव-योग की बात, भगवान कृष्णचन्द्र की बहन सुभद्रा के अनुपम रूप पर अर्जुन मुग्ध हो गये । सुभद्रा भी अर्जुन पर रीझ गई । भगवान श्रीकृष्ण ने दोनों का हार्दिक प्रेम परख लिया । उन्होंने अर्जुन को सलाह दी कि वे सुभद्रा का जबरदस्ती हरण कर ले जायँ; क्योंकि वीरता-पूर्वक कन्या-हरण की प्रथा क्षत्रियों में प्रचलित थी ; और बलराम जी पहले ही से सुभद्रा के विवाह की बातचीत पक्की कर चुके थे ; इसलिए हरण करने के सिवा और कोई चारा न था ।

एक दिन सुभद्रा रैवतक-पर्वत पर भ्रमण करने गईं । पीछे से रथ सजाकर अर्जुन भी चले । पहाड़ की सैर करके लौटते समय अर्जुन ने हाथ पकड़कर सुभद्रा को अपने रथ पर चढ़ा लिया । सुभद्रा भी मन-ही-मन अर्जुन को बर चुकी थी । इसलिए स्वयं रथ हाँकती हुई बोली—"आप पीछे की ओर से आनेवाली यादव-सेना से युद्ध कीजिए, मैं तेजी से खाण्डवप्रस्थ की ओर रथ हाँकती हूँ । भैया कृष्ण ने मुझे रथ हाँकने की अच्छी शिक्षा दी है ।"

रथ के घोड़े खाण्डवप्रस्थ की ओर दौड़े । जब द्वारकापुरी में अर्जुन द्वारा सुभद्रा-हरण का संवाद पहुँचा, तब बलरामजी क्रोध के मारे भूत हो गये । यादवों में खलबली मच गई । फौरन् यादव-सेना ने रथ का पीछा किया । विकट समस्या उपस्थित देखकर कृष्णजी ने यादवों से कहा—"तुम लोग अर्जुन से युद्ध में जीत नहीं सकते । व्यर्थ अपमान होगा । सुभद्रा के योग्य वर अर्जुन से बढ़कर संसार में कहाँ मिलता ? जो हुआ सो अच्छा ही हुआ । अर्जुन को बुलाकर विवाह कर देना चाहिए । अब झगड़ा-झमेला करने से कुछ काम न सरेगा ।"

श्रीकृष्ण की बातें सबके दिल में जँच गईं । अर्जुन सादर वापस बुलाये गये । धूम-धड़ाके से विवाह हुआ । एक वर्ष तक अर्जुन और सुभद्रा द्वारका में पारस्परिक प्रेमानन्द का स्वाद लेते रहे । इसी बीच में उन्होने यदुवंशी वीर सात्यकि को अपना चेला तैयार किया । वनवास की अवधि जब पूरी हो चली, तब बहुत-सा दान-मान पाकर सुभद्रा के

साथ खाण्डवप्रस्थ के लिए विदा हुए। इसी यात्रा में भगवान श्रीकृष्ण से गाढ़ी मित्रता हुई।

[४]

"वयं पंच शतं ते च मिथो युद्धे ह्युपस्थिते।
प्राप्ते तु पर-संग्रामे वयं पंचशतोत्तरम्॥"

राजसूय, जूआ और वनवास

गरमी का दिन था। पृथ्वी तवे की तरह तप रही थी। दिशाएँ कुम्हार का आवाँ हो रही थीं। भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन एक सघन वृक्ष की शीतल छाया में बैठे बातें कर रहे थे। इतने में ब्राह्मण का रूप धारण कर अग्नि-देवता आये। बोले—"यज्ञों की भरमार से मुझे अजीर्ण रोग हो गया है। खाण्डव-वन में अनेक जड़ी-बूटियाँ हैं। यदि मैं इस वन को जला सकूँ, तो मेरे पेट की गड़बड़ी दूर हो जाय। इस सुन्दर वन पर इन्द्रदेव की बड़ी ममता है। जब जलाने लगता हूँ, वरुण देव को तैनात कर देते हैं। बस झट मेघ मुस्तैद हो जाते हैं। मैं किसी तरह जला नहीं पाता। यदि आप लोग दया करें तो मेरा बड़ा उपकार हो।"

भगवान मुस्कुराये। अर्जुन की भुजाएँ फड़कीं। बोले—"अग्निदेव, मैं इन्द्र के विरुद्ध आपकी रक्षा कर सकता हूँ; परन्तु देवराज का सामना करने के लिए दिव्य अस्त्रों की आवश्यकता होगी। यदि आप दिव्य अस्त्र दे सकें, तो मैं निश्चय ही आपकी इच्छा पूरी कर दूँगा।"

अग्निदेव गरजमन्द थे। अपना मतलब साधने के लिए उन्होंने अर्जुन की माँग पूरी की। अक्षय रथ दिया, जिसमें श्वेत रंग के दिव्य घोड़े जुते हुए थे। अक्षय तरकस और गाण्डीव नामक अक्षय धनुष दिया। उसी समय से अर्जुन का नाम गाण्डीवधन्वा और गाण्डीवी प्रसिद्ध हुआ। युद्ध की दिव्य सामग्री पाकर अर्जुन का साहस चौगुना हो गया।

अग्निदेव खाण्डव वन जलाने लगे। अर्जुन रखवार थे। सारा जंगल अग्नि की भयंकर ज्वालाओं से घिर गया। जंगली जीव-जन्तु जल मरे। सिंह, बाघ, भालू, चीता—सब स्वाहा। वरुणदेव मेघों की सेना लेकर चढ़ आये; पर अर्जुन ने सबको तितर-बितर कर दिया। उसी जंगल का निवासी मय-दानव अर्जुन के पास आकर निहोरा-बिनती करने लगा। उसका गिड़गिड़ाना सुनकर अर्जुन के मन में दया आई। उन्होंने उस शरणागत की जान बचा दी।

मय-दानव अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने इस उपकार के बदले में अर्जुन की कुछ सेवा करनी चाही। अर्जुन बोले—"शरणागत की रक्षा करना मेरा धर्म है। मैं क्षत्रिय हूँ। उपकार का बदला न लूँगा।"

परन्तु मय-दानव ने बड़ा हठ किया। अर्जुन फिर बोले—"अपनी इच्छा और प्रसन्नता के अनुसार तुम जो चाहो सो करो, मैं तो जबान भी नहीं हिला सकता।"

मय-दानव ने बड़े सन्तोष के साथ कहा—"मैं बहुत ही अच्छी कारीगरी जानता हूँ। अपनी शिल्प-कला का एक निहायत नफीस नमूना आपकी राजधानी में बनाऊँगा। अपनी पसन्द से उसको खूब सवारूँगा। इन्द्र की सभा भी उसके आगे पानी भरेगी। अलावा इसके, अपनी ओर से एक-दो चिह्न भी देता हूँ।"

मय ने अर्जुन को एक दिव्य शंख दिया। उसका नाम था देवदत्त। भीम को एक गदा दी। वह सोने की थी। उसमें हीरे-मोती जड़े थे। दरबार तो इतना अच्छा बनाया कि सचमुच इन्द्र-सभा मात हो गई। खाण्डवप्रस्थ नगर की शोभा चौगुनी बढ़ गई। दूर-दूर से लोग उसे देखने आने लगे।

एक बार नारद जी आये। पाण्डवों की उन्नति देखकर बहुत प्रसन्न हुए। बोले—"तुम लोगों पर भगवान की बड़ी कृपा है। द्रौपदी-सी सुन्दरी स्त्री मिल गई। ऐसा सुन्दर भवन बन गया। संसार में धाक जम गई। दिव्य-अस्त्र और घोड़े भी मिले। शक्ति का डंका पिट गया। चारों ओर यश छा गया। यह सब धर्मराज के पुण्य का प्रभाव है, अर्जुन का प्रताप है। जहाँ धर्म है, वहीं सुख और सम्पत्ति भी। अब तुम लोग राजसूय करो। तभी यह ऐश्वर्य और बल-पराक्रम सफल होगा। तभी इस सम्पत्ति और शक्ति की शोभा होगी।"

पाण्डवों ने मुनिजी का उपदेश मान लिया। भगवान श्रीकृष्ण से सलाह कर यज्ञ की तैयारियाँ करने लगे। युधिष्ठिर की आज्ञा से चारों भाई चारों दिशाओं में दिग्विजय करने निकल गये। अर्जुन अनेक राजाओं को जीतकर बहुत-सा धन संग्रह कर लाये। सभी राजाओं ने उनका लोहा मान लिया। संसार में पाण्डवों का बोलबाला हो गया। भारत के सिवा चीन, तिब्बत, फारस, काबुल आदि देशों में भी उनकी तूती बोलने लगी।

यज्ञ में देश-देशान्तर के राजा जुटे। बड़ी धूमधाम से यज्ञ हुआ। कौरव भी आये थे। भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि भी पधारे थे। पाण्डवों ने सबका ऐसा सत्कार किया कि लोग मुग्ध हो गये। पाण्डवों का ऐश्वर्य देखकर दुर्योधन की नानी मर गई। कर्ण और शकुनि से सलाह कर वह पाण्डवों की बुराई सोचने लगा। पर भगवान के भक्तों की बुराई कौन कर सकता है?

यज्ञ में सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा हुई। श्रीकृष्ण का यह सम्मान दुर्योधन को बहुत खला। इतना खला कि घर लौट कर उसने खाना-पीना छोड़ दिया। खबर मिली अन्धराज को। भगवान ने बेचारे को बड़ा अभागा बनाया था। आखें न होने से संसार में तो अँधेरा छा ही गया था, कुपुत्र के कारण हृदय में भी अँधेरा-ही-अँधेरा था। दुर्योधन को बुला कर उन्होंने बहुत समझाया। पर उसके चित्त में किसी की एक बात भी न धँसी। उसके इशारे से शकुनि ने जूए का प्रस्ताव पेश किया। अन्धराज ने कहा—"जूआ सर्वनाश का घर है। मैं जूआ खेलने-खिलाने की राय हरगिज न दूँगा।"

दुर्योधन झुँझलाकर उठ चला। क्रोध के मारे रोने लगा। विष खा जाने की धमकियाँ देने लगा। आखिर उसके बाल-हठ के सामने पिता को झुकना पड़ा।

जूआ खेलने की तैयारी होने लगी। पाण्डवों को नेवता भेजा गया। युधिष्ठिर को जूए का बड़ा शौक था। कुटिल शकुनि बड़ा भारी जुआड़ी था। उसके ऐसा पाँसा

फेंकनेवाला उस समय संसार में कोई न था। जूआबाजी में बिल्कुल बेजोड़ था। उसीके भरोसे दुर्योधन ने यह षड्यन्त्र रचा।

पाण्डव आये। जूआ शुरू हुआ। नहीं, अन्याय का तमाशा, महाभारत का सिलसिला, पाण्डवों का अभाग्य और कौरवों का पतन शुरू हुआ। शकुनि के झाँसे और पाँसे के फेर में पड़कर पाण्डव सर्वस्व हार गये। अपने-आपको भी हार गये, द्रौपदी तक को हार गये। दुर्योधन फूलकर कुप्पा हो गया। कर्ण मूँछों पर ताव देने लगे। शकुनि उछलने लगा। मंत्र से बंधे हुए सर्प की तरह पाण्डव बेबस हो गये। सरबस गँवाकर युधिष्ठिर पछताने लगे।

दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन जबरदस्ती द्रौपदी को भरी सभा में खींच लाया। वह कपड़े से होने के कारण सभा में आने योग्य नहीं थी। दुर्योधन का यह अत्याचार देखकर भी सारी सभा मौन रही। भीष्म और द्रोण ने अपने कानों पर हाथ देकर सिर झुका लिया। पाण्डवों ने आँखें नीची कर लीं। द्रौपदी ने उन्हें बहुत धिक्कारा। पर क्या करते बेचारे, लाचार थे! अर्जुन केवल युधिष्ठिर का रुख देखते रह गये, नहीं तो प्रलय मचा देते। बल्कि भीम ने क्रोधान्ध विषधर की तरह बहुत फुफकारा। अर्जुन उन्हें सदा पकड़े रह गये। पर अर्जुन के जोर भर अँकवार में दबाये रहने पर भी दाँत पीस और हाँथ मलकर भीम बहुत गरजे-तड़पे, गदा लेकर कई बार दुष्टों की ओर लपके, भयंकर प्रतिज्ञाएँ भी कीं। सचमुच, अगर अर्जुन उन्हें न रोकते तो उस समय के क्रोध में भीम अपने प्राणों पर खेल जाते, शायद महाभारत-युद्ध की आवश्यकता उसी समय दूर कर देते।

भगवान ने द्रौपदी की लाज रख ली! धृतराष्ट्र को दुर्योधन का यह अत्याचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने पाण्डवों को बुलाकर समझाया। फिर उनका राजपाट लौटा दिया। वे खाण्डवप्रस्थ चले। यह देख चण्डाल-चौकड़ी खलबलाई। शकुनि और कर्ण ने दुर्योधन को फिर पट्टी पढ़ाई। वह बाप के पास दौड़ गया। झुँझला कर बोला—"आपने सारा किया-धरा चौपट कर दिया। मेरे कलेजे का काँटा निकल चुका था। आपने फिर उसमें बर्छी चुभो दी। अच्छी बात है, अब आप उन्हीं को लेकर जुड़ाइए, मैं अभी कटार भोंक कर मरने जा रहा हूँ।"

धृतराष्ट्र का होश-हवास गुम हो गया। व्याकुल होकर बोले—"ना बेटा, जान मत दे, जो कह सो करूँ। पाण्डवों के साथ अन्याय हुआ था। मैंने तो अपनी समझ से उचित ही किया है; नहीं तो दुनिया क्या कहती? तुझे कमी किस बात की है। भगवान से भी डर बेटा!"

पीछे से कर्ण शकुनि पम्प भर रहे थे। भला वह क्यों बाप की सुनने लगा। अड़ गया। जिद मनवा कर ही उठा। फिर पाण्डव बुलाये गये। जूआ जमा। इस बार सिर्फ एक बाजी रखी गई, बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास!

अज्ञातवास का मतलब यह कि एक वर्ष छिपकर लापता रहना पड़ेगा। अगर उस एक साल के अन्दर पता लग जाय या कहीं कोई किसी तरह पहचान ले, तो फिर बारह वर्ष

वनवास ! यही शर्त दाँव पर रखी गई। पाण्डवों का पासा उलट गया, दुर्योधन का पौ-बारह रहा।

विपद आने से पहले मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। एक बार युधिष्ठिर देख चुके थे कि शकुनि चौसर खेलने में कितना चौकस है। पर भाग्य के फेर से दुबारा अपनेको फँसाया। इस बार बुरी तरह फँसे। कौरवों का पासा पड़ गया।

युधिष्ठिर पूरे धर्मात्मा थे। मगर जूआ खेलने की लत बुरी थी। एक ही दोष ने सारे गुणों पर पानी फेर दिया। वही दोष चन्द्रमा में कलंक था। एक बूँद विष घड़ाभर अमृत बिगाड़ देता है। जबतक वे धर्म पर डटे रहे, लाभ के सिवा हानि न हुई; हानि के अन्दर से भी लाभ ही निकला। पर ज्यों ही अधर्म में चित्त दिया, तत्काल फल मिल गया; और फल भी ऐसा कड़वा कि मरते दम तक स्वाद का तीखापन न भूले !

भावी के अनुसार ही बुद्धि होती है। होनी होकर ही रहती है। ईश्वर जो करता है, भला ही करता है। पाण्डव कष्ट न भोगते, तो कौरवों के पाप का घड़ा जल्दी न भरता। ईश्वर के भरोसे चुपचाप अन्याय सह लेना अन्यायी पर गजब ढाना है। जो शान्त भाव से अत्याचार सहते हैं, वे अत्याचारी के नाश के दिन निकट बुलाते हैं।

युधिष्ठिर के हृदय से ईश्वर का विश्वास कभी दूर नहीं हुआ। वे शान्ति के साथ अत्याचार सहते गये। भाइयों के जोर देने पर भी अन्याय का विरोध नहीं किया। ईश्वर का सिंहासन डोल उठा। निर्दोष की आह फट पड़ी। पाण्डव की चुप्पी कौरवों पर गाज बनकर गिरी।

किन्तु, अन्त में चाहे जो हुआ, पहले तो पाण्डवों पर ही बीती, और बीती भी ऐसी बुरी तरह कि कौरवों के आसरे से जीनेवाले कुछ भलेमानसों के भी दिल हिल गये। जिसने उनका दुःख देखा या सुना, वही पिघल उठा। सबके हृदय में उनके लिए सहानुभूति थी; क्योंकि वे सत्य के लिए मर-मिट रहे थे।

अन्त में विदुर के घर माता को छोड़कर द्रौपदी के साथ पाँचो भाई जङ्गल को निकल गये। सूर्य्य की पूजा कर द्रौपदी ने एक दिव्य पात्र पाया था। उसमें बड़ी पवित्रता से वह रसोई बनाती। वह रसोई इतनी स्वादिष्ट और काफी होती कि अतिथियों की आवभगत में भी कोई कसर न रहने पाती। जिन लोगों के दिल में पाण्डवों के लिए दर्द था, वे जङ्गल में ही जाकर उनसे मिलते। उसी दिव्य पात्र की महिमा से पाण्डव उन्हें विविध भाँति के भोजन खिलाकर उनका आदर-सत्कार करते।

काम्यक-वन से पाण्डव जब द्वैत-वन में गये, तब व्यासजी उनके पास आये। पाण्डवों ने उनकी बड़ी आवभगत की। उन्होंने सन्तुष्ट होकर अर्जुन को एक मन्त्र सिखाया, जिससे वे देवताओं को प्रसन्न कर दिव्य अस्त्र पा सकते थे। मन्त्र सीखकर अर्जुन उत्तराखण्ड में चले गये; हिमालय पर बड़ी दूर निकल गये।

एक जगह पर्वत की शोभा विचित्र थी। कंकण की तरह चारों ओर से पहाड़ का घेरा था। बीच में एक ऊँचा शिखर था। उसपर बड़े लम्बे-लम्बे देवदारु के पेड़ थे, मानों आकाशरूपी शामियाने के चोब हों। शिखर से कुछ नीचे समतल पर एक सुन्दर तालाब था। जल उसका आइना हो रहा था। उसमें लाल कमल खिले हुए थे।

फूलों पर भौंरे गूँजते थे। हंसों के छोटे-छोटे बच्चे तैर रहे थे। अर्जुन का मन रम गया। फिर क्या, आसन वहीं जम गया।

मन्त्र जपते-जपते महीनों बीत गये। अर्जुन की सच्ची निष्ठा ने देवताओं के देवता महादेव का ध्यान खींचा। महादेवजी कैलास से पार्वती के साथ उतर पड़े। चले एक भक्त की तपस्या सफल करने। उसी समय अर्जुन को अकेला पाकर एक सूअर घात करने चला। अर्जुन शिवजी के ध्यान में मग्न थे। तबतक बनैला सूअर गुर्राता हुआ पास पहुँच गया। भक्त की रक्षा के लिए शिवजी भी किरात के भेष में पहुँच गये। सूअर को दौड़ा आते देख अर्जुन सावधान हो गये। झट कमान पर तीर चढ़ाकर सूअर की खबर ली। इधर शिवजी ने भी सूअर पर तीर छोड़ दिया। सूअर वहीं ढेर हो गया।

अब किरात और अर्जुन में बहस छिड़ी। अर्जुन ने कहा 'शिकार मेरा है।' किरात ने कहा—'तेरा कैसा, मेरा है।' बात-ही-बात में बात बढ़ गई। अर्जुन के दिल में किरात के हठ से बड़ा रंज पैदा हुआ। उन्होंने बाण चला दिया। अब तो झगड़े की आग में घी पड़ गया। किरात ने जोश में आकर कहा, तुझमें जितनी शक्ति हो, उठा मत रख, आजमाइश कर ले; तू भी क्या समझेगा कि एक किरात से पाला पड़ा था। अर्जुन का क्रोध और भभक उठा। अपनी जानकारी-भर सब तरह के बाण चला चुके, पर कुछ फल न हुआ। किरात ठठाकर हँसा। उसके हँसते ही उनके हाथ से गाण्डीव छूट पड़ा!

इतने पर भी अर्जुन की हिम्मत न टूटी। वे तलवार चलाने लगे। किरात का बाल भी बाँका न हुआ। उसने हुंकार किया। तलवार के दो टुकड़े हो गये! फिर भी वे ठण्ढे न हुए, किरात से भिड़ ही तो गये; कुश्ती के पेंच मारने लगे। पर उसने उन्हें पकड़कर अपनी छाती से दबा दिया। उन्हें मालूम हुआ, अब जान गई। कुछ देर तक बेहोश-से रहे। जब सचेत हुए, तब देखा कि किरात सामने खड़ा हँस रहा है।

अर्जुन बहुत शरमाये। झट शिवजी की पूजा में लग गये। शुद्ध मिट्टी की मूरत बनाई। फूलों की एक माला गूँथी। मूर्त्ति पर ज्योंही माला चढ़ाई, किरात के गले में वह जा पड़ी। अर्जुन की आँखें खुलीं। ज्ञान पर पड़ा हुआ परदा हटा। शिवजी ने अपनी माया खींच ली। अर्जुन ने अपने इष्टदेव को पहचाना, चरणों में गिर पड़े। बड़ी विनती की। क्षमा माँगी। बहुत पछताये भी।

शिवने अपना असली रूप प्रकट किया। दर्शन से अर्जुन कृतार्थ हुए। हाथ फेर कर शिवजी ने शरीर की पीड़ा हर ली। अर्जुन को छाती से लगाते हुए प्रसन्न मन से बोले—"बेटा, तेरी वीरता और साहस तथा भक्ति देखकर मैं फूले अंग नहीं समाता। बोल, क्या चाहता है? जो इच्छा हो, माँग ले। आज तुझे मुँहमागा फल देना चाहता हूँ। तूने खूब प्रसन्न किया।"

अर्जुन ने हाथ जोड़कर पाशुपत अस्त्र माँगा। औढरदानी आशुतोष ने तत्काल वह अस्त्र देते हुए कहा—"ले, मगर खबरदार, इसे कभी चलाना मत; नहीं तो प्रलय हो जायगा। संसार में इसे रोकनेवाला कोई नहीं। मनुष्य पर तो इसे छोड़ना ही नहीं कभी।"

बम-भोला-बाबा एक विकट थाती देकर चले गये। अर्जुन ने सोचा—"जब इससे कोई काम ही न लूँगा, तब आखिर यह है किस मर्ज की दवा। बूढ़े बाबा ने अच्छा

फुसलाया ! इससे तो अच्छा यह था कि कुछ और ही माँग लिये होता। इतनी तपस्या घलुए में चली गई !"

इसी सोच में थे कि यम, वरुण और कुबेर आ पहुँचे। उन लोगों ने महादेवजी का कृपापात्र समझकर अपनी ओर से एक-एक अस्त्र दिया। अर्जुन ने अब समझा कि अड़बंगी बाबा सीधी तरह कुछ न देकर यों बहुत-कुछ दे गये। अब तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

इतने में देवताओं के राजा इन्द्र का रथ उतर आया। सारथी ने प्रार्थना की—'आपके पिताजी ने आपको याद किया है।' अर्जुन हँसते-हँसते रथ पर सवार हुए। देवलोक में पहुँचकर पिता के चरणों में सिर नवाया। पिता ने गले से लगाकर बड़ा प्यार किया और कहा—'कुछ दिन यहाँ रहकर तुम स्वर्ग की अस्त्र-विद्या सीख लो, मैं प्रबंध किये देता हूँ।'

अर्जुन इस लोक की अस्त्र-विद्या में निपुण थे ही, देवलोक की अस्त्र-विद्या में भी प्रवीण हो गये। अब उनके इस लोक में आने का समय आ चला।

एक दिन देवराज इन्द्र ने उनके दिलबहलाव के लिए जलसे की तैयारी की। स्वर्ग की अप्सराएँ बुलाई गईं। बड़े-बड़े गानेवाले गन्धर्व जुटे। सभा लगी। इन्द्र के सिंहासन की बगल में अर्जुन बैठे थे, मानों इन्द्र के अवतार ही हों। उनके रूप पर इन्द्र की प्यारी अप्सरा उर्वशी मोहित हो गई।

सभा उठने पर अर्जुन अपने भवन में विश्राम करने चले गये। आधी रात को बन-ठनकर उर्वशी पहुँची। उसने अपनी इच्छा जताई। अर्जुन ने सिर झुका लिया। बोले—"तुम मेरे पूज्य पिता की अप्सरा हो। इसलिए, मेरी माता के समान हो। मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। तुम्हारे चरणों में सिर टेकता हूँ। मुझे क्षमा कर दो।"

उर्वशी झुँझला उठी। उसने शाप दिया—"जा, तू हिजड़ा होकर एक साल तक स्त्रियों के बीच दिन बितायेगा।"

अर्जुन ने सिर नवाकर शाप ओढ़ लिया। रात-भर चिन्ता से बेचैन रहे। भोर होते ही बात इन्द्र तक पहुँची। वे उर्वशी पर बहुत बिगड़े। अर्जुन को भी समझाया—"बेटा, डर की कोई बात नहीं। मैं आशीर्वाद देता हूँ, शाप का एक वर्ष तुम सुख से काटोगे। मैं सदा तुम्हारी खोज-खबर लेता रहूँगा।"

पिता की बात सुनकर अर्जुन निश्चिन्त हो गये; पर उनका चित्त उचट गया। भाइयों की चिन्ता उन्हें बहुत सताने लगी। पिता से आज्ञा लेकर भाइयों के पास चले।

इधर भाई भी उनके लिए व्याकुल थे। वे अर्जुन की खोज में गन्धमादन पहाड़ तक चले आये थे। वहीं स्वर्ग से अर्जुन उतरे। भाई-भाई गले मिले। द्रौपदी के दिल की कली खिल गई। अस्त्र-लाभ की बातें सुनकर धर्मराज को बड़ा आनन्द हुआ। भीम उछलने-कूदने लगे।

वहाँ से पाण्डव फिर द्वैत वन चले आये। इधर दुर्योधन सदा पाण्डवों की ताक में था। उसे पता लगा कि पाण्डव द्वैत-वन में हैं। फिर क्या, वह अपने पूरे राजसी ठाट में द्वैत-वन की ओर चला।

दुर्योधन ने, अपना ऐश्वर्य दिखाकर पाण्डवों को चिढ़ाने-कुढ़ाने के लिए, बड़ी शान से यात्रा की। सलाह यह हुई कि जंगल में ही घेरकर पाण्डव मार डाले जायँ, किसी को पता भी न चले कि पांडव कहाँ गये—क्या हुए, फिर कोई खटका ही न रह जाय।

उधर इन्द्र ने अपने प्यारे पुत्र की रक्षा के लिए एक गन्धर्व को तैनात किया। उसने बीच ही रास्ते में दुर्योधन की सेना को तितर-बितरकर उसे बाँध लिया। उसे ही नहीं, उसके साथी-संगी और स्त्रियां को भी पकड़ लिया। लाचार होकर उसने युधिष्ठिर के पास दूत भेजा। दूत ने जाकर युधिष्ठिर से दुर्योधन की दुर्दशा और बेबसी कह सुनाई।

धर्मराज स्वभाव से ही दयाशील और परोपकारी थे। भीम और अर्जुन को झट हुक्म दिया कि दुर्योधन को छुड़ा लावें। शत्रु भी संकट में सहायता चाहे, तो देना चाहिए।

भीम और अर्जुन तो दुर्योधन की दुर्गति का समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे। उनकी इच्छा थी कि दुर्योधन को अपनी करतूतों का फल भोगने दिया जाय। पर धर्मराज की आज्ञा के सामने उन्हें अपनी इच्छा की कुछ परवा न थी। बड़े भाई की आज्ञा सिर चढ़ाने में वे कभी जरा चीं-चपड़ नहीं करते थे। पाण्डवों का भाईचारा खूब निभा।

द्रौपदी को भी युधिष्ठिर की यह सरलता या सहानुभूति अच्छी न लगी। पर युधिष्ठिर ने सबको समझाया—"तुमलोग राजनीति या धर्म्मशास्त्र नहीं समझते। अवसर पाकर शत्रु से बदला लिया जाता है। अभी वह अवसर नहीं आया है। संकट में फँसे हुए शत्रु पर दया की जाती है, वार नहीं किया जाता। सच्चा क्षत्रिय तो खुले मैदान ललकारकर ही वार करता है। बेबसी की हालत में शत्रु से बदला लेना बड़ी भारी कायरता है। और, जब दूसरा कोई हमारे परिवार के किसी आदमी को सता रहा है, तब हमारा धर्म्म है कि हम उसकी मदद करें। जब हमारे साथ दुर्योधन लड़ने लगेगा, तब वह सौ भाई एक तरफ और हम पाँच भाई दूसरी तरफ होंगे। लेकिन हम दोनों में से अगर किसी एक को कोई दूसरा उँगली भी दिखाएगा, तो हम एक सौ पाँच भाई होकर उसकी आँखें निकाल लेंगे। अब समझे?"

समझे तो सब पहले से ही थे। किसी ने सवाल-जवाब थोड़े किया था। इतनी हिम्मत किसकी थी। मन में चाहे जो हो, बड़े भाई का हुक्म हो जाने पर आगा-पीछा करना कोई जानता ही न था। बड़े भाई की आज्ञा में आनाकानी कैसी?

अर्जुन गाण्डीव और भीम गदा लेकर चल पड़े। फिर गन्धर्व की क्या मजाल कि आँख बराबर कर सके; दुर्योधन को छोड़ते ही बना। बेचारा मारे शर्म के गड़ गया!

अर्जुन बड़े आदर के साथ दुर्योधन को दल-बल-सहित युधिष्ठिर के पास लाये। आगे-आगे भीम अकड़ते और गदा भाँजते आये। दुर्योधन दिल-ही-दिल में कट गया। उस पर सौ घड़े पानी पड़ गया।

युधिष्ठिर ने उसे बहुत समझाया। ऊपर से तो उसे किसी तरह समझ ही लेना पड़ा, पर भीतर जो प्रचण्ड ज्वालाएँ धधक रही थीं, उन्हें सातों समुद्र का जल भी बुझा सकता

या नहीं, इसमें भी सन्देह है। युधिष्ठिर की आँखें बचाकर द्रौपदी और भीम बहुत हँसे; पर अर्जुन तो हाथ बाँधे केवल बड़े भाई की सेवा में डटे रहे।

अर्जुन की शिष्टता पर दुर्योधन बड़ा खुश हुआ। उसने आग्रह किया—कुछ माँगो। अर्जुन की इच्छा न थी; पर बड़े भाई युधिष्ठिर ने कहा—"एक तो दुर्योधन राजा है, दूसरे बड़ा भाई ; उसका आग्रह मान लो।"

अर्जुन शान्त भाव से मुस्कुराते-मुस्कुराते बोले—"अच्छा, मेरी यह माँग आप ही के पास थाती रहे; जब जरूरत होगी, पूरी करा लूँगा।"

दुर्योधन मान गया। पाण्डवों ने बड़े प्रेम से उसको बिदा किया। पर वह अपनी दुर्गति और शत्रु की शक्ति देख अत्यंत लज्जित हुआ।

दुर्योधन को बिदा करने के बाद पाण्डव कुछ ही दिन वनवासी रहे। तबतक अज्ञातवास का समय आ पहुँचा। वे भेष बदलकर जंगल छोड़ चले। जाते-जाते मत्स्य-देश के राजा विराट की राजधानी में पहुँचे। नगर के बाहर, श्मशान के पास, शमी का एक ऊँचा वृक्ष था। उसीपर अपने हथियार रखकर बारी-बारी से नगर में प्रवेश किया। द्रौपदी और पाँचों भाई अपना-अपना नाम बदलकर राजा विराट की सेवा में रहने लगे। दुर्दिन में राजा को भी चाकरी करनी पड़ती है!

अर्जुन ने अपना नाम 'बृहन्नला' बताया और कहा—"मैं गाना-बजाना और नाचना अच्छा जानता हूँ।"

राजा ने उन्हें अपनी कन्या 'उत्तरा' का शिक्षक नियुक्त किया। वे राजमहल में रह-कर उसे गाना-बजाना और नाचना सिखाने लगे। उर्वशी का शाप यहीं फलित हुआ। पर इन्द्र के आशीर्वाद से उनकी शक्ति ज्यों-की-त्यों बनी रही। खोजे की शकल में रहने पर भी उनकी बहादुरी कुछ कम न हुई। उत्तरा को उन्होंने संगीत-शास्त्र और नृत्यकला में अत्यन्त निपुण कर दिया।

इसी तरह दिन-पर-दिन बीतने लगे। संयोग की बात विराट का साला और सेनापति 'कीचक' द्रौपदी के रूप पर मोहित हो गया। एक दिन उसने द्रौपदी को छेड़ा। द्रौपदी ने भीम से कहा। भीम ने गुप्त रूप से कीचक का गोधन कूट डाला। कीचक बड़ा बली था। उसने विराट के राज्य पर होनेवाले कितने ही बाहरी हमलों को रोका था। उसके डर से कोई विराट पर चढ़ाई करने की हिम्मत न करता था। पर उसके मरते ही विराट के शत्रुओं ने सिर उठाया।

त्रिगर्त्त-देश का राजा सुशर्मा कई बार कीचक से हार खा चुका था। वह दुर्योधन का मित्र था। दुर्योधन को वह विराट के विरुद्ध उभाड़ने लगा। किन्तु दुर्योधन उस समय अधमरा-सा हो रहा था। पाण्डवों के अज्ञातवास का अन्त ज्यों-ज्यों निकट आ रहा था, वह चिन्ता और व्याकुलता से अधीर होता जाता था। चारों दिशाओं से लौटे हुए उसके दूतों ने कोरा जवाब दे दिया कि पाण्डवों का कहीं पता नहीं है।

दुर्योधन के भरोसे सुशर्मा ने अवसर चूकना ठीक न समझा। चढ़ गया विराट पर सेना लेकर। पर बेचारे को मुँह की खानी पड़ी। पाण्डवों को साथ लेकर विराट ने उसे

मजा चखा दिया। वह जान लेकर भागा! उसकी हार का हाल सुना दुर्योधन ने। आगबबूला हो उठा—'विराट की इतनी मजाल! अच्छा, चुटकियों में ले बीतूँगा; खटमल की तरह मसल डालूँगा; मेरे जीते-ही-जी इतनी हिम्मत?'

कौरव-सेना उमड़ चली विराट नगर की ओर। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य्य—सब चले। पहले कौरव-सेना ने पहुँचते ही विराट की गौओं को घेर लिया। सहदेव गौओं के रखवार थे। उन्होंने नगर में खबर भेजी कि कौरव-सेना गौओं को लिये जा रही है।

राजमहल में हाहाकार मच गया। कौरवों का सामना करना हँसी-खेल नहीं था। विराट का बेटा उत्तरकुमार अपनी कायरता छिपाने के लिए कहने लगा—"क्या करूँ, आज कोई चतुर सारथी होता, तो कौरवों को पाठ पढ़ा देता। चतुर सारथी के बिना कौरवों से कैसे लड़ने जाऊँ। अफसोस! लाचारी है।"

उत्तरकुमार की लम्बी-चौड़ी बातें सुनकर अर्जुन और द्रौपदी मन-ही मन हँस रहे थे—'बच्चू ने कौरवों से लड़ना ठट्ठा समझ लिया है; कभी लड़ाई के मैदान की सूरत भी न देखी होगी; पर आज चतुर सारथी बिना लाचारी दिखा रहे हैं; पितामह और आचार्य के सामने जाते ही तो पाजामा बिगड़ जायगा; मगर भयभीतों के बीच में डींग हाँककर आकाश-पाताल एक किए हुए हैं। जाओ बच्चू, छठी का दूध याद आ जायगा।'

अर्जुन का इशारा पाकर द्रौपदी ने मुस्कुराते-ही-मुस्कुराते रानी से कहा—"रथ हाँकने में बृहन्नला बड़ा चतुर है। अगर वह उत्तरकुमार का सारथी बनकर जाय, तो अवश्य जीत होगी।"

रानी प्रसन्न होकर बोलीं—"वाह! घर ही में वैद्य, तो मरना कैसा? अब हमारा गो-धन बच जायगा।"

झट बृहन्नला को उत्तरकुमार का रथ लेकर युद्ध में जाने की आज्ञा मिली। रोगी जो खाना चाहता था, वैद्य ने वही बताया। अर्जुन झट तैयार हो गये। उत्तरा ने अपने उस्ताद को युद्ध में जाते देखकर हँसते और ठिनकते हुए कहा—"भैया के मारने से जब वीर गिर पड़ें, तब उनके रंग-विरंगे कपड़े उतारकर मेरी गुड़ियों के लिए जरूर लाइएगा।"

अर्जुन ने मन-ही-मन मुस्कुराकर कहा—"तुम्हारे भैया के मारने से कौरव-सेना का एक पैदल सिपाही भी गिर जाय, तो अहोभाग्य ही समझना।"

उत्तरा से उसकी गुड़ियों के लिए रँगीले-भड़कीले कपड़े लाने का वादा करके अर्जुन रथ साजने चले गये। रथ तैयार होने पर उत्तरकुमार सवार हुआ। अर्जुन ने मुस्कु-राते-मुस्कुराते रथ आगे बढ़ाया। जुझाऊ बाजे बजने लगे। पीछे-पीछे चतुरंगिणी सेना भी चली।

अज्ञातवास के दिन पूरे हो चुके थे। इसीलिए, अर्जुन सोचते जाते थे—'आज प्रकट होकर कौरवों के मन में हड़कंप डालना चाहिए।'

जब रथ दौड़ाकर कौरव-सेना के पास पहुँचे, तब वह ललकार कर लौट पड़ी। अब तो उत्तरकुमार के प्राण सूख गये। वह थरथरा उठा। हाथ से धनुष छूट पड़ा। रथ से झट कूदकर बेतहाशा भगा।

अर्जुन अपनी सेना को धीरज धराते हुए रथ रोककर दौड़े उसके पीछे। पकड़कर बाँह झकझोरते हुए बोले—"अब कहाँ भागे जाते हो, बच्चू! वहाँ तो ऐसी बढ़-बढ़कर बातें करते थे, मानों कौरव-सेना को चबेना कर जाओगे, अब यहाँ फौज देखते ही हवास गुम हो गई! किसके बूते के भरोसे वहाँ उतनी शेखी छाँट रहे थे? क्या इसी बिरते पर शान बघारने चले थे? कौरव-सेना को क्या भेड़ों का दल समझ रखा था? पीठ दिखाने के लिए ही चतुर सारथी खोजते थे! खैर, डर एकदम छोड़ दो, चलो मेरे साथ उस श्मशान तक! मैं ही अर्जुन हूँ। मेरे हथियार वहीं शमीवृक्ष पर रखे हैं। उन्हें उतार लाकर मैं गौओं को उबारूँगा। तुमको निडर होकर रथ हाँकना पड़ेगा। मैं तुम्हारी रक्षा के लिए तैयार हूँ। तुम तनिक चिन्ता न करो। तुम्हारा बाल भी बाँका न होगा, जिम्मेवार मैं हूँ।"

अर्जुन का नाम सुनते ही उत्तरकुमार उनके चरणों पर गिर पड़ा। हाथ जोड़कर बोला—"कृपा करके सच बताइए, क्या आप सचमुच अर्जुन हैं? अर्जुन के दस नाम हैं; यदि आप सचमुच अर्जुन ही हैं तो अपने दसों नाम बताइए।"

अर्जुन ने अपने दसों नाम बताए—जिष्णु, किरीटी, फाल्गुनी, पार्थ, धनञ्जय, विजय, श्वेतवाहन, कृष्ण, वीभत्सु और सव्यसाची। नाम गिनाकर बोले—"तुम्हारे विश्वास के लिए मैं अपने नामों के कारण भी बतलाए देता हूँ। सुनो, घोर घमसान लड़ाई में भी शत्रु को परास्त करने में समर्थ होने के कारण मैं 'जिष्णु' कहलाता हूँ। इन्द्र के द्वारा दिव्य किरीटी पाने से 'किरीटी', उत्तरा-फाल्गुनी-नक्षत्र में पैदा होने से 'फाल्गुनि', पृथा—कुन्ती—के वीर पुत्र होने से 'पार्थ, धनपती कुबेर को जीतने से 'धनञ्जय', युद्ध में सदा जयी होने से 'विजय', दिव्य श्वेत घोड़े के अक्षय रथ पर चलने से 'श्वेतवाहन', शरीर का रंग श्याम होने से 'कृष्ण', लड़ाई में कभी निन्दनीय कर्म न करने से 'वीभत्सु' और दोनों हाथों से एक समान बाण चला सकने के कारण 'सव्यसाची' कहलाता हूँ। अब समझे?"

उत्तरकुमार चकित हो गया। उसने गिड़गिड़ाकर बार-बार क्षमा माँगी। अर्जुन ने उसे समझा-बुझाकर शान्त किया। ले गये उसी शमीवृक्ष के पास, पेड़ पर चढ़ाकर उतरवाये अपने हथियार, और जल्दी-जल्दी दौड़ गये रथ के पास।

तबतक कौरव-सेना कतार बाँधकर सामने डट गई थी। अर्जुन के कवच और धनुष देख तथा उनके 'देवदत्त'-शंख की ध्वनि सुनकर कौरव-सेना में कानाफूसी होने लगी। सब लोग सन्देह, भ्रम और अनुमान से ही काम ले रहे थे।

तबतक अर्जुन ने जुझाऊ बाजे बजाने की आज्ञा देते हुए तीन बाण बड़ी श्रद्धा से छोड़े। पहला बाण भीष्म-पितामह, दूसरा बाण द्रोणाचार्य और तीसरा बाण कृपाचार्य के चरणों की वन्दना करके लौट आया।

पितामह और दोनों आचार्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। दोनों ने उन्हें विजयी होने के आशीर्वाद दिये; 'साधु-साधु' कहकर बड़ी प्रशंसा भी की।

अब तो दुर्योधन को काटो तो खून नहीं। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। कर्ण के चेहरे पर स्याही फिर गई! शकुनी का चेहरा उतर गया! पितामह और आचार्य तो आनन्द से विह्वल हो उठे; लड़ना-भिड़ना गया तेलहण्डे तले।

चण्डाल-चौकड़ी हताश हो गई। मैदान अर्जुन के हाथ रहा। चूँकि वे उत्तरा से उसकी गुड़ियों के लिए रंग-बिरंगे कपड़े लाने का वादा कर आए थे, इसलिए सम्मोहन-अस्त्र मारकर कौरव-सेना को अचेत कर दिया और उत्तरकुमार से कहा कि भीष्म और द्रोण तथा कृपाचार्य के सिवा अन्य वीरों के अच्छे-अच्छे कपड़े उतार लाओ।

उत्तरकुमार हँसते-हँसते कौरव-सेना में घुसा और चुन-चुन कर सब-के-सब अच्छे-अच्छे कपड़े उतार लाया।

अर्जुन ने अपने ललाट का पसीना पोंछते हुए हँसते-हँसते अपनी सेना से कहा कि गौओं को लेकर नगर की ओर चलो। गौओं का झुण्ड बाजे-गाजे के साथ विराट-नगर की ओर चला।

उत्तरकुमार के लौटने पर अर्जुन भी रथ पर सवार होकर राजधानी में लौट आए। गो-धन का उद्धार हो गया।

कौरव-सेना अपना-सा मुँह लेकर मन-मारे तन-हारे लौट गई। विराट-नगर में आनन्द के बधावे बजने लगे। उत्तरकुमार की जबानी सारा हाल सुनकर, राजा विराट ने पाण्डवों से, बड़े आदर और आग्रह के साथ, बार-बार क्षमा माँगी। उधर राजमहल में रानी ने द्रौपदी से भी बड़ी विनती की।

पाण्डवों और द्रौपदी से बार-बार क्षमा-याचना के भाव प्रकट करने पर भी राजा और रानी को सन्तोष न हुआ। उन लोगों ने बड़ी नम्रता और श्रद्धा से पाण्डवों और द्रौपदी का सत्कार किया। अन्त में राजा ने अर्जुन से कहा—"मैं अपनी कन्या उत्तरा को आपकी सेवा में अर्पित करना चाहता हूँ। मेरी कृतज्ञता का यह तुच्छ चिह्न कृपापूर्वक स्वीकार कीजिए।"

अर्जुन ने कहा—"उत्तरा को मैंने शिक्षा दी है। वह मेरी पुत्री के तुल्य हो गई। अब किसी प्रकार मैं उसे अंगीकार नहीं कर सकता। हाँ, यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो मेरे पुत्र अभिमन्यु से उसका विवाह कर दीजिए।"

विराट ने सोचा—'सुभद्रानन्दन अभिमन्यु, अर्जुन का पुत्र और श्रीकृष्ण का भानजा है, होनहार और बहादुर नवयुवक है। उससे उत्तरा का विवाह करना तो और भी उपयुक्त तथा उचित होगा। शादी बराबर की शोभती है। जोड़ अच्छा है। कर ही डालना चाहिए। बड़े अच्छे घराने से सम्बन्ध होने जा रहा है। अवसर चूकने लायक नहीं है।'

अर्जुन की बात विराट ने मान ली। अभिमन्यु की शादी हो गई। श्रीकृष्ण और बलराम भी द्वारका से पधारे। बड़े-बड़े राजा बराती आए। विराट कृतार्थ हो गये। उन्होंने अपना अहोभाग्य समझा। उत्तरा भी धन्य हो गई। सुघर, सुशील और गुणवती पतोहू पाकर अर्जुन भी बड़े सन्तुष्ट हुए। पाण्डव अपना सारा दुःख भूल गये। वनवास तो सफल हुआ ही था, अज्ञातवास तो खूब ही हुआ!

[५]

"सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥"

कुरुक्षेत्र में महाभारत-संग्राम

अभिमन्यु का विवाह हो जाने पर पाण्डवों के लिए यह जरूरी हो गया कि वे अपनी गृहस्थी ठीक करें। अब तक तो मारे-मारे फिरे; पर पतोहू को लेकर अब कहाँ जाते। इसलिए, उन्होंने यह निश्चय किया कि लड़कर दुर्योधन से आधा राज्य लिया जाय। खासकर भीम और अर्जुन इस निश्चय पर दृढ़ता से अड़ गये।

पुरोहित धौम्य पाण्डवों का सन्देश लेकर दुर्योधन के पास गये। धृतराष्ट्र ने भीष्म, द्रोण, विदुर आदि को बुलाकर सलाह पूछी। सबने यही राय दी कि पाण्डवों से लड़ना फजूल है, उनका आधा हिस्सा दे दिया जाय; लड़कर उनका हक छीनना असम्भव है; वे खून की नदी बहा देंगे। उनका जीता हुआ राजपाट लौटाया न जायगा तो उसे भोगने के लिए वे किसी को जीता न रहने देंगे।

धृतराष्ट्र ने कपूत को बहुत समझाया। वह बेचारा सहज ही कैसे समझ ले ? सिर पर तो काल नाच रहा था। और, जब कर्ण तथा शकुनि उसे कुछ समझने दें, तब तो समझे ? साफ गंगा पी गया कि पाण्डवों का हिस्सा कैसा ! लड़े बिना सुई की नोंक-बराबर भूमि भी न दूँगा।

समझानेवालों ने सोचा, भावी प्रबल है। उसका सर्वनाश निकट है। जब सब तरह से संहार ही बदा होता है तब बुद्धि कुलच्छनी हो जाती है।

पाण्डवों के दूत पुरोधाजी मुँह लटकाए खाली हाथ लौट आये। उनकी जबानी सब हाल सुनकर पाण्डवों ने लड़ने की बात पक्की कर ली। भीम आनन्द में मग्न हो छरक-छरककर गदा भाँजने लगे। अर्जुन और द्रौपदी उनके पैंतरे देखकर हँसने लगे। मालूम हुआ, भीम को आज ही राज्य मिल गया !

दुर्योधन को आशा थी कि शुरू में जिस तरह पाण्डवों की ओर से श्रीकृष्ण केवल पाँच गाँवों की भीख माँगने आये थे, उसी तरह इस बार भी आवेंगे। पर उसकी वह आशा काफूर हो गई—जब पाण्डवों की ओर से स्पष्ट शब्दों में युद्ध का सन्देश पहुँचा !

दोनों तरफ होने लगीं तैयारियाँ। पाण्डवों के पास अपने शरीर के सिवा और था ही क्या ? इधर-उधर से, दौड़-धूप कर, सब कुछ तो जुटाना ही था। मगर दुर्योधन के तो सिर्फ हुक्म की देर थी; राजाओं को रण-निमन्त्रण भेजने के सिवा उसे और कुछ करना भी तो नहीं था।

सबको लड़ाई का नेवता भेजकर वह पहले श्रीकृष्ण के पास चला। सोचा, उनके पास बड़ी भारी नारायणी सेना है; पहले न पहुँचूँगा तो पाण्डव हथिया लेंगे।

इधर और सब तैयारियों का भार भीम पर छोड़कर अर्जुन भी द्वारका चले। दोनों एक-साथ द्वारका पहुँचे। भगवान कृष्ण उस समय सोए हुए थे। दोनों ही उनके पास

चले गये। राजसी अहंकार के कारण दुर्योधन उनके सिरहाने की ओर फूलकर बैठा। अर्जुन उनके चरणों के पास बैठे।

कुछ ही देर में भगवान उठे। अध-खिले लाल कमल-सी आँखें खुलीं। देखा, तो सामने अर्जुन—घुटने टेके, हाथ जोड़े, सिर झुकाए। ललककर छाती से लगा लिया।

तबतक दुर्योधन पर नजर पड़ी। लपककर उसे भी बड़े प्रेम से गले लगाया। अर्जुन की बात न पूछकर पहले उसीसे हाल-चाल पूछने लगे। उसने अपना मतलब कह सुनाया। तब फिर अर्जुन से पूछा। उन्होंने भी वही बात दुहराई।

श्रीकृष्ण बड़े भारी नीतिज्ञ थे। बोले—"भाई दुर्योधन, मैंने तो उठते ही पहले अर्जुन को देखा है; इसलिए पहले अर्जुन की ही माँग पूरी करूँगा।"

दुर्योधन ताड़ गया; सकपकाया, बोला—"आया मैं ही पहले हूँ। इसलिए, सहायता पहले मुझे मिलनी चाहिए।"

श्रीकृष्ण मुस्कराते-मुस्कराते बोले—"तुम दोनों ही मेरे सगे-सम्बन्धी हो। तुमलोगों की सहायता के लिए मेरा सब कुछ हाजिर है। मैं तैयार ही हूँ, सेना भी तैयार है। पर मैं खुद किसी तरफ से न लड़ूँगा। मेरी सेना अलबत्त लड़ेगी। मैं तो चुपचाप तुमलोगों की कुबुद्धि का नतीजा देखता रहूँगा; अस्त्र न गहूँगा। अब, सेना में और मुझमें, दोनों में से तुमलोगों को जो पसन्द हो, चुन लो, माँग लो। देने में मुझे तनिक हिचक नहीं है।"

भगवान कृष्ण कूटनीति की चाल कितनी सफाई से चल गये, यह अन्धपुत्र दुर्योधन को न सूझा। उसने सोचा,—'लड़नेवाली सेना माँगना ही ठीक है, इन्हें अकेला निहत्था लेकर क्या चाटना है? चुपचाप बैठे-बैठे भी घात करेंगे, पाण्डवों से मेरा भेद बताया करेंगे।'

दुर्योधन कुछ कहने के लिए सोच ही रहा था कि अर्जुन बोल उठे—"मैं आपको ही ले चलूँगा, सेना की मुझे चाह नहीं है। आप यदि मेरे साथ बैठे भी रहेंगे, तो मेरा बेड़ा पार है। आप शस्त्र न गहेंगे, तो यह भी मुझे स्वीकार है। आपके दर्शन से ही मेरा काम बन जायगा। मुझे दृढ़ विश्वास है, आप यदि मेरे सामने सदा बने रहेंगे, तो आपके आशीर्वाद से क्षणभर में तीनों लोक मैं जीत सकता हूँ।'

सोचते-सोचते दुर्योधन भी बोला—"तो बस यही तय रहा, मैं सेना ही लूँगा। आप जाइए, तीनों लोक जितवाइए।"

दुर्योधन के ताने पर अर्जुन की ओर देखकर भगवान मुस्कुराए। अर्जुन शान्त रहे; पर मन-ही-मन इतने प्रसन्न थे, मानों युद्ध में विजयी होकर राज्य पा चुके। भक्तों के सर्वस्व तो भगवान ही हैं। भक्त को भगवान मिल गये, अब तो कोटि ब्रह्माण्ड का साम्राज्य भी उसके पासँग-बराबर नहीं है!

दुर्योधन सेना लेकर बड़े जोम से चला और अर्जुन भगवान के साथ द्वारका से विदा हुए। तबतक दोनों ओर से पूरी तैयारी हो चुकी थी। कुरुक्षेत्र लड़ाई का मैदान ठहराया गया था।

उसी लम्बे-चौड़े मैदान में दोनों ओर की सेनाएँ एकत्र हुईं। कौरवों की ओर ग्यारह और पाण्डवों की ओर सात अक्षौहिणी सेना थी। उस समय एक अक्षौहिणी में १०९३५० पैदल सिपाही, ६५६१० घोड़े, २१८७० हाथी, २१८७० रथ होते थे। कौरवों के मुख्य सेनापति थे भीष्म-पितामह और पाण्डवों के धृष्टद्युम्न—द्रौपदी के भाई।

अर्जुन अपने श्वेत घोड़ेवाले दिव्य रथ पर सवार थे। सारथी का काम स्वयं भगवान श्रीकृष्ण करते थे। हाथ में अक्षय धनुष गाण्डीव था। ध्वजा पर महावीर हनुमान विराजते थे। कहते हैं कि अर्जुन की वीरता पर रीझकर हनुमानजी ने ऐसा ही वचन दिया था। इसीलिए अर्जुन 'कपिध्वज' भी कहलाए।

अस्तु। जब दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने डट गईं, तब अर्जुन ने अपना देवदत्त-शंख फूँका और भगवान से कहा—"मेरा रथ रणक्षेत्र के बीचोबीच ले चलकर खड़ा कीजिए। मैं देखूँगा कि कौन किसकी ओर लड़ने आया है, और कैसे लोगों के साथ मुझे भिड़ना पड़ेगा।"

अर्जुन की इच्छा के अनुसार भगवान ने बीच मैदान में रथ ले जाकर खड़ा किया। अर्जुन ने दोनों दलों के वीरों को देखा। देखते ही उनके रोंगटे खड़े हो गये। शरीर थरथराने, कण्ठ सूखने और सिर चकराने लगा। हाथ से धनुष छूट पड़ा। खेद और ग्लानि से खिन्न होकर रथ के पीछे जा बैठे। घोड़ों की बागडोर छोड़कर भगवान बड़े आश्चर्य के साथ रथ से उतर पड़े। बोले—"यह क्या अर्जुन? भला कुल्हाड़े के ब्याह में यह बसूले का गीत कैसा?"

अर्जुन उदास होकर बोले—"भगवन्, इन सब अपने ही सगे-सम्बन्धियों को देखकर मेरा हृदय करुणा से भर आया है। पितामह, आचार्य, मामा, चाचा, भाई, भतीजे, बेटे, पोते, ससुर, साले, मित्र और साथी, सब तो हैं। क्या इन्हीं से लड़ना होगा? इन्हीं पर राज्य के लिए प्रहार करना पड़ेगा? इन्हीं के रक्त से भींगी हुई पृथ्वी भोगनी पड़ेगी? उफ! मेरा तो शरीर काँप रहा है, रोम-रोम से ज्वाला निकल रही है, कण्ठ सूखता जाता है, रह-रहकर रोंगटे खड़े हो आते हैं; सिर घूम रहा है, खड़ा भी नहीं रहा जाता। भला, अपने ही रक्त से अपना हाथ धोकर मैं कैसे सुखी हो सकता हूँ? अपने ही अंग को काट-कर कोई विजयी वीर कैसे हो सकता है? और, अपने ही प्यारे सगे-सम्बन्धियों को मार-कर अपना कल्याण चाहनेवाले से बढ़कर मूर्ख होगा ही कौन? जिसके लिए राज्य या धन की इच्छा और संसार में जीवित रहने की चेष्टा की जाती है, उसी को हनूँ—इस तुच्छ पृथ्वी के लोभ से? तीनों लोक का राज्य मिलनेवाला हो, तब भी मैं ऐसों के खून से हाथ नहीं रँग सकता; एक छोटा-सा राज्य क्या चीज है? उफ! इतने वीरों के रक्त से पृथ्वी तर होगी! इनकी विधवाओं की आह से आकाश फट जायगा! क्या बेचारी विधवाओं के आँसुओं में डूबे हुए देश के अन्दर कभी शान्ति की स्थापना हो सकती है? इतनी स्त्रियों के विधवा होने पर समाज की क्या अवस्था होगी? क्या उसकी मर्यादा रह सकेगी? कुल भी नष्ट होगा, जाति भी नष्ट होगी, समाज भी तहस-नहस हो जायगा। मैं ऐसा निन्दनीय पाप करने को तैयार नहीं हूँ, लौटाइए रथ।"

भगवान श्रीकृष्ण चुपचाप अर्जुन की बातें सुनते और मन-ही-मन हँसते रहे। वे मन-ही-मन सोच भी रहे थे—'अर्जुन तो ऐन मौके पर युधिष्ठिर को धोखा देना चाहते हैं। इन्हीं के भरोसे मर-खप कर युद्ध की तैयारियाँ की गईं, और अब ये तख्ता ही उलटना चाहते हैं। अगर इस अवसर पर ये चूक गये, तो फिर बेचारे युधिष्ठिर कहीं के न होंगे। देश-भर के वीरों की नजर से पाण्डव गिर जायँगे। कौरवों का अत्याचार बढ़ जायगा। कुन्ती और द्रौपदी की लालसाएँ तथा भीम की प्रतिज्ञाएँ उनके मन में ही धरी रह जायँगी। दुर्योधन और कर्ण की ऐंठ-अकड़ फिर सही न जायगी। इन्हें आत्मज्ञान या कर्त्तव्य-ज्ञान नहीं है। इन्हें दोनों प्रकार के ज्ञान देकर कुन्ती के दूध की लाज रखनी चाहिए।'

ये बातें सोचते-ही-सोचते, अर्जुन की सब बातें सुनकर, हाथ का चाबुक नचाते हुए, मुस्कुराते-मुस्कुराते भगवान् बोले—"अर्जुन! यह बेवक्त की शहनाई कैसी? यह वीरता का उपहास कैसा? भला तुम-जैसे वीर द्वारा क्षात्र-धर्म का इतना बड़ा अपमान? तुम्हें आज एकाएक यह हो क्या गया? जिसे तुम दया समझते हो, वह दया नहीं कायरता है। अत्याचारी कौरव, और उनके अत्याचार में हाथ बटानेवाले ये राजा, क्या तुमसे दया की भीख माँगने आये हैं? तुम्हीं संसार में सबसे बड़े दयावान हो? जो वीरता का कलंक है, उसीको तुम अपना कर्त्तव्य और धर्म समझ रहे हो, यह तुम-जैसे त्रिलोक-प्रसिद्ध क्षत्रिय को शोभा नहीं देता। तुम जो यह सोचते हो कि इतने मनुष्यों के वध का पाप-भागी बनना पड़ेगा, सो बेकार है। पाप कैसा? भला अपने कुल और जाति के धर्म का पालन करने में पाप कैसा? ये जितने आदमी तुम्हारे सामने खड़े हैं, सब-के-सब पहले भी थे, अब भी हैं, और आगे भी होंगे। तुम बच्चों की तरह एक ऐसी चीज के लिए अफसोस कर रहे हो, जो वास्तव में कोई चीज नहीं; असल चीज तो आत्मा है। देह में क्या रखा है? वह तो मिट्टी का खिलौना है। उसका नाश तो निश्चित है। आत्मा तो अमर है। आत्मा को तुम कभी नष्ट नहीं कर सकते। न वह आग में जलाये जलेगी, न पानी में भिगाये भीगेगी। हवा उसे सुखा नहीं सकती, हथियार उसे काट नहीं सकते। कोई उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। यह शरीर तो उसका कपड़ा है। जैसे आदमी पुराने कपड़े बदलकर नये कपड़े पहनता है, वैसे ही यह आत्मा भी पुराना चोला उतारकर नया चोला पहनती है; एक देह छोड़कर दूसरी देह धारण करती है। जैसे इस देह में बचपन, जवानी और बुढ़ापे का आना निश्चित है, वैसे ही इस शरीर के नष्ट होने पर आत्मा का दूसरा शरीर प्राप्त करना भी निश्चित है। इसी कारण से ज्ञानी लोग इस शरीर के लिए शोक नहीं करते। भला सोचो तो इस मिट्टी के खिलौने के लिए तो तुम इतना शोक कर रहे हो, और अपना क्षात्रधर्म गँवाने का तुम्हें तनिक भी दुःख नहीं हो रहा है? यह कितनी बड़ी लज्जा की बात है? तुम न किसी को मार सकते हो और न तुम्हारे मारने से कोई मरेगा। तुम तो नाहक नादानी कर रहे हो। छोड़ो यह मोह का भ्रम। तोड़ो यह अज्ञान का जाल। आत्मा को अविनाशी मानकर लड़ो। उठो! जागो! इन आँखों को बन्द करो, हिये की आँखें खोलो। मोह की नींद में क्यों सो रहे हो? चढ़ाओ धनुष। फूँको शंख। कुन्ती-जैसी वीर-माता को निपूती मत बनाओ। युधिष्ठिर की आशाओं को इस तरह मत कुचलो। क्या कौरवों का अन्याय

इतनी जल्दी भूल गये ? द्रौपदी की बेइज्जती का तुम्हें जरा भी खयाल नहीं रहा ? तुम्हारे जीते-जी क्या भीम की प्रतिज्ञाएँ यों ही रह जायँगी ? भला कहो तो देश-देशान्तर से आये हुए ये वीर क्षत्रिय तुम्हें क्या समझेंगे ? इनकी नजर में तुम्हारा क्या मूल्य रह जायगा ? क्या तुम्हें विश्वास है कि ये तुम्हें दयावान समझेंगे ? हरगिज नहीं। ये तो संसार में तुम्हारी कायरता का डंका पीटते चलेंगे—तुम्हें नपुंसक समझेंगे। तो क्या इतनी बड़ी अपकीर्ति सहकर तुम जीते रहोगे ? वीर के लिए तो बदनामी से बढ़कर मौत ही अच्छी है। तुमने पहले क्या समझा था कि विना मार-काट मचाए ही राज्य मिल जायगा ? याद रखो, रक्त की नदी में डूबकर अधिकार-रूपी रत्न प्राप्त किया जाता है। जो इस पृथ्वी को रक्त से स्नान कराता है, यह उसीको बरती है। जब इसको रक्त से सींचोगे, तभी यह तुम्हें फल देगी। यह चाहती है कि हमपर प्रभुत्व स्थापित करने की इच्छा रखनेवाले पहले हमें रक्त की भेंट चढ़ावें। इसलिए, अर्जुन, छोड़ो दिल की कमजोरी। ठोको भुजदण्ड। लड़ो जो लगाकर। जीत तुम्हारी रखी हुई है। तुम न्याय के लिए लड़ रहे हो। हक की लड़ाई में कभी हार नहीं होती। कौरव जान-बूझकर पाप कर रहे हैं। उनका नाश निकट है। पाप से उनकी आत्मा भ्रष्ट हो चुकी है। तुम तो उनके नाश के लिए निमित्त मात्र हो। तुम्हें जरा भी पाप न होगा। न लड़ने से ही तुम पाप के भागी बनोगे। लड़ना तो क्षत्रिय का मुख्य धर्म है। और, अपने धन के लिए कौन नहीं लड़ता ? जो नहीं लड़ता, जो यों ही अपना हक गँवा देता है, वह मूर्ख है, कायर है, पापी है। तुम ज्ञानी, वीर और पुण्यात्मा बनने की चेष्टा करो। तुम तो जानते ही हो, अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहनेवाला क्षत्रिय ही सच्चा ज्ञानी है। बाप, भाई, बेटा, जो कोई भी हो, रणभूमि में विना संकोच सबसे लड़नेवाला क्षत्रिय ही सच्चा वीर है। रक्त की गंगा में नहाकर पवित्र होनेवाला क्षत्रिय ही सच्चा पुण्यात्मा है। स्वर्ग के देवता उसीकी अगवानी के लिए पलकों के पाँवड़े बिछाये रहते हैं। संसार में वही मरकर भी अमर होता है। क्या तुम उस वीर-गति का तिरस्कार कर, कायर-कपूत बनकर, कुत्ते-बिल्ली या कीड़े-मकोड़े की मौत मरना चाहते हो ?"

भगवान श्रीकृष्ण की बातें सुनते-सुनते अर्जुन का रोष जग पड़ा। भुजदण्ड फड़कने लगे। कवच के अन्दर शरीर फूल उठा। मानो सोते हुए विषधर भुजङ्ग को किसी ने ठुकरा दिया—बेखबर पड़े हुए शेर की गरदन पर किसी ने जोर की थपकी लगा दी। उतारकर रख दिया मुकुट भगवान के चरणों पर, और बोले बड़े गर्व के साथ—"भगवन् ! आपके उपदेश से मेरा मतिभ्रम दूर हो गया। अब शीघ्र मेरा रथ ले चलकर शत्रु-दल से भिड़ाइए। मैं आज इस रणभूमि को लोथों से पाट दूँगा।"

भगवान श्रीकृष्ण ने चाबुक ऊपर उठाकर हिलाते हुए, हँसते-हँसते रथ पर सवार होकर, घोड़ों को आगे बढ़ाया। इशारा पाते ही नगाड़े बज उठे। शंख-ध्वनि से दिशाएँ गूँज उठीं।

पहले अर्जुन ने बाणों द्वारा पितामह और आचार्यों के चरण छू कर प्रणाम किये, फिर सिंह की तरह दहाड़-दहाड़कर लगे बाण बरसाने। कौरव-दल में भगदड़ मच

गई। दुर्योधन की समुद्र-सी सेना को मन्दराचल की तरह मथने लगे। वह अर्जुन का इन्द्र-तुल्य पराक्रम देखकर घबराया हुआ पितामह के पास गया।

दुर्योधन की घबराहट देखकर पितामह मुस्कुराये। बोले—"अभी पहले ही दिन इतना घबराओगे? मैं तो सब वीरों की शक्ति बताते हुए तुमसे आज ही कह चुका हूँ कि अर्जुन यदि चाहे, तो क्षण-भर में सारी सेना का संहार कर सकता है। तुम जाकर निश्चिन्त लड़ो। मैं अर्जुन की गति रोकने के लिए आगे बढ़ता हूँ।"

अर्जुन तो सेना के बीच से होकर पितामह से लड़ने जा रहे थे—जैसे गंगा का वेगवान प्रवाह पर्वतों को तोड़-फोड़कर समुद्र की ओर दौड़ता चला जाता है—तबतक उधर से पितामह भी आ पहुँचे। दोनों सिंह भिड़ गये। कितने लोग तो लड़ना छोड़कर दादा और पोते की लड़ाई देखने लगे।

अर्जुन ने सुन रखा था कि आजतक पितामह संसार के किसी वीर से लड़कर सन्तुष्ट नहीं हुए। इसलिए दिल खोलकर लड़ने लगे। अपने जीवन में पितामह कभी ऐसी लड़ाई नहीं लड़े थे। अर्जुन के अद्भुत विक्रम से सन्तुष्ट होकर बार-बार वाह-वाह कह उठे। आज ही लड़ाई से उनका जी भरा।

अर्जुन के हाथों की सफाई और तेज से अत्यन्त तृप्त होकर भीष्म बोले—"अर्जुन, तूने आज मेरा मनोरथ पूर्ण कर दिया। तू सचमुच क्षत्रिय-जाति का अलंकार है। तूने कुरु-वंश का मुख उज्ज्वल कर दिया। तुझ-जैसा पोता पाकर जैसे मैं धन्य हुआ, वैसे ही द्रोणाचार्य भी तुझ-जैसा शिष्य पाकर धन्य हो गये। धन्य है तेरी माता का दूध—उसकी पवित्र धार से सींची हुई कुरुवंश की कीर्ति-लता प्रलयकाल तक लहराती रहेगी। बेटा, जब आनन्दकन्द मङ्गलमूर्ति श्रीकृष्ण तेरे साथ हैं तब विजयलक्ष्मी तुझे छोड़ और किसके पास जायगी?"

इस तरह आठ रोज तक लगातार युद्ध होने के बाद दुर्योधन ने पितामह से कहा कि रोज तो आप दस हजार रथी मारते हैं; पर आपने आजतक पाण्डवों में से किसी एक को भी न मारा। आपसे ही मुझे विजय मिलने की आशा थी; पाण्डवों पर इतनी दया दिखाने से कैसे काम चलेगा?

पितामह झुँझला उठे। क्रोध के आवेश में बोले—"लो, आज ही महाकाल-शर निकालकर पाण्डवों के निमित्त रख देता हूँ। कल देखना करामात।"

इस भयंकर प्रतिज्ञा का संवाद जासूसों ने पाण्डवों के शिविर में पहुँचाया। अब तो बड़ी खलबली मची। भगवान कृष्ण को एक उपाय सूझा। बोले—"अर्जुन, यह अवसर चूकने लायक नहीं है। चलकर दुर्योधन से अपनी थाती माँगो। तुम्हारा रूप दुर्योधन से मिलता-जुलता भी है। उसका राजमुकुट पहनकर पितामह के पास अभी जाओ। कहना कि—'पाँचों महाशर मुझे दीजिए; मैं स्वयं अपने हाथों अपने शत्रुओं का वध करूँगा।' रात का समय है। दिन-भर की लड़ाई से थके-माँदे वृद्ध पितामह सो रहे

होंगे। उन्हें सन्देह या भ्रम न होगा ; क्योंकि अपनी भयंकर प्रतिज्ञा से वे बड़े बेचैन हैं। अपने हाथों पाण्डवों का वध उन्हें पसन्द नहीं। वे सहर्ष पंचमहाशर दे देंगे। पर बाणों को पाकर फिर कुछ बोलना मत। चुपचाप चले आना।"

अर्जुन ने भगवान का आदेश-पालन किया। दुर्योधन जबान हार चुका था। अर्जुन के माँगते ही उसने अपना मुकुट उतार कर दे दिया, और यह भी कहा—"तुम आज राज्य माँगो, तो राज्य भी दे सकता हूँ।"

अर्जुन ने मन-ही-मन कहा—'भीख की तरह राज्य थोड़े लूँगा। छाती पर चढ़कर—सारे अपमानों की कसर निकालकर—वीर की तरह राज्य लूँगा।'

जिस राजमुकुट के लिए इतना बड़ा खूनखराबा हो रहा था, उसे भी अनायास दे डालने में दुर्योधन न हिचका। प्राचीन भारत के लोग बात के धनी होते थे। जबान दे चुके, तो जान भी दे चुके!

दुर्योधन के भेष में अर्जुन चले गये पितामह के पास। माँग लाए पंचमहाशर! अर्जुन के निकल जाने पर भीष्म को भेद मालूम हो गया। सोचा—'अच्छा ही हुआ, इस बुढ़ापे में अपने हाथों पाण्डवों का वध कर मैं क्रोधवश कलंकी होने जा रहा था, भगवान ने उस महापाप से बचा लिया ; पर वे चाहते तो पाण्डवों को दूसरे उपाय से भी बचा सकते थे। मेरी प्रतिज्ञा क्यों भंग की?'

यह सोचकर पितामह ने प्रतिज्ञा की—"श्रीकृष्ण ने जैसे मेरा प्रण तोड़ा वैसे ही कल अगर उनका प्रण न तोड़ूँ—उनसे हथियार न गहाऊँ—तो 'गांगेय' मेरा नाम नहीं।"

इस प्रतिज्ञा की खबर भी पाँडव-दल में पहुँची। युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने अर्जुन को चिताया—"देखना, कहीं श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा भंग न हो, पितामह कल गजब ढानेवाले हैं, लाज रखना।"

अर्जुन ने नम्रतापूर्वक कहा—"श्रीकृष्ण ने ही प्राण बचाए, अब लाज भी वही बचायेंगे; मुझे उन्हीं का भरोसा है। किन्तु पितामह उनके बड़े भक्त हैं, और वे भी अपनी प्रतिज्ञा से भक्त की प्रतिज्ञा को विशेष महत्त्व देते हैं। उनकी जो इच्छा होगी, वही होकर रहेगा।"

युधिष्ठिर चिन्ता से व्यग्र थे ; पर अर्जुन की बातों से उन्हें कुछ ढाढ़स हुआ। सोचा—'भगवान की इच्छा में अपना वश ही क्या! दादाजी और अर्जुन दोनों उनके भक्त हैं, दोनों की लाज वही रखेंगे।'

नवें दिन पितामह ने गजब ढाना शुरू किया। पुरानी हड्डी थी। बटेरों के झुँड पर बाज की तरह वे पाण्डव-दल पर टूटते थे। उस दिन अर्जुन को ललाट का पसीना पोंछने का भी अवकाश न मिला। भगवान ने कहा—"आज पितामह प्रलयकाल की अग्नि की तरह तुम्हारी सेना का ध्वंस कर रहे हैं, फिर भी तुम उनसे इतना मुलाहजा करते हो, इसका कारण क्या है? लड़ाई में मुरौवत कैसी? खुलकर लड़ते क्यों नहीं?"

अर्जुन बोले—"एक तो पितामह बहुत बूढ़े हो गये; दूसरे, लगातार आठ दिनों तक उन्हें मैंने बहुत मारा। उनका शरीर मैंने झाँझर कर डाला है। आज वे प्रतिज्ञा-भंग के क्रोध में इतना लड़ रहे हैं। अब उनपर तीर छोड़ने की हिम्मत नहीं होती। किन्तु, वह देखिए, महाराज युधिष्ठिर का रथ इधर दौड़ा आता है। वे मुझे कोसने ही आ रहे होंगे। अब जल्दी मेरा रथ पितामह के सामने ले चलिए।"

भगवान ने रथ ले जाकर भिड़ा दिया। पर अर्जुन फिर लगे संकोच करने। भगवान उन्हें उत्तेजित करने और पितामह का प्रण रखने के लिए चक्र लेकर रथ से कूद पड़े।

भगवान को अपनी ओर दौड़े आते देख भीष्म भक्तिपूर्वक प्रार्थना करने लगे। पीछे से दौड़कर अर्जुन ने भगवान के पैर पकड़ लिये। बोले—"क्षमा कीजिए, लौटिए; अब देखिए मेरी करामात।"

भगवान ने 'एक पंथ दो काज' सिद्ध किया। एक ही ढेले में दो शिकार करके रथ पर लौट आये। अर्जुन के बाणों ने जमीन-आसमान एक कर दिया। अर्जुन के बाणों के जाल में सूर्यदेव छिप गये। युधिष्ठिर आज का युद्ध देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए।

किन्तु अर्जुन के जी-जान से लड़ने पर भी पितामह खेत न रहे। जबतक उनके हाथ में शस्त्र रहेगा तबतक यमराज भी उनका बाल बाँका नहीं कर सकता—यही सोचकर दसवें दिन भगवान ने अर्जुन के रथ पर आगे द्रौपदी के भाई शिखण्डी को बिठाया; क्योंकि उसे देखते ही पितामह हथियार रख देने की बात पहले ही बता चुके थे।

वही हुआ भी। मगर अर्जुन अड़ गये कि निहत्थे पितामह पर बाण न चलाऊँगा। भगवान ने फिर जोश भरकर उभाड़ा; पुरानी बातों की याद दिलाकर कड़खा जगाया; पीठ ठोंक कर लड़ने पर राजी किया।

अर्जुन के बाणों ने पितामह की देह चलनी कर डाली। रोम-रोम में तीर चुभ गये। इतने चुभे की गिरने पर देह जमीन न छू सकी, तीरों पर ही अड़ी रही। बाणशय्या ही, काँटों की सेज ही, वीरों के अनंत विश्राम की अन्तिम शय्या है!

दोनों दलों में हाहाकार मच गया। लड़ाई बन्द हो गई। कौरव और पाण्डव पितामह के पास दौड़े आये। उन्होंने अपना सिर ऊँचा करने के लिए कहा। दुर्योधन ने मखमली मसनदें मँगवाईं। भीष्म अपने सामने खड़े अर्जुन की ओर ताकते हुए बोले—"यह वीर-शय्या के योग्य नहीं।"

अर्जुन ने बाण मारकर पितामह का सिर ऊँचा कर दिया। सब लोग चकित हो गये। भीष्म असीसने लगे। फिर उन्होंने पीने को पानी माँगा। कौरवों ने सुनहरी सुराहियों में शीतल-निर्मल गंगाजल मँगवाया। भीष्म ने फिर अर्जुन की ओर देखा। इन्होंने तीर मारकर पाताल के अन्दर से स्वच्छ जल की धारा निकाल दी, जो सीधी भीष्म के मुँह में गिरने लगी; उन्हें उठना या करवट बदलना न पड़ा। कौरव झेंप गये। पितामह असीसते न अघाये।

ग्यारहवें दिन द्रोण कौरवों के सेनापति हुए। आचार्य ने एक रोज चक्रव्यूह बनाया। उसी दिन सुशर्मा छल करके अर्जुन को कुरुक्षेत्र से बहुत दूर ले गया था। भगवान भी साथ गये थे। इधर अर्जुन का नौजवान बेटा अभिमन्यु चक्रव्यूह की लड़ाई में घेरकर मार डाला गया।

अर्जुन लौटे तो बहुत रोये। सुना कि व्यूह के मुख्य द्वार पर दुर्योधन का बहनोई जयद्रथ था। उसने शिवजी के वरदान के प्रताप से भीम को अंदर घुसने न दिया। अभिमन्यु को अकेला पाकर महारथियों ने मिल-जुल कर मार डाला।

बस, इतना सुनते ही अर्जुन ने बड़े रोष के साथ कठिन प्रतिज्ञा की—"जयद्रथ को कल शाम तक न मार डालूँ, तो गाण्डीव के साथ जल मरूँगा।"

जयद्रथ डरकर घर भागने की तैयारी करने लगा। आचार्य ने धैर्य देकर रोका और दूसरे दिन कमलव्यूह बनाया। अर्जुन व्यूह-भेद कर घुस गये। प्रलय मचा दिया। फिर भी जयद्रथ तक पहुँचने में देर थी, और इधर दिन ढल चला।

भगवान ने योगबल से सूर्य को छिपा दिया। अर्जुन अपने धनुष-बाण के साथ जलने चले। जयद्रथ प्रसन्न होकर उनका जलना देखने आया। भगवान ने झट माया का परदा खींचकर अर्जुन को इशारा किया। इधर सूर्य निकले, उधर अर्जुन के गाण्डीव से बाण। जयद्रथ का सिर कट गया। कौरव-दल सन्न हो गया! अर्जुन का प्रण रह गया।

भगवान के इशारे से अर्जुन ने बाण मारकर वह कटा सिर उसके तपस्वी पिता की गोद में गिरा दिया। वे कहीं बहुत दूर तपस्या कर रहे थे। संध्याकाल में सूर्य को अर्घ्य देते समय उनकी अंजली में कटा सिर जा गिरा। उन्होंने घृणा के साथ उसे पृथ्वी पर पटक दिया। पिता के इस तिरस्कार से जयद्रथ की वहाँ मृत्यु हो गई। अपनी मृत्यु के लिए उसने ऐसा ही वर पाया था।

पाँच रोज लड़कर आचार्य भी मारे गये। धृष्टद्युम्न ने अपने बाप का बदला चुकाने के लिए उन्हें मारा। अर्जुन उसपर बहुत बिगड़े। भगवान ने समझाकर शान्त किया। पर, गुरु के लिए अर्जुन रोये भी खूब—अनाथ बालक की तरह बिलख-बिलखकर रोये।

सोलहवें दिन कर्ण के सिर पर सेहरा बँधा। कर्णार्जुन युद्ध पर ही महाभारत की लड़ाई का फैसला बदा हुआ था। कर्ण ढाई रोज तक वीरता से लड़े। अर्जुन भी जान लड़ाकर लड़े। दोनों का युद्ध दर्शनीय था।

एक रोज कर्ण ने युधिष्ठिर को बहुत घायल कर दिया। वे शिविर में चले आये। अर्जुन उनकी हालत देखने गये। उन्होंने अर्जुन को मैदान से भगा समझकर गाण्डीव को बहुत धिक्कारा। गाण्डीव के निन्दक को मार डालने की, अर्जुन की, प्रतिज्ञा थी। झट युधिष्ठिर को मारने दौड़े। प्रतिज्ञापालन वीर क्षत्रिय का प्रधान कर्त्तव्य है।

भगवान ने उन्हें रोककर तलवार छीन ली। फिर भी अर्जुन ने क्रोध में कुछ कड़े शब्द कह डाले। क्रोध पाप का मूल है। क्रोधी को भला-बुरा नहीं सूझता है। क्रोध का ज्वर उतर जाने पर बहुत पछताये भी, और रो-धोकर बड़े भाई से माफी माँगी। बड़े भाई का अपमान करने से अत्यंत दुःखी होकर भगवान से प्रायश्चित्त पूछा। भगवान ने कहा कि कर्णवध ही इसका प्रायश्चित्त हो सकता है। अर्जुन ने बड़े रोष से कर्णवध का संकल्प किया।

कर्ण के साथ अर्जुन की जैसी लड़ाई हुई, वैसी लड़ाई किसी दिन नहीं हुई थी। दोनों अजेय वीर थे। दोनों में बहुत दिनों की खींचतान थी। पर कोई किसी से परास्त न हुआ। जोड़ बराबर रहा। कर्ण बड़े कर्कश धनुर्द्धर थे। अर्जुन की कमनैती तो जगजाहिर थी ही। दोनों ही दो मस्ताने भैंसों और मदान्ध गजराजों की तरह लड़े। किसी की कोई कला बाकी न रही।

अठारहवें दिन दो-पहर को कर्ण भी जूझ गये। अन्त समय उनके रथ का चक्का जमीन में धँस गया। परशुरामजी का ऐसा ही शाप था। कर्ण के गिड़गिड़ाने पर अर्जुन ने बाण चलाना बन्द कर दिया। मगर भगवान ने कर्ण की करतूतों की याद दिलाकर अर्जुन से उनका वध करा दिया।

कर्ण के मरते ही दुर्योधन हताश हो गया। उन्हीं पर उसका पूरा भरोसा था। मगर पाप का घड़ा तो एक दिन फूटा ही चाहे। अन्याय उलटकर अन्यायी पर पड़ता है।

दो-पहर के बाद नकुल के मामा शल्य सेनापति हुए। वे कौरवों की ओर से लड़ते थे। युधिष्ठिर ने उनका काम तमाम किया। शाम होते-होते सारी कौरव-सेना खेत रही।

बच गये सिर्फ चार—दुर्योधन, कृतवर्मा, कृपाचार्य्य और अश्वत्त्थामा। कुछ रात गये दुर्योधन को गदायुद्ध में भीम ले बीते। उसी रात को शिविर में घुसकर अश्वत्त्थामा ने, पाण्डवों के भ्रम से, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों और उसके दोनों भाइयों को भी मार डाला।

यह दुःखद समाचार सुनकर द्रौपदी चीख उठी। उसके आग्रह से भीम और अर्जुन तुरत अश्वत्त्थामा को पकड़ लाने चले। अश्वत्त्थामा ने उन्हें पीछा करते देख डरकर ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। अर्जुन ने भी एक प्रलयकारी अस्त्र छोड़ा। दोनों दिव्य अस्त्र टकरा गये। दिशाएँ धधकने लगीं। हाहाकार मच गया।

अनर्थ होते देख अर्जुन ने अपना अस्त्र लौटा लिया, अश्वत्त्थामा लौटाना नहीं जानता था! वह अस्त्र अर्जुन की पतोहू उत्तरा के गर्भ का बच्चा नष्ट करने गया। भगवान श्रीकृष्ण ने गर्भ का बालक बचा लिया।

अश्वत्त्थामा पकड़कर आया। उसकी दीनता पर द्रौपदी को दया आ गई; क्षमा-दान देकर छोड़ दिया। पर भीम उसे क्यों छोड़ने लगे! खोपड़ी काटकर उसके मस्तक की मणि निकाल ही ली। बेचारा निस्तेज होकर भगा।

सब स्वाहा हो चुकने पर कुन्ती ने अपने बेटों से कर्ण का भेद बतलाया ! पाण्डव अपने बड़े भाई के लिए बहुत रोये-पछताये। अज्ञानवश सगे बड़े भाई का वध करने से अर्जुन को बड़ी ग्लानि हुई। युधिष्ठिर भी पश्चात्ताप से व्याकुल हो उठे। किन्तु, 'अब पछताये होत क्या, चिड़िया चुग गई खेत' !

अन्त में पाण्डवों ने सबके श्राद्ध किये। युधिष्ठिर को वैराग्य हो आया। अर्जुन को भी अत्यन्त शोक हुआ। रक्तपात की ग्लानि से वे उदास रहने लगे। भगवान ने बहुत समझाया। किसी तरह शान्ति मिली। आखिर युधिष्ठिर राजगद्दी पर बैठे।

राज्य मिलने पर पाण्डवों ने अश्वमेध यज्ञ ठाना। यज्ञ के घोड़े के साथ अर्जुन निकले। इसी यात्रा में अपने पुत्र बभ्रुवाहन से लड़कर तृप्त हुए। अनेक राजाओं को जीतकर सकुशल लौट आये। बहुत-सा धन भी लाये। यज्ञ का बेड़ा पार हुआ। पर जिन्दगी का बेड़ा शोक के भँवर में ही फँसा रहा।

यज्ञ के बाद भगवान द्वारका चले गये। पाण्डव उचटे चित्त से राजपाट देखने लगे। कुछ काल के बाद गांधारी, कुन्ती, विदुर, धृतराष्ट्र आदि वन में तप करने चले गये। इस बीच खबर मिली कि प्रभासतीर्थ में यादव परस्पर कट मरे।

अर्जुन द्वारका गये। तबतक श्रीकृष्ण और बलराम ने भी संसार छोड़ दिया। श्रीकृष्ण के लिए अर्जुन रोते-रोते अधीर हो गये। मित्र-वियोग से यहाँ तक तेजहत हो गये कि द्वारका से लौटते समय रास्ते में डाकुओं ने लूट-मारकर गाण्डीव छीन लिया ; पर कुछ करते-धरते न बना। दिनों का फेर जो न करे सो थोड़ा !

अर्जुन के लौटने पर सारा हाल सुनकर युधिष्ठिर बड़े दुखी हुए। श्रीकृष्ण के बिना जीते रहना पांडवों ने बेकार समझा। अर्जुन के पोते और अभिमन्यु के एकमात्र पुत्र परीक्षित को राज्य देकर द्रौपदी के साथ, पाँचों भाई हिमालय पर चले गये। वहाँ जाकर तुषार में गल गये।

सचमुच पाण्डव श्रीकृष्ण के सच्चे भक्त थे।

ग्राम-सुधार

गाँवों का महत्त्व

भारतवर्ष 'गाँवों का देश' कहलाता है। गाँव ही हमारे राष्ट्र की रीढ़ हैं। वही हमारे अन्नदाता हैं। किसान और मजदूर वहीं रहते हैं। हमारे पशुधन का खजाना भी वहीं है। हमारा अन्न और दूध-घी का भंडार तो वह है ही, कपड़े बनाने के सब सामान भी हम वहीं से पाते हैं। सुख के सारे सामान हमें वहीं से मिलते हैं। शहरों में और बड़े-बड़े कारखानों में हमारे काम की जितनी चीजें तैयार होती हैं, सबके लिए कच्चा माल वहीं से आता है।

गाँवों में ही भाईचारा पलता है। एक गाँव एक पूरा परिवार है। पड़ोसियों में आपस का मेलजोल देखने लायक है। जरूरत पड़ने पर सब लोग एक दूसरे की मदद के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। ब्राह्मण-छत्री भी दूसरी जाति के स्त्री-पुरुषों को चाची-भाभी और काका-भैया कहते हैं। मंगल-अमंगल में, सुख-दुःख में, संकट-विपद में सबका सहयोग और सद्भाव बना रहता है। हिन्दू और मुसलमान भी शादी-गमी में, परब-त्योहार में, खेती-बारी में, लेन-देन में, बात-चीत और व्यवहार में कोई भेदभाव नहीं रखते। हिन्दू ताजिया में शरीक होते हैं, मुसलमान होली में। पड़ोस का नाता दोनों में बराबरी के साथ चलता है। कुलीनों और हरिजनों में भी ऐसा ही बर्ताव देखा जाता है।

डोम जब सराध में दौरा देता है तब मनचाहा दाम नहीं माँगता, मगर जब शादी-ब्याह में देता है तब हठ ठानकर मुँहमाँगा दाम ले लेता है। धोबी जब गमी के कपड़े धोता है तब सीधा भी नहीं माँगता, मगर सौरी-घर के कपड़े धोने पर भरपूर सीधा और नेग-निछावर हँसा-खेलाकर ले लेता है। सराध की हजामत में नाई का मुँह नहीं खुलता, मगर ब्याह के नहछू और रीति-रसम में पग-पग पर सोलह आने ही चाहता है। बढ़ई या लुहार जब अरथी बनाने आता है तब उदास मन से बनाकर चुपचाप घर चला जाता है, मगर जब ब्याह में माँड़ो के बाँस काटने आता है या वर-कन्या के लिए पीढ़े बनाकर लाता है तब छप्पन टके और जोड़े रुपये के साथ पीली धोती भी माँगता है। कुम्हार भी सराध में मिट्टी के बरतन खुद ढोकर पहुँचा जाता है और दाम को मालिक या गृहस्थ की मर्जी पर छोड़ देता है, मगर मँड़वे का हाथी और कलसा देते समय पाँचो टूक पियरी पाने को मचल जाता है। इस तरह गाँवों के समाज में, एक दूसरे के सुख-दुख में शामिल

रहकर, आपस की हमदर्दी और मेल-जोल कायम रखते हुए, सब-के-सब प्रेम और शान्ति से रहा करते हैं।

अतिथि वहाँ का देवता है। गरीब-से-गरीब देहाती भी उसका आदर-सत्कार करने में अपनी शक्ति-भर श्रद्धा दिखाता है। गंगा-नहान या किसी मेले के समय गाँवों में घर-घर अतिथि पहुँच जाते हैं। उन्हें ईन्धन और अन्न, रहने की जगह और रसोई के बर्तन देकर देहाती गृहस्थ अपनेको पुण्यवान समझते हैं। साल में हर पर्व-त्योहार पर देहातियों को अपनी औकात के माफिक अतिथि-सत्कार में कुछ-न-कुछ खर्च करना ही पड़ता है। यों तो साल-भर भिखारियों और कँगलों को भी वे मुट्ठी भर अन्न देते ही रहते हैं।

तन्दुरुस्ती के ख्याल से भी गाँवों का बड़ा महत्त्व है। आँखों को वहाँ हरियाली मिलती है, साँसों को खुली हवा। अन्न और दूध-घी शुद्ध रूप में मिलते हैं। थोड़े ही खर्च में जिन्दगी निबह जाती है। फालतू खर्च की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। कपड़े-लत्ते में भी वहाँ कोई आडम्बर नहीं है। पर्व-त्योहार में, शादी-ब्याह में, भले ही कुछ टीम-टाम या तड़क-भड़क दीख पड़े, नहीं तो हमेशा सादगी से ही रहना पड़ता है। इससे खुली देह में हरदम हवा और धूप लगती रहती है। खेत-खलिहानों और बाग-बगीचों में घूमते-फिरते रहने से आदमी और मवेशी दोनों ही नीरोग रहते हैं। घास-पात और फूल-फल से ही साधारण रोगों की दवा हो जाती है। बच्चों को खेलने-कूदने के लिए काफी जगह मिलती है, इसलिए वे सदा प्रसन्न रहते हैं—धूल में लोटपोट कर खूब मजबूत हो जाते हैं। नौजवान भी अखाड़े में कसरत-कुश्ती करके हट्टे-कट्टे बने रहते हैं। रोज ताजा दाँतून मिलने की सुविधा रहने से दाँत के रोग कम होते हैं, इसलिए बहुत-से बूढ़े-बूढ़ियों की बतीसी भी चमकती नजर आती है। ढेंकी और चक्की स्त्रियों को भी तन्दुरुस्त रखती है।

गाँवों की बदौलत ही शहरों में रौनक है। कचहरियों और रेलों की खूराक वहीं से आती है। तीर्थस्थानों की चहल-पहल भी देहातियों के चलते कायम है। खासकर टुटपुँजिये रोजगारियों की रोजी गाँवों से ही चलती है। बड़े-बड़े अढ़तियों और दूकानदारों को भी ज्यादा नफा गाँवों से ही होता है। सबके लाभ के सोते का मूल गाँवों में ही है।

गाँवों में स्वदेशीपन भी कुछ कम नहीं है। दिन में छप्पर के छोर की छाया और रात में आसमान के तारे वहाँ घड़ी का काम देते हैं। मुर्गा बोला या चुहचुहिया बोली, रात के अन्त का अन्दाज लग गया। कौआ बोला, सुबह हो गई। जङ्गल-मैदान से चरकर गाय बथान पर आई, शाम हो गई। बाँस की कुंजें चिड़ियों के चहकने से गूँज उठीं, दिन के अन्त का पता लग गया। पंचायत के लिए पंडाल की जरूरत नहीं, हरिशंकरी के पेड़ की छाया काफी है। सभा के लिए भी घनी अमराई ही पंडाल है और चौपाल ही कौंसिल का कमरा है। जैसे मुर्गा-कौआ घड़ियाल का काम देते हैं वैसे ही कुत्ता वहाँ पहरुआ चौकीदार है। बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय, जल से भरा घड़ा लेकर जाती हुई पनिहारिन और धुले कपड़े लेकर सामने आती हुई सुहागिन धोबिन वहाँ शुभ यात्रा की

पहचान हैं। जैसे चौकीदारी के लिए कुत्ता घर-घर में दो-चार कौर पाकर मस्त रहता है, वैसे ही प्रिय का सँदेसा सुनाकर कौआ भी दूध-भात पा लेता है। चूहों से कोठी के अन्न की रक्षा करने के लिए 'बाघ की मौसी' बिल्ली भी अपनी रोजी पाती रहती है। गुल्ली-डण्डा और चिक्का-कबड्डी वहाँ के टेनिस-फुटबॉल हैं। ढोल और झाल वहाँ के बाजे हैं, लाठी और भाला-फरसा हथियार। सोटा वहीं 'दुखभंजन' कहलाता है। 'सत्यनारायण की कथा' वहाँ का वेद-पुराण है। पुरोहितजी का पत्रा वहाँ का धर्मशास्त्र है। इस तरह भारतीय संस्कृति या हिन्दुस्तानियत का गढ़ वहीं पर है।

गाँवों के साहित्य में भी भारतीयता भरी हुई है। विद्यापति और कबीर, सूर और तुलसी, रहीम और बृन्द, गिरिधरदास और मलूकदास, मीरा और दादू, घाघ और भड्डरी, आल्हा और उदल, सबका रैन-बसेरा वहीं है। रामचरितमानस और सुखसागर, योगवासिष्ठ और विश्रामसागर, व्रजविलास और तोता-मैना, सिंहासनबतीसी और बैतालपचीसी वहाँ का साहित्य है। सोहर और बिरहा, जँतसार और झूमर, होरी और कजरी, फगुआ और चैता, मलार और बारहमासा वहाँ का संगीत है। रामलीला-रासलीला और नौटंकी वहाँ का नाटक-सिनेमा है। घर लौटा हुआ परदेसी वहाँ देस-दुनिया की खबर पहुँचानेवाला अखबार है। मुहावरे तो वहाँ हर एक देहाती की जबान पर नाचते रहते हैं। वहाँ का हर घर कहावतों का अड्डा है। कहानियों और लोरियों से वहाँ की गलियाँ गूँजती रहती हैं। विवाह और गंगा-नहान के गीतों में, धान रोपनेवाली और खेत काटनेवाली मजदूरिनों के गानों में, चरवाहों और हलवाहों के तरानों में वहाँ साहित्य और संगीत छलकते रहते हैं। लोरिक और विजयमल, बिकरमाजीत और आल्हा-उदल वहाँ के पँवारे में नायक बनकर उमंग की तरंग उमड़ाते हैं। गाँवों का शुद्ध स्वदेशी साहित्य हमारी ऊँची परम्परा का दरपन है।

आजकल के गाँव

पुराने जमाने के गाँवों के बारे में कहा जाता है कि वे बड़े सुखी और सम्पन्न थे। पुराने ग्रन्थों और इतिहासों से गाँवों की खुशहाली और उनके संगठन की कहानियाँ सुनाई जाती हैं। मगर पुराने गीत गाने से कोई लाभ नहीं। 'हमारे दादा को हाथी था, हम सीकड़ लिये फिरते हैं' और 'हमारे बाप ने घी खाया था, हमारी हथेली सूँघ लो'—इन कहावतों से अब मन नहीं भर सकता। अब तो यह देखना है कि आजकल गाँवों की असली हालत क्या है? उनकी ठीक-ठीक दशा की जाँच परख करके अब ऐसे उपाय सोचना और करना है कि उनके दुर्दिन टलें और सुदिन बहुरें। बेशक इस समय भी गाँवों में बहुत-कुछ अच्छाइयाँ हैं, लेकिन ठीक-ठीक सोच-समझकर देखने से उनमें बुराइयाँ ही अधिक नजर आवेंगी। इसका कारण यह है कि कामधेनु से बूँद-बूँद दूध निकाल लेनेवाले तो सभी हैं, मगर उसके लिए सानी-पानी का इन्तजाम करनेवाला कोई नहीं। अँगरेजी सरकार जबतक रही, गाँवों को हर तरह से चूसती ही रही, उसकी चूसी हुई सीठी को भी जमीन्दार और सेठ-साहूकार निचोड़ते रहे। फिर वह नीरस सीठी भी

अदालती अमलों के सिल-लोढ़े से रगड़ी जाती रही। इस तरह गाँवों का एक-एक कण निर्जीव बना डाला गया। आज वे ही गाँव निस्सार होकर दरिद्रता, दुर्बलता, अज्ञान, रोग और अभावों के अड्डे हो गये हैं। भगवान ही उनका उद्धार कर सकते हैं।

गाँवों में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो दरिद्र, दुर्बल और रोगी नहीं हैं—जिनको किसी प्रकार का अभाव नहीं है; पर ऐसे लोग बहुत ही कम हैं—वे उँगलियों पर गिन लिये जा सकते हैं। किन्तु अधिकतर लोग गरीबी और अज्ञान के ऐसे शिकार हो गये हैं कि उनकी जिन्दगी जानवरों से भी गई-बीती है। गरीबी के कारण गन्दगी उन्हें हर तरह से और हर तरफ से घेरे रहती है। गरीबी उन्हें आलसी बना देती है। कपड़ों का अभाव और जल का अभाव उन्हें गन्दा रहने के लिए मजबूर करता है। जिन गाँवों में कहीं-कहीं अच्छे कुँए और तालाब हैं, उनमें रहनेवाले गरीब भी कपड़ों के अभाव से सफाई के साथ नहीं रह पाते। बहुतेरे गाँवों के गरीबों को बहुत दूर-दूर के कुँओं से सिर्फ पीने-भर पानी लाना पड़ता है। कहीं-कहीं तो हरिजनों को एक-एक मील की दूरी से एक-दो घड़ा जल लाकर किसी तरह अपना काम चलाना पड़ता है। मर्द तो कहीं इधर-उधर बाहर निकलकर नहा-धो भी लेते हैं, मगर औरतों को तो बहुत दिनों तक नहाने का पानी नसीब नहीं होता। दिन-रात के सारे काम दो-चार घड़े जल से ही करने पड़ते हैं। जितनी कंजूसी से उन्हें जल खर्च करना पड़ता है, उतनी किफायत अन्न और पैसे में भी नहीं करनी पड़ती। ऐसी हालत में उनका रोगी रहना कोई अचरज की बात नहीं है। उनके पशुओं को तो हमेशा गन्दे गड्ढों का ही पानी पीना पड़ता है, जिसका नतीजा यह होता है कि मुँहपाक आदि कई तरह के रोगों से मवेशी मरते रहते हैं। जानवरों के अस्पताल देहात से बहुत दूर-दूर हैं, इसलिए देहाती गरीब बेचारे लाचार होकर छाती पीटते रह जाते हैं। दरिद्रता और दरिद्रता से पैदा हुए आलस्य और अज्ञान के कारण पशुओं के रहने के स्थान भी बहुत गन्दे रहते हैं। गाँवों में ऐसे पक्के कुएँ भी नहीं हैं जिनके साथ पशुओं के पानी पीने योग्य हौज बने हुए हों। जहाँ नदी और तालाब की सुविधा है, वहाँ भी बस्ती के अन्दर जगह-जगह पड़े हुए घूरों पर मवेशी चीथड़े-लत्ते या कूड़ा-कचरा चबाते चलते हैं। इस तरह भी पशुधन का नाश होता है और पशुधन ही गरीबों की पूँजी है।

दुर्बलता या कमजोरी भी गाँवों में तरह-तरह की है। गिने-चुने लोगों को ही पुष्टि-कर भोजन मिलता है। इसलिए गरीबी ने प्रसादी की तरह कमजोरी बाँट दी है। पुरुषों से अधिक स्त्रियों में कमजोरी बहुत ज्यादा है। स्त्रियों के खान-पान की चिन्ता पुरुष बहुत कम करते हैं। जिन घरानों की स्त्रियाँ बाहर नहीं निकलतीं, उन घरानों के पुरुष कभी स्त्रियों के दाँतों की सफाई के लिए घर में दाँतून लाकर रखने की परवा भी नहीं करते। स्त्रियों की तन्दुरुस्ती कायम रखने के लिए पुरुष कभी सपने में भी नहीं सोचते। स्त्रियों को जिस घर में दिन-रात बन्द रहना पड़ता है, उसमें हवा और रोशनी की गुंजाइश है या नहीं, इसपर भी ध्यान नहीं दिया जाता। उनके बीमार होने पर दवा-दारू का ठीक इन्तजाम नहीं होता। उनके सौरी-घर की सफाई पर कोई ख्याल नहीं रखता, गर्भवती होने पर उनकी देख-भाल अच्छी तरह नहीं की जाती, बच्चा पैदा करने के बाद

सेवा-शुश्रूषा के बिना वे रोगों की खान बन जाती हैं, उनकी दुर्दशा का कहीं अन्त नहीं ! माता की कमजोरी दूध के साथ सन्तान में उतरती है। बहुत सी स्त्रियाँ कमजोरी के कारण बच्चा पैदा करने से पहले ही मौत के घाट उतर जाती हैं। बहुत-से बच्चे भी सौरी-घर में ही दम तोड़ देते हैं। जो बच्चे जीते हैं, वे ठीक तरह से पाले-पोसे नहीं जाते। इसलिए वे अच्छी तरह पनपने नहीं पाते। सयाना होने पर उनका शरीर, चरित्र, ईमान, दिल और दिमाग—सब कमजोर हो जाते हैं। सिर्फ गाँव के बाहर की हरियाली और खुली हवा ही गाँववालों को जिलाती है, नहीं तो वे सचमुच कीड़ों की मौत मरते हैं। शरीर और मन की कमजोरी के कारण ही वे हैजा, प्लेग आदि महामारियों के झट शिकार हो जाते हैं। बहुतेरे तो सिर्फ डर से बीमारी के चंगुल में फँस जाते हैं। दिल दिमाग की कमजोरी के कारण उन्हें कई तरह के संकटों के पंजे में फँसना पड़ता है। चरित्र और ईमान की कमजोरी के कारण वे ऐसे-ऐसे काम कर बैठते हैं जिनसे उनकी प्रतिष्ठा में बट्टा लगता है, धन की हानि होती है, लोक और परलोक दोनों बिगड़ते हैं। इसी कमजोरी के कारण आपसी मनमुटाव, अनबन और झगड़े होते हैं, मुकदमे लड़े जाते हैं, फालतू खर्च से तबाही बढ़ती है और दंगा-फसाद भी हुआ करते हैं। उचित मात्रा में हमेशा अच्छा भोजन न मिलने से शरीर की जो कमजोरी होती है, वह दिन-रात परिश्रम करते रहने से विशेष उभड़ने नहीं पाती, घरेलू और बाहरी कामों में लगे रहने से स्त्री-पुरुषों के शरीर की दुर्बलता जल्दी कोई खराब असर नहीं पैदा कर पाती। मगर कभी-कभी बहुत मामूली कारण से भी अनायास उभड़ पड़ती है और फिर ठीक-ठीक संयम न हो सकने से खतरनाक साबित होती है। जो लोग तन्दुरुस्त और ताकतवर होते हैं, उनका बल भी बदपरहेजी से जल्दी टूट जाता है। यह बदपरहेजी बहुत करके अज्ञान के कारण होती है।

दरिद्रता और दुर्बलता का मूल कारण भी अज्ञान ही जान पड़ता है; क्योंकि समय का मूल्य समझने की शक्ति या बुद्धि बहुत कम होती है। खेती और पशु-पालन के कामों से बचा हुआ बहुत-सा समय आलस्य में गँवा देते हैं। कहीं बेकार बैठकर गप्प करेंगे, चुगलखोरी में या बे-मतलब की बातों में समय बिताते फिरेंगे। न चर्खा कातेंगे, न गाँव की सफाई में मिलजुलकर जुटेंगे, न अपनी आमदनी बढ़ाने के उपाय सोचेंगे, न गाँव के दुखियों की सेवा-सहायता करने के लिए आपस में सलाह करेंगे और न देश की भलाई का कोई काम करेंगे। साल के कई महीने बेकारी में ही खो देंगे। मसल है कि 'बेकार आदमी का दिमाग शैतान का कारखाना' होता है। वही मसल ठीक उतरती है। आलस में पड़े-पड़े किसी की शिकायत करेंगे, किसी की बुराई सोचेंगे और इस तरह दिन-रात का सारा समय फजूल कामों में काट देंगे। दुनिया के प्रपंच और लल्लो-चप्पो में जो समय कट जाता है, उसे भले कामों में लगाने की चिन्ता भी कभी नहीं करते। जीवन की अमूल्य घड़ियों का यह सर्वनाश ही दरिद्रता और दुर्बलता को टिकाऊ बना देता है। ठीक समय पर निबटना-नहाना, मुँह धोना और खाना-पीना किसी का नियम नहीं। ऐसे लोग मुट्ठी-भर ही किसी गाँव में पाये जायँगे जो रोज ठीक वक्त पर अपनी नित्यक्रिया करके अपने शरीर की रखवाली पर खयाल रखते हैं। नहीं तो अधिकतर लोग समय की पाबन्दी

या स्वास्थ्य-रक्षा के नियम बिलकुल नहीं निबाहते। पहर-भर दिन चढ़ गया, मुँह धोने की वेला नहीं हुई! दुपहरी आ धमकी, नहाने-खाने की चिन्ता ही नहीं! किसी काम में समय का बन्धन नहीं—नियम का निबाह नहीं! सारी जिन्दगी का रास्ता ऊबड़-खाबड़!

अज्ञान का तो राज्य ही वहाँ है। धर्मचर्चा या कथा-पुराण सुनेंगे भी तो उसकी सीख पर टुक ध्यान न देंगे। तुलसीदास की रामायण बाचेंगे, ढोलक-झाल लेकर झूम-झूम उसे गावेंगे, मगर उसके उपदेशों पर भूले-भटके भी कान न देंगे। उसे पढ़कर या गाकर उठे और दूसरे के खेत का पानी अपने खेत में कर आये, दूसरे के खलिहान से कटी फसल का बोझा उठाकर अपने खलिहान में रख दिया, दूसरे के खेत में खड़ी हरी फसल को अपने मवेशी से चरा दिया, जिससे कुछ वैर-विरोध है उसके बैल-गाय-भैंस की चोरी करा दी। किसी से अदावत है तो उसका खेत कटवा लिया या खलिहान फूँक दिया या घर में सेंध लगवा दी। लड़कों और स्त्रियों में कुछ कहा-सुनी हो गई, मर्द-मानुष आपस में उलझ पड़े—लाठियाँ चल गईं। खेत-खलिहान में मवेशी चला गया, 'बातहिं बात करष बढ़ि आई'—भाले-फरसे निकल पड़े। समझदारी की कमी से, अज्ञान के चक्कर में पड़कर, मामले-मुकदमे में नाहक पानी की तरह पैसे बहाये जाते हैं। जाली 'हैंडनोट' बनाकर नये बखेड़े खड़े किये जाते हैं। इस तरह मुकदमे गढ़े जाते हैं। अज्ञान ने वैर-विरोध के कारखाने खोल रखे हैं। अदालती कानून की पेचीदगी से गाँवों की बरबादी बहुत बढ़ गई है। महाजनी और जमीन्दारी भी इसमें सहायक हैं।

रोग भी गाँवों में घर-घर घुसे हुए हैं। ज्यादातर स्त्रियों में इनका बोलबाला है। वैद्य, हकीम या डाक्टर गाँवों में बहुत कम हैं। अस्पताल और औषधालय भी बहुत दूर-दूर हैं। अगर कहीं 'पेटेण्ट' दवाओं के दवाखाने हैं भी, तो गरीबी के कारण बहुतेरे गरीब उनसे लाभ नहीं उठा पाते। कहीं-कहीं जिला-बोर्ड के दवाखाने भी हैं, मगर वे दाल में नमक के बराबर भी नहीं हैं। लेडी-डाक्टर, नर्स या धाई का तो कहीं पता ही नहीं है। जानवरों के अस्पताल तो सिर्फ शहरों में ही हैं। मवेशी के डाक्टर कभी देहात में फेरा नहीं लगाते। मवेशियों की तरह औरतें भी बे-मौत मरती हैं। हैजा, प्लेग, मलेरिया आदि बीमारियों के फैलने पर कितने ही घरों में ताले लग जाते हैं। ये बीमारियाँ भी अधिकतर अच्छे भोजन के अभाव से ही पैदा होती हैं। रोगियों को उचित पथ्य भी नसीब नहीं होता। एक तो अज्ञान के कारण लोग तन्दुरुस्ती की ओर से लापरवा होते ही हैं, दूसरे दरिद्रता के कारण भोजन-वस्त्र की कठिनाई से खाने-पहनने में भी गन्दगी ढोये फिरते हैं। जिनको अन्न-वस्त्र या रुपये-पैसे की कमी नहीं है, वे अपने मकान के आस-पास की गन्दगी से बीमारी के जाल में जा पड़ते हैं। घर-घर की नालियाँ गलियों में गन्दगी के पनाले बहाती हैं। अड़ोस-पड़ोस की गलियों में जहाँ-तहाँ घूरे पड़े रहते हैं। अपने-अपने घर की सफाई करके लोग बाहर के रास्ते या सहन में कूड़ा-कचरा डाल देते हैं। कुँओं के आसपास महीनों कीचड़ और गँदला पानी सड़ता रहता है। बिना बिचारे गन्दे बर्तन भी कुँए में डाल दिये जाते हैं। कुँए की जगत के पास ही कोई मुँह धोता है, कोई नहाता है, कोई मैले-कुचैले कपड़े कचारता है; कोई बर्तन माँजती है, कोई गन्दी डोरी

या दूध-दही के बर्तन से पानी भरता है। कुँए की जगत ज्यादातर नीची या जमीन के बराबर रहती है जिससे आँधी या तेज हवा के झोंके में बाहर का कूड़ा-करकट कुँए के अन्दर आ पड़ता है। कहीं-कहीं जेठ के महीने में, मृगदाह नक्षत्र में, जब कुँए की सफाई होती है, तब भीतर से निकली हुई सड़ाँद देखकर पता लगता है कि गाँव के लोग महामारियों में कुत्तों की मौत क्यों मरते हैं? घरों के आँगन में जहाँ रसोई के बर्तन माँजे जाते हैं, वहाँ भी थूक-खखार का विचार नहीं रखा जाता। रसोई-घर की जमीन और दीवार भले ही रोज लीपी-पोती जाती हो, मगर छप्पर तो शायद दीवाली या चैत के नवरात्र में ही झाड़ा-पोछा जाता है। इसलिए हवा के झकोरे छप्पर की काली जहरीली गर्द नीचे गिराते रहते हैं। इसी तरह बस्ती के बाहर भी सफाई पर कोई ध्यान नहीं रखता। बगीचे में फल खायँगे तो वहीं पर छिलके और गुठलियाँ डाल देंगे। जहाँ सायादार पेड़ के नीचे घाम गँवाने या जुड़छाँह लेने की जगह है, वहाँ बैठकर ऊख चूसेंगे, हरे चने या मटर की छीमी खायँगे और फलियों के छिलके वहीं बिखेर देंगे। यही आदत रेल के सफर में और तीर्थयात्रा में भी रहती है। गंगा को पूजेंगे सही; मगर घाट पर जूठी पत्तलें, गन्दी जीभियाँ वगैरह ज्यों-की-त्यों छोड़ देंगे। तीर्थ की धर्मशाला और स्टेशन के मुसाफिरखाने में भी यही करेंगे। नदी और तालाब के घाट पर मुँह धोने बैठेंगे, सारी अँतड़ी वहीं उझल देंगे। आँखें बचाकर घाट के आसपास की जमीन को मलमूत्र से इस तरह गन्दा कर डालेंगे कि नहाने-धोने पर भी तबीयत घिनाती ही रहेगी—खुलकर साँस लेने की भी गुंजाइश न हो सकेगी। गाँव की बस्ती के इर्द-गिर्द भी यही हाल देखने में आता है। खासकर गाँव की स्त्रियाँ बस्ती से दूर नहीं जा पातीं; क्योंकि उन्हें भोर होने के पहले ही और शाम की अँधियाली के बाद ही निबटना पड़ता है। इसीलिए बस्ती के चारों ओर गलीज और गन्दे चीथड़े पड़े नजर आते हैं। अगर बस्ती के अन्दर कोई गड्ढा, बाँसों का झाड़-झुरमुट और खँडहर रहता है तो वहाँ भी वही दुर्गन्ध का फैलाव दीख पड़ता है। ऐसे-ही-ऐसे और भी बहुत-से कारण हैं जिनसे तरह-तरह के रोग वहाँ अड्डा बाँधे रहते हैं। अगर गाँव हरी-भरी प्रकृति की गोद में न बसे होते, चारों ओर दूर-दूर तक फैले हुए मैदानों की खुली हवा उन्हें पखारती न रहती, तो उनमें बसनेवालों की क्या गत होती, इसका अन्दाज लगाना मुश्किल नहीं है।

गाँवों में जो अभाव व्यापे हुए हैं, उन सबकी गिनती नहीं हो सकती; क्योंकि ठीक-ठिकाने से गाँवों की खोज-खबर कभी ली ही न गई, इसलिए उनके ऐसे अभाव भी दूर न हो सके जिनके दूर होने से उनकी हालत कुछ सुधर जाती। पहली बात तो यह है कि गाँवों में अच्छे कुँए बहुत कम हैं। पक्के और साफ कुँओं का अभाव गाँववालों की तन्दुरुस्ती पर बहुत बुरा असर डालता है। उसी प्रकार अच्छी सड़कों का अभाव भी उनकी आमदनी को और उनके ज्ञान को बढ़ने नहीं देता। वे अपने खेतों और बगीचों की उपज आसानी से शहर या स्टेशन तक नहीं पहुँचा पाते। अगर वे तरकारी (साग-सब्जी) की खेती और बागवानी करें भी, तो वह सागभाजी या फलों की पैदावार अच्छे दामों पर बिकने योग्य स्थान में नहीं पहुँच सकती। अच्छे-अच्छे नेता और वक्ता भी उनके

पास नहीं पहुँच पाते; क्योंकि वहाँ तक अच्छी सवारियाँ मुश्किल से पहुँच सकती हैं। इसलिए कोई सभा या उत्सव वहाँ सुविधा से नहीं हो पाता। बरसात में तो असंख्य गाँव मनुष्य की पहुँच से भी बाहर हो जाते हैं। अनेक गाँव ऐसे भी हैं जहाँ सूखे दिनों में भी बैलगाड़ी तक तभी पहुँच सकते हैं जब एक आदमी फावड़ा लेकर आगे-आगे खेतों की मेंड़ काटता और लीक बनाता चले। जबतक गाँवों की सड़कों का सुधार न होगा तबतक शिक्षाप्रचार में सुविधा न हो सकेगी। अच्छे कुँओं से गाँववालों को सफाई और तन्दुरुस्ती तथा खेतों की सिंचाई में सुविधा होगी और अच्छी सड़कों से उनकी आमदनी के साथ-साथ उनके ज्ञान में भी वृद्धि होगी। इसके बाद स्कूलों और पाठशालाओं का अभाव तथा अस्पतालों और डाकखानों का अभाव दूर करना होगा। इन सबके अभाव से उन लोगों की दशा सुधरने नहीं पाती। शिक्षा का प्रचार न होने से वे लोग अपने अधिकारों को नहीं पहचानते और उन अधिकारों को पाने के लिए लड़ने का तरीका भी उन्हें मालूम नहीं। अगर उनमें विद्या का प्रचार बढ़ेगा तो वे समझ सकेंगे कि उनको किस अधिकारी से क्या सहायता मिल सकती है। अस्पतालों से उनके जीवन और पशुधन की रक्षा होगी। डाकखानों से वे बाहरी दुनिया के साथ नाता जोड़ सकेंगे। गाँवों में चिट्ठियों और अखबारों की पहुँच देर से होती है। इसलिए गाँववाले देश-विदेश की बातें ठीक समय पर नहीं जान पाते। देश की उन्नति के कामों में उनका सहयोग या देश-सुधार के किसी भी आन्दोलन में उनकी पूरी सहायता तभी मिल सकती है जब उनके सब अभाव शीघ्र दूर कर दिये जायँ।

कवियों और लेखकों के गाँव

हमारे कवियों और लेखकों ने गाँवों के जो चित्र खींचे हैं, वे बड़े सुहावने-लुभावने हैं। गाँवों में बसनेवालों को उन्होंने दूध का धुला हुआ साबित कर दिया है। कविताओं और कहानियों में, लेखों और पुस्तकों में, सब जगह गाँवों के गुण गाये गये हैं। गाँव स्वर्ग है, किसान देवता! गाँववाले भोलेभाले और सीधे-सादे हैं, शहरवाले चलता-पुर्जा और चुस्त-चालाक हैं। कवियों और लेखकों की ऐसी बातों में कुछ सचाई भी जरूर है; मगर अधिकतर खयाली पुलाव ही पकाया गया है। असलियत यह है कि इस समय गाँवों में और गाँववालों में तरह-तरह की बुराइयाँ घर कर गई हैं, जिनके कारण कहीं-कहीं तो स्वर्ग भी नरक बन गया है और देवता भी दानव हो गये हैं। इस बात में नमक-मिर्च की मिलावट नहीं है, खरी सचाई है। वहाँ अगर मेल-मिलाप भी देखने में आता है तो उसके भीतर भेदभाव छिपा रहता है। बेईमानी-शैतानी, ईर्ष्या-द्वेष बैर-विरोध, धोखा-धड़ी—भीतर-ही-भीतर चला करती है, बाहर-बाहर सिर्फ जीभ ही काट करती है। ऊपर राम-राम भीतर सिद्ध काम! दिल की सफाई और ईमान की सचाई बहुत ही कम देखने में आती है। इसलिए अदालती झगड़ों में देहातियों के काफी पैसे बरबाद होते हैं। नालिश-फौजदारी के बखेड़े से बचे हुए गाँव उँगलियों पर गिन लिये जा सकते हैं। एक अच्छा खाता-पहनता है, दूसरा डाह से जलता है। महाजनी करनेवाला सूद-दर-सूद लगाकर

गरीबों को ऋण की चक्की में पीसता है। किसीके पास अच्छी दरी, बढ़िया कालीन, गलीचा या तोशक है तो लोग मँगनी ले जाकर पचा जायँगे—साफ कह देंगे, चीज भूल गई; अगर दण्ड या दाम लिया जाय, तो घात पाकर बैर साधेंगे। कीमती असबाब रखना बहुत खतरनाक है। बराती सामान मँगनी न देने पर चोरी करा देंगे। साधारण-सी चीज के लिए बैल, गाय, भैंस, घोड़े आदि की चोरी करा देनेवाले बहुत लोग हैं। थोड़ी सी कहा-सुनी हो गई, घर में सेंध पड़ गई! फल का बाग है तो लोगों को फल खाने की छूट दीजिए, नहीं तो कच्चे फल ही नष्ट कर दिये जायँगे—बाग-भर के हरे पेड़ भी कट जायँ तो कोई अचरज की बात नहीं। मखमली दस्ताने में लोहे के बघनखे रखनेवाले लोगों ने गाँवों को चौपट कर डाला है। तिलक-फटाकावाले और माला कंठीधारी तो और भी डूबकर पानी पीते हैं। पढ़े-लिखे जो हैं सो भी उसी दलदल में फँसे हैं। 'भोलाभाला' कहा जानेवाला किसान अन्त में 'भाला' निकलता है। अदना-सी बात के लिए किसानों में आपस का मनमुटाव हो जाता है, खेत में खड़ी हरी फसल कट जाती है, खलिहान फुँक जाता है, बहू-बेटी तक पर आ बीतती है। आन की बात ठन गई तो डकैती और खूनखराबा भी देखते-देखते हो जाता है। मुकदमे की मुक्ति हाईकोर्ट में मानी जाती है। शादी-ब्याह काटने के धन्धे गुपचुप चला करते हैं। किसी सुखी और सम्पन्न घराने की विधवा को बहकाकर पट्टीदारी का झगड़ा खड़ा किया जाता है। भोलेभाले भाई भतीजे को फुसला-बहलाकर नये मामले-मुकदमे गढ़े जाते हैं। हलवाहे-चरवाहे मजदूर भी बहकाये जाते हैं। मजदूरों ने ऐसा ईमान छोड़ दिया है कि कसकर मजदूरी लेने पर भी तन-मन से काम नहीं करते। गाँवों में पैसे के सिवा खाना-दाना और तर-तम्बाकू भी देना पड़ता है। तब भी देखरेख न करने पर ठीक तरह से काम नहीं होता। काम करानेवाले को दिन-भर मजदूरों की पूरी चरवाही करनी पड़ती है। पैसा और सीधा भी दीजिए, समय भी नष्ट कीजिए। खेत-खलिहान में भी मजदूरों पर आँख न रखी जाय तो बंटाढार ही समझिए। जो बेचारे सचमुच ईमानदार हैं, वे भी बेईमानों के गुट में अपना पत-पानी मुश्किल से बचा पाते हैं। सीधे-सपाटे का गुजर गाँव में तभी हो सकता है जब अपनी हानि सहकर दूसरों को लाभ पहुँचाता रहे। बिना मुँह का आदमी वहाँ नहीं खप सकता। 'मिट्टी का देवता तिलक में ही गायब' हो जाता है। सूधे का मुँह कुत्ता चाटता है। जो दबंग है, जिसे लाठी का जोर है, जिसके घर में दो-चार पट्ठे लठैत हैं, उसका हल तो भूत भी जोतता है; मगर जिसके पास बाहुबल नहीं है, वह अपने धन की रक्षा के लिए हमेशा डरा या चिन्तित रहता है; या तो वह जब-तब लोगों की जरूरत पूरी करता रहे और उन्हें दी हुई रकम के लिए उनसे कभी तगादा करने की हिम्मत न करे, या सींग-पूँछ दबाकर दीन बना रहे। गाँवों की यह हालत उत्तम स्वदेशी शिक्षा से ही सुधर सकती है। यों तो आजकल के पढ़े-लिखे लोग भी गाँवों में रहकर कुछ सुधार नहीं कर पाते; क्योंकि वे खुद ही सुधरे हुए नहीं हैं। जो बात का धनी, लँगोट का पक्का, ईमान का सच्चा, निष्पक्ष, स्वार्थत्यागी और परोपकारी स्वभाव का हो, वही गाँव में रहकर गाँव का सुधार कर या करा सकता है। लेखकों और कवियों ने गाँवों और किसान-

मजदूरों के जो सुन्दर चित्र खींचे हैं, वे पुराने पड़ गये—धुँधले हो गये ; अब उनमें चटकीलापन नहीं है, अब उनपर कलियुगी धब्बे छा गये हैं।

गाँवों के नाम का सुधार

गांवों का सुधार करने से पहले उनके नामों का सुधार बहुत जरूरी है। यहाँ तक कि गाँवों में बसनेवालों के नामों का भी सुधार करना पड़ेगा। बहुत से गाँवों के नाम अटपटे, बेढ़ंगे, घिनौने और अशुभ हैं। बहुतों का तो कुछ अर्थ ही नहीं है। कुछ गाँववालों के भी नाम भोंड़े-भद्दे और अशुद्ध होते हैं। नाम का सुधार करने में कई बातों का विचार करना पड़ेगा, इसलिए गाँवों के समझदार लोगों की राय से यह काम होना चाहिए। उस समय गाँव के भूगोल और इतिहास पर भी ध्यान रखना होगा। गाँव के प्रतिष्ठित पूर्वजों के नाम को भी याद कर लेना पड़ेगा। गाँव की विशेषता या खूबी क्या है, यह भी सोचना होगा। सरकारी दफ्तरों में दाखिल-खारिज कराने से पहले गाँव के नये नाम का चुनाव बहुत सोच-समझकर करना होगा। गाँव के स्त्री-पुरुषों के फूहड़ नाम भी उनके गुणानुसार बदले जा सकते हैं। सयाने लोगों के गन्दे नाम अगर न बदल सकें तो नई सन्तानों या नई पीढ़ियों के ही नामों का चुनाव सुन्दर होना चाहिए। बड़े घरानों में यह काम पुरोहितजी करते हैं; पर अब गाँव-भर के बच्चों के नाम ग्राम-पंचायत भी रख सकती है। किसी बस्ती का नाम 'चूल्हनचक' और किसी आदमी का नाम 'चिथरू' अच्छा नहीं लगता। सभ्य और स्वाधीन देश के गाँवों और लोगों के नाम भी सुन्दर और सार्थक होने चाहिए।

गाँवों के रास्तों का सुधार

गावों की उन्नति अच्छे रास्तों के बिना रुकी हुई है। कुछ गाँवों में पहुँचने के लिए सुगम रास्ते जरूर हैं, मगर अधिकतर गाँव ऐसे ही मिलेंगे जिनके पास तक भी पहुँचना अत्यन्त कठिन है। जहाँ-जहाँ अच्छी सड़कें हैं, वहाँ-वहाँ स्कूलों के अफसर, सरकारी अफसर, मवेशी के डाक्टर, अस्पताल के डाक्टर, तरह-तरह के तिजारती लोग, नेता, वक्ता, कवि, सुधारक, सब-के-सब आसानी से पहुँच जाते हैं। नाच-तमाशेवाले भी सुविधा के रास्ते ढूँढ़ते हुए गाँवों में पहुँचकर देहातियों का मनोरंजन कर देते हैं। गाँववाले भी अपनी उपज, अपने खेतों और बाग-बगीचों की पैदावार, आसानी से शहर या हाट-बाजार तक पहुँचा सकते हैं। लेकिन ज्यादातर गाँव इन सब तरह के लाभों से कोरे रह जाते है; क्योंकि उन्हें अच्छी सड़कें नसीब नहीं हैं। उन्हें बैलगाड़ी के लिए भी बहुत ज्यादा भाड़ा देना पड़ता है, एक्का-बग्घी-मोटर तो वे बरसों देख भी नहीं पाते। अनेक गाँव ऐसे हैं, जहाँ के स्त्री-बच्चों ने मोटर या रेलगाड़ी देखी ही नहीं है। उन्हें किसी नेता के दर्शन भी नहीं हुए हैं। कभी उन गाँवों में कोई सभा-सम्मेलन हुआ ही नहीं है। बरसात में तो बहुतेरे गाँव टापू बन जाते हैं। सारी दुनिया से उन गाँवों का सम्बन्ध टूट जाता है। उन गाँवों की डाक भी बरसात में महीना-भर बाद पहुँचती है। अखबारों की पहुँच उन्हीं गाँवों तक

होती है जो अच्छी सड़कों के किनारे बसे हैं या किसी छोटे-मोटे रेलवे-स्टेशन के करीब हैं। इसलिए सबसे पहले गाँवों के लिए अच्छी सड़कों का इन्तजाम होना चाहिए। जिला-बोर्ड के मेंबर शुरू में तो वोट माँगने के लिए भीख की झोली लेकर पहुँचते हैं, मगर झोली भर जाने के बाद फिर कभी मुँह नहीं दिखाते। देशभक्तों की टोली भी देहातियों से अपने मतलब गाँठकर उड़नछू हो जाती है। वोट और चन्दे के इन भिखारियों को फिर कभी गाँववालों के सुख-दुख की कोई सुधि नहीं रहती। ये लोग भूले-भटके भी खोज-खबर नहीं लेते कि गाँववाले किस दुर्गति में हैं। सरकार ने जो खेती-बारी के अफसर और मवेशी-अस्पताल के डाक्टर जगह-जगह रख दिये हैं, वे लोग भी गाँवों में कभी नहीं जाते; जाते भी हैं तो सिर्फ भत्ता कमाने के लिए, गाँववाले उनसे कुछ भी लाभ नहीं उठा पाते। हैजा-प्लेग-मलेरिया में जो लोग दवाएँ बाँटने या सुइयाँ देने जाते हैं, वे भी सरकारी हुक्म और कानून के खिलाफ गरीबों से पैसे ऐंठते हैं। अगर सब जगह अच्छी सड़कें बन जायँगी तो ऊँचे ओहदे के सरकारी अफसर बड़ी सुविधा से हर जगह पहुँचकर गाँववालों की शिकायतें सुन सकेंगे। तभी छुटभइयों की मनमानी बन्द हो सकेगी। जनता की भलाई के लिए जितने भी आन्दोलन होते हैं उनका पूरा प्रभाव उन गाँवों तक नहीं पहुँच पाता जिन गाँवों तक अच्छी राह नहीं है। अगर सचमुच गाँवों को जगाना और सुधारना है, उन्हें ऊपर उठाना या कष्ट-कठिनाई से उनका उद्धार करना है, तो गाँव-गाँव में अच्छी सड़कों का जाल बिछाना होगा। जबतक चारों ओर सड़कों का ताँता न बँधेगा तबतक गाँवों में सच्ची जागृति नहीं फैल सकती—अगर फैलेगी भी तो टिकाऊ नहीं रह सकती।

गाँवों के कुँओं का सुधार

जिन गाँवों के पास गंगा बहती है, या जहाँ कोई अच्छी नदी है, वहाँ भी बस्ती के अन्दर अच्छे कुँओं की बड़ी जरूरत है। कितने ही गाँवों में कुछ अच्छे कुँए पहले से हैं भी, मगर ज्यादातर कुँए खराब और गन्दे ही मिलेंगे। अनेक गाँवों में पक्के कुँए हैं ही नहीं। कच्चे कुँए भी साफ-सुथरे नहीं हैं और गिनती में भी बहुत कम हैं। कच्चे कुँओं की जगत इतनी नीची होती है कि बाहर का गँदला पानी उनके अन्दर गिरता रहता है। कुँए के चारों ओर की जमीन सड़ी-गली कीच से दलदल बनी रहती है। आँधी आने पर चारों ओर से कूड़ा-कचरा उसी में जाता है। कहीं-कहीं जेठ के मृगदाह में जब कुँए की सफाई होती है तब टोकरियों गन्दगी निकलती है—शहर के बड़े पनाले की गन्दगी भी मात हो जाती है। कुँए के पास ही मुँह धोना, जीभी करना, थूक-खखार फेंकना, गन्दे कपड़े कचारना या साबुन लगाना, बाल काटना, जूठी पत्तलें फेंकना, देह की मैल धोना, मवेशी को नहलाना, गोबर पाथना और बर्तन माँजना नहीं चाहिए। मगर ये सारे काम गाँव के कुँए पर बेधड़क होते रहते हैं। कुँए में गन्दे बर्तन डालने की आदत भी खतरनाक है। मगर वहाँ छुतहे घड़े से भी कुँए का पानी निकालने में किसी को हिचक नहीं! घड़े या डोल की पेंदी में कीचड़ या गोबर लगा हो, तो भी पानी भरने से कोई रोकनेवाला नहीं! इन्हीं कारणों से कुँओं के भीतर और बाहर कीड़े पैदा होते और बढ़ते रहते हैं। इसलिए गाँवों में पक्के-पुख्ते कुँओं के बनवाने के साथ-साथ इस बात की भी जरूरत है कि गाँववालों को कुँओं

की सफाई के तरीके भी बतलाये जायँ। जल के विकार से ही नाना प्रकार के रोग होते हैं; क्योंकि पीने के सिवा अन्न के पकाने में भी जल ही काम में लाया जाता है।

गाँव के गरीबों और अछूतों को अपने घर से दूर-दूर जाकर कुँए का पानी लाना पड़ता है। कहीं-कहीं तो अछूतों को बस्ती के बाहर के कुँए से पानी ढोना पड़ता है। जहाँ पीने के लिए पानी इतनी कठिनाई से मिलता है, वहाँ नहाने-धोने के लिए पानी कौन ढोए ? चाहिए तो यह कि गरीबों और अछूतों की बस्ती के अन्दर या उनके घर के नजदीक ही पक्का कुँआ बनवा दिया जाय, जहाँ से वे सुविधा के साथ पीने का पानी भर सकें, उनके स्त्री-बच्चे नहा सकें, उनके पशु भी पानी पी सकें। कोई पक्का कुँआ भी शायद ही ऐसा देखने में आता है जिसके पास पशुओं के पानी पीने के लिए चरन या हौज बना हुआ हो। कुँए के आसपास के गड्ढों में जमा हुआ सड़ा पानी ही पशु पीते और घूरे पर पड़े गन्दे लत्ते चबाते फिरते हैं।

गाँवों में नल-कूप या हाथ के नल भी बनवाये जा सकते हैं। लेकिन हाथ का नल (टिउब-वेल) गाँव में तभी टिकाऊ रहकर बराबर काम देगा जब उसके बिगड़ने पर उसे दुरुस्त करनेवाला कारीगर वहाँ मिल जाया करे। देहात में कल-पुर्जे की चीज मौके पर नहीं बन सकती। हाथ के नल से कुँआ कहीं अच्छा है, एक बार मजबूती से बन गया तो बरसों के लिए पानी का कष्ट दूर हो गया। हाँ, गाँवों में हाथ के नल लगेंगे तो वहाँ कल-काँटे के कारीगर भी निकल आवेंगे—उनकी रोजी भी बढ़ जायगी ; तब भी कुँओं का अभाव खटकता ही रहेगा। पानी-नल या बिजली के दम-कल की बात ही और है। उसके दिन अभी दूर हैं।

अच्छे और साफ कुँओं की सुविधा होने पर गाँव के लोग नीरोग रहेंगे, महामारियों से भी बचेंगे। किन्तु बड़े-बड़े गाँवों में नहाने-धोने और पशुओं को पानी पिलाने की सुविधा के लिए अच्छे तालाबों की जरूरत है। गाँवों में कहीं कहीं पक्के तालाब हैं भी, मगर ज्यादा जगहों में कच्चे घाटवाले ही हैं, बहुतों की बिल्कुल बिगड़ी दशा है—उनका सुधार होने से गाँववालों को बड़ा आराम होगा। तालाब-पोखरे भी गाँववालों की गन्दी आदतों से ही खराब होते हैं। गाँव के पास का नदी-तट भी गन्दा ही रहता है। कारण यह है कि वहाँ हर एक आदमी अपने ही सुख-सुभीते का ध्यान रखता है, दूसरे के सुख सुभीते से उसे कोई मतलब नहीं। गाँववालों को जलाशयों की स्वच्छता के लाभ सुझाये जायँ—कुँए, तालाब और नदी-तट की सफाई के पाठ पढ़ाये जायँ, ढंग सिखलाये जायँ, कायदे बतलाये जायँ, अभ्यास कराये जायँ। जब उनमें सफाई की भावना आ जायगी, उनके बहुत से क्लेश मिट जायँगे। शुद्ध वायु उन्हें मिलती ही है, शुद्ध जल भी मिलने लगेगा।

गाँवों में कुँओं और तालाबों के बनवाने या सुधारने में वहाँ के धनीमानी लोगों से भी सहायता ली जा सकती है। सरकारी प्रेरणा या आज्ञा से ही गाँवों के धनी मानी लोग सहायता दे सकते हैं। बहुत-से धनियों के पास इतना काफी धन है कि उसे कोई भोगनेवाला नहीं है। बहुत-सी निःसन्तान विधवाओं के पास और धनी महन्तों के पास काफी रुपये बेकार पड़े हुए हैं। ऐसे कृपणों और धन-लोभियों पर सरकारी दबाव पड़ने से

गाँवों में अच्छे कुँए और तालाब बन जा सकते हैं। इसके सिवा सारे गाँव के लोगों के मेल-जोल से भी बिगड़े कुँओं तालाबों का सुधार हो सकता है। ग्राम-पंचायतों को सरकारी सहयोग मिलने पर भी यह काम ठीक-ठिकाने से हो सकेगा। ऐसे काम के लिए कुछ लावारिस धन भी मिल सकता है।

गाँवों के मकानों का सुधार

अच्छे शहरों में मकान बनाने के लिए म्युनिसिपैलिटी में मकान का नक्शा पेश करना पड़ता है; लेकिन गाँवों में धनियों के मकान भी बे-किता और बे-तरतीब बनते हैं, फिर गरीबों के मकानों का बे-डौल होना कोई अचरज की बात नहीं। गाँवों में मकान बनवाने का ढंग बहुत ही खराब है। बड़ी-बड़ी बस्तियों में बहुत ही सँकरी गलियाँ और बे-ढब मकान बड़े दुखदायी हैं। न उनमें काफी रोशनी मिलती है, न साफ हवा। घर की नालियों से गलियाँ भी गन्दी ही रहती हैं। अगर ग्राम-पंचायतों को बस्तियों के सुधार का अधिकार भी सौंपा जाय तो बहुत अच्छा होगा। मकानों की सीधी कतारों के बीच में चौड़ा रास्ता और पीछे की ओर पाखाने-पनाले रहें तो लोगों की तन्दुरुस्ती अच्छी रह सकती है—खास कर स्त्रियों को खुली हवा और धूप नसीब होगी। घनी बस्तियों में अन्धकूप घरों के अन्दर रहनेवाली पर्दानशीन स्त्रियों की बड़ी दुर्दशा है। वे किसी-न-किसी तरह के रोग की शिकायत करती ही रहती हैं। बच्चों की मौत इसीलिए बहुत ज्यादा होती है कि उनकी माताओं की तन्दुरुस्ती हमेशा बिगड़ी रहती है। कितनी ही स्त्रियाँ अपनी कमजोरी के कारण सुख से बच्चा भी नहीं जनतीं, सौरी-घर में ही दम तोड़ देती हैं। और कितनों के पेट में ही बच्चा मर जाता है। अगर मकानों में खुली धूप और हवा मिला करे तो स्त्रियों का बड़ा उपकार हो। उनके लिए तो गाँव की बस्ती के बीच में या नजदीक ही कोई ऐसा खुला मैदान रहना चाहिए, जहाँ सुबह-शाम सिर्फ वे ही अपने बच्चों के साथ टहल-घूम सकें। वह मैदान चारों ओर से घिरा हुआ हो या खुला ही हो, मगर उसमें किनारे-किनारे कुछ फूल-पत्ती और कुछ सायादार सुन्दर पेड़ भी होने चाहिए। अगर हर एक मकान के आगे खुला मैदान या सहन और छोटी सी फुलवारी या साग-भाजी की क्यारियाँ रहें तो और भी अच्छा होगा। आज भी गाँवों में देखा जाता है कि कुछ मकानों के पिछवाड़े छोटा या बड़ा एक खंड होता है जिसमें फूल-फल के पेड़ और साग-सब्जी की दो-चार क्यारियाँ होती हैं। लेकिन मकान के साथ लगे हुए ऐसे खंडों का कोई सिलसिला नहीं होता। किसी मकान के पीछे है तो किसी के दाहिने-बायें और किसी के कोने पर, कोई सँकरा है तो कोई तिकोना। ऐसा न होकर यदि एक कतार के मकानों के साथ-साथ बराबर-बराबर जमीन के टुकड़े लगे रहें और एक कतार के सभी मकानों के आगे-पीछे थोड़ी घनी खुली जमीन रहे, तो बस्ती के लोगों की तन्दुरुस्ती भी ठीक रहे और गाँव भी सुन्दर दीख पड़े।

बस्ती का सुधार करते समय अच्छे मकानों की जाँच करनी पड़ेगी। अगर तन्दुरुस्ती के ख्याल से कोई मकान साफ-सुथरा, हवादार और मजबूत भी जान पड़े तो ऐसे मकानों

को बचा रखने से बस्ती के सुधार का खर्च नहीं बढ़ सकता। अच्छे मकानों के आसपास के गन्दे मकानों का सुधार तो बहुत जरूरी है। जिन मकानों में धूप और रोशनी की कमी हो, जिनमें पाखाने और नाली का निकास न हो, जिनसे बस्ती की सुन्दरता बिगड़ती हो और गन्दगी भी बढ़ती हो, उन्हें तोड़कर अच्छे ढंग से बनवाने का उपाय होना चाहिए। ग्राम-पंचायत और गाँव की सहयोग-समिति (कोआपरेटिव सोसाइटी) से मकान-मालिक को मदद मिलनी चाहिए। जिसके पास जमीन की कमी हो उसको तो उसकी गुंजाइश के मुताबिक जमीन भी मिलनी चाहिए, भले ही उसके मकान की जगह बदल जाय। बहुत-से अच्छे मकानों की शोभा आसपास के बेडौल मकानों से मारी जाती है। वे ही बेडौल मकान, मिट्टी और फूस के ही सही, अगर सुधारकर सुहावने ढंग के बना दिये जायँ, तो बस्ती की सूरत बदल जा सकती है। बहुत से धनी-मानी लोग अपनी जरूरत से ज्यादा जमीन घेरे बैठे हैं, जिससे उनके पड़ोसी गरीबों को बहुत तकलीफ है। इसी तरह, बहुत से गरीब भी ऐसे हैं जिनको थोड़ी-सी जमीन के न मिलने से एक अच्छे मकान का रुख बिगड़ जाता है; मगर उस जमीन के बदले में वे न रुपया लेते हैं और न खेत—अपने काम में भी नहीं लाते, सिर्फ इसीलिए नहीं देते कि वह अच्छा मकान नकटा ही बना रहे तो भला है, और इतना ही नहीं, डाह से घर-भर का कूड़ा-कर्कट उसी फालतू जमीन में डालते रहते हैं ताकि अच्छे मकान की आन बिगड़ जाय। खेती की जमीन की तरह बस्ती की जमीन का झगड़ा भी पूरा रगड़ा ही है। ऐसी हालत में सरकारी कानून से ही बस्ती का सुधार हो सकता है। जबतक सरकार की शक्ति इस काम में नहीं लगेगी तबतक गाँव की बस्ती नरक-कुण्ड ही बनी रहेगी। ग्राम-पंचायत को अगर बस्ती के सुधार का काम सौंपा जाय तो उसे उचित अधिकार भी दिया जाय। गाँवों की बस्तियों को सुन्दर बनाने के लिए शायद बहुत-से पुराने कानूनों को भी सुधारना पड़ेगा। परन्तु जब गाँवों का कायाकल्प करना ही है—देश को सुन्दर, सभ्य और सुखी बनाना ही है, तब दकियानूसी कानूनों को ताक पर रखना ही होगा। नये युग की जरूरत के मुताबिक नये-नये कानून बनते ही हैं। कानून की कड़ाई के बिना कोई सुधार का काम हो ही नहीं सकता। हाँ, कानूनी कठोरता के साथ न्याय की दयालुता भी होनी चाहिए। प्रजा पर शासन की निठुराई हो तो नेह-छोह और ममता भी हो। बस्ती की खूबसूरती के लिए किसी का अनगढ़ मकान ढहाने से पहले उसके बनाने का उपाय कर या करा देना होगा—कर्ज या मदद देने-दिलाने का बन्दोबस्त कर देना होगा। यह काम चाहे ग्राम-सभा करे या सरकारी अफसर। करना किसी को पड़ेगा जरूर, नहीं तो गँवार देहाती बहुत बखेड़ा करेंगे।

मकानों के सुधार में हर तरह के छोटे-बड़े घरों के नक्शों की जरूरत होगी। ईंट या मिट्टी या बाँस-फूस के हर तर्ज के मकान का ढाँचा और उनके बनवाने में खर्च का अन्दाज जब लोगों की आँखों के सामने आ जायगा तब लोग कर्ज काढ़कर भी सुन्दर मकान बनवा डालेंगे। छोटे-बड़े परिवारों के अनुसार बने हुए छोटे-बड़े और सस्ते-महँगे मकानों के नक्शे देख लेने पर गाँववालों में जरूर ही नया हौसला पैदा होगा। अगर

इसमें कुछ दिक्कत भी हो तो गाँववालों की भलाई और तन्दुरुस्ती के खयाल से यह करना ही पड़ेगा। जबतक गाँव की बस्ती साफ-सुथरी, सुन्दर और हवादार न होगी तबतक गाँव गन्दगी और रोग के घर बने ही रहेंगे। कानून के सहारे जब हर तरह के सुधार किये जा सकते हैं, तब यह सुधार तो सबसे पहले होना चाहिए। बस्ती की नई बनावट के बारे में गाँव के लोग राजी किये जा सकते हैं और पंचसाला या सतसाला ब्योरा तैयार करके धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा काम भी निबटाया जा सकता है। इसके लिए गाँव के मुखिया या धनी-मानी लोगों को कुछ स्वार्थत्याग करना पड़ेगा, जिसके लिए उत्साह और सुझाव मिलने पर वे खुद तैयार हो सकते हैं। नमूने के गाँवों को देखकर लोगों में देखा-देखी भी उमंग आ सकती है।

गाँव के खँड़हर, गड्ढे, टीले और झाड़-झंखाड़ भी बस्ती को गन्दगी का भण्डार बना देते हैं। इनके कारण बस्ती के अन्दर दुर्गन्ध, मच्छर और साँप का अड्डा कायम हो जाता है, जिससे रोग और मौत का डर बना रहता है। खँड़हरों में साग-भाजी या फूलपत्ती उगाई जा सकती है। गड्ढों को मिट्टी से पाटकर सहन बना देने से मच्छरों का डर जाता रहेगा। टीलों और झाड़ों को काटकर साफ कर देने से जहरीले जीवों का बसेरा उजड़ जायगा। लावारिस खँड़हर तो खेत की तरह किसी अच्छे असामी के हाथ बन्दोबस्त किये जा सकते हैं। गाँव के बेचारे कितने ही मजदूर अपने बालबच्चों के साथ दिन-रात हड़तोड़ मेहनत करने को तैयार रहते हैं, मगर उनके पास खेत ही नहीं—कोई जमीन का टुकड़ा नहीं कि वे सब-के-सब लग-भिड़कर उसे आबाद करें। उपज बढ़ाने की शक्ति जिनमें भरपूर है, उनके पास जमीन ही नहीं है और जो मेहनत नहीं कर सकते—साथ ही, भरपूर मेहनताना भी देना नहीं चाहते—उनके पास काफी जमीन है, जो आबाद न हो सकने पर बेकार परती पड़ी रहती है। इस तरह तो गरीबी और भूखमरी कभी दूर ही न होगी। इसलिए बस्ती के अन्दर की जो जमीन आबाद होने लायक हो और बेकार पड़ी रहकर गन्दगी बढ़ाती हो, उसे गरीब मजदूरों या बिना खेत-बारी के किसानों को उचित लगान पर सौंप देने का कानूनी इन्तजाम होना चाहिए—भले ही यह इन्तजाम करने का हक ग्राम-पंचायत को ही क्यों न हो।

गाँव की बस्ती का सुधार करने के लिए ग्राम-पंचायत या ग्राम-सुधार-सभा को जिम्मेवारी सौंपी जा सकती है, लेकिन उसकी देखभाल और जाँच-पड़ताल करने के लिए सरकारी अफसर भी रहना चाहिए। हाँ, वह गाँव की सब तरह की बातों का जानकार हो और गाँव का ही रहनेवाला भी हो; क्योंकि शहर का रहनेवाला अफसर गाँव की बहुत-सी बातों को ठीक समझ और सुलझा नहीं सकता। साथ ही, वह भत्ता बनानेवाला आराम-तलब भी न हो; वह बरसात में भी बराबर गाँवों में चक्कर लगाता रहे, तभी वह बस्तियों की हालत का अन्दाज लगा सकेगा। जबतक ग्राम-सुधार-विभाग के सरकारी अफसर गाँवों के रास्तों की दुर्दशा खुद नहीं झेलेंगे, तब तक सिर्फ सूखे दिनों में सवारी दौड़ाने से कोई फायदा न होगा। यह जरूरी नहीं है कि गाँव की बस्ती के सुधार में सिर्फ सरकार के ही पैसे खर्च हों। अगर गाँव के लोगों में नई उमंग और नया हौसला पैदा

किया जाय, तो बस्ती के सुधार का सारा खर्च गाँववालों से ही निकाला जा सकता है। मगर लोगों में साध पैदा करनेवाला सच्ची लगन का आदमी चाहिए।

जरूरत इस बात की है कि शहरों में जैसे मकान बनाने के लिए म्युनिसिपैलिटी को मकान का नक्शा दिखाना पड़ता है, वैसे ही गाँवों में भी कुछ ऐसा नियम होना चाहिए कि मकान चाहे मिट्टी का बने या ईंटों का या बाँस-फूस का, उसकी बनावट की रूपरेखा को ग्राम-पंचायत पहले ही देखकर मंजूरी दे और वह तन्दुरुस्ती या सफाई के खयाल के साथ-साथ सुन्दरता का खयाल भी रक्खे। मकान मामूली भी हो तो उसकी बनावट सुन्दर हो, उसमें रोशनी और हवा की काफी गुंजाइश हो, उसके इर्द-गिर्द की जमीन साफ-सुथरी हो, उसकी मोरी या नाली का निकास ठीक हो।

बस्ती के सुधार में एक दिक्कत यह है कि देहात में ईंट और सीमेंट का बहुत अकाल है। कुछ लोग पक्का मकान बनवा सकते हैं, मगर शहर से ईंट-सीमेंट मँगाने में बहुत ज्यादा खर्च पड़ने के डर से हिचकते हैं। कोयला और सीमेंट भी उन्हें आसानी से नहीं मिल पाते। अगर ईंट-सीमेंट का रोजगार करनेवाले धनी व्यापारी जगह-जगह गाँवों के मण्डल के बीच-बीच में ईंट-सीमेंट की अपनी तिजारत खोल दें तो दस साल के अन्दर गाँवों की बस्तियों की सूरत बदल जायगी। मकानों के साथ-साथ कुँओं का भाग्य भी पलट जायगा। तिजारतियों को भी खूब नफा होगा। गाँवों की राहों या सड़कों पर जगह-जगह पुल या बाँध बनवाने में सरकार को भी सुविधा होगी। गाँवों के टूटे-फूटे मन्दिर, देवस्थान, तालाब और घाट, सबकी मरम्मत और सबके उद्धार के लिए लोगों में सूझ और साध पैदा होने लगेगी। इस तरह गाँवों का रूप सुन्दर और सुहावना बन जायगा।

खेतों की चकबन्दी

गाँवों में जो बहुत बड़े-बड़े गृहस्थ हैं, उनके कुछ खेत ऐसे जरूर हैं जो एक ही जगह होने के कारण जोतने-बोने में या रखवाली करने में दिक्कत नहीं पड़ने देते। नहीं तो अधिकतर किसानों के, और उन बड़े गृहस्थों के भी, सभी खेत इधर-उधर बिखरे हुए होते हैं। किसी का थोड़ा गाँव से पूरब है तो थोड़ा पच्छिम और थोड़ा उत्तर-दक्खिन भी है। इस तरह थोड़ा-थोड़ा खेत गाँव के चारों ओर पड़ जाने से खेती और रखवाली दोनों में दिक्कत होती है। एक किसान का खलिहान एक ही होता है। उसको चारों ओर से कटी फसल के बोझे ढुलवाकर खलिहान तक लाने में बेशी मजदूरी देनी पड़ती है। खेतों के बिखरे होने से उसकी शक्ति भी बिखर जाती है। टँगफटाव काम में उसका पूरा जोर नहीं पहुँच पाता। बहुत सी हानि तो खेत की खड़ी फसल में ही हो जाती है। अगर उसके पास दस बीघे की पूँजी है और वह भी दस टुकड़ों में बँटी हुई है, तो उसके बिखरे खेतों के चारों ओर की मेड़ों की लम्बाई-चौड़ाई का हिसाब लगाने पर लगभग नव बीघे खेत ही उसके बाँटे पड़ेंगे, और अगर मेड़ों के आसपास की फसल मुँहजोर पशुओं की लपक या राह-चलतों की नोच खसोट से नष्टभ्रष्ट हो गई, तो उसे लगभग आठ बीघे की ही पैदावार हासिल होगी। फिर खलिहान लगाने के बाद दूर-दूर के

खेतों की कटनी कराते समय भी बोझों के ढेर में कुछ नुकसान होगा ही। इस तरह, कहने को तो वह दस बीघे का मालिक है, मगर गल्ला उसके घर में आठ बीघे का ही पहुँच पाता है। हाँ, अगर उसको एक ही चक में दस बीघे मिल जाँय तो वह लगभग बारह बीघे की कमाई से निहाल हो जायगा। उसी चक में वह निश्चिन्त डेरा डाले पड़ा रहेगा और वहीं पर खलिहान भी कर लेगा। इसीलिए चकबन्दी का काम बहुत जल्द होना चाहिए। इसके बिना न तो किसानों की खुशहाली बढ़ सकती है और न अन्न की पैदावार ही। उपज बढ़ाने के खयाल से तो चकबन्दी की सख्त जरूरत है।

खेतों की चकबन्दी एक झगड़ालू काम है। इसके कारण गाँवों में बहुत बखेड़े खड़े हो सकते हैं और मामले-मुकदमे भी उठ सकते हैं। इसलिए कानूनदाँ लोगों से सरकार को ऐसे कानून बनवाने चाहिए कि कहीं अन्याय की शिकायत न हो और झगड़े-झमेले भी सिर न उठा सकें। चकबन्दी के सरकारी अफसरों और ग्राम-पंचायतों के मेलजोल से टण्टे-बखेड़े खत्म हो सकते हैं, और जनता के हित की बातें सुझाकर प्रचार के जरिये भी किसानों की समझदारी पर असर डाला जा सकता है। यह काम कानूनी तरीके से तो होगा ही; मगर बहुत कुछ आपस के समझौते से भी निबट सकता है; क्योंकि किसानों के कन्धे पर कानून का जुआ जबरदस्ती रखने का नतीजा यह होगा कि बहुत-से अपढ़ गरीब घाटे में पड़ जायँगे और चुस्त-चालाक लोग अपनी गोटी लाल कर लेंगे। गरीबों का किसी तरह नुकसान न हो और मुखियों को भी पाँचों अँगुलियाँ घी में न हों। सबको अपना उचित हिस्सा मिले और सब लोग परस्पर हानि-लाभ का खयाल रखकर सचाई और भलाई के भाव से काम करें। इसके लिए बहुत जरूरी है कि हरएक आदमी की निगाह देश की उन्नति पर रहे और सभी अपने मन में यह सोचें कि देश की दशा सुधारने के लिए ही चकबन्दी हो रही है।

आज गाँवों की जैसी हालत है, वहाँ स्वार्थ और बैर-विरोध का जैसा प्रभाव है, उसे देखते हुए यही शान्ति का रास्ता सूझ पड़ता है कि चकबन्दी को लागू करने से पहले अखबारों के जरिये कुछ दिन गाँवों में या खेतिहरों में ऐसे भावों का प्रचार किया जाय कि वे इसके लाभ को भली-भाँति समझ जायँ और स्वार्थ से अन्धे होकर कोई ऐसा काम न करें, जिससे इस खेतिहर देश की भलाई का यह सबसे बड़ा काम बहुत लंझाड़ हो जाय और रोजा बकसाने के पीछे नमाज गले पड़ जाय। गाँव के लोगों का आपसी समझौता जितनी आसानी से यह काम पूरा कर सकता है, उतनी आसानी से कानून नहीं कर सकता। कानून तो दबंगों की मनमानी रोकने में ही सहायता दे सकता है और सबके हक की रक्षा भी कर सकता है। गाँव के लोग जब इसका लाभ समझ लेंगे तब यह प्रबन्ध टिकाऊ हो जायगा।

गाँवों के बाग-बगीचे और जंगल

गाँवों के आसपास के जंगल तो बहुत-से कटकर खेत बन चुके और बाग-बगीचे भी जितनी तेजी से कटते जा रहे हैं, उतनी मुस्तैदी से लगाये नहीं जा रहे हैं। शहरों के

आसपास के गाँवों से हरेभरे फलदार पेड़ कटकर गाड़ी-के-गाड़ी ईन्धन के रूप में बिकने के लिए बाजार में जा रहे हैं। लड़ाई के जमाने में भी बहुत-से बगीचे उजड़ गये। नये बगीचे लगाने की ओर बहुत ही कम लोगों का ध्यान है। मकान बनाने के लिए, यज्ञ और जनेऊ के लिए, ब्याह और श्राद्ध के लिए, साधु-सन्तों की धूनी के लिए, ईंट पकाने के लिए, और भी इस तरह के कामों के लिए फलदार बगीचों और पेड़ों का संहार होता चला जा रहा है। जहाँ गाँवों में कहीं हाथी-ऊँट हैं, वहाँ आसपास के बड़-पीपल के पेड़ ठूँठ ही नजर आते हैं। एक पेड़ के तैयार होने में अनेक वर्ष लगते हैं; इसलिए गाँव के इर्द-गिर्द के पेड़ों के कट जाने से गाँव उजाड़-सा लगता है और गर्मियों में चौतरफी लू का शिकार हो जाता है। गाँव के चारों ओर बगीचों और सायादार पेड़ों के रहने से बस्ती की सुन्दरता तो बढ़ती ही है, बस्ती में रहनेवालों को तन्दुरुस्ती पर भी अच्छा असर पड़ता है। बहुत-से ऐसे गाँव हैं जहाँ बगीचे और पेड़ बहुत ही कम हैं या बिल्कुल हैं ही नहीं और अगर हैं भी तो नाममात्र के। उन गाँवों की हालत गर्मी के दिनों में बहुत खराब हो जाती है, आँधी पानी के जबरदस्त झोंके से भी वे गाँव बे-पनाह हो जाते हैं, बैसाख-जेठ में तो धधकती हुई भट्ठी के समान जान पड़ते हैं और हैजे के भी शिकार बन जाते हैं। इसलिए बाग-बगीचों और पेड़ों की रक्षा का उपाय करना जरूरी है।

ग्राम-सुधार-सभा या ग्राम-पंचायत को सरकार की ओर से बढ़ावा मिलना चाहिए कि वह गाँववालों में नये पेड़ लगाने का हौसला पैदा करे। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्तिनिकेतन में एक वर्षामंगल नाम का उत्सव बरसात में हुआ करता है, जिसमें नये-नये पेड़ रोपे जाते हैं। यदि बरसात के दिनों में गाँव-गाँव ऐसा उत्सव मनाने का प्रचार किया जाय तो लोगों में हर साल नये-नये पेड़ रोपने की उमंग पैदा हो सकती है। ग्राम-सुधार-सभा या ग्राम-पंचायत की ओर से अगर लोगों को इसके लिए इनाम देने का भी इन्तजाम किया जा सके तो बहुत अच्छा होगा। बस्ती के अन्दर भी बहुत-सी ऐसी जगहें होती हैं जहाँ छायादार पेड़ रहने से गाँव के आदमियों और मवेशियों को बहुत आराम मिल सकता है। सहन या चौपाल के बीच में या किनारे घनी छाया का पेड़ रहने से बहुत सुविधा हो सकती है। जहाँ कहीं बस्तियों में सायादार पेड़ हैं, वहाँ बैठकखाना और शामियाना भी उनके आगे मात हैं। इस गर्म देश में सघन पेड़ के समान पक्का मकान भी गर्मियों में सुख नहीं देता। तपिश से बचाने में पेड़ सबसे बढ़कर हैं। जिस बस्ती के चारों ओर घने बाग हैं, उसमें लू की तपन का असर बहुत कम पड़ता है। लू की लपटों को बेचारे पेड़ ही झेल लेते हैं और इस तरह बस्ती तक उनकी आँच नहीं पहुँच पाती। यही कारण है कि तिरहुत के गाँवों में कोई लू का नाम भी नहीं जानता, उससे झुलसकर मरने की तो कोई बात ही नहीं। दक्खिनी बिहार में कई गाँव ऐसे हैं जो पेड़ों की हरियाली के बिना रेगिस्तान के गाँव-से लगते हैं और बैसाख-जेठ में कुम्हार का आवाँ बन जाते हैं। कहीं-कहीं तो कोसों फैले हुए मैदान हैं जिनमें शायद ही कहीं कोई एकाध पेड़-रूख मिल जाता है, नहीं तो जेठ की दुपहरी या बरसात की झड़ी में उस पाँतर को पार करनेवाला राही कहीं शरण नहीं पा सकता—या तो वह तीखी धूप की जलन से तड़प कर

वहीं ऐंठ जायगा या वर्षा की बौछारों से उसकी काफी मरम्मत हो जायगी। इसलिए बस्तियों के भीतर और बाहर पेड़ लगाना तो जरूरी है ही, गाँवों के बीच-बीच के रास्तों पर भी पेड़ लगाने की जरूरत है। यह काम पड़ोसी गाँवों के मेलजोल से मजे में हो सकता है।

हमारे धर्मशास्त्रों और पुराणों में बाग लगाना और कुँआ-तालाब बनवाना बहुत बड़े पुण्य का काम माना गया है। यहाँ तक कि यह काम एक तरह का बड़ा भारी यज्ञ कहा गया है। इससे होनेवाले पुण्य की महिमा का बखान इतना अधिक किया गया है कि आजकल के लोग उसपर जल्दी विश्वास नहीं करेंगे। मगर हमारे चतुर पुरखों ने बहुत सोच-समझकर पेड़ लगाने और कुँआ-पोखर खुदवाने को यज्ञ के बराबर माना है। हम देखते हैं कि इन चीजों से सभी जीवों को कितना सुख मिलता है। घाम से तपने पर मनुष्य और पशु-पक्षी इन्हीं के सहारे शान्ति पाते हैं। इनके मीठे फल और जल से सभी प्राणी तृप्त होते हैं। इनकी दी हुई शीतलता भला किसको ठण्डक पहुँचा कर आनन्द नहीं देती ? हम जब थके-माँदे और हरासे पियासे इनके पास पहुँच जाते हैं तब इनके लगाने-बनानेवाले को अनायास ही असीसने लगते हैं। क्या यह यज्ञ के फल से कुछ कम है ? इसी असली यज्ञ को हम बहुत कुछ भूल-सा गये हैं। इस बीसवीं सदी के लोग अपने पुरखों की बहुत-सी ऐसी बातें भूल गये हैं या छोड़ बैठे हैं जो सिर्फ शरीर को नीरोग रखने और सुख से भरी हुई लम्बी जिन्दगी बिताने के लिए ही कही गई थीं। पिछली सदी तक के लोग बड़े शौक से बाग लगाते थे, पेड़ रोपते थे ; मगर इधर लगभग पचास साल की नई पीढ़ी में पेड़ लगाने की साध बहुत कम हो गई है। नतीजा यह है कि बड़े-बड़े पुराने पेड़ कटकर या आँधी में उखड़कर नष्ट होते जा रहे हैं और जिस औसत से उनकी कमी होती जा रही है, उसकी चौथाई औसत से भी नये पेड़ नहीं लगाये जा रहे हैं। कितने ही घने-से-घने बगीचे कट-छँटकर खंखड़ हो गये और कितनों का तो नाम-निशान भी मिट गया।

सबसे बढ़कर अचम्भे की बात तो यह है कि आजकल के लगाये हुए पेड़ उतने ऊँचे और मोटे नहीं हो रहे हैं जितने विशाल और जबरजंग पहले के पेड़ होते थे। इतना ही नहीं, पहले की तरह अब पेड़ फलते भी नहीं। अब तो पाँच-पाँच साल तक बगीचे फल नहीं देते। इसका कारण यह जान पड़ता है कि आज के लोगों में उतना पुरुषारथ ही नहीं है जितना पुराने लोगों में था; इसलिए बाग-बगीचों की सिंचाई अब बिल्कुल कम हो गई है। पहले के लोग दूर-दूर से पानी ढोकर भी पेड़ों को सींचते और उसे पुण्यकर्म समझते थे। वे लोग खेती के कामों से छुट्टी पाने पर गर्मियों में बराबर बगीचों को पटाते थे। उन लोगों के मन में पेड़ों के लिए बड़ी ममता थी। उनके लिए गाछी का मोह अपनी सन्तान के मोह से कुछ भी कम न था। मगर अब वह भाव लोगों के मन से जाता रहा। अब तो लोग अपने पुरखों के पाले हुए लहलहे पेड़ों को भी बिना मोह-माया के कटवाकर बेच डालते हैं या चूल्हे में झोंक देते हैं। आज-कल जगह-जगह जो कारखाने खुलते जा रहे हैं, वे भी कोयले की कमी होने पर जंगलों का ठीका लेकर उन्हें झोंक डालते हैं और बाग-के-बाग कटवाकर स्वाहा कर देते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि यही हाल

अगर जंगलों और बगीचों का कुछ साल और रहा, तो कारखानों को तो भँखना ही पड़ेगा, घर-घर के चूल्हे भी ठंढे हो जायँगे, न यज्ञ हो सकेगा, न ब्याह या सराध। आज भी कितने ही गाँव ऐसे देखे जाते हैं जहाँ के लोगों को सतुआसंक्रान्ति के दिन भी चटनी के लिए आम के टिकोरे नसीब नहीं होते, वसन्तपंचमी के दिन आम की बौर नहीं मिलती और वह दिन भी दूर नहीं दीख पड़ता जब होम करने के लिए आम की लकड़ी और ब्याह में मंगल-कलस या बन्दनवार के लिए आम का पल्लव भी दुर्लभ हो जायगा। हवन-पूजा के लिए आम की लकड़ी और ब्याह में मंगल-कलस या बन्दनवार के लिए आम के पल्लव आज भी बहुत-से गाँवों में मुश्किल से मिलते हैं और किसी तरह किफायत से काम चलाना पड़ता है। जंगलों के कटते जाने से पलास की लकड़ी और पलास के पत्ते भी सपने की सम्पत्ति होते जा रहे हैं। पलास की पवित्र पत्तलों की जगह महुए के पत्तों ने ले ली है। मगर महुओं का वंश भी बढ़न्ती पर नहीं है। बहुतेरे गाँवों में दाँतून की भी इतनी कमी है कि रोज ही लोग जैसे-तैसे मुँह धोकर रोग को नेवता दिया करते हैं। ऐसा मालूम होता है कि लोगों को इस बात का कुछ भी ज्ञान ही नहीं है कि हमारी जिन्दगी की बहुत-सी जरूरतें पेड़ों से ही पूरी होती हैं। पेड़ों की महिमा भूल जाने से लोग तरह-तरह के दुःख भी झेल रहे हैं, तब भी होश नहीं सँभालते, यही चिन्ता की बात है।

सन् १९४७ में ३१ जुलाई को नई दिल्ली में भारत-सरकार की ओर से 'पेड़ लगाओ' सप्ताह मनाया गया था। उस समय पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, श्रीराजगोपालाचार्य आदि बड़े-बड़े नेताओं ने खुद अपने हाथों नये पेड़ लगाये थे। पंडित नेहरूजी ने पेड़ रोपते समय अपने भाषण में कहा था—"बागवानी में मेरी बहुत दिलचस्पी है। जब मैं जेल में था तब मुझे यह शौक लगा था। कितने आश्चर्य की बात है कि अब पेड़ लगाने में किसी को कोई खास दिलचस्पी नहीं रही! हमारी लापरवाही के कारण इस देश के बहुत-से प्रान्त रेगिस्तान बन गये हैं। लोग पेड़ों का मूल्य न समझकर उन्हें काट डालते हैं। कम-से-कम मुझे तो एक फूलते-फलते पेड़ के काटने का उतना ही दुःख होता है जितना एक आदमी के मरने का। देश में एक ऐसा कानून बनना चाहिए कि कोई आदमी तबतक किसी पेड़ को न काटे जबतक उसके बदले में नये पेड़ न लगा दे। एक वक्त वह था जब राजपूताने में भी हरे-भरे जंगल थे। परन्तु वे काट दिये गये, जिसका नतीजा यह हुआ कि आज वहाँ रेत-ही-रेत दीखती है।"

जब भारत सरकार के प्रधान मंत्री की यह राय है कि पेड़ों की रक्षा और वृद्धि के लिए कानून बनना चाहिए तब तो देश के लिए यह कल्याण का ही सन्देश है। सभी प्रान्तों की सरकारों को और अखबारों को यह कोशिश करनी चाहिए कि पेड़ों की रक्षा और वृद्धि पर ध्यान देने में देश की जनता तत्पर हो। अगर कौंसिल से ऐसा कोई कानून बन जाय तो और भी अच्छा होगा। जंगलों की रक्षा के लिए सरकारी कानून जैसा है, वैसा ही बाग-बगीचों और हाट-बाट के पेड़ों की रक्षा के लिए भी होना चाहिए। बंगाल के वर्षा-मंगल की तरह कोई उत्सव का सप्ताह गाँवों में मनाया जाय तो हर साल कुछ-न-कुछ

पेड़ बढ़ते ही जायँगे। देखादेखी भी लोगों का उत्साह बढ़ता है। 'पेड़ लगाओ' आन्दोलन शुरू होते ही गाँव में लोग इसका लाभ समझकर इधर ध्यान देने लगेंगे। इसका लाभ समझना बहुत आसान है; क्योंकि जहाँ पेड़ अधिक होंगे वहाँ लोगों को फूल-फल और पत्तों के सिवा ईन्धन के लिए काफी लकड़ी मिलेगी जिससे गोबर की उत्तम खाद खेत के लिए बच जायगी, खेती का पूरा नफा नसीब होगा, मकान और घरेलू सामान बनवाने में पेड़ों से जो मदद मिलेगी, वह अलग फायदा होगा। रोजगार के लिए भी फूल-फलवाले पेड़ों को लगाना चाहिए। जड़ी-बूटी के पेड़-पौधे भी रोजगार में नफा दे सकते हैं। गाँवों में ये काम बड़े सुबीते से हो सकते हैं।

पशु-पालन

गाँव में पशु-पक्षियों का पालन करके भी उद्योग-धन्धे चलाये जा सकते हैं। पशु-पक्षियों के पालन का व्यवसाय आज भी कहीं-कहीं गाँवों में देखा जाता है। लेकिन गाँव के लोग पशु-पालन का पुराना तरीका भूलते या छोड़ते जा रहे हैं और नया तरीका भी नहीं जानते। पशुओं के पालने की जो विधि हिन्दुस्तान में थी, वह अब शायद ही कहीं देख पड़ती है। हमारे पूर्वज बड़े प्रेम और परिश्रम से पशु-पालन करते थे। अब न उतने प्रेम के लिए हौसला है और न उतने परिश्रम के लिए पौरुष ही है। मगर, अब तो जो कुछ भी है, उसीको बढ़ाकर पहले के बराबर करना होगा या उससे भी आगे बढ़ाना होगा।

देहात में रोजगार के लिए पाले जानेवाले पशु-पक्षियों में भैंस, घोड़े, सूअर, भेड़, बकरी, मुर्गी, कबूतर आदि अधिक देखे जाते हैं। कहीं-कहीं, शहर के करीब गाँवों में, दूध के रोजगार के लिए गायें भी पाली जाती हैं, वैसे ही दूध और घी के रोजगार के लिए भैंसें। परन्तु इन सब जानवरों के पालने का तौर-तरीका गाँववाले ठीक-ठीक नहीं जानते। अगर वे जान जायँ, उन्हें साफ-साफ सही-सही बतला दिया जाय, तो देश का पशुधन बढ़ सकता है। पशुधन बढ़ने से खेती को तो लाभ होगा ही, जनता की तन्दुरुस्ती भी तरक्की करेगी।

गाँवों के अधिकतर पशु तरह-तरह की बीमारियों के शिकार हुआ करते हैं। इसका कारण यह है कि उनके रहने का स्थान साफ-सुथरा नहीं होता और उन्हें चारा-पानी भी अशुद्ध मिलता है। बहुत ही कम गृहस्थ अपने घर में गाय-भैंस की सेवा और रक्षा करने में तत्पर देखे जाते हैं। अधिकतर लोगों की गाय-भैंस बड़ी लापरवाही से रखी जाती हैं। जिन गाय-भैंसों के दूध-दही-घी से मनुष्य का शरीर पलता है, वे ही गाय-भैंसें गली-गली का कूड़ा कचरा चबाती चलती हैं - घूरों पर पड़े हुए गन्दे लत्ते तक खाती फिरती हैं और गड्ढों का गँदला पानी पीकर गुजर कर लेती हैं। इतना ही नहीं, गायें जहाँ-तहाँ गन्दी जगहों में बैठती हैं और गन्दी जगहों की घासें चरती है, गर्मियों में भैंसें गन्दे गड्ढों की सड़ी कीच में लोटपोटकर अपने रोम-रोम में रोग के कीड़े बैठा लेती हैं। ऐसे दुधैले पशुओं के दूध पीनेवाले लोग अगर रोगी हो जायँ और दुधार पशुओं में भी जान-मारू रोग फैल जायँ तो कोई अचम्भे की बात नहीं है।

गाँवों में जब पशुओं की बीमारी आती है, तब कितने ही किसानों और गृहस्थों के बथान सूने हो जाते हैं, खूँटे उखड़ जाते हैं, खेती का सुतार बिगड़ जाता है, कर्ज काढ़ने की नौबत आ जाती है, गरीबी की कोढ़ में खाज पैदा हो जाती है। इस विपत्ति के मूल कारणों को वे लोग थोड़ा-बहुत समझते जरूर हैं, मगर अपनी गरीबी से ऐसे लाचार हैं कि कोई उपाय नहीं कर पाते। एक तो गाँव के सब लोगों में आपस का मेलजोल भी बहुत कम है, दूसरे उनमें मिलजुलकर सबकी भलाई का काम करने की सूझ-समझ भी नहीं है। सबके स्वार्थ अलग-अलग हैं। आफत आती है तो झेलते सभी हैं, मगर उसे टालने का उपाय करने के लिए आपस में सहयोग नहीं करते, आपस के संगठन से काम नहीं लेते। इसका भी कारण उनका अनपढ़ और अबूझ होना ही है। सरकार की ओर से उनको इस संकट से भी उबारने की कोशिश होनी चाहिए।

सरकारी मवेशी-अस्पताल गाँवों से बहुत दूर-दूर हैं। कम-से-कम पचास गाँवों के बीच में एक मवेशी अस्पताल जरूर होना चाहिए। मवेशी अस्पताल के डाक्टर कभी गाँवों का दौरा नहीं करते। जब गाँववाले उनके पास अस्पताल में पहुँचते हैं तब भी वे उनके दुख-दर्द का उतना खयाल नहीं करते जितना करना उनका कर्त्तव्य है। मवेशियों की तो बात ही क्या, आदमियों के दवा-दारू के लिए जो सरकारी डाक्टर जगह-जगह के अस्पतालों में रहते हैं, वे भी हैजा-प्लेग के समय गाँव के गरीबों से कुछ कमाने की ही कोशिश में रहते हैं। खेती के महकमे के अफसर, सिंचाई या नहर के महकमे के अफसर, कचहरी के अमले, सब-के-सब गाँववालों से खूब अनुचित लाभ उठाते हैं। घूसखोरी के शिकार बेचारे देहाती अपनी गाढ़ी कमाई अपने ही देश के पढ़े-लिखे बाबुओं की थैली भरने में लुटा देते हैं। उन बेचारों की यह मजबूरी उन्हें पनपने नहीं देती। हमारे पढ़े-लिखे भाई जब किसी सरकारी महकमे के कारिन्दा या अफसर बन जाते हैं तब जैसे-तैसे पैसे कमाने की ही धुन में रहते हैं। लोकोपकार और जनता की सेवा का भाव बहुत ही कम लोगों में देखा जाता है। अगर सभी सरकारी नौकर बराबर देश के हित का ध्यान रखें तो गाँवोंवाले इस देश के बहुत से दुःख दूर हो जायँ। हमारे लाट साहब और कलक्टर साहब तो अपनेको जनता का सेवक और देश की खिदमत करनेवाला कहते हैं, मगर उनके अधीन जो अफसर और अमले हैं, वे लोग जबतक देश के हित की बातें न सोचेंगे—जनता की सेवा करने पर उतारू न होंगे, तबतक गाँववालों के सुख के लिए सरकार चाहे लाख उपाय करे, कोई ठोस फायदा नहीं हो सकता। हाँ, गाँवों के लोग जब शिक्षित हो जायँगे, लिख-पढ़कर अपना हक समझने लग जायँगे, शिक्षा पाने से आँखफोड़ होकर अपने अधिकारों को पहचानने लगेंगे और अपने कानूनी हकों के लिए लड़ने में निडर हो जायँगे, तब हो सकता है कि सरकारी अमले और अफसर भी चेत जायँ। इसीलिए गाँव-गाँव में लोगों को अभी से यह बतलाने की जरूरत है कि स्वतंत्र देश के लोग कैसे-कैसे अधिकार भोगते हैं।

हाँ, तो पशु-पालन में गाँववालों को तभी सुविधा होगी जब मवेशी-अस्पताल उनकी पहुँच के अन्दर कहीं आसपास होंगे और मवेशियों के डाक्टर उनके पशुधन को देश की

दौलत समझकर उसकी रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझेंगे। इसके अलावा, पशुओं की रक्षा के खयाल से गाँव की बस्ती को भी साफ-सुथरा रखना होगा, ताकि वे खूँटे से खुलने या छूटने पर न कहीं पड़ी हुई गन्दी चीज खाने के लिए पा सकें और न गन्दा पानी ही पी सकें। उनके घास चरने की जगह भी सूखी और साफ-सुथरा हो, ताकि मच्छड़ या डाँस से वे बचे रह सकें और उन्हें खुली हवा और रोशनी काफी मिले। कहने को तो कह दिया जाता है कि पशुओं के रहने की जगह ईंट और सीमेंट से या पत्थर से पक्की बनवा देनी चाहिए मगर गाँववालों के लिए ईंट और सीमेंट पा सकना बहुत कठिन है। कुछ धनी या मुखिया लोग पक्की गोशाला बनवा सकते हैं, मगर सब किसानों और गृहस्थों को गाँव में ईंट-सीमेंट मिलना दुर्लभ है। बहुत-से गरीब बेचारे तो अपने पशुओं के लिए मिट्टी का खपरैल मकान बनवाने में भी असमर्थ होते हैं, किसी तरह घास-फूस की झोपड़ी बनाकर ही पशुओं को रखते हैं, यहाँ तक कि बहुतेरे गरीबों के पशु पेड़ों के नीचे ही जाड़ा-बरसात काट लेते हैं। अगर हम नये ढंग की पक्की गोशाला बनाने की बात गाँववालों को सुझावें भी, तो वे अपनी गरीबी के कारण उसे बनवा नहीं सकते। इसलिए, सौ बात की एक बात यह है कि सबसे पहले गाँववालों की गरीबी दूर करने का उपाय होना चाहिए। इसके लिए उन्हें खेतों की पैदावार बढ़ाने की सुविधा देनी होगी, उन्हें रोगों और फजूल-खर्चियों से बचाना होगा, परमुण्डे फलाहार करनेवाले बाबुओं के फौलादी पंजे से उन्हें छुड़ाना होगा, अन्धविश्वासों की चक्की में पिसने से उन्हें उबारना होगा और समाज की कुरीतियों के फन्दे से उन्हें निकालना होगा।

जरूरत इस बात की भी है कि गाँवों में पशुओं के पानी पीने के लिए पक्के हौज बनवाये जायँ, जो बराबर साफ होते और ताजा पानी से भरे जाते रहें। अगर गाँव में तालाब हो तो उसके जल की सफाई पर ध्यान रखा जाय, ताकि पानी में किसी तरह कीड़े न पड़ सकें, नहीं तो सड़ा पानी पीने से ही पशुओं को 'मुखपाक' आदि रोग हो जाते हैं—गन्दी चीजें खाने से ही उन्हें 'अफरा' आदि रोग हो जाते हैं, जिससे उनका पेट फूल जाता है और वे अपना दम तोड़कर किसान की भी कमर तोड़ देते हैं। गन्दी जगहों में रहने और घूमने-फिरने से वे 'खुरपाक' रोग के शिकार हो जाते हैं और खुरपाक-मुखपाक रोगों के कारण गाँवों में बहुत-से मवेशी मरा करते हैं। न तत्क्षण कोई दवा मिल पाती है और न घासपात की देहाती दवा भयंकर रोग को दबा ही पाती है, बेचारे गरीबों का मूलधन हाय-हाय करते लुट जाता है। चाहिए तो यह कि पशुओं के रोगों की पहचान करानेवाली बातें गाँववालों को बतलाई जायँ। गाँव-गाँव में जैसे यह बतलाने की जरूरत है कि खेती के कीड़ों से फसल कैसे बचाई जाय—देशी खाद तैयार करके उपज कैसे बढ़ाई जाय—महामारियाँ कैसे दूर की जायँ—साग-भाजी और फूल-फल पैदा करके आमदनी कैसे दुगुनी की जाय—घरेलू रोजगारों से कैसे पैसे निकाले जायँ, वैसे ही यह भी बतलाना जरूरी है कि पशुओं को कौन-कौन से रोग होते हैं और क्यों होते हैं, उनकी दवा क्या है और उनसे बचे रहने के उपाय क्या हैं। इन सब बातों को, और ऐसी ही दूसरी बातों को भी, बहुत ही सरल भाषा में, मोटे अक्षरों में, दो-चार पैसों की पुस्तकों में छापकर, गाँवों में

फैलाना चाहिए। ऐसी लाभ की बातों के फैलने से गाँववालों की जानकारी बढ़ेगी और वे अनेक संकटों से बच जायँगे। गाँव की पंचायतों या ग्राम-सुधार-सभाओं को, हर पखवारे या हर महीने में, गाँववालों को एक जगह इकट्ठा करके, ऐसी-ऐसी बातें बतलाने या ऐसी-ऐसी छोटी-मोटी पुस्तकों के पढ़ सुनाने का प्रबन्ध करना चाहिए, जिससे उन गरीबों का भी भला हो, जो शिक्षित नहीं है। साथ ही साथ, अपढ़ों को पढ़ाने का काम भी जारी रहना चाहिए ; क्योंकि जब तक गाँव के लोग लिख-पढ़कर सचेत नहीं होंगे तब तक उनके बहुतेरे कष्ट दूर न हो सकेंगे।

गाँववालों को पशु-पालन की विधि बतलाने के साथ-साथ गो-रक्षा का महत्त्व भी बतलाना होगा और पशुओं की नस्ल सुधारने के तरीके भी बतलाने होंगे। अच्छे साँड़ रखने से ही गो-वंश की अच्छी वृद्धि और गोधन की रक्षा हो सकती है। इसके लिए गिने-चुने गाँवों के मण्डल के बीच-बीच में गोरक्षिणी संस्था या पिंजरापोल बनवाने में भी गाँववालों की सहायता ली जा सकती है। इससे बूढ़े और निकम्मे पशुओं की रक्षा हो सकेगी और उत्तम वंश के साँड़ों से उत्तम बछड़े भी तैयार हो सकेंगे, जिससे खेती के काम में काफी मदद मिलेगी। अगर गाँववाले दुधार गायें पोसकर दूध के भण्डार खोल दें, तो मक्खन और घी के रोजगार से भी नफा उठा सकते हैं। उम्दा नस्ल के साँड़ से जो बढ़िया बछिया तैयार होगी वह दुधैल गाय बनकर इस रोजगार को बड़ा लाभ पहुँचा सकती है। गाँवों में बछड़े को बधिया करने के तरीके बहुत ही खराब हैं, उनमें बड़ी निठुराई भरी हुई है, कितने ही जवान बछड़े तो बेदर्दी के शिकार होकर मर जाते हैं। इसलिए बधिया करने का जो राक्षसी ढंग है उसको बदलना ही होगा, नहीं तो गोरक्षा को पुण्य माननेवाले देश में गो-वंश पर जो अत्याचार होता है वह नहीं रुकेगा। यहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि मक्खन और घी का रोजगार गाँवों में तभी बढ़ सकता है जब गाँव से शहर या स्टेशन तक सुगम रास्ता तैयार हो जायगा। साग-भाजी या फूल-फल भी बिक्री के लिए बाजार तक तभी पहुँच सकते हैं जब गाँवों की सड़कें सुधर जायँ।

गाँवों में गोचर-भूमि

पशुओं के पालन में या गो-धन की वृद्धि में सुविधा तब होगी जब गाँव-गाँव में गोचर-भूमि का प्रबन्ध किया जाय। आसपास के दो-चार-दस गाँवों के पशुओं के लिए कहीं एक ही जगह गोचर-भूमि भी रह सकती है, जो चारों ओर कँटीले तारों से घेर दी जाय, और जिसके चारों ओर किनारे-किनारे छायादार पेड़ लगा दिये जायँ, जहाँ घास चरने के बाद पशु आराम से बैठ सकें। जहाँ-कहीं जंगल हैं वहाँ गाँववालों को कुछ ऐसे हथियार भी देने पड़ेंगे, जिनसे वे गौओं को जंगली जानवरों के हमले से बचा सकें। जंगल या गोचर भूमि के पास ही कोई जलाशय या पोखरा भी होना चाहिए, जिसमें पशुओं को चरने के बाद साफ पानी पीने को मिल सके। जहाँ तालाब या पोखर न बन सके वहाँ एक अच्छा कुँआ भी कामचलाऊ हो सकता है, मगर उसके साथ एक पक्का हौज रहना जरूरी होगा। जहाँ जंगल होगा वहाँ कोई छोटी-मोटी झील मिल सकती है। मगर झील का पानी अगर

जंगल की पत्तियों के सड़ते रहने से गँधाता हो तो हर साल उसकी सफाई पर भी ध्यान देना होगा। यह काम भी गाँववालों के आपसी मेल-जोल से ही हो सकता है।

गाँवों में पहले हर जगह गोचर-भूमि थी। गाँव के मालिक और किसान पहले गोचर-भूमि की रक्षा बड़ी सावधानी से करते थे। मगर अब बहुत-से गाँवों की परती जमीन जोत डाली गई। जो कभी चारागाह था वह अब खेत बन गया है। पुराने आहर-पोखर भी जोत डाले गये हैं। यहाँ तक कि बगीचे भी कट-कुटकर खेत बनते जा रहे हैं। दिन-दिन जन-संख्या के बढ़ने से परती जमीन कहीं बचने नहीं पाती। गाँवों में सम्मिलित कुटुम्ब भी बहुत कम रह गये हैं। इकट्ठा परिवारों के बिखर जाने या बिखरते रहने से जमीन की माँग बढ़ती जाती है। जोत बेशी होने से परती का नाम-निशान मिटता जा रहा है। गाँव के पशु को खूँटे पर बँधा रहकर दिन काटने पड़ते हैं। इससे भी पशु दिन-दिन कमजोर होते जाते हैं। उनके चरने-फिरने के लिए बस्ती से बाहर कोई ऐसा मैदान या सहन रहना चाहिए, जहाँ वे खुली हवा-धूप में घूम-फिर और उछल-कूद कर नीरोग रह सकें। गाँव के स्त्री-पुरुष और बच्चे-बूढ़े भी उस मैदान या सहन में सुबह-शाम टहलकर फायदा उठा सकते हैं। स्त्री-बच्चों के लिए तो बस्ती के अन्दर भी कोई खुला चौपाल होना चाहिए।

गोचर-भूमि के लिए सरकारी कानून बनना बहुत जरूरी है। गाँव में बसे हुए परिवारों के लिए जितनी जमीन की जरूरत हो उतनी ही जोती जाय, बाकी परती धरती पर पशुओं का हक कायम रहना चाहिए। अगर गाँव के पशुओं की संख्या के औसत से गोचर-भूमि कुछ कम पड़ती हो तो गाँववालों को अपनी जोत में से ही ब्योंत करना पड़ेगा; क्योंकि मजबूत बैलों से थोड़े खेत में भी काफी गल्ला पैदा किया जा सकता है और प्रसन्न गायों से दूध-दही-घी भी काफी मिल सकता है। खूँटे पर बँधे रहनेवाले बैल अधिक दिन तक खेती में नहीं खट सकते और बँधी सानी खानेवाली गायों का दूध भी उतना मीठा नहीं होता जितना गोचर भूमि में बिहरनेवाली गायों का। जो गाय गोचर-भूमि में बिहरती फिरती है उसके दूध में घी भी बेशी निकलता है और बँधी सानी खानेवाली गाय का दूध पतला पड़ जाता है, जिसमें गाढ़ी मलाई नहीं उठती। गाय को सानी-पानी में अगर अन्न भी दिया जाय, तो भी गोचरभूमि में चरनेवाली गाय के दूध में उससे कहीं ज्यादा मिठास और लस्सी मिलेगी। जो गाय नदी-तीर पर या जंगल में या चरागाह में घास चरती है उसके दूध में हरी-भरी दूबों या तरह-तरह की वनस्पतियों—जड़ी-बूटियों—के गुण का असर आ जाता है। इससे वह गाय खुद तो हृष्टपुष्ट रहती ही है, दूध पीनेवालों को भी स्वाद के साथ-ही-साथ आरोग्य-प्रदान करती है।

इस प्रकार गोचरभूमि के लाभ प्रत्यक्ष हैं। पशुओं की नस्ल भी अच्छी होगी; क्योंकि वे नीरोग और बलवान रहेंगे और गोरस के गुण में भी वृद्धि होगी। इसलिए ग्रामपंचायतों और ग्राम-सभाओं को ऐसी चेष्टा करनी चाहिए कि गाँव-भर के लोग मिलजुल कर ऐसे सुपास की जगह में गोचरभूमि का बन्दोबस्त करें, जहाँ पानी और घनी छाया का भी

सुबीता हो। वह ऐसी ऊँची जगह में हो जहाँ बरसात में पानी न जम सके। उसमें नई-नई घास उगाने का उपाय भी हर साल होता रहे। गोबर की सफाई तो शायद रोज ही करनी पड़ेगी। गोबर से ईन्धन के बदले खाद का काम लेना विशेष लाभदायक होगा।

गाँवों में खाद की तैयारी

इस खेतिहर देश में खेती के पशुओं से ही उत्तम खाद मिल सकती है, मगर पशुओं से मिलनेवाली खाद को यहाँ के अपढ़ लोग जला डालते हैं और जलावन की राख को खेतों में डालते हैं। विज्ञान जाननेवाले भी कहते हैं कि सबसे अच्छी खाद गोबर से ही तैयार हो सकती है। महात्मा गाँधी ने भी गोबर की खाद की महिमा बतलाई है। मगर गाँवों में जबतक जलावन या ईन्धन के लिए गोबर की जगह दूसरी चीज नहीं मिलेगी तबतक गोबर की बरबादी रुक नहीं सकती। जैसे कपास और अरहर की खेती करनेवालों को ईन्धन भी मिल जाता है वैसे ही खास तौर से जलावन के लिए ही कुछ ऐसे पौधे हर साल उगाये जाँय, जिनकी मदद से गोबर की बचत हो सके। ईन्धन के लिए जंगलों और बाग-बगीचों का जो सफाया होता जा रहा है उससे राष्ट्र की बहुत बड़ी सम्पत्ति नष्ट हो रही है। अगर पत्थर-कोयला भी ईन्धन की जगह पर घर घर में जलाया जाय, तो देश के कारखानों को इससे धक्का पहुँचेगा। कल-कारखानों और रेल-जहाजों के लिए कोयले को बचाकर देश के उद्योग-धन्धे बढ़ाये जा सकते हैं। एक ओर खेती के लिए उत्तम खाद के खयाल से और दूसरी ओर व्यापार की उन्नति के खयाल से यह बहुत जरूरी जान पड़ता है कि गोबर और कोयले का बचाव करने के लिए जलावन की भी खेती की जाय—ऐसे डंठलदार पौधे पैदा किये जायँ जिनसे घर-घर की रोजाना रसोई का काम निकल सके—जल्दी तैयार होनेवाले छोटे-मोटे पेड़ भी लगाये जाँय, जिनके पनपने और कटने का ताँता बराबर बँधा रहे, जिससे किसी साल जलावन में कमी न पड़े।

लेकिन खाद के लिए गोबर कहाँ कैसे रखना चाहिए, यह भी गाँववालों को बतलाना पड़ेगा; क्योंकि वे ईन्धन से बचे गोबर का ढेर जहाँ-तहाँ लगा देते हैं और बरसात शुरू होते ही उसे खेतों में डालने लगते हैं। मगर जमीन पर ढेर लगा देने से गोबर का असली तत्त्व सूरज की तीखी धूप से सूखकर नष्ट हो जाता है। अगर कहीं बीच में पानी भी बरस गया तो उसका भीतरी सत गल-पिघलकर बह जाता है। इसलिए बस्ती के ईर्द-गिर्दवाले गोयँड़ खेत बहुत उपजाऊ होते हैं; क्योंकि बरसात में गाँव के घूरों का सत खिंचकर उनमें चला जाता है। और फिर, बस्ती के अन्दर या आसपास गोबर के ढेर लगा देने से गन्दगी भी बढ़ जाती है—डाँस-मच्छड़ भी फैल जाते हैं—हवा तो बिगड़ती ही है, गोबर के उपजाऊ कण भी उड़ जाते हैं। इसलिए घाम लगने योग्य खुली जगह में गड्ढे खोदकर गोबर को जमा करते जाना और हरएक तह पर सूखी नोनी मिट्टी की हल्की-सी परत डालते जाना चाहिए। खाद के लिए गौओं के बथान से गोबर बटोरते समय उनका मूत भी साथ-ही-साथ इकट्ठा कर लेना चाहिए, क्योंकि गोबर और मूत मिलकर बहुत अच्छी खाद तैयार करते हैं।

गाँवों में हड्डी की खाद भी तैयार की जा सकती है। जो पशु मर जाते हैं उनकी हड्डियाँ बस्ती से बाहर इधर-उधर बिखरी पड़ी रहकर बरबाद हो जाती है। बहुत-से रोजगारी लोग गाँव-गाँव से हड्डियाँ बटोरकर ले जाते हैं और बाहर चालान करके नफा उठाते हैं। अगर गाँव के लोग अपनी इस पूँजी से लाभ उठाने पर कमर कस लें तो उन्हें अपनी खेती के लिए एक तरह की अच्छी खाद आसानी से मिल जा सकती है। हड्डियों को चूर करके जो खाद बनाई जाती है वह खेतों की पैदावार बढ़ाने में बहुत मदद देती है। गाँवों में हड्डी को चूर करने की कोई कल या मशीन नहीं पाई जाती और ढेंकी या चक्की से हड्डी को कूटना-पीसना बहुत मेहनत-मशक्कत का काम है। इसलिए आसपास के कई गाँव मिलकर हड्डी को चूर करनेवाली कल या मशीन का इन्तजाम कर सकते हैं — जैसे ईख पेरने के लिए कोल्हू कहीं-कहीं साझे में खरीदे जाते हैं। हड्डी को चूर करनेवाले कोल्हू भी गाँवों में काम दे सकते हैं। हड्डी की खाद हमें यह भी सुझाती है कि हमारे मवेशी कितने काम के हैं—वे अपनी जिन्दगी तो हमारी सेवा में खपा ही देते हैं, अपना चाम और हाड़ भी हमारे ही काम में लगा देते हैं। जो पशु हमें सर्वस्व दे जाते हैं उनकी खिदमत और हिफाजत करना हमारा पहला कर्त्तव्य है।

मछली की खाद भी गाँव में बन सकती है। गर्मियों में जब आहर-पोखर सूख जाते हैं तब उनकी मिट्टी में बहुत-सी छोटी मछलियाँ खपी रह जाती हैं। अगर उस मिट्टी की ऊपरी तह निकालकर खेतों में डाल दी जाय तो वे काफी उपजाऊ हो सकते हैं। गाँवों में बहुत-से छिछले गड्ढे और तालाब सूख जाने पर जोत डाले जाते हैं और यह साफ देखने में आता है कि उनमें बहुत अच्छी फसल पैदा होती है। अगर छिछले गड्ढों और पोखरों की मछलियाँ न मारी जायँ तो उनकी मिट्टी और भी उपजाऊ खाद बन सकती है, साथ-ही-साथ तालाब की गहराई के बढ़ते जाने से गाँव में जल का भी सुपास हो सकता है। गहरे गड्ढों और तालाबों से जो मछलियाँ खाने के लिए निकाली जाती हैं, वे भी अगर खाई न जायँ, बल्कि सुखा दी जायँ, तो खाद बनाने में काम आ सकती हैं। अगर बड़ी मछलियाँ खा भी डाली जायँ तो छोटी-छोटी मछलियाँ खाद के लिए सुखाई जा सकती हैं और बड़ी मछलियों के चोंइँटे भी सुखाकर खाद के काम में लाये जा सकते हैं। यह काम है तो बड़ी निठुराई का, मगर मछलियों को मारकर खा जाने में भी कुछ कम निठुराई नहीं है। और खेती के धन्धे में जीवहिंसा का विचार करने से किसानी नहीं हो सकती। खेत जोतते समय किसान के मन में अगर जीवहिंसा का भाव जमा रहेगा तो वह अच्छी जुताई नहीं कर सकता। इस बात को गाँव का हर एक किसान अच्छी तरह समझ सकता है।

घर के कूड़े-कचरे की भी खाद होती है, मगर घर बुहारी करते समय इस बात का खयाल रखना जरूरी है कि कौन-सी चीज खाद बनने लायक है और कौन-सी चीज कूड़ा-करकट की तरह फेंकने योग्य है। जो चीज खाद के लायक हो उसे फालतू कूड़े से अलग छाँटकर रखना चाहिए। तरकारियों और फलों के छिलके आदि खाद के काम के होते हैं, उन्हें घूरे पर फेंकना ठीक नहीं। गाँवों में जो एक तरह की नमकीन खाद काम में लाई जाती है वह फसल को खराब करती है। उससे उपजे हुए दाने कमजोर होते हैं और

पकाने के बाद जल्दी सड़-गल जाते हैं। उस खाद से खेत ही नहीं; आदमी भी कमजोर हो जाते हैं। सरकार की ओर से खाद के बारे में पर्चे छपवाकर गाँवों में बाँटे जायँ और गाँववालों को ऐसे तरीके बतलाए जायँ, जिनसे वे हानि से बचकर लाभ उठा सकें। उन्हें ऐसे तरीके न बतलाए जायँ जिन्हें वे आसानी से बरत न सकें।

गाँवों के स्कूल

गाँवों में शिक्षा का प्रचार नहीं के बराबर है। कुछ गाँवों में तो हाइस्कूल भी हैं, मगर अधिकतर गाँवों में प्राइमरी स्कूल भी नहीं हैं। शहर या कस्बे के पासवाले गाँवों के लड़के दो तीन कोस तक स्कूलों में पढ़ने के लिए जाते-आते हैं। इससे उनका बहुत समय नष्ट होता है और बेकार मेहनत भी पड़ती है। अगर आसपास के गाँवों का एक-एक मण्डल बनाकर बीचोबीच जगह में स्कूल खोल दिये जायँ तो गाँवों के बहुत-से गरीब लड़के आसानी से लिखना-पढ़ना सीख जा सकते हैं। लेकिन प्राइमरी स्कूल और मिडिल स्कूल तो सभी छोटे-बड़े गाँवों में रहने चाहिए। छोटे गाँव में प्राइमरी स्कूल या अपर प्राइमरी स्कूल हो और बड़े गाँव में मिडिल स्कूल या हाइस्कूल। दिन-भर किसानी या मजदूरी करनेवालों के लिए रात्रि पाठशालाओं का भी प्रबन्ध होना चाहिए। गरीब लड़कों के लिए स्लेट, पेन्सिल, कागज और किताब का प्रबन्ध भी करना पड़ेगा; क्योंकि गाँवों के गरीबों की गरीबी के अभी जल्दी दूर होने की कोई आशा नहीं है। जब विना फीस की शिक्षा चालू हो जायगी तब भी गरीब लड़कों के लिए पढ़ाई के सामान का इन्तजाम करना होगा। अगर उनके लिए कुछ नाश्ता या जलपान का भी प्रबन्ध हो सके तो और भी अच्छा होगा। गाँवों में तो चना-चबेना भी काफी होगा। और, इन सब बातों के लिए सिर्फ सरकार की सहायता का ही आसरा रखना ठीक न होगा। अपनी सरकार पर अधिक बोझ लादना उचित नहीं। गाँव के धनीमानी लोग ऐसे कामों के लिए आगे बढ़ें और परोपकार नहीं, तो देशोद्धार के खयाल से अपनी थैली खोलें।

गाँव के लोग हर साल धर्म और परलोक के नाम पर बहुत-से पैसे खर्च कर डालते हैं। धर्म या पुण्य के लिए और परलोक सुधारने के लिए जितने काम गाँवों में होते हैं उनमें अधिकतर अन्धविश्वासों के कारण ही होते हैं। गाँव के लोगों के मन में यह बात बैठाने या जँचाने की जरूरत है कि मन्दिर और मसजिद बनाने से बढ़कर स्कूल और अस्पताल बनाने में अधिक पुण्य है। यह समय देश को सुधारने और ऊँचा उठाने का है। तीर्थयात्रा में, यज्ञ में, पूजा-पाठ में या ऐसे ही और-और कामों में देश का जो धन लगता जा रहा है उसकी धारा पलटने की जरूरत है। लोगों को यह समझना चाहिए कि स्कूल, अस्पताल, अनाथालय, विधवाश्रम, गोशाला आदि खोलने से जो पुण्य कमाया जा सकता है, वह तीर्थयात्रा से नहीं। स्कूल और अस्पताल किसी कदर तीर्थ से कम नहीं हैं। यज्ञ की आग में घी और मेवा जलाने से कहीं अच्छा है कि गरीबों के पेट की ज्वाला में अन्न के दाने डाले जायँ। दरिद्रनारायणके सन्तुष्ट होने से ही हमारे देवता और भगवान भी सन्तुष्ट होंगे। और, शिक्षाप्रचार करना तो एक प्रकार का ज्ञान-यज्ञ ही है। देश के

हजारों-लाखों प्राणियों को ज्ञान-दान देकर और सुखी बनाकर भी परलोक सँवारा जा सकता है। जहाँ देश के करोड़ों भाई अज्ञान के अँधेरे में भटक रहे हैं वहाँ परलोक के रास्ते में घी के दीये जलाना किसी काम का नहीं। मसजिद और मन्दिर बहुत बन चुके और जो बन चुके हैं, उन्हीं की रक्षा-पूजा ठीक तरह से नहीं हो पाती। अब अधिक बनवाने से कोई लाभ नहीं। अब तो उनकी जगह स्कूल और अस्पताल ही बनना चाहिए। तीर्थ के पण्डा-पुजारी को पैसे देने से उतना पुण्य नहीं हो सकता जितना कुँआ-तालाब खुदवाने और बाग-बगीचा लगाने से; क्योंकि देश की दशा को सुधारने के लिए इस समय इसीकी जरूरत है। जब देश खुशहाल हो जायगा, जब देश की जरूरतें पूरी हो जायँगी, तब भले ही तीर्थ और मन्दिर के लिए पैसे खर्च किये जायँ; मगर इस समय तो हमें सब तरफ से अपना ध्यान समेटकर देश की भलाई में ही लगा देना चहिए। तभी इस देश का कल्याण हो सकेगा।

गाँवों में स्कूलों का खर्च चलाने के लिए ग्रामपंचायतों और ग्रामसभाओं को भी आमदनी का जरिया निकालना होगा। सिर्फ जिलाबोर्ड और सरकार के भरोसे रहने से काम नहीं चलेगा। गरीब विद्यार्थियों को भोजन देने के लिए मुठिया की प्रथा चलाई जाय और गाँव के समर्थ गृहस्थ एक-एक विद्यार्थी को खिलाने का भार अपने ऊपर ले लें। मुठिया की रीति चल पड़ेगी तो घर घर से हर महीने में काफी अन्न इकट्ठा हो जायगा। धनी गृहस्थ के लिए एक विद्यार्थी का पेट भरना कोई कठिन काम नहीं है। इसके अलावा, लड़के के जन्म में, बूढ़े के श्राद्ध में, विवाह और उपनयन (जनेऊ) में हरएक ग्रामवासी से उसकी औकात के मुताबिक खुशी से चन्दा उगाहा जा सकता है। खुशी के दान में किसी को उज्र नहीं हो सकता। बँधेज हो जाने पर ऐसा रवाज चल पड़ेगा कि हर साल कुछ-न-कुछ आमदनी होती ही रहेगी। बूढ़े-बूढ़ीके श्राद्ध में जहाँ सैकड़ों रुपये खर्च होते हैं वहाँ दो-चार-पाँच रुपये स्कूल के लिए भी आसानी से मिल सकते हैं। लड़के की पैदाइश या शादी में नाच और आतिशबाजी की फजूलखर्ची अब बन्द होनी चाहिए। आनन्द-मंगल के कामों में हवन-पूजा आदि चाहे जो हो, मगर किसी ऐसे काम में रुपया बहाना ठीक नहीं जिससे देश का कोई हित नहीं होता या देश के हित में बाधा पड़ती है।

गाँव के स्कूलों पर सरकार का ही अधिकार रहना चाहिए; क्योंकि अबतक के अनुभव यही बतलाते हैं कि जिलाबोर्ड के हाथों में पड़कर गाँव के स्कूल बड़ी दुर्दशा भुगत रहे हैं। शिक्षकों को एक तो बहुत ही कम वेतन मिलता है, दूसरे उन्हें महीनों और कभी-कभी बरसों वेतन के रुपये नहीं मिलते। उन्हें अपना हक पाने के लिए भी कहीं-कहीं घूस तक देना पड़ता है। अगर उन्हें भत्ता भी मिलता है तो वह अफसरों और अमलों की खुशामद में खर्च हो जाता है। बिना चापलूसी के उनका गुजर होना मुश्किल है। इस दुहरी मार से उन्हें बचाना होगा। अगर गाँवों में शिक्षाप्रचार करना ही है तो सबसे पहले पाठशाला के गुरुओं का पेट भरना होगा। त्याग और सेवा की दुहाई देकर उन्हें आदर्श सुझाना बेकार है। अभावों के चक्कर में पड़ा हुआ मनुष्य न तो त्याग कर सकता है, न सेवा, न आदर्श-पालन। देश का हरएक बच्चा अपने राष्ट्र का मूलधन है। उस बच्चे का जीवन

और भविष्य जिस शिक्षक के हाथ में सौंपा जाता है उस शिक्षक के सन्तुष्ट न रहने से बच्चे नहीं सुधर सकते। शिक्षक को छूछे सन्तोष की शिक्षा देना भी बेकार है; क्योंकि इस युग में कोई देशभक्त भी शुद्ध सन्तोष से काम नहीं ले रहा है। फिर भी, शिक्षक को अपनी जीविका के योग्य साधन पाकर, सन्तोष के साथ, देश की सेवा के भाव से, काम करना चाहिए। हम बच्चों को जब राष्ट्र की थाती-पूँजी समझकर शिक्षकों के जिम्मे लगाते हैं तब हमारा यह कर्त्तव्य है कि शिक्षकों के सुख-दुख का खयाल रखें, उन्हें भरपूर वेतन देकर निश्चिन्त कर दें। हाँ, लोभी और अयोग्य शिक्षकों से बच्चों को जरूर बचाना चाहिए। गाँवों में जहाँ कितने ही आदर्श शिक्षक हैं, वहाँ कुछ लालची और लम्पट भी पाये जाते हैं। इसलिए शिक्षकों का चुनाव अच्छी तरह जाँच-परखकर होना चाहिए। चाहे जो कोई गुरु-ट्रेनिङ्ग पास कर ले, वही शिक्षक बन जाय, यह नियम इस युग के लिए ठीक नहीं है; क्योंकि यह युग देश को शिक्षित बनाने का ही नहीं है, बल्कि देश को चरित्रवान बनाने का भी है। देश के लोग पढ़े-लिखे होकर भी तबतक देश को ऊपर नहीं उठा सकते जबतक वे सदाचारी न होंगे। देश को ऊँचा उठाने के लिए विद्या-बल से बढ़कर चरित्र-बल है। पवित्र चरित्र के विना विद्याबुद्धि निष्फल है। गाँवों में रहनेवालों का चरित्र बहुत बिगड़ गया है। वहाँ के बड़े-बूढ़े तो अब उकठे काठ की तरह सुधर नहीं सकते; मगर आगे की नई पीढ़ी को सुधारना हमारे हाथ में है। अच्छे शिक्षकों से ही यह काम लिया जा सकता है। वे ऐसी विद्या सिखावें कि हमारे बच्चे ब्रह्मचारी और देशप्रेमी बनें, साहसी और बहादुर बनें, जनता के सच्चे सेवक और राष्ट्र के सच्चे नागरिक बनें।

गाँव के स्कूलों में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनमें भी काफी हेरफेर होना चाहिए। वहाँ ऐसी ही पुस्तकें पढ़ाई जायँ जिनसे देहाती जिन्दगी को सुखी बनानेवाली बातें मालूम हों और बाहरी दुनिया के बारे में भी जरूरी बातों की जानकारी हो जाय। नक्शे, चित्र, खिलौने आदि से भी बहुत तरह की बातों का ज्ञान कराया जा सकता है। लड़कों को अपने जिले और अपने प्रान्त का भूगोल और इतिहास केवल पुस्तकों में ही न पढ़ाया जाय, बल्कि उन्हें दल बाँधकर घूमने-फिरने का भी अवसर दिया जाय, ताकि वे उन जगहों और चीजों को अपनी आँखों देखकर प्रत्यक्ष ज्ञान पा सकें। कई गाँवों के चुने हुए लड़कों का दल, बारी-बारी से, एक-एक यात्रा में, बहुत-से देखने योग्य स्थानों की सैर कर सकता है। हरएक दल के साथ एक-दो सयाने शिक्षक रहेंगे और यात्रा अधिकतर पैदल ही अच्छी होगी। इसके लिए अच्छे मौसम में एक सप्ताह या एक पखवारे का कार्यक्रम बनाया जा सकता है। इसीके सिलसिले में बालचरों की भी तैयारी होती चलेगी। स्काउट या स्वयंसेवक बनने की शिक्षा देने के लिए गाँव के स्कूल का वही शिक्षक काम दे सकता है जो कसरत-कवायद सिखाता है। खेल-कूद और कसरत-कुश्ती, नाटक और मनोरंजन, देहाती खेल-तमाशे और नाच-गाने, चित्रकारी और बागवानी, यात्रा और वाद-विवाद ये सब भी शिक्षा के अंग बनाये जायँ। इनसे गाँव के लड़कों का खूब विकास होगा और वे सभ्य देश के बालक कहलाने योग्य हो सकेंगे।

गाँव के स्कूल में जो पुस्तकालय हो, उसीसे गाँव-भर के लोग पुस्तकें लेकर पढ़ें, वहीं पर सब लोग इकट्ठे होकर रेडियो सुनें, वहीं पर अखबार पढ़े जायँ, वहीं पर अखाड़े में दंगल की होड़ भी हो। गाँव के स्कूल को एक ऐसा केन्द्र बना देना चाहिए जहाँ से सब लोग जागृति का सन्देश लें। एक ही संस्था की उन्नति में गाँव-भर के लोग सहयोग करने को जुट जायँ। उसमें पढ़ाई भी हो, कताई-बुनाई भी हो, खेती की उपज बढ़ाने और पशुधन की रक्षा करने के तरीके भी बतलाये जायँ, बस्ती की सफाई और तन्दुरुस्ती की हिफाजत के ढंग भी सिखाये जायँ, और इस तरह गाँव की भलाई के सभी कामों का केन्द्र बनाकर स्कूल की उन्नति में गाँव की सारी शक्ति लगा दी जाय। गाँव के लोग ऐसी संस्था को ही तीर्थस्थान समझें। ऐसी संस्था की सेवा-सहायता करना ही सब लोग पुण्य मानें। जिस दिन विद्यादान और परोपकार को लोग असली यश समझने लगेंगे, उस दिन देखते-देखते गाँवों की हालत बदल जायगी। हर बात में सरकार का दरवाजा खटखटाने की आदत इसीलिए पड़ी हुई है कि गाँव के लोगों का बहुत-सा पैसा ऐसे कामों में खर्च हो जाता है जिनसे देश का कोई लाभ नहीं होता। अगर बिखरी हुई सारी शक्तियों को समेटकर केवल देश की उन्नति में ही लगा देने पर लोग तुल जायँ, तो दस साल के अन्दर ही गाँवों की काया पलट जायगी। यही बात गाँववालों के मन में जँचाने की जरूरत है। फिर तो वे अपने पैरों पर खड़े होकर राष्ट्र की उन्नति में भी सहायक हो सकेंगे।

जिन गाँवों में स्कूल नहीं हैं या जहाँ आसानी से पहुँचने योग्य स्थानों में भी स्कूल नहीं हैं, वहाँ जरूरत के मुताबिक छोटे या बड़े स्कूल खोलने की कोशिश जल्दी होनी चाहिए। इसके लिए गाँव-गाँव के धनीमानी और पढ़े-लिखे लोगों को इकट्ठा करके सरकार की ओर से उत्साह दिया जाना चाहिए। फजूल-खर्ची के सभी रास्तों को कानून के जोर से बन्द करके देश की संगठित पूँजी को शिक्षा के प्रचार में लगाने की जरूरत है। जो लोग इस काम में तन-मन-धन से लग जायँ, उनको सरकार की ओर से बढ़ावा मिलना चाहिए। अगर इनाम और खिताब देने का रिवाज देशी सरकार को भी चलाना पसन्द हो तो वह ऐसे ही कामों के करनेवालों को इज्जत देने के लिए यह रिवाज जारी करे। देश की भलाई के कामों में जो तत्पर रहें, उनका मान बढ़ाना हरएक सरकार का काम है। स्वदेशी सरकार के दरबार में जब लोगों का सम्मान होने लगेगा तब गाँव के लोगों में देखादेखी सार्वजनिक हित के काम करने की रुचि पैदा हो जायगी। जहाँ उनमें हौसला और शौक पैदा हुआ कि बिना सरकारी सहायता के भी गाँवों में शिक्षा-प्रचार के प्रयत्न होने लगेंगे। स्कूल और पुस्तकालय के लिए कुछ दिनों तक ऐसा कोई उपाय सरकार को करना पड़ेगा।

गाँवों में लड़कियों के लिए स्कूल भी होना चाहिए। कन्या-विद्यालय के लिए अगर हर जगह अलग-अलग इन्तजाम न हो सके तो हर सबडिवीजन या हर जिले में एक-एक कन्या-विद्यालय खोला जाय, जहाँ शिक्षित स्त्रियाँ ही पढ़ावें और लड़कियों के

रहने के लिए भी सुरक्षित स्थान हो। बिहार में स्त्रीशिक्षा का बहुत अभाव है और कोई ऐसा महिला-विद्यापीठ भी यहाँ नहीं है जहाँ लड़कियों के योग्य अच्छी शिक्षा दी जाती हो। एक-दो ऐसे विद्यापीठों की चर्चा फैली भी, मगर उनको जनता या सरकार से ऐसी सहायता नहीं मिली कि वे बिहार की स्त्रियों के मन में विद्या पढ़ने के लिए खिंचाव पैदा कर सकें। किन्तु महिला-विद्यापीठों में वे ही स्त्रियाँ शिक्षा पा सकेंगी जिनको अपने घर से रुपये की मदद मिलेगी। गाँव की गरीब स्त्रियों और लड़कियों के लिए जब गाँव की बस्ती के अन्दर ही कन्या-पाठशाला खोली जायगी तभी घर-घर में स्त्री शिक्षा की जोत जग सकेगी। यह काम लड़कों की पाठशाला में भी हो सकता है जहाँ सिर्फ छोटी उम्र की लड़कियाँ पढ़ाई जा सकती हैं। मगर सयानी लड़कियों के लिए हर जगह अलग इन्तजाम होना कठिन है। इसलिए, जो लड़कियाँ शुरू की पढ़ाई खतम करके सयानी होने पर ऊँचे दर्जे की शिक्षा पाना चाहें, उन्हें विद्यापीठों या हाइस्कूलों में भेजने का प्रबन्ध होना चाहिए। इसके लिए सरकार की मदद जरूरी होगी और गाँव के पंचों को भी होनहार लड़कियों के पढ़ाने का उपाय गाँव के लोगों से कराना होगा। लेकिन लड़कियों की पढ़ाई लड़कों से दूसरे ढंग की होनी चाहिए, इसी खयाल से उनके लिए अलग स्कूल होना जरूरी जान पड़ता है। लड़कियों को पढ़ाने के लिए शुरू में तो लड़कों के स्कूल से ही काम लेना होगा, मगर उसके बाद उन्हें ऐसे स्कूल में ही पढ़ाना ठीक होगा जिसमें उनके जीवन को समाज के योग्य बनाने की शिक्षा दी जाती हो। ऐसा स्कूल तो खास तौर से उन्हीं के लिए हो सकता है। उनके स्कूल में घरेलू कामों के सिखलाने का विशेष प्रबन्ध होगा। उन्हें सच्ची घरनी और आदर्श माता बनने की सीख देनी होगी। सीना-पिरोना, कसीदा काढ़ना, रसोई बनाना, घर को सँवारना-सँभालना, बच्चों को पालना-पोसना, रोगी की सेवा-टहल करना, गाना-बजाना, रुपये पैसे का हिसाब रखना, आमद-खर्च का लेखा-जोखा दुरुस्त रखना, रहन-सहन और खान-पान में सफाई और सुन्दरता लाना, आचार-व्यवहार में पवित्रता और मधुरता लाना, चित्रकारी और रंगसाजी जानना—ये सारे गुण उनके जीवन को समाज के लिए सुखदायक बना सकते हैं। उनके इन्हीं गुणों से देश के लोगों का पारिवारिक जीवन आनन्द और शान्ति का भंडार बन सकेगा। उन्हीं के आदर्श गृहिणी और आदर्श जननी बनने से देश को आदर्श नागरिक मिलेंगे। होनहार लड़के माता के इशारे पर ही आगे बढ़ते हैं। पूज्य माता 'कस्तूरबा' के स्मारक-कोष से स्त्रियों की उन्नति के जो काम होनेवाले हैं, उनसे भी स्त्रियों के कल्याण की आशा है। गाँवों में प्रसूती स्त्रियों के लिए धाइयों की सख्त जरूरत है। बच्चा जनने के समय बहुत-सी स्त्रियाँ मर जाती हैं और अधिकतर बच्चे भी मर जाते हैं। इसलिए गाँवों की स्त्रियों को चतुर धाई बनाने की भी जरूरत है। गर्भवती स्त्रियों का पालन-पोषण कैसे होना चाहिए, बच्चे की पैदाइश के वक्त कैसी सफाई रखनी चाहिए, बच्चे के साथ ही बच्चे की माता की कैसी देखभाल होनी चाहिए—इन सब बातों की शिक्षा गाँव की स्त्रियों के लिए बहुत ही जरूरी है। यह शिक्षा भी गाँव के कन्या-विद्यालयों में दी जानी चाहिए।

गाँवों में सामाजिक कुरीतियाँ

गाँव के लोग अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों में बुरी तरह फँसे हुए हैं। समाज की कुरीतियाँ गाँववालों को दिन-दिन तबाह करती जा रही हैं। विवाह और श्राद्ध में इतनी फजूल-खर्ची बढ़ गई है कि साधारण गृहस्थ सिर्फ लोक-लाज निबाहने के लिए कर्ज काढ़कर कुरीतियों को पालते हैं। तिलक-दहेज की कुरीति ने कितने ही घरानों को बरबाद कर डाला है। श्राद्ध में भी कई तरह के फालतू खर्च होते हैं। इन सब बुराइयों को दूर करने के लिए सरकार को कड़ा कानून जारी करना चाहिए। विवाह के लिए जो शारदा-कानून बना था, वह बेकार साबित हुआ; क्योंकि प्रजा से सरकार ने उस कानून का कड़ाई के साथ पालन नहीं कराया। समाज-सुधार के बिना राष्ट्रनिर्माण में सफलता नहीं हो सकती, इसलिए समाज को सुधारने के लिए जो कानून बनाये जायँ, उन कानूनों का पालन भी सख्ती से और मुस्तैदी से कराया जाय। किसी को देश का धन व्यर्थ नष्ट करने का हक न रहे। देश का एक-एक पैसा देश की भलाई और उन्नति के कामों में ही लगे। सब तरह के जरूरी खर्चों की मर्यादा बाँध दी जाय। उस मर्यादा का जो उल्लंघन करे, उसे दण्ड दिया जाय। कम-से-कम अगले दस-बीस वर्षों तक देश को उचित पाबन्दियों के बीच से ले चलना होगा, नहीं तो सदियों का बिगड़ा देश आज स्वतंत्र होने पर भी शीघ्र सँभल न सकेगा। गाँवों में जो कुरीतियाँ जड़ जमा चुकी हैं, उन्हें निर्मूल करने के लिए कानून के कड़े हाथों से काम लेना पड़ेगा। सदियों से लोगों की नस-नस में पैठा हुआ रोग केवल संयम के उपदेशों से दूर नहीं हो सकता। जैसा भयंकर और घातक रोग है, वैसी ही कड़वी और तीखी दवा देनी होगी।

गाँवों में रहनेवाले शिक्षित लोग और लेखक अपने यहाँ की बुराइयों की जाँच-पड़ताल करें—उनकी ओर स्वदेशी सरकार का ध्यान खींचें और अगर हो सके तो उन्हें मिटाने के भी उपाय सुझावें। गाँवों के शरीर में तरह-तरह की कुरीतियां और बुराइयों की जोंकें लगी हुई हैं जो बहुत दिनों से उनका खून चूसकर उनको शक्तिहीन और प्राणहीन बना रही हैं। उन जोंकों से गाँवों की रक्षा करनी पड़ेगी। यह काम व्याख्यान और उपदेश से जल्दी न होगा, कानून को इधर पंजा बढ़ाना होगा।

मुकदमेबाजी को भी हम समाज की कुरीति ही कह सकते हैं; क्योंकि दूसरी कुरीतियों की तरह यह भी समाज की जड़ को खोखली कर रही है। मुकदमे लड़ना गाँवों में एक फैशन-सा हो गया है। इससे समाज का बहुत-सा द्रव्य नष्ट हो रहा है। हो सकता है कि जमीन्दारी के उठ जाने से मुकदमेबाजी कुछ कम हो जाय। घरेलू झगड़ों को मिटाने के लिए ग्राम-पंचायतों को सरकार की ओर से पूरा अधिकार मिल जाय तो गाँववालों को बात-बात में अदालत की शरण न लेनी पड़े। पंचों का चुनाव बहुत ही सावधानी से हो और उन्हें अधिकार भी पूरा मिले, तब ठिकाने से पंचायत चल सकती है। कानूनी पाबन्दी और शर्त्त से बँधे हुए निष्पक्ष आदमी ही पंच बनाये जायँ, नहीं तो गाँवों के पंच ठीक काम न कर सकेंगे। मुकदमेबाजी को रोकने के लिए कानून के

फौलादी पंजे से काम लेना होगा। ग्रामपंचायतों को तो बड़ी होशियारी से फैसला देना होगा, जिससे गाँव में बैर-विरोध न बढ़े और आपस की मिठास बनी रहे; फिर भी अपराधी को दण्ड ऐसा ही देना पड़ेगा कि दूसरे लोगों को उससे सीख मिले।

गाँवों में मवेशियों की चोरी बहुत होती है। खेत की हरी या खड़ी फसल काट ली जाती है। खलिहान फूँक दिया जाता है। पशुओं का चारा नष्ट कर दिया जाता है। चोरी-डकैती की धमकी भी दी जाती है। खेत-खलिहान और पशुधन की रक्षा के लिए गाँव के गृहस्थ और किसान हमेशा चिन्तित और डरे हुए रहते हैं। इसलिए गाँवों को चोरी-डकैती के आतंक से बचाना बहुत जरूरी है। इसके लिए सरकारी पुलिस के मन में देश की सेवा का भाव आना चाहिए। पुलिस चाहेगी तो गाँवों की शांति भंग न हो सकेगी। गाँवों में बहुतेरे ऐसे चोर-डकैत हैं जिनको सब लोग अच्छी तरह जानते हैं, मगर उनके डर के मारे कोई चूँ तक नहीं करता ; क्योंकि ऐसे मामलों में हत्याएँ तक हो जाती हैं। इसलिए चोरी-डकैती के लिए कठोर-से-कठोर दण्ड देने की जरूरत है। जबतक इस अत्याचार का दमन कानून के मजबूत हाथों से नहीं होगा, तबतक गाँवों के सुधार में कई तरह की अड़चनें पड़ेंगी। इसके लिए पुलिस की जवाबदेही सबसे बड़ी है। पुलिसवाले जबतक राष्ट्र की उन्नति और भलाई की भावना से काम न करेंगे तब-तक गाँवों का यह भय दूर न होगा। घूसखोरी के लिए भी, हमेशा याद रखने लायक सबक सिखानेवाला, दिल दहलानेवाला दण्ड दिया जाना चाहिए। तब कहीं गाँव की प्रजा का कल्याण हो सकेगा। किन्तु प्रजा को भी अपने अधिकार की रक्षा के लिए लड़ने और जूझने की हिम्मत दिखानी होगी। जब गाँवों में बसनेवाली प्रजा निडर बन जायगी, उसको कोई सता न सकेगा।

गाँवों में रहनेवाले अछूत

गाँवों में आज भी अछूतों की बड़ी दुर्दशा है। कितने ही गाँवों में बस्ती के बाहर या बस्ती के अन्त में एक किनारे हरिजनों के घर या झोपड़े होते हैं। उनका कुँआ भी अलग होता है। अगर उनके टोले में कुँआ नहीं होता तो वे बस्ती के बाहर किसी दूर के कुँए से जल भर लाते हैं, बस्ती के कुँओं में उन्हें पानी नहीं भरने दिया जाता। खुशी या गमी के भोज में भी वे अनादर से बिठाये और खिलाये जाते हैं। मन्दिरों में तो उनकी पैठ हो ही नहीं पाती। होली में भी उनकी अलग टोली रहती है। गाँव के धनी लोग उन्हें कर्ज देते हैं और सूद-दर-सूद जोड़कर उनके मवेशी हाँक लाते हैं, खेत-खलिहान पर दखल जमाकर उनसे हलवाहे, चरवाहे या मजदूर के काम लेते हैं। कहीं-कहीं तो बेचारे मारे-पीटे और उजाड़े भी जाते हैं। इस अत्याचार पर भी कानून का गहरा अंकुश पड़ना चाहिए।

सूदखोर महाजनों से गाँव के गरीबों और हरिजनों को बचाने में सरकारी कानून ही समर्थ हो सकता है। जो लोग लाचार गरीबों से एक का दस ऐंठकर मालदार बने हुए हैं, उनकी खबर सरकार ही ले सकती है। कौंसिलों में कानून बनवानेवाले देशभक्त, जो

जनता के सच्चे हितैषी और प्रतिनिधि कहलाते हैं, सूदखोरों की अच्छी मरम्मत कर सकते हैं ; क्योंकि सूदखोरी एक ऐसी राक्षसी है जो हड़तोड़ मेहनत करनेवाले गरीबों को पेट की मार से तबाह कर डालती है। साल-भर अपने स्त्री-बच्चों के साथ जो छातीफार काम करते रहते हैं, उन बेचारों के तन पर लत्ता भी नहीं रह पाता—दिन रात वे पेट की आग में झुलसते रहते हैं। सूद की दर पर सरकारी नियंत्रण (कंट्रोल) रहने से ही गाँव के गरीबों की जान बचेगी।

अछूतों या हरिजनों को गाँवों में समाज का अंग बनाकर रखना होगा। अभी तो वे समाज के सड़े या कटे हुए अंग के समान हैं। उनको समाज में बराबरी का दर्जा देना पड़ेगा। इसीमें समाज का कल्याण है। इसीसे समाज की शक्ति बढ़ेगी। हाँ, उनका खान-पान, रहन-सहन, आचार-व्यवहार सुधारना होगा। उनकी बस्ती की सफाई पर ध्यान देना होगा। उनके लिए पानी की ऐसी सुविधा करनी होगी कि वे सफाई से रह सकें। उन्हें पवित्र होकर मन्दिरों में पूजा और हरिकीर्त्तन करने का अधिकार होना चाहिए। उनके लड़कों के लिए स्कूलों का दरवाजा खुला रहे। सहभोज में वे शामिल किये जायँ। उनका अछूतपन सब तरह से मिटा दिया जाय। उनके काम से किसीको घृणा न हो। उनके काम गन्दे न समझे जाकर समाज के लिए हितकर समझे जायँ। उनकी स्त्रियाँ कुशल धाई बनाई जा सकती हैं। गाँव-गाँव में उनको अपनाने और गले लगाने का आन्दोलन हो। उनका उद्धार ग्राम-सुधार का मुख्य अंग माना जाय। जबतक छुआछूत का भूत गाँवों में डेरा डाले रहेगा तबतक गाँव नरक बने रहेंगे।

अछूतों को भी अपना 'हरिजन' नाम सार्थक करना होगा। महात्मा गांधी ने भी उन्हें यही उपदेश दिया है कि वे निषिद्ध खानपान छोड़कर सफाई की आदतें सीखें। जब वे अपने तन-मन और स्वभाव को पवित्र रखने लगेंगे तब अनायास ही समाज में खप जायँगे। आचरण की पवित्रता से ही समाज में प्रतिष्ठा होती है। गाँव-गाँव में ऐसा ही समाज बनना चाहिए जिसमें शुद्ध आचरणवाले का ही आदर हो और मलिन स्वभाव वाले लोग ही—चाहे वे किसी जाति के भी हों—शूद्र या अछूत माने जायँ। इसी तरह उन लोगों का भी सुधार हो सकेगा, जो अपनेको ऊँची जाति का कहने में नहीं लजाते, मगर गन्दगी में अछूतों को भी मात करते हैं। यहाँ इतना ही ध्यान रखना है कि सुधार हमेशा मिठास से होता है, घृणा से नहीं।

गाँव में रहनेवाले मजदूर

कई तरह के काम करनेवाले मजदूर गाँवों में पाये जाते हैं—खेती-बारी के काम करनेवाले भी और मकान बनानेवाले भी। कोई धान रोपता और काटता है। कोई ईंट पाथता और पकाता है। कोई दीवार चुनता और पोतता है। बढ़ई और लुहार भी मजूरी करते हैं। तरह-तरह के काम हैं तो वैसे ही मजूर भी हैं। लेकिन मजूरों में, पहले के मुकाबले, अब ईमानदारी कम हो गई है। जबतक काम करानेवाला मालिक मौजूद रहता है तबतक तो काम ठीक होता है और जहाँ वह आँख से ओझल हुआ कि काम में

ढील होने लगी। आँखों के आगे काम में चुस्ती रहे और पीठ पीछे काम में सुस्ती हो तो यह बेईमानी ही कही जायगी। जब रखवाली करने पर ही मजूरी होगी और पहरा हटते ही मौज-बहार, तब तो काम करानेवाले की बरबादी का अन्दाज लगाना मुश्किल नहीं; क्योंकि उसे पैसों के साथ ही अपना अमूल्य समय भी नष्ट करना पड़ता है। यह देश का ही पैसा और समय नष्ट होता है। हमारे मजदूरों में ऐसी समझ और ऐसी भावना आनी चाहिए कि वे जिस काम के लिए मुँहमाँगा और मनचाहा पैसा पा रहे हैं, उस काम को सचाई और तत्परता से पूरा करना उनका कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य का ज्ञान जबतक न होगा तबतक कमाया हुआ पैसा रहेगा ही नहीं। बेईमानी की कमाई हमेशा दरिद्रता बढ़ानेवाली होती है। ईमानदारी के पैसों में बरकत होती है और उनसे सन्तोष भी होता है। मजदूरों की गरीबी और तबाही का एक कारण यह भी है कि वे ऊपर से देख-भाल न करने पर काम में ढिलाई कर देते हैं। अगर वे कसकर मजदूरी लें तो लगन से काम भी करें। निश्चय ही उनको पूरी आजादी रहेगी कि जहाँ भर पेट पैसे नहीं मिलेंगे, वहाँ वे काम नहीं करेंगे और भरपूर मजूरी के साथ-ही-साथ उन्हें अच्छा व्यवहार-बर्ताव पाने का भी हक है। मगर बिना देख-रेख के अपने काम में सुस्ती और लापरवाही करने की शिकायत उनके ईमान में बट्टा लगानेवाली है और उनकी गरीबी की जड़ जमानेवाली भी है। उन्हें अपना हक पाने के लिए आदमी बनना पड़ेगा। यह तो जानवर का काम है कि वह बिना हाँके या बिना डाँटे काम में लगा नहीं रह सकता। मजूरी देकर काम करानेवाला अगर दिन-भर चौकीदारी करने से छुटकारा पा जायगा तो अपने घर का या देश का दूसरा कोई काम कर सकेगा। सब लोगों को अब यह समझ लेना होगा कि देश के हरएक आदमी का पैसा और समय देश का ही पैसा और देश का ही समय है। जो आदमी अपना पैसा और समय बेकार बरबाद करता है, वह देश का ही पैसा और समय नष्ट करता है। जबतक यह भाव हरएक देशवासी के मन में घर न करेगा तबतक आजादी पाने का कोई मतलब ही नहीं और वह मिली हुई आजादी भी टिकनेवाली नहीं हो सकती। गाँवों के अन्दर अभी बहुत काम करना है। जब सब लोग मिलजुलकर ईमानदारी से काम में जुट पड़ेंगे तभी गाँवों का सुधार होगा। सरकारी प्रचार या कानून से भी तबतक कुछ न होगा जबतक गाँव के सब दर्जे के लोग देश की माँग और पुकार पर ध्यान न देंगे। अब वह समय आ गया है कि देश की जरूरतों को सब लोग महसूस करें।

मजदूरों में कर्त्तव्य का ज्ञान जगाने के लिए गाँवों में रात्रि-पाठशालाओं का होना बहुत जरूरी है। दिन-भर मेहनत-मजदूरी करने के बाद रात में उन्हें लिखना-पढ़ना सिखाया जाय, उन्हें सेवाधर्म की महिमा बतलाई जाय उन्हें तुलसीदासजी की रामायण से उनके काम की कथाएँ सुनाई जायँ, विदेशों के मजदूरों के बारे में भी उन्हें बतलाया जाय कि वहाँ वे अपने देश के लिए कैसे काम करते हैं, देश में होनेवाले मजदूरों के आन्दोलन का हालचाल भी सुनाया जाय, देश को धनी और सुखी बनाने के लिए किसको क्या करना चाहिए—यह भी सुझाया जाय, और उनका दिल बहलानेवाली और उनकी जानकारी

बढ़ानेवाली देश-देशान्तर की खबरें भी सुनाई जायँ। प्रेम और सहानुभूति पाकर ही वे चेतेंगे, सुधरेंगे और खुशहाल होंगे।

गाँवों में रहनेवाले कारीगर

गाँवों में बहुत-से ऐसे कारीगर भी हैं जिनकी कला का आदर ठीक तरह से नहीं होता। इसीलिए वे गाँवों को छोड़कर शहरों में चले जाते हैं या किसी कारखाने में नौकरी कर लेते हैं। उनके हुनर की कद्र अगर गाँवों में होने लगे तो गाँवों की सुन्दरता और सम्पत्ति भी बढ़ सकती है और तिजारत भी। बढ़ई, थवई, नाई, लुहार, कुम्हार, मोची, हलवाई, तमोली, डफाली, दर्जी, रँगरेज, धोबी, जुलाहा, बँसफोर, आतिशबाज, संगतराश आदि बहुत से कारीगर अपने गाँव छोड़कर दूर-दूर जगहों में रोजी कमाने चले गये हैं। इससे गाँवों की रौनक बिगड़ गई है और रोजगार-धन्धा भी चौपट हो गया है। अगर गाँवों का मण्डल बनाकर किसी केन्द्रस्थान में सब कारीगरों का ठीक संगठन किया जाय तो खासा व्यापार चल सकता है और कारीगरों का भी गुजर हो सकता है। अपनी जन्मभूमि के नजदीक उन्हें जीविका मिलने लगे तो वे बड़े सन्तोष के साथ रहकर गाँवों को गुलजार बना सकते हैं। गाँव के लोगों को भी अपने यहाँ के कारीगरों को मदद देकर गाँव की शोभा और इज्जत बढ़ानी चाहिए। घरेलू उद्योग-धन्धे या कुटीर-शिल्प की उन्नति के लिए गाँव के कारीगरों का उत्साह बढ़ाना और उन्हें आश्रय देना बहुत जरूरी है। सरकार की ओर से भी कोशिश होनी चाहिए। गाँव के धनी लोग आपस के सहयोग या संघशक्ति से कारीगरों की कला का लाभ उठा सकते हैं।

गाँवों में बाजार की जरूरत

गाँवों में बाजार बहुत कम हैं। बड़े-बड़े गाँवों में भी सब जगह बाजार नहीं हैं। गाँववालों को आसपास के छोटे-मोटे शहरों या कस्बों में जाकर बाजार-हाट करना पड़ता है। गाँवों में पैदा होनेवाली चीजों की खपत दूर-दूर के बाजारों में होती है। बहुत-से गाँव तो बाजार से बहुत दूर पड़ते हैं, इसलिए अपने यहाँ की पैदावार को बाजार तक आसानी से नहीं पहुँचा पाते। एक तो गाँवों में अच्छी सड़कों की भी बहुत कमी है। दूसरे, बाजार की दूरी के कारण अपना सामान ढो ले जाने में उन्हें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कितने ही गाँवों में तरकारी और फल की उपज काफी होती है; मगर उससे उतना फायदा नहीं हो पाता जितना नजदीकवाले बाजार से हो सकता था। इसलिए गाँवों के मण्डल में हर जगह बाजार लगवाने की जरूरत है। मगर ऐसी जगह में हाट लगनी चाहिए जो इर्द-गिर्द के गाँवों के बीच में पड़ती हो और जहाँ आसानी से गाँववाले अपना माल पहुँचा सकते हों। ऐसे बाजारों से सरकार की आमदनी भी बढ़ सकती है और गाँववालों की भी। साथ ही, गाँववालों की जिन्दगी को आराम देने-वाली चीजें भी उन्हें आसानी से मिल सकती हैं। बाजार के लिए अच्छा केन्द्रस्थान चुनकर गाँववालों को ही इस मामले में आगे बढ़ना होगा। सरकारी मंजूरी या मदद का

सवाल पीछे हल हो जायगा। इस तरह गाँववालों की जरूरतें भी पूरी होंगी और उनकी उपजाई हुई चीजों की खपत भी होती रहेगी। लेन-देन और हर चीजों के हेर-फेर या बदलौवल से गाँववालों की माली हालत भी सुधरेगी।

हाँ, बाजार की जगहों में डाकखाने भी रहें तो अच्छा होगा। गाँवों में डाकखाने बहुत दूर-दूर हैं। दैनिक अखबार बहुत ही कम गाँवों में ठीक समय पर पहुँच पाते हैं। साप्ताहिक अखबार भी पुराने पड़कर पहुँचते हैं। चिट्ठियाँ तो बहुत अधिक विलम्ब से मिलती हैं। कहीं-कहीं बरसात में एक पखवारा या एक महीना बाद डाक पहुँचती है। डाकखानों और सड़कों की कमी के कारण बाहरी दुनिया से देहातवालों का बहुत कम सरोकार रहता है। इसलिए वे कूपमण्डूक बने रहते हैं। जगह-जगह बाजार और डाकघर हो जाने से उनमें तेजी से जागृति फैलेगी। हर बाजार के दिन सभाएँ की जा सकती हैं और वहाँ इकट्ठे हुए लोगों में देश के कल्याण की बातों का प्रचार भी किया जा सकता है।

गाँवों में रहनेवाले गुणी और कलावन्त

गाँवों में तरह-तरह के गुणी और कलावन्त भी हैं ; मगर देश के अखबारों में उनकी चर्चा कभी नहीं होती। उनके गुणों का आदर होने लगे तो वे और भी अधिक करामात दिखाने लगेंगे। गवैया, बजवैया, पहलवान, लठैत, गदका-खिलाड़ी, जादूगर, नट, कत्थक, भाट, भाँड़, घुड़सवार, तैराक आदि नाना प्रकार के कलावन्त अपनी कला की खूबी गाँवों तक ही गँवा देते हैं। गाँवों की सरहद से बाहर की दुनिया में उनकी पैठ या पूछ नहीं हो पाती। उनका विकास रुका रह जाता है। उनके गुण की सुगन्ध फैलने नहीं पाती। उनका उत्साह बढ़ाने के लिए समय-समय पर गाँवों में सब तरह के गुणियों और कलावन्तों का दंगल होना चाहिए, जिसमें उनको यथोचित पुरस्कार देने का भी प्रबन्ध हो तो और अच्छा। गाँवों के गुणियों और कलावन्तों में से चुनाव करके शहरों के उत्सवों और सम्मेलनों में ले जाना चाहिए, जहाँ ऊँचे दर्जे के लोगों को यह सूझ पड़े कि अन्धकार में पड़ी गाँवों की कला को प्रकाश में लाने की कितनी जरूरत है।

गाँवों की स्त्रियों में भी बहुत-सी बड़ी गुणवती होती हैं। गाने में, सीने-पिरोने में, रसोई बनाने में, चौक पूरने में, दीवार पर चित्र बनाने में, इसी तरह के बहुत-से कामों में, वे काफी होशियार होती हैं। उन्हें भी बढ़ावा देकर आगे बढ़ाना चाहिए। लड़के-लड़कियों में भी अगर कोई विशेषता दीख पड़े तो उनके विशेष गुण के विकास का अवसर देना भी जरूरी है।

गुणियों और कलावन्तों में जो दोष या त्रुटि हो, उसका सुधार भी करना होगा। जैसे गवैयों के गीत में जो गलतियाँ हों तो उन्हें शुद्ध करके बतलाना पड़ेगा। भटैती और भड़ैती करनेवालों को भी सभ्य समाज के योग्य बनाने की कोशिश करनी होगी। इस तरह के प्रयत्न से उनकी कद्र बढ़ेगी और उनकी जीविका का सहारा भी बढ़ेगा। सम्मानित और खुशी होकर वे गाँव का गौरव बढ़ावेंगे।

गाँवों में हाथ के लिखे अखबार

गाँव में स्कूल या पुस्तकालय की ओर से हाथ का लिखा अखबार भी निकलना चाहिए। शहरों से जो छपे हुए अखबार गाँवों में आते हैं, उनमें से ऐसी खबरों को छाँटकर काट लेना होगा जो गाँवों के सम्बन्ध में हों या जिनसे गाँवों की भलाई हो सकती हो। ऐसी खबरों की कतरनों को भी गाँव के अखबार में चिपकाकर रखने से समय-समय पर बहुत लाभ और मनोरंजन होगा। गाँव के लड़कों और नौजवानों को, सुन्दर अक्षरों में लिखने के लिए, साल के अखीर में, कुछ इनाम देना जरूरी है। इससे अखबार या मासिक पत्र का रूप सुन्दर और दर्शनीय हो सकेगा।

हाथ के लिखे मासिक-पत्र में गाँव-जवार के गुणियों, कलावन्तों, कारीगरों और नामी आदमियों का पूरा परिचय लिखा जाना चाहिए। उस थाने या जिले में जो पुराने स्थान हों, मेले या बाजार लगते हों, परब-त्योहार मनाये जाते हों, प्राचीन खँड़हर या मन्दिर हों, नदी-तालाब या जंगल-पहाड़ हों, देहाती खेल हों, उनके बारे में अगर कोई खास बात जानने योग्य हो, या उनमें कोई देखने योग्य विशेषता हो, तो इन सबका भी वर्णन ठीक-ठीक लिखा जाना चाहिए। इसी पत्र में ग्रामगीतों का भी संग्रह होता चलेगा। गाँवों की कहानियाँ और कहावतें भी चुन-चुनकर लिखी जायँगी। बूढ़े-बूढ़ियों के अनुभव भी, उनसे पूछकर, टाँके जायँगे। तीर्थयात्रा से लौटे हुए लोगों से भी उनकी यात्रा का हाल पूछकर दर्ज करना बड़ा मनोरंजक होगा। हर साल के हर महीने का बाजार-भाव भी लिखा जायगा। गाँव के आदमियों, मवेशियों, मकानों, विधवाओं, अनाथों और गरीबों की गिनती करके उनकी असली हालत आँकी जायगी। गाँव में जो पैदाइश और मौत होगी, गल्ले की पैदावार होगी, या और कोई लिख रखने लायक घटना होगी—जैसे ब्याह या श्राद्ध आदि, सबका लेखा-जोखा लिख रखना होगा। वह मासिक-पत्र गाँव की दशा को साफ झलका देनेवाला एक आइना होगा, जिसमें जब कोई चाहे तब गाँव का सब तरह का ब्योरा देख ले। इससे ग्राम-सुधार में बड़ी सहायता मिलेगी।

आसपास या इर्दगिर्द के गाँवों के स्कूल या पुस्तकालय आपस में ऐसे पत्रों का लेनदेन भी कर सकते हैं। इस गाँव का पत्र उस गाँव में और उसका इसमें आता-जाता रहेगा तो एक दूसरे से लाभ उठा सकेगा और कुछ सीख भी सकेगा। ऐसे पत्रों को बहुत हिफाजत से रखना होगा; क्योंकि वे देस दरपन का काम देंगे। दस-बीस गाँव मिलकर ऐसे पत्रों की प्रदर्शनी या नुमाइश भी कर सकते हैं। अगर गाँव के पढ़े-लिखे लोग समझदारी और तजरबे से काम लेंगे तो ऐसे पत्रों के जरिये से बहुत फायदा उठा सकेंगे। नुमाइश में दिखाये गये पत्रों से अच्छी-अच्छी चीजें और तस्वीरें चुनकर छपवाई भी जा सकती हैं। इससे बाहरी या शहरी दुनिया का झुकाव गाँवों की खूबियों की ओर हो सकता है।

गाँव के परब-त्योहार

गाँव में जो परब-त्योहार मनाये जाते हैं, उनमें भी सुधार करने की जरूरत है। उनको ऐसा राष्ट्रीय रूप देना होगा कि उनसे देश की सभ्यता और संस्कृति का विकास हो और लोगों में आपस का मेल-जोल बढ़े। होली में जो गाली-गलौज और कीचड़-उछाल होता है, उसको बन्द करना होगा। गन्दे गीतों की जगह राष्ट्रीय गीत, देश-भक्ति के गीत, समाज-सुधार के गीत, ईश्वर-भजन के गीत, हरिकीर्तन या रामधुन का प्रचार होना चाहिए। एकता बढ़ाने और संगठन करने में होली बहुत मदद दे सकती है। छूत के भूत को भगाने और हिन्दू-मुसलमानों के मेल मिलाप को बढ़ाने का भी यह अच्छा मौका है। होली में नशीली चीजों की खपत भी रोकनी होगी। समाज में कुरुचि फैलानेवाली जो भँड़ैतियाँ होती हैं, वे भी सभ्य देश के लिए कलंक हैं, इसलिए उनकी रोकथाम पर भी ध्यान देना होगा। होलिका-दहन में गाँव के गरीबों की बहुत-सी चीजें जला दी जाती हैं—इस कुरीति के बदले घर-घर से हवन की सामग्री इकट्ठी कर सुगन्धित चीजों से होलिका-दाह होना चाहिए। इससे हवा शुद्ध होगी और आग में कूड़ा-करकट जलाने का बुरा फल भी न भोगना पड़ेगा। धुलहरी में जो राख उड़ाई जाती है, वह भी शुद्ध मिलेगी। होली में सभ्य तरीके का नाच-गाना और सुथरे हुए ढंग के हास्यरस का नाटक हो तो लोगों की भ्रष्ट हुई रुचि बदल सकती है। गाँवों की बुराइयों को निशाना बनाकर हास्यरस के छोटे-मोटे नाटक लिखे-लिखाये जा सकते हैं, जिनसे लोगों का झुकाव कला की ओर होगा।

दशहरे में जो रामलीला होती है, उसमें भी कला की खूबी लानी पड़ेगी। रामलीला का पेशा करनेवाली मंडलियों के सिवा गाँवों में भी रामलीला की मण्डली बनाई जा सकती है। उसको ऐसा आदर्श रूप दे देना होगा कि लोगों के जीवन में रामायण के आदर्श का प्रवेश होने लग जाय। रामलीला केवल तमाशा ही न रहे, उससे लोगों को सबक सीखने का मौका देना चाहिए। हथियारों के खेल, पहलवानों के दंगल, हिम्मत-बहादुरी के तमाशे, घुड़दौड़, देश की वीरता का बखान करनेवाले व्याख्यान आदि की तैयारी दशहरे में होनी चाहिए। होली में साहित्यिक हास्यरस के व्याख्यान और दशहरे में उत्साह बढ़ानेवाले वीर-रस के व्याख्यान कराये जायँ, जिनसे गाँव की जनता का दिल भी बहले और अच्छी सीख भी मिले। हमारे देश के आदर्श वीरों की जोशीली कहानियाँ सुनाकर गाँववालों में साहस और उमंग पैदा की जाय। फौजी ढंग के खेल-तमाशे भी दशहरे के मौके पर गाँव के लोगों में जोश भर सकते हैं। बंगाल की दुर्गापूजा के समान दुर्गापूजा की प्रथा जारी करके शक्ति की उपासना की जाय जिससे गाँववाले शक्ति की महिमा समझें। आज भी बहुतेरे घरों में नवरात्र का दुर्गापाठ और कलशस्थापन होता ही है। इसके साथ ही नवरात्र-भर 'रामचरितमानस' का अखण्ड पाठ भी हो तो अच्छा होगा। आपस के मनमुटाव मिटाने का भी यह अच्छा अवसर है। उस दिन वैर-विरोध का अंत करने की रीति भी चलाई जा सकती है। बड़ों के सामने छोटे अपनी

श्रद्धा-भक्ति प्रकट करें और छोटों पर बड़े अपना स्नेह दिखावें। गाँव-भर के बच्चों को इकट्ठा करके मिठाइयाँ बाँटी जायँ और हर साल उनसे कोई एक अच्छा काम करने की प्रतिज्ञा कराई जाय। जैसे गया में पिण्डदान करते समय लोग किसी एक बुराई या बुरी आदत के छोड़ने की शपथ लिया करते हैं, वैसे ही गाँव के लड़के-लड़कियों को मिठाई खिलाकर हँसी-खुशी के साथ प्रण कराया जा सकता है। इसका असर बहुत अच्छा होगा। अगर सैकड़े दस भी सुधरेंगे तो धीरे-धीरे काम आगे ही बढ़ेगा।

दीवाली में गाँवों की सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाय। बरसात के बाद गाँव के मकान, गली, चौपाल आदि गन्दे और ऊबड़-खाबड़ हो जाते हैं। उनको मरम्मत और सफाई में गाँव-भर के लोग मिलजुलकर जुट पड़ें। मकानों के कोने-कोने की सफाई हो और उसी तरह बस्ती के कोने-कोने की भी। घर-घर में गृह-देवता ग्राम-देवता, और कुल-देवता की तो पूजा होती ही है, गाँव-भर के सहयोग से एक जगह धूमधाम से लक्ष्मीपूजा की जाय। इससे गाँव की आर्थिक दशा उन्नत होगी। दीये भी सरसों या रेंड़ी के तेल से ही जलाये जायँ; किरासन-तेल का व्यवहार एकदम बन्द कर दिया जाय; क्योंकि उससे दीवाली का उद्देश्य नहीं सिद्ध होता। मीठे तेल की रोशनी मीठी और आँखों की जोत बढ़ानेवाली तो होती ही है, उससे आसमान में जो कण उड़ते है, वे हवा में समाई हुई बरसाती नमी को नष्ट करते हैं और खेत की उपज भी बढ़ाते हैं। दीवाली के दिन से पहले का पखवारा गाँव-गाँव में सफाई के सप्ताह के रूप में मनाया जा सकता है। एक सप्ताह में घरों की और उनके आस-पास की गलियों की सफाई हो। दूसरे सप्ताह में सारी बस्ती और उसके इर्दगिर्द की जगहों की सफाई की जाय। उस दिन गाँव के लोग एक जगह जमा होकर सभा करें और उसमें गाँव की आर्थिक दशा पर विचार करें और गाँव की आर्थिक उन्नति के उपाय भी सोचें। देश की लक्ष्मी को देश में ही स्थापित करके उनसे देश की भलाई के काम लेने की प्रतिज्ञा भी की जाय। इस अवसर पर भी व्याख्यान कराये जा सकते हैं, जिनमें गाँववालों को यह बतलाया जा सकेगा कि धन कैसे कमाया जा सकता है और उसका खर्च किस तरह करने से अपना और अपने देश का उपकार हो सकता है। धन कमाने और खर्च करने के तरीके जानने से गाँववालों का सुख बहुत बढ़ जायगा।

इसी तरह वसन्तपंचमी के दिन भी सरस्वती-पूजा की प्रथा गाँवों में जारी हो सकती है। उसीके साथ निरक्षरता-निवारण का आन्दोलन भी चल सकता है। गाँव के स्कूल और पुस्तकालय में सरस्वती-पूजा करके गाँव के बच्चों की पढ़ाई का श्रीगणेश किया जाय। अक्षरारम्भ के साथ ही गाना-बजाना सिखाने का काम भी शुरू किया जाय। जिसको विद्या पढ़ने का शौक हो, वह विद्या पढ़े और जिसको गाने-बजाने का हौसला हो, वह उसी दिन से सीखने लग जाय। नाटक खेलने का भी यह अच्छा अवसर होगा। नाटक भी ऐसे खेले जायँ, जिनसे गाँव के लोग विद्या पढ़ने-पढ़ाने का महत्त्व समझें और शिक्षाप्रचार के लिए यथाशक्ति दान देने को उत्साहित हों। देहाती गवैयों और कवियों का सम्मेलन

करके संगीत और ग्रामगीत और देहाती कविता पाठ का दंगल होना चाहिए। वसन्त और होली गानेवालों के अखाड़े जमाने का भी यही अच्छा मौका है।

श्रावणी, रामनवमी, जन्माष्टमी, शिवरात्रि, तिलसंक्रान्ति, सतुआसंक्रान्ति, गंगा-दशहरा, रथयात्रा, गोपाष्टमी, देवठन एकादशी, रंगभरी एकादशी, जगद्धात्री नवमी, छठ, विवाह-पंचमी, गनेशचौथ, भैयादूज, तीज, बहुरा, जिउतिया, ऋषिपंचमी, नागपंचमी, निर्जला एकादशी, शरत्पूर्णिमा आदि अनेक व्रत-पर्व हैं जिनके साथ हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति का बड़ा घना सम्बन्ध है। इन सब त्योहारों का असली तत्त्व गाँववालों को समझाने की जरूरत है। इन त्योहारों को ठीक तरह से मनाने के तरीके उन्हें बतलाये जायँ ताकि उनका शरीर नीरोग रहे, मन चंगा हो, विचार निर्मल बनें और आचरण के साथ-साथ हृदय पवित्र हो।

कहीं-कहीं गंगा-दशहरा को तैराकी का दंगल होता है और नागपंचमी को कुश्ती का। गाँवों में भी ऐसा हो सकता है। गोपाष्टमी की गौओं की पूजा हो, जगद्धात्री नवमी को आँवले के पेड़ के नीचे प्रीतिभोज और सहभोज हो, आसिन की पूनो (शरत्पूर्णिमा) की खुली चाँदनी में नाच-गान हो, रामनवमी के समय नवरात्र-पाठ और रामायण पाठ या रामधुन हो, जन्माष्टमी को अखंड हरिकीर्त्तन हो, शिवरात्रि को समाज की कुरीतियों पर छींटे छोड़नेवाले हास्य-कौतुक-भरे जलूस निकाले जायँ, भैयादूज को भाई-बहन में परस्पर नेह-छोह दरसाया जाय, छठ के दिन सूर्यनमस्कार के गुण और लाभ दरसाये जायँ, श्रावणी को पुरोहितों की परीक्षा का प्रबन्ध हो, क्योंकि गाँवों के पुरोहित बहुत ही अशुद्ध मंत्रों का भ्रष्ट उच्चारण करते हैं और हिन्दूशास्त्रों के कर्मकाण्ड का भी ज्ञान नहीं रखते। इस प्रकार सभी त्योहारों का रूप ऐसा सँवार-सुधार दिया जाय कि उनसे राष्ट्र का कल्याण हो, जनता का मंगल हो और देश में नई जान आ जाय। यहाँ के सभी त्योहारों में कला की सुन्दरता, जीवन का आनन्द, प्रीति-रीति की उमंग, नीरोग और दीर्घायु होने का भाव भरा हुआ है। गाँवों में इन त्योहारों के जीते-जागते रहने से हमारा राष्ट्रीय जीवन पुष्ट, मनोहर और शोभा-सम्पन्न होगा।

मुसलमान और ईसाई भाई जहाँ-कहीं गाँवों में रहते हों, वहाँ के हिन्दू उन लोगों के त्योहारों में भी खुशी से शामिल हों और अपने त्योहारों में उनलोगों को भी शरीक होने दें। खास तौर से होली और दशहरे में छुआछूत और भेदभाव मिटाने की चेष्टा बहुत-कुछ सफल हो सकती है। बहुत-से पर्व-त्योहारों में अन्न, वस्त्र, द्रव्य आदि दान देने की भी चाल है। गाँव के स्कूल, पुस्तकालय आदि संस्थाओं को त्योहारों में भी दान मिलना चाहिए। तभी बूँद-बूँद से तालाब भरेगा। दान करने या दान देने की भावना और श्रद्धा में भी पवित्रता आवेगी।

गाँवों में गांधीजी का रचनात्मक कार्यक्रम

महात्मा गांधी का रचनात्मक कार्यक्रम गाँवों में तभी ठीक तरह चालू हो सकता है, जब ऊँचे विचार के त्यागी और सहनशील कार्यकर्ता, शहरों का मोह छोड़कर, गाँवों में

ही आसन जमाकर बैठ जायँगे। जो कार्यकर्त्ता कभी कष्टों और कठिनाइयों की कुछ परवा नहीं करेंगे, वे ही गाँवों में टिक सकेंगे। उन्हें बात और लंगोट का धनी होना पड़ेगा। नम्रता और सरलता उनके खास लक्षण होंगे। ऐसे पक्के और सच्चे कार्यकर्ताओं के बिना गांधीजी का रचनात्मक कार्यक्रम गाँवों में सफल नहीं हो सकता। हाँ, उसमें से कुछ काम थोड़ी दूर तक सफल हो सकता है; मगर वह सफलता भी टिकाऊ न होगी; क्योंकि गांधीजी का कार्यक्रम एक प्रकार से सत्य, अहिंसा, प्रेम, त्याग, संयम, साधना आदि की बड़ी कसौटी है। इसलिए ग्रामसुधार में जब उस कार्यक्रम से काम लिया जायगा तब ग्राम-सेवकों की टोली तैयार करनी होगी। केवल कांग्रेसी या खद्दरधारी होने से ही कोई उस कार्यक्रम को गाँवों में नहीं चला लेगा।

गांधीजी के जो चौदह रचनात्मक काम हैं, उनमें से हर एक का पूरा-पूरा ब्योरा अलग-अलग छपवाकर गाँव-गाँव में बँटवाने की जरूरत है। सबको एक साथ छापकर भी बाँट सकते हैं। इससे उन कामों के चालू करने में मदद मिलेगी। लेकिन चालू वे तभी होंगे जब सरकार उन्हें चालू करने पर तुल जायगी। जबतक सरकार उतारू न होगी तबतक अखबारों और लेक्चरों में यह धूम मचाने से कुछ न होगा कि महात्माजी का सच्चा स्मारक उनके नाधे हुए कामों को पूरा करना ही है। ग्रामोद्धार, ग्राम-सुधार, ग्राम-संगठन आदि की चर्चा तो बरसों से होती आ रही है, मगर अभी तक गाँवों के लिए ठोस काम बहुत कम हुआ है। अब तो गाँववालों को खुद ही जागना चाहिए। दूसरों के भरोसे किसी की उन्नति कभी हुई भी नहीं है। बस, गाँववाले अपने पाँव पर खुद खड़े हो जायँ।

सब बातों का खुलासा मतलब

(१) गाँवों के बेढंगे, भद्दे, घिनौने और निरर्थक नाम पहले सुधारे जायँ। सरकारी दफ्तरों में भी नये नाम दर्ज कर लिये जायँ।

(२) गाँवों की सड़कें सुधारी जायँ ताकि स्कूलों के अफसर, देश के नेता, समाज के सुधारक और जागृति की लहर फैलानेवाले आन्दोलन वहाँ तक आसानी से पहुँच सकें और शहरों की दुनिया से गाँवों का नाता कायम हो सके।

(३) गाँवों में स्कूलों और पुस्तकालयों की संख्या बढ़ाई जाय जिससे शीघ्र ही शिक्षा का प्रचार बढ़े, लिख-पढ़कर लोग स्वतंत्र देश के नागरिक कहलाने योग्य हों और मनुष्य के अधिकार पहचानने लगें। स्त्री-शिक्षा के लिए महिला विद्यापीठ जगह-जगह खुलें और बालकों के लिए गुरुकुल भी।

(४) गाँवों की बस्ती नये ढंग से बसाई जाय। बस्ती की बनावट में कला की सुन्दरता हो। हवा और प्रकाश की भी सुविधा हो। मकान भी सफाई और तन्दुरुस्ती

के खयाल से बनवाये जायँ। खँड़हर, गड्ढे, टीले, झाड़-झंखाड़ आदि साफ करके फूल-फल के पौधे उगाये जायँ। बस्तियों को सुधारने के खयाल से गाँवों में ईंट, चूना, सीमेंट आदि चीजों के आसानी से मिलने की सुविधा दी जाय, क्योंकि कुँआ, स्नानघर, पाखाना, बथान आदि जगहों को पक्का बनाने से ही सफाई रह सकेगी। इसके लिए सरकारी सहायता की भी जरूरत हो सकती है, जो लगान-मालगुजारी के साथ किश्तबन्दी से वसूल होगी।

(५) गाँवों के कुँए पक्के बनवाये जायँ। लोगों के नहाने के लिए तालाब खुदवाये जायँ। खेतों की सिंचाई के लिए कुँए और आहर-पोखर अलग बनें। मवेशियों के लिए कुँए के साथ पक्का हौज रहना चाहिए। सिंचाई के लिए पाताली नल या बिजली-कल रहें तो और अच्छा। जहाँ नदी हो, वहाँ बाँध बनवाकर सिंचाई का प्रबन्ध किया जाय। जहाँ नहर से सिंचाई होती हो, वहाँ ठीक समय पर जरूरत के मुताबिक पानी मिलने की गारंटी होनी चाहिए। जहाँ नई नहर निकल सकती हो, वहाँ नहर निकाली जाय।

(६) खेतों की चकबन्दी करके खेती के नये औजारों का प्रचार कराया जाय, जिससे गाँवों की पैदावार बढ़े और किसान खुशहाल हों। खेतों के लगान या मालगुजारी में जहाँ जैसी जरूरत हो, वहाँ वैसी कमी-बेशी की जाय।

(७) पशुधन की रक्षा और वृद्धि के लिए गोचरभूमि और अच्छे साँड़ों का प्रबन्ध किया जाय। गोरक्षिणी और दुग्धशाला या दूध-भण्डार खोले जायँ, जहाँ शुद्ध मक्खन और घी तैयार हों। गोरक्षिणी में बूढ़े, लाचार और निकम्मे पशु आराम से रखे जायँ। मवेशियों के रहने की जगहें पक्की बनवाई जायँ और उनके गोबर-मूत की खाद तैयार कराई जाय। देशी खाद तैयार करने के तरीके गाँववालों को सहज ढंग से बतलाये जायँ।

(८) जंगलों की रक्षा के साथ-साथ बाग-बगीचे लगाने का प्रबन्ध हो। नये-नये पेड़ लगाने के लिए वर्षा-मंगल का उत्सव गाँव-गाँव में हर साल कराया जाय। सड़कों और रास्तों के किनारे चरागाहों और पाँतर-मैदानों में छायादार पेड़ लगानेवालों को इनाम-बख्शिश देने की चाल चलाई जाय। खाद के लिए गोबर को बचाने के खयाल से ईन्धन की लकड़ी देनेवाले पेड़-पौधे हर साल लगाये जायँ। फूल-पत्ती और साग-भाजी या हरियाली उगाने के लिए लोगों में शौक पैदा किया जाय।

(९) चर्खा-करघा गाँव-गाँव में चलवाने का प्रबन्ध हो। गृह शिल्प की उन्नति के लिए गाँव के गरीबों को रुपये और सामान की मदद किश्तबन्दी की शर्त्त पर दी जाय। घरेलू उद्योगधन्धों के लिए जहाँ जैसा सामान मिल सकता हो, वहाँ वैसी ही चीजें तैयार कराने का उपाय हो। तैयार हुए सामान की खपत का भी इन्तजाम हो।

(१०) गाँवों के बीच-बीच में बाजार लगाये जायँ। वहीं डाकखाना भी रहे। बाजार के दिन जब बहुत-से लोग इकट्ठे हों तब गाँवों की उन्नति पर व्याख्यान कराये जायँ।

बाजार की सफाई पर पूरा ध्यान रखा जाय। गन्दगी फैलानेवालों को कानून के जरिये सीधा किया जाय। बाजार के पास अस्पताल और औषधालय भी रहे। मवेशियों के अस्पताल गोरक्षिणी के साथ भी रह सकते हैं।

(११) गाँवों में बिजली और रेडियो का प्रबन्ध चाहे जब तक हो, मगर रोजाना अखबारों के पहुँचाने का प्रबन्ध शीघ्र होना चाहिए। जहाँ बस या लॉरी के लिए अच्छी सड़क न हो, वहाँ दौड़ाहा या हरकारा रखकर तबतक काम चलाया जाय। देश की उन्नति के लिए होनेवाले आन्दोलन या प्रचार-कार्य को आगे बढ़ाने के खयाल से गाँवों में अखबारों को जल्दी से-जल्दी पहुँचाना बहुत जरूरी है। इसके लिए खुद अखबारवाले भी अपनी ओर से खास इन्तजाम कर सकते हैं, जिससे उनकी भी खपत और आमदनी बढ़ जायगी।

(१२) गाँवों में स्वास्थ्य-रक्षा के विचार से ऐसे छपे हुए पर्चे समय-समय पर सरकार की ओर से बाँटे जायँ, जिनमें बहुत ही सरल भाषा और मोटे अक्षरों में तन्दुरुस्ती की हिफाजत करनेवाली बातें खुलासगी से समझाई गई हों। घर-घर में तुलसी का पौधा रखने की हिदायत दी जाय और दोनों जून गन्ध-धूप-गुग्गुल-लोबान आदि जलाने का नियम चालू किया जाय। रसोई-घर, नाली, कुँआ, पाखाना, बथान, गली आदि की सफाई कराते रहने के लिए ग्राम-पंचायतों और ग्राम-सुधार-सभाओं को जिम्मेदारी दी जाय। तालाब के घाटों की सफाई पर भी निगाह रखी जाय। गाँववालों को दाँतों और नखों की सफाई के फायदे सुझाये जायँ। उनकी गन्दी आदतों पर उनका ध्यान खींचना भी जरूरी होगा। स्त्रियों और बच्चों के नहाने और कपड़े कचारने के लिए पाताली नलवाले पक्के और पर्दा-पोश स्नान-घर बनवा दिये जायँ।

(१३) व्रत-पर्व-त्योहारों को राष्ट्रीय ढंग से मनाने के लिए गाँववाले उत्साहित किये जायँ। अपने देश के महापुरुषों की जयन्तियाँ और पुण्यतिथियाँ मनाने के लिए भी प्रेरणा दी जाय। जैसे बुद्ध-जयन्ती, महावीर-जयन्ती, गांधी-जयन्ती, मालवीय-जयन्ती, तुलसी-जयन्ती, हजरत मुहम्मद और महात्मा ईसा की पुण्यतिथि और इसी तरह की और-और तिथियाँ भी गाँवों में श्रद्धा और उत्साह के साथ मनाई जायँ, जिससे लोगों में महान् आदर्शों के भाव जागते रहें।

(१४) गाँवों के कारीगरों, गुणियों और कलावन्तों का संगठन करके उनकी रोजी का इन्तजाम किया जाय और उनके हुनर से देश को फायदा पहुँचाने की कोशिश हो। उनकी कला की कद्र करके गाँवों की शोभा-सम्पत्ति बढ़ाई जाय।

(१५) रेल की यात्रा करनेवाले ग्रामवासियों को टिकट कटाते समय कतार बाँधकर पारी-पारी से टिकट लेने का ढंग सिखाया जाय। रेलगाड़ी के डब्बे में या मुसाफिरखाने में या प्लैटफार्म पर गन्दगी न फैलाने के सुझाव दिये जायँ। भीड़ में शान्त रहने और सभ्य बनने के तरीके भी बतलाये जायँ।

(१६) अन्धविश्वासों से बचकर धर्म के असली रूप को परखने के लिए गाँववालों को प्रकाश देना होगा। इसके लिए रेडियो, अखबार, व्याख्यान, साहित्य-प्रचार आदि साधनों से काम लिया जाय। कानूनों का सहारा वहीं लिया जाय, जहाँ बहुत जरूरी हो। फजूलखर्चियों से उन्हें बचाने के लिए कानून की सहायता ली जा सकती है; क्योंकि तिलक-दहेज आदि बिना कानून की मदद लिये कभी बन्द न होंगे और इनको रोके बिना समाज में सुख-शान्ति नहीं टिक सकती। देश की भलाइयों के लिए कानून से काम लेना ही पड़ेगा।

दो घड़ी

[व्यंग्यविनोदपूर्ण मनोरञ्जक रचनाएँ]

मुरौवत महारानी की जय !!!

मुरौवत महारानी की महिमा अपार है। जिसके पीछे पड़ जाती हैं, उसे ले बीतती हैं। इनका मारा मिमियाता भी नहीं। लोग-लुगाई की आँखों में इनका रैन-बसेरा है। जिसपर सवारी कसती हैं, उसे खन्दक के ढालू रास्ते पर सरपट दौड़ाती हैं। इनके रंगमहल में जिसकी पैठ हो जाती है, उसे दुनिया दिन-दहाड़े लूट लेती है। और, इनके महल में जिसकी देवढ़ी बन्द हो जाती है, उसपर दुनिया बड़े-बड़े विशेषणों के बम-गोले बरसाती है—'हृदयहीन है, बेलौस है, रूखा है, नीरस नीबू है, मक्खीचूस है, शील-संकोच घोलकर पी गया है, आँखों का पानी ढल गया है, लिहाज को बासी मुहँ लील गया है, तोताचश्म है, सूरतहराम है, न कहते देर न उलटते देर, गिरगिट की तरह रंग बदलता है, सोनार का सपूत है, चाणक्य का चचा है' इत्यादि।

* * *

मुरौवत महारानी की माया का जादू जिसपर चल गया, उसका बचपन बिगड़ गया, जवानी जहन्नुम में गई, बुढ़ापा बरबाद हुआ। यह जादू की छड़ी अगर किसी भोलेभाले बालक पर फिर गई तो वह अभागा मनचली दुनिया के लिए अमिया की चटनी बन गया। अगर यह छड़ी किसी नौजवान पर फिर गई तो उसकी बहू बेचारी माँगभरी होकर भी रँड़ापा खेपेगी। अगर कोई अल्हड़ बालिका या अनाड़ी युवती शिकार हुई तो भँवर में नैया पड़ी, रेती में बजड़ा फँसा, मँझधार में बेड़ा डूबा, चाहे जो नतीजा सोच लीजिए; गृद्ध्रदृष्टि चाहिए।

* * *

यदि कोई व्यापारी या दूकानदार किसी कारण महारानी का उपासक बन गया तो वह सुबह-शाम शहद लगाकर लहना-बही चाटा करेगा। अगर किसी सम्पादक पर महारानी ढल गईं तो उसकी नीति बिल में घुस जायगी और उसका सिद्धांत मुँह लटकावेगा, दाँत निपोरेगा, नाक पर उँगली रखकर बात करेगा। अगर किसी लेखक को भी महारानी के लहँगे की हवा लग गई, तो प्रकाशक उसका रोम-रोम नोच लेंगे।

* * *

महारानी जिसकी आँखों में बस जाती हैं, वह 'अकल की अबला' की तरह 'सबकी भाभी' बन जाता है। राह-चलता भी एक बार चोंच डुबा लेता है। कोई आँख गड़ाये रहता है, कोई दाँत। चौतरफी छेड़खानियाँ होती हैं। क्षणभर भी चैन नहीं। थाली परसी हुई है, एक महापुरुष आ धमके, अब चला चरखा; घरनी कुढ़ती हैं, नौकर कुड़कुड़ाता है, अँतड़ी कुलकुलाती है, मगर महाशयजी गरियार बैल बने बैठे हैं। पैसे का अभाव है, हथफेर लेकर किसी तरह काम चलाया जाता है; मगर 'वसूल के बाप तकाजा' तिवारी तड़के ही टपक पड़े—'चन्दे की रकम चाहिए चचाजी—विधवाश्रम में एक दर्जन बच्चे पैदा हुए हैं, दूध का ठिकाना नहीं है!'—अच्छा तो लो भतीजे भोरे-भोरे आज भाँग-भूरा नहीं सही।'

* * *

महारानी जब समालोचक पर चढ़ाई करती हैं तब चट उसकी कलम पकड़ लेती हैं। अब बढ़ो आगे बच्चू, गर्व खर्व हुआ न? 'परोपदेशे पाण्डित्यं' कहाँ समा गया? मगर बड़ा अचम्भा है कि प्रकाशकों पर महारानी का दौरा नहीं होता! कभी धावा बोलती भी हैं तो फिसड्डी रह जाती हैं। वकील-मुख्तारों और डाक्टर-वैद्यों से महारानी झेंपती हैं—हमेशा आँखें चुराये चलती हैं, कहती हैं कि उन लोगों की दस्तदराजी से पनाह माँगती फिरती हूँ!

* * *

कॉलेज की छात्रियों पर महारानी की भूरि-भूरि कृपा रहती है। अगर कहीं किसी पर महारानी लट्टू हो गईं तो वह अनायास सफल-काम हो जाती है। सच मानिए, अगर आप ऊँचा ओहदा पाना चाहते हैं, तो अपनी श्रीमतीजी को महारानी के महल में पहुँचाइए।

मदनोत्सवा से महारानी की पटरी नहीं बैठती। अगर इनसे वह पटरी बैठा ले तो चण्टों को चूना कैसे लगावे? धनिकों के मुँड़े जाने का तमाशा दुनिया को कौन दिखावे? सबसे बढ़कर विचित्र बात तो यह है कि संसार के लोग दूसरों के ही साथ महारानी को देखकर आनन्द लूटते हैं, कोई भी इन्हें स्वयं अपनाना नहीं चाहता साथ लगाना पसन्द नहीं करता, सब-के-सब दूर से ही आँख सेंकना चाहते हैं। ये हैं भी इसी की पात्री! पहले उँगली पकड़वाकर पीछे पहुँचा तक पहुँचा देती हैं। धन्य हो महारानी! तुम्हारी जय हो!!!

—[साप्ताहिक 'समाज' (काशी), वैशाख, संवत् २०००]

मीठा-मीठा गप, कड़वा-कड़वा थू!

आजकल हमारे देश में हर जगह अन्न की महँगी फैली हुई है। घर-घर चूल्हा-चक्की की चर्चा है। भोजपुरी भाषा में एक बरसाती कहावत है—'चाउर-दाल हमरे पास, लकड़ी बिना पड़े उपास।' आज भी नोट और सिक्के पास हैं; पर ढूँढ़े अन्न नहीं मिलता। जो लोग अन्न-देवता को मिट्टी के भाँड़े में रखते थे और नोट-सिक्के लोहे की तिजोरी में, वे अब निबुआ-नोन लगाकर नोट चाटा करें।

* * *

जिधर देखिए, बस नोट की ही नौबत बज रही है। पहले सरस्वती का मूलधन था कागज, अब वह लक्ष्मी का मूलधन है। लोग सोना-चाँदी के नाम पर आँसू बहा रहे हैं और नोट बेचारा गल जाने के डर से उसे पोंछना नहीं चाहता। भला आँसू की बाढ़ में कागज की किश्ती कितने दिन चलेगी ?

* * *

सिक्के मुँह काला कर गये, रिजकारियाँ रूठ गईं—वे नोट को मुँहझौंसा समझती हैं, लाख गिड़गिड़ाने पर भी उसकी ओर नहीं चितौतीं। मोदी दूर से ही नोट देखकर 'छान-पघा' तुड़ाने लगता है। फलतः महाकवि 'भूषण' की यह पाँती अक्षरशः सत्य हो रही हैं—'तीन बेर खातीं सो तो तीन बेर खाती हैं।' नहीं-नहीं, 'बीन बेर खाती हैं।' और, कपड़े की महँगी पर भी 'भूषण' की फबती चुस्त बैठती है—'नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं।'

* * *

यह अभाव या अकाल किस कारण सबके सिर घहराया है ? भारतभूमि की उपज उतनी ही है, 'अधिक-से-अधिक अन्न उपजाओ' का आन्दोलन जारी है, फिर भी अन्न का ऐसा टोटा क्यों ? क्या सरकारी रोक-थाम से ऐसा हाहाकार मचा हुआ है ? नहीं-नहीं, गहरा गोता लगाइए, तह की मिट्टी लाइए, इसमें कुछ और ही रहस्य है। आज की यह बीहड़ समस्या हमारी अपनी ही करनी का फल है। गिन-गिनकर याद कीजिए—विवाह और श्राद्ध के भोज में, प्रभुजी की दावत में, गार्डन-पार्टी में चचा 'तेग अली' के 'राजा' की तरह घेवर को तलवों से मसलते थे न ? अब चिल्ल-पों क्यों ?

* * *

'बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्'—इस समय यह कोई न मानेगा कि ईश्वर का ही खूँटा पृथ्वी की छाती में गड़ रहा है। ईश्वर तो आजकल अन्न-वस्त्र से भी मँहगा और दुर्लभ हो गया है। कहीं वह दिखाई नहीं देता, यद्यपि उसकी तूती हर जगह बोल रही है। अमेरिका ने ईश्वर को फुटबाल बनाया, अब ईश्वर ही अमेरिका को फुटबाल बनाकर 'मैदान मार' रहा है। रूस भी ईश्वर को कचालू रसीला समझकर चट कर गया। मगर अब ईश्वर की पारी लौटी है या पासा फिरी है। सौ चोट सुनार को, एक ही चोट लुहार की ! योरप तो ईश्वर को दिलबहलाव का सामान ही समझता रहा। अब ईश्वर भी उससे अपना दिल बहला रहा है। बिसात बिछ गई है। गोटियाँ लाल हो रही हैं। 'जेतो निहारिए नेरे ह्वै नैननि तेती खरी निकरै-सी निकाई !'

* * *

वह दिन बहुत दूर नहीं है जब बड़े-बड़े भक्त भी बौखलाकर या झल्लाकर कह उठेंगे—'भूखे भजन न होइ गोपाला, ले लो अपनी कण्ठी-माला।' तो सच जानिए, वह ले ही लेगा कण्ठी-माला। हमारे कृतसंकल्प वायसराय की तरह वह भी इस्तीफा मंजूर करने में अपने ढंग का एक ही है। चाहे कोई कैसा भी भक्त हो, किसी से मुरौवत-मुलाहजा नहीं करता, किसी का अहसान लेना नहीं चाहता। ज्योंही आप कण्ठी-माला

सौंपेंगे, त्योंही वह बिदाई का बीड़ा थमा देगा। बस जाइए, हवा खाइए, हराम का अन्न बहुत खा चुके !

* * *

हराम माल खाने का ही तो यह नतीजा है। वेद-पुराण चिल्लाकर कह रहे हैं कि ईश्वर को अर्पित करके अन्न खाया करो; पर हम पेटू अन्धाधुन्ध भच्छे जा रहे हैं, भूले-भटके भी भोजन के समय भगवान को नहीं सुमिरते। भला क्यों सुमिरें ? हम प्रगतिशील हैं, हमारे पूर्वज पोंगापन्थी थे। उन लोगों का सिद्धान्त था 'अन्नं ब्रह्ममयं' और हमारा सिद्धान्त है—'खाओ, पियो, मौज करो।" तो अब कीजिए मौज हवाई-हमला-हिफाजत के हौज में, हर जगह तो बन गया है, लबालब भरा न भी हो तो, आपके लिए चुल्लू-भर काफी होगा।

* * *

घबराइए नहीं, अन्न-वस्त्र के बाद ही जल का भी नंबर आ रहा है। इस युग में सूर्यनारायण को अर्घ्य देना पाखण्ड ही है, हवन करना दकियानूस का ही धन्धा है। बस, तड़के उठकर सिगरेट सुलगाना ही तो प्रगतिशीलता है। अच्छा, अभी तो धुँए का धौरहर उठाइए आसमान में, जब मेघ लघुशंका भी न करेंगे तब देखिएगा दीर्घशंका का दिवाला ! आँत बेचारी दाँत का मुँह जोहती रह जायगी। तब याद आयगा गीता का वह भगवद्वचन—'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्नसम्भवः।' अभी तो सिर्फ सिनेमा-सितारों की सलोनी सूरत ही याद रहा करती है !

* * *

यह सिनेमा तो अन्न का बचा-खुचा सत भी चूस लेता है। रह-रहकर ऐसी-ऐसी पनडुब्बियों को परदे से बाहर निकालता है कि बड़े-बड़े साहसी मल्लाहों के धीरज का जहाज भी मँझधार ही अरराकर दो टूक फट जाता है। करें क्या अन्न-देवता ? वे तो अगर सजधज से भी सामने थाल में आते हैं तो सिनेमा-सुन्दरियों की सुधि उन्हें फीका बना देती है। हड़बड़ी में कभी सजीले थाल के साथ भी न्याय नहीं होने पाता। दो-चार लपक में जितना गले के नीचे उतरा उतना सुनहरी सुधि के सोते से बाहर निकल गया ! बेचारे अन्नदेवता के 'रिजर्व-बैंक' का दिवाला पिट रहा है; क्यों न वे उचटकर अपना डेरा-डंडा उखाड़ें ?

* * *

लेकिन अन्नदेवता का खेमा उखड़ने से पहले बहुतों का दम उखड़ जायगा। कितनों के तो पाँव अभी उखड़ चुके। जो मस्ती की तान छेड़ा करते थे, वे अब उखड़ी-उखड़ी बातें करने लग गये। बड़े-बड़े ढुण्ढिराजों की तोंदें पिचक गईं। अभी तो यह पहला ही उखाड़ है, इतने में ही नसें ढीली हो गईं ! 'आगे-आगे देखिए होता है क्या ?' जो लोग जनता को पेट की मार मारकर अन्न के अटाले पर अजगर बने बैठे हैं; देखिएगा, अन्त में उनके उखाड़े भी कुछ न उखड़ेगी।

मगर जनता को अपने किये का फल भोगना पड़ेगा। जब वह पूरा-पूरा भुगत लेगी, तभी उसकी सुनवाई वहाँ होगी। अभी तो उस दरबार में अन्न-देवता की सुनवाई हो रही है। अपने अपमान से कुपित होकर वे बड़ा करारा बयान दे रहे हैं। जगद्धात्री अन्नपूर्णा को उन्होंने अपना वकील बनाया है। विश्वम्भर बाबा विश्वनाथ का नन्दी आँखों-देखा गवाह है। मामला पेशी में है। फैसला फौरन कैसे होगा? अभी कुछ दिन राह ताकिए—तारे गिनिए। —[साप्ताहिक 'समाज' (काशी), बैशाख, संवत् २०००]

'प्रोपगंडा'-प्रभु का प्रताप

'प्रोपगंडा'-प्रभु का प्रताप परम प्रचण्ड है—'जिन्हके जस-प्रताप के आगे, ससि मलीन रवि सीतल लागे।' यदि आज 'भूषण' और 'पद्माकर' जीवित होते तो इनके यश और प्रताप का भड़कीला वर्णन कर सकते। मैं भला चूहे के चाम से दमामा कैसे मढ़ सकता हूँ? फिर भी आँख-कानवाला जन्तु हूँ, जिनके आँख-कान हैं उन्हें तो सुझा-बुझाकर प्रभुजी के प्रताप की बानगी दिखा ही दूँगा।

इनके प्रताप-सूर्य की किरणें सभी क्षेत्रों में प्रवेश कर गई हैं। राजनीतिक क्षेत्र में इनके जुए के नीचे कन्धा देने से कोई न बचा। साहित्यिक क्षेत्र में इन्हीं के प्रताप-प्रभाव से कुछ लोगों के चेहरे की लाली बनी हुई है। धार्मिक क्षेत्र में कितने ही लोग बाघम्बर ओढ़े दूसरों की हरी-भरी खेती चर रहे हैं। सामाजिक क्षेत्र में बहुतेरों की पाँचों उँगलियाँ घी में हैं—यद्यपि बाकी पाँच पर वे दिन गिन रहे हैं। व्यापारिक क्षेत्र में, इन्हीं प्रभुजी की छत्रच्छाया में, कुछ लोग जवानी की खैरात बाँट रहे हैं, नपुंसक को साँड़ बना रहे हैं, बाँझ की कोख आबाद कर रहे हैं, सन्तानों की बाढ़ रोकने का बीमा लेकर घुड़दौड़ का मुफ्त टिकट काट रहे हैं, 'ययाति' को यौवन-दान देते हैं और 'सम्पाति' के पंख उगाते हैं।

इन प्रभुजी का भक्त हुए बिना न कोई चाँदी काट सकता है, न मूँछ पर ताव दे सकता है, न हार में जीत का सपना देख सकता है, न किसी को उलटे छुरे से मूँड़ सकता है, न दुनिया की आँखों में धूल झोंक सकता है, न मिथ्या-महोदधि का मन्थन कर असत्य-रत्न निकाल सकता है, न जादू की छड़ी फेरकर गीदड़ को शेर बना सकता है, न छछूँदर के सिर में चमेली का तेल लगा सकता है, न सूखी रेत में नाव चला सकता है, न ढोल की पोल छिपा सकता है, न कोयले पर मोहर की छाप लगा सकता है; इस दुनिया में कुछ भी नहीं कर सकता।

जिसके मन में इनका प्रताप व्याप गया, उसका बेड़ा पार समझिए। वह चाहे तो पानी में आग लगा दे, हवा में महल बना दे, आकाश में कुसुम खिला दे, अमावस को पूर्णिमा करके दिखा दे, तिल का ताड़ और राई का पहाड़ कर दे, कौए को हंस की चाल चला दे, एक सेज के दम्पती को दो सेजों पर सुला दे, पतोहू से सास का झोंटा नुचवा दे,

भाई की पीठ में भाई की कटार भोंकवा दे, परदे की आड़ में रहकर रंगमंच पर खून-खराबा मचा दे, भीषण रेल-दुर्घटना में भी मौत को अँगूठा दिखा दे; चाहे जो कुछ कर दिखाना उसके बायें हाथ का खेल है; वह दुनिया को अँगुलियों पर नचा सकता है।

तुलसीदास ने लिखा है—'श्री रघुबीर-प्रताप ते सिन्धु तरे पाषान'—शायद उन्हें इन प्रभुजी के प्रताप का पता न था। इनके प्रताप से ही अग्निवर्षा पुष्पवृष्टि बन जाती है, मारतों के पीछे और भागतों के आगे रहनेवालों के सिर सेहरा बँध जाता है, दूध का धुला भी कालिख से पुता नजर आता है, लंकाकाण्ड में भी हिमालय की हिमवर्षा का दृश्य उपस्थित होता है, घनघोर महाभारत में भी केवल पाण्डवों का ही संहार होता है और कौरवों का बाल भी बाँका नहीं होता! धन्य है प्रोपगंडा-प्रभु का प्रबल प्रताप! ऐसा प्रताप तो रावण का भी न था! उसकी बहन की नाक उसके जीते-जी काटी गई; मगर इन प्रभुजी की बहन 'बेहयाई' तो सारी दुनिया में छाती ताने फिरती है, कोई आँखें तो बराबर कर ले! उसके देखते-ही-देखते उसका लंका-गढ़ एक वानर ने जला डाला, प्रभुजी का दुर्गम गढ़ 'सफेद झूठ' तो प्रलयाग्नि की लपटों को भी जुगनू की जोत बना देता है। प्रोपगंडा-प्रभु का पटतर पाना असम्भव है।

श्री हनुमानजी राम-प्रताप सुमिरकर कल्पनातीत कार्य कर डालते थे! प्रोपगंडा-प्रभु का प्रताप भी यदि आपकी सुमिरनी का ध्येय बन जाय तो आप भी बिना हर्रे-फिटकरी के अपना रंग चोखा बना सकते हैं। तब तो राजनीति-क्षेत्र में सदा आपकी पौ बारह है! आप मजे से खद्दर की खाल में स्वार्थ का भुस भर सकते हैं। फिर तो मंच पर दहाड़िए और लंच में 'ह्विस्की' की चुसकी लीजिए। लच्छेदार भाषा से वाग्जाल बुनकर बुद्धुओं को फँसाइए। वाक्प्रपंच का ही तो यह युग है। प्रभु-प्रताप से आपमें ऐसी वचन-चातुरी आ जायगी कि आप दुनिया को चकमा देकर काजल की कोठरी से भी बेदाग निकल जाइएगा। आपके प्रतापी प्रभु की बहन खुद ही दुनिया की नाक काट लेगी। आपके प्रभु के गढ़ में शत्रु-सेना की तो बात ही क्या, बड़े-बड़ों की बुद्धि भी न पैठ सकेगी। और, प्रभु-प्रताप का सुमिरन करते हुए कहीं आप साहित्यिक क्षेत्र में जा पड़े, तो फिर कीर्त्ति की कलँगी लगी हुई गद्दीधर की पगड़ी आपके सिर। लीजिए सुविधाएँ, भोगिए अधिकार। अयोग्यता आपके तहखाने में घूँघट काढ़े बैठी रहेगी और योग्यता केवल 'पाउडर' और 'लिपस्टिक' के बल पर हाट-बाट में मटकती फिरेगी। इसी तरह धार्मिक क्षेत्र में भी आप प्रभु-प्रताप से मन का घोड़ा सरपट दौड़ा सकते हैं, कहीं खन्दक-खाई न मिलेगी। अगर बाना आप ठीक बनाये रहें तो गोमुखी में चौमुखी कतरनी भी रख सकते हैं; एक ही मठ में आप विविध प्रकार के यज्ञकुण्ड रख सकते हैं। नीचे लंगरखाने का नगाड़ा, ऊपर इन्द्र का अखाड़ा! यदि सचमुच आप प्रभु-प्रताप का मन्त्र जपते रहे तो सारी दुनिया को आप अपनी टाँगों के नीचे से निकाल देंगे। ऐसा प्रखर प्रताप है प्रोपगंडा-प्रभु का!!

—[साप्ताहिक 'समाज' (काशी), वैशाख, संवत् २०००]

मेरी रामकहानी

मैं सैकड़ों रुपये मासिक कमाता हूँ। मजे का बँगला है। नई मोटर है। निहायत खूबसूरत बीवी है। रईसों में पैठ है। अफसरों में पूछ है। जनता में मान है। सरकार में साख है। समाज में धाक है। सब-कुछ है, मगर घर में डगरता हुआ अन्न का दाना नहीं है! अन्न बिना सब ठाट फीका है। कण्ट्रोल के भूडोल ने सारी इमारत की सूरत बिगाड़ दी है।

हर साल की तरह इस साल भी मोटर नई बदली गई है। घर में बिजली-बत्ती की जगमगाहट भी कुछ कम नहीं है। दरवाजों तक में झालरदार रेशमी पर्दे झूल रहे हैं। दरी-कालीन पर पलँग-कुर्सियाँ सजी हुई हैं। बैङ्क में जमा रुपयों की 'पास-बुक' सामने ही पड़ी है; किन्तु अन्न के लिए मोदी का ही आसरा है। रुपये की अमलदारी उठ गई, अन्न की दुहाई फिर गई। वैभव के सभी साधन विद्यमान हैं; पर 'लवन बिना बहु व्यंजन जैसे!' अन्न सबकी चोटी पर चरण चाँपे खड़ा ललकार रहा है। आज उसकी चुनौती स्वीकार करनेवाला कोई कहीं दीख नहीं पड़ता। रुपया दुम दबाकर सटक-सीताराम हुआ, अन्न की सत्ता स्थापित हो गई।

अभी वह समय पास ही पिछवाड़े झाँक रहा है जब मिर्जापुरी सुनहली दाल की गाढ़ी लुगदी को मखनिया घी से ढीला करके बसौंधी की तरह सुड़का करता था, और अब उसको याद कर-करके सिसका करता हूँ! जहाँ कुत्ते भी मसालेदार मुलायम माँस उड़ाया करते थे, वहाँ अब बच्चे बेचारे नीरस हड्डी चूसा करते हैं! चाँदी की वे कटोरियाँ सन्दूक में मुँह छिपाये पड़ी हैं, जो घी की तली रसीली तरकारियाँ लेकर थाली को वैसे ही घेर लेती थीं जैसे रानी को सहेलियाँ घेरे रहती हैं। अब सम्पत्ति में वह शक्ति नहीं कि अन्न को क्रीत-दास बना रखे। नोटों के गड्डु आँखें बिछाये हुए हैं; अन्न फूटी निगाहों से भी नहीं ताकता!

हिन्दू-शास्त्रकारों ने अतिथि को 'सर्वदेवमय' कहा है, पर इस समय यदि कोई अतिथि आ जाता है तो जान पड़ता है कि यमराज का दूत आ गया—कुर्की का वारण्ट आ गया—वसूल का बाप तकाजा आ गया। पर कहीं से प्रीति-भोज का निमंत्रण आ जाता है तो वैसी ही प्रसन्नता होती है जैसी नरम-दली नेता को परामर्श के लिए वायसराय की बुलाहट पर—चाटुकार-चूड़ामणिजी को नववर्ष की उपाधि-सूची में अपना नाम देखने पर। तारीफ यह कि अब कोई सपरिवार निमन्त्रित नहीं करता, अकेला ही बुलाता है, तब भी खिलाने में आग्रह नहीं करता! प्रायः भोजों में देखता हूँ कि जो बाबू साहब पहले रबड़ी में डूबा चम्मच चाटना अपमान समझते थे, वे ही अब अँगूठा तक चाट जाते हैं! जो महाशय अफरकर खा चुकने पर भी इस तर्क के साथ काफी जूठन छोड़ देते थे कि डोम अपना हिस्सा न पाकर सरापेगा, वे अब पत्तलचट बन गये हैं और डोम की धिक्कार-ध्वनि पर वैसे ही कान नहीं देते जैसे बालिका को ब्याहनेवाला मनचला बूढ़ा समाज के थू-थू पर ध्यान नहीं देता।

अबतक तो मुझे शहर में रहकर लिफाफा बनाने का ही नशा था, खेती-बारी को गँवारों और असभ्यों का धन्धा समझता था। गाँव में पक्का मकान बनानेवाले बाप को बेवकूफ समझता रहा। छुट्टियों में भी बपौती जमीन की सुधि नहीं लेता था। श्रीमतीजी को गाँव के खेतों पर एक कौड़ी भी खर्च करना पसन्द न था। वे ट्रंक में नोटों का पुलिन्दा देख-देखकर छाती जुड़ाती थीं। परिणाम यह हुआ कि घरेलू जायदाद मिट्टी में मिल गई। शहर में बाहरी लिफाफा बढ़ता चला गया। लेकिन आज लिफाफा खुल गया! अब भी शाम को लिफाफा बदलकर हाट-बाट में घूमता हूँ। लोग समझते हैं, नवाब का नाती है! मगर ईमान से पूछिए तो अब कंगाल का काका कहलाने योग्य भी न रह गया। बाहरी टीमटाम चाहे जो हो, भीतरी दशा तो 'गजभुक्त कपित्थ' की ही है। पेट में कदन्न है, चेहरा प्रसन्न है! मुखड़े पर हिमानी का लेप है, आँखों में अभावों की झेंप है। ओठों पर पान की लाली है, मगर पेट घी-दूध से खाली है। आँत में सत्तू, दाँत में कलाबत्तू!

सबसे अधिक चिन्ता श्रीमतीजी की ही है। उनके कठिन-कोमल अंग स्वर्णाभरणों से भूषित हैं, रेशमी साड़ियों से ट्रंक भरे पड़े हैं, इत्र-लवेण्डर की नफीस शीशियों से भरी घुमावदार आलमारी सदा सिरहाने ही रहती है, मगही पान और बनारसी जाफरानी पत्ती के साथ लखनऊ और कन्नौज का किमाम भी चलता है; मगर चूल्हे को अब बासमती से भेंट नहीं होती—चुपड़ी चपातियों के दर्शन नहीं होते—खीर-पूरी की सोंधी सुरभि से आमोदित होने का सौभाग्य नहीं होता। जहाँ घी में बाटी डुबोई जाती थी, वहाँ अब दाल में घी छोड़ते समय 'बिन्दु' की परिभाषा याद की जाती है! जहाँ दोनों जून दूधिया भाँग छनती थी, वहाँ चार-चार चम्मच अरारोट-शक्कर का घोल बच्चों को फुसलाता है! देवीजी को कुत्ते पालने का ही शौक था, गाय पालने को बड़ा भारी झंझट समझती थीं। झबरीले को गोद में लेकर सहलाती और पुचकारती थीं, गोबर बहुत गँधाता था! कहती थीं, खट-राग पालने से क्या लाभ, पैसे पास हैं तो ग्वाले से मनों दूध लेकर नहा सकती हूँ। इसी जोम में चार बच्चों की माँ होकर भी 'षोड़शी' बनी रहती थीं। मगर इधर दो साल में ही नवोढ़ा से प्रौढ़ा हो गईं! अब गाय की हाय मची हुई है। लेकिन अब तो वह दूध से भी कई दहाई महँगी हो गई। कहीं दो साल और बकलोल कंट्रोल रह गया, तो सच कहता हूँ, मेरी वह हरी आदी, जो हरी धनियाँ के मेल से स्वाद को आसमान चढ़ा देती थी, सूखकर सोंठ हो जायगी।

होली का होहल्ला हर तरफ है। देवीजी के दिल में भी हौसला है। चेहरे को पाउडर से परिष्कृत करके आईने के सामने जाती हैं। मगर वह रौनक कहाँ? पाउडर सिर्फ चमड़े को रँग सकता है, जवानी का रंग नहीं निखार सकता। अंगों की कान्ति दिव्य अन्न में है, बाहरी आडम्बर में नहीं। अन्नपूर्णा रुष्ट हों तो शृंगार के सैकड़ों प्रसाधन कभी आकर्षण नहीं उत्पन्न कर सकते। जब आगे की थाली में पीलीभीत और देहरादून का सौरभ हो तभी सेब की लाली छा सकती है, जो होली की उमंग चौगुनी बढ़ा सकती है। —[साप्ताहिक 'समाज' (काशी), फाल्गुन, संवत् २०००]

मैं हज्जाम हूँ !

मैं हज्जाम हूँ। अच्छी हजामत बनाता हूँ। जी लगाकर बना दूँ तो केश पखवारे तक न पनपें—रोएँ भी न अँकुरें। मगर जी लगता नहीं जबतक मेरे छुरे को 'छुप्पन-छुरा'—कोई छैल-छबीला—नहीं मिलता। मिल गया तो छुरा रसे-रसे चलने लगता है। अगर संयोग से कोई गण्डपाताली मिल गया तो छुरा छूटकर चल पड़ता है। इसलिए कपोलपाताली मेरे ढिग फटकते ही नहीं। मेरी उन्मादिनी उँगलियाँ जब गालों को गुद-गुदाने लगती हैं तब रसज्ञों को नींद आने लगती है।

नीतिशास्त्रानुसार शस्त्रधारी कभी विश्वसनीय नहीं होता; किन्तु मेरे शस्त्रसज्जित 'लोखर' को देखकर भी बड़े-बड़े राजा-रईस और सेठ-साहूकार बड़ी आस्था के साथ मेरे छुरे के आगे गर्दन झुका देते हैं। जो सारी दुनिया को उलटे छुरे से मूँड़ते हैं, उन्हें मैं सीधे छुरे से ही मूँड़ डालता हूँ—मनमाने पैसे भी गिना लेता हूँ और मन मनाकर ठाँठ भी मसल देता हूँ।

किसी सशस्त्र व्यक्ति के हाथ में कोई विश्वासपूर्वक अपना सिर नहीं सौंपता, पर मेरे 'विश्वसनीयमायुधं' के सामने सब-के-सब स्वतः आत्मसमर्पण कर देते हैं—मेरे स्पर्शसुखावह छुरे को अपना गला सौंपने में कोई कभी हिचकता नहीं, यहाँ तक कि मेरी इच्छा के विरुद्ध कोई रंचमात्र भी टस-से-मस नहीं होता।

जिस समय मनचाहा व्यक्ति मिल जाता है, उस समय मेरी नृत्यशीला अँगुलियाँ मन्थर गति से अपना लोच दिखाने लगती हैं। मेरी अंगुलि-अंगनाओं के अभिनय के लिए कमनीय कपोल ही रमणीय रंगमंच है। मेरी भाव-भंगिमाभरी कनक-शलाका-सी अँगुलियों के लिए चितचोर चिबुक ही 'सुचि रुचिर कसौटी' है।

किन्तु मैं कपोलानन्दी होकर भी सर्वथा निर्लिप्त और अनासक्त हूँ; इसलिए मैं प्रम-दाओं का प्रतिद्वन्द्वी नहीं कहला सकता। हाँ, 'ठग' और 'चोर' के बीच का 'ठाकुर' अवश्य हूँ, इसलिए 'ठसक' के साथ कह सकता हूँ कि 'ठाकुर' का 'भोग' कभी 'जूठा' नहीं कहलाता, 'प्रसाद' कहा जाता है। न भौंरा फूल को जूठा करता है, न चींटी चीनी को। यदि सोच-समझकर देखिए तो मैं ललनागण की सुखवृद्धि का साधक हूँ।

याद रहे, मैं 'हाथरस' का हज्जाम हूँ; मगर रहता हूँ 'बनारस' में। 'ब्रजबसिया' और 'बनरसिया' होने के कारण ही तो 'रसिया' हूँ। सचमुच मेरे हाथों में ही 'रस' है। टटका-टटका टे दूँ तो टकटकी बँध जाय और टटोल-टटोल टीप दूँ तो विरही की हराम नींद भी चुपके से चली आवे।

मैंने जैसे स्पृहणीय श्वास-सौरभों का रसास्वादन किया है वैसे तो बहुतों को नसीब न होंगे। जिन मानिनी मूँछों तक बड़े-बड़ों के हाथ नहीं पहुँच सकते उनको कुकुर-पूँछ बनाने के लिए मेरे हाथ बड़े कौशल के साथ सरसते-बिलसते हैं। हाँ जनाब, 'लोखर' लिये फिरने के कारण मुझे निरा 'लोफर' ही न समझिए।

नेत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और त्वगिन्द्रिय—तीनों का (त्रिविध) सुख मैं एक साथ ही लूटता हूँ; इसलिए मैं सौभाग्यशाली भी किसीसे कम नहीं हूँ। मेरी अनुभूतियाँ यदि किसी कवि के हाथ लग जायँ तो उसमें 'बिहारीलाल' की आत्मा चहक उठे।

'आदमी में नौआ, पंछी में कौआ'—इस प्रसिद्ध कहावत के अनुसार मेरी धूर्तता भी जग-जाहिर है। इसलिए वर्तमान युग में सर्वत्र ही मेरी जाति का बोलबाला है। सभी देशों और सभी क्षेत्रों में मेरी जाति के लोग पाये जाते हैं। भले ही वे जन्मना हज्जाम न हों; पर कर्मणा तो निश्चय ही हैं। मेरे छुरे से घुटी हुई दाढ़ी तो पनपती भी है, पर कर्मणा हज्जाम—क्षौरव्यवसायी (मुण्डन-मर्चेण्ट)—जिसकी हजामत बनाते हैं उसकी चाँद गंजी कर डालते हैं—एक-एक खूँटी उखाड़ लेते हैं। फिर उसके सफाचट चेहरे पर बाल उगते ही नहीं। मानव-जाति के भाग्य के हरे-भरे क्षेत्र को चर जानेवाले ये 'वैशाख-नन्दन' वस्तुतः 'दूर्वाकन्दनिकन्दन' हैं। इनकी चरी हुई खेती कभी फलती नहीं; इनके मूँड़े हुए सिर सदा के लिए 'लुण्ड-मुण्ड' बन जाते हैं।

आजकल हजामत का पेशा बहुतों ने अपना लिया है। आँखें खोलकर चारों ओर देख लीजिए। यदि कोई नई उमंग का नेता है तो निस्सन्देह नापित भी है; क्योंकि जनता की हजामत बनाना ही उसका बँधा रोजगार है। दुनिया की सरकारें प्रजा की हजामत बनाती हैं। निरंकुश लेखक भाषा की हजामत बनाता है। स्वयंभू कवि छन्दों की, डाक्टर मरीजों की, वकील मुवक्किलों की, टिकट-चेकर मुसाफिरों की, दूकानदार ग्राहकों की, पण्डा तीर्थयात्रियों की, समालोचक लेखकों की, सम्पादक पुरस्कार की, प्रकाशक पाठकों की और अनुवादक मूल भावों की हजामत बनाता है। कहाँ तक गिनाऊँ, सब तो हज्जाम-ही-हज्जाम हैं। तब भी, विज्ञापनदाताओं से बढ़कर होशियार हज्जाम नहीं नजर आता। इन लोगों ने कचहरी के अमलों के भी कान काट लिये हैं। हाँ, ऊँचे इजलास की कुर्सी तोड़नेवाले भी अब न्याय को खूब मूँड़ रहे हैं—निगोड़ी तोपें भी किलों की वैसी कपालक्रिया नहीं कर सकतीं। ये लोग अफगानों के हज्जाम हैं। स्वनामधन्य बाबू रामचन्द्र वर्मा ने अपनी 'अच्छी हिन्दी' पुस्तक में एक स्थल पर लिखा है कि अफगान लोग हज्जाम को 'सरतराश' कहते हैं और उनके यहाँ हज्जामों की दूकानों की तख्तियों पर 'हेड-कटर' लिखा रहता है!

बलिहारी है 'शेविंग स्टिक' और 'ब्लेड' के आविष्कर्ता की, जिसने सभी सुशिक्षितों को हज्जाम बना दिया है। इससे मेरी जाति की रोजी में खलल जरूर पड़ा है, लेकिन एक काम बड़े मजे का हुआ है—कामिनियाँ विशेष लाभान्वित हुई हैं—वे ही असीसती होंगी आविष्कर्ता को! मूँछ तो अब मर्दानगी की पूँछ मात्र है। इस युग में भला मूँछ की मर्यादा ही क्या है? जब थी तब थी। अठारहवीं सदी के आरम्भ में 'भरमी' कवि ने ठीक कहा था—

जिन मुच्छन धरि हाथ,
कछू जग सुजस न लीनो।
जिन मुच्छन धरि हाथ,
कछू पर-काज न कीनो।

जिन मुच्छन धरि हाथ,
दीन लखि दया न आनी।
जिन मुच्छन धरि हाथ,
कबौं पर-पीर न जानी।
अब मुच्छ नहीं वह पुच्छ सम,
कवि 'भरमी' उर आनिए।
जित दया दान सनमान नहिं,
मुच्छ न तेहि मुख जानिए।

—[साप्ताहिक 'समाज' (काशी), भाद्रपद, संवत् २००२]

मैं धोबी हूँ !

मैं धोबी हूँ, भगवान भी धोबी हैं। मैं कपड़े धोता हूँ, वे पाप धोते हैं। किन्तु वे पतितपावन कहलाते हैं, मैं सारे समाज की मलिनता का परिष्कार करके भी अछूत कहलाता हूँ ! फिर भी, उन्होंने ही मुझे अपने-आपसे भी अधिक पतितपावनता दी है। वे तो केवल उसी पतित या पापी का उद्धार करते हैं जो उनकी शरण में पहुँच जाता है; पर मैं तो स्वयं घर-घर पहुँचकर लोगों का पातित्य दूर करके पवित्रता वितरित करता हूँ। तोभी मैं अस्पृश्य क्यों हूँ ? इसका एक पौराणिक कारण है !

जब ब्रह्मा ने मुझे पहले-पहल पैदा किया, मैंने उनसे पूछा—'मैं कहाँ रहूँ, क्या करूँ ?' वे बोले—'तुम्हें इन्द्र के पास रहना होगा, उन्हीं के कपड़े धोने होंगे ; क्योंकि वे देवताओं के राजा हैं, सबसे बड़े शौकीन और विलासी हैं।' फिर क्या, मैं पहुँचा इन्द्र-लोक। वहाँ नन्दन-वन के कमल-कुमुद-मधुप-मराल-सेवित सरोवरों में कपड़े धोने लगा। उन धुले कपड़ों में हंसों की उज्ज्वलता और कमल-कुमुदों की सुरभि आ जाती थी। अन्नदाता प्रभु इन्द्र मेरे हाथ की सफाई से बड़े सन्तुष्ट हुए। उनके दरबार की अप्सराएँ भी मुझ पर ढलीं। अब मेरे घाट पर रंग-बिरंग कपड़ों का पहाड़ खड़ा हो गया। महाकवि 'बिहारीलाल' के शब्दों में 'मरगजे चीर' खूब मिलते थे। ऐसी-ऐसी महीन साड़ियाँ जो मुट्ठी में समा जाती थीं उन्हें निचोड़ने में जितना रसानुभव मैं करता था उतना तो गरीबों को चूसनेवाले नीबू-निचोड़ सूदखोर लहनदार भी न करते होंगे। मैं क्रमशः घोर वसन-व्यसनी बन गया।

एक दिन, संयोग की बात, ऐसी सनक सवार हुई कि मैं उर्वशी और रम्भा की साड़ियों और कुर्तियों को एकान्त में सूँघ रहा था। उनकी मानसोन्मादिनी सुरभि से मस्तिष्क ऐसा आमोदपूर्ण हो गया कि आँखों में मादकता की गहरी लाली उतर आई। बोतलवासिनी देवी की उपासना से भी किसी दिन वैसा उग्र उन्माद न हुआ था। मनोवेग के आवेश में या नशे की झोंक में, न जाने क्यों, मैं उन्हें बार-बार मुट्ठियों में कसकर दबाता और झकझोरता। इसी तरह उन्हें चूमते और सूँघते-सूँघते मैं साड़ियों के गट्टर पर ढेर हो गया।

शायद उसी समय नन्दन-वन-विहारिणी अप्सराओं का झुण्ड सरोवर-तट पर आ पहुँचा। मुझे बँधी मुट्ठियों में साड़ियाँ दबाये अचेत पड़ा देख वे मेरे मुँह पर जल के छींटे देने लगीं। उन शीतल सुरभित विमल जल की फुहारों से मेरी आँखें खुल पड़ीं। देखा तो सामने सौन्दर्य की देवियाँ खड़ी मुस्कुरा रही थीं। मैं थरथरा उठा। मुट्ठियाँ अनायास ही खुल पड़ीं; पर जबान न खुली। मञ्जुघोषा देवी ने पूछा—'तुम्हें हो क्या गया?' मैं त्रासवश बगलें झाँकने लगा। तबतक मेनका देवी बोल उठीं—'यह महाराज इन्द्र का अन्न खाता है, विलासिता के कीटाणु इसके रक्त में भी घुस गये हैं।' इसपर घृताची देवी ने सव्यसाची की तरह भ्रू-चाप चढ़ाकर कटाक्ष-बाण छोड़ते हुए कहा - 'यह हमलोगों के कपड़ों को अपवित्र मन से धोता और काम में लाता है, इसलिए इसको दण्ड देना चाहिए।' इतना सुनते ही उर्वशी और रम्भा, जिनकी साड़ियाँ और कुर्तियाँ मेरे हाथों से छूटकर मेरे आगे गिर पड़ी थीं, अपने तमतमाये हुए चेहरे के रोष से मेरे प्राणों को सुखाती हुई कहने लगीं—'जा, तू स्वर्गभ्रष्ट होकर मर्त्यलोक में अपने मन की मलिन वासनाएं पूरी कर। यह देवलोक है, यहाँ वासनाओं का गुपचुप खेल नहीं चलता, यहाँ तो लालसाओं की स्वच्छन्द लीला हुआ करती है। कपड़ों की मलिनता दूर करने की शक्ति तुझमें नहीं है। यह काम तो वरुणदेव (जल), पवनदेव और सूर्यदेव की किरणों के प्रताप से होता है। वे हमलोगों के वस्त्रों को दिव्य बनाते थे, तू अपनी वासना से उन्हें बसाता था। क्यों? ऐसी ढिठाई? एक दिन देवसभा में सुर-सम्राट् महाराज देवराज ने बहन सुकेशी को व्यंग्यपूर्वक कहा था कि तुम मत्स्यगन्धा कब से हो गई हो। आज ही उनके व्यंग्य का रहस्य खुला है। हमलोगों के कपड़ों की तह में छिपकर तेरी वासना महाराज तक पहुँच गई। तू कर्त्तव्यच्युत अपराधी है। विधाता ने तुझे पतितपावन बनाकर शुभ कर्म सौंपा, तू मनोविकार का शिकार हो गया। तेरी पूर्वकृत सेवाओं का स्मरण कर केवल इतना ही दण्ड दिया जाता है कि पृथ्वीतल के मानव-समाज में तू अस्पृश्य समझा जायगा; क्योंकि वासना तेरी नस-नस में बस गई है। किन्तु तेरे शुभ्र कर्म का जो गुण पवित्रीकरण है उसके प्रभाव से तेरा दर्शन यात्राकाल में सदा मंगलप्रद माना जायगा। देवलोक से तेरा निकाला जाना ही कल्याणकर है।'

मैं अपनी करनी का फल पा गया! गदहे पर चढ़ाकर सुरलोक से निकाल दिया गया। वही गदहा मेरी सनातन सवारी है! भगवान की तरह अब भले ही मैं पतितपावन नहीं रह गया; पर मेरी-उनकी श्रेणी एक ही है, इसमें कठहुज्जत न कीजिए। मेरी सवारी गर्दभ है—दूर्वाकन्द-निकन्दन वैशाखनन्दन! उनकी सवारी गरुड़ है—सर्पकुल-निकन्दन विनतानन्दन! 'ग'कार और 'र'कार का मेल दोनों सवारियों के नाम में है। गरुड़जी को गर्व है जगत्पिता की सवारी होने का और गर्दभ को गर्व है जगदम्बा की सवारी होने का। माता कपूत को भी अपनाती है। लक्ष्मी-वाहन को देख लीजिए। मुझे शीतलावाहन इसीलिए मिला है कि 'मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालङ्कृतमस्तकाम्' जगदम्बा भी सफाई के हथियारों (झाड़ू और सूप) से लैस हैं। मेरी सवारी के रासभ, गर्दभ, खर आदि नामों को सुनकर वे बहुत प्रसन्न होती हैं; क्योंकि वह सफाई के काम में एकाग्र मन से सहयोग

देता है—समाज का मल ढोकर तीर्थतट तक पहुँचा देता है और वहाँ से स्वच्छता का प्रसाद लाकर वितरण करता है। इसी गुण पर मोहित होकर असुर-सम्राट् रावण-जैसे विद्वान् वीर ने उसको अपने मस्तक पर स्थान दिया था! 'रावण' और 'रासभ' की मात्राएँ पिंगलानुसार बराबर ही हैं! तुलसीदासजी ने इसपर मुहर लगा दी है—'पुरोडास चह रासभ खावा।' इसके सिवा भी कई विशेषताएँ उसमें हैं। तत्सम 'गर्दभ' का तद्भव रूप 'गदहा' भी संस्कृत का एक तत्सम ही शब्द है। आरोग्यदाता अश्विनीकुमार से पूछिए न। ऐसे विलक्षण शब्द कम ही होंगे जिनका 'तद्भव' भी 'तत्सम' का मजा देता हो।

मेरी धोबिन तो बस हरी धनिया है—'यस्याः पाणिसरोज-सङ्गमवशात् वासो मलं मुञ्चति।' भगवान् की धोबिन गंगा हैं—'यस्यास्तीरतरङ्गसङ्गमवशात् पापी मलं मुञ्चति।' मेरा और भगवान् का पुराना नाता है। रामावतार में जब लङ्का-विजय करके लौटे, रजक-रजकी का प्रणय-कलह सुनकर सीताजी को वनवासिनी किया। कृष्णावतार में पहले-पहल ननिहाल (मथुरा) आये तो मेरे ही कपड़ों में सजकर मामा (कंस) के पास गये। भगवान् ने मुझे अपना समकक्ष समझकर ही ऐसी तीव्र स्मृतिशक्ति दी है कि हजारों कपड़ों के लेन-देन में कभी भूल नहीं होती। हाँ, जब कभी कोई 'धोबी का छैला' मुझे मधुशाला की गली दिखा देता है, तब जान-बूझकर चूक हो जाती है।

फिर मेरी सामाजिक महिमा भी कुछ कम नहीं है। रानी और सेठानी की साड़ी और कञ्चुकी का दरस-परस या तो राजा या सेठ को नसीब होता है या मुझे ही। कवि तो केवल मनमोदक खाते हैं, यहाँ सुन्दरी-से-सुन्दरी युवतियों की रंग-बिरंग साड़ियों और कुर्तियों से नित्य मेरा घर गमगमाया करता है। उन्हें केवल कचारता ही नहीं हूँ—बिछाता भी हूँ, पहनता भी हूँ; क्योंकि मुझे शापभ्रष्ट की चिरसंगिनी वासना-सखी यही कलि-कौतुक पसन्द करती हैं। उस समय मैं तो रजक ही रहता हूँ, पर मेरी रजकी तो 'रञ्जक' (बारूद) बन जाती है। बस, मैं भी अपनी 'हरी धनिया' के लिए 'हरा पुदीना' बन जाता हूँ।

—[साप्ताहिक 'समाज' (काशी), कार्त्तिक, संवत् २०००]

मैं रानी हूँ!

दुनिया समझती है, मैं रानी हूँ। लोग कल्पना करते हैं—मैं सजीले महल में रहती हूँ, केसर-कस्तूरी का उबटन लगाती हूँ, गुलाब-केवड़े से नहाती हूँ, कीमती रेशमी कपड़े पहनती हूँ, इत्र-फुलेल से गमगमाती रहती हूँ, गंगा-जमुनी थाल में छप्पन प्रकार जीमती हूँ, हीरे-मोती के सुनहले गहनों से सजी रहती हूँ, मखमली फर्श पर चलती हूँ, बिजली के झूले पर झूलती हूँ, बाँदियों और सहेलियों से घिरी रहती हूँ, संगीत और मनोरञ्जन के साधनों से मन बहलाती हूँ, और भी न जाने क्या-क्या स्वर्गीय आनन्द भोगती हूँ! मगर, दुनिया के लोगों को यह पता नहीं कि ये सारे सुख-साधन सुलभ होने पर भी मैं 'रानी' का

सुख नाम को भी नहीं पाती। कारण, मैं अपने 'राजा' की 'रानी' नहीं, अपने महल की रानी भले ही होऊँ, जहाँ मेरी हुक्मरानी चलती तो है, पर यह महल भी वासनाओं का बन्दीगृह ही है। 'अपने राजा की रानी' महल में नहीं, हृदय के अन्तरतम प्रदेश में रहती है।

मैं किसे अपना 'राजा' कहूँ ? जो मेरे प्रारब्ध-लब्ध राजा हैं, वे बहुतेरियों के 'राजा' हैं। मधुपवृत्ति 'राजा' किसी 'रानी' का 'राजा' नहीं हो सकता।

मेरे महल में रमणीय उद्यान है, कमलवन विलसित पुष्करिणी है, भौंरे गूँजते हैं, जलपक्षी किलोल करते हैं, कोयल कूकती है, चाँदनी छिटकती है, तितलियाँ थिरकती हैं, कपोत-कपोती की प्रणयलीला होती है, और इन्हीं ज्वालाओं से घिरे कारागार में मेरी अग्नि-परीक्षा हुआ करती है !

रानी होने से पहले और रानी होने के बाद मुझे बहुत-सी रानियों से मिलने का मौका मिला है। मेरे नाते-रिश्ते में भी कई रानियाँ हैं, जिनसे जब कभी भेंट या बातें करने का सुयोग नसीब हुआ है, अधिकांश ने यही दुखड़ा रोया कि वे राजेश्वरी तो हैं, पर हृदयेश्वरी नहीं हैं ! अतः मुझे इतना ही सन्तोष है कि इस विषम परिस्थिति में अकेली मैं ही नहीं हूँ। दिव्य भोजन, उत्तम वस्त्र, अमूल्य भूषण, मनोहर सौरभ, सरस संगीत, वैभव की राशि, सब मेरे लिए 'निर्गन्धा इव किंशुकाः' हैं। राजा साहब छठे-छमासे कृपा भी करते हैं तो उचटे चित्त से। उन्मन-से आते हैं और छलिया-से जाते हैं। उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में सिर्फ रस्म पूरी करने की प्रवृत्ति रहती है। यदि वे कभी न आते, तो मैं कभी व्यथित न होती, लम्बी साँसें खींच भीतर ही घुटकर रह जाया करती। वे केवल मेरी सोई हुई पीड़ा को जगाकर छेड़ने ही आते हैं, भरते हुए घाव में नख लगाकर उसे हरा कर जाते हैं। मैं मन-ही-मन कहा करती हूँ—'तुम नीके रहौ उनहीके रहौ'; पर वे पुरुष हैं, जो दोहरे स्वाँग दिखाने में बड़े निपुण होते हैं। पुरुष तो बदरीफल के समान बाहर से लुभावना और भीतर से कठोर है। नारी नारिकेल फल के समान ऊपर से कठोर दीखती हुई भी अन्दर से निर्मलोज्ज्वल और सरस-शीतल है। सुना है कि बेर की तरह नारियाँ भी होती हैं; पर ऐसियों को भुगतना भी पड़ता है। पुरुष को भुगतना नहीं पड़ता, पति के बदले पत्नी ही भुगतती है। इसका एक निदर्शन तो मैं ही हूँ।

'नारी' की सार्थकता 'रानी' होने में ही है; क्योंकि दोनों शब्दों में केवल अक्षरों और मात्राओं का ही हेरफेर है। किन्तु मुझ-जैसी रानी होना तो नारी के लिए घोर अभिशाप है। सच्ची 'रानी' तो वही सुहागिन है जो अपने प्राणवल्लभ के अर्द्धोन्मीलित नयनों में प्रेमाकुल भावों का तरल रस छलछलाते देखती और स्निग्ध-स्फीत अधर-पल्लवों के अन्तराल से मृदु-मन्द-मधुर स्वर में 'रानी' का उच्चारण सुनती है। 'रानी' और 'राजा' शब्दों की शोभा और सार्थकता तभी है जब वे उभय-दिशि के उच्छ्वसित अधर-पुट से निकलकर शुचि-सुरभित साँसों के हिंडोले पर झूलने लगें। महलों में पैठकर ये शब्द निरर्थक और नीरस हो गये हैं ! कद्दू की लहलही बेल से ढकी झोपड़ियों और खपरैलों

में इन शब्दों की सजीवता और सफलता महलों से कहीं अधिक होगी। कहने भर को महलों में इनकी पैठ है; पर वहाँ के हृदयों में इनकी पैठ कहाँ ? वहाँ तो इनका कंकाल-मात्र है।

मेरे लिए मेरी बाँदियाँ और सहेलियाँ सान्त्वना की पुतलियाँ हैं। उन्हें देख मैं अपना दुःख भूल जाती हूँ। वासनाओं की धधकती ज्वालाओं से घिरी हुई उन बेचारी हरिणियों के करुण-कातर नेत्र मेरे क्षण-भर के सौभाग्य में भी हृदय का योग नहीं होने देते। वे अभागी ऐसे लक्ष्मीकुण्ड की मछलियाँ हैं जिसमें चारा चुगानेवाला बनसी की घात लगाये बैठा रहता है। सचमुच यदि मैं हृदयहीन होती तो इस महल में चिर-वसन्त का बसेरा होता। हृदय एक ऐसी सम्पत्ति है जिसके लिए बड़ा भारी 'टैक्स' चुकाना पड़ता है। इस जमींदारी को वही रख सकता है जो विना वसूली के भी काफी मालगुजारी चुका सकता हो। मेरे राजाजी अपनी रियासत का भी उतना 'कर' नहीं चुकाते जितना मैं अपने हृदय का चुका रही हूँ !

—[**साप्ताहिक 'समाज' (काशी), कार्त्तिक, संवत् २००१**]

मैं अंधी हूँ !

मैं सचमुच अंधी हूँ, किन्तु यदि जन्म की ही अंधी होती तो इतना परिताप या पश्चात्ताप नहीं होता। हाँ, होता भी तो बहुत थोड़ा, सो भी थोड़ी ही देर के लिए ; क्योंकि उस दशा में ऐसा आश्वासन और संतोष रहता कि मेरे लिए यह संसार महान अंधकूप ही है तो क्या करूँ। न मेरे लिए सूरज उगता है, न चाँद खिलता है ; न मेरे लिए वसन्त आता है, न बरसात आती है। जेठ की कड़ाचूर दुपहरी भी मेरे लिए भादो की अँधेरी आधी रात के समान है। यदि जन्मान्ध होती तो चर्म-चक्षुओं में चकाचौंध डालनेवाला यह चंचला-चपल जगत् का चाकचिक्य मेरे हृदय की मृदुल-मंजुल कामनाओं को मुग्ध नहीं करने पाता। किन्तु नहीं, भगवान ने तो मुझे कोकिल-कुल-कूजित सुगंध-पुष्प-पूजित वसंत-वैभव की, सावन भादों के उमड़-घुमड़ कर घहरानेवाले मेघ के अंक में बिजली की, नववर्षा के वारि-बिन्दुओं की मुक्तावली से शोभित सुनील गगन में विविध रंगों से रंजित इन्द्र-धनुष की और मंजरी-मंडित रसाल-कुञ्ज के पासवाली विमल सलिला सरसी के सुनील स्वच्छ वक्षःस्थल पर विकच-कमल-माला की सरस शोभा का चारु चित्र दिखलाकर, प्राणपोषक हृदयेश्वर के मंदस्मित-विकसित मुख-मंडल के दिव्य सौन्दर्य के दर्शन से इन्हें सफल (सजल !) कर लेने के बाद, सदा के लिए अंधी बना दिया। हा ! न जाने किस पूर्व-जन्म-कृत पाप का यह कुफल हुआ है ! न जाने किस भयंकर अपराध का ऐसा हृदय-दाहक प्रायश्चित्त है !

भगवन् ! क्या अपने सुमन-सुकुमार स्वामी की ओर मैं प्रेमवश सरल-तरल कटाक्षपात करती थी, वह तुम्हें असह्य हो उठता था ? क्या अपने प्राणधन के मनःप्राणहारी दर्शन में अनुरक्त होकर मैं तुम्हारी प्राण-वल्लभा प्रकृति की छबीली छटा जो नहीं देखती थी

उसी का यह कठिन-कठोर दंड है ? क्या मेरे प्राणेश्वर के शुभागमन की सूचना देने के लिए जब ये अंजन-रंजित खञ्जन पंख फड़फड़ाने लगते थे तब उत्तरा-नक्षत्र के शुभागमन की सूचना देनेवाले इन प्रकृति-दुलारे खंजरीटों ने जो मेरे विरुद्ध तुम्हारे पास अभियोग उपस्थित किया था उसी का यह न्यायपूर्ण निराकरण है ? क्या तुम्हारे साँवले-सलोने शरीर की शोभा का वर्णनाधार बननेवाले इन्दीवर का मानमर्दन कर देने से ये मेरे नेत्र इस दंड के भागी बने हैं ? क्या तुमने अपने कर-कमल-विराजित पद्म की शोभा को मलिन होते देख मेरी मुखाम्बुजश्री छीनकर उसकी कांति और बढ़ाई है ? क्या तुमने इस डर से कि कदाचित् प्रफुल्ल कमल पर खंजनयुगल की चपल क्रीड़ा देखकर कोई बिना मेरे दिये ही चक्रवर्त्तित्व न पा जाय, मेरे शरीर ही क्यों, मेरे जीवन के ये दोनों रत्न लूट लिये हैं ?

हा ! हन्त !! मेरे जीवनसर्वस्व जब मुझे गले लगाते हैं तब बार-बार बिलख-बिलखकर अब यही कह उठते हैं—"मेरी इस कंचन की कल्पलतिका से मणि के दोनों फूलों को किस निर्दय ने तोड़ लिया ? मेरे मानस सरोवर में खिले रहनेवाले कमल के रसिया भ्रमर-युगल को कौन उड़ा ले गया ? मेरे कोमल कलेजे पर चुभनेवाले चोखे तीरों को निकालकर—बिना मरहम-पट्टी किये ही—कौन निठुर ले गया ? किस निगोड़े ने इन लाड़ले मृगशावकों का वध कर दिया ? रसकुण्ड की इन मछलियों को किसने महाजाल में फँसाया ? इस सुषमा-सागर को किसने रत्न-विहीन किया ? मुक्ता-कोष का संचय करनेवाले इन कमलों को तोड़कर किसने मुझ हंस का सर्वस्व-हरण कर लिया ?" उनकी ये कल्पनापूर्ण जल्पनाएँ, यह हृदय-विदारक विलाप-कलाप, ये मर्मतलस्पर्शिनी उक्तियाँ सुन-सुनकर मैं मन-ही-मन रोती-कलपती हूँ—किस्मत पर कुढ़ती हूँ, सर्वार्थशून्य जीवन पर झखती हूँ ।

सुनती हूँ कि अकबर बादशाह ने एक बार बीरबल से बेसिर-पैर का सवाल पूछा था कि समुद्र में कितने रत्न हैं, तो उन्होंने झटपट बिना सोचे-विचारे उत्तर दे दिया था कि देहधारियों के जितने नेत्र हैं उतने ही रत्न समुद्र में हैं । यह उत्तर सचमुच समीचीन था । भवसागर के तट पर शरीरियों की आँखें अमूल्य रत्न के तुल्य हैं । किन्तु मेरा जीवन वास्तव में रत्न-शून्य रत्नाकर सा हो गया । यह जबरदस्त तूफानों से घिरा हुआ है । ज्वार-भाटा चारों ओर हाहाकार करके उथल-पुथल मचा रहा है । बेचारी आत्मा निराधार डूब रही है । कहीं कोई आधार नहीं । हर तरफ गाढ़ी अँधियारी, दसों दिशाओं में शून्यता छा रही है ।

हाय ! वर्षा-वारि-विलोड़ित कलकल-निनादिनी तरंगिणी का स्वर जब कानों के पर्दे पर आकर टकराता है, तब जी चाहता है कि जैसे कौरव-सभा में विराट-रूप के दिव्य दर्शन के लिए धृतराष्ट्र की आँखें एकाएक खुल गई थीं, वैसे ही भगवान मुझपर भी विशेष दया करके मेरी खोई हुई दुर्लभ संपत्ति बहुरा देते, तो मन मनाकर इस नव-तरंग-प्रमथिता उत्कंठिता नदी की उन उमंग-भरी तरंगों को देख लेती, जो अठखेलियाँ करती हुई अपने प्राणेश्वर समुद्र के अंक में शान्तिलाभ करने के लिए उत्सुकतापूर्वक आगे बढ़ी चली जाती हैं । मुझ हतभागी को इसका क्या पता था कि ये प्राकृतिक शोभा के लोचनोन्मेषी चित्र, नाटक के पर्दे के समान, देखते-देखते मेरी आँखों से अनत हो जायँगे । मैं जानती

भी न थी कि मेरे जीवन-भर का प्रकाश अनंत अंधकार के अतल गर्भ में तिरोहित होनेवाला है। कभी ऐसी कल्पना भी न जाग उठी थी कि पति-पद-पद्म के दर्शनों का विच्छेद करने के लिए मुझपर सुदर्शन चलाया जायगा। कभी स्वप्न में भी यह नहीं भासता था कि मेरी लालसाएँ अँधेरी कोठरी में बंद करके तड़पाई जायँगी!

भगवन्! यदि इस अबला के आग्रह पर अनुग्रह कर देते, यह एक बार भी यदि आँखें पा जाती, तो इन लगन-भरी लालसाओं की साध मिट जाती। मुझे इस बात की बड़ी चाट लग रही है कि एक बार भी मैं अपने 'आँखों के तारे' के पास यह लिख भेजूँ कि...... 'आवहु या मगु होय, कमल-पाँवड़े ये किये अति कोमल पग जोय।' और नहीं तो कम-से-कम काग से भी इतना कह सकूँ कि ...'पहले दरस कराय कै, पीछै लीजो खाय।' हाय! जी तो यही चाहता है कि इन उद्विग्न मनोवृत्तियों को, उत्कट आकांक्षाओं को, अनवरत अभिलाषाओं को यदि कहीं पकड़ पाती तो उन्हें अपने कलेजे की तरह मसल-मसलकर दर्द निकालती। हे जगन्नाटकसूत्रधर! भला मेरी इन 'श्वेत-श्याम-रतनार' साड़ी पहननेवाली पुतलियों को कहाँ ले जाकर नचाओगे? क्या एक बार भी इन्हें प्राणेश्वर के आगे अब थिरकने न दोगे? अहा! आज तक उन दिनों की स्मृति हृदय में हाहाकार मचा रही है जिन दिनों मैं प्राणनाथ की आज्ञा का पालन करने के लिए इधर से उधर आ-जाकर भूषणों की झंकार से अंग-प्रत्यंग को सजीव कर देती थी। अब वे ही अलंकार हैं जिन्हें दर्पण के दर्शन तक दुर्लभ हो गये। 'आरसी' शब्द तक अब मेरे लिए 'नीरस' हो गया। अब वे ही भूषण हैं जो मेरी सासत देखकर मौन हो गये। अब कौन उन्हें कहाँ सजावे? जो हाथ फूले-फूले सुन्दर फूलों को बड़े चाव से चुन-चुनकर माला गूँथते और जीवन-धन को पहनाते थे, सुस्वादु भोजन बनाकर प्राणवल्लभ के आगे थालों में यथास्थान रुचिकर पदार्थ सजाते थे, रच-रचकर सरस बीड़े बनाते और आप ही उस हास्य-रंजित मुख में खिलाते थे, हा दैव! वे तो ये ही हैं; किन्तु अब सुन्दर पुष्पों की पहचान कौन करे! माला कौन गूँथे! सुधा-स्निग्ध भोजन कौन प्रस्तुत करे? प्रेम के बीड़े कौन चभावे? हा हन्त! केवल दो लालों के लुट जाने से ही सारे मनोरथ छूछे पड़ गये। अब तो सुरमे की सलाई भी स्नेह-स्निग्ध हृदय में दियासलाई लगा रही है!

भला अब यह दुखड़े का पचड़ा कहाँ तक सुनाऊँगी! मेरा दुःख दैवदुर्विपाक से द्रौपदी का चीर हो गया; किन्तु अब केवल इसी बात से अपने चित्त को सांत्वना देती हूँ कि भगवान ने बाहर के कपाट बंद कर दिये तो कृपा करके भीतर के कपाट खोल दिये। जिसे भीतर ले चुकी हूँ उसे अब बाहर नहीं कर सकती। हाँ, अब बाहर से किसी का अंदर आना भी असंभव है। जो भीतर राज्य करने चला जा चुका है, बस वही अकंटक राज्य करेगा; केवल उसी एक का एकाधिपत्य चिरस्थायी रहेगा। अब एकांत भाव से उसी एक के ध्यान में मग्न रहूँगी। न तो अब दूसरे सौन्दर्य का जादू मुझे छलेगा, न इस जीवन-वृक्ष में अब दूसरा फल फलेगा, न दुनिया का दुराचार दिल में खलेगा और न तो अब अनाथा अबलाओं पर

अन्याय देखकर जी जलेगा। अब मेरे लिए न कोई बाँकी-झाँकी होगी और न ब्रह्मा की इससे कोई टेढ़ी टाँकी होगी।

संतोष इस बात का है कि आज तक ये मेरी आँखें कभी ईर्ष्या की चिनगारियों में नहीं जली थीं। इनका कोई अंग कभी किसी प्रकार कलुषित नहीं होने पाया था। ये सदा करुणा और पवित्र प्रेम की धवल धारा में अवगाहन किया करती थीं। इनका जीवन जब तक रहा तब तक रहा निष्कलंक, निर्मल, निष्काम और निर्लेप।

भगवन्! यदि फिर कभी मुझे इस मायामय संतापपूर्ण संसार के बीहड़ पथ की सुपथिका बनना पड़े, तो कृपया 'मणि-कांचन-संयोग' में वियोग का विष न डालना; मानव-जीवन के इन अमूल्य रत्नों से वंचित न करना। किन्तु, यदि मुझे नेत्र प्रदान करना तो उन्हें लज्जा की लालिमा से, करुणा की कालिमा से और शांति की शुक्लिमा से रंजित कर देना। उनमें विषाक्त बाणों की-सी जलन मत भरना, उनकी प्यास बुझाने के लिए स्फटिक-स्वच्छ शीतल जल देना। और, जिसके शुभ दर्शनों के हेतु इस जन्म में ये आँखें तरसती और तलफती रही हैं उसी के दर्शनों से जन्मांतर में भी इन्हें तृप्त और कृतकृत्य करना।

—मासिक 'आर्यमहिला' (काशी); विक्रम-संवत् १९७९

श्री मिश्रबन्धुओं का विनोद-वैचित्र्य

माननीय मिश्र-बन्धुओं की साहित्य-सेवा से सभी लोग सुपरिचित हैं। उनका 'मिश्रबन्धुविनोद' चार भागों में प्रकाशित बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। वास्तव में वह विनोद का भण्डार ही है। आदरणीय मिश्रबन्धुओं ने सचमुच विनोद के लिए ही वह ग्रन्थ लिखा है? आइए, कुछ साहित्यिक विनोदों का रसास्वादन किया जाय।

पहले तो भाषा के सम्बन्ध में उनके सिद्धान्त बड़े विनोदपूर्ण हैं। वे लिखते हैं—"यदि हिन्दी पर व्याकरण का बल बढ़ा तो यह मातृभाषा न रहकर मृत भाषाओं में चली जायगी।" फिर कहते हैं—"विभक्ति, प्रत्यय, लिङ्गभेद आदि पर भी हम स्वच्छन्दता के पक्षी हैं।" इस 'पक्षी' शब्द के समान अन्य अनेक शब्द भी उनकी स्वच्छन्दता के सूचक हैं। जैसे "उमंगोत्पादक, ऐतिहासिकपन, उपदेशकपन, जीवन-होड़-प्राबल्य" आदि। उन्होंने डंके की चोट घोषित कर दिया है—"हमलोग सिद्धान्त के रूप में संस्कृत के नियमों को हिन्दी में अमान्य समझकर शब्दों के वे रूप लिखते और इतरों से लिखवाना चाहते हैं, जो संस्कृत-व्याकरण के नियमों से चाहे अशुद्ध हों, किन्तु देश में उनका प्रचार हो।" इसीलिए उनके कितने ही वाक्यों से सहज ही विनोद उत्पन्न हो जाता है। कुछ वाक्य आगे के प्रसंगों में मिलेंगे। उनकी गहराई में डूबकर सोचिएगा।

महाकवि देवजी के सम्बन्ध में यह वाक्य—"ये केवल सोलह वर्ष की बाल्यावस्था से उत्कृष्ट कविता करने लगे थे।" सचमुच होली में सोलह वर्ष की यह बाल्यावस्था अत्यन्त श्रुतिमधुर और मनोज्ञ जान पड़ती है!

कहीं-कहीं कुढ़कर या चिढ़कर या झुँझलाकर बहुत ही स्पष्टवादिता के साथ अपना मत व्यक्त किया है। 'बोधा' कवि की इन पंक्तियों पर—

"काँपत गात सकात बतात है
साँकरी खोरि निसा अँधियारी
यों दुरि केलि करैं जग मैं
नर धन्य वहै धनि है वह नारी"

—कसकर लिख मारा है—"इस छन्द से अधिक शोहदापन मिलना कठिन है।" इसी तरह एक जगह लिखा है—"बेनी कवि भंडाचार्य थे।" 'कविवर बैताल बन्दीजन' पर भी एक धौल जमा दिया है—"इनकी कविता में अद्वितीय उद्दण्डता एक अनुपम गुण है। भाषा के बहुत-से कवियों में उद्दण्डता अधिकता से है, परन्तु उसकी मात्रा सबसे अधिक इसी कवि में है।" फिर कविवर 'पजनेस' को दबोचा है—"इतनी उद्दण्डता बहुत कम कवियों में पाई जाती है। उन्होंने उद्दण्डता के स्नेह में मधुर भाषा को तिलांजलि दे दी।" भाषा को तिलांजलि तो स्वयं भी खूब दी है, जिससे हिन्दी-माता की आत्मा तो तृप्त हुई ही है, विनोद-रसिक पाठक भी तृप्त हुए बिना न रह सकेंगे। भाषा को तो शायद 'फागुन-भर की भौजाई' समझ लिया है। छूटकर होली खेली है भाषा-भाभी के साथ !!!

कहीं-कहीं विलक्षण लेखकों का परिचय देकर उन लोगों ने अपने मनोविनोद के साथ ही पाठकों के मनोविनोद का भी मसाला जुटा दिया है। एक जगह ग्रंथकार का तो नाम दिया है 'धरमपाल'; परन्तु उसके ग्रंथ का नाम है 'छछूँदरि-रायसो'। एक कोई अयोध्याप्रसाद वाजपेयी थे, 'महाकवि और सभाचतुर।' उनका देहांत संवत् १६५० में हुआ। उनका हाल तो सुनिए—"एक बार एक राजा ने इन्हें मखमली अचकन और पाजामा दिया, पर सर के लिए किसी वस्तु टोपी आदि का देना वह भूल गये। इसपर कवि ने कहा कि 'वाह महाराज, आपने मुझे ऐसा सिरोपाव दिया है कि घटा टोप।' इसपर लोगों ने झट टोप का भी घाटा पूरा कर दिया।" इसी प्रकार एक स्थल पर विचित्र उल्लेख है—'लोचन सिंह, कायस्थ, * रचनाकाल सं० १६२३, कविता-काल सं० १६२३, मैथिलीशरण गुप्त के पिता।" पता नहीं, रचना-काल और कविता-काल में क्या अन्तर है, और इसका भी पता नहीं चलता कि यह मैथिलीशरण गुप्त कौन हैं। किसी भी लेखक के पुत्र का उल्लेख उसी दशा में हुआ है, जब वह पुत्र परम प्रसिद्ध है। इसके सिवा किसी लेखक के पुत्र का नाम कहीं नहीं आया है। तब तो अब गुप्तजी ही बतलावें कि मिश्रबन्धुओं का विनोद सत्य है या यह होली की ठठोली है। खैर, आगे चलकर एक और विचित्र लेखक का परिचय दिया है—"मथुरा प्रसाद 'लंकेश', कायस्थ, ग्रन्थ—रावणदिग्विजय, रावणशिवस्वरोदय, रावणवृन्दावनयात्रा। आप कालपी में वकील थे। रामलीला के रसिक ही न थे, वरन् रावण बनते भी थे और अपने को रावण का अवतार कहते थे। उपनाम भी 'लंकेश' रक्खा था।" सुनने में आया है कि हिन्दूविश्वविद्यालय में भी कोई† लंकेशजी हैं। क्या ये महाशय भी उक्त लंकेशजी

*मि० बं० वि०, खं० ३, द्वितीयावृत्ति, सं० १६८६, पृष्ठ ११२८ देखिए। † कोई वैद्यराज जी?

के ही अवतार हैं। जो हो, कालपी के एक 'मलूक दास' साधु के विवरण में लिखा है—"बाबू कृष्णबलदेव, खत्री* के मातामह के बाबा थे।" अब पाठक इन छः पिछली पीढ़ियों का लेखा-जोखा लगाते रहें!

'विनोदी बन्धुओं' की खोज का तमाशा भी देखिए। महाकवि पद्माकर के प्रसंग में लिखते हैं—"एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं। पद्माकरजी ने इसमें अपने पापों को अपार कहा है! हमने बाँदा में जाँच करने से केवल इतना सुना था कि इन्होंने एक सुनारिन को घर बिठला लिया था। इस एक पातक को कोई अपार नहीं कह सकता।" बहुत ठीक, यह सुन्दर फैसला क्या होली में ही लिखा गया था? क्योंकि फागुन में पातक की परिभाषा बदल जाती है!!

एक स्थान में महाराष्ट्र-प्रान्तवासी 'साहिरोबानाथ' नामक एक सन्त का परिचय देते हुए लिखा है—"ग्वालियर-नरेश महादजी सेंधिया से मथुरा में भेंट होने पर इन्होंने कहा—

सोना-चाँदी हम ना चाहैं, अलख भुवन के वासी।
महल मुलुक सब 'रोम' बराबर, हम गुरुनाम उपासी॥"

निस्संकोच लिख मारने में कहीं कोई कोताही नहीं की है। व्यक्तिगत बातें तक लिख दी हैं। जैसे बड़े भाई (पं० गणेशविहारी मिश्र) के बारे में लिखा है—"इन्होंने मित्रों के आग्रह पर भी तीसरा विवाह नहीं किया।" पं० श्यामविहारी मिश्र के सम्बन्ध में यह विचित्र वाक्य—"तब यह पुलिस छोड़कर डेपुटी कलक्टरी पर चले गये।" फिर पं० श्यामविहारी मिश्र और शुकदेवविहारी मिश्र के विषय में यह मार्के की बात—"इन दोनों की प्रायः सब हिन्दी रचनाएँ साझे ही में बनी हैं।" इतना ही नहीं, तीनों मिश्र-बन्धुओं के लिए भी यही उक्ति—"प्रायः सब छन्द और गद्यलेख साझे ही में बनते रहे।" हाँ, खेती और तिजारत तो साझे में सुनी गई है, पर रचना और रमणी तो साझे की नहीं सुहाती। शायद यह पांचाली रीति की रचना है, गौड़ी और वैदर्भी रीति रुचती ही नहीं!! इसी तरह व्यक्तिगत बातों के और भी कितने ही प्रसंग हैं। अपने बारे में भी स्पष्ट लिख दिया है—"हमलोगों के चारो नाटक-ग्रन्थ स्टेज पर खेलने योग्य हैं।" कालपी के स्वर्गीय बाबू कृष्णबलदेव वर्मा के विवरण में लिखा है—"इनका भर्तृहरि नाटक पढ़ने से रुलाई आ जाती है।" स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विवरण में लिख दिया है—"मिश्रबन्धु नाम सुनते ही जामे से बाहर हो जाते हैं!" पं० उमाशंकर वाजपेयी, एम० ए० को यह सर्टिफिकेट दिया है—"हमलोगों को आप अपनी रचना सुनाया करते हैं।" खीरी-लखीमपुर के एक वकील साहब के विवरण में बस इतना ही—'इनकी कन्या एम० ए० पास है।"

राष्ट्रीय विचार के लेखकों और कवियों पर पक्के रंग की पिचकारी चलाई है। वाक्य बड़े रंगीन और स्वादिष्ट हैं। पहली ही पिचकारी की बौछार महात्मा गान्धी पर—'हिन्दू-संगठन की वृद्धि आपके द्वारा अच्छी हुई है!" स्व० पं० माधवराव सप्रे पर

* बाबू कृष्णबलदेव वर्मा महाकवि केशवदास के विशेषज्ञ पुराने साहित्यसेवी थे। उनके भ्रातुष्पुत्र बाबू ब्रजमोहन वर्मा हास्य-व्यंग्य के सिद्धहस्त लेखक थे।—ले०

भी एक बार—"देशभक्ति में कुछ उद्धत विचार रखने से कई बार आपको कष्ट उठाने पड़े थे।" इसी ढंग का धावा पं० हरिभाऊ उपाध्याय पर भी—"उद्धत देशप्रेमवश कई बार जेलयात्रा भी कर चुके हैं।" तब कविवर 'नवीन' जी कैसे छूट सकते हैं—'उद्धत देशभक्ति के कारण कई बार जेल भी हो आये हैं।" फिर कविवर 'सनेही' जी के बिना 'विनोद' में रस कहाँ— 'त्रिशूल के नाम से उद्दण्ड राजनीतिक साहित्य भी रचा है।" स्वामी सत्यदेवजी सौभाग्यवश सस्ते छूट गये—"गरम विचार अवश्य रखते हैं। किन्तु इतने नहीं कि जेल जाना पड़ा हो।" जान पड़ता है, इन विख्यात विनोदी बन्धुओं की पिचकारी में समाकर बेचारे 'उद्धत' और 'उद्दण्ड' शब्द पानी-पानी हो गये हैं! इन्हीं की तरह 'भारी' शब्द को भी भकुआ बनना पड़ा है! जैसे, प्रेमचन्दजी के प्रकरण में— "हम आपको भारी उपन्यासकार मानते हैं।" फिर पं० चतुरसेन शास्त्री और श्रीवियोगी हरिजी—"दोनों महाशय गद्यकाव्य के भी भारी रचयिता माने जा सकते हैं।" इसी तर्ज पर पं० रूपनारायण पाण्डेयजी भी 'भारी अनुवादक' हैं—'बड़े भारी' नहीं, सिर्फ 'भारी!' सच पूछिए तो असली विनोद यही है। उनलोगों ने तो खुलकर लिख ही दिया है कि 'विनोद' में खोज के अतिरिक्त और भी बहुत-सा मसाला है *। वह यही होली का रंग-मसाला है, और क्या!

देखिए वह मसाला। काशी के एक लेखक का परिचय यों लिखा है—"हरिनाथ (आलू पंडित) हास्यरस के उद्भट कवि एवं लेखक हैं।" इन महाशय (आलू पंडित) का हाल ठीक-ठीक जानना हो तो काशी के किसी साहित्यिक मित्र को बैरंग चिट्ठी भेजकर पूछिए। ये महाशय गली-गली विधवा-विवाह का कागजी झंडा फहराते फिरते हैं। खैर, आगे अभी और देखिए। लिखते हैं—"वास्तव में उच्च हिन्दी का उदाहरण यदि देखना हो तो चतुरसेन शास्त्री और उग्र की भाषा पढ़ी जाय।" श्रीदुलारेलाल भार्गव के बारे में कहा है—"भारतेन्दु के पीछे इनके बराबर हिन्दी-सेवा बहुत कम लोगों से बन पड़ी है।" याद रहे, मिश्र-बन्धुओं के प्रायः सभी ग्रन्थों के प्रकाशक और प्रचारक वही हैं। फिर डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा के परिचय में एक बारीकी निहारिए—"इलाहाबाद-विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रधानाध्यापक हैं। हिन्दी का अच्छा ज्ञान रखते हैं।" अन्तिम पंक्ति में ही विनोद का मसाला भरा गया है। रायबरेली जिले के पं० शिवरत्न शुक्ल पर लिखते हैं—"रेल की सेवा से रिटायर वृद्धावस्था मना रहे हैं।" मानों वृद्धावस्था होलिकोत्सव है अथवा वृद्धावस्था ग्रीष्मावकाश है! भाषा के साथ ऐसी ही मसखरी एक जगह और देखिए। एक लेखक के विषय में लिखा है—"आपका साहित्य वर्णन-चातुर्य से सौरभित है।" यह अन्तिम शब्द शायद 'आनन्दित' और 'क्रोधित' तथा 'संकुलित' का जुड़वाँ भाई है। इसी प्रकार हिन्दी-लेखकों में सन्त निहाल सिंह का भी नाम है जिनके अंग्रेजी लेखों के अनुवाद 'सरस्वती' में छपा करते थे। इनके परिचय में बस इतना ही लिखा है—"ज्ञाता पुरुष हैं।" पं० झाबरमल्ल शर्मा को 'परोपकारी महात्मा' लिखा है। काशी के राय कृष्णदासजी पर ये पंक्तियाँ जड़ी गईं

* मि० बं० वि०, भाग ४, पृ० २२८ देखिए।

हैं—"कई उपन्यास छायावादी ढंग पर लिखे हैं। हमको ये पसन्द हैं, यद्यपि हमारे कई मित्र इस मत के विरोधी हैं।" एक हाथ से मान का पान, दूसरे से चमत्कारपूर्ण चपत ! श्रीराहुल सांकृत्यायनजी पर तो अद्भुत सम्मति दी है—"आपका कोई ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया, पर लेखनशैली गंभीर एवं गवेषणापूर्ण है !" शायद नाम सुनकर ही शैली का आभास मिल गया, अथवा दूर से ही शैली सूँघी जा सकती है ? जो हो, पं० नारायण प्रसाद 'बेताब' से सारी कसर निकाल ली है—"समालोचना असंयत भाषा में भी कर बैठते हैं। 'यथा नाम तथा गुणः' की कहावत चरितार्थ कर देते हैं। नाटकों में चरित्र-चित्रण बिगड़ जाता है।" कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के सम्बन्ध में—"इनकी रचना हिन्दी के प्राचीन प्रसिद्ध कवियों के भी साहित्य का सामना कर सकती है।" शायद यह विनोद-वैचित्र्य भी सरोद के तबलच। का सामना कर सकता है। धन्य है—अनन्य है—प्रणम्य है—अगम्य है यह निराले ढंग का विनोद-प्रमोद ! पारसी थिएटर-कम्पनी का 'चोंचों का मुरब्बा' है यह। भानमती के पिटारे में मथुरा के पेड़े भरने के लिए बधाई ! —**साप्ताहिक 'उषा' (गया); होलिकाङ्क, विक्रम-संवत् २००१**

ऐसी होली को गोली मार दो

आजकल रेल की यात्रा में अंग प्रत्यंग-घर्षण से ब्रह्मानंद-सहोदर सुख प्राप्त होता है ! तीसरे दर्जे में तो 'विविध-विषय-विभूषित' सौरभ का भी आनन्द उपलब्ध होता है।

उस दिन तीसरे दर्जे के डब्बे में नर-नारियों की अपार भीड़ थी। जैसे पतली फाँक-वाली दरार में साँप घुस जाता है वैसे ही अंग-अंग समेटकर मैं भी घुस गया। बेचारे बच्चों की बड़ी साँसत थी। उनकी माताओं के कातर नेत्र देखकर इच्छा हुई कि बाहर कूद पड़ूँ। किन्तु टस-से-मस होने का भी अवकाश कहीं न था। सन्तोष इतना ही था कि 'अवध-तिरहुत'-रेलवे के डवाँडोल डब्बे में सब-के-सब खड़े-ही-खड़े मन्द-मन्द हिल रहे थे। बस, 'अयोध्या और जनकपुर' का संगम हृदयंगम कीजिए।

राम-राम करते जंकशन-स्टेशन पर पहुँचा। देह चूर हो गई थी। इन्द्रधनुषी सौरभ से नाक नकिया गई थी। कमर तो ऐसी दुख रही थी मानों उसकी नसें दुह गई हों। पैर का खून जाँघ में चढ़ गया था, जैसे दबाव के प्रभाव से तरल पदार्थ ऊपर को उबल पड़ता है !

थका-माँदा पड़ रहा मुसाफिरखाने में। कहीं पान की पीक की पिचकारियाँ चली थीं, कहीं जूठी पत्तलों पर कृशाङ्ग कुत्ते जूझ रहे थे, कहीं राष्ट्रनेता मौलाना आजाद के चरणों में चोट पहुँचानेवाले केले के छिलके पड़े थे। ऊपर से मच्छर महाराज कानों में दीक्षा-मंत्र गुनगुना रहे थे ! नींद निठुरी आधा-भीतर और आधा-बाहर की दुविधा में फँसी थी। उसे पुचकारने के लिए ही अखबार खरीदा।

देखा अखबार में कि रेल का भाड़ा बढ़ा दिया गया। शायद युद्ध के बाद तीसरा दर्जा स्वर्ग बना दिया जायगा। बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर यह भी देखा कि युद्ध के बाद देश-भर की सड़कों का भी कायाकल्प हो जायगा। इससे दुहरी प्रसन्नता हुई। अहो-भाग्य भारत का! बस, छाती पर अखबार रखे, कल्पना के पुष्पक पर, व्योमविहार करने लगा। ठंडे-ठंडे झोंके नींद को फुसलाने-पिघलाने लगे।

अब मैं तीसरे दर्जे के उन्नत डब्बे में लखनऊ जा रहा था! जिधर देखता उधर ही सीमेण्ट की सड़कें, मानों सारे देशवासियों के तन की सीमेंट सड़कों पर ही ढाल दी गई हो! डब्बा तो बस फर्स्ट-सेकेंण्ड-इण्टर का 'चों-चों का मुरब्बा' था। गद्दा क्या था, 'मंजु मनोज तुराई' था। नागदन्त अर्थात् खूंटी की लुनाई का क्या कहना—छोटी-छोटी ऊपर उकसी हुई—ठिंगनी और ठोस। दर्पण तो हलब्बी का भी मुरब्बी था। व्यजन तो स्वजन से भी सुखद! लघुशंका-कक्ष परम स्वच्छ। दीर्घशंका-स्थल धवल-विमल। स्नानागार में अजस्र धारायन्त्र। धूम्रपान-प्रकोष्ठ पृथक्। भोजनशाला परिष्कृत। सब सुख-साधन सुलभ थे। कमी थी केवल शयनागार की। पर सूचना अंकित थी कि निकट-भविष्य में उसकी भी व्यवस्था हो जायगी।

इतने में पास ही खड़ी दो देहाती दुलहिनें, एक दूसरे के कंधे पर सिर रख, पुक्का फाड़कर, रो उठीं। अचानक चौंक कर उठा तो देखा कि राहुल बाबा की 'बाईसवीं सदी' की दुनिया से ययाति की तरह खिसककर अपनी उसी 'बीसवीं सदी' में लुढ़क आया हूँ जिसमें वही रेल-पथ, वही गुत्थमगुत्थी, वही भाग-दौड़ और वही संकीर्ण संघर्षण है। हड़बड़ी में उठकर दौड़ा, पर भीड़ की ऐसी भरमार थी कि कहीं पावदान पर भी खड़े होने की जगह न मिली। ओर से छोर तक दौड़ता और गिड़गिड़ाता ही रह गया; पर देखते-ही-देखते गाड़ी निगोड़ी सामने से सरकती हुई निकल गई!! आज ही होली है! यही आखिरी गाड़ी है! श्रीमतीजी मन में क्या कहेंगी? ऐसी होली को गोली मार दो।

—[साप्ताहिक 'प्रभाकर' (मुँगेर), होलिकाङ्क, विक्रम-संवत् २००१]

गुलाब नहीं, आम और कटहल चाहिए!

चार्वाक-सम्प्रदाय के लोग कहा करते हैं कि हिन्दुस्तान को आजादी वैसे ही मिल गई जैसे कमसिन लड़की को बच्चा पैदा हो जाता है। १५ अगस्त को हम उसी 'कमसिनी के प्रसाद' की बधाई में खुशियाँ मना रहे हैं। कमसिन बहू को भी जब पहलौंठी का बेटा नसीब होता है तब बधावे बजते ही हैं। बेटा ऐसी चीज ही है! भले ही वह पिलपिला हो, मगर मा-बाप की बहादुरी का नमूना तो होता ही है, गोद-गोद में हलराया जाता है—जैसे पइया धान सूप में हलोरा जाता है।

हमारा आजादी का बच्चा साल-भर का हो गया। उसकी पहली बरसगाँठ पर दीवाली जगमगायगी, जलूस के नारे आसमान गुँजायँगे, पहाड़ी चोटी की ऊँचाई पर

तिरंगा लहरायगा। गर्व और आनन्द के बाँध टूट जायँगे। सब मुबारक हो! मगर बच्चे का ग्रह, योग, लग्न आदि भी देखना होगा। यह रावण है या राम?

चार्वाक-सम्प्रदाय के लोग उसे 'पुलस्त्य का नाती' ही मानते हैं। पैदा होते ही उसने दुनिया में तहलका मचा दिया। खून की नदियाँ बह गईं। अभावों की आँधियाँ चल गईं। निराशा की अँधियालियाँ छा गईं। दुर्गति-नाशिनी दुर्गा ने भी त्योरी कस ली। जन-जन के मन में भय का भूडोल पैठ गया। भूधर-कीलित धरा भी काँप उठी!

अध्यात्मरामायण के उत्तरकांड के आरम्भ में ही लिखा है कि सुमाली की कन्या 'कैकसी' कुबेर-सा पुत्र पाने की इच्छा से जब पुलस्त्यनन्दन 'विश्रवा' के पास गई, तब उन्होंने कहा कि दारुण वेला में आने के कारण सन्तान राक्षस होगी!

तो क्या यह बच्चा दारुण वेला में कच्ची कोख में आया था?

इसपर काशी के ज्योतिषी विचार करें। हमलोग तो फलभोक्ता हैं। जो लोग फलवक्ता या फलवेत्ता हैं वे ही गुनकर कहें।

यहाँ तो देखने में आ रहा है कि यह साल भर की स्वराज्य-फुलवारी हर तरफ गुलाब ही गुलाब खिला रही है, आम और कटहल का यह मौसम (अगस्त) निष्फल बीत गया!

अगली फसल का हाल राम जाने!

भाषणों में, अखबारों में, स्कीमों में, ब्राडकास्टों में—सब जगह गुलाबी क्यारियाँ लहलहा रही हैं, सब्ज बाग ही लहरा रहा है। आम और कटहल के फल की क्या बात—उनका सौरभ भी नहीं मिल रहा है।

बरसों पहले आम और कटहल ही पहले रोपे गये थे। लोग मधुवन के फल खाने की ताक में आशावान थे। पर लंका-विजय के बाद भी मधुवन के फल नसीब न हुए! रह गये सिर्फ कँटीले-छबीले गुलाब ही।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने परम प्रिय इष्टदेव भगवान रामचन्द्र से कहलवा दिया है—

'संसार महँ पूरुष त्रिबिध—
पाटल रसाल पनस समा।
एक सुमनप्रद, एक सुमन फल,
एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं, कहहिं करहिं अपर,
एक करहिं कहत न बागहीं।'

ध्यान रहे कि रावण जोशीले रावण—से यह बात कही गई थी। इस समय किससे कही जा रही है, यह सहृदय-हृदय-संवेद्य है।

चार्वाक-सम्प्रदाय के लोग तो बूझेंगे मगर बाकी लोग शायद माथापच्ची में जूझेंगे!

—['मतवाला' (मिर्जापुर), चार्वाक-अंक, १५ अगस्त १९४८ ई०]

एक अद्भुत कवि

एक 'छिपे रुस्तम' कवि हैं। उद्भट कवि हैं, उत्सुक कवि हैं, उद्घोषक कवि हैं, उत्पाती कवि हैं। तुकबन्द और तुक-खुले भी हैं। आपकी कविता में प्रसाद-गुण के साथ प्रमाद-गुण भी है; समास और अनुप्रास के साथ विरोधाभास तो है ही, छन्द-चन्द का सर्वग्रास भी है।

पहले-पहल जब आप अपना 'तखल्लुस' (उपनाम) तजवीजने लगे, तब बरसों खोपड़ी खखोरते रहे, अपने साथ कितनों के मगज चाट गये, मगर कोई उपनाम पसन्द न आया। कभी सोचते कि 'लाल कवि' और 'बैताल कवि' के वजन पर 'मजीठ कवि' और 'पिशाच कवि' नाम रखें। कभी 'ग्वाल' का खयाल आता तो अपना उपनाम 'चाण्डाल' तक सोच लेने में भी नहीं हिचकते। अजब टेढ़ी खोपड़ी के जीव हैं। आप अपने उपनाम की तलाश में बहुत दिनों से परीशान हैं, न मिलने से जी-जान से हैरान हैं, जो ढूँढकर भेज देगा उस मेहरबान के ऊपर कुर्बान हैं। लेकिन सवाल यह है कि कोई ढूँढ़ने में माथापच्ची करके ही क्या करेगा जब आपको अपने मित्रों का चुनाव पसंद ही नहीं है।

एक बार हमारे 'शास्त्रीजी' आपको मिले तो बोले कि बेकार आप हिन्दी-फिन्दी के फन्दे में फँसे हैं, संस्कृत-कवियों के नामों में से कोई भड़कीला नाम क्यों नहीं चुन लेते? आपने झट फर्माया—"मैं सबसे निराला नाम रखना चाहता हूँ। आज तक हजारों नाम चुने, सुने; मगर किसी से मेरा तुक नहीं बैठता, क्योंकि मैं उन नामों से विपरीत अर्थ का नाम चाहता हूँ। अगर कोई ऐसा नाम मिल गया तो मैं शुक्रगुजार बनकर कबूल कर लूँगा।"

शास्त्रीजी बोले, अरे भई! शुक्रगुजार क्या बला है? मैंने तो अर्थ ही नहीं समझा!

आप हैरत में आ गये कि इस हिन्दू-मुस्लिम एकता के जमाने में हिन्दू-मुस्लिम शब्द (शुक्रगुजार) शास्त्रीजी क्यों नहीं समझते! बोले, 'पण्डितजी! 'शुक्र' का अर्थ 'वीर्य्य' है और 'गुजार' का मतलब 'देनेवाला'। पहला संस्कृत है, दूसरा फारसी। चोटी-दाढ़ी का मेल है।'

शास्त्रीजी ने झुँझलाकर कहा, तो क्या आप शुक्र देकर नाम कबूलोगे? बड़े विलक्षण जीव हो जी! अच्छा, एक नाम 'अश्वघोष' तो अच्छा है, पर इसका विपरीत अर्थ तो 'गर्दभ-निनाद' से प्रकट होता है! 'दण्डी' कहने पर 'शिखण्डी' 'पाखण्डी' और 'भुशुण्डी' ही आपके मतलब के नाम सूझते हैं, पर मुझे पसन्द नहीं। मैं 'माघ' कहूँगा तो आप 'वैशाख' बन जाओगे, पर यह शब्द ऐसा विचित्र है कि इसके आगे 'नन्दन'-सा सुन्दर शब्द जोड़ते ही अर्थ का अनर्थ हो जाता है। मेरी राय तो यह है कि 'विकटनितम्बा' के समान आप 'निकटनितम्बा' नाम रख लो?

किन्तु कविजी को शास्त्रीजी का नामकरण-प्रस्ताव पसंद नहीं हुआ। आपने मुँह बिचका कर शास्त्रीजी का पिण्ड छोड़ दिया। स्वयमेव सोचने लगे कि उपनाम

के विना आजकल जोशीली कविता करना खतरे से खाली नहीं है। तखल्लुस के तहखाने में बैठकर तो कितने ही सरकारी नौकर भी आजकल अपने दिल का बुखार निकाल रहे हैं। अगर 'त्रिशूल' की देखादेखी मैं अपना उपनाम 'सुई' रख लूँ तो इस चुभीले नाम के चलते मैं अपने दिल के फफोले खूब फोड़ सकूँगा। 'त्रिशूल' के बदले अगर मैं अपना नाम 'डमरू' रखता हूँ, तो सार्थक नहीं होता; क्योंकि मेरी कमर पतली नहीं है। फिर 'सनेही' के विपरीत 'निर्मोही' नाम रखने से मेरी पत्नी किस्मत को रोने लगेगी। बड़ी विकट समस्या है! क्या करूँ? कैसे दिल का गुबार निकालूँ? कुछ समझ में नहीं आता।

लाचार होकर एक दिन कविजी मेरे पास आये। मुझे सारी रामायण सुना गये। कहने लगे कि कोई छोटा-सा नाम मेरे लिए चुन दीजिए। मैंने कहा कि 'कर्ण' कवि के वजन पर यदि आप 'वर्ण' नाम रख लें तो अच्छा अवश्य होगा, पर यदि कोई द्वेषवश 'संकर' शब्द उसके आगे जोड़ देगा तो आप शर्मिन्दा हुए विना न रहेंगे, और यदि 'कर्ण' के बदले आप 'श्रवण' बनेंगे, तो लोग आपको विनोदी कवि समझ, यह कहकर चुटकी लेंगे कि चौपट-चक्षु माता-पिता की औलाद है। किन्तु जब इन नामों पर भी आप नाक-भौं सिकोड़ते हैं तब अन्त में मेरी राय है कि आप अपना उपनाम रखें 'हालाहल'!

यह उपनाम सुनते ही कविजी मारे खुशी के उछल पड़े। अपना रास्ता नापते हुए बोले—'बहुत दिनों तक समुद्र-मन्थन करने के बाद यह उपयुक्त उपनाम उपलब्ध हुआ है। यह तो मुझे उतना ही पसंद है जितना किसी शारदा-शत्रु सेठजी को 'रायबहादुरी'। अब तो मेरे जहर उगलने पर भी अगर कोई फटकारेगा, तो झट उसकी छाती पर चढ़कर हलहला दूँगा।' —[मासिक 'मारवाड़ी-अग्रवाल' (कलकत्ता), १९२९ ई०]

विजया की तरंग

काशीश्वर विश्वेश्वर का भी अजीब दरबार है—एकबारगी मुक्तद्वार है। चाहे जो चला जाय, बूढ़े बैलवाले की प्रलम्ब प्रतिमा का सर्वाङ्ग सहलाकर दो-चार बिन्दु मुँह में टपका ले। हमें तो भय है कि लोगों के हाथ फेरते-फेरते 'बमभोला बाबा' कुछ दिनों में घिसकर शालग्राम न बन जायँ! फिर तो 'विल्व' छोड़कर 'वृन्दा' को ढूँढ़ने लगेंगे!

द्वादश ज्योतिर्लिंगों में विश्वनाथ भी बड़े सौभाग्यशाली हैं। ऐसी ऐश्वर्य-शालिनी महानगरी काशी-जैसी राजधानी भला और किसे नसीब है? कहते भी हैं कि काशी तीन लोक से न्यारी है—शंकर के त्रिशूल पर बसी है—कैलासपुरी है? तभी तो आसमुद्र पृथ्वी विश्वामित्र को संकल्प कर चुकने पर भी सत्यव्रत हरिश्चन्द्र विश्वनाथ की शरण में चले आये थे। देखने से भी मालूम होता है कि काशी वास्तव में समस्त भारतवर्ष का संक्षिप्त संस्करण है; बल्कि भारत की नाभि (एपिटोम अफ होल इण्डिया)

कहिए तो और अच्छा; क्योंकि द्राविड़ी, तैलंगी, मराठी, गुजराती, नैपाली, बंगाली आदि सब यहाँ अलग-अलग मुहल्लों में उपनिवेश बनाये बैठे हैं। एक प्रकार से इसे हिन्दुस्तान का 'इत्र मजमुआ' समझिए, अथवा हिन्दू-जाति का 'चोंचों का मुरब्बा' ही समझ लीजिए।

लोग कहते भी हैं—बनारस 'बना-रस' है और सब 'बिगड़ा रस' है। बात भी ठीक ही है। बनारसी जीव सचमुच बड़े लहरी होते हैं। और हों भी क्यों नहीं? जहाँ का राजा अलमस्त फकीर औढरदानी, अगड़बम, जिसके विषय में—"कहै पदमाकर सु गाल के बजावत ही काज कर देत जन जाचक जरूरे को। देखौ त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ पैये फल चार फूल एक दै धतूरे को"—जहाँ का कोतवाल भी नशे में चूर—भीम भैरव, वहाँ की प्रजा का तो पूछना ही क्या! वह तो तरंगी हुआ ही चाहे—'यथा राजा तथा प्रजा—राजा प्रजा तथैव च'। राजा की झोली में भूँजी भाँग भी नहीं, मगर खैरात बाँटते हैं चारों पदार्थों की। प्रजा की अण्टी में भले ही छदाम न हो, पर बूटी विना बादाम के नहीं छनती और पके पान का चौघड़ा चाभे विना यात्रा भी नहीं बनती। तारीफ यह कि शरीर के सर्वश्रेष्ठ अंग 'मुख' के अलंकार 'पान' की भी चुटिया काशी में ही कटकर गड़ गई है, और साथ ही, स्वादिष्ट भोजन के थाल को अलंकृत करनेवाली 'पुलपुली मोयन-पड़ी फूली कचौरी' ने भी विश्वनाथ-बाबा के पिछवाड़े ही कचौरी-गली में डेरा डाल दिया है। फिर क्योंकर मौज न कटे? 'खान-पान' के सिवा और मौज ही क्या है? यों तो प्रत्येक विषय को अलंकृत करनेवाली सामग्री विश्वनाथ के भाण्डार में भरी पड़ी है—जैसे, नदियों को अलंकृत करनेवाली गंगा, भाषाओं को अलंकृत करनेवाली देववाणी संस्कृत, हिन्दी-संस्थाओं की अलंकार-भूता 'नागरी-प्रचारिणी सभा', देशभक्ति के अलंकार बाबू शिवप्रसाद गुप्त, राष्ट्रभाषा हिन्दी के अलंकार बाबू श्यामसुन्दर दास, भारतीय विश्वविद्यालयों का अलंकार हिन्दू-विश्वविद्यालय, पुरातत्त्वेतिहास का अलंकार सारनाथ, विद्वत्ता के अलंकार डाक्टर भगवानदासजी, हिन्दू जाति के अलंकार पूज्य मालवीयजी! कहाँ तक गिनिएगा? इस भाण्डार में साक्षात् अन्नपूर्णा बैठी हुई हैं!

अरे, यह क्या हुआ! विजयिनी विजया की लहर में बात की लड़ी टूट गई, वह मुख्य कड़ी छूट गई—'बनारसी जीव बड़े लहरी होते हैं!' हाँ, तो अब सुनिए। एक रोज हम अपने कई बनारसी दोस्तों के साथ 'बहरी तरफ' बरसाती लहर लेने गये। रास्ते में यार लोग तान लड़ाते चले जाते थे। कोई पंडित चाँदनारायण की यह गजल अलापता था—

'तेरे बीमारे फ़ुरक़त[१] का सनम आँखों में दम आया।
मुनासिब था कि इसको देख जाते अपनी आँखों से।
हमें रोने नहीं देता तसव्वर[२] तेरी आँखों का।
वगरना[३] दोनों आलम[४] को डुबाते अपनी आँखों से।

---

१ विरह। २ ध्यान। ३ नहीं तो। ४ संसार।

हमें नरगिस का दस्ता ग़ैर के हाथों से क्यों भेजा।
अगर आँखें दिखानी थीं, दिखाते अपनी आँखों से।
बुलाता तू अगर मुझको, क़सम है तेरे क़दमों की।
कोई आता जो पैरों से, हम आते अपनी आँखों से।'

कोई बरसाती लय में कवि 'प्रीतम' की 'चूनरी' को ललकार रहा था—

'है अजब खुशरंग सारी चूनरी, रंग लाई है तुम्हारी चूनरी।
तुम रँगीली और मिंहदी का य' रंग, रंग बरसाती है प्यारी चूनरी।
मुँह कजलियों के भी पीले पड़ गये, देखकर सुन्दर तुम्हारी चूनरी।
तेरे ही दम से तरो-ताजा हुई, आज सावन की सवारी चूनरी॥'

इसी तरह सुहावन सावन की उमंग में मस्त सब-के-सब शहर से देहात में जा पहुँचे। यहाँ बनारसी रईसों और धनियों के कई बगीचे और बँगले हैं। हमलोग कलकत्तावाले डाक्टर एस० के० बर्मन के बगीचे में उतरे। बड़ी बहार की जगह थी। विश्वनाथ की दया से सावन का सलोना समाँ बँधा था। रिमझिम बूँदें बगीचे के बीचवाले छोटे हौज में मधुर जलतरंग बजा रही थीं। उधर बादलों का पखावज अलग रंग बाँधे हुए था। मन्द-मन्द ठंडी हवा के झोंके से झूम-झूमकर वृक्षों के हरे-हरे पत्ते तालियाँ बजा रहे थे, मानों सुर पर ताल दे रहे हों। एक मित्र से रहा न गया—सावन की मनभावनी घनघटा देखकर उमड़ ही पड़े—

'सैयाँ न ऐसी नचाओ पतुरियाँ।
गाने पै रीझो, बजाने पै रीझौ, बन्दी की छाती में छेदो न छुरियाँ
पापों की पूँजी पचेगी न प्यारे! खाते फिरोगे हकीमों की पुरियाँ।
डोलोगे डाली डुलाते-डुलाते, हाथों में होंगी न पूरी अँगुरियाँ।
जो हाय! 'शंकर' दशा होगी ऐसी, तो मेरी कैसे बचा लोगे चुरियाँ॥'[1]

इसपर दूसरे एक मित्र बोल उठे—वाहजी 'गर्भरण्डा 'रहस्य' के पुतले! कैसे 'बचा लोगे चुरियाँ' जब 'खाते फिरोगे हकीमों की पुरियाँ'? हाँ भाई! ताँता बँधा रहे, घटा घुमड़ रही है, उत्कंठा उमड़ रही है। घर पर चकाचक छनी बूटी रग-रग में भीनी जा रही है, तबतक 'बहरी तरफ' की बूटी भी घुट चली है। जहाँ सौ रगड़ दी नहीं कि लुआब हुई—हुम-हुम-हुम! सिल-बट्टे पर 'हरी पत्ती' के साथ दूसरे मित्र का हुमकना देखकर एक तीसरे मित्र बोले—हाँ यार! सिल-बट्टा एक साथ सट जायँ तब बूटी चौचक उतरेगी—उठा लो लोढ़े के साथ सिल को!

इतने में आया बड़े जोर का पानी। सावन ने गहरा रंग जमाया। फिर तो बड़े ठाट की बूटी छनी—ऐसी कि चूरमा-बाटी के साथ भी घनी ठनी, और लौटती बार की यात्रा भी अच्छी बनी! हमलोग जब जगत्प्रसिद्ध ज्योतिषी स्वर्गीय पंडित सुधाकर द्विवेदी के मकान से आगे निकल आये, एक मित्र को अचानक उन्हीं का एक पद याद आ गया; बस तराना छेड़ दिया—

---

१ महाकवि नाथूराम शंकर शर्मा की एक कविता।

'पिया हो, कसकत कुस पग बीच ।
लखन लाज सिय पिय सन बोली हरुए आइ नगीच ॥
सुनि तुरंत पठयो लखनहिं प्रभु जल हित दूरि सुजान ।
लेइ अंक सिय जोवत कुस-कन धोवत पग अँसुआन ॥
बार-बार झारत कर सों रज निरखत छत बिललात ।
हाय ! प्रिये ! मान्यो न कह्यो, लखु नहिं बन बिच कुसलात ॥
सहस सहचरी त्यागि सदन मधि सासु ससुर सुखकारि ।
हठ करि लगि मो संग सहत तुम हा-हा ! यह दुख भारि ॥
कहत जात यों प्रभु बहु बतियाँ तिया पिया की छाँह ।
दे गलबहियाँ चली बिहँसि कहि यह सुख नाथ अथाह ॥'

बस 'अथाह' पर तान तोड़ते ही एक झन्नाटू (बढ़िया एक्का) नजर आया। हमलोग उसी पर लदकर चौक पहुँचे। वहाँ से रबड़ी-मलाई का एक-एक पुरवा और मगही पान का तबकदार सिंघाड़ा लेकर अपने-अपने घर चले। फिर तो घोड़ा बेचकर रात भर बेसुध सोये !

—[साप्ताहिक 'हिन्दूपंच' (कलकत्ता), विजयाङ्क, संवत् १९८३, १९२६ ई०]

मूर्खाधिराज महाराज !

मूर्खराजजी का परिचय लिखने के लिए होली में उनसे भेंट की। उनकी बाछें खिल गईं। सचमुच सज्जनो, जब वे अपनी मूर्खता का मिलान आपसे करते हैं, तो आप किसी तरह उनके पासँग-बराबर भी नहीं ठहरते। शर्त बदकर सबूत लेना चाहें तो ले सकते हैं। उनको अपना उजागर नाम बहुत प्रिय और पसन्द है।

उनका कहना है कि आप संसार को अ-सार समझते हैं और वे संसार को स-सार मानते हैं। भला बिना 'सार' का संसार कैसा ? सम्यक् रूप से जिसमें 'सार'-ही-'सार' है, वही तो संसार है ! यह बात भी उनकी समझ में तब आई, जब हिसार के जिले में उनकी तीसरी शादी हुई। पहली और दूसरी नीमसार के इलाके में हुई थी। तीसरी शादी का मतलब है, बड़ी भारी गलती को तिहराना। दो शादियाँ करके तो वे गलती को दुहरा ही चुके, तीसरी से अपनी प्रचण्ड मूर्खता पर गहरी मुहर लगवा ली।

आप तो शादी को दुनिया की आबादी की जड़ समझते होंगे ? है तो दर-असल बात ऐसी ही। मगर शादी में जैसे मुबारकबादी मिलती है, वैसे ही बरबादी भी नसीब होती है। यह बरबादी एकतरफा नहीं होती, दुतरफा होती है। तब भी गलती

चलती रहती है, खलती नहीं। तीन-तीन तरुणी पत्नियों की चटनी करके अब मूर्खराजजी कटनी किये हुए खेत की तरह ऐसे श्रीहीन हो गये हैं कि जवानी का प्यारा साथी दर्पण भी दीनता दिखाता है। 'अब पछताये होत क्या चिड़िया चुग गई खेत !'

मूर्खता-महोदधि महाराज कहा करते हैं कि होली में जहाँ शादी की मुनादी होनी चाहिए, वहाँ उसके गुनाह भी गिनाकर लोगों को सजग करना जरूरी है। मगर साथ-साथ वे यह भी कहते हैं कि विवाह से तबाह हुए विना मूर्खता की महत्ता समझ में नहीं आती; क्योंकि जवानियों की टक्कर को घी-शक्कर समझने के चक्कर में पड़े विना मूर्खता का रहस्य खुल ही नहीं सकता।

मूर्खराजजी का यह भी मत है कि खासकर आजकल तो शादी पर ही 'कंट्रोल' होना चाहिए, जिससे गणतंत्री भारत में मूर्खता न बढ़ने पाये। 'बर्थ कंट्रोल' तो बकलोल करता है। विवाह को न रोककर संतति-निग्रह का उपदेश देना तो घोड़े के आगे गाड़ी रखने के समान ऊटपटाँग काम है। खाद्य-पदार्थों की कमी और महँगी के इस युग में—'दालदा के दौर में' सबसे पहले, मनोरंजन के इस इंजन पर ही 'ब्रेक' लगना चाहिए, नहीं तो जिन्दगी की गाड़ी खाड़ी में गिरकर चूर हो जायगी !

मूर्खमौलिमणि महाराज कभी-कभी पते की बात भी कह जाते हैं। एक दिन कहने लगे—आबादी दिन-दिन बेहद बढ़ती जाती है। घी-दूध-दही-मक्खन का नाम अब कोई सपनाता भी नहीं है। पौष्टिक अन्न तो छायावादी कवि की कल्पना से भी सूक्ष्मतम हो गया है। ऐसी दशा में जीवट के दीवट पर जिंदगी का चिराग कैसे जल सकता है ? इधर रोकड़ में टका-संत नहीं, उधर शाहखर्ची का अंत नहीं। उधर घुड़दौड़ की जमीन गीली, इधर लगाम पड़ी ढीली, फिर तो आगे खंदक ही होना चाहिए न ? आपकी क्या राय है ?

मूर्खशिरोमणिजी सनातनधर्मी भाइयों की तरह विधवा-विवाह के समान ही विधुर-विवाह को भी खतरनाक समझते हैं, क्योंकि उनके निजी अनुभव से यह खतरा ठीक साबित हुआ है। लेकिन उस खतरे के सच साबित होने पर भी फिर उनके मन में वह खतरा उठाने का हौसला बना ही हुआ है, यही 'मौर्ख्य' की पराकाष्ठा है। क्या अब भी आप उनके 'मौर्ख्य' से अपनी मूर्खता की भिड़न्त होने देंगे ?

आधुनिक साहित्यिक क्रान्ति पर भी वे अपना मूर्खता-मण्डित मत व्यक्त किया करते हैं। नई कविता देखते ही कहने लगते हैं—'यह तो गद्य टुकड़े होकर बिखर गया—कविता बन गया। छोटे-बड़े शब्दों और वाक्यों की ऊबड़-खाबड़ सीढ़ियाँ हिमालय की चोटी से चलकर नैपाल की तराई तक उतर आईं, कविता तैयार हो गई। नई कविता लज्जावती ललना-सी अपने अंग-प्रत्यंग को छिपाये रहती है, मन भी नहीं अघाता।'

उनके विचित्र विचारों को सुनकर ही महल्ला-भर उन्हें मूर्खाधिराज महाराज कहता है। होलिकांक में अपना परिचय पढ़कर वे महल्ला-भर काँख बजाते फिरेंगे।

—[साप्ताहिक 'हुँकार' (पटना), मूर्खांक, १९५० ई०]

माँ के सपूत

[बालोपयोगी शिक्षाप्रद जीवनियाँ]

अर्जुन की अस्त्र-परीक्षा

द्वापर-युग के अन्त में पाण्डु एक बड़े प्रतापी राजा थे। दिल्ली के पास हस्तिनापुर में उनकी राजधानी थी। उनकी बड़ी रानी का नाम कुन्ती था। उनके पाँच बेटों में तीसरे अर्जुन थे। लड़कपन से ही अर्जुन बड़े तेज तीरन्दाज और होनहार थे। छुटपन में ही उनके पिता मर गये। कुन्ती ने ही उन्हें पाल-पोसकर सयाना किया। उनके बूढ़े दादा भीष्म उनको बहुत मानते थे।

प्रसिद्ध वीर परशुराम के चेले और भरद्वाज मुनि के पुत्र द्रोण ने अर्जुन को हथियार चलाना सिखाया था। शुरू में द्रोण के साले कृपाचार्य से अर्जुन ने तीर-तलवार चलाना सीखा था। मगर मंत्रों के बल से चलाये जानेवाले हथियारों के गुरु द्रोण ही थे। द्रोण को बहुत दिनों से भीष्म ढूँढ़ रहे थे। एक दिन अर्जुन अपने सगे और चचेरे भाइयों के साथ नगर से बाहर मैदान में लोहे का एक भारी गोला लेकर गेंद खेल रहे थे। अचानक गेंद एक कुँए में गिर पड़ी। सब राजकुमार कुँए की जगत पर जाकर भीतर झाँकने लगे। किसी तरह गेंद न निकल सकी। इतने में घूमते-फिरते द्रोण उधर आ निकले। उनकी लम्बी दाढ़ी पककर सन हो गई थी। देह का चमड़ा सिकुड़ गया था। मगर तीर-कमान और तरकस-तलवार बाँधे हुए थे। हड्डियाँ फौलाद की तरह कठोर थीं। चेहरे से तेज बरसता था।

राजकुमारों को हाथ-पर-हाथ धरे बैठे देखकर द्रोण ने कारण पूछा। लड़कों ने कह सुनाया। उन्होंने तीर मारकर गेंद निकाल दी। लड़के उछल पड़े। दौड़े हुए बूढ़े दादा भीष्म के पास पहुँचे। वह झट भाँप गये कि हो-न-हो, द्रोणाचार्य ही हैं। उसी दम जाकर द्रोण को बड़े आदर से राजमहल में बुला लाये। बड़ी आव-भगत की। द्रोण गद्‌गद हो गये। उनका तो भाग्य खुल गया। भीष्म की आज्ञा से राजकुमारों को हथियार सिखाने लगे।

जिस दिन पढ़ाई शुरू हुई, उस दिन सब चेलों को एक साथ बुलाकर कहा—मैं तुम-लोगों को खूब मन से पढ़ाऊँगा; मगर पहले यह वचन दो कि मैं जो कुछ आज्ञा दूँगा उसे पूरा करने में कभी आना-कानी न करोगे। सब लड़के एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। अर्जुन ने बड़ी उमंग से आगे बढ़कर कहा—गुरुदेव, आप जो कुछ कहेंगे, मैं उसे बिना आगा-पीछा किये पूरा करूँगा। द्रोण ने प्रसन्न होकर अर्जुन को छाती से लगा लिया।

प्यार से माथा सूँघकर बोले—बेटा, तू ही मेरा सच्चा चेला होगा। तेरी ही करनी से मेरे मुँह की लाली रहेगी।

गुरु की आशीष झूठी नहीं हुई। सब चेलों में अर्जुन ही तेज निकले। लड़ने-भिड़ने, तीर-तलवार चलाने, गदा-मुगदर और घुड़सवारी में तो ऐसे फुर्तीले, चौकस और चुस्त-दुरुस्त निकले कि द्रोण फूले अंग न समाते। अर्जुन की गुरु-भक्ति से वे इतने प्रसन्न रहते कि अपने पुत्र अश्वत्थामा के साथ उन्हें भी एकान्त में हथियार चलाने की कई गुप्त विद्याएँ सिखाया करते। अर्जुन भी दिन-रात धनुष-बाण लिये गुरु की परिछाईं बने फिरते। एक दिन एक पेड़ पर एक बनावटी चिड़िया चुपके से रखवाकर द्रोण ने अचानक अपने चेलों से कहा—सब कोई तीर-कमठा लेकर मेरे सामने हाजिर हो; ज्योंही मैं आज्ञा दूँ, फौरन तीर छोड़ देना।

गुरु की आज्ञा पाते ही सब राजकुमार हाजिर हुए। द्रोण ने उँगली के इशारे से कहा—देखो, इस पेड़ पर वह एक चिड़िया बैठी है। ऐसा तीर मारो कि उसकी गर्दन कटकर नीचे गिर पड़े। जबतक मैं आज्ञा न दूँ, तबतक कोई तीर न छोड़ना। अच्छा युधिष्ठिर, तुम उस चिड़िया को देखते हो? युधिष्ठिर बोले—हाँ गुरुदेव, अच्छी तरह देखता हूँ। द्रोण ने फिर पूछा—उसके सिवा और कुछ देखते हो? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—देखने को तो आँख के सामने फैला हुआ सारा संसार ही देख रहा हूँ। इतना बड़ा पेड़ तो आगे ही खड़ा है।

द्रोण मुस्कुराये; युधिष्ठिर को अलग किया। एक-एक करके सब लड़कों से पूछा। किसी ने कहा—मैं पेड़ की डाल और उसपर बैठी हुई चिड़िया के सिवा कुछ नहीं देखता। कोई बोला—मैं सिर्फ चिड़िया ही देखता हूँ, उसके दो पैर और दो पंख हैं। द्रोण मुस्कुराते ही रहे। सबकी ओर से नजर फेरकर अर्जुन पर निगाह डाली। वह चुपचाप एक तरफ खड़े एकाग्र मन से चिड़िया को देख रहे थे। गुरु की नजर पड़ते ही होशियार हो गये, तीर-कमान सम्हाल लिये। गुरु ने पूछा—अर्जुन, तुम उस चिड़िया को अच्छी तरह देखते हो? अर्जुन झटपट निशाना साधते हुए बोले—नहीं गुरुदेव, समूची चिड़िया को मैं नहीं देखता, केवल उसकी गरदन और अपने तीर की बारीक नोक देख रहा हूँ, इसके सिवा और कुछ नहीं सूझता।

द्रोण प्रसन्न होकर बोले—शाबाश बेटा, मारो बाण। इधर द्रोण के मुँह से 'बाण' निकला, उधर अर्जुन के कमठे से तीर। चिड़िया का सिर कटकर जमीन पर आ गिरा। द्रोण ने अर्जुन को छाती से लगा लिया, माथा सूँघा, सिर सहलाया, पीठ ठोंकी और आनन्द के आँसुओं से सींच दिया। फिर बार-बार आशीर्वाद देते हुए बोले—बेटा, सचमुच तू ही दुनिया में मेरे नाम की लाज रखेगा। जा, आशीर्वाद देता हूँ, दुनिया में कोई वीर तेरी बराबरी न कर सकेगा। वीरों में तेरा नाम सदा के लिए अमर रहेगा।

अर्जुन ने गुरु के चरणों में माथा टेककर उनकी पवित्र धूल आँखों में लगा ली।

अभिमन्यु की वीरता

भारतवर्ष में इतिहास के दो बड़े-बड़े पुराने ग्रंथ हैं—रामायण और महाभारत। दोनों जग-जाहिर हैं। दोनों में वीर बालकों की बहादुरी का बखान मिलता है। रामायण में कुश और लव की कथा प्रसिद्ध है। उन दोनों वीर बालकों ने भरत-लक्ष्मण-जैसे अगड़धत्त वीरों के छक्के छुड़ा दिये थे। सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान आदि बाँके लड़ाकों की पूँछ पकड़-पकड़कर घसीट मारा था—बालक क्या थे, आफत के परकाले थे। उनकी बहादुरी की बड़ी-बड़ी बातें हैं; पर इस समय उन्हीं के समान एक दूसरे वीर बालक की कथा सुनाता हूँ—जैसे वे त्रेता-युग के अन्त में हुए थे, वैसे ही यह द्वापर-युग के अन्त में हुआ था। इसकी कथा महाभारत में लिखी है। नाम इसका अभिमन्यु था—अर्जुन का बेटा, भीम का भतीजा, श्रीकृष्ण का भानजा, सुभद्रा का लाड़ला। भला ऐसे बहादुर के बल और तेज का क्या ठिकाना! बाण चलाने में बाप के समान, रूप की सुघराई में मामा के समान! एक ओर देखता है बाप के हाथ में प्रचंड गांडीव, दूसरी ओर बड़े ताऊ के हाथ में खोपड़ी-चूरन गदा और सामने की ओर मामा के हाथ में संसार भर की शक्ति की बागडोर! फिर क्यों न उसका नया-नया खून लड़ाई के जोश से उबलता रहे—क्यों न बल की उमङ्ग से बोटी-बोटी फड़कती रहे—क्यों न उसके रोम-रोम से शक्ति की बिजली निकलती रहे—क्यों न वह अपने आगे भीष्म और द्रोण को तुच्छ समझे—क्यों न वह कर्ण और कृपाचार्य-जैसे महारथियों के दाँत खट्टे करने में समर्थ हो?

तुमने तो महाभारत पढ़ा होगा? याद करो वह दिन—लड़ाई के नगाड़े आकाश-पाताल हिला रहे हैं—एक सोलह वर्ष का सुन्दर सजीला नौजवान छोकरा, कवच-कुण्डल पहनकर, तीर-तरकस-कमान से लैस होकर, पीले घोड़ों के रथ पर खड़ा मुस्कुरा रहा है—माता आरती उतारती है, बुढ़िया दादी आशीर्वाद देती है, बड़े ताऊ पीठ ठोंककर शाबाश कहते हैं, बाप छाती से लगाकर माथा सूँघता है, मामा हँस-हँसकर मुँह चूमता है—वह फूला अंग नहीं समाता, कवच की कड़ियाँ कड़कड़ा रही हैं, भुजाएँ फड़क रही हैं, उँगलियाँ फरफरा रही हैं, चेहरे पर प्रसन्नता की झलक है, दिल में लड़ाई की ललक है, बस शंख बजने की देर है, फिर तो यह छोकरा शत्रुओं को छठी का दूध याद करा देगा।

वह देखो, युद्ध ठन गया है। कोसों का लम्बा-चौड़ा कुरुक्षेत्र वीरों की डरावनी ललकार से भर गया है, खून के फव्वारे छूट रहे हैं, रक्त के पनाले बह रहे हैं, हथियारों की झनकार से दसों दिशाएँ गूँज रही हैं—घोड़ों की हिनहिनाहट और हाथियों की चिग्घाड़ से आकाश फटा जा रहा है—चारों ओर घनघोर घमासान मचा हुआ है; पर वह बीच में बड़े जोर का हाहाकार क्यों हो रहा है? अच्छा! अभिमन्यु वहाँ गजब ढा रहे हैं, मानों हाथियों के झुण्ड में शेर दहाड़ रहा है। मालूम होता है, लहराते हुए समुद्र की छाती चीरकर बड़ा भारी जहाज आगे बढ़ता जा रहा है।

पर अब कैसे आगे बढ़ेंगे? वह देखो, महाराज बृहद्बल आकर भिड़ गये—रोक दिया रास्ता—छिड़ गई लड़ाई—छिप गये अभिमन्यु उनके बाणों से! पर यह क्या? बाणों की घटा को तितर-बितर कर तेजस्वी सूर्य की तरह अभिमन्यु निकल आये! मारा कसकर

बाण—बृहद्बल की ध्वजा कटकर खण्ड खण्ड हो गई। यह लो, अभिमन्यु ने उनके घोड़े भी मार डाले। बेचारे को विना रथ का कर छोड़ा। अब भला वह पैदल क्या लड़ेंगे ? ऐसे-वैसे वीर का सामना थोड़े ही है ? लोहे का चना है—वज्र का टुकड़ा है ! ठट्ठा नहीं है।

ओ, देखो—बूढ़े दादा भीष्म भी अपने ललाट का पसीना नहीं पोंछ पाते। क्या करें, परपोता दम नहीं लेने देता। जोर तो बहुत लगाते हैं, बूँदियों की तरह तीर बरसा रहे हैं; उनके साथ कृतवर्मा आदि वीर भी एँड़ी-चोटी का पसीना एक किये हुए हैं; मगर अभिमन्यु तनिक टस-से-मस नहीं होते। शरीर लहूलुहान हो गया है। बड़े-बड़े धुरंधर वीर घेरे हुए हैं; फिर भी पट्ठे की आँच तनिक कम नहीं होती। देखते देखते दादा की ऊँची ध्वजा काट ही डाली और चाचा भीम दूर ही से गरजकर बोल उठे—शाबाश बेटा !

आह ! यह क्या गजब हुआ ! इसी बीच अभिमन्यु के प्यारे साले उत्तरकुमार को शल्य ने मार डाला ! भला अब कुशल कहाँ ? उत्तर के भाई श्वेत और अभिमन्यु ने घटाटोप युद्ध ठान दिया ! कौरवों की सेना में त्राहि-त्राहि मच गई ! देख लो, वह दूर ही से दुर्योधन अपनी भागती हुई सेना को रोकता और सतरथियों को ललकारता आ रहा है।

वाह ! यह तो फिर जमकर लड़ाई ठन गई ! द्रोण, अश्वत्थामा आदि भीष्म की सहायता के लिए आ पहुँचे। पर धन्य हैं अभिमन्यु ! सबकी इच्छा पूरी कर दी - लड़ते-लड़ते शाम हो गई मगर फैसला न होने दिया—सब पर अपनी बहादुरी की धाक जमा दी ! साथ ही, कौरवों की आँखों के काँटे भी बन गये। उन लोगों ने उसी समय निश्चय किया कि किसी तरह इस छोकरे का काम तमाम करना चाहिए; नहीं तो पहले एक ही अर्जुन का भय था और यह दूसरा अर्जुन हुआ चाहता है !

बस, दूसरे ही दिन दुर्योधन के पुत्र राजकुमार 'लक्ष्मण' बड़े तपाक से अभिमन्यु के साथ आ भिड़े। दोनों जवान जी-भर लड़े; पर अभिमन्यु ने लक्ष्मण के रथ और हथियार का सफाया कर दिया—सारी हैंकड़ी हवा हो गई। बेचारा अपने पिता के रथ पर जा छिपा, और अभिमन्यु उसका पीछा छोड़ महाबली अम्बष्ठ के पीछे पड़ गये। फिर उसको भी पानी-पानी कर छोड़ा, बेचारा विना रथ और हथियार का होकर सिर पर पाँव रखकर भागा।

किन्तु दुर्योधन अपने वीर पुत्र की यह करारी हार भला कब सह सकता था ? उसने अपने बलवान मित्र अलम्बुष राक्षस को बढ़ावा दिया। वह एकाएक अभिमन्यु पर टूट पड़ा—बड़ा ही घनघोर युद्ध मचा; पर अभिमन्यु ने बड़ी मुस्तैदी से उसके सारे हौसले पस्त कर दिये—वह भी रथ छोड़ अपनी जान लेकर पैदल ही भाग खड़ा हुआ !

पांडवों की यह जीत दुर्योधन कैसे देखता रहे ? वह युधिष्ठिर के पकड़ने की बन्दिशें बाँधने लगा—उनको बीहड़ घेरे में डालकर पकड़ने के लिए चक्रव्यूह की लड़ाई ठानने का बन्दोबस्त किया। अर्जुन को कुरुक्षेत्र से अलग दूर हटा ले जाने का बीड़ा उसके मित्र और त्रिगर्त देश के राजा सुशर्मा ने उठाया, क्योंकि उनके रहते युधिष्ठिर का बाल-बाँका होना टेढ़ी खीर था।

सुशर्मा के झमेले में श्रीकृष्ण-सहित अर्जुन के फँस जाने से युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हो गये। माथा ठोंककर कहने लगे—अब चक्रव्यूह की भूल-भुलैया में पैठकर उसके—एक नहीं—सात पेचीले दरवाजों को कौन भेदेगा?

बड़े ताऊ को बड़ी उदासी के साथ ऐसा कहते देखकर अभिमन्यु बड़े उत्साह से बोल उठे—आप इतना उदास क्यों हो रहे हैं? पिताजी नहीं हैं तो क्या हुआ? मैं तो हूँ। मेरे रहते क्या उनके नाम पर दाग लग सकता है? जान लड़ाकर उनके मुँह की लाली रखूँगा। छः दरवाजों पर अगर इन्द्र और यमराज भी तैनात होंगे, तो मैं उन्हें बेधड़क तोड़ डालूँगा— केवल सातवें के भेदन का उपाय कीजिए।

यह सुनकर भीम मारे खुशी के उछल पड़े और अभिमन्यु को अँकवार में भरकर उठाते हुए बोले—वाह बेटा! जब छः दरवाजे तू तोड़ ही देगा, तब सातवें में क्या रखा है—उस एक को तो मैं गदा के प्रहार से चूर कर दूँगा।

फिर क्या था! अभिमन्यु सज-धजकर चक्रव्यूह में पैठ गये और कौरवों की सेना को बुरी तरह मथने लगे। किन्तु उनकी मदद के लिए दूसरा कोई अन्दर नहीं घुस पाया, फिर भी उन्हें तनिक चिन्ता न थी। अकेले ही द्रोण, कर्ण आदि महारथियों को मुँहतोड़ जवाब देते हुए आगे बढ़ते चले गये। जैसे मतवाला हाथी किसी तालाब में पैठकर कमलों को रौंद डालता है वैसे ही उन्होंने शत्रु की सजाई हुई सेना की कतारों को तितर-बितर कर डाला। किसी एक वीर से न बन पड़ा कि उनकी आँच सँभाल सके। अन्त को बहुत-से वीर-भट जत्था बाँधकर, उनके सामने आ डटे जिसमें एक लक्ष्मण कुँअर भी थे, जो हजरत एक बार उनको पीठ दिखा चुके थे, पर इस बार तो अभिमन्यु ने देखते-ही-देखते इनको तलवार के घाट उतार दिया। मचा हाहाकार! जुट पड़े सब-के-सब अभिमन्यु पर! लेकिन इतने पर भी उस वीर बालक के सधे हुए हाथ की सफाई देखकर सबके ललाट में सिकुड़नें पड़ गईं। द्रोण और कर्ण-सरीखे महारथी भी दाँतों-तले उँगली दबाकर रह गये।

जब अभिमन्यु ने सबको नाकोंदम कर दिया, तब दुर्योधन की सलाह से कर्ण ने उनके धनुष की डोरी काट डाली और उसी समय अश्वत्थामा ने उनका कवच छेद डाला और लगे हाथों दुःशासन ने भी उनके सारथी और घोड़ों को मारकर लक्ष्मण कुँअर की आग बुझा ली! किन्तु इतना सब होने पर भी अभिमन्यु के चेहरे पर तनिक उदासी नहीं आई। टूटे रथ का चक्का लेकर सबकी खबर लेने लगे। उस समय वह अपने मामा श्रीकृष्ण की तरह सुदर्शन-चक्र धारण कर प्रलय मचाते हुए-से दीख पड़े। जब द्रोण ने उस पहिये को भी काट डाला, तब उन्होंने गदा उठाई और अपने बड़े ताऊ भीम की तरह गदा-युद्ध में शोभायमान होकर शत्रु की सेना में हैजा फैला दिया। तबतक उधर से दुःशासन का बेटा, जो गदा-युद्ध में बड़ा शौख था, अखाड़े में उतर आया। दोनों नौजवान छोकरे दिल खोलकर लड़े और लड़ते-लड़ते एक दूसरे की गदा से घायल होकर बेहोश गिर पड़े।

चूँकि अभिमन्यु कई महारथियों को खेल खेलाते-खेलाते थक गये थे, इसलिए

उनकी बेहोशी दूर होने के पहले ही दुःशासन का लड़का सचेत हो उठा और धर्म-अधर्म का विचार छोड़कर अचेत पड़े हुए अभिमन्यु के सिर को अपनी गदा की गहरी चोट से चकनाचूर कर दिया। कुरुक्षेत्र की छाती पर खूनी अक्षरों में अपनी बहादुरी की अमिट छाप छोड़कर वह वीर बालक चल बसा !

कुश और लव की बहादुरी

पुराने समय के हिन्दू राजा अपनी प्रजा की असली हालत जानने के लिए भेष बदलकर सारे राज्य में फेरा लगाया करते थे। त्रेता-युग के प्रसिद्ध राजा श्री रामचन्द्र ने, एक बार अपनी राजधानी अयोध्या में फेरा लगाते समय एक धोबी के मुँह से अपनी प्यारी रानी सीता की निन्दा सुन ली, तब उन्होंने अपने गुप्त दूतों को असलियत की जाँच करने के लिए तैनात किया। जब दूतों से ठीक-ठीक मालूम हो गया कि रावण के यहाँ कुछ दिन सीता के रहने से प्रजा के मन में संदेह पैदा हो गया है, तब आज्ञाकारी लक्ष्मण को बुलाकर सीता को जंगल में छुड़वा दिया। उसी जंगल में वाल्मीकि मुनि का आश्रम था। मुनिजी ने अकेली सीता को रोते-कलपते देखकर अपनी कुटिया में बड़े आदर और नेह-छोह के साथ ला रखा। उस समय वह गर्भवती थीं। वहीं उनके दो बालक पैदा हुए—कुश और लव।

कुश बड़े थे, लव छोटे—दोनों-के-दोनों बड़े वीर। मुनिजी ने उन्हें खूब विद्या पढ़ाई—सब तरह की अस्त्र-विद्या भी सिखाई। दोनों ही बड़े तेजस्वी निकले। रामचन्द्र-जैसे प्रतापी पिता, सीता-जैसी सती-सुन्दरी माता, भरत-लक्ष्मण-जैसे धनुर्धर चाचा—फिर क्यों न वे बढ़े-चढ़े बहादुर हों ! तीर-कमान चलाने में ऐसे पक्के थे कि अपने तीनों चाचा को लड़ाई के मैदान में सुला दिया और लंका के विजयी वीर बन्दरों को मदारी के बन्दर की तरह नाच नचा डाला।

बात ऐसी हुई कि अयोध्या में श्रीरामचन्द्रजी ने अश्वमेध यज्ञ ठाना। यज्ञ का घोड़ा दिग्विजय के लिए छोड़ा गया। उसके साथ पहले शत्रुघ्न तैनात किये गये। वह लवणासुर को मार कर उसी जंगल में घोड़े के पीछे-पीछे जा पहुँचे। वहाँ लव ने घोड़ा पकड़ लिया। शत्रुघ्न ने उन्हें मुनि के बालक जानकर बहुत समझाया और धमकाया; पर लव ने विना लड़े घोड़ा देने से इनकार किया। फिर क्या था, छिड़ गई लड़ाई। एक तरफ अकेले कुश और लव, दूसरी ओर शत्रुघ्न और उनकी अपार सेना; किन्तु कुश और लव ने मारे बाणों के सबको बेदम कर दिया। शत्रुघ्न अचेत हो गिर पड़े. सेना भभरकर भाग चली।

लड़ाई के दूत दौड़े हुए अयोध्या पहुँचे—राजा रामचन्द्र से रघुवंशी सेना की दुर्दशा कह सुनाई। तब उन्होंने लक्ष्मण को भेजा और दोनों बालकों को बाँध लाने की आज्ञा दी ; पर बाँध लाना तो दूर रहा, लक्ष्मण उनके चेहरे पर तनिक सिकुड़न भी न ला सके।

मेघनाद के मारने में वह जितने अस्त्र काम में ला चुके थे, सबकी पूरी आजमाइश की; पर कुश और लव ने सबको फूँक उड़ाया। गदा-युद्ध में भी दोनों बालक अन्त तक डटे ही रह गये। आखिर उन्होंने लक्ष्मण को खेत में सुलाकर ही साँस ली। सेना में भगदड़ मच गई। पर वीर बालकों ने भागती हुई सेना का पीछा नहीं किया। कायरों पर हाथ उठाना वीरों का काम नहीं!

फिर दूतों ने जाकर रामचन्द्रजी के सामने 'त्राहि-त्राहि' पुकारा। तब उन्होंने तीसरी बार भरत को भेजा। साथ-साथ सुग्रीव, हनुमान, अंगद, विभीषण आदि भी गये। राम-रावण-युद्ध में इनके हौसले बढ़े हुए थे; पर जब कुश-लव से काम पड़ा तो सारी हेकड़ी किरकिरी हो गई। पहाड़ और पेड़ उखाड़ते-उखाड़ते हनुमान, अंगद के दम छूट गये—वीर बालकों ने सबको तिल समान काट फेंका। सुग्रीव बगलें झाँकने लगे, जाम्बवान सिर खुजलाते रह गये और विभीषण चिन्तित हो गये—भरत की समझ में न आया कि बालक किस धातु के बने हैं! वह क्रोध से जल उठे—कान तक कमान का रोदा तानकर ऐसा बाण मारा कि लव चक्कर खाकर गिर पड़े। अब तो कुश के रोष का ठिकाना न रहा। जान का मोह छोड़कर भरत के पीछे पड़ गये—उन्हें पानी-पानी कर डाला—लक्ष्मण और शत्रुघ्न की दशा को पहुँचाकर ही पिंड छोड़ा। भागी सेना हाहाकार कर तितर-बितर हो गई।

जब रामचन्द्रजी ने तीसरी बार दूतों से अपने भाइयों और सैनिकों की दुर्गति सुनी तब मन-ही-मन बहुत हँसे; क्योंकि वह सब जानते थे, पर मन की बात मन ही में रखकर नई सेना के साथ जंगल को चल पड़े। वहाँ जाकर अपने प्यारे वीर वानरों को खूब बढ़ावा देकर ललकारा। वे नये सिरे से उत्साहित होकर बड़े साहस के साथ लड़ने लगे; पर बालकों ने उनके चलाये पहाड़ों की धूल उड़ा डाली और पेड़ों को तिनकों के समान चूर-चूर कर दिया। जाम्बवान और हनुमान को बाँधकर घोड़े की रखवाली सौंप दी—सुग्रीव, अंगद और विभीषण को बुरी तरह फटकार बताई—वह-वह फबतियाँ सुनाईं कि वे सिर न उठा सके!

इस प्रकार सबको पस्त करके वे रामचन्द्रजी के पास लड़ने की लालसा से आये, तो देखा कि वह अपने रथ पर बेफिक्र सोये हुए हैं। तब उन्होंने बेखबर पड़े हुए भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के शरीर से अच्छे-अच्छे कपड़े उतार लिये और बन्दी बन्दरों तथा घोड़ों के साथ हँसते खेलते अपनी माता के पास पहुँचे। जब सीता ने उन कपड़ों और बन्दरों को पहचाना और अपने बालकों के मुँह से सारी रामकहानी सुनी, तो उनके आश्चर्य और दुःख का ओर-छोर न रहा। वह धरती पर लोटकर रोने लगीं। बेचारे मुनिजी अपने आश्रम में ऐसी घटना की घनघोर काली घटा घिरी देखकर बड़े परेशान हुए। किसी-किसी तरह सीता को समझा-बुझाकर उन बालकों के साथ रामचन्द्रजी के पास गये और वहाँ उनका परिचय देकर घोड़ा-सहित उन्हें रामचन्द्रजी के हवाले किया। सारा झगड़ा तय हुआ।

बिछुड़ी हुई प्राणप्यारी सीता और रणबाँकुरे पुत्रों को गले लगाकर रामचन्द्रजी का हृदय आनन्द से नाच उठा।

वीर बालक का बलिदान

जिस समय इस देश में मुगल-बादशाह औरंगजेब राज करता था, उस समय पंजाब में सिक्खों का बड़ा जोर था। उनके गुरुदेव श्री गुरु गोविन्दसिंहजी बड़े प्रतापी, वीर और अचूक तीरन्दाज थे। उन्होंने अपने जोशीले उपदेशों से सिक्खों को लड़ाका और बहादुर बना दिया था। उनके डर से आस-पास के राजा और सूबेदार थर-थर काँपते थे। कई लड़ाइयों में उन्होंने मुगल-फौज के दाँत खट्टे कर दिये थे।

उनके दो बड़े बेटे अजीत सिंह और जुझार सिंह भी बड़े साहसी थे। जिस समय 'चमकौड़' के किले में गुरु-साहब को मुगलों की फौज घेरे हुए थी, उस समय ये दोनों वीर बालक अपने पिता की आज्ञा पाकर तलवार भाँजते हुए किले से निकले और कई सरदारों तथा सिपाहियों को तलवार के घाट उतारकर स्वयं भी खेत रहे।

अजीत सिंह उस समय अठारह वर्ष के थे और जुझार सिंह चौदह वर्ष के। पहले अजीत सिंह ही मुगलों की फौज में घुसे थे। उनके काम आते ही जुझार सिंह ने पिता से आज्ञा माँगी। पिता ने बेटे की पीठ ठोंककर हौसले से बिदा किया। चलते समय जुझार सिंह ने पीने को पानी माँगा। पिता ने उत्साह बढ़ाते हुए कहा—बेटा, यहाँ कहाँ पानी है? पानी तो तुम्हारे बड़े भैया के पास है। वहीं जाकर पानी पी लेना। बस, इसी कड़खे पर बड़े जोम से जुझार सिंह मुगल-सेना में घुस गये। शत्रुओं के रक्त से अपनी प्यास बुझाई और कितनों के छक्के छुड़ा दिये।

गुरु-साहब के दो बड़े बेटे तो इस तरह लड़ाई में मारे गये, और दो छोटे बेटे धर्म के नाम पर दीवार में चुन दिये गये। इन दोनों का नाम था—जोरावर सिंह और फतह सिंह। जोरावर सिंह की उम्र नौ साल की थी और फतह सिंह की सात साल की। ये दोनों भी बड़े निडर और धर्म के पक्के थे। संयोग की बात—आनन्दगढ़ के किले से भागकर अपनी बूढ़ी दादी के साथ ये लोग अपने एक पुराने नौकर के घर में छिपे हुए थे। नमकहराम नौकर ने बादशाह के डर से कोतवाल को खबर दे दी। कोतवाल ने इन्हें पकड़कर सरहिन्द के सूबेदार के पास चालान कर दिया। संग में बूढ़ी दादी भी थी। सरहिन्द का सूबेदार गुरु गोविन्द सिंह से हार खाने के कारण बहुत चिढ़ा हुआ था। इसलिए शेर के बच्चों को अपने पंजे में फँसा देख वह बड़ा प्रसन्न हुआ। इन्हें कैद करके वह बदला चुकाने का उपाय सोचने लगा।

एक दिन भरे दरबार में दोनों बालक बुलाये गये। बूढ़ी दादी ने दोनों लाड़लों के सिर पर हाथ फेरकर कहा—मेरे लाल! धीरज न छोड़ना, अपने धर्म पर डटे रहना, परमात्मा रक्षक है। वीर दादी का आशीर्वाद लेकर जब दोनों भाई सूबेदार के

दरबार में पहुँचे, तब दरबारी लोग इनका सुन्दर रूप और प्रचण्ड तेज देखकर दंग रह गये। सूबेदार ने गरजकर कहा—ऐ लड़को! अगर जीना चाहते हो, तो हिन्दू-धर्म छोड़कर मुसलमान हो जाओ, नहीं तो मरवा डालूँगा।

बालक जोरावर सिंह ने मुस्कराकर बड़ी शोखी से जवाब दिया—हम अपना धर्म हरगिज न छोड़ेंगे। चाहे जो दण्ड देना हो, सब कबूल है। जान से भी बढ़कर धर्म प्यारा है।

सूबेदार ने भयानक हँसी हँसकर कहा—ऐ नादान बच्चो! क्यों नाहक जान गँवाते हो? मुसलमान हो जाओगे तो बादशाह की बगल में बैठोगे; हीरा-जवाहिर-जड़े कपड़े पहनोगे, नवाब-घराने की ख़ूबसूरत लड़कियों से शादी कर सकोगे, बड़ी इज्जत और चैन से जिन्दगी के दिन गुजारोगे।

बालक जोरावर सिंह ने फिर तिरस्कार की हँसी हँसकर जवाब दिया—नादान बच्चों की तरह तो तुम खुद बातें कर रहे हो और हमें बेकार नादान बतलाते हो। भला, हम क्यों नाहक धर्म गँवाने लगे। हम तो अपने धर्म के लिए मरने को तैयार हैं। इज्जत और दौलत की तो बात ही क्या, स्वर्ग मिलने पर भी हम अपना धर्म नहीं छोड़ सकते।

सूबेदार दाँत पीसता हुआ बोला—तो फिर मरने के लिए तैयार हो जाओ। मुसलमानी मजहब न मानने की यही सजा है। यही हमारी मजहबी किताब का हुक्म हुआ है।

बालक जोरावर सिंह ने तनकर कहा—तो हमारे गुरु का भी यही हुक्म है कि जान गँवाकर भी धर्म की रक्षा करना। तुम अपने मजहब का हुक्म मानो; हम अपने धर्म की टेक निबाहेंगे।

दरबारी लोग मन-ही-मन बालकों की हिम्मत का बखान करने लगे। सूबेदार ने फतह सिंह को फुसलाकर फोड़ना चाहा—अलग ले जाकर बहुत समझाया, पर सात वर्ष के उस वीर बालक ने साफ कह दिया—मैं बड़े भैया का साथ न छोड़ूँगा, धर्म पर बलि चढ़ जाना मुझे बहुत पसन्द है। आखिर लाचार होकर सूबेदार ने काजी साहब से राय पूछी। वे बोले—आखिर ये साँप के बच्चे हैं, इन्हें जीता छोड़ना ठीक नहीं। अगर जिद्द नहीं छोड़ते, तो फौरन कत्ल करा दीजिए।

इसपर सूबेदार कुछ सोच-समझकर बोला—मेरी राय है कि इन्हें मार डालने की कोई ऐसी तदबीर सोची जाय, जिससे मरते दम तक इनको अपनी बेवकूफी समझने और जिद्द छोड़ने का मौका मिले। आखिर लड़के ही तो हैं, शायद जान के डर से इस्लाम कबूल कर लें।

इस पर सब लोगों ने यही राय दी कि दोनों बालकों को एक-साथ खड़ा करके उनके चारों ओर से ईंट की दीवार खड़ी कर दी जाय। बस, यही बात तय हुई। दोनों बालकों को एकसाथ खड़ा करके ईंटों की जुड़ाई शुरू हो गई। इस समय सूबेदार ने लाख तरह से बहकाने की चेष्टा की; पर कुछ फल न हुआ। घुटने से कमर, कमर से

छाती, छाती से गरदन और गरदन से नाक तक दीवार पहुँच गई—बीच-बीच में सूबेदार चेतावनी देता गया, मगर दोनों बालक अन्त तक अपने धर्म की आन पर खड़े ही रहे। जब नाक के ऊपर दीवार चुनी जाने लगी, तब भी सूबेदार ने आखिरी दफा कहा—ऐ लड़को! अब भी होश करो, नहीं तो थोड़ी देर में तड़प-तड़पकर मरना पड़ेगा।

बड़े कुँअर ने डाँटकर कहा—चुप रह पापी! बार-बार गुरु के ध्यान में बाधा क्यों डालता है? बस, अब क्या—दीवार पूरी चुन दी गई। 'ओम् सत् गुरु'—कहते-कहते दोनों धर्म-वीर बालक दुनिया की आँखों से ओट हो गये और उसी दिन से हिन्दू-धर्म के निर्मल आकाश में दो चमकीले सितारे बनकर जगमगाने लगे।

कलियुगी भीम : राममूर्ति

मुजफ्फरपुर शहर में उस दिन बड़ा उत्साह था। वहाँ के एक नवाब साहब ने प्रोफेसर राममूर्ति से बाजी लगाई थी। नवाब साहब की मोटर राममूर्ति रोक लें तो उन्हें ५००) रुपये इनाम मिलेंगे, नहीं तो नवाब साहब ही उनसे १०००) रुपये जुर्माना वसूल करेंगे। खेल के उस बड़े तम्बू में तिल धरने की जगह नहीं थी। नवाब साहब अपनी मोटर के साथ हाजिर थे। ठीक समय पर तम्बू के अन्दर एक छोटी-सी कनात से, बैंड बाजों के शब्दों के साथ, एक जवान मस्तानी चाल से निकला। उसकी पोशाक सोने के तमगों से भरी हुई चमचमा रही थी। चारों ओर घूमकर उसने दर्शकों को हँसते हुए नमस्कार किया। नवाब साहब की मोटर की पिछली ओर से एक रस्सा लगाकर उसकी कमर में बाँध दिया गया। उसने नवाब साहब से अपनी मोटर तेज करने को कहा। पहली बार मोटर दो-चार कदम आगे बढ़ी—दर्शकों के मुख पर हवाई छूटी—राममूर्ति हार गये! फिर वह जवान हँसते हुए पीछे हटा। इस बार नवाब साहब ने अपनी मोटर ज्योंही तेज की, वह एक गड़े हुए तख्ते से पैर अड़ाकर लेट गया। जो मोटर एक-दो हाथ आगे थी, खिंचकर पीछे आ गई। नवाब साहब ने मोटर को पूरी ताकत में तेज कर दिया, जोर के मारे मोटर उछल रही है—धक्-धक् शब्द से तम्बू भर गया है, किन्तु राममूर्ति टस से-मस नहीं होते। बेचारे नवाब साहब की लाख चेष्टाएँ व्यर्थ हुईं—मोटर आगे नहीं बढ़ी। दर्शकों ने ताली पीटी! राममूर्ति की जीत हुई!! फिर राममूर्ति ने एक अपनी मोटर मँगाई। नवाब साहब की मोटर और अपनी मोटर—दोनों को दो रस्सों में बाँधकर उन रस्सों को अपनी कमर में बाँधा। तब दोनों मोटरों को उलटी दिशाओं में हाँकने की आज्ञा दी। पहले ही की तरह दोनों मोटरें फुदकने लगीं—किन्तु राममूर्ति जरा भी नहीं डिगे। दर्शकों के आनन्द की सीमा न रही, तालियों की गड़गड़ाहट से तम्बू फटा पड़ता था।

आज हिन्दुस्तान के घर-घर में राममूर्ति का नाम फैला है—वह कलियुगी भीम थे। हाथी को अपनी छाती पर चढ़ा लेते थे। २५ घोड़े की ताकत की दो-दो मोटरें रोक लेते

थे। छाती पर बड़ी-सी चट्टान रखकर उस पत्थर को टुकड़े-टुकड़े करवा देते थे; आधा इञ्च मोटे लोहे की जंजीर को कमल की डण्ठी के समान आसानी से तोड़ देते थे। पचास आदमियों से लदी हुई गाड़ी को देह पर से गुजरने देते थे। यही नहीं, ७५ मील की तेजी से दौड़ती हुई हवागाड़ी उनके शरीर पर से पार हो जाती थी। यह अलौकिक बल था, दैवी शक्ति थी, सुनकर अचरज होता था, देखकर दाँतों अँगुली दबानी पड़ती थी, किन्तु यह सब बातें देखने में असाध्य मालूम पड़ने पर भी असम्भव नहीं हैं। यदि कोशिश की जाय, तो हरएक आदमी राममूर्ति के ऐसा हो सकता है—हाँ, वह कोशिश हो लगन से। राममूर्ति स्वयं कहते थे—'निष्फलता ? निष्फलता ? निष्फलता क्या है, राममूर्ति ने नहीं जाना। एक बार, दो बार, तीन बार, पाँच बार, दस बार, कोशिश करते चलो, सफलता अवश्य मिलेगी। 'डू और डाई'—'करूँगा या मरूँगा'—'कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि'—यही हमारा मूल मन्त्र है।

राममूर्ति का यह अलौकिक बल लगातार की कोशिशों का फल था—यह ईश्वर का दान नहीं था, इनाम था। बचपन में प्रोफेसर राममूर्ति बड़े ही दुबले-पतले थे। दो ही वर्ष की उम्र में उनकी माता परलोक सिधारी थीं। पाँच वर्ष की उम्र में ही उन्हें दमा (साँस) हो गया था। उनका चेहरा मरीज-सा मालूम होता था। अपनी देह की कमजोरी पर उन्हें बचपन से ही दुःख था। भीम, लक्ष्मण, हनुमान आदि की कथाएँ सुनकर उनके मन में एक गुदगुदी पैदा हो जाती थी। वह सदा सोचा करते—ओह ! मैं भी हनुमान और भीम-सा, लक्ष्मण और भीष्म-सा बली होता ! स्कूल में पढ़ते-लिखते समय भी वह इसी कल्पना में रहते। वह एक जगह अपने बचपन के विषय में कहते हैं—

'जिस समय स्कूल के विद्यार्थी हिसाब जोड़ने में डूबे रहते, उस समय यह छोटा-सा बालक, जिसकी अवस्था केवल १०-११ वर्ष की थी, अपनी कल्पना से विन्ध्याचल के जंगलों में और खेतों या कुञ्जों में पहुँच जाता। दंडक-वन में, अपनी कल्पना के बल से पहुँचकर, यह लक्ष्मण के साथ बातें करता, अचरज और स्तुति से भरी हुई आँखों से यह रामचन्द्र की तीरन्दाजी देखता, कुरुक्षेत्र में अर्जुन के सामने भयंकर रूप से गुरजते हुए भीष्म के काले बाणों को आते देखकर इसकी छाती धड़क उठती और भीम की गदा से थरथराते, रथ में चढ़कर भागते हुए दुर्योधन को देखकर इसे हँसी आ जाती। कभी-कभी समुद्र के किनारे रावण की नगरी में वह पहुँच जाता और वहाँ दाँत से मोतियों को चूर-चूरकर फेंकते हुए हनुमान से भेंट-मुलाकात करता।'

केवल कल्पना में ही लगे रहने से काम नहीं चलता। कर्मवीर पुरुष अपनी कल्पना को कार्य के रूप में बदलते और संसार में विजयी नाम पाते हैं। बालक राममूर्ति ने भी कसरत करना शुरू किया। अपने स्कूल की टीम में नाम लिखाकर वह फुटबॉल आदि खेलने लगे। कुछ दिनों तक शौक से सैंडो के डम्बेल्स भी घुमाये, विलायती ढंग की अनेक कसरतें कीं। इनसे उन्हें अधिक लाभ न पहुँचा। हारकर देशी ढंग से कसरत करना शुरू किया—अखाड़े की शरण ली। डंड-बैठक, कुश्ती में मन लगाया। वह कहते थे—

'शुरू-शुरू कसरत करने में शरीर अकड़ने लगता था। बहुत बार मैं आधी

कसरत करके ही छोड़ देता। अखाड़े में आना दुस्तर मालूम पड़ता; किन्तु तुरन्त ही मेरे मन के देवता जग पड़ते। अपने आदर्श को सिद्ध करने की मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी। यदि ऐसा न करूँ तो मृत्यु अच्छी, यह समझकर, कई बार मरने का भी निश्चय कर लिया था। अन्त में दुर्बलताओं पर मुझे विजय मिली। धीरे-धीरे कसरत बढ़ने लगी। उस समय मेरी कसरत का ऐसा सिलसिला था—भोर ही उठकर घर से तीन कोस तक दौड़ता। एक फौजी अखाड़ा था, वहाँ जाकर खूब कुश्ती लड़ता। उस समय मेरे अखाड़े में डेढ़-सौ जवान थे। उनसे कुश्ती करने के बाद, सुस्ताकर मैं तैरने जाता! पीछे तो इतनी भी शक्ति न रहती कि मैं खड़ा रह सकूँ, मेरे साथी मुझे ऊपर ले जाते और मेरा लंगोट भी वे ही खोलते। फिर साँझ को पन्द्रह सौ से लेकर तीन हजार डंड और पाँच हजार से लेकर दस हजार तक बैठक कर लेता। यही मेरी रोजाना कसरत थी। इसका फल यह हुआ कि सोलह वर्ष की उम्र में मुझमें इतनी ताकत हो गई कि नारियल के पेड़ पर जोर से धक्का मारता तो दो-तीन नारियल टूटकर भद-भद गिर पड़ते।'

इस समय राममूर्ति का भोजन भी गजब का था। दही उनका प्यारा भोजन था। दिन के बारह बजे कसरत आदि से निपटकर वह बादाम का शर्बत पीते। पीछे दो-तीन सेर दही, तरकारी और भात तथा आधा सेर घी खाते, रात में थोड़ा-सा भात और दही, दिन में दो-तीन सेर बादाम उनके पेट में जाता और कभी-कभी एकाध सेर मलाई में सोना-चाँदी के वर्क भी चाट जाते। दूध पसन्द नहीं था। मांस, मछली और शराब आदि से तो सदा दूर रहते थे।

बल तो असाधारण हो गया, देह का चढ़ाव-उतार और सुघराई देखकर लोग सिहाते, किन्तु अब राममूर्ति को अपने बल की परीक्षा देने के लिए छटपटाहट शुरू हुई। संयोग की बात, उसी समय युजेन सैंडो नामक सुप्रसिद्ध यूरोपीय पहलवान, संसार में बल का डंका पीटता हुआ, संसार के नामी-नामी पहलवानों को पछाड़ता हुआ हिन्दुस्तान में पहुँचा। जब वह मद्रास आया, राममूर्ति उसके बल की जाँच करने को व्याकुल हो गये। आप कहते थे—

'सैंडो के बल की परीक्षा किस प्रकार हो और मैं उसके आगे टिक सकूँगा कि नहीं, यह जानने को मेरे मन में सदा चिन्ता रहती। आखिर मैंने सैंडो के नौकर से दोस्ती की। उस नौकर को मैंने नशीली चीज खिला दी और जब वह नशे में ऊँघने लगा, मैं तम्बू में घुस गया और सैंडो के डंबेल्स को आजमाया। मुझे तुरत विश्वास हो गया कि सैंडो केवल अपनी चालाकी से कीर्त्ति लूट रहा है। वह बली है जरूर, किन्तु जितना वह बताता है, उतना नहीं। दूसरे ही दिन मैंने उसे चैलेंज दिया—कुश्ती लड़ने को ललकारा, किन्तु खानगी में जाँच करने पर उसे मालूम हो गया कि मैं उससे अधिक बली हूँ। इसलिए उसने यह कहकर अपनी इज्जत बचाई कि मैं काले आदमी से कुश्ती नहीं लड़ सकता। मुझे विश्वास था कि सैंडो के साथ कुश्ती लड़ने से और उसे पछाड़ने से मेरी नामवरी होगी, किन्तु उसके मुकर जाने के कारण मेरे मन की मन में ही रह गई।'

जो कुछ हो, सैंडो के देखने से राममूर्ति के मन में भी घूम-घूमकर अपने बल की करामत दिखाने का उत्साह हुआ। पहले वह किसी सरकस में भरती होकर अपनी करामात दिखाना चाहते थे। किन्तु लोकमान्य तिलक के बढ़ावा और मदद देने पर उन्होंने अपना एक अलग सरकस कायम किया। सैंडो ने बोझ उठाने में अधिक नामवरी पाई थी—वह पचास मन का बोझ उठा लेता था। राममूर्ति इससे दूना-तिगुना बोझ उठा लेते। वह अपने खेल में लगभग सौ मन का हाथी कलेजे पर रख लेते थे, यह बात तो जग-जाहिर थी।

हिन्दुस्तान में अपने बल का डंका पीटकर राममूर्ति विदेश भी गये। इंगलैंड, फ्रांस आदि यूरोपीय देशों में भी उनकी धाक बँध गई। यही नहीं, उनकी वीरता देखकर कितने विदेशी जलने भी लगे। उन लोगों ने राममूर्ति को मार डालने के लिए भी कोशिशें कीं। मलाका द्वीप में इन्हें दो बार जहर दिया गया। पहली बार तो जहर का कोई लक्षण भी न मालूम हुआ। उनकी जबर्दस्त अँतड़ी उसे साफ पचा गई, किन्तु दूसरी बार इन्हें इतना जहर दिया गया जिससे बलवान घोड़ा तक मर जा सकता था। जहर के लक्षण मालूम होते ही राममूर्ति लँगोट बाँधकर पाँच हजार डण्ड खींच गये। पसीने के साथ बहुत-कुछ जहर निकल गया, तो भी बहुत दिनों तक वह खाट पर पड़े रहे। यों फ्रांस में कुछ दुष्टों ने फरफंद रचकर उन्हें मारने की कोशिश की। राममूर्ति छाती पर हाथी चढ़ाने के पहले एक तख्ता रख लेते थे। उसी पर हाथी अपना पैर ठीक रखता था, जिससे पूरा बोझ उनकी छाती पर पड़े। वहाँ पर दुष्टों ने इनके यूरोपीय मैनेजर को घूस देकर उस तख्ते को बीचोबीच दो टुकड़े कर डाला और फिर सरेस से जोड़ दिया। ज्योंही राममूर्ति की छाती पर हाथी आया, सरेस कबतक टिकता, तख्ता तड़क कर टूट गया। हाथी का एक पैर राममूर्ति की छाती पर कुठौर पड़ गया। पसली की तीन हड्डियाँ टूट गईं। वह बेहोश हो गये। उन्हें छः हफ्ते अस्पताल में रहना पड़ा। इसी कारण राममूर्ति जर्मनी न जा सके, जहाँ से इन्हें न्यौता आया था। आस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि देशों में भी वे जाना चाहते थे, किन्तु कई विघ्न आ पड़ने के कारण नहीं जा सके। राममूर्ति ने यूरोप के पहलवानों को कुश्ती के लिए ललकारा था; किन्तु कोई सामने न आ सका। राममूर्ति के पहले ही गामा और इमामबख्श दो नामी भारतीय पहलवानों ने इंगलैंड जाकर स्टेन्सेलर्स जिबिस्को नामक रूसी पहलवान को पछाड़ा था, इसलिए हेकेनस्मिथ नामक मशहूर यूरोपीय पहलवान भी उनके सामने आने की हिम्मत न कर सका।

राममूर्ति का जन्म दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश में वीरपट्टम नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता पुलिस इन्सपेक्टर थे। उनकी इच्छा थी कि भारतवर्ष में अखाड़े खुलें और यहाँ के बालकों और युवकों में वीरता का संचार किया जाय। इसी काम के लिए उन्होंने एक स्कीम भी बनाई थी—जिसे इन्दौर-राज्य ने अपने स्कूलों के लिए मंजूर कर लिया था। राममूर्ति कोरे बली ही नहीं, बुद्धिमान भी थे। उन्होंने इण्ट्रेन्स तक अँगरेजी पढ़ी थी। संस्कृत भी जानते थे; हिन्दी भी बोल सकते थे। वह ब्रह्मचर्य के कट्टर पक्षपाती थे।

उन्होंने अपनी शादी भी नहीं की थी। उठती जवानी में उनकी छाती का घेरा ४८ इञ्च का था, फुला देने पर वह ५६ इञ्च तक हो जाता था। उनका स्वभाव बड़ा हँसमुख था—हँसी को वह स्वास्थ्य के लिए बड़ा उपयोगी समझते थे। पवित्रता को ब्रह्मचर्य की नींव समझते थे—मन से, वचन से और तन से पवित्र रहो, सादा भोजन करो, सरल जीवन रखो, हर रोज कसरत करो, इसी को संसार में सुखी रहने का मूल मन्त्र मानते थे। भारत के नवयुवकों की वर्त्तमान दुर्बलता देखकर उनके हृदय में चोट पहुँचती थी—उनके उद्धार के लिए व्याकुल होकर वह कहते थे—

'भारत के युवकों का उद्धार—यही मेरे जीवन का सूत्र है। कृष्ण और लक्ष्मण, भीम और भीष्म या हनुमान के ऐसे हों या न हों, किन्तु देश में युवकों की एक अजेय सेना तैयार हो, यही मेरी कामना है।' देश के कोने-कोने में घूमकर राममूर्ति ने युवकों को प्रोत्साहन दिया था। मन, वचन, तन और धन से राममूर्ति हिन्दुस्तान के नौजवान का सेवक बना था। राममूर्ति गया, किन्तु मरने के पहले यह आश्वासन चाहता था कि—मेरी सेवा भारत-माता के चरणों में स्वीकृत हुई है।

युजेन सैंडो

युजेन सैंडो यूरोप का नामी पहलवान था। वह सारी दुनिया में मशहूर था। उसे लोग 'यूरोप का भीम' कहते थे। उसने दुनिया के अनेक देशों में घूमकर अपने बल का डंका पीटा था। इस देश में भी आया था। सब जगह बड़ा आदर हुआ। इसका एक कारण था—वह केवल पहलवान ही नहीं, विद्वान भी था। उसने पहलवानी विद्या पर कई किताबें भी लिखी हैं। अपनी एक किताब में अपने बारे में उसने लिखा है—

'लड़कपन में मैं बहुत दुबला-पतला और कमजोर था। एक बार मेरे पिता अपने साथ मुझे इटली की राजधानी रोम नगरी में ले गये। उस समय मैं दस वर्ष का था। वहाँ मुझे रंग-बिरंगे पत्थर और धातु की बनी हुई सुडौल मूर्त्तियाँ देखने को मिलीं। उनकी गढ़न देखकर मेरे मन में यह इच्छा हुई कि मेरी देह भी इन्हीं की तरह गठीली होती! मैंने अपने पिता से पूछा कि आजकल ऐसे डीलडौल के आदमी होते हैं या नहीं? इसपर मेरे पिता ने बताया कि इस जमाने में ऐसे मजबूत आदमी नहीं होते। ये मूर्त्तियाँ उस जमाने की हैं जब देह का बल ही सब-कुछ समझा जाता था, जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली कहावत सच्ची मानी जाती थी; और, अपनी देह के बल के सहारे ही लोग जिया करते थे। उन्होंने यह भी बताया कि आजकल की तरह उस जमाने के आदमी शौकीन और आलसी नहीं होते थे। आजकल के लोगों की देह पिलपिली और नसें ढीली होती हैं, उन दिनों लोगों की देह ठोस और इस्पात की तरह कड़ी होती थी।

'पिता की बात मुझे लग गई। मैं घर आकर अपनी देह की ताकत बढ़ाने लगा। रोज कसरत करने से मेरी देह भरने लगी। नसों में उभाड़ पैदा होने लगा। हड्डियों

की गाँठों में कूवत मालूम होने लगी। घर की भारी-भारी चीजें उठाना, मुग्दर हिलाना, डंड-बैठक करना, साँस रोककर दौड़ना, दम बाँधकर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ना, छाती के बल पानी में तैरना, हर जगह जोर आजमाते फिरना—यही मेरा रोज का काम था। मैंने कभी किसी तरह का पुष्ट भोजन नहीं किया और किसी चीज के खाने से परहेज नहीं किया। मगर रोज ठीक समय पर बड़ी सफाई और सहूलियत के साथ, आनन्द-भर भोजन करता था। किसी खास चीज के खाने में कभी अति नहीं की। मुझे केवल कसरत से ही अपना बल बढ़ाने की धुन सवार थी।

'वही हुआ भी। दस वर्ष के अन्दर मेरी देह देखने लायक हो गई। लगभग बीस वर्ष की उम्र में मैं लन्दन गया। वहाँ सैम्सन नाम का एक बड़ा जबर्दस्त पहलवान अपनी तरह-तरह की करामातें दिखा रहा था। उसने यूरोप के कई देशों में डंका बजा-कर बड़े-बड़े पहलवानों को पराजित कर दिया था। इससे उसका मन बहुत बढ़ा हुआ था। मैं उसकी ललकार पर जा डटा। उसने अपने जानते मेरे बल की खूब जाँच की। अन्त में मैं उसकी कसौटी पर सोलह आने खरा निकला। पर वह अपनी बात पर कायम न रहा। जो इनाम तय हुआ था, उसका आधा भी उसने नहीं दिया।

'मैं इङ्गलैंड से अपने देश जर्मनी लौट आया। एक दिन मैंने एक ऊँचा-पूरा और हट्ठा-कट्ठा आदमी देखा। वह मानों आदमी के वेश में राक्षस था। उसकी ऊँचाई छः फीट ढाई इञ्च थी। उसके एक जूते में मेरे दोनों पैर मजे से अँट जाते थे—सिर्फ अँटते ही न थे, मैं उन्हें अच्छी तरह उसके अन्दर चारों ओर घुमा भी सकता था। उसके शरीर की तौल पाँच मन और छाती की चौड़ाई ८० इंच थी। वह खान में काम करता था। बड़ी-बड़ी चट्टानों को खेल में उठाकर गाड़ी की गाड़ी लाद देता था। मैं उसकी शक्ति देखकर मोहित हो गया। उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया। पर वह बड़ा भारी आलसी निकला। भारी-भारी बोझ उठाने के सिवा वह और किसी मर्ज की दवा न था। पाँच मन वजन की चीज उठा लेना तो उसके बायें हाथ का खेल था। उसका नाम था—कार्ल वेस्टफल।

'एक बार अमेरिका के सनफ्रांसिस्को नगर में मुझे शेर से लड़ना पड़ा। बीस हजार से भी अधिक तमाशबीनों के सामने मैं अखाड़े में उतरा। शेर पिंजड़े से निकालकर खुला छोड़ दिया गया। मैं ताल ठोंककर भिड़ गया। मेरा शरीर लहू-लुहान हो गया, मगर पट्ठे को पछाड़कर छोड़ा। दूसरे दिन फिर उन जानवरों के राजा साहब से मुठभेड़ हुई। उस दिन राजाजी की आँखें बराबर न हुईं। मैंने उनकी पूँछ तक ऐंठ डाली; पर वे सूधी गैया ही बने रहे। फिर मैंने उनकी जीती-जागती लाश को अपने कन्धे पर उठा लिया और तमाशबीनों के सामने चारों ओर चक्कर लगाया। उस समय तालियों की गड़गड़ाहट से पंडाल फटा जाता था—वाह-वाह की ऊँची आवाज से आकाश भर गया था।'

इन बातों से साफ मालूम होता है कि सैंडो ने स्वयं अभ्यास करके अपनी शक्ति को कहाँ तक बढ़ा लिया था। तारीफ तो यह है कि अपनी शक्ति से उसने खुद तो नाम और

यश कमाया ही, दुनिया का भी बहुत-कुछ उपकार कर गया। जहाँ-जहाँ वह गया, सब जगह उसने अखाड़े खोल दिये। प्रधान अखाड़ा लन्दन में है। अखाड़ों में पुरुषों और स्त्रियों के लिए अलग-अलग कसरत करने के स्थान हैं। कितने लोग आजतक सैंडो की शिक्षा से लाभ उठा चुके, इसका कोई ठिकाना नहीं। लंकाशायर का एक राबिन्सन-नामक अपाहिज बालक अपने निकम्मे अंगों से निराश होकर जिन्दगी के सुख से हाथ धो बैठा था, पर सैंडो की हिकमत से वह ऐसा कसरती जवान निकला कि विवाह करने के दूसरे साल उसके जो लड़का पैदा हुआ, वह बचपन में ही सीसे के गोले के समान ठोस था। इसी तरह सैंडो ने कितने लोगों की बिगड़ी हुई जिन्दगी बना दी।

इसके सिवा उसने कसरत के कई नये तरीके भी निकाले और किताबें लिखकर उन तरीकों को समझाया—लोगों में प्रचार किया—कितने रोगियों को भला-चंगा बना दिया। 'स्प्रिंग' वाला 'डम्बल' उसीका चलाया हुआ है। उसके बनाये तरीके इङ्गलैंड की फौज में भी बरते जाते हैं। बादशाह को भी वही कसरत करना सिखाता था। इसी बात से उसकी प्रतिष्ठा का अन्दाज लगा लो। दुःख है कि वह अब इस संसार में न रहा। मरने के समय वह कुल पैंसठ साल का ही था। कुछ लोगों का अन्दाज है कि देह की मिहनत के साथ-साथ कुछ दिमागी काम करते रहने से ही वह इतनी जल्दी मरा है।

संसार का सबसे बड़ा अभिनेता 'डेविड गैरिक'

नाटक खेलनेवाले को 'अभिनेता' कहते हैं। वह रंगमञ्च (स्टेज) पर दर्शकों के सामने अभिनय करता है। नाटक खेलना—अभिनय करना—भी एक सुन्दर कला है। इस कला में वही सिद्ध होता है जो हर्ष, विषाद, उत्साह, क्रोध, आश्चर्य आदि भावों को ठीक-ठीक प्रकट करके दर्शकों के हृदय पर भली-भाँति प्रभाव डाल सके। प्राचीन भारत में इस कला की बड़ी उन्नति हुई थी; किन्तु विदेशों में इस कला का सबसे पहला और सबसे अच्छा जानकार अठाहरवीं सदी में पैदा हुआ था। उसका नाम था 'डेविड गैरिक'। आजतक वही संसार का सबसे बड़ा अभिनेता माना जाता है।

उसके पुरखे फ्रांस के रहनेवाले थे। उसके दादा 'जिला गैरिक' फ्रांस से भागकर इङ्गलैंड के 'हियरफोर्डशायर' नामक स्थान में जा बसे थे। उसके पिता 'पीटर गैरिक' एक फौजी अफसर थे। उसकी माता का नाम था—'एरा बेलाक्लफ'।

वह अपने माता-पिता की दूसरी सन्तान था। सन् १७१६ ई० की १६वीं फरवरी को एक फौजी पड़ाव में उसका जन्म हुआ था। उसके पिता की माहवारी आमदनी बहुत कम थी। किसी तरह घरेलू खर्च पूरा पड़ता था। शुरू-शुरू वह 'लिचफिल्ड' की एक आरम्भिक पाठशाला में पढ़ने लगा; किन्तु पढ़ने में उसका जी न लगता था। उस पाठशाला का हेड मास्टर बड़ा बदमाश था। वह लड़कों को बेतरह पीटता था।

जब वह ग्यारह साल का था, उसके कुछ खेलाड़ी साथियों ने एक 'मित्र-नाटक-मंडली' खोलने के लिए उसे उसकाया। मंडली खुली और उसमें पहले-पहल 'रिक्रूटिंग सरजेंट' नाम का एक नाटक खेला गया, जिसमें 'गैरिक' ने बहादुरी का अभिनय दिखाकर सबको मुग्ध कर दिया।

किन्तु, परिवार की दशा अच्छी न होने के कारण वह पुर्तगाल की राजधानी 'लिस्बन' में अपने चाचा के पास नौकरी करने के लिए भेज दिया गया। वहाँ वह अपने चाचा की शराब की दूकान में क्लर्की करने लगा; पर जिसे नाटक-जैसे मनोरंजक काम का चस्का लग गया था, वह क्लर्की-जैसा रूखा-सूखा काम कैसे करता? आखिर छोड़कर वह घर लौट आया।

भाग्य का संयोग! सन् १७२१ ई० में, उसके पिता को जिब्राल्टर की सेना में एक अच्छा ओहदा मिल गया। आमदनी खासी बढ़ गई। घर की हालत कुछ अच्छी हो गई। तब वह अपने प्रिय पुत्र 'डेविड' के भविष्य की चिन्ता करने लगे। उसी समय 'दि जेंटिलमैन्स मैगजिन' नामक अखबार में एक विज्ञापन निकला। उसमें लिखा था कि 'सेमुएल जौन्सन' नाम के एक सज्जन भले घर के नवयुवकों को 'लैटिन' और 'ग्रीक' भाषाओं की शिक्षा मुफ्त देते हैं—साथ ही खाना-पीना और रहने का स्थान भी।

फिर क्या था, १९ वर्ष की अवस्था में, वह उस नये स्कूल में भेज दिया गया। वह स्कूल 'लिचफिल्ड' के पास 'एडियल' नामक स्थान में था। वहाँ जाकर वह मन से पढ़ने लगा। धीरे-धीरे स्कूल-मास्टर 'जौन्सन' से उसकी दोस्ती हो गई। कुछ दिनों के बाद मास्टरी से जौन्सन का जी ऊब गया। उसने मन-ही-मन अपने भविष्य का एक नक्शा सोचा और 'डेविड' को अपने मन की बातें सुनाकर उससे सलाह पूछी।

दोनों ने अपने भावी उद्देश्य निश्चित कर लिये और पैदल ही 'लन्दन' के लिए रवाना हो गये। कहते हैं कि उस समय उनकी अंटी में सिर्फ चार आने की पूँजी थी। कुछ वर्षों के बाद धनी और प्रसिद्ध हो जाने पर, 'गैरिक' तो इस बात को स्वीकार नहीं करता था; पर जौन्सन—जो कभी धनी न हुआ और जो अपने मित्र 'डेविड' की उन्नति से छिपे-छिपे डाह भी करता था—प्रायः इस बात की चर्चा छिड़ने पर यह कह देता था कि हमलोग पहले-पहल सचमुच इतनी थोड़ी पूँजी लेकर 'लन्दन' आये थे।

जो हो, गैरिक के लिए लन्दन की यह यात्रा अच्छी न रही। वहाँ पहुँचे अभी एक महीना भी पूरा नहीं हुआ था कि उसके पिता का देहान्त हो गया। इस शोक ने उसके दिल पर गहरी चोट की और ईश्वर की मर्जी ऐसी कि लिस्बन' में उसका चाचा भी मर गया। इतनी ही खैर हुई कि वह अपने प्यारे भतीजे 'गैरिक' के लिए एक हजार पौंड की पूँजी छोड़कर मरा था। उस पूँजी के दो हिस्से कर 'डेविड' और उसके बड़े भाई 'पीटर' ने क्रम से लन्दन और लिस्बन में शराब की दूकानदारी शुरू की। जब-कभी दोनों में मुलाकात होती थी, 'डेविड' प्रायः अपने घाटे और कर्ज का ही जिक्र किया करता था; किन्तु वह इनका मूल कारण नहीं बताता था।

बात असली यह थी कि 'गैरिक' का मन दूकानदारी में नहीं लगता था। वह अपना अधिकांश समय नाटक-घरों में अच्छे-अच्छे अभिनेताओं से दोस्ती बढ़ाने में ही बिताता था। किन्तु, उसके मन में सदा यह भय बना रहता था कि माता अगर मेरा नाटक खेलने का पेशा सुनेगी, तो जीती न बचेगी। जब माता चल बसी, तब कुछ ही दिनों के बाद, वह पहले-पहल 'गुडमैन्स फिल्ड थियेटर' के रंगमंच पर उतरा। यह थियेटर 'लन्दन-नगर' से बाहर एक ऐसी मामूली जगह में था जहाँ केवल साधारण श्रेणी के कुछ आदमी ही तमाशा देखने जाते थे। वहाँ 'गैरिक' को मड़राते देखकर लोग समझते थे कि यह शराब बेचने के लिए आया है; पर वास्तव में वह अभिनेताओं का अभिनय देखने जाता था। वह बराबर इसी ताक में रहता था कि कब मुझे इस स्टेज पर उतरकर अपना अभिनय-कौशल दिखाने का मौका मिलेगा। उसके मन में यह प्रकट कर दिखाने की बड़ी तीव्र लालसा थी कि शराब के रोजगार में भले ही वह असफल रहा, पर अभिनय-कौशल में वह निश्चय ही सफल होगा। आखिर यही दृढ़ आत्मविश्वास उसकी सफलता और कीर्ति का मुख्य कारण हुआ।

जिस दिन वह 'फिल्ड-थियेटर' में पहले-पहल उतरा, उस दिन वहाँ 'हारलेक्विन-स्टुडेंट' नामक खेल हो रहा था। खेल के आखिरी हिस्से में वहाँ का 'येट्स' नामक अभिनेता जब खूब वाहवाही लूट चुका था, तब गैरिक से यह कहते सुना गया कि ऐसा अभिनय तो मैं भी दिखा सकता हूँ। संयोग से उसकी यह बात थियेटर के मैनेजर 'जिफर्ड' ने सुन ली और उसे अभिनय दिखाने को बाध्य किया। फिर तो उसके अभिनय-कौशल की ऐसी धूम मची कि लन्दन के बड़े-बड़े शौकीन बाबू लोग 'फिल्ड-थियेटर' की ओर टूटने लगे। यहाँ 'अलेकजेंडर पोप' भी—जो बहुत दिनों से नाटक देखने का शौक छोड़ चुका था—उसका सर्व-प्रशंसित अभिनय देखने से अपने को रोक न सका।

किन्तु, इतने पर भी गैरिक अभी खेल के किसी 'प्रोग्राम'-विवरण पत्र में अपना नाम प्रकाशित न होने देता था। वह अपने जौहर को तबतक छिपाता ही रहा, जबतक कि अपनी सफलता पर उसका निजी विश्वास न हो गया। पर, वह पत्तों की आड़ में कबतक छिपा रहता? उसके यश की सुगन्ध से हवा भर ही गई। उसकी नामवरी का हो-हल्ला सुनकर उसका बड़ा भाई 'पीटर' अत्यन्त लज्जित और क्रोधित हुआ; किन्तु 'डेविड' ने बड़े ही नम्र शब्दों में उसे पत्र लिखकर समझाया और थोड़े ही दिनों में अपने यश का डंका पीटकर उसे जीत लिया। वह सभी तरह के विज्ञापन और पत्र—जिनमें भड़कीले ढंग से उसकी कीर्त्ति का बखान छपता था—'पीटर' के पास बराबर भेजा करता था।

गैरिक की उज्ज्वल कीर्त्ति के सामने सभी पुराने अभिनेता मन्द पड़ गये। यहाँ तक कि सबसे प्रसिद्ध अभिनेता 'क्विन' ने भी उसका लोहा मान लिया। अब तो 'फिल्ड-थियेटर' के सामने रईसी गाड़ियों की भीड़ लगी रहती और 'ड्रूरी-लेन थियेटर'—जो उस समय लन्दन-नगर का एक प्रसिद्ध थियेटर था और जिसमें 'क्विन' अभिनय करता था—उजाड़ नजर आता। इससे 'ड्रूरी-लेन-थियेटर' के मैनेजर 'फ्लीटवुड' बड़े चिन्तित हुए; क्योंकि उनके दरवाजे से सारी चहल-पहल उठकर इधर-उधर चली गई। उन्होंने कुछ

ही दिनों की चेष्टा के बाद 'गैरिक' को बुलाकर अपने यहाँ रख लिया। फिर 'ड्रूरी-लेन' वैसा ही गुलजार हो गया। इस थियेटर में केवल छः वर्ष के अन्दर, वह यश के सबसे ऊँचे शिखर पर पहुँच गया। यों तो लगभग बीस वर्ष तक इसी थियेटर में रहकर, अपने यश के समुद्र में, अपने भाग्य के जहाज का पाल बड़ी शान से उड़ाता रहा। सन् १७४७ ई० में उसके पास इतना काफी धन हो गया था कि कुछ मित्रों के साथ मिलकर आठ हजार पौंड में उसने 'ड्रूरी-लेन-थियेटर' ही खरीद लिया।

किन्तु, इतना धनी होने पर भी वह कुमार्ग और कुसंग से बचा हुआ था। लन्दन के थियेटरों में—विलासिता के घरों में—इतने दिनों तक रहकर भी उसने जो अपनी सादगी और चरित्र की पवित्रता कायम रखी, उसका एकमात्र कारण था—पढ़े-लिखे भलेमानसों की संगति। वह और किसी समाज में जाता ही नहीं था। नगर में उसके कुछ चुने हुए विद्वान मित्र थे। केवल उन्हीं लोगों से वह मिलता-जुलता था।

सन् १७४६ ई० में उसने 'इवा मेरी विजेल' नामक नर्तकी से विवाह किया। इससे उसके डाही विरोधियों में बड़ी सनसनी फैल गई। यहाँ तक कि इसी घटना पर 'डेविड गैरिक' नाम का एक नाटक लिख डाला गया। उसमें वह पियक्कड़ के रूप में दिखलाया गया और लोगों को यह सुझाया गया कि एक मालदार सौदागर की लड़की को उसने किस ढंग से अपने प्रेम के फंदे में फाँसा—यद्यपि अबतक इसका कोई ठीक प्रमाण नहीं है। फिर भी, उसने अपने विरोधियों का बड़ी बहादुरी से सामना किया।

सन् १७७६ ई० में उसने 'ड्रूरी-लेन-थियेटर' का अपना हिस्सा ३५ हजार पौंड में बेचकर अभिनय करना छोड़ दिया। जिस दिन उसने रंगमंच से विदा ली, उस दिन अपना सारा जौहर दिखाकर कमाल कर दिया। तमाशबीन तस्वीर बन गये। उस दिन का आखिरी पर्दा गिरते-गिरते उसका गला एकदम भर आया। पर्दा असंख्य बार उठा और गिरा। दर्शकों के सामने अपनी अन्तिम कृतज्ञता प्रकट करते समय वह तुतलाने लगा। सबसे अन्त में जब पर्दा धीरे-धीरे गिरने लगा, तो बड़ी ही उत्सुक दृष्टि से वह दर्शकों की ओर एकटक देखता रह गया।

इसके बाद अपना नीरस जीवन वह अधिक दिनों तक न खे सका। केवल तीन ही वर्ष के बाद, सन् १७७६ ई० की बीसवीं जनवरी को, उसके जीवन-नाटक का आखिरी पर्दा सदा के लिए गिर गया। वह अँगरेजी भाषा के जगत्-प्रसिद्ध नाटककार और महाकवि 'शेक्सपियर' की मूर्ति के चरणों के पास, 'वेस्ट मिनिस्टर आबे' में दफनाया गया।

उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर उसके पुराने मित्र डाक्टर 'जौन्सन' एकाएक कह उठे—'आज राष्ट्र के आनन्द का पूर्णचन्द्र राहु-ग्रस्त हो गया।'

समुद्र-विजयी वीर

संसार में साधरण रीति से 'बहादुर' उसीको कहा जाता है, जो किसी घमासान लड़ाई में पुर्जे-पुर्जे कटकर भी पीछे पैर नहीं देता, किन्तु लड़ाई या मुठभेड़ में दृढ़ता से टिके

रहनेवाले के सिवा और तरह के 'बहादुर' भी होते हैं। बड़ी-से-बड़ी विपत्तियों में धीरज रखनेवाले को भी बहादुर ही कहते हैं। घने-से-घने जंगल में पहुँचने पर शेर की दहाड़ सुनकर जिसके भुजदण्ड फड़क उठते हैं, बीहड़-से-बीहड़ पहाड़ी घाटी में थक-भटककर भी पहाड़ की ऊँची चोटियों पर चढ़ने का जो साहस नहीं छोड़ता, जलती हुई भट्ठी की-सी तप्त मरुभूमि में जल और छाया के विना दुस्सह दुःख सहकर भी जो उसे पार करके ही दम लेता है, भूख-प्यास और सर्दी-गर्मी के कष्टों को तिनका के बराबर समझकर जो अपने मनसूबे को पूरा करके ही दम लेता है तथा अगाध समुद्र की तूफानी लहरों के धक्के-पर-धक्के खाते रहने पर भी जो किनारे पहुँचने का हौसला नहीं छोड़ता, वह 'बहादुर' कहलाता है—बल्कि उसीको सच्चा बहादुर कहना चाहिए। आज हम तुम्हें कुछ ऐसे ही सच्चे बहादुरों की कहानियाँ सुनाते हैं। तुम देखोगे कि वे अपनी धुन के कैसे पक्के थे—अपने उद्देश्य की सफलता के लिए समुद्र, तूफान तक का मुकाबला करने में कितने बहादुर थे और अनेक विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी सफलता की आशा न छोड़ने का उनमें कैसा अटल साहस था; मानों हतोत्साह अथवा हताश होना तो वे जानते ही न थे। शायद ईश्वर ने उन्हें जंगल, पहाड़, रेगिस्तान और समुद्र पर हुकूमत करने के लिए ही संसार में भेजा था।

खैर, जो हो, उन सच्चे बहादुरों में इटली देश के 'मार्को पोलो' का नाम सबसे पहले लिया जायगा। उसका जन्म 'वेनिस' नगर में हुआ था। वह बचपन से ही बड़ा बहादुर था। लड़कपन में ही अपने पिता और चाचा के साथ चीन गया था। चीन की यात्रा में उस वीर बालक ने बड़े-बड़े बीहड़ पहाड़ और लम्बे-चौड़े रेगिस्तान हँसते-हँसते पार किये थे। कहीं कोसों तक फैली हुई ऊबड़-खाबड़ बर्फीली जमीन थी, तो कहीं विना ओर-छोर की धधकती मरुभूमि; पर उस उत्साही बालक ने कहीं भी हिम्मत न छोड़ी, बड़ी बहादुरी और उमंग के साथ अपने बड़ों के पीछे लगा चला गया। वहाँ चीन के दरबार में दाखिल होने पर राजा उसकी छोटी अवस्था और ऐसी गजब की बहादुरी देखकर मुग्ध हो गया—अपने यहाँ नौकर रख लिया। वह भी बड़े हौसले से राजा का हुक्म बजाने लगा। उसके उत्साह से सन्तुष्ट हो राजा ने उसे कोचीन-चीन और भारतवर्ष में अपना राजदूत बनाकर भेजा; मानों इसी बहाने उसकी बहादुरी की परीक्षा ली; क्योंकि उन देशों के रास्ते का कहीं पता न था—नदी, पहाड़, जंगल और रेगिस्तानों का ताँता बँधा हुआ था—कहीं सीधी पगडंडी तक न थी—और बर्फ, बाघ और सिंह, खोह और नदी-नाले, अजगर और कुश-काँटे—खासा यमपुरी का रास्ता था। फिर भी 'मार्को पोलो' अपनी सच्ची बहादुरी की बदौलत उस कठिन परीक्षा में खूब सफल हुआ। उन देशों से सकुशल लौटने पर वह बड़ा प्रसन्न था। बीहड़ रास्ते की थकावट की धुँधली रेखा भी उसके चेहरे पर नहीं थी। उसने राजा को वहाँ का बड़ा ही मनोरंजक वर्णन सुनाया। उन्होंने खुश होकर उसे खूब धन दिया और खूब शाबाशी दी।

तेईस वर्ष बाद 'वेनिस' लौटकर 'मार्को पोलो' ने जब अपनी उस विकट यात्रा का वर्णन लिखा, तो उसे पढ़-सुनकर उसके देशवाले बड़े चकित हो उठे। उन्हें किसी तरह विश्वास ही नहीं होता था कि चीन और भारत के समान बड़े-बड़े देश भी पृथ्वी पर कहीं मौजूद हैं।

कुएँ के मेढ़क की तरह वे अपने ही को सब-कुछ समझ बैठे थे। उनकी समझ में पृथ्वी का विस्तार उतना ही था। गूलर-फल के कीड़े के समान उन्हें बाहरी दुनिया की कुछ खबर ही न थी। खैर, अपने उस वर्णन में 'मार्को पोलो' ने सुन्दर-सुन्दर रेशमी कपड़े, मूल्यवान हीरे-जवाहिर, बढ़िया-बढ़िया स्वादिष्ट भोजन और उत्तम सुगन्धियों की जो विचित्र चर्चा की थी, उसे सब लोग केवल मनगढ़न्त कहानी समझते थे। एक बार उसने अपने मित्रों और जान-पहचानियों को बड़ी धूम-धाम से तवाजा दिया। जब वे भोज खाने आये, तो उसने अपने बाप चाचा के साथ बढ़िया-से-बढ़िया बेशकीमती रंग-बिरंगे रेशमी कपड़े और आँख चौंधियानेवाले मणि-मोती के अनेक गहने पहनकर उनका स्वागत-सत्कार किया। तब उसके मित्रों की समझ में आया कि सचमुच यह ऐसे देशों से हो आया है, जो धन से खूब भरे-पूरे हैं।

इतना ही नहीं, 'मार्को पोलो' के लिखे उसी वर्णन को पढ़कर दो सौ वर्ष बाद, 'कोलम्बस' ऐसा उत्साहित हो उठा कि 'भारतवर्ष' की खोज में निकल पड़ा; किन्तु उसका जहाज एक दूसरे ही नये देश के तट पर जा लगा, जिसे उसने भारतवर्ष ही समझा; पर असल में वह 'अमेरिका' था—यह भेद उसके मरने पर प्रकट हुआ। उसका जन्म भी इटली के ही 'जेनोआ' नामक स्थान में हुआ था। बहुत गरीब होने पर भी, वह बड़ा बुद्धिमान और उत्साही था। भूगोल और यात्रा की पुस्तकें पढ़ने का उसे बड़ा शौक था। बालकपन से ही वह सदा सब लोगों से अपनी समुद्र-यात्रा की लालसा प्रकट किया करता था; किन्तु इसे एक अनहोनी बात समझकर लोगों ने जब ध्यान नहीं दिया, तब वह हिम्मत न हारकर अपनी धुन में मस्त 'पुर्तगाल' देश के राजा के यहाँ चला गया। वह राजा उस समय 'अफ्रिका' की खोज कराने के लिए पहले से ही कुछ आदमी और जहाज भेजने की तैयारी कर रहा था। इसलिए कोलम्बस को अपने मतलब का आदमी समझ एक जहाज उसके जिम्मे कर दिया; लेकिन अथाह समुद्र की गरजती हुई ऊँची लहरों में पड़ने पर उस जहाज के मल्लाह ऐसे डरपोक साबित हुए कि बहादुर कोलम्बस को उनसे बड़ी घृणा हो गई। बहादुर और डरपोक का साथ कैसा ! कोलम्बस ने तब इंगलैंड के राजा से सहायता माँगी; पर अधिक समय तक उसी की आशा में अँटके न रहकर वह 'स्पेन' के एक धनी रईस की सहायता से वहाँ के राजा 'फर्डिनेंड' के पास पहुँचा। अभाग्यवश वह भी 'मूरों' के साथ लड़ाई-भिड़ाई में फँसा हुआ था। तब कोलम्बस ने फ्रांस की राह ली—बेचारा इतना गरीब था कि रास्ते के एक मठ में अपने छोटे बच्चे के लिए उसे भीख तक माँगनी पड़ी। संयोगवश उसी मठ में स्पेन की महारानी का एक परिचित मनुष्य मिल गया। उसने कोलम्बस का उत्साह और साहस देखकर महारानी के पास अपनी सिफ़ारिश के साथ उसे भेजा। बड़ी देर की इन्तजारी के बाद जब कोलम्बस ने फिर झुँझलाकर फ्रांस की राह पकड़ी, तब महारानी ने उसे बुला भेजा और बड़ी खुशी से तीन जहाज उसके हवाले किये।

अपने साहस की सफलता से प्रसन्न होकर, ता० ३ अगस्त, सन् १४९२ ईस्वी (शुक्रवार) को, ४६ वर्ष की अवस्था में कोलम्बस ने अपनी यह दूसरी समुद्र-यात्रा आरम्भ

की। उस समय उस बहादुर के दिल का हौसला इतना बढ़ा हुआ था कि जहाजों को लीलने के लिए दौड़ी आती हुई पहाड़-सी समुद्री तरंगों का भयंकर हाहाकार उसे सुरीले बाजे की मधुर ध्वनि के समान मनोहर जान पड़ता था। एक बार तो तूफानी चक्कर में पड़ने के कारण एक जबर्दस्त चट्टान से टकराकर उसका एक जहाज चकनाचूर हो गया और डूबते-डूबते उसकी जान बची; मगर इतने पर भी वह तनिक मुड़ा नहीं, बड़ी बहादुरी से तूफानों और चट्टानों के साथ लड़ता-झगड़ता आगे बढ़ता चला गया। दो महीने और दो सप्ताह की लगातार जल-यात्रा के बाद ता० ११ अक्टूबर (१४९२) को दस बजे रात में एकाएक उसने घने अन्धकार के भीतर एक जगमगाती हुई रोशनी देखी। फिर तो आनन्द का ठिकाना न रहा! भोर होते-होते उसने देखा कि जहाज एक टापू के किनारे आ पहुँचा है। फिर क्या, खूब सज-धज कर स्पेन के शाही झंडे के साथ वह उसके तट पर उतर गया और उस नये मिले हुए देश की भूमि को बार-बार चूमते हुए घुटने टेककर ईश्वर को धन्यवाद दिया; किन्तु पहले उसने उस नवीन देश को भारतवर्ष ही समझकर चूमा। बाद को उसे पता लगा कि यह तो एक दूसरी ही नई दुनिया है। इसलिए, लगभग १५ वर्ष तक, 'अमेरिका' केवल 'नई दुनिया' के नाम से ही प्रसिद्ध रहा। इसके बाद जब 'अमेरिगो वेस्पुकी' नामक एक पुरुष ने, बहुत खोज पूछ के बाद यह निश्चित किया कि वास्तव में यह भारतवर्ष नहीं है, तब उसी के नाम (अमेरिगो) के आधार पर सन् १५०६ ई० से यह नई दुनिया 'अमेरिका' कहलाने लगी।

कोलम्बस की बहादुरी का ऐसा उत्तम फल देखकर पुर्तगालवालों की आँखें खुलीं। कोलम्बस चूँकि पश्चिम दिशा में पहले खोज कर आया था, इसलिए पुर्तगाल-वाले पूर्व-दिशा में निकले। वे अफ्रिका के पश्चिम तट की ओर जा पहुँचे। उस समय तक उस तरफ कोई जहाजी नहीं गया था। पुर्तगाल का चतुर जहाजी 'डियज' वर्षों की लगातार खोज के बाद अफ्रिका के दक्षिण छोर—उत्तमाशा अन्तरीप—के पास जा पहुँचा। इस अपूर्व सफलता से उत्साहित होकर पुर्तगाल के राजा 'एम्येन्युएल' ने 'वास्को डि गामा' नाम के साहसी पुरुष को फिर उत्तमाशा अन्तरीप की ओर भेजा। उसने वहाँ पहुँचकर आस-पास बहुत खोज-ढूँढ़ की और अन्त में भारतवर्ष पहुँचने का निश्चय किया। भयंकर तूफानों के मारे अपार समुद्र की अगाध तरंगें बार-बार उसके जहाजों को ढँक लेने की चेष्टा करती रहीं, डरावने फुफकारवाले अजगर की तरह जहाजों को लीलने के लिए लपकती रहीं, परन्तु मल्लाहों के लाख गिड़गिड़ाने और प्राणों की भीख माँगते रहने पर भी बहादुर वास्को डि गामा ने निडर और दृढ़ होकर कह दिया कि भारतभूमि के तट पर पैर रखे विना हम हरगिज पीछे नहीं हट सकते—समुद्र भले ही उफनाता-चिल्लाता रहे, तूफान सिर पर मँडराया करे, बाँसों उछलनेवाली शोख लहरें हमारे जहाजों के पुश्तों पर हजार सिर पटकती रहें, लेकिन हम तो अपना काम पूरा करके ही घर लौटेंगे। समुद्र के दहाड़ने से हमारे काम में बाधा नहीं आ सकती—चाहे वह कितनी भी उथल-पुथल मचाये, पर हम अपनी लकीर से डिगनेवाले नहीं हैं।

उस बहादुर की ऐसी दृढ़ता देख कायर मल्लाहों ने अपने प्राणों के मोह से उसे मार डालने की घात लगाई, पर वह ताड़ गया और उन खोटी नीयतवालों को हथकड़ी पहनाकर आप ही जहाज की देखभाल करने लगा। आखिर अफ्रिका के पूर्वी तट से होता हुआ वह कालीकट (भारतवर्ष) आ ही पहुँचा। इसीसे भारतवर्ष पहुँचने के लिए समुद्री रास्ता ढूँढ़ निकालने का श्रेय उसीको मिला।

'वास्को डि गामा' के ही देश (पुर्तगाल) में एक और बड़ा बहादुर आदमी हो चुका है, जिसने सबसे पहले जहाजों द्वारा सारे भूमंडल की परिक्रमा कर डाली थी। उसका नाम था 'फर्डिनेंड मैगेलन'। उसका एक बहादुर साथी और था—'डेलकैनो'। १५१९ ई० में ता० २० सितम्बर को वे दोनों वीर पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए समुद्री रास्ते से रवाना हुए और १५२२ ई० में ८ सितम्बर को, बारह दिन कम पूरे तीन वर्ष में, सकुशल घर लौट आये। हाँ, यात्रा के समय उनके साथ ५ जहाज और २७० मनुष्य थे; पर लौटे केवल ३१ मनुष्य और १ जहाज के साथ। किन्तु 'मैगेलन' नहीं लौटा। वह 'फिलीपाइन' टापू के निवासियों के साथ युद्ध करते समय मारा जा चुका था। केवल 'डेलकैनो' ही ३१ आदमियों के साथ वापस आया। फिर भी, संसार को 'दक्षिण-अमेरिका' और 'प्रशांत महासागर' का पता देकर 'मैगेलन' अपना नाम अमर कर गया। वह निस्सन्देह सच्चा बहादुर था। जब बिना ओर-छोरवाले अथाह समुद्र की ताड़-बराबर ऊँची लहरों के जबरदस्त झकोरे में पड़कर उसके सैकड़ों मल्लाह मारे खौफ के चल बसे, तब भी वह बचे हुए आदमियों को बड़ी दिलेरी से ढाढ़स बँधाता और बढ़ावा देता चला जाता था। एक-से-एक भयंकर स्थान और विकट-से-विकट संकट भी उसके चेहरे पर तनिक सिकुड़न न ला सके। तूफानों के चपेट में पड़कर जहाज डाँवाडोल हो उठते थे—यहाँ तक कि चार जहाज डूब भी गये, पर उसका पक्का इरादा रत्ती-भर डगमग न हुआ। पृथ्वी-प्रदक्षिणा करके ही छोड़ा! और, ठीक यही हाल 'डेलकैनो' का भी था। उसे भी डर छू नहीं गया था। एक ओर जब समुद्र हाहाकार मचाता था, तब दूसरी ओर वह भी गरजकर कहता था—चुप रहो-चुप रहो—'इहाँ कुम्हड़-बतिया कोउ नाहीं'!

हिन्दू-कुल-सूर्य महाराणा प्रताप

जेठ-सुदी तीज (ता० ३० मई १९३०, शुक्रवार) को समस्त भारतवर्ष में प्रताप-जयन्ती मनाई गई है। महाराणा प्रताप परम प्रतापी महापुरुष थे। उनका प्रचंड पराक्रम, उनका अखंड क्षत्रियत्व, उनकी बाँकी राजपूती शान, उनका अटूट स्वाभिमान, उनका अगाध देश-प्रेम; सब कुछ अनोखा और अनूठा था। हिन्दू-जाति के गौरव-धन के कुबेर थे वे। जितने बड़े भक्त वे स्वतन्त्रता-देवी के थे, उतने ही बड़े पुजारी रणचंडी के भी।

वे वास्तव में एक अवतारी पुरुष थे। उनकी युद्ध-लालसा ज्वालामुखी के समान भयंकर थी; परन्तु उनकी क्षमाशीलता से उनकी वीरता भी अत्यन्त शोभायमान थी। मित्र और शरणागत की रक्षा के लिए उनके प्राण निछावर थे, और स्वदेश तथा स्वजाति की रक्षा के लिए उनका सर्वस्व समर्पित था। उनके संकल्प में सिद्धि बसती थी और उनकी तलवार के साये में विजय-लक्ष्मी विश्राम करती थी।

उन्होंने घास की रोटी खाई, पर स्वतन्त्रता नहीं खोई; जंगलों की खाक छानी, पर देशाभिमान न छोड़ा; उपवास किये, पर चापलूसी न की; सर्वस्व-स्वाहा कर डाला, पर गुलामी की सुनहली बेड़ी न पहनी; जान दे दी, पर आन रख ली। धन्य मेवाड़-मौलि-मुकुट मणि !! धन्य चित्तौर-चक्रचूड़ामणि !!!

वे उदयपुर (मेवाड़) के सीसोदिया-वंशी नरेश महाराणा उदयसिंह के पुत्र और झालावाड़-नरेश के भानजा थे। विक्रम-संवत् १६१८ में उन्होंने राजगद्दी पाई, और संवत् १६५३ में वे स्वर्गवासी हुए। उनके पिता ने उनके सौतेले भाई 'जगमल' को राजा बना दिया था। अपने मामा के उद्योग से उन्होंने गद्दी पाई। सारी प्रजा उन्हीं को चाहती भी थी।

उधर भारत-भर में मुगल-बादशाह 'अकबर' का दबदबा फैला था, इधर मेवाड़ में महाराणा प्रताप की तूती बोलती थी। उनके साथियों में 'भामाशाह' अद्भुत त्यागी वीर थे। उनका प्यारा घोड़ा 'चेतक' तो बारूद का गोला ही था। मुगल-सेना के बड़े-बड़े योद्धा भी उनकी वीरता का लोहा मान गये थे। जंगलों में भटकते फिरे, उपवास किये, कष्ट झेले, पर दिल्ली-दरबार में सिर झुकाने नहीं गये। मुट्ठी-भर स्वतन्त्रता-प्रेमी राजपूत-वीरों को साथ लेकर स्वदेशाभिमान की रक्षा करते रहे। अपने प्राणों की बाजी लगाकर हिन्दू-जाति की लाज बचाई। इसीलिए 'हिन्दू-कुल-सूर्य' कहलाये।

अन्नपूर्णा के मन्दिर में

[ग्रामोपयोगी साहित्य]

"प्रकृति के आँगन में बसे हुए गाँवों में ही भारत की आत्मा का निवास है। जिस दिन वह आत्मा सबल, निर्मल और सतेज होगी उसी दिन देश सुखी होगा।"

—मदनमोहन मालवीय

अन्नपूर्णा के मन्दिर में

गाँवों के 'भारत' के किसान भूमंडल के अन्नदाता कहे जाते हैं। वे जिस शस्य-श्यामला, सुजला-सुफला भूमि के अधिवासी हैं, वहीं अन्नपूर्णा का मन्दिर है और वहीं आज हम सब लोगों को पूजा सामग्री के साथ चलना चाहिए। मन्दिर का घंटा बज उठा है और हमें मन्दिर की ओर अग्रसर होने का स्पष्ट संकेत दे रहा है। मन्दिर का 'प्रधान पुजारी' शंख फूँक चुका है और अनुरक्त भक्तों की टोली पूजा-सामग्री सँजो रही है। सेवा और सद्भाव, त्याग और साधना, सहिष्णुता और उत्साह का संयोग-सहयोग ही पूजा का पवित्र साधन है।

हम यदि शासनाधिकारी हैं, तो वहाँ चलकर सुव्यवस्था-सम्पादन करें। अव्यवस्था की वहाँ कमी नहीं; क्योंकि जनसमुदाय अपरिमित है और अशिक्षित भी। सच्ची लगन और पक्की धुन के स्वेच्छासेवक ही उसे व्यवस्थित रख सकते हैं।

यदि हम अध्यापक हैं, तो वहाँ जाकर शिक्षा-प्रचार करें। अविद्या का वहाँ घना अन्धकार है; क्योंकि पुजारियों का जत्था वहाँ ज्ञानदीपक लेकर गया ही नहीं। अब श्रद्धा की गाढ़ी बत्ती और अनुराग के शुद्ध घृत से सजाई हुई आरती ही उस मंदिर को जगमगा सकती है।

यदि हम साहित्यसेवी हैं, तो वहाँ जाकर 'सूर' और 'तुलसी' का हृदय खोल दिखावें; क्योकि सूर-तुलसी की आत्मा यद्यपि वहाँ सदियों से रमी हुई है, तथापि उसकी दिव्य ज्योति अज्ञान की आँधी में टिकने नहीं पाती। हम साहित्य के रत्नों की प्रभा से उसे प्रकाशित कर सकते हैं।

हम यदि उद्योगी-व्यापारी हैं, तो वहाँ चलकर अपनी इष्टदेवी जगद्धात्री महालक्ष्मी की मौलिक मूर्त्ति के दर्शन करें; क्योंकि कृत्रिम मूर्त्ति के दर्शन करते-करते हमारी आँखों में चकाचौंध छा गई है। अब हम प्रकृत प्रतिमा के पूजन में तन-मन-धन अर्पित कर मन्दिर का कायाकल्प करें।

इस प्रकार, चाहे हम जिस पद पर हों, जिस-किसी काम में लगे हों, जहाँ-कहीं भी हों, हमें चल पड़ना चाहिए उस मन्दिर की ओर—उसका जीर्णोद्धार करने के लिए,

उसकी प्राचीन प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठित करने के लिए, उसके परम्परागत गौरव को सुरक्षित रखने के लिए ।

कृपया ध्यान-नयन से निहारिए—वहाँ का उद्योग-उद्यान उजड़ चुका है, ज्ञान-सरोवर सूख चुका है, चेतना की चहार-दीवारी टूट चुकी है, कर्मकूप अन्धकूप हो गया है, स्वाभिमान-कलश धराशायी हो चुका है, अतीत-गौरव-गरिमा की ध्वजा भूलुण्ठित हो गई है, कुरीतियों की जंगली घासों से मंडप और बेदी आच्छादित हैं । सब तरह से मन्दिर दुर्दशा-ग्रस्त है ।

किन्तु वहाँ पहुँचने का मार्ग बड़ा विकट है । उबड़-खाबड़, टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियाँ हैं । गहरे भयावने नदी-नाले हैं । गुच्चियों और ठोकरों से भरे मैदान हैं । कोलतार की चिकनी सीधी सड़कें उधर नहीं गईं । मोटर को बहुत दूर से ही नमस्कार करना पड़ेगा । धूल और कीच से भरी सड़कों को ही 'ठंढी सड़क' समझना होगा । गुड़ की भेली ही मोती-चूरलड्डू बनेगी । अमराइयाँ धर्मशालाएँ बनेंगी । 'चनाचबेना गंगाजल' पर ही संतोष करना होगा । तब कहीं हम वहाँ पहुँच सकेंगे ।

वहाँ पहुँच जाने के बाद कर्त्तव्य का कुदाल और कर्मण्यता की कुल्हाड़ी लेकर काम में जुट जाना होगा । हमारी कर्त्तव्य-निष्ठा ही वहाँ के ऊसर हुए उद्यान की उर्वराशक्ति होगी । हमारी कर्मशीलता वहाँ के झाड़-झंखाड़ के लिए दावाग्नि होगी । हमारी उमंग की तरंग उमड़कर शुष्कप्राय जलाशयों को सजल कर देगी । हमारे हौसले के हाथ बढ़-बढ़कर पस्त दीवारों की चुनाई कर डालेंगे । हमारे प्रेम के पुचारे से नीरस भित्ति सरस-सुहावनी हो जायगी । त्याग का तीर्थ-सलिल सारी मलिनता को पखार डालेगा । सेवा की सुमनाञ्जलि और श्रद्धा की आरती से मन्दिर में गमक-चमक भर जायगी । इधर विजय की शंखध्वनि मन्दिर को गुँजायगी, उधर प्रगति की पताका शिखर पर फहरायगी । 'प्रधानपुजारी' पुलकित हो उठेगा । तथास्तु ।

[नवम्बर १६४४ ई०]

अन्नपूर्णा के मन्दिर चलें

ईश्वर की असीम कृपा से हमारा देश स्वतन्त्र हो गया है । हमलोग कुछ-कुछ शान्ति का अनुभव करने लगे हैं । साथ ही, उन्नति और समृद्धि के स्वप्न भी देखने लगे हैं । किन्तु पिछले शासक-महापुरुषों की देन की रूप में कई विषम एवं विकट समस्याएँ सामने आ गई हैं, जिनके कारण उन्नति एवं समृद्धि की कितनी योजनाएँ जहाँ-की-तहाँ पड़ी खटाई में फूल रही हैं । उन योजनाओं के लिए प्रचुर द्रव्य की आवश्यकता है । पर एक योजना हमारे सामने स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पहले की है—रचनात्मक कार्यक्रम की, जिसमें द्रव्य की भी आवश्यकता है, मगर सबसे पहली आवश्यकता है उत्साह और लगन के साथ परिश्रम करने की ।

रचनात्मक कार्यक्रम को चालू करने में आरम्भिक कठिनाई द्रव्याभाव की नहीं है, सच्ची लगनवाले त्यागी कार्यकर्ताओं की है। लगातार परिश्रम से स्वराज्य मिला, वे अब स्वराज्य-सुख भोगने में व्यस्त हो गये हैं और जो नये कार्यकर्त्ता होने योग्य हैं वे उन स्वराज्य-सुख-भोगियों की आलोचना करने अथवा उनके सुखभोग से ईर्ष्या करने में अपना समय बिता रहे हैं। एक दल अपनी थकावट मिटा रहा है, दूसरा दल उसे कोसने में मन का मोह मिटा रहा है। एक तीसरा दल इसके लिए प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से स्वदेशी सरकार को भी कोस रहा है।

देश की भलाई के सभी कामों के लिए राष्ट्रीय सरकार के ही भरोसे रहना स्वतन्त्र देश के निवासियों का लक्षण नहीं है। हरएक काम के लिए सरकार की आशा पर बल न देकर हमें अपने कर्त्तव्य पर भी जोर देना चाहिए। अकर्मण्य जनता की सरकार कभी कुछ नहीं कर सकती। कहा भी जाता है कि ईश्वर भी उसी की मदद करता है जो अपनी मदद आप करता है। हम हाथ-पर-हाथ धरे निश्चिन्त बैठे रहें और हमारी सरकार हमारे लिए सभी सुख-साधन जुटा दे, यह असम्भव है। हमें अपनी नई सरकार को, जिसके आगे बड़ी-बड़ी बीहड़ समस्याएँ दिन-दिन उलझन बढ़ा रही हैं, तन-मन-धन से सहयोग देकर देशोन्नति के कामों को आगे बढ़ाना चाहिए।

रचनात्मक कार्यक्रम महात्मा गाँधी का सबसे बढ़कर प्रिय कार्य था। वे जीवन-भर इसी पर सबसे ज्यादा जोर देते रहे। उनके जो सच्चे भक्त थे इसी में लग गये। आज भी कहीं-न-कहीं वे लोग इसी में अपना जीवन खपा रहे हैं। परन्तु ऐसे लोगों की संख्या इस विराट देश में उँगलियों पर ही गिन लेने योग्य है। अभी इसके लिए विशाल क्षेत्र अछूता पड़ा हुआ है। मगर उसकी ओर हमारा जैसा ध्यान चाहिए वैसा नहीं है। हम हर साल स्वतन्त्रता-प्राप्ति की वर्षगाँठ मनाते हैं, सर्वत्र उत्सवों की धूम होती है, दीवाली और जुलूस की तैयारियाँ की जाती हैं, लेकिन वह लाखों का खर्च सिर्फ हमारे दिलबहलाव का ही सामान होता है!

सोचनेवाले सोचें कि स्वतन्त्रता तो आ गई, मगर उसकी पात्रता हममें आई कि नहीं। स्वतन्त्र देश के निवासी सिर्फ बातें नहीं बनाते, डींग नहीं हाँकते, जोश का बल नहीं दिखाते, बल्कि अपने उत्तरदायित्व पर गम्भीरता से विचार करते हैं, झटपट अपने कर्त्तव्य का निर्णय करके कार्यतत्पर हो जाते हैं। पर हमलोग हमेशा अपनी प्रदर्शन-पटुता से संसार को चकमा देना चाहते हैं।

महात्माजी के मोक्षलाभ के बाद देश-भर में विविध प्रकार से श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं—उनके स्मारक भी खड़े किये गये, आज भी कई बन रहे हैं और आगे भी बननेवाले होंगे। पर उनके सच्चे स्मारक—रचनात्मक कार्यक्रम—की ओर बहुत ही कम लोगों ने, कुछ ही जगहों में, ध्यान दिया। अब भी यह विशाल देश उस कार्यक्रम की प्रतीक्षा में उत्सुक है। शासकों या नेताओं के भाषणों में, सम्पादकों और लेखकों के लेख में यही

बार-बार कहा जाता है कि गाँधीजी के आदर्शों पर चल कर ही हम स्वतन्त्रता को कायम रख सकते हैं। जनता सब-कुछ सुनती और पढ़ती है, पर वह स्वार्थसाधन से पिण्ड नहीं छुड़ा पाती कि तदनुकूल आचरण कर सके। तरह-तरह की सभाएँ होती हैं, संघटन के सन्देश सुन पड़ते हैं, प्रस्ताव भी पास होते हैं, पर हमारा आलस्य अपनी जगह से हिलता भी नहीं!

रचनात्मक कार्यक्रम का असली क्षेत्र गाँवों में है। यह गाँवों का देश है। गाँवों में अविद्या और दरिद्रता का राज्य है। इसी कारण वहाँ नाना प्रकार के दोषों ने अड्डा जमा लिया है। गाँवों की समृद्धि पर ही राष्ट्र की समृद्धि निर्भर है। नगरों में अनेक प्रकार की सुविधाएँ हैं, गाँवों में केवल असुविधाएँ। यद्यपि हमारे नगरों की दशा भी सन्तोष-प्रद नहीं है, तथापि उन्हें अपनी दशा सुधारने के कई साधन सहज ही उपलब्ध हैं। वहाँ शिक्षा सुलभ है, नेताओं और अखबारों की पहुँच है, म्युनिसिपैलिटी और लोकल-बोर्ड हैं, पर हमारे गाँव सर्वथा उपेक्षित हैं। देश और समाज के कल्याण के लिए जितनी बातें सोची जाती हैं या जितने काम किये जाते हैं, अधिकतर सबके सब नगरों तक ही केन्द्रित और सीमित रहते हैं। गाँवों में रोशनी पहुँच नहीं पाती। किसी चुनाव में वोट के लिए कुछ सफेदपोश लोग वहाँ पहुँच जाते हैं और सब्जबाग दिखाकर चले आते हैं। लेक्चर और वादा सुनते-सुनते गाँववाले ऊब-से गये हैं। वादा किया जाता है लम्बा-चौड़ा, काम किया जाता है कागजी। ठोस काम बहुत कम हो पाता है। कारण? सिर्फ सरकार का आसरा!

हमारे राष्ट्रपति ने कई बार त्याग और सेवा का व्रत धारण करने का आदेश दिया है। त्यागी और सेवाव्रती कार्यकर्ताओं की आवश्यकता विशेषतः गाँवों में ही है। जबतक हम गाँवों की माँग पूरी करने का संकल्प न कर लेंगे, राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकती। हम यदि अपने राष्ट्र को समृद्धि और शान्तिपूर्ण बनाना चाहते हैं तो हमें गाँवों की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ेगा। गाँवों के अभाव बहुत हैं, उनकी आवश्यकताएँ भी कम नहीं हैं; पर वे अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य भी हैं। उन्हें केवल प्रेरणा देनेवाला चाहिए। हम गाँवों में काम करने के लिए अपने अवकाश के समय का सदुपयोग करें। यदि हम ग्रामवासी ही हैं तो फिर क्या कहना! सरकार की आशा पर अवलम्बित न रहकर हम वहाँ ऐसे काम करें, जिनकी ओर सरकार की निगाह भी खिंच जाय। अगर सचमुच हमारे दिल में गाँवों के लिए कुछ दर्द है, अगर सचमुच हम उन्हें राष्ट्र की रीढ़ समझते हैं, तो हमें दृढ़ता से अपना कर्त्तव्य निश्चित करके सर्वप्रथम यही संकल्प ग्रहण करना है कि हम अपने दुर्दशाग्रस्त गाँवों को गुलजार बनाकर छोड़ेंगे। हम कृतसंकल्प होकर गाँवों की सुधि लेने के लिए कमर कसें; प्रतिज्ञाबद्ध होकर हम 'अन्नपूर्णा के मन्दिर में' चलें।

[अगस्त १९४७ ई०]

अब मोर्चा बदल गया !

इधर भारत स्वतन्त्र हुआ, उधर लड़ाई का मोर्चा बदल गया। अबतक हम विदेशियों से लड़ते रहे, अब 'स्वदेशियों' से लड़ना पड़ेगा। लड़कर हमने साम्राज्य-शाही को झुका दिया, अब अन्धविश्वासों और कुरीतियों को सर करना है। सचमुच 'स्वदेशियों' से लड़े बिना हमारा वास्तविक उद्धार नहीं।

अन्धविश्वासों और कुप्रथाओं की सेना गोरी सत्ता की सेना से भी प्रबल जान पड़ती है। वह तो डेढ़-दो सौ वर्षों से ही हमें चाँपे हुई थी, यह तो सदियों से राष्ट्र की रीढ़ तोड़ रही है। वह तो मातृभूमि की छाती को हल्की करने जा रही है और यह अभी तक उसके हाथ-पैर जकड़े हुए है।

हमें अब इस घरेलू सेना से ही निबटना है। अगर हम इसके सैनिकों की तालिका को ध्यान से देखें तो एक-से-एक जुझार लड़ाके मिलेंगे। ये सबके सब रक्तबीज हैं, इनको परास्त करना हँसी-खेल नहीं है। महाकाली दुर्गा के समान प्रचण्ड और अजेय शक्ति चाहिए।

शक्ति तो हमारे अन्दर सोई पड़ी है, मगर उसे जगाना होगा। उसे जगाने का उपयुक्त समय आ पहुँचा। उसके जागने भर की देर है, रक्तबीज का ध्वंस निश्चित है। किन्तु ध्यान रहे कि उसको जगाना दुर्मद कुम्भकर्ण को जगाना है, बहुत ही बीहड़ काम है—बीहड़ से भी बीहड़ !

बीहड़ से पाला तो अब पड़ा है। अभीतक तो हम अहिंसा की तलवार से 'बन्दर-घुड़की' को धमकाते रहे, मगर अब शेर-बबर के झपट्टे झेलने पड़ेंगे। यहाँ तीखे तीरों और दुर्दान्त दुनालियों से काम लेना पड़ेगा। केवल सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में ही बड़े-बड़े 'बंगाल टाइगर' हैं। अस्त्र सँभालिए। लक्ष्य सामने है। सजग हो जाइए।

लक्ष्यसिद्धि के लिए दृढ़संकल्प की आवश्यकता है ! हम सभी कृतसंकल्प हों। लेखक, कवि, प्रकाशक, सम्पादक, पत्रकार, शिक्षक, अध्यापक, विद्यार्थी, बालक-बालिकाएँ, युवक-युवतियाँ, जननायक, धनी, दानी, व्यापारी, किसान, मजदूर, प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक सम्प्रदाय के आबाल-वृद्ध नर-नारी, सभी यह व्रत लें—हम देश की दुर्बलताएँ दूर करेंगे—समाज और धर्म से, साहित्य और राजनीति से, शिक्षा और इतिहास से सारी विषमताएँ मिटा डालेंगे, कमजोरियाँ मिटा डालेंगे। यही प्रतिज्ञा और इसी प्रतिज्ञा की पूर्ति का अटूट अभ्यास, अथक अध्यवसाय, अडिग साहस, स्वतन्त्र देश की नागरिकता की सार्थकता सिद्ध करेगा।

हिन्दुस्तान ! सावधान ! लड़ाई का मोर्चा बदल गया ! इस लड़ाई का जबरदस्त मोर्चा गाँवों में ही है।

[अगस्त, १९४७ ई०]

हमारे गाँवों की दशा कैसे सुधरेगी ?

महात्मा गाँधी के सुझाव और प्रभाव से देश के लोगों का ध्यान गाँवों की ओर आकृष्ट हुआ। लगभग पच्चीस वर्षों से गाँवों के सुधार और उद्धार की चर्चा हो रही है। कई जगह 'आदर्श ग्राम' बन गये हैं। 'ग्रामोद्योग-संघ' भी खुल गये हैं। ग्राम-सुधार-सभाएँ और ग्रामोद्धार योजनाएँ भी कहीं-कहीं चालू हैं। ग्रामोत्थान के कुछ केन्द्र भी स्थापित हो चुके हैं। ग्राम-सेवा के अभ्यास के लिए कई ग्राम-सुधार शिक्षा-शिविर भी खुलकर अपना काम कर गये। सब-कुछ हुआ और बहुत-कुछ हुआ; पर अभी तक ऐसे स्वेच्छा-सेवकों का कोई ऐसा विशिष्ट दल नहीं तैयार हुआ, जो अपना सारा समय गाँवों के सुधारने में ही खपा दे। ग्राम-साहित्य की रचना और उसके उद्धार के लिए भी प्रयत्न किये गये। ग्राम-संघटन पर पुस्तकें लिखी गई और ग्रामीण कविता-कहावतों के संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। परन्तु गाँवों की जो असल बुराइयाँ हैं, उन्हें दूर करने के संघटित प्रयत्न आज तक न हुए। गाँवों की भलाई के लिए कई पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलीं और कुछ निकलती ही जा रही हैं, पर उनसे गाँवों का वास्तविक हितसाधन सम्भव नहीं दीख पड़ता। कहीं दो-चार दस गाँव 'आदर्श' बन गये हों, पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग उतर आया हो, तो इससे भारत के सात लाख गाँवों का कल्याण नहीं हो सकता, क्योंकि देखा-देखी आदर्श-मार्ग पर आरूढ होने की स्वाभाविक प्रवृत्ति मनुष्य में नहीं पाई जाती।

महात्मा गाँधी ने गाँवों में आसन जमाकर चुपचाप काम करने की प्रेरणाएँ तो दीं, पर योजना बनाने और संगठन करने की सोचावट में ही अधिकांश समय बीत गया; वास्तव में हुआ-गया कुछ नहीं। सच तो यह है कि गाँवों की स्थिति स्पष्ट कह रही है—'प्रस्ताव और तर्क, भाषण और आन्दोलन करते रहने से कुछ न होगा, यदि हमारे (गाँवों के) लिए दिल में कुछ दर्द है, तो आइए, हमारे बीच आसन मारकर बैठिए, अपनी सेवा और त्यागवृत्ति का जौहर दिखाइए।' गाँवों की यह चुनौती स्वीकार करना हँसी-खेल नहीं है। ग्रामसेवक के लिए विद्या-बुद्धि की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी सच्ची लगन की—आत्मशुद्धि की। जबतक वह मानवीय दुर्बलताओं पर विजय नहीं पा लेता तब तक ग्रामोद्धार-कार्य में सफल नहीं हो सकता। सबसे बीहड़ प्रश्न यही है। जिसमें इसे हल करने की शक्ति नहीं होगी, वह सच्चा ग्रामसेवक नहीं बन सकता।

शक्ति की परीक्षा—

हमारे देश में बड़े-बड़े त्यागी, सेवाव्रती और लोकोपकारी जननायक हैं। पर गाँवों ने जो खरी-कसौटी सामने रख दी है, उसपर कसने को तैयार कोई कञ्चन नहीं नजर आता। जिस प्रकार भक्त कवियों ने भगवान को ललकारा है कि सचमुच तुममें यदि पतितोद्धार करने की शक्ति हो तो पहले हमारा निस्तार करो, नहीं तो पतितपावन कहलाना

छोड़ दो, उसी प्रकार हमारे देश के गाँव भी आज खुले कण्ठ से ललकार रहे हैं कि जिसमें मानवता कि सेवा करने का अदम्य साहस हो वह एक बार हमारे (गाँवों के) बीच आकर अपनी शक्ति की परीक्षा कर देखे।

जीर्ण रोगी की सेवा-शुश्रूषा करना बड़े जीवट का काम है। कोढ़ी की सेवा उससे भी कठिन है। हमारे कुछ गाँव जीर्ण रोगी हैं; परन्तु अधिक कोढ़ी ही हैं। जो जीर्ण रोगी हैं, वे कुसंयम और कुपथ्य के दुराग्रही उपासक हैं, और जो कोढ़ी हैं, उनके कोढ़ में खाज यह है कि वे पग-पग पर अपनी सेवा करनेवाले की कठोर अग्निपरीक्षा लेते हैं। ऐसी स्थिति में सहसा यह बात मन में आती है कि गाँवों का सुधार वही कर सकता है जो 'पूर्ण मनुष्य' हो या मनुष्य से देवता बन गया हो। ऐसा तो केवल चाहने से नहीं हो सकता। हाँ, सतत साधना से हो सकता है। किन्तु इस साधना का क्षेत्र भी गाँव ही है, नगर नहीं। हमलोग जानते हैं कि महात्माजी ने पहले-पहल 'मीरा बहन' को जब सेवाग्राम भेजा था तब उनको कितनी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थीं, पर तपस्विनी मीरा की सहिष्णुता और अनाशक्ति ने सबपर विजय प्राप्त कर ली।

तपोवन की आवश्यकता—

हमारे भारतीय सद्ग्रन्थों में सर्वत्र इस बात की सचाई दिखाई गई है कि सब तरह की बुराइयों से लड़ने के लिए केवल तपोबल की ही आवश्यकता है। तुलसी की यह उक्ति झूठी नहीं है कि 'तप ते अगम न कछु संसारा।' कहनेवाले कह सकते हैं कि यह युग तपस्या का नहीं है, पर उन्हें सोचना चाहिए कि हिमालय में जाकर समाधि लगाना ही तपस्या नहीं है। वाक्संयम, मनः-संयम, चित्तवृत्तियों का निरोध, इन्द्रिय निग्रह आदि ही सच्चे तप हैं। निर्लिप्त भाव से कर्मयोग की साधना ही हमारे यहाँ सबसे बड़ी तपस्या कही गई है। हमारे गाँवों की वर्तमान दशा ऐसे ही साधकों की माँग पेश करती है।

पाठक हँसेंगे कि ग्राम-सुधार के लिए तो यह बड़ी कठिन कसौटी है। परन्तु हँसने से पहले गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा कि जिस रोग के लिए हम पीयूषपाणि वैद्य की खोज कर रहे हैं, वह रोग कितना पुराना और भयंकर है तथा उसका रूप कैसा असाध्य हो गया है। कवियों की कविता में ग्रामीणों का जो चित्र हमलोग देखते हैं, वह कहाँ तक सच्चा है, इसपर गहराई के साथ विचार करना होगा। कहानी या कविता और लेख या व्याख्यान में हम लोग भले ही ग्रामीणों को दूध का धुला देख-सुन लें, पर जो प्रकृत वस्तुस्थिति है, उसपर दृष्टि डालने से हमें अपने भ्रम का पता लग जायगा।

पथ में कण्टक—

मैं ठेठ देहात का रहनेवाला हूँ। अच्छी तरह जानता हूँ कि ग्रामीण निश्चय ही बड़े भोले होते हैं। किन्तु आजकल उनमें जो अनिष्टकर दोष-दुर्गुण घर कर गये हैं, देशोन्नति के पथ में वे ही घोर कण्टक हैं। शिक्षाप्रचार के अभाव से, अविद्या के अन्धकार से, दासता के अभिशाप से, शोषण जन्य दरिद्रता के प्रहार से, चाहे जिस कारण से

हो, बेचारे ग्रामीण अपने दुर्गुणों के शिकार होकर सभ्य जीवन के वास्तविक सुख से वञ्चित हो रहे हैं। ईर्ष्या-द्वेष-कलह और कपट-छल-दम्भ ने उन्हें अच्छी तरह ग्रस लिया है। वैर-विरोध और वैमनस्य-मनोमालिन्य का गाँव-गाँव में अड्डा जम गया है। एक दूसरे के उत्कर्ष के प्रति असहिष्णु है, तो दूसरा अपने अभ्युदय के अभिमान में चूर है। पञ्चायतों की सत्ता-महत्ता बहुत कम हो गई है। देखते-देखते छोटी-छोटी बातों के लिए झगड़े उठ खड़े होते हैं। निर्मूल बात पर उत्तेजना बढ़ती है, मनमुटाव बढ़ता जाता है, फिर अनर्थ होने लगते हैं। मामले-मुकदमे का तार कभी टूटता नहीं। अदालतों की भीड़ में देहाती ही अधिक दिखाई देते हैं। खेत चरा डालना, खेत की फसल (हरी हो या पकी) कटवा लेना, खलिहान फुँकवा देना, माल-मवेशी की चोरी करा देना, घर में सेंध कटवा देना, यहाँ तक कि डकैती भी करा देना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं है। जो दबंग है, समर्थ है, धूर्तता की कला में पारंगत है, चपत का जवाब घूँसे से दे सकता है, वह देहात में बड़े आराम से रह सकता है। परन्तु जो सज्जन है, सहृदय है, शान्तिप्रिय है, द्रोह और दुर्भाव से दूर है, मनुष्य के साथ मनुष्य के समान व्यवहार करना पसन्द करता है, वह देहात में दीन बनकर रहेगा, कातरता में ही उसके दिन कटेंगे, उसकी साधुता से लोग अनुचित लाभ उठायेंगे, उसे ऊपर से सराहेंगे और भीतर से मूँड़ेंगे।

समुद्र में बूँद—

यह सब कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं कि गाँवों में सभी साधु पुरुष दुःखी हैं और अधिक लोग कुचाली हैं। कहीं-कहीं आदर्श, एकता और सद्भाव भी है, पर समुद्र में एक बूँद का कोई महत्त्व नहीं। बहुत-से 'आदर्श ग्राम' नमूने के तौर पर तैयार किये गये हैं, पर मैं यह नहीं जानता कि वहाँ केवल बस्ती की गलियाँ ही साफ हुई हैं या दिल की गलियाँ भी। गलियों, पनालों और कुँओं की सफाई से पहले मन की सफाई की ज्यादा जरूरत है। जब तक हृदय की सफाई न होगी, मनुष्यता नहीं आवेगी, दूसरों के स्वत्व के प्रति आदरभाव न जगेगा, पड़ोसी के प्रति सहानुभूतिशीलता न रहेगी, भाईचारे की नीति न बरती जायगी, मधुर वाणी और नम्रता, शिष्टता का व्यवहार चालू न होगा, तबतक गाँवों का कुष्ठरोग असाध्य ही बना रहेगा। कहीं-कहीं तो ऊटपटाँग या अटपटी वाणी से ही उपद्रव हो जाते हैं। सहनशीलता उनकी इतनी कच्ची है कि वे हर घड़ी क्रोध के क्रीड़ा-कंदुक बने रहते हैं। तनक-सी आँच लगी, झट उबल पड़े, बस उत्पातों का बवण्डर उठते क्या देर! यह चारित्रिक दुर्बलता केवल अपढ़ों में ही नहीं है, अधिकतर लिखे-पढ़े लोग भी गाँवों में बैठकर भाड़ ही झोंकते हैं।

ऐसी विषम परिस्थिति में गाँवों के अन्दर जाकर सुधार-सम्बन्धी कार्य करनेवालों की कठिनाइयाँ बहुत ही पेचीली और उलझनदार हो जाती हैं। अनेक गाँवों की दशा का निरीक्षण करके मैंने यही सोचा-समझा है कि वहाँ जाकर वही कुछ कर सकता है, जो अपने चरित्र-बल से देहातियों पर प्रभाव डाल सके। खद्दरधारी या ओजस्वी व्याख्याता

होने से ही रंग नहीं जम सकता। देहातियों की कसौटी बड़ी पक्की है। उसपर खरा साबित होना हँसी-खेल नहीं है। उनमें लाख दुर्गुण हैं तो क्या, उनमें कई गुण भी बड़े निराले हैं। वे जिसको अच्छी तरह परख लेंगे, जो उनकी आँखों में भलीभाँति जँच जायगा, उसे वे देवता की तरह पूजेंगे। निःस्वार्थ और जितेन्द्रिय व्यक्ति के पीछे वे भेंड़ बन जायँगे। 'पशु पच्छिउ हित अनहित जाना'—ये तो आखिर आदमी ही हैं। अपने सच्चे हितैषी के सामने वे खूब झुकना जानते हैं। निश्चय ही उनमें कुछ 'जड़' या 'जढ़' लोग भी हैं, जिनपर अहिंसात्मक अस्त्रों का प्रयोग भी शीघ्र सफल नहीं हो सकता, पर ऐसे ही स्थाणुओं (खुत्थों या ढूँढ़ों) के लिए तो तपस्वी की तलाश है, जो धूनी रमाकर उन्हें छार कर दे। जो सौ को मुट्ठी में कर लेगा, उसके आगे एक की नहीं चलेगी।

त्यागियों की आवश्यकता—

मैं कुछ ऐसे कार्यकर्त्ताओं को जानता हूँ जो अपनी स्वार्थ-परायणता और इन्द्रिय-लोलुपता के कारण ग्रामीणों को मट्ठा फूँक कर पीना सिखला चुके हैं। महाशयजी ने नाक कटाई अपनी और शकुन बिगाड़ा भले आदमियों का। इसलिए यदि कोई चाहे कि गाँवों में सहसा जाकर उपदेश झाड़ कर चले आवें, तो इससे कुछ होने-जाने का नहीं। आवश्यकता है कुछ ऐसे त्यागियों की, जो गाँव में ही ग्रामीण बनकर रम जायँ। भगवान को भी मानव जाति की भलाई सूझी तो मनुष्यों के बीच में मनुष्य ही बनकर रमना पड़ा। वे स्वर्ग के देवता बने रहकर संसारियों का कुछ भी हित नहीं कर पाते। हम भी यदि देहातियों का उपकार करना चाहते हैं तो हमें भी देहाती ही बनना पड़ेगा, चिकनी सड़क और मोटर का मोह छोड़ना होगा। कितने ही गाँव ऐसे हैं, जहाँ सूखे दिनों में भी बैलगाड़ी तक मुश्किल से जा सकती है। चाय-बिस्कुट और अण्डे उड़ानेवाले वहाँ फिसड्डी रहेंगे। घी-दूध तो वे लोग चरणों पर ढाल देंगे, मगर उसी को, जो सत्तू और चना-चबेने को भी उन लोगों का प्रिय भोजन मानकर पुलाव समझेगा। इन्द्रिय की वासना की गन्ध भी इन्हें मिल गई तो फिर पटरी नहीं बैठ सकती। सच्चरित्र को तो सर-आँखों पर रखेंगे, हथेली का फूल बना डालेंगे।

वास्तव में जो सदाचारी हैं, कष्टसहिष्णु हैं, निस्पृह और संयमी हैं, वे ही गाँवों में जाकर सेवाव्रत लेने के पात्र हैं। हमारा देश ऐसे लोगों से खाली नहीं है। जिनके मन में स्वदेश के गाँवों की दशा सुधारने की साध हो, जिनके हृदय में यह दृढ़ विश्वास हो कि गाँवों के सुखी और स्वावलम्बी होने से ही देश का अभीष्ट कल्याण होगा, जिनके चित्त में ऐसी उमंग हो कि उबानेवाली कठिनाइयाँ उसे पस्त न कर सकें, उन्हें अब अधिक दिन अनुकूल समय की प्रतीक्षा न करनी चाहिए, उन्हें चुपचाप अपने-आपको तौलकर कहीं गाँव में आसन जमा देना चाहिए। कार्यक्रम चाहे जब बने, लोकसंग्रही का कार्यक्रम उसके सेवाभाव में है। जहाँ चाह, वहाँ राह।

[मई, १९४५ ई०]

स्वतन्त्र भारत के गाँव

देश को स्वतन्त्र हुए कई साल हो गये। इतने समय में हमने देश की भलाई के कितने काम किये, इसपर अब प्रत्येक देशवासी को गम्भीरता से विचार करना चाहिए। यही प्रत्येक देशवासी का मुख्य काम है। इसी पर हमारी सफलता और महत्ता निर्भर है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद का सबसे बड़ा काम है—नये भारत का निर्माण करना। असली भारत गाँवों में ही है। शहरों की संख्या यहाँ कम है। किन्तु हम शहरों और गाँवों—दोनों को देखें। इनके अन्दर आजतक हम क्या सुधार या परिवर्तन कर सके हैं।

शहरों के अन्दर म्युनिसिपलिटी, लोकल बोर्ड और जिला बोर्ड हैं। गाँवों के अन्दर यह सब कुछ नहीं। हाँ, जिला बोर्ड शहरों में रहकर भी गाँवों के लिए काम करता है—सड़कें दुरुस्त करता है, आरम्भिक शिक्षा का प्रचार करता है, अस्पताल या औषधालय खोलता है—इत्यादि।

हम पहले स्थानीय स्वराज्य की ही व्यवस्था देखें, राष्ट्रीय स्वराज्य का प्रबन्ध उसके बाद।

कुछ साल का समय किसी बड़े काम को पूरा कराने के लिए काफी नहीं है, मगर किसी बड़े काम शुरू करने के लिए कुछ कम भी नहीं है।

शहरों में म्युनिसिपलिटी के सदस्य और पदाधिकारी रहते हैं। उन्होंने अपने नगर के नवनिर्माण के लिए कौन-सा काम किया है? स्वतन्त्र देश के नागरिकों की बस्ती साफ-सुथरी होनी चाहिए। क्या नगरों की सफाई का, पहले की अपेक्षा, कोई नया प्रबन्ध हुआ है? क्या नागरिकों में सफाई रखने की प्रवृत्ति या प्रेरणा जगाई गई है? क्या नागरिकों की स्वास्थ्यरक्षा या स्वास्थ्य-वृद्धि की कोई नई व्यवस्था की गई है? क्या सदस्यों और पदाधिकारियों में पहले से कुछ अधिक कार्यतत्परता आ सकी है? क्या सड़कों, नालियों, गलियों और कूड़ाखानों की सफाई पर कुछ ध्यान दिया गया है? क्या हम अपने नगरों को ऐसा कुछ बना सके हैं कि स्वतन्त्र देशों के यात्री उन्हें देखकर हमारी कार्यक्षमता का अनुमान कर सकें? इन आवश्यक प्रश्नों के सही-सही उत्तर दे लेने के बाद ही हम अपने स्वतन्त्रता-दिवस के उत्सव में उत्साह प्रदर्शित करने के सच्चे अधिकारी सिद्ध होंगे। नहीं तो उत्सव नकली होगा।

जिला-बोर्ड के सदस्य और पदाधिकारी भी टुक ईमानदारी से सोचें कि चुनाव में 'वोट' माँगने के बाद वे कितनी बार गाँवों की दशा देखने के लिए उन सड़कों से गुजर सके हैं जिनकी दुर्गति आजादी मिलने पर भी देखने ही योग्य है। बरसात में खासे टापू बन जाने वाले गाँव के लिए क्या कोई उपाय किया गया है? हमारे अखबारों के सम्पादक इस बात के सच्चे गवाह हैं कि उनके पास सड़कों की दुर्दशा की कितनी ही शिकायतें रोज आती रहती हैं। सड़कों की कमी और खराबी से ही गाँवों की उपज बाजारों तक नहीं पहुँच पाती, जिससे गाँवों की माली हालत नहीं सुधरती। सड़कों की

ही खराबी से नेताओं और प्रचारकों तथा अखबारों की पहुँच गाँवों तक नहीं हो पाती, जिससे वे बाहरी दुनिया से बिल्कुल अलग रह जाते हैं। न वहाँ शिक्षा-विभाग के अफसर पहुँच पाते हैं, न कृषि-विभाग के और न डाक्टर। महामारियों में गाँव-वाले कीड़ों की मौत मरते हैं और उनके मवेशी भी उसी दशा को प्राप्त होते हैं। क्या जिला-बोर्ड वालों के ध्यान में ये बातें और मुसीबतें कभी आई हैं? चुनाव के दौरे के बाद वे गाँवों की ओर झाँकने भी गये हैं? यह न सही, उन्होंने अपनी योजनाओं से ही गाँव-वालों को अश्वासन देने का कष्ट किया है? हमारे ग्रामीणों में जो निराशा छा रही है, वह हमारी राष्ट्रीय प्रगति के लिए बहुत घातक सिद्ध होगी; क्योंकि हमारे गाँव ही हमारे राष्ट्र की रीढ़ हैं।

हमारे कांग्रेसी भाई आजतक गाँवों को अपना वास्तविक कार्यक्षेत्र नहीं बना सके हैं। कुछ कट्टर गांधीभक्तों को छोड़कर, जो जहाँ-तहाँ देश के किसी कोने में गाँवों के अन्दर अपना अड्डा बनाकर चुपचाप काम किये जा रहे हैं, अन्य किसी कांग्रेस-कार्यकर्त्ता ने गाँवों की सुधि लेने का समुचित प्रयास नहीं किया है। जो लोग स्वतन्त्रता को प्राप्त करने का दावा करते हैं, वे ही स्वतन्त्रता का स्वाद भी चख रहे हैं। मगर जबतक जनता को—विशेषतः ग्रामीण जनता को— स्वतन्त्रता का स्वाद या प्रसाद नहीं चखाया जायगा तबतक यह स्वतन्त्रता-स्मारक पवित्र दिवस हर साल प्रदर्शनमात्र का ही अधार बना रहेगा। गाँववाले आज स्वतन्त्रता का कैसा फल भोग रहे हैं, यह बात आँखवालों से छिपी नहीं है।

निश्चय ही गाँववालों में बहुत-सी बुराइयाँ घर कर गई हैं। वे बहुत-कुछ दुःख अपनी ही करनी से झेल रहे हैं। किन्तु इसका उत्तरदायित्व भी हम लोगों पर ही है। हम शिक्षितों ने आजतक उन्हें राह सुझाने का काम भी नहीं किया है। हम उनके बीच जाकर उनके सुख-दुःख की जाँच-पड़ताल भी नहीं कर सके हैं। उनके अभावों को समझने और दूर करने के प्रयत्न भी कम ही हो सके हैं। क्या आजादी मिलने से आज तक की अवधि इतने काम के लिए भी पर्याप्त न थी? यही आज का विचारणीय विषय है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए जब राष्ट्रीय आन्दोलन हो रहा था, तभी गाँवों में रचनात्मक कार्यक्रम को चालू करने की बात सोची गई थी। फिर पूज्य बापू के निधन के बाद भी सबके मुख से यही सुनने में आता रहा कि बापू के सबसे प्रिय काम को आगे बढ़ाना ही उनका सच्चा स्मारक या उनके आदर्शों का अनुकरण होगा। सब लोग भली भाँति जानते हैं कि उनका सबसे बढ़कर प्रिय काम रचनात्मक कार्यक्रम अथवा ग्रामोद्धार ही था। आज भी वे सारी बातें बार-बार सभी जगह दुहराई जाती हैं। मगर जोशीले व्याख्यानों और अखबारों में छपी योजनाओं से गाँववालों का पेट नहीं भरेगा। वे खुद भी अपने पैरों खड़े होने को तैयार हैं। मगर उन्हें सहारा देनेवाला कोई नजर नहीं आता। उन्हें उकसानेवाला और सच्ची प्रेरणा देनेवाला कोई देख नहीं पड़ता। उनका उत्साह बढ़ाने में कोई कन्धा मिलानेवाला हो तो वे अपनी कई समास्याएँ हल कर लेंगे। किन्तु जिस प्रकाश की उन्हें तलाश है, वह मिल नहीं रहा है। उनके

मार्गदर्शक मौखिक सहानुभूति ही दिखाने में व्यस्त हैं। उनकी श्रद्धा किसी पूज्य की प्रतीक्षा में व्यग्र हैं।

स्वतन्त्र भारत के गाँव कैसे होने चाहिए, इसकी कल्पना हमलोगों के मस्तिष्क में है जरूर, लेकिन वह स्वप्न कैसे सत्य होगा, इसी का आज हम मनन करें और हर अगले साल के स्वाधीनता-दिवस तक इस दिशा में कुछ कर दिखाने की शपथ या प्रतिज्ञा आज ही ग्रहण करें। तभी तो स्वतन्त्रता-दिवस की पवित्रता चरितार्थ होगी; नहीं तो व्यर्थ की विडम्बना और अनावश्यक आडम्बर से कोई ठोस लाभ सम्भव नहीं, यह ध्रुव सत्य है।

जनता भी आज अपनी गहरी सोचावट से काम ले। वह अपनी भलाई के हरएक काम के लिए सरकार का भरोसा करना या सरकार को कोसना छोड़ दे। वह अपने अधिकारों को पहचानने की कोशिश करे। उन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए आज से ही सजग हो जाय। शहर की जनता गाँव की जनता से सहयोग स्थापित करे। दोनों एक दूसरे की आवश्यकता की पूर्त्ति पर ध्यान दें। शहर के लोग गाँव में जाया करें, जो सूझे सो बताया करें, वहाँ से तरह-तरह के आँकड़े लाया करें। इस तरह भी हमारे गाँव, जो राष्ट्र के हृदय हैं, स्वतन्त्र देश के गाँव कहलाने योग्य हो सकते हैं। तथास्तु।

[अगस्त, १९४८ ई०]

गाँवों की अनिवार्य आवश्यकताएँ

आज कल समय-सरिता के प्रखर प्रवाह में गाँवों के सुधार और उद्धार का कल-कल निनाद चतुर्दिक् स्पष्ट सुन पड़ता है। कांग्रेस ही पहले गाँवों की ओर ढली थी, अब सरकार भी गाँवों की ओर झुकती-सी दीखती है। दोनों की योजनाएँ अभी साँचे में पड़ी हैं। जब वे निहाई पर आकर हथौड़े की चोट खा लेंगी तब उनकी रूप-रेखा अथवा आकृति-प्रकृति के सम्बन्ध में कुछ कहा जा सकेगा।

ग्राम-समस्याओं का निराकरण केवल मस्तिष्क-बल या बुद्धि-बल से नहीं हो सकता। उसके लिए वास्तविक प्रत्यक्ष अनुभव की आवश्यकता है। यह अनुभव दूर से नहीं हो सकता, लिखित विवरणों और आँकड़ों से भी नहीं, पूछताछ या जाँच-पड़ताल और दौरा करने से भी नहीं। कारण, विभिन्न प्रान्तों के गाँवों की विभिन्न समस्याएँ हैं। कुछ समस्याओं में समानता है और कुछ में विपरीतता भी। बहुत संभव है कि एक जिले के गाँवों के साथ जो जटिल समस्याएँ लगी हुई हैं, वे दूसरे जिले के गाँवों के साथ न हों। पर अधिकांश गाँव कम-से-कम प्रतिशत अस्सी गाँव—सारे देश में ऐसे ही हैं, जिनकी समस्याएँ और आवश्यकताएँ बहुत-कुछ एक-सी हैं। जबतक उनकी पूर्ति के प्रयत्न न होंगे, गाँवों की दुर्दशा बनी रहेगी। और, पूर्ति तभी होगी जब गाँवों में कुछ दिन रहकर वहाँ की आवश्यकताएँ समझ ली जायँगी।

हमारे देश के गाँव बहुत दिनों से शोषित, दलित, पीड़ित और उपेक्षित हैं। इसलिए वे नाना प्रकार के अभावों के गढ़ बन गये हैं। यों तो पराधीनता के कारण-स्वरूप कितने ही नगरों में भी बहुतेरे अभाव खटकते हैं, पर गाँवों के अभाव-अभियोग बड़े विकट और अत्यन्त उपेक्षित हैं—न अभी वे अच्छी तरह जाँचे-परखे गये हैं और न उन्हें दूर करने के संगठित उद्योग ही हुए हैं। उनके दूर होने की कोई आशा अभी नहीं दीख पड़ती। गाँवों को लाभ पहुँचानेवाले कई विभाग सरकार के घर में भी चालू हैं, पर उनसे गाँवों को यथेष्ट लाभ नहीं हो पाता। इसके लिए कौन दोषी है, यह जानकारों से छिपा नहीं है। दुर्भाग्यवश अधिकांश गाँववाले अभागे और अज्ञ हैं, इसलिए अधिकतर दोष उन्हीं के सिर थोपे जाते हैं।

लड़के-लड़कियों की शिक्षा

गाँवों की आवश्यकताएँ तो बहुत-सी हैं, पर उनमें कुछ की पूर्ति तो अविलम्ब होनी चाहिए, नहीं तो देशोद्धार का कोई आन्दोलन सर्वांशतः सफल नहीं हो सकता। पहली आवश्यकता, शिक्षा-प्रचार के लिए, स्कूल-पाठशालाओं की है। बहुत से गाँवों में प्रारंभिक शिक्षा की भी उत्तम व्यवस्था नहीं है। कुछ गाँवों में छोटे-मोटे स्कूल हैं, पर उनमें से बहुतों की दशा शोचनीय है। आपस के मतभेद अथवा ईर्ष्या-द्वेष के कारण अनेक स्कूलों से शिक्षा का वास्तविक प्रचार नहीं हो पाता। नगरों के निकट जो गाँव हैं, उनमें किसी तरह थोड़ी-बहुत शिक्षा की ज्योति पहुँच जाती है, पर ऐसे गाँव हैं ही कितने! बहुतेरे गाँवों के लड़के आस-पास के स्कूलों में दो-दो, तीन-तीन कोस पैदल चलकर पढ़ने जाते हैं। सुगम केन्द्र-स्थानों में स्कूल न होने से अनेक छोटे-मोटे गाँवों के बच्चे अपढ़ रह जाया करते हैं। लड़कियों की पढ़ाई का प्रबन्ध तो विरले गाँव में है। स्कूलों और पाठशालाओं में जो शिक्षा दी जाती है, उसकी दूषित प्रणाली से तो सभी लोग परिचित हैं और उसका दुष्परिणाम भी भोगते हैं, फिर भी विवश होकर स्कूल-पाठशालाओं में अपने लड़के लड़कियों को पढ़ाते ही हैं। किन्तु असंख्य गाँवों के लिए वह दूषित शिक्षापद्धति भी सुलभ नहीं है। नेताओं के दौरे और भाषणों तथा अखबारों से जनता में जागृति होती भी है, तो शिक्षा-प्रचार के अभाव से टिकने नहीं पाती। इसीलिए सबसे बढ़कर आवश्यकता गाँवों में शिक्षा-प्रचार की ही है।

शिक्षा-प्रचार होने पर ही गाँवों के लोग अपने दुःख के मूल कारणों को ठीक-ठीक पहचान कर सकेंगे। यदि प्रचार-पत्रक छापकर गाँवों में बाँटे जायँ, तो गाँवों के निरक्षर व्यक्ति उनसे पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा सकते। उनके साक्षर होने पर ही उन्हें हम सरलता से बता सकते हैं कि मकान कैसे बनाना चाहिए, पशु-पालन कैसे करना चाहिए, जीवन में सुख और शान्ति तथा सुन्दरता और सुरुचि कैसे आ सकती है, खाद का उपयोग और उपज बढ़ाने का उद्योग कैसे करना चाहिए, स्वास्थ्य-रक्षा और स्वच्छता के साधारण नियम क्या-क्या हैं, इत्यादि। इस प्रकार गाँवों की वास्तविक भलाई उपयुक्त शिक्षा से ही हो सकती है।

यातायात की समस्या

गाँवों की दूसरी आवश्यकता है—अच्छी सड़क। गाँवों की पैदावार व्यापार-केन्द्रों और नगरों में बड़ी कठिनाई से पहुँच पाती है। सुगम व्यापार-मार्गों के अभाव से अधिकांश गाँव अपनी उपज आसानी से व्यापार की मंडियों तक नहीं पहुँचा पाते। यातायात-पथ की असुविधा के कारण नेता और सुधारक भी गाँवों में अधिकतर नहीं पहुँचते। जहाँ यात्रापथ की सुविधा है, वहाँ गाँवों की उन्नत दशा कुछ-न-कुछ अवश्य दीख पड़ती है। अच्छी सड़कों के किनारे जो गाँव हैं, उनके निवासी बहुत आसानी से स्टेशन और शहर पहुँचकर सभ्यता के साधनों से लाभ उठाते हैं। पर अधिकांश गाँवों में जानेवाली सड़कें बहुत ही भ्रष्ट दशा में पाई जाती हैं। आज भी अनेक गाँव ऐसे हैं, जहाँ सड़कें हैं ही नहीं—मोटर और एक्के की कौन बात, बैलगाड़ी भी बड़ी कठिनता से वहाँ पहुँच पाती है। बरसात में तो असंख्य गाँव सवारियों की पहुँच के बाहर हो जाते हैं। सूखे दिनों में भी अनेक गाँवों में बैलगाड़ी तभी जा पाती है जब एक आदमी कुदाल या फावड़ा लेकर आगे-आगे लीक की राह बनाता चलता है। ऐसे गाँव आधुनिक युग के लाभों से वंचित ही रह जाते हैं। ऐसा भी देखने में आता है कि जिन गाँवों में जिला-बोर्ड का काइ सदस्य रहता है, उसकी सड़क की मरम्मत और देख-भाल सब-से पहले होती है। जिला-बोर्ड के सदस्य चुनाव के समय वोट के लिए गाँव-गाँव दौड़ते हैं, पर चुने जाने के बाद फिर कभी उन गाँवों की सुधि नहीं लेते। यही हालत शहरों में म्युनिसिपलिटी के सदस्यों की भी है—वोट की भीख के लिए दाँत दिखायेंगे, पर पीछे तो सूरत भी नहीं दिखायेंगे। खास कर बिहार के जिला-बोर्ड गाँवों की सड़कों पर बहुत कम ध्यान देते हैं! गाँवों की दुर्दशा सड़कों की खराबी से बहुत शोचनीय हो गई है। युद्धोत्तर युग के कार्यक्रम में सड़कों के पुनर्निर्माण की बड़ी मधुर-मधुर योजनाएँ सुन पड़ती हैं, पर अभागे गाँवों को अब भी कोई आशा नहीं है; क्योंकि शहरों और कस्बों का पेट भर जाने के बाद ही गाँवों की ओर कुछ टुकड़े फेंक दिये जायँगे! गाँवों का यही विश्वास है।

जलाशय और स्वच्छता

तीसरी आवश्यकता अच्छे जलाशयों की है। गाँवों के पंचानबे फी सदी कुँए पक्की जगत के बिना बहुत गन्दे पाये जाते हैं। जो पक्के कुँए हैं, उन्हें भी देहाती लोग अज्ञता के कारण स्वच्छ नहीं रख पाते। गन्दे बरतन से पानी निकालते हैं, कुँए के पास नहाते और कपड़े कचारते हैं, पानी बहने के लिए नाली साफ नहीं रखते, बाहरी कूड़ा-कचरा भी कुँए में गिरता है तो सफाई का उपाय नहीं करते। एक तो गाँव में वैद्य-डाक्टरों की कमी है, दूसरे, जलाशयों की मलिनता से लोग और भी कष्ट पाते हैं। तालाब या नदी में भी लोग सफाई का ध्यान नहीं रखते। इसलिए गाँवों में जहाँ कुँओं की पक्की जगत बनाने की आवश्यकता है, वहाँ गाँववालों को सफाई के नियम बताने की भी आवश्यकता है। अनेक गाँवों में जन-संख्या के अनुपात से कुँओं की संख्या बहुत कम है, इससे भी स्वच्छता के नियमों के पालने में आलस्य होता है।

गाँवों में खेतों की सिंचाई के लिए जगह-जगह जलाशयों की आवश्यकता है। जहाँ नहर है, वहाँ भी ऐसे खेत हैं जिनमें कई फसल उपजाने के लिए स्वतन्त्र जलाशय की आवश्यकता है। जहाँ नहर नहीं है, वहाँ तो जलाशयों के बिना अकाल पड़ जाया करता है। गाँवों में जो धनी हैं, वे तीर्थाटन और यज्ञ करने में पैसे खर्च करते हैं; पर कुँए या तालाब नहीं बनवाते। बहुत-से ग्रामीण धनिकों के पास फालतू धन व्यर्थ सड़ रहा है, कोई भोगनेवाला भी नहीं, पर वे गाँवों की आवश्यकताओं पर ध्यान न देकर परलोक की ही चिन्ता किया करते हैं! गाँवों के मालिक जमीन्दार यदि समर्थ होते हैं तो कभी-कभी इधर ध्यान दे देते हैं, नहीं तो गाँवों के लोग भगवान के भरोसे ही दिन काटते हैं। लोगों में संघशक्ति का भी अभाव है। यदि संघटन का बल होता तो कुछ काम हो भी सकता था, पर शिक्षा के अभाव से संघशक्ति भी नहीं है!

चिकित्सा की विकट समस्या

चौथी आवश्यकता दवाखाने की है। नगरों के निकट जो गाँव हैं अथवा जिनके आसपास थोड़ी ही दूर पर अस्पताल या दवाखाना है, उनको चिकित्सा आदि की सुविधा मिल जाती है। पर ऐसे गाँव बहुत थोड़े हैं। अधिकतर गाँव तो दवा-दारू की सुविधा के बिना तबाह रहा करते हैं। गाँववालों का पशुधन तो सर्वथा अरक्षित दशा में पड़ा हुआ है। गोधन ही किसानों की पूँजी है और गाँवों के केन्द्र-स्थानों में भी पशु-चिकित्सालय नहीं हैं। जब पशुओं की बीमारी से गाँववाले क्षतिग्रस्त होने लगते हैं, तब उनकी असहाय अवस्था अत्यन्त दयनीय हो जाती है। एक तो वे पशु-पालन-विधि से भी अनभिज्ञ हैं, अपने शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा के साधारण नियम भी नहीं जानते, दूसरे उन्हें सुलभ मूल्य पर दवाएँ भी नहीं मिलतीं। बेचारे गरीब पुष्टिकर पथ्य तो पाते ही नहीं, मूल्यवान ओषधियों की क्या कथा! पशुओं की चिकित्सा का प्रबन्ध कौन करे? मनुष्य ही जहाँ उपेक्षित हैं, वहाँ पशुओं पर दया करने का प्रश्न ही निरर्थक है। मनुष्यों की दशा तो जानवरों से भी गई-बीती है। खासकर स्त्रियों की दशा तो और भी खराब है। स्त्रियों के लिए गाँवों में मातृमन्दिर इत्यादि कहीं नहीं है। प्रसूतियों और बच्चों की अकाल-मृत्यु से गाँवों के कितने ही घर उजड़ गये, पर आज तक मातृजाति के इस दुःख की ओर किसी का ध्यान न गया। शहरों में धनीमानी दानी लोग या म्युनिसिपलिटी या सरकार चाहे जो प्रबन्ध करते हों, पर गाँववालों के प्रति किसी की सहानुभूति प्रत्यक्ष नहीं दीख पड़ती। गाँव के मनुष्यों और पशुओं के लिए काष्ठौषधि का प्रयोग जाननेवाले अनुभवी वृद्ध स्त्री-पुरुष भी अब बहुत कम रह गये। गाँवों की दशा ज्यों-ज्यों हीन होती जाती है, त्यों-त्यों दीर्घजीवी मनुष्यों की कमी होती जा रही है। अनवरत शोषण का यह क्रूर-क्रम!! अनाथ गाँवों की निराधार स्थिति!! राम ही रक्षक हैं!!!

बाढ़ और महामारी

पाँचवीं आवश्यकता है—नदियों और महामारियों की बाढ़ से बचने की स्थायी व्यवस्था। देश के अनेक भागों में हर साल हाहाकार मचता है और सावन से अगहन तक घोर

संहार-लीला होती रहती है। कितने ही गाँवों का अस्तित्व ही मिट गया और अनेक गाँवों के बहुत-से परिवार दीन-दुखी होकर भाग्य को कोस रहे हैं। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए योजनाओं की घोषणा का दूरागत संगीत-स्वर सुनकर ही सन्तोष कर लेना पड़ता है !!

खेतों की चकबन्दी

गाँवों में खेतों की चकबन्दी भी आवश्यक है। यही छठी आवश्यकता है। इसके साथ ही गोचर-भूमि की व्यवस्था भी है। चकबन्दी न होने से किसानों की सीमित शक्ति बिखर जाती है। वे बिखरे हुए खेतों की रखवाली भी ठिकाने से नहीं कर पाते। गोचर-भूमि की ओर किसानों का भी ध्यान नहीं है। गाँवों की परती जमीन का अब लगान पर बन्दोबस्त होता जा रहा है। पशुओं के ह्रास का एक कारण यह भी है, और पशुओं के ह्रास से ग्रामीण लोगों की जीवन-शक्ति का भी क्रमशः क्षय हो रहा है। एक तो अब पशुओं का मूल्य भी पहले से चौगुना-पचगुना हो गया, दूसरे इस गोचर-भूमि की कमी से पशुओं की वृद्धि नहीं होने पाती। गाँवों में भी अब घी-दूध का काफी अभाव हो चला है।

यदि गाँवों की इतनी आवश्यकताएँ भी पूरी हो जायँ तो देश की शक्ति बहुत बढ़ जायगी। 'कस्तूर बा कोष' से गाँववाले कहाँ तक लाभान्वित हो सकेंगे, यह भविष्य के गर्भ में है। सरकारी योजनाएँ कब कार्य-रूप में परिणत होंगी और उनसे ग्रामीणों का कितना उपकार हो सकेगा, यह भी भावी के ही अधीन है। हाँ, महात्मा जी के रचनात्मक कार्यक्रम की ओर गाँववाले आशा-भरी करुण-कातर दृष्टि से देख रहे हैं। ग्राम-सुधार और ग्राम-संघटन में देशभक्त कार्यकर्त्ता शायद ही दत्तचित्त होंगे। इसलिए यह भी भविष्य के हाथ में है। सब प्रकार से गाँवों के भाग्य का सूत्र भगवान् के हाथों में ही है।

[अक्तूबर, १६४८ ई०

ग्रामोद्धार का मनमोदक

गाँव ही भारत की रीढ़ है—यह बात असंख्य बार अनेक श्रीमुखों से ऊँचे-ऊँचे मंचों पर दुहराई गई है और आजतक बराबर दुहराई जा रही है। किन्तु रीढ़ में ऐसा दर्द है कि कमर सीधी नहीं होती—गर्दन भी तन नहीं पाती; किन्तु मालिश के लिए अभी तेल के नुस्खे ही बन रहे हैं !

राष्ट्रीय आन्दोलन के आरम्भ से ही महात्मा गान्धी स्पष्ट शब्दों में कहते चले आ रहे हैं कि ग्रामों को स्वावलम्बी बनाने के लिए ग्रामोद्योग को उत्तेजन दिया जाय—ग्रामीणों को अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ उत्पन्न करने में उत्साहपूर्वक लगाना चाहिए—गाँव यदि नष्ट हो गये तो भारत भी नष्ट हो जायगा; किन्तु महात्माजी की ये बातें पचीस वर्षों से कानों में गूँजती रहने पर भी आजतक संघटनात्मक रीति से कार्यरूप में परिणत न हो सकीं।

बेचारे ग्रामीण अपनी ही समस्याओं के जाल में ऐसे उलझे हुए हैं कि वे अपने उद्धार के उपाय न सोच सकते हैं, न कर पाते हैं। उनके साथ सहानुभूति रखनेवाले जितने लोग हैं, दूर-ही-दूर से जबानी हमदर्दी दिखाते हैं—किसी गाँव में आसन जमाकर और दस-बीस गाँवों का मण्डल बनाकर ग्रामोद्धार का प्रयत्न नहीं करते। कहीं-कहीं सच्ची लगन के कुछ कार्यकर्त्ताओं ने प्रयोगात्मक रीति से ग्रामोत्थान के कार्य किये हैं और उनकी प्रशंसनीय सेवाओं से कुछ सहृदय सज्जनों को यथोचित प्रेरणा भी मिली है; किन्तु लाखों गाँववाले देश 'भारत' में अभी वह दाल में नमक के बराबर ही हैं।

अखिल भारतीय महासभाएँ तो बहुत-सी हैं; पर गाँवों में केवल कांग्रेस का ही अखण्ड प्रभाव है। कांग्रेस के जो सदस्य और कार्यकर्त्ता हैं, उनके प्रति किसी कारण यदि ग्रामवासियों की कुछ अश्रद्धा अथवा अनास्था भी है तो कांग्रेस के प्रति रंचमात्र भी नहीं है। कांग्रेस के त्यागी एवं तपस्वी नेताओं के प्रति ग्रामवासियों की अविचल श्रद्धा है। वे खूब समझते हैं कि कांग्रेस ही हमारे हित में तत्पर रहनेवाली एकमात्र सजीव संस्था है; मगर कांग्रेस का बाना धारण करके हमारे बीच में रहनेवाले कार्यकर्त्ताओं की उदासीनता और अकर्मण्यता से ही हमारा हितसाधन नहीं हो पाता। कांग्रेस के कितने ही ग्राम-निवासी कार्यकर्त्ताओं ने अपनी कष्टसहिष्णुता और त्याग-वृति से गाँववालों की श्रद्धा एवं सहानुभूति प्राप्त की है; पर ऐसे आदर्श-देशभक्तों की संख्या बहुत अधिक नहीं है। ये अल्प-संख्यक देशभक्त अपने प्रान्त अथवा जिले की राजनीतिक समस्याएँ सुलझाने में ही व्यस्त रहा करते हैं। इनके सहकर्मियों और सहायकों में यदि सच्चे उत्साही कार्यकर्त्ता होते तो गाँवों का अबतक बहुत-कुछ उपकार हुआ होता। किन्तु अधिकांश कार्यकर्त्ता क्षणिक आवेश उत्पन्न करनेवाली सभा-सोसाइटियों में ही अधिक समय बिता देते हैं। वे यदि दस-बीस-पचास गाँवों के मण्डल में किसी केन्द्रस्थान पर अड्डा बाँधकर दृढ़ प्रतिज्ञ हो बैठ जाते, तो गाँवों का सुधार भी होता और कांग्रेस की शक्ति भी खूब बढ़ती।

कांग्रेस की शक्ति के स्रोत का उद्गमस्थल गाँवों में ही है। राष्ट्रीय शक्ति के मूल स्रोत होने के कारण ही गाँवों की उन्नति करने के उद्योग की ओर हमारे पूज्य श्रेष्ठ नेताओं ने सबसे पहले कदम बढ़ाया। जबसे उनलोगों ने कांग्रेस के द्वारा ग्रामोद्धार के सदुद्योग का श्रीगणेश किया तब से आज तक इस देश के लाखों गाँवों में से एक हजार गाँवों का भी वास्तविक सुधार या उद्धार नहीं हुआ। इसका मुख्य कारण यही है कि हमारे देशानुरागी कांग्रेसकर्मी कहीं ग्राममण्डल में स्थावर होकर नहीं जमे हैं। केवल जंगम ग्राम-सुधारकों से गाँवों का सुधार नहीं हो सकता! देश के कुछ जिलों में ग्रामोद्धार का सुव्यवस्थित कार्य संचालित करने के लिए कुछ राष्ट्रकर्मियों ने आदर्श आश्रम बनाकर सन्तोषप्रद ग्रामसेवा की है और वे एकाग्र निष्ठा से निरन्तर ग्रामोन्नति के शुभ प्रयत्न में संलग्न हैं। किन्तु ऐसे शुभ प्रयत्नों का अधिकाधिक प्रसार सर्वत्र ही होना चाहिए।

पूज्य महात्माजी के प्रसिद्ध रचनात्मक कार्यक्रम में गाँवों की उन्नति और भलाई के जितने अधिक तत्त्व हैं, उनसे आज भी गाँवों के अपढ़ लोग अच्छी तरह परिचित नहीं हुए हैं। अखबारों में केवल कार्यक्रम छाप देने से गाँववालों की क्रिया-शीलता नहीं जग

सकती। थाने-थाने में केन्द्र खोल देने से भी गाँववालों में कर्मठता नहीं आ सकती। हमें बहुत दिनों की जमी हुई काई की सफाई करनी है। इसलिए गाँव-गाँव में उत्साही कार्यकर्त्ताओं का जाल बिछा देने की जरूरत है। ग्रामोद्धारक-दल के स्वयंसेवकों के लिए गाँवों में ही जीविका आदि का प्रबन्ध हो जायगा। कांग्रेस के सेवाव्रती सैनिक गाँवों में डेरा डालकर देख लें कि गाँववाले कितनी श्रद्धा से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में तत्पर रहते हैं। गाँववाले तो श्रद्धा का थाल सजाये बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं, पर उन्हें किसी आराध्य की आहट भी नहीं मिलती। पुजारी की उत्कंठा उकता रही है और पूज्य का पता नहीं! गाँववाले मोटे खद्दर के समान हैं। खद्दर अगर तुरत मैला होकर गन्दा दीख पड़ने लगता है, तो तुरत साफ होकर चमकने भी लगता है। गाँववालों का समाज भी मनोमालिन्य, फूट, वैर-विरोध, वैमनस्य आदि से यद्यपि दूषित हो गया है तथापि वह सहानुभूतिपूर्ण उपदेशों से तत्क्षण ही निर्मल हो जा सकता है। किन्तु सहानुभूतिशील उपदेशक को—ग्राम-सुधारक को—गाँववालों के साथ ही बराबर रहना होगा, उनके बीच बसकर धूनी रमानी होगी, तभी उपदेश का प्रभाव स्थायी हो सकेगा, नहीं तो काई को फटते और जमते देर नहीं लगती। अतः जो सचमुच ग्रामहितैषी हैं, वे ग्रामीणों में अपनेको खपाकर ही कुछ कर सकते हैं। यदि कांग्रेस के देशभक्त कार्यकर्ता प्रत्येक ग्राम में कुछ उत्साही ग्रामीणों को ही सेवाव्रत की दीक्षा देकर तैयार कर दें, तो अनायास काम बन सकता है। ऐसे ग्राम-शुभचिन्तकों के लिए गाँववाले पलकों के पाँवड़े बिछाये हुए हैं। किन्तु लक्षणों से जान पड़ता है, उनकी टकटकी बँधी ही रह जायगी!

ग्रामोद्धार की योजनाओं को देशव्यापी बनाने की चर्चा सुनते-सुनते गाँववालों के कान पक गये, पर वह सुदूरागत संगीत जिनके कण्ठों से निकल कर वायुमण्डल को गुँजा रहा है और सुननेवालों को ललचा भी रहा है, उन व्यक्तियों के दर्शन और सत्संग का सौभाग्य गाँववालों को प्राप्त नहीं हो रहा है। किसान-महासभा ने ग्रामोत्थान के लिए कहाँ क्या किया है, यह उसके कार्यकर्त्ता ही बतला सकते हैं। किन्तु कांग्रेस के कार्यकर्त्ता से यही नम्र निवेदन है कि वे अब अधिक दिनों तक गाँववालों को ग्रामोद्धार का मनमोदक न खिलाएँ। उन्हें मनमोदक खिलानेवाली महासभाएँ इस देश में बहुत हैं। अतः ऐसी चेष्टा होनी चाहिए कि उन महासभाओं में राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की गिनती न हो।

[नवम्बर, १९४५ ई०

हमारे उपेक्षित गाँव

गाँव-गँवई की चर्चा भला इस युग में किसको सुहाती है! जिनको सुहाती है, उनकी गिनती ही कितनी है! शायद उतनी ही, जितनी इस समय के लोगों में सदाचारियों की!

सारे देश के गाँवों का पड़ता बैठाकर अगर ठीक जाँच-पड़ताल की जाय, तो गाँवों की सेवा में अपने-आपको खपाकर काम करनेवाले सच्चे कार्यकर्त्ता उतने भी न मिलेंगे जितने आज हिन्दी-संसार में सुसम्पादित पत्र हैं!

गाँवों के अन्दर चन्दा उगाहने और वोट माँगने बहुत लोग जाते हैं, मगर गाँवों की वास्तविक भलाई करने वहाँ कोई नहीं जाता; क्योंकि वास्तविक भलाई तो तब हो सकती है जब उसी नियत से वहाँ कोई स्थायी अड्डा जमा दे। यह बात अत्यन्त कड़वी है, पर कठोर सत्य यही है।

गाँवों में रहनेवाले लोग अपनी भलाई सोचकर पंचायत कायम कर लें, स्कूल खोल लें, पुस्तकालय चला लें; यह दूसरी बात है—मगर बाहर के पढ़े-लिखे सुधारक या नेता कभी गाँवों में एकाध साल भी स्थिर रहकर ग्रामसेवा नहीं करते। कुछ थोड़े-से ग्रामसेवाव्रती ऐसे हैं जो एकान्त भाव से ग्रामोद्धार-कार्य में संलग्न हैं, पर उनका केवल स्थानीय महत्त्व है, देशव्यापी नहीं।

जिला-बोर्ड के चुनाव के समय बड़े-बड़े बाबू लोग मामूली देहाती आदमी के आगे दाँत निपोरते हैं—निहोरा करते हैं, मगर मेम्बरी मिलते ही गाँववालों को भूल जाते हैं। कभी उन्हें अपनी सूरत नहीं दिखाते, बात पूछने भी नहीं जाते, उन बेचारे ग्रामीणों की, जिनसे 'वोट' की भीख मिली थी।

जिला-बोर्ड के मेम्बरों से कौंसिलों के मेम्बर अधिक योग्य और देशभक्त समझे जाते हैं। मगर ये महाशय भी चुनाव का दौरा करते समय तो लम्बे-चौड़े वादे करने में कमाल कर डालते हैं। लेकिन कौंसिलर होने पर गाँववालों से किये गये वादों का ख्याल रखना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं।

गांधीजी के मतानुसार-लेख लिखकर या लेक्चर झाड़कर हमलोग गाँवों का उतना उपकार नहीं कर सकते जितना उनके बीच कुछ ठोस काम करके। लेकिन, खयाल रहे, वहाँ काम करने के लिए इतनी अधिक सहनशीलता और धीरज चाहिए कि हर तरह के झोंके झेले जा सकें।

आजकल जो छोटी-बड़ी राजनीतिक पार्टियाँ गाँवों में इधर-उधर अपना प्रचार-कार्य करती दीख पड़ती हैं, उनमें भी बहुत कम ही कार्यकर्त्ता ऐसे हैं जो गाँवों में खप सकें। गाँव में धूनी रमाकर जो गाँववालों की सेवा-शुश्रूषा में मनसा-वाचा-कर्मणा लग जायगा, वही वहाँ खपेगा। किन्तु ग्राम-सेवक की यह परिभाषा आज किसी को सह्य या ग्राह्य नहीं! वहाँ पग-पग पर कठिनाइयाँ झेलने जायगा कौन? मीटिंग और मोटर के शौकीन बाबू लोग जेल की कठिनाइयाँ झेल सकते हैं—ग्रामीण-समाज के झमेले नहीं!

कांग्रेसी भाइयों में ग्रामसेवकों का बड़ा टोटा है। एक जगह आसन मारकर काम कर दिखानेवाले अभी तो कहीं आँख तले नहीं आते। शहर में अड्डा बांधकर गाँवों में चक्कर काट आने से कुछ होता-जाता नहीं। जबानी जमाखर्च चुकाने से गाँव का घाटा पूरा न होगा। ट्रेनिंग पाये हुए लोगों का भी टिकना दूभर है; अगर उनमें गहरी लगन न हो। कारण यह है कि वहाँ तो जड़-उखाड़ आंधी में पैर जमाना है।

आज राष्ट्रीय सरकार की छत्रच्छाया में भी गाँवों को आशा और उत्साह का कोई सन्देश नहीं मिल रहा है। कहने के लिए भले ही कोई कह ले कि अधिक अन्न उपजाओ, साग-सब्जी उगाओ, चर्खा चलाओ, गया-भैंस पालो—इत्यादि। मगर गाँव में जाकर

कुछ दिन वहाँ बैठ देखिए कि आखिर ये सारे काम होंगे कैसे और इन्हें करेगा कौन ? जिनके पास इन कामों के करने के साधन हैं, वे पुरानी मनोवृत्ति और प्रवृत्ति के शिकार बने बैठे हैं, और जो इन कामों के करने में तन-मन होम कर सकते हैं उनके पास साधनों का ही अभाव है। खेती के लायक मवेशियों की महँगी तो है ही,बचे-खुचे पशुओं के लिए चारा और चिकित्सा भी सुलभ नहीं है। यह दुतरफी तबाही ग्रामीणों की है! सिंचाई के लिए अच्छे कुँओं और आहर-पोखरों की कमी अलग है। नहर के सरकारी कर्मचारी खासकर अपढ़ गरीब किसानों से, हरएक 'बड़ी' में अलग-अलग नोन डालवाते हैं। चर्खे का प्रचार जहाँ है, वहाँ तो है ही, जहाँ नहीं है या कम है, वहाँ उनपर लोगों की आस्था जमने नहीं पाती, क्योंकि कपड़े का 'कोटा' बहुत ही खोटा उदाहरण उपस्थित करके लोगों में घोर असन्तोष की आग भड़का रहा है। रक्षक बन गये हैं भक्षक! तक्षक से भी भयंकर !!

अन्न, वस्त्र और जीवनोपयोगी सभी सामग्रियों की दुर्लभता ने गाँव के गरीबों को चूर-चूर कर डाला है। बेचारे पेट की मार से बेहोश होकर कुछ कर-धर नहीं पाते। गाँव में जिनके पास अन्न-द्रव्यादि की कुछ पूँजी है, वे स्वार्थ-पिशाच से पिण्ड छुड़ाकर देश-दशा की ओर देखना ही नहीं चाहते। योजनाएँ सोचने और बनानेवाले दिमाग कहीं एक-दो सप्ताह भी अन्न-वस्त्र के दुःख का मजा चख पाते, तो गरीबों की गुहार फीकी न पड़ती। उपदेश और सिद्धान्त तथा आदर्श बहुत अच्छी चीजें हैं, मगर खाली पेट के अन्दर तो अन्न के सिवा ईश्वर भी नहीं पैठ सकता! देश के पढ़े-लिखे लोग देश की सेवा का बीड़ा उठानेवाले लोग, देशभक्ति का दम भरनेवाले लोग, सब मिलकर गाँवों में गरीबों की दशा जा देखें—क्या उन्हें छूछी मीठी बोली से भी दम-दिलासा देनेवाला कोई है? उन्हें ढाढ़स बँधाने की नीयत से कभी कोई रीती सहानुभूति लेकर भी उनके पास गया है? क्या पाखण्ड की पराकाष्ठा परमात्मा ने रची ही नहीं?

गाँवों में आज भीषण हाहाकार है। वह हाहाकार अखबारी कानों से नहीं सुना जा सकता। कोई लेखक ऐसा पैदा ही नहीं हुआ है जो यहाँ की असली तस्वीर खींचकर दुनिया को दिखा दे। अगर कोई सचमुच देखना चाहे, वहीं चला जाय, घर-घर घूमकर सबकी परिस्थितियों का मिलान करे, सब तरह के आँकड़े जुटाकर छानबीन करे, तब पता लगे कि जिन लोगों पर उन बेचारों की जिम्मेवारी सौंपी गई है, वे कहाँ तक उनके हमदर्द हैं। अखबारों का असर इतना ही है कि शहरों की शिकायतें तो झट खुल-खेलकर हलचल मचा देती हैं, गाँवों की शिकायतें जहाँ-की-तहाँ पड़ी ही रह जाती हैं और ज्यादा-से-ज्यादा फी-सदी पाँच गाँवों की शिकायतें ही अखबारी दुनिया में घुसकर थोड़ी देर गूँज पाती हैं।

गाँवों की उपेक्षा हर तरह से हो रही है। गाँवों की जनता के अन्दर जिनकी पहुँच और साख तथा धाक है, वे सिर्फ सुनहले सपने दिखाकर अलग फटकते फिरते हैं जिनको अब उस जनता पर सिक्का जमाना है, वे पेशबन्दी और मोर्चेबन्दी में व्यस्त हैं।

और-और लोग भी उसे घनी-घनी हरियालियाँ दिखा रहे हैं। किन्तु इन सबसे इस समय की उपेक्षा से, गाँवों में जो भविष्य-सन्तापी भाव पनप रहे हैं, वे अच्छे फल लानेवाले नहीं हैं। अनेक वर्षों की उपेक्षा से ऊबे हुए हमारे गाँव उन्मत्त स्वर में आज पुकार रहे हैं—

स्वतंत्रता रम रही हमारे कंकालों की छाया में।
भूले-भटके कहाँ जा रहे मृग-मरीचिका-माया में ?

[अक्टूबर, १९४६ ई०]

बेचारे अनाथ गाँव !

सबसे पहले पूज्य महात्मा गाँधी ने गाँवों की सुधि ली। उनसे पहले गाँवों की खोज-खबर लेने की ओर विशेष रूप से किसी का ध्यान नहीं गया था। महात्माजी ने ही कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं को प्रेरणा और प्रवृत्ति दी कि वे गाँवों में जाकर रचनात्मक कार्य-क्रम को पूरा करें। अपने इस महत्त्वपूर्ण कार्य-क्रम पर महात्माजी ने अनेक बार, बार-बार, जोर दिया। उन्हीं के अनुरोध से कांग्रेस ने भी इस कार्य-क्रम के पूरा करने में कई बार जोर लगाया ! किन्तु सात लाख गाँवों के लिए सात सौ सच्चे कार्यकर्त्ता भी आजतक तैयार न हुए ! ग्रामोद्धारसंघ बना, ग्राम-सुधार-समितियाँ बनीं, ग्रामसेवा की शिक्षा के लिए शिविर खुले, कहीं-कहीं गाँवों के बीच आश्रम भी स्थापित हुए, कितनी ही सभाओं में प्रस्ताव स्वीकृत किये गये, नेताओं के लम्बे-चौड़े-व्याख्यान हुए, अखबारों ने असंख्य लेख प्रकाशित किये, कुछ लेखकों ने ग्राम-समस्या-सम्बन्धी पुस्तकें भी लिखीं, सरकारी योजनाएँ भी देखने में आईं तथा इसके और भी न जाने कितने ही प्रयत्न हुए; किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी हमारे गाँव बेचारे आज भी अनाथ ही हैं ! छिटफुट कहीं काम होता भी है तो वह भूसे में दाने के बराबर ही है !

आज, जब केन्द्र से प्रान्त तक में स्वदेशी सरकार की सत्ता का खूब ढिंढोरा पिट रहा है, हमारे गाँव पहले से भी अधिक अनाथ हैं !!!

आज गाँववाले अच्छी तरह समझने लग गये हैं कि हमारे दो-चार-दस महान् नेताओं की तपस्या के प्रभाव से ही कांग्रेस की प्रतिष्ठा बनी हुई है, नहीं तो कांग्रेस के अधिकांश कार्यकर्त्ता, प्रायः कांग्रेस के उच्च एवं पवित्र आदर्श को ताक पर रख कर आपस की दल-बन्दी और स्वार्थपरायणता से, जनता की दृष्टि में कांग्रेस को हेय प्रमाणित करते जा रहे हैं। यदि हरएक प्रांत के गाँवों में पूरी ईमानदारी के साथ इस सचाई की जाँच-पड़ताल की जाय, तो आश्चर्यजनक रहस्यों का भंडाफोड़ हो सकता है। प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियों के पास यदि कोई कर्त्तव्य-परायण गुप्तचर-दल हो, तो उन्हें सावधानतापूर्वक उसका उपयोग करना चाहिए। आज भी कुछ सच्चे कार्यकर्त्ता ऐसे जरूर हैं जिनका अभिनन्दनीय त्याग और देशानुराग जनता को विचलित नहीं होने दे रहा है; परन्तु बहुत-से अनिष्टकर

व्यक्ति केवल स्वार्थ-साधन के निमित्त राष्ट्रीय बाना धारण कर सच्ची लगनवाले कार्यकर्त्ताओं को भी अपदस्थ कर रहे हैं। जौ के साथ घुन पिस रहे हैं!

गाँवों से सरकार जो अन्न ले रही है, गाँवों में कपड़े का जो 'कोटा' बँट रहा है, 'कण्ट्रोल' की दुकानों को जो ठीके दिये जा रहे हैं, और भी गाँवों की सुविधा के लिए सरकार जो कुछ कर रही है, सबसे जनता आज यह प्रत्यक्ष अनुभव करती है कि हमारी अपनी सरकार हमारे लिए करती तो है बहुत कुछ, लेकिन उसी के बनाये पायक और नायक हमें उन सारी सुविधाओं से वंचित किये दे रहे हैं! इस स्वार्थसिद्धि-लीला की अन्दरूनी कार्रवाइयाँ तब जाहिर होंगी जब कोई वास्तविक ग्राम-हितैषी गाँव-गाँव घूम-घूमकर असलियत का पता लगाने की कोशिश करेगा। किन्तु लक्षणों से यही प्रतीत होता है कि गाँवों का ऐसा कोई हितू सिरजा ही नहीं गया है। गाँवों की माँग की पूर्ति और गाँवों के हक की हिफाजत करनेवाला भी कोई है, ऐसा देखने में नहीं आता। जिला-बोर्ड के मेम्बर अपने ही घर तक सड़क बनवाने की धुन में हैं, जिला-थाना-कमेटियों के मेम्बर पद-लोलुपता के रोग से ग्रस्त एवं त्रस्त हैं, जनता के सेवक कहे जानेवाले लोग अपने सगे-सम्बन्धियों को लाभ पहुँचाने में व्यस्त हैं; फिर बेचारे मूक ग्रामीणों के सुख-दुख की चिन्ता कौन करे?

इस तरह गाँव बेचारे आज सचमुच सर्वथा अनाथ हैं! जिन महानुभावों पर उन बेचारों की रक्षा और सेवा का भार सौंपा गया है, वे लोग उन असहायों की कहाँ तक सहायता करते हैं, इसका पता न अखबारों से लगेगा और न कार्यकर्त्ताओं की रिपोर्टों से। मुश्किल तो यह है कि बड़े-बड़े नेता ग्राम-मण्डल में पहुँच कर भी गाँवों की दशा ठीक ठीक नहीं जान पाते। वे तो हजारों कण्ठ से जय-जयकार सुनकर समझ लेते हैं कि देश वास्तव में क्रान्ति के लिए तैयार है। किन्तु वज्रादपि कठोर सत्य यह है कि वह क्रान्ति विशुद्ध भ्रान्ति है। गाँवों की आन्तरिक स्थिति कुछ और ही है। उस दयनीय स्थिति की आह जय-जयकारों में गुम हुई रहती है। अगर कोई हौसला रखनेवाला हमदर्द उस शोचनीय स्थिति को अपनी आँखों देखना चाहे, तो गाँवों में कुछ दिन शुद्ध ग्रामीण के ही रूप में रहकर देख सकता है। वहाँ अविद्या, कलह, वैमनस्य, स्वार्थान्धता, कुप्रथा, अन्ध-विश्वास, मुकदमेबाजी, वैर-विरोध, अनीति और अनाचार अड्डा बाँधे बैठे हैं। इन बुराइयों को दूर करने के लिए कृतसंकल्प आदर्श कार्यकर्त्ताओं को स्थायी रूप से गाँवों में आसन जमाना होगा। किन्तु ऐसे मुट्ठी-भर कार्यकर्त्ता भी दृष्टि-गत नहीं हैं। सुतरां, बेचारे अनाथ गाँवों को केवल अनाथ-नाथ अशरण-शरण का ही सहारा है!

[नवम्बर, १९४६ ई०]

बरसात में देहात की दुर्दशा

देहात की दुर्दशा सभी ऋतुओं में है, मगर बरसात में विशेष। बरसात के बाद मलेरिया-ज्वर का प्रकोप, ग्रीष्म में हैजे और चेचक का। जाड़े में काफी कपड़े के अभाव

से गरीब ठिठुरते हैं या मलिनता के भण्डार बन जाते हैं। बरसात में साँपों के उपद्रव से बे-मौत मरते हैं, गरमी में लू लगने से। कम पानी बरसा तो खेती गई, ज्यादा बरसा तो बाढ़ में फसल और माल-मवेशी स्वाहा। गरमी में पशुओं का रोग आया तो खूँटा-उखाड़ आँधी में कितने ही किसान उजड़ गये। हाड़तोड़ मेहनत के बाद फसल तैयार हुई तो खलिहान लगते ही लहनदार महाजन की लाल-लाल आँखें घूरने लगीं। जो गाँव किसी अच्छी नदी या पक्की सड़क के किनारे हैं—किसी रेलवे स्टेशन या शहर के पास-पड़ोस में हैं, वे विशेष दुर्दशाग्रस्त नहीं होने पाते। हाँ, बड़ी नदी के किनारे बसे हुए गाँव बरसात में कष्ट झेलते हैं; पर गरमी में उसके बदले काफी सुविधा पा जाते हैं। लेकिन स्टेशन और पक्की सड़क के पासवाले गाँवों को सन् १९४२ के घोर आन्दोलन में बहुत कष्ट झेलना पड़ा था।

गंगा आदि भयंकर बाढ़वाली नदियों के किनारे जो गाँव बसे हुए हैं, वे बरसात में असह्य कष्ट झेलते हैं; किन्तु प्रति वर्ष का अभ्यास होने से वे कष्ट से ऊबते नहीं और अन्य ऋतुओं में नदी से जो सुख-सुभीता होता है, उनका स्मरण करते हुए कष्ट के दिन बिता देते हैं। उनकी कतिकी या अगहनी फसलें बाढ़ में सड़-गलकर नष्ट हो जाती हैं और सड़ाँद की दुर्गन्ध से बीमारी भी फैलती जाती है; पर चैती फसल के खलिहान में सारी कसर पूरी हो जाती है और बीमारी से दुबले हुए लोग फिर चंगे हो जाते हैं। इसी प्रकार दुर्दिन-सुदिन का चक्र चलता रहता है। यदि गाँवों की बस्ती बसाते समय सब तरह के संकटों का ध्यान रखकर उपयुक्त स्थान का चुनाव और वस्तु-कला के विधान के अनुकूल निर्माणकार्य किया गया होता अथवा किया जाता, तो देश के असंख्य गाँवों का जो बाढ़ में सर्वनाश होता रहता है, वह नहीं होता। प्रति वर्ष देश की अपार सम्पत्ति उमड़ी हुई नदियों के अतल गर्भ में विलीन हो जाती है। किन्तु आलसी देश में संकटों के निवारण का उपाय होना सहज नहीं है!

जो गाँव घने जंगलों और पर्वत-श्रेणियों के आस-पास बसे हुए हैं, वे भी कष्ट कठिनाइयाँ झेलने के अभ्यासी हो गये हैं। उनको जंगली हिंसक पशुओं का उत्पात सहना पड़ता है। साल-भर में कितने ही मनुष्य और पशु भयंकर जन्तुओं के शिकार होते हैं; पर क्या करें बेचारे निहत्थे, विवश होकर साहस के सहारे जीवन-यापन किया करते हैं। बरसात में उन्हें पंकिल पथ की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता; किन्तु अन्यान्य अनेक असुविधाएँ सहनी पड़ती हैं, फिर भी जंगल-पहाड़ से होनेवाले प्राकृतिक लाभों का ध्यान रखते हुए वे कभी स्थान-परिवर्तन का सपना भी नहीं देखते।

रेतीली या पथरीली-कँकड़ीली जमीन पर बसे हुए गाँव बरसात में कीच के कष्ट से बचे रहते हैं। और, बरसात के कारण होनेवाले सभी कष्टों में कीच का कष्ट तो असह्य होता है; परन्तु ऊपजाऊ जमीन की कमी से होनेवाली हानि तो उन्हें सहनी ही पड़ती है। कुँआ खोदने की कठिनाई के कारण कुँए की कमी भी उन्हें गन्दा रहने को विवश करती है। जलकष्ट से वे मलिनता के आगार बन जाते हैं।

धूसर और करैल मिट्टी की धरती पर बसे हुए गाँव बरसात में घोर दल-दल बन जाते हैं। कीच की अधिकता से गाँववालों के पैर सड़ जाते हैं। गाँव के बाहर-भीतर

गली-रास्ते के दोनों ओर बरसाती घास का झाड़-झंखाड़ इतना घना छा जाता है कि मच्छरों, बरसाती कीड़ों और साँप-बिच्छुओं के कारण गाँव के मनुष्य और पशु बेहाल हो जाते हैं। ऐसे गाँव के गौओं की भी बहुत दुर्गति होती है। अधिकांश ग्रामीणों की गोशालाएँ कच्ची होती हैं, इसलिए उनकी भूमि अत्यन्त पंकिल होकर पशुओं को बहुत सताती है। घर-घर की कच्ची मोरियाँ या नालियाँ हर तरफ गन्दगी के पनाले बहा देती हैं। कीच की भरमार में कहीं-कहीं घिनौनी चीजें पड़ी देखकर मन भिनक जाता है। मक्खी-मच्छर के मारे मशहरी के बिना नींद हराम हो जाती है; पर मशहरी तानकर सोनेवाले बहुत ही कम गाँवों में देखे जाते हैं।

बरसात में गाँव की दुर्दशा के मुख्य कारण तीन होते हैं, यों तो और भी कई कारण हैं। पहला कारण है—अच्छे शौचालयों का अभाव ; दूसरा है—अच्छे-पक्के कुँओं का अभाव; तीसरा है—अच्छी सड़कों की कमी। गाँवों में केवल धनी एवं प्रतिष्ठित घरानों के लोग ही अपने घर में शौचालय की व्यवस्था रखते हैं। ऐसे बड़े घराने दो-चार-दस ही होते हैं। अधिकांश ग्रामीण स्त्री-पुरुष गाँव के आस-पास की जमीन को ही शौचागार बना डालते हैं। बस्ती के अन्दर के टूटे-फूटे मकान या खँडहर और गड्ढे तथा झाड़-झंखाड़ खासकर स्त्रियों के लिए सुरक्षित रहते हैं !!! बस्ती के बाहर के मैदान पुरुषों के बाँटे पड़ते हैं। बस्ती के चारो ओर की निकटस्थ भूमि अत्यन्त घृणास्पद हो जाती है। बस्ती के बीच-बीच कूड़े-कचरे की राशि बने घूर भी गलीज के अड्डे बन जाते हैं। अनेक-गाँवों में भंगी या मेहतर हैं ही नहीं ? दस-बीस गाँवों के मण्डल में किसी एक गाँव में भंगी है भी, तो वह सप्ताह में एक या दो बार सफाई करता है। खासकर बरसात में वह नियमित रूप से सफाई नहीं कर पाता। जिन गाँवों में भंगी नहीं है, उन गाँवों के शौचालय बरसात में कई दिन तक साफ नहीं होते। ऐसे गाँवों में अधिकतर शौचकूप (संडास) की प्रथा है। किन्तु अपने-अपने मकान के पास की जमीन या गली तो लोग साफ कर ले सकते हैं—यद्यपि नियमितता से कभी करते नहीं ; सार्वजनिक स्थानों या रास्तों की सफाई कोई नहीं करता। इसीलिए बरसात में अधिकांश गाँवों का भीतरी भाग घिन पैदा करनेवाला हो जाता है।

अच्छे पक्के कुँओं की संख्या बड़े-बड़े गाँवों में भी बहुत कम होती है, छोटे गाँवों की तो कोई बात ही नहीं। जिन कुँओं पर अच्छी-पक्की जगत बँधी नहीं होती या पानी के निकास के लिए पक्की नाली नहीं रहती, उन कुँओं में बाहर का गन्दा बरसाती पानी गिरने से प्रायः कीड़े पड़ जाते हैं। कुँओं के आस-पास सड़ी कीचड़ फैली रहती है या गन्दा पानी सड़ता रहता है। इससे कुँए का जल प्रायः दूषित हो जाता है, जिसका कुफल चर्मरोग और ज्वर आदि के रूप में लोग भोगते हैं। बरसात में तो देहाती कुँओं की दुर्दशा होती ही है, गर्मियों में भी आँधी, आने से बिना जगत के कुँओं में बाहरी कूड़ा-करकट पड़ जाता है। यद्यपि गाँव के बाहर की हवा विशुद्ध एवं स्वास्थ्यप्रद होती है, तथापि बस्ती के कुँओं का जल विकृत होने से गाँवों के लोग कष्ट भोगते हैं। विकृत

जल का दोष शुद्ध हवा दूर कर देती है, पर यदि जल और वायु दोनों ही शुद्ध होते तो गाँववाले निश्चय ही नीरोग रहते।

सड़कों की खराबी से बरसात में अनेक गाँव दुर्गम टापू बन जाते हैं। कोई सवारी न वहाँ जा सकती है और न वहाँ से बाहर निकल सकती है। कच्ची सड़क पैदल चलने योग्य भी नहीं रह जाती। जहाँ की मिट्टी रेतीली और ठोस होती है, वहाँ की सड़क कच्ची होने पर भी कामचलाऊ रहती है; पर धूसर और करैल मिट्टी की कच्ची सड़क बरसात में कीच, पानी और गड्ढों के कारण सर्वथा दुस्तर हो जाती है। देहात की अधिकांश कच्ची सड़कों में जगह-जगह पुल नहीं रहते, इससे दूर के स्टेशन, डाकघर, बाजार या शहर के साथ गाँवों का सम्बन्ध-विच्छेद-सा हो जाता है। जीवन के सुख-सुभीते से लोग वंचित हो जाते हैं। ऐसे गाँव भी असंख्य हैं, जहाँ कच्ची सड़क भी नहीं है; उनकी दशा तो सहज ही अनुभवगम्य है। पर नागरिकों की कल्पना में भी ऐसे गाँवों की कठिनाइयाँ नहीं अँट सकतीं। जो देहात के रहनेवाले हैं, वे ही गाँवों की असुविधाओं का अनुभव कर सकते हैं या वे भी जो देहात से सम्बद्ध हैं।

बरसात में देहात के पशुओं का कष्ट भी बहुत बढ़ जाता है। गौओं और भैंसों के रहने की जगह कीच और मच्छर-डाँस से भरी रहती है। पक्की पशुशालाएँ कहीं एक-आध गाँव में ही देख पड़ती हैं। बथान की जमीन कच्ची होने से बरसात में पशुओं की दशा दयनीय हो जाती है। उनके रहने की जगह के आसपास गोबर के टीले बरसात में और भी गन्दगी पैदा करते हैं। पशु-पालन की प्रणाली गाँववाले भली-भाँति नहीं जानते।

आजकल गाँवों की दशा सुधारने की ओर देश-हितैषियों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। देश के शुभचिन्तकों के मन में यह बात बैठ गई है कि ग्राम संगठन से ही देश की जन शक्ति और आर्थिक-शक्ति की वृद्धि हो सकती है। अभीतक आदर्श ग्राम-सुधारकों ने गाँवों में डेरा नहीं डाला है—अड्डा नहीं बाँधा है। जबतक गाँवों में रहकर गाँवों की समस्याओं का भली-भाँति अध्ययन एवं अनुभव नहीं किया जायगा, तबतक दूर-ही-दूर से योजनाएँ बनाने का कोई अभीष्ट परिणाम नहीं होगा। बरसात में गावों को जो असुविधा और कठिनाई होती है, उनका यथार्थ अनुभव प्रत्यक्षदर्शी को ही हो सकता है। जब ग्रामोद्धारक सज्जन देहात में चौमासा बितायेंगे, तब कहीं समझ सकेंगे कि गाँवों के सामने कैसे-कैसे विकट प्रश्न हैं।

[अक्तूबर, १९४५ ई०]

गाँवों की सफाई का आन्दोलन

महात्मा गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम को चालू करने के लिए अभी जगह-जगह केन्द्र ही खुल रहे हैं, तबतक सरकार ने गाँवों की सफाई का आन्दोलन शुरू कर दिया। बिहार-सरकार की ओर से गाँवों में एक छपा पर्चा बाँटा गया है। हर-एक सबडिवीजन में कमिटियाँ बन रही हैं। थाने-थाने में प्रचारक नियुक्त हो रहे हैं। एस० डी० ओ० साहब के दस्तखत से गाँववालों के सामने बस्ती की सफाई के लिए कुछ सुझाव पेश किये

गये हैं। बिहार के लॉट साहब की इच्छा है कि पहली अक्तूबर से ३१ जनवरी १६४६ तक जो गाँव सबसे अधिक साफ हो सकेंगे, उन्हें दो सौ रुपये का पुरस्कार दिया जायगा। सफाई की योजना उक्त पर्चे में छपी हुई है। सरकार की बड़ी दया हुई कि गाँवों की सफाई पर इसका ध्यान गया। प्रजा को सरकार से ऐसी आशा भी है। यदि यह आन्दोलन सफल होगा तो सरकार की लोक-प्रियता अवश्य बढ़ेगी। सरकार के पास रुपये काफी हैं, साधन भी बहुत हैं। कानून का अस्त्र भी है। यदि सरकार की कृपा से गाँवों की सफाई हो जाय तो देश का बड़ा उपकार होगा। गाँवों के लोग सरकार के इस काम की बहुत प्रशंसा कर रहे हैं। किन्तु गाँववालों की कुछ शिकायतें भी हैं। उन शिकायतों के दूर हुए बिना सफाई के आन्दोलन में बाधा पड़ेगी। सफाई किसको पसन्द न होगी। मगर कुछ ही गाँव ऐसे हैं जो सफाई की इस प्रतियोगिता में पुरस्कार जीत सकेंगे। अधिकांश गाँव मुँह ताकते रह जायँगे और न्याय की दुहाई देते फिरेंगे।

उक्त पर्चे में छपा है कि कुँओं, पाखानों, घर की नालिय और गोशालाओं की सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाय। ठीक है, यह तो सबसे जरूरी है। मगर ईंट और सिमेंट पर जो कंट्रोल है, उसके रहते हुए भी यह सफाई कैसे हो सकती है, किसी तरह समझ में नहीं आता। गाँव के लोगों के पास इतने पैसे भी नहीं हैं कि दो सौ रुपये इनाम पाने की आशा में पहले अपनी अंटी का दाम खर्च करें। एक-एक थाने में डेढ़-दो सौ गाँव होंगे। केवल तीन ही गाँवों का चुनाव इनाम के लिए होगा! ऐसी प्रतिद्वन्द्विता में तन-मन-धन से जुट पड़ने का साहस गाँववालों में नहीं देख पड़ता। एक तो अक्तूबर से जनवरी तक सब ग्रामीण खेतीबारी में फँसे रहेंगे, आश्विन-कार्तिक में मलेरिया के शिकार रहेंगे, दूसरे यह कि इस अवधि के बीच उनके पास नगद रुपये भी नहीं रहेंगे, क्योंकि अगहनी फसल की पैदावार बेचने के बाद ही गाँववालों की मुट्ठी गरम होती है। उनमें इतने उत्साह नहीं है कि कर्ज लेकर सफाई के काम में पैसे लगावें। गाँववालों में परस्पर एकता का भी बहुत अभाव है। संगठन के बिना यह काम हो नहीं सकता। संघ-शक्ति से ही यह काम हो सकेगा। अपने-अपने घर-द्वार की सफाई अगर सब लोग कर भी लें तो सार्वजनिक स्थानों की सफाई कौन करेगा? गाँव के चारों ओर आस-पास की जमीन को साफ करने का जो संकेत पर्चे में है, वह क्या सामूहिक संगठन के बिना कभी संभव है?

देहातियों की शारीरिक स्वच्छता भी पुरस्कार-प्रदान के पूर्व जाँची जायगी। आज-कल कपड़ों पर जो कन्ट्रोल का भयंकर अंकुश है और उसके कारण लोगों को जो असह्य कष्ट हो रहा है, उससे सभी परिचित हैं। कपड़ों के अभाव में शारीरिक स्वच्छता असंभव है। देहात में कुछ लोग धनी और समर्थ भी हैं; किन्तु अधिकांश लोग गरीब-दुखिया ही हैं। साधारण जनता की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय और दयनीय है। नफाखोरी के बाजार में गरीबों को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए विवश होकर अपने पसीने की कमाई लुटानी पड़ती है। कन्ट्रोल ने लोगों की कठिनाई और परेशानी बहुत बढ़ा दी है। ऐसी दशा में, क्या यह सम्भव है कि देहाती लोग अपने शरीर की सफाई दिखाकर पुरस्कार जीत सकें?

देहातों में कुँओं की हालत भी बहुत खराब है। एक तो कुँओं की संख्या ही पर्याप्त नहीं है। कितने ही गरीबों को बहुत दूर के कुँए से पानी लाना पड़ता है, तौल-तौलकर पानी खर्च करना पड़ता है। पक्के और अच्छे साफ कुँए बहुत कम हैं। अधिकांश कुँओं पर पक्की जगत नहीं है, पक्की नाली नहीं है। इससे बहुतेरे कुँए कभी स्वच्छ नहीं रह पाते। जलाशय की सुविधा न होने से अधिकांश देहाती स्वच्छता के नियमों का यथोचित पालन नहीं कर पाते। जिन गाँवों में नदी या सुन्दर तालाब हैं, उन गाँवों में सफाई की सुविधा है। परन्तु कभी देहातियों को यह बतलाया ही नहीं गया कि स्वास्थ्य-रक्षा के लिए सफाई के नियमों का कैसे पालन करना चाहिए। सरकार के हेल्थ-अफसर लोग कभी देहातों की ओर नहीं झाँकते। सरकार ने तन्दुरुस्ती की हिफाजत के लिए बहुत-से पर्चे भी छपवाये हैं, पर उन पर्चों की पहुँच घर-घर में नहीं हुई है। हेल्थ-अफसरों के लैंटर्न-लेक्चर शहरों और कस्बों में ही होकर रह जाते हैं। खेती में फायदा पहुँचानेवाले बहुत से पर्चे भी सरकार की ओर से छपाये गये हैं। किन्तु खेती की तरक्की के लिए जो अफसर नियुक्त हैं, वे कभी देहातों की शक्ल नहीं देखते। पशुओं की रक्षा के लिए भी सरकार ने अस्पताल और डाक्टर का प्रबन्ध कर रखा है। किन्तु उस प्रबन्ध से देहातियों को कितना लाभ पहुँचता है, यह सबको अच्छी तरह मालूम है। सरकार ने प्रजा के हित के लिए चाहे जो कुछ भी किया हो, पर सरकार के अफसरों ने क्या किया है और वे क्या-क्या करते हैं, यह कहने की जरूरत नहीं है। सरकारी जासूस राजद्रोहियों को बरबस सूँघते फिरते हैं, पर इस बात की जाँच कभी नहीं करते कि सरकार ने जिन महाशयों को प्रजा के जान-माल की रक्षा के लिए नियुक्त कर रखा है, उन लोगों की मनोवृत्ति कैसी है? लोकसेवा की भावना बहुत ही कम महाशयों में देखी जाती है। सफाई का जो आन्दोलन शुरू किया गया है, उसमें पुरस्कार-प्रदान के समय हेल्थ-अफसर गाँवों का दौरा करके रिपोर्ट लिख देंगे कि सरकारी योजना के अनुसार गाँवों में सफाई नहीं हुई है, मगर इससे गाँववालों का कुछ भी उपकार न होगा। हाँ, सरकारी इनाम के रुपये बच जायँगे। आवश्यकता तो इस बात की है कि हेल्थ-अफसर लोग नवम्बर तक गाँवों का दौरा करके सरकार को वास्तविक स्थिति बतलावें—गाँववालों की कठिनाइयाँ सुझावें—गाँवों के जमींदारों और धनियों से साग्रह अनुरोध करें कि वे कुँओं और तालाबों की मरम्मत में भरपूर आर्थिक सहायता दें। गाँवों में बहुत-से धनी और समर्थ लोग ऐसे हैं, जिनके दरवाजे पर स्वच्छ कुँआ नहीं है, जिनके घर की नाली पक्की और साफ-सुथरा नहीं है, जिनके घर में पाखाना का उत्तम प्रबन्ध नहीं है, जिनके गाय-बैल बहुत गन्दी जगह में रहते हैं। कम से कम ऐसे लोगों पर सरकार की ओर से पूरा दबाव पड़े तो कोई अनुचित काम न होगा। जो असमर्थ और दरिद्र हैं, उन्हें कम खर्चवाले आसान तरीके सुझाये जायँ और ऐसे किफायत नुस्खे बतलाये जायँ कि वे अपनी हैसियत के मुताबिक सुविधा से सफाई के काम कर सकें। केवल पुरस्कार की प्रति-योगिता की घोषणा कर देने से गाँववाले कुछ लाभ नहीं उठा सकते।

गाँववालों की आमदनी का खास जरिया सिर्फ खेती-बारी है। खा-पीकर जो कुछ बचता है, उससे कपड़े-लत्ते, नोन-तेल, साहु-महाजन, मेले-तमाशे और शादी-गमी का

काम चलाते हैं। इस समय जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कितना अधिक दाम खर्चना पड़ता है, यह सबको खूब मालूम है। नमक, दियासलाई, किरासन तेल आदि रोजाना खर्च की मामूली चीजें भी आजकल महँगी हो गई हैं। इन छोटी-मोटी चीजों के लिए भी काफी पैसे खर्च करने पड़ते हैं और हैरानी-परेशानी ऊपर से नफे में! ऐसी दशा में यह सोचना भी बेकार है कि महँगी में किसानों के पास काफी रुपये जमा हो गये हैं। दो-चार-दस बड़े-बड़े किसानों के घर में अन्न का बाहुल्य हो तो इससे ६५ फी सदी गरीबों को कोई लाभ नहीं। दो-चार मोटे असामियों को देखकर यह समझ लेना कि गाँवों के लोग बड़े खुशहाल हैं, निरी हृदयहीनता है। दूर से ऊँचे टीले ही नजर आते हैं, खन्दक-खाई तो अति निकट से देखने पर ही सूझ पड़ेगी। सच तो यह है कि गाँवों में गरीबी की जो गहरी खाइयाँ हैं, जिनके अंधकार-पूर्ण गर्भ में असंख्य उपेक्षित जनता भीतर-ही-भीतर कराहती हुई मूक बनी पड़ी है, उन खाइयों को सरकारी कारिन्दों ने कभी देखा ही नहीं। यदि कोई अपनी खाल में मनुष्यता भरकर देखे तो दिल दहल उठे। नाना प्रकार के अभावों का ताण्डव नृत्य गाँवों में ही दीख पड़ता है। अभी गाँवों की वास्तविक दशा की जाँच ही कहाँ हुई है! ऊपर-ऊपर देखने से सच्ची हालत का पता नहीं लग सकता। जब कुछ दिन कोई गाँवों में डेरा डाल आँखें खोले पड़ा रहे तब गाँवों की असली झाँकी मिल सकती है। एक तो गरीबी की मार कमर तोड़ रही है, दूसरे अविद्या का घनघोर अंधकार सबकी आँखों पर काला परदा डाले हुए है। शिक्षा-प्रचार के अभाव से गाँववाले अपनी भलाई की बात भी नहीं समझ पाते।

गाँवों की सफाई का आन्दोलन निश्चय ही ग्रामीणों के लिए विशेष हितकर और अनुकरणीय है, किन्तु देहाती लोग अपनी मूढ़ता के कारण इस उपकार के काम में भी उत्साह नहीं दिखाते। नाना प्रकार की विवशताएँ उनको मन्दोत्साह बनाये हुई हैं। यदि सचमुच गाँववालों की भलाई अभीष्ट है तो सबसे पहले उनमें जाग्रति उत्पन्न करने की आवश्यकता है जिससे वे अपने हित के कामों में यथार्थ उत्साह के साथ लग सकें। इस समय गाँवों की स्थिति ऐसी नहीं है कि वे सरकार की हितकामना का महत्त्व समझ सकें और उससे यथोचित लाभ उठा सकें। यदि गाँवों में बँटे हुए छपे पर्चे की एक-एक बात अलग-अलग लेकर विचार किया जाय और साथ-ही-साथ गाँववालों की वर्त्तमान दशा पर भी ध्यान दिया जाय, तो स्पष्ट ही समझ में आजायगा कि इस आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ तो है प्रजा के लाभ के लिए ही, पर अपनी विषम परिस्थितियों के कारण अधिकांश प्रजा इससे लाभ नहीं उठा सकती। सफाई के लिए हमारे देश में दीवाली का त्योहार मनाया जाता है, जो प्रायः नवम्बर में पड़ता है। किन्तु उस त्योहार में भी कामचलाऊ सफाई ही हो पाती है, क्योंकि गाँववाले खेती-बारी में लगे रहते हैं; असली सफाई रामनवमी के समय होती है और चैत-बैसाख भर होती रहती है, क्योंकि उन दिनों गाँववालों को फुर्सत रहती है। यदि गर्मियों में सफाई की योजना चालू की जाती तो गाँव के लोगों को विशेष सुविधा होती।

गाँववालों में सफाई की आदत न होने या कम होने का कारण मुख्यतः शिक्षा-प्रचार का अभाव है। एक तो वे सफाई के तरीके नहीं जानते और सफाई के लाभों से भी विशेष परिचित नहीं हैं। उन्हें स्वास्थ्य-रक्षा के साधारण नियमों का भी बहुत ही कम ज्ञान है। इसलिए गाँववालों को सबसे पहले यह ज्ञान प्रदान करने की आवश्यकता है कि स्वास्थ्यप्रद मकान कैसे बनाना चाहिए, स्वच्छता के अभ्यास से किस प्रकार नीरोग रहा जा सकता है, पशु-पालन की उत्तम प्रणाली क्या है, भोजन-वस्त्र की सफाई के लिए छोटी-मोटी बात पर ध्यान न देने से कितनी बड़ी हानि होती है—इत्यादि। इन सारी बातों की जानकारी के बिना यदि पुरस्कार पाने की लालसा से उत्साहित होकर गाँववाले सफाई के काम कर डालेंगे, तो उनकी यह प्रवृत्ति स्थायी नहीं रह सकेगी। उनकी सफाई की आदत तभी टिकी रह सकती है जब वे उसका मूल तत्त्व समझ जायँगे, और यह समझदारी तबतक उनमें नहीं आ सकती जबतक वे अविद्या के अंधकार में भटकते रहेंगे।

मैं अपने सबडिवीजन (बक्सर, शाहाबाद) के गाँवों की दशा का अनुभव करके ये बातें लिख रहा हूँ। यदि बिहार में कहीं कोई स्वर्गोपम सुसम्पन्न गाँव हो तो वह सहर्ष इस आन्दोलन से लाभ उठावे—सौभाग्यवश बहती हुई नदी पाकर पाँव पखार ले; क्योंकि सब प्रकार से समर्थ एवं साधनासम्पन्न सरकार के चलाये हुए इस आन्दोलन के स्थायी होने की आशा है, और जो गाँव इस समय इससे लाभ उठाने में समर्थ होंगे, वे अगले वर्षों में आदर्श स्वच्छ ग्राम बने रहकर अधिकाधिक पुरस्कार के भागी हो सकेंगे। किन्तु मेरा अनुभव यही है कि जबतक कंट्रोल की कठिनाइयाँ बनी रहेंगी, खेती के मुख्य साधन बैलों की मँहगी बढ़ती रहेगी, गाँववालों को स्वच्छता के नियमों की पूरी जानकारी नहीं होगी, देहाती लोग अर्थशास्त्र के साधारण सिद्धान्तों को समझकर फजूलखर्चियों से बचते हुए अपने हित के कामों में पैसे लगाने के आदी नहीं होंगे और कृषि-विभाग तथा स्वास्थ्य-विभाग के सरकारी अफसर गाँवों में लगातार दौरा नहीं करेंगे, तबतक इस आन्दोलन से जैसा लाभ होने की आशा है, वैसा नहीं हो सकता। अन्त में यह भी नम्र निवेदन है कि गाँवों की जटिल समस्याओं से जो सज्जन भली-भाँति परिचित हैं वे इस विषय पर अपने निष्पक्ष विचार प्रकट करने की कृपा करें, जिससे गाँवों को अपनी भलाई का यह मौका चूकने का पछतावा न रह जाय।

[अक्तूबर, १९४५ ई०]

गाँवों की दीवाली

ऐसा सुना जाता है और देखा भी गया है कि नगरों की दीवाली देखने के लिए देहाती लोग भी जाया करते हैं। किन्तु, ऐसा कभी देखा-सुना नहीं गया कि गाँवों की दीवाली देखने के लिए नागरिक किसी गाँव में गये हैं। नगर-प्रवासी ग्रामीण लोग दीवाली की छुट्टी में यदि अपने गाँव चले आते हों तो यह दूसरी बात है। पर तब भी वे नगर की दीवाली न देख सकने के कारण पछताते रहते हैं ऐसा सहृदय और उदार कोई नहीं जो नगर की जगमगाहट छोड़ कर गाँव की धुँधली रोशनी देखने जाता हो।

नगरों में दीवाली का रूप विकृत हो गया है। बिजली और किरासन तेल ने उसमें अत्यधिक उष्णता भर दी है। किन्तु गाँवों की दीवाली में सरसों के ठण्ढे तेल से शीतलता का आभास मिलता है। आभास ही नहीं, रेंड़ी और सरसों के तेल नभोमण्डल और वायुमण्डल में शीतलता के कण बिखेरे-से जान पड़ते हैं। वर्षा के कारण आकाश और दिशाओं में जो आर्द्रता छा जाती है, उसे शीतल-प्रकाशवाले दीपकों की मधुर ज्योति बहुत कोमलता से सुखाकर स्वच्छ कर देती है। इतना ही नहीं, मिट्टी के ठण्ढे चिरागों की मीठी-मीठी रोशनी से जो सुहावने कण आसमान में बिखरते हैं, वे पृथ्वी पर आकर उसकी उर्वराशक्ति बढ़ाते हैं। यह काम बिजली और किरासन से नहीं हो सकता। उनसे तो आँखों को भी ठण्ढक नहीं मिलती, क्योंकि उनमें धन-मद की गर्मी भी होती है। कंचन की उष्णता फेनिल मदिरा में भी नहीं है। नगरों की दीवाली में इसलिए केवल वैभव का प्रदर्शन होता है। उससे आकाश में जो धुएँ का धौरहर उठता है, उससे दिशाएँ धूमिल हो जाती हैं; वायु भी दूषित हो जाती है। किन्तु मीठे तेल की रोशनी वायुमण्डल को स्वास्थ्यप्रद बना देती है—उसका रोगोत्पादक विकार नष्ट कर देती है।

अब तो गाँवों में भी मीठे तेल की जगह किरासन का व्यवहार दीवाली में होने लगा है। आधुनिक योजनाएँ कहीं सफल हुईं तो कुछ दिनों में बिजली भी गाँवों में पहुँच ही जायगी। फिर गाँव भी दीवाली के मुख्य उद्देश्य का पालन न कर सकेंगे। अभी तक तो किरासन तेल का अखण्ड प्रभाव गाँव की दीवाली पर नहीं पड़ रहा है, पर क्रमशः गाँव के लोग भी दीवाली में मीठे तेल की उपयोगिता भूलते चले जा रहे हैं।

गाँवों में अब घर-घर लक्ष्मीपूजा की पवित्र प्रथा बहुत कम देख पड़ती है। जैसे होली में लोग घर-घर रंग रचाते हैं—रंग उड़ाते हैं, दशहरे में नीलकण्ठ-दर्शन करते हैं—मिलते-जुलते हैं, सावनी पुनो को राखी बाँधते-बँधाते और कजलियाँ गाते हैं, वैसे दीवाली में लक्ष्मीपूजा की परम्परा का निर्वाह सब लोग नहीं करते। बंगाल के घर-घर में वसन्त-पंचमी को सरस्वती-पूजा और आश्विन के नवरात्र में दुर्गापूजा होती है। इसका सुफल बंगाल को मिला है, यह हम अपनी आँखों स्पष्ट देख सकते हैं। महाराष्ट्र में धूमधाम से घर-घर बुद्धि-विधाता गणेश की पूजा होती है। उसे भी इसका सुफल मिलता ही है, जिसके आँखें हों, वह देख सकता है। हमारे गाँवों की निर्धनता का एक गुप्त कारण यह भी है कि लक्ष्मीपूजा की परम्परा लुप्त होती जा रही है। नगरों में भी अधिकतर व्यवसायीवर्ग ही लक्ष्मी-पूजा का श्रद्धालु है, सर्वसाधारण में कुछ वैसी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती। गाँवों में तो होली के रंग-राग की तरह लक्ष्मीपूजा की नियमित प्रथा है ही नहीं जूआ खेलने की कुरीति अवश्य है। जो गुणदायक और सुखवर्द्धक प्रथा है, वह छूट गई, रह गई अनर्थकारिणी द्यूतक्रीड़ा!

गाँवों के सम्पन्न घरानों में भी विधिवत् लक्ष्मीपूजन नहीं होता, सैकड़े दस-पाँच घरों में ही लकीर-पिटाई या रस्म-अदाई होती है। गरीब घरानों के पास तो बना बनाया बहाना है कि दरिद्रता के कारण हमारे पास पूजा-सामग्री ही नहीं है। कोई पूजा हो, किसी देवता की क्यों न हो, सबसे पहले उसमें श्रद्धा-भक्ति की आवश्यकता है। सामग्री-बाहुल्य पूजा का मुख्य साधन नहीं। सच्ची निष्ठा और दृढ़ विश्वास नहीं है तो सारी पूजा-सामग्री नीरस

और निरर्थक है। पैसा-भर घी-गुड़ से भी लक्ष्मी देवी प्रसन्न हो सकती हैं—शर्त्त सिर्फ श्रद्धा की ही है। पूजा-द्रव्य में श्रद्धा मिश्रित हो, बस लक्ष्मी तृप्त हैं। पाँच पैसे में भी पूजा निभ सकती है, पाँच फूल लेकर अचल आस्था के साथ अर्पित कर देने से भी। किन्तु दरिद्रता जन्य अकर्मण्यता और अज्ञान ने लोगों को ऐसा मंदबुद्धि और मन्दोत्साह कर दिया है कि निर्जीव की तरह शिथिल और निष्क्रिय की तरह श्रीहीन हो गये हैं। दुर्भाग्यवश सनातनधर्म-महासभा और हिन्दूमहासभा को भी इसकी चिन्ता नहीं है कि जनता की सांस्कृतिक चेतना क्यों लुप्त होती जा रही है। विशेषतः उत्तर प्रदेश, बिहार आदि प्रान्तों के गाँवों में लक्ष्मीपूजा की प्रथा चलने का उद्योग होना चाहिए। इससे गाँवों का उपकार ही होगा, अपकार की कोई सम्भावना नहीं है।

गाँवों में दीवाली के समय घर-आँगन की थोड़ी-बहुत सफाई हो जाती है; पर गलियों, चौपालों और सार्वजनिक स्थानों की सफाई नहीं हो पाती। चैती फसल की खेती कातिक में ही होती है, इसलिए गाँववालों को अपने-अपने मकान की सफाई के लिए भी पर्याप्त समय नहीं मिल सकता। खेतिहर और मजदूर रबी की खेती में फँसे रहते हैं। धान की अधपकी फसल खेतों में पड़ी रहती है। बरसात का पुछल्ला मलेरियाज्वर कितने ही घरों में डेरा डाले पड़ा रहता है। इन अड़चनों और झंझटों के कारण गाँवों के सभी मकान लिप पुतकर साफ-सुथरे नहीं हो पाते। इन दिनों ग्रामीणों के पास नगद-नारायण भी नहीं रहते, क्योंकि ये देवता खलिहान की अन्नराशि देखने के बाद अगहन-पूस या चैत-बैसाख में पधारते हैं; इसलिए गाँवों के मकान की पूरी सफाई और मरम्मत दीवाली में ठीक तौर से नहीं हो पाती, बल्कि बैसाख-जेठ में होती है, जब गाँववालों को खेती-बारी के कामों से छुट्टी मिली रहती है। किन्तु उन दिनों भी सार्वजनिक रास्ते और चौराहे उपेक्षित ही पड़े रह जाते हैं। परिणाम यह होता है कि आषाढ़ से बरसात शुरू हो जाने पर गाँव गन्दगी के गढ़ बन जाते हैं।

गाँवों में दीवाली के समय कितने ही गरीबों की विवशता देखकर कलेजा दहल जाता है। जब पड़ोस के सुखी गृहस्थ के घर दीपमाला शोभित होती और पकवान-मिठाई का सौरभ उड़ने लगता है, तब बेचारे गरीब पड़ोसी किस तरह कौड़ी-भर तेल से सँझबाती दिखाकर मन-मारे तन-हारे चुप सो रहते हैं—कोई भूखा रह जाता है, कोई अधपेटा। उनके घर-भर में किसी दिन संयोग से कुछ क्षणों के लिए मिट्टी का एक दिया टिमटिमाता है, नहीं तो रोज साँझ होते ही रूखा-सूखा खाकर अँधेरे में पड़े रहते हैं। क्या करें बेचारे! तेल के अभाव से उन्हें निशाचर-सा जीवन बिताना ही पड़ता है। सच तो यह है कि शोषित भारत के गाँवों की गरीबी का सच्चा खाका खींचना असम्भव है।

कविवर 'दिनकर' ने ठीक कहा है—

विद्युत् की इस चकाचौंध में देख, दीप की लौ रोती है।
अरी, हृदय को थाम, महल के लिए झोपड़ी बलि होती है॥
देख कलेजा फाड़ कृषक दे रहे हृदय-शोणित की धारें।
बनती ही उनपर जाती हैं, वैभव की ऊँची दीवारें॥

यदि धनाढ्य और शिक्षित नागरिक कभी गाँवों में आकर दीवाली का दृश्य देख

जाते तो उन्हें पता लग जाता कि असंख्य झोपड़ियों के चिराग बुझाकर किस प्रकार महलों के चिराग हँस रहे हैं। गाँवों में आकर कोई सहसा उस दयनीय दरिद्रता के दर्शन नहीं पा सकता जो मूक जनों के घर में साँसत की चक्की चलाती रहती है। गाँवों में आने पर कुछ ऊँचे उजले घर भरमा सकते हैं। अगर ग्राम की वास्तविक स्थिति की तह तक पहुँचने की इच्छा हो तो कुछ दिन वहाँ पड़ाव डालने पर पता चलेगा कि हमारे उपेक्षित गाँवों की कैसी कारुणिक दशा है!

हिन्दुओं के जो चार मुख्य पर्व हैं—श्रावणी, दशहरा, दीवाली और होली—उनमें अब वह उमंग नहीं दीख पड़ती, जो कई साल पहले तक देख पड़ती थी। बीस-तीस साल पहले की तो बात ही और है, दस साल पहले इन पर्वों में जो विशेषता थी, वह आज नहीं है। इसके रूप और उद्देश्य में भी परिवर्तन होता जा रहा है। इसका सांस्कृतिक ह्रास भी होता चला जा रहा है। सांस्कृतिक ह्रास के मुख्य कारण तीन ही प्रत्यक्ष हैं—वर्तमान दूषित एवं अस्वाभाविक शिक्षा-प्रणाली, निरन्तर प्रवहमान अनेक स्रोतों से चलती रहनेवाली शोषण पद्धति और दिन-दिन बढ़ता हुआ पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क का प्रभाव का भीषण दुष्परिणाम वहाँ उतनी स्पष्टता से नहीं दृष्टिगत होता जितनी स्पष्टता से गाँवों में नजर आता है। यही कारण है कि लक्ष्मीपूजा महापर्व—'दीवाली'—गाँवों में सर्वथा श्रीहत होकर इस बात की घोषणा करता-सा जान पड़ता है कि भारत की रीढ़ कहे जानेवाले गाँवों की सुध जबतक बड़े-बड़े लक्ष्मीपात्र नहीं लेंगे तबतक गाँववाले लक्ष्मी का आवाहन न कर सकेंगे। हमारे लक्ष्मीपति लोग जिस दिन महात्मा गांधी के ग्रामोद्योग-सम्बन्धी कार्यक्रम को अपनाने के लिए दत्तचित्त होंगे, उसी दिन गाँवों में लक्ष्मी का पदार्पण होगा और गाँव की दीवाली का सात्विक सौन्दर्य भी दर्शनीय हो जायगा। एवमस्तु।

[अक्तूबर, १९४५]

ग्राम-यात्री-दल की आवश्यकता

इस संसार में हम सब-के-सब यात्री हैं। हमलोगों का जीवन एक प्रकार की यात्रा है। हरएक यात्रा का एक लक्ष्य होता है। लक्ष्य या मंजिल तक पहुँचकर यात्री शान्ति पाता है।

यदि हम सचमुच यात्री हैं तो हमारा लक्ष्य भी होगा——होना चाहिए। हम जिस यात्रा-पथ पर चल रहे हैं, वह कहाँ और किधर जाता है या गया है, या हमें ले जा रहा है, इसका ठीक ज्ञान हमें होना चाहिए। इसी ज्ञान के बिना अनगिनत आदमियों की जिन्दगी किसी काम की नहीं रह जाती।

सच्चा यात्री अपनी मंजिल पहचानता है। जैसे यात्री नाना प्रकार के होते हैं, वैसे ही मंजिल या लक्ष्य भी। किन्तु मंजिल तक पहुँचने की लगन या उत्सुकता अथवा उत्साह एक-सा होना चाहिए। विद्यार्थी भी यात्री है, अध्यापक भी, सम्पादक भी, नेता और

व्यापारी भी; यात्री भला कौन नहीं है ? पर इनमें जो साहसी और उमंगी होगा, वही तीर की तरह आगे बढ़ता हुआ असली निशाने या मुकाम पर पहुँचेगा।

केवल व्यक्ति ही यात्री नहीं होता, राष्ट्र या देश और समाज भी होता है। हमारा राष्ट्र बीहड़ यात्रा-पथ पार करके अपने लक्ष्य पर पहुँच चुका है। किन्तु जिस लक्ष्य पर वह पहुँचा है, उसके केन्द्र से अनेक समानान्तर रेखाएँ चारों ओर फैली हुई हैं। जिनमें से कोई रेखा—अथवा मुख्य चौराहे से फूटी हुई कोई सड़क—समाज-सुधार की दिशा में गई है या जाती है, कोई रेखा या राह शिक्षा-प्रचार की दिशा में, कोई ग्रामोद्धार की दिशा में; और इसी प्रकार लक्ष्य-केन्द्र से बहुतेरे रास्ते निकले हुए हैं, जिनमें सभी पर हमें या हमारे राष्ट्र को चलना है और चलकर उन सभी का छोर छूना है।

महात्मा गांधी के प्रयत्न से हमारा देश स्वतंत्र हो गया। अब हम देखें कि लक्ष्य पर पहुँचकर हमारा देश जिस चौराहे के बीच खड़ा है, उस चौक से निकली हुई कौन-सी राह उसे सबसे पहले पकड़नी चाहिए। क्या समाज-सुधार की राह ? या शिक्षा-प्रचार की राह ? रास्ते तो सभी अच्छे हैं और सुख-शान्ति की नगरी तक सभी जाते हैं; मगर हमें तो ऐसा रास्ता चुनना है, जो सुगम हो, सुहावना हो, सायादार हो, जिसमें जंगल-झाड़ या नदी-पहाड़ कम हों या हों ही नहीं, जिसमें बटमारों का डर न हो, बल्कि जिसमें विश्राम के योग्य ठौर-ठौर काफी सुविधा हो।

यदि सच पूछिए तो ऐसा रास्ता ग्रामोद्धार या ग्राम-सुधार का ही है। इसी एक रास्ते पर चलकर देश सुख-सम्पत्ति का भंडार पा सकता है। यही एक रास्ता ऐसा है जो सभी रास्तों के छोर को छूता हुआ निकल जाता है। हम सोच-समझकर देखें तो साफ मालूम होगा कि गाँव का उद्धार या सुधार होने से समाज-सुधार, शिक्षा-प्रचार, उद्योग-धन्धे का विकास आदि काम ठिकाने और आसानी से हो सकते हैं; 'एकहि साधे सब सधे' कहावत सच हो सकती है।

भारत गाँवों का देश कहलाता है, खेतिहर देश है। गाँवों से ही शहर पलते और फूलते-फलते हैं। गाँवों के खेतों से ही देश-देश की दौलत निकलती और देशवासियों की रोजी चलती है। खेती का धन्धा गाँवों में ही होता है। गाँवों से ही जिन्दगी की सभी जरूरतें पूरी होती हैं। जिन्दगी को आराम पहुँचानेवाले सारे सामान गाँव से ही आते हैं, मिलों के प्राण मजदूर भी वहीं से, अधिकतर महान् पुरुष भी वहीं से।

गाँवों का इतना अधिक महत्त्व समझकर ही महात्मा गाँधी ने कांग्रेस का ध्यान गाँवों की ओर खींचा था। लेकिन जितना ध्यान गाँवों की ओर देना चाहिए, उतना आजतक नहीं दिया गया। इसलिए खोखली नींव पर स्वराज्य की इमारत डगमगा रही है। मतलब यह है कि स्वराज्य में चैन नहीं मिल रहा है। कारण, गाँव ही पोली नींव है। जबतक वे ठोस न होंगे, नींव मजबूत नहीं होगी स्वराज्य की। गाँवों को ठोस बनाये बिना दूसरे जितने भी काम होंगे, भूसे पर लगे लेप की तरह निष्फल ही होंगे। इसलिए गाँवों को संगठित और परिष्कृत करना सबसे पहले जरूरी है।

ग्राम-संगठन के लिए बाहर से मसाला जुटाने की जरूरत नहीं होगी। गाँववाले खुद ही अपने काम की चीज जुटा लेंगे। अपनी उन्नति के प्रयत्न में वे तन-मन-धन से लग जायँगे। मगर उन्हें काम में लगा देनेवाला कोई सच्चा आदमी चाहिए। ऐसे आदमी अगर बाहरी दुनिया से मुँह मोड़कर गाँवों में ही आसन जमा लें, तो देखते-देखते देश की काया पलट जाय। लेकिन लाखों गाँवों के लिए ऐसे आदमी मिलेंगे कहाँ ?

हाँ, मिल भी सकते हैं—उन्हीं गाँवों से मिलेंगे। मगर उन्हें तैयार करना होगा। उन्हें तैयार करने के लिए ही ग्राम-यात्री-दल की आवश्यकता है। इस दल में जो यात्रा करेंगे, वे मिशनरियों की तरह अटूट और अखूट लगनेवाले होंगे। यह दल गाँव-गाँव घूमता फिरेगा। सुधार और संगठन होता चलेगा। जगह-जगह कार्यकर्त्ता तैयार होते जायँगे। गाँवों में होनेवाले रचनात्मक कामों की देख-भाल भी होती रहेगी।

ग्राम-यात्री दल में कम-से-कम पाँच जन तो अवश्य ही हों और अधिक-से-अधिक ग्यारह रहें। विद्यार्थी, अध्यापक, पत्रकार, वकील-मुख्तार, यहाँ तक कि सब श्रेणी के नागरिक—जिनके दिल में गाँवों के लिए कुछ दर्द हो—ऐसा दल बना सकते हैं। परन्तु जो देहाती रास्ते में पैदल नहीं चल सकते, धूल और कीच नहीं बर्दाश्त कर सकते, ठेठ देहाती सुख में मगन नहीं हो सकते, कुछ कठिनाइयों और असुविधाओं को झेल नहीं सकते, उन्हें इस दल में लेना ठीक न होगा। इसमें तो सब तरह के लोग हों—दृढ़ शरीरवाले, परम तरंगी, गाने-बजाने में चतुर, क्रीड़ा-कौतुक में कुशल, गाँवों की समस्याओं से परिचित, सेवा का छोटा-से-छोटा काम करने में श्रद्धावान् और भाषण करने में मनमोहक।

ग्राम-यात्री-दल गाँव-गाँव में घूमता और भाषण करता, संगठन और सुधार के उपाय बतलाता, नये समाज के निर्माण और शिक्षा-प्रचार के लिए उत्साह बढ़ाता हुआ, सारे प्रान्त की यात्रा करेगा। इसका गाना-बजाना और क्रीड़ा-कौतुक भी ऐसा ही होगा, जिससे गाँववालों का केवल मनोरंजन ही न हो, बल्कि उन्हें शिक्षा और प्रेरणा भी मिले।

स्त्रियों और बालकों का भी ग्राम-यात्री-दल हो सकता है। यदि देहाती घरों की स्त्रियों और बालकों को गृह-प्रबन्ध और समाजसेवा की जरूरी बातें दिलचस्प ढंग से बताई जायँ, तो इस दल का मिशन पूरा हो सकता है। मगर इस दल के योग्य स्त्रियों और बालकों का मिलना अभी आसान नहीं है—यद्यपि इस दल का प्रभाव गाँवों में अधिक पड़ेगा।

नौजवानों और लिखे-पढ़े समझदार लोगों का ग्राम-यात्री-दल ही इस समय आवश्यक है। शहर के स्कूल-कालेज और गाँवों के हाइस्कूलों से ऐसा दल समय-समय पर ग्राम-यात्रा के लिए निकल सकता है। इसके द्वारा गाँवों में जो काम होंगे, उन कामों का निरीक्षण भी प्रायः होता चलेगा। इस दल के सदस्य अखबारों में भी लेखादि लिखकर गाँवों की आवश्यकताओं पर सरकार का ध्यान दिलाते रहेंगे।

यदि हमारे पत्रकार भी कभी-कभी ग्राम-यात्री-दल बनाकर देहाती दुनिया की तरफ निकलें, तो देश का बड़ा उपकार हो। आज गाँवों की समस्याओं पर अखबारों का उतना ध्यान नहीं गया है जितना इस समय जरूरी है। सभी अखबारों को मिलकर अपने-अपने

दफ्तर से एक-एक ग्राम-यात्री देना चाहिए, जो कम-से-कम साल में दो बार जरूर ही गाँवों का चक्कर लगावें। इससे गाँववाले जागेंगे, उठेंगे, चेतेंगे और बढ़ेंगे और 'असली भारतवर्ष' का इसी तरह कल्याण हो सकेगा।

ग्राम-यात्री दल का प्रान्तीय सम्मेलन भी हो तो बड़ा लाभ होगा। इस दल के उद्देश्य, नियम, सेवा करने के तरीके आदि उस सम्मेलन में निश्चित हो सकते हैं। इस तरह के दल बनाकर गाँवों में शुरू करने का अवसर आ गया है। जो देश और समाज के हितैषी हैं, उन्हें इसपर गम्भीरता से विचार करके कदम उठाना और बढ़ाना चाहिए।

[अप्रैल, १६४६ ई०]

हमारे देश में अन्न की दुर्दशा

'अन्नं ब्रह्ममयम्'

अन्न की महिमा कौन नहीं जानता ? कलियुग में अन्न ही प्राण है। कहावत प्रसिद्ध है—"भूखे भजन न होइ गोपाला, ले लो अपनी कंठी माला।" गँवार भी कहावत से परिचित हैं। पण्डितजन कहा करते हैं—'सर्वारम्भे तण्डुलप्रस्थमूलाः" सब से पहले भोजन की व्यवस्था ठीक होनी चाहिए; क्योंकि सब धर्म-कर्मों का मूल भोजन ही है। अन्न-दान प्राण-दान के समान माना गया है। दान के विषय में स्वयं पूर्णब्रह्म भगवान् कृष्णचन्द्र ने युधिष्ठिर से कहा है—

दरिद्रान्भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधिः॥

अर्थात् हे कुन्तीनन्दन ! दरिद्रों का भरण-पोषण करो, समर्थ को धन मत दो। जो रोगी है, उसी के लिए दवा की जरूरत पड़ती। जो नीरोग है, उसे दवा देने से क्या लाभ ?

स्वामी विवेकानन्द ने तो यहाँ तक कहा है कि आग में घी न डालकर दरिद्रनारायण की जठरानलज्वाला में डालो, पूर्णकाम शंकर को दूध-दही से न नहलाकर भूखे गरीबों को वही खिला-पिला दो; क्योंकि दीन-दुखियों की सेवा और रक्षा करने से परमात्मा जितना सन्तुष्ट होता है, उतना पूजा-पाठादि से नहीं।

सबका मतलब एक ही है। भूखे-कँगले को भर-पेट अन्न देने से महान् पुण्य प्राप्त होता है। हमारे धर्म-ग्रन्थों में अन्नदान की महिमा अनेक स्थानों में वर्णित है। श्रद्धा-पूर्वक दिये हुए अन्न-दान की महिमा से अनेक धर्म-ग्रन्थ भरे पड़े हैं। राजा रन्तिदेव की कथा कौन नहीं जानता ? युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अर्द्ध-सुवर्ण-काय नेवला आकर श्रद्धापूर्ण अन्न-दान की अद्भुत महिमा बतला गया था। गीता में स्वयं भगवान कृष्ण कह चुके हैं—

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः"।

अर्थात् मेघ से अन्न उत्पन्न होता है और अन्न के ही बल सब प्राणी जीते हैं।

घर में हीरा, मोती, जवाहर, सोना, चाँदी, अशर्फी, सब कुछ हो और अन्न न हो, तो सब बेकार है। राजा-रंक, अमीर-गरीब, सब अन्न के ही आधार से जीते हैं। राजाओं के लिए ईश्वर चाँदी के चावल और सोने के गेहूँ नहीं उपजाता। बादशाह भी उसी अन्न को बढ़िया बनवाकर खाते हैं जिसको बिचारे गरीब रूखा-सूखा ही चबा जाते हैं। रामायण में राजा प्रतापभानु की कथा प्रसिद्ध है। घनघोर जंगल में राजा को भूख-प्यास लगी तो बेचैन हो गये। उनके शरीर पर अमूल्य वस्त्र और आभूषण थे। मणियों और रत्नों की कोई कमी नहीं थी—अंग-अंग में रत्न चमक रहे थे। क्यों न उन्होंने मूँगा-मोती खाकर भूख बुझा ली? बात असल यह है कि अन्न का अभाव दूसरे किसी पदार्थ से पूरा नहीं हो सकता। मनुष्य के जीवन के लिए अन्न ही सबसे जरूरी चीज है। वस्त्र, भूषण, महल, हाथी, घोड़ा, खजाना, सबका महत्त्व अन्न से कम ही है। अन्न में ही घट-घट-व्यापी भगवान बसते हैं। अन्न से ही ईश्वर की सारी सृष्टि का अस्तित्व है। सब जीव-जन्तु और पशु-पक्षी तथा कीट-पतंग, केवल अन्न के ही आश्रित हैं। समस्त जीवधारी अन्न के ही आश्रय से जीवित है। अन्न उत्पन्न करने में विशेष सहायक होने के कारण ही पृथ्वी और गाय को 'माता' संज्ञा मिली है।

जिस साल अन्न की पैदावार अच्छी नहीं होती, उस साल सारा देश त्राहि-त्राहि पुकारने लगता है। कितने ही लोग भूखों तड़पकर मर जाते हैं। नाना प्रकार के अनर्थ और उत्पात होने लगते हैं। क्या दुर्भिक्ष के दिनों में मकान, बगीचे, कपड़े, द्रव्य, सवारियाँ, नदियाँ, पहाड़, जंगल तथा तरह-तरह के और सब सामान नहीं रहते? फिर उनसे लोग भूख की आग क्यों नहीं बुझा लेते? सच तो यह है कि अन्न के स्थान की पूर्त्ति दूसरी किसी वस्तु से हो ही नहीं सकती। अन्न वास्तव में ईश्वर का रूप ही है। ईश्वर ही अन्न के प्रत्येक कण में पैठकर समस्त प्राणियों का पालन-पोषण करता है। जो अन्न का अनादर करता है, वह ईश्वर का तिरस्कार करने के पाप का भागी होता है।

हमारे देश में जब अन्न के बिना लोग मरने लगते हैं, तब ईश्वर को बहुत जली-कटी सुनाते हैं। लेकिन यह कोई नहीं सोचता कि हमलोग अपनी ही करनी का फल भोग रहे हैं। जो अन्न का आदर नहीं करते, उसका महत्त्व नहीं समझते, वे यदि अन्न के अभाव से पीड़ित हों तो इसमें आश्चर्य क्या है? हिन्दुओं के घर में शादी-ब्याह या और किसी उत्सव के अवसर पर जो भोज होता है, उसमें आप जाकर यदि देखें, प्रत्यक्ष विदित होगा कि जितना अन्न खाने में खर्च हुआ, उसका कम-से-कम चौथाई हिस्सा तो जरूर ही कूड़े-कचरे के साथ फेंक दिया गया। किसी जल्से या तवाजे में जो जूठी पत्तलें डोमों और भंगियों को दी जाती हैं, उनमें से कुछ ही पत्तलें उन बिचारों के काम की होती हैं; बाकी पत्तलों को वे स्वयं घृणा-जनक समझकर फेंक देते हैं। यदि भोज या ज्योनार में भोजन करने-वाले सज्जन सन्तोषपूर्वक, अपनी रुचि और तृप्ति के अनुसार ही, अन्न ग्रहण करें, तो यह निश्चय है कि जिस ज्योनार में सौ आदमी खाते हैं, उसमें दस आदमियों के खाने योग्य अन्न नुकसान होने से बच जा सकता है।

एक बार महात्मा गान्धी सारे देश का दौरा करते हुए जब काशी आये थे, तब कहीं रास्ते में घूर पर उन्होंने बहुत-सी जूठी पत्तलें देखी थीं, जिनके विषय में अपने भाषण में उन्होंने कहा था कि घूर पर फेंकी हुई पत्तलों में जितनी भोजन-सामग्री गन्दगी से बिखरी पड़ी थी, उतनी ही के बिना इसी अन्नपूर्णा की राजधानी में कितने लोग भूखों रो कर सो गये होंगे। देखने में बात बहुत छोटी है, मगर इसके अन्दर भारी तत्त्व छिपा है।

गाँव-देहात के लोग तो असभ्य कहलाते हैं, मगर शहर के सभ्य लोग तो उन बिचारे असभ्यों से बढ़कर अन्न को बरबाद करते हैं। शहर के गली-कूचे और पनाले में भी बड़ी लापरवाही से लोग जूठा फेंक देते हैं। वे यह नहीं सोचते कि कुत्ता भी एक प्राणी है, उसे भी साफ-सुथरा भोजन पाने की इच्छा होती होगी। होटलों और हलवाइयों की दूकानों के पास कभी खड़े होकर अन्न की दुर्दशा देखिए। गृहस्थों की बस्ती में घूम-फिर करके अन्न की दुर्दशा देखिए। सब जगह लोगों की असावधानता और अन्न के प्रति अनादर-भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होगी। क्या हमारा धर्म अन्न की कद्र करना नहीं सिखलाता ? क्या हमारे हिन्दू-भाई अन्न की प्रतिष्ठा को नहीं समझते ? क्या अन्न की इज्जत करना हमारे धर्म के सिद्धान्तों में नहीं है ? आज हमारे देश में सैकड़ों गोशालाएँ, अनाथालय, कुष्ठाश्रम और विधवाश्रम अन्न-वस्त्र के अभाव से संकट में पड़े हुए हैं। जितना अन्न हम व्यर्थ नष्ट कर देते हैं, उतना यदि बचाकर गरीबों को दे डालें तो देश का महान् उपकार हो। एक ही स्थान में धनिकों के घर बहुत-सा अन्न व्यर्थ फेंक दिया जाता है और वहीं अड़ोस-पड़ोस में रहनेवाले कितने ही गरीबों के बच्चे रो-कलप कर भूखे सो जाते हैं। हम अपना अंश खा जाते हैं और दूसरों का अंश नष्ट कर देते हैं, इसी से दरिद्रता फैलती है।

भारतीय भाइयों को चाहिए कि अन्न का आदर करना सीखें। सब लोग नियम-पूर्वक परिमित भोजन करें, थाली में फालतू जूठा न छोड़ें। अगर किसी अनिवार्य कारण से छूट भी जाय तो वह इतनी सफाई से छोड़ा या रक्खा जाय कि भैरवजी के वाहन उसे सूँघकर छोड़ न दें। सबको यह चेष्टा करनी चाहिए कि अन्न का एक दाना भी किसी प्रकार नष्ट न हो और पशु-पक्षी को जो दिया जाय, वह भी शुद्ध ही अन्न हो।

गाँवों में जो अन्न-धनसम्पन्न गृहस्थ हैं, वे यदि अन्न का सदुपयोग करने लगें, तो वे टोले-महल्ले के बहुतेरे गरीबों की रक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं। ग्राम-नगर का प्रत्येक सुखी परिवार यदि अपने अधपेटे पड़ोसियों का ध्यान रखे, तो वर्ग-संघर्ष बहुत कुछ ठण्ढा पड़ जायगा।

[दिसम्बर, १९३० ई०]

सड़क, सिंचाई, सभ्यता

देश के स्वतन्त्र और प्रजातन्त्र होने पर देश का हरएक समझदार आदमी यह सोचने लगा है कि हमारे देश में सभ्यता का प्रसार कैसे होगा; क्योंकि सभ्यता की जो

वास्तविक परिभाषा है, उसके अनुसार अभी नगरों में भी सभ्यता का यथेष्ट प्रसार नहीं हुआ है, फिर गाँव की क्या बात ! हमारे अधिकांश नागरिक अभी तक पूरे सभ्य नहीं हुए हैं। जब नगर-निवासियों में पूरी सभ्यता नहीं आई है तब ग्रामीणों में सभ्यता कैसे पाई जा सकता है। किन्तु नगर-निवासियों में अबतक जितनी सभ्यता आ चुकी है, उतनी तो क्या, उसका शतांश नहीं तो दशमांश भी ग्रामवासियों में नहीं आई है। इसका कारण यह है कि देश के असंख्य या हजारों-लाखों गाँवों में उन लोगों के पहुँचने-योग्य कोई यातायात के साधन नहीं हैं जिन लोगों के जाते-आते रहने से गाँवों में सभ्यता और संस्कृति फैल सकती है। आज गाँवों की जनता और गाँवों के स्कूलों में पढ़नेवाले छात्र तथा उनके शिक्षक बड़ी श्रद्धा और उत्कंठा के साथ आँखें बिछाये हुए हैं कि कोई उनके पास पहुँचकर उन्हें सभ्यता एवं संस्कृति के सन्देश सुनाये; पर ऐसे सन्देशवाहक गाँवों में पहुँच ही नहीं पाते। देश में कुछ ही गाँव ऐसे हैं जहाँ आसानी से किसी भले आदमी का पहुँचना संभव है; नहीं तो अधिकांश गाँव दुर्गम स्थानों में उपेक्षित पड़े हुए हैं—न कोई उनकी दुर्दशा देखने के लिए जाता है और न उनके निवासी सुगमता से सभ्यता-केन्द्रों तक पहुँचकर कुछ प्रकाश पा सकते हैं।

गाँवो का सुधार और उद्धार वास्तव में तभी हो सकता है जब वहाँ की सड़कें दुरुस्त हों और सिंचाई की अच्छी व्यवस्था हो। सभ्यता और संस्कृति की बात तभी रुचती है और हृदयंगम होती है जब मनुष्य का पेट भरा रहता है। भूखा रहकर कोई भगवद्-भजन भी नहीं कर सकता। सिंचाई की अच्छी व्यवस्था के अभाव में हजारों गाँवों के अन्दर बहुत-सी जमीन ऊसर रह जाती है—उसमें अच्छी पैदावार नहीं हो पाती—उसकी उपजाऊ शक्ति नहीं बढ़ पाती। हजारों ग्रामवासी अच्छी उपज न होने से या सूखा पड़ जाने से अन्न-कष्ट भोगते हैं और पेट की मार से व्याकुल होकर कुमार्गी बन जाते हैं। अधपेटों या भुखमरों को सभ्यता और संस्कृति का सन्देश देना या सुनाना राख में घी सुखाना है।

जब गाँव-गाँव में सिंचाई की सुविधा हो जायगी तब जनता के जीवन का सबसे बड़ा बीहड़ प्रश्न हल हो जायगा। भुखमरी जबतक नहीं मिटती, तबतक सभ्यता और संस्कृति की चर्चा चण्डूखाने की गप्प के समान है। और, सिंचाई की व्यवस्था जबतक ठीक नहीं होती तबतक भुखमरी दूर नहीं हो सकती। अधिकांश ग्रामीणों या किसानों के पास थोड़ी-थोड़ी जमीन है। सिंचाई के साधनों के अभाव में उनके परिवार के भरण-पोषण के योग्य यथेष्ट अन्न नहीं हो पाता। यदि सिंचाई की सुविधा हो जाय तो जिनके पास कम खेत हैं; वे भी साल में दो-तीन फसल कमा सकते हैं।

आफत तो यह है कि आजकल जहाँ सिंचाई के लिए नहरें आदि हैं, वहाँ भी किसानों को सरकारी टैक्स के अलावा काफी पैसे खर्च करके पानी खरीदना पड़ता है। सरकार इन्तजाम करती है प्रजा की भलाई के लिए, मगर मध्यस्थ लोग बीच में बाधक बन बैठते हैं, जिससे सरकार की नेकी फलने नहीं पाती। आखिर सरकार कोई-न-कोई उपाय करके प्रजा की रक्षा और उन्नति का प्रयत्न करती ही रहती है; मगर वह प्रयत्न तो तभी सफल

होगा जब शासनचक्र चलानेवालों के मन में भी प्रजा के कल्याण की भावना हो। किन्तु सिंचाई के मामले में हमारे नब्बे प्रतिशत गाँव घोर अभाव और दुःख झेल रहे हैं। भला ऐसे गाँवों में सभ्यता कैसे फैलेगी!

अधिक अन्न उपजाओ, बाग-बगीचा लगाओ, साग-सब्जी उगाओ, फल-फूल पैदा करके आमदनी बढ़ाओ—इत्यादि नारे और आन्दोलन कैसे सफल हो सकते हैं? उपज होगी गाँव में और खपत होगी शहर या बाजार में! मगर गाँव से बाजार या शहर या व्यापार-मण्डी तक ऐसी सड़कें कहाँ हैं कि पैदावार खपाई जा सके। एक तो पैदावार बढ़ाने के लिए हर जगह सिंचाई का माकूल इन्तजाम चाहिए, दूसरे सुगम सड़क चाहिए हाट तक माल ढोकर या लादकर पहुँचाने के लिए। कहीं-कहीं कुछ गाँवों को ऐसी सुविधा मिली हुई है; पर ऐसे कुछ गाँवों से ही सारे देश की दशा समुन्नत नहीं हो सकती। हाँ, रेल या नहर या सड़क के किनारे बसे हुए गाँवों की दशा से उन गाँवों की दशा का मिलान आसानी से किया जा सकता है, जो इन सुविधाओं से वंचित हैं या जो व्यापार-केन्द्रों तथा सभ्यता-केन्द्रों से बहुत दूर दुर्गम स्थान में पड़े सड़ रहे हैं।

अब आज के युग के लोगों में इतना पुरुषार्थ नहीं की बाहुबल से सिंचाई का काम कर डालें। अगर लोगों में ऐसा पौरुष रहता तो पेड़ रोपने के लिए आन्दोलन चलाने की जरूरत नहीं थी। भारतीयों के पूर्वजों में इतना अधिक पराक्रम था कि वे अकेले एक बगीचा सींच-सींचकर तैयार कर डालते थे। अब इस वैज्ञानिक या यांत्रिक युग में शारीरिक शक्ति नहीं रह गई। आप-ही-आप सिंचाई हो, नहीं तो सूखा पड़े!

सिंचाई की उत्तम व्यवस्था से ही देश हरा-भरा रह सकता है। हरियाली से नेत्र की ज्योति और मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है। तपिश के दिनों में जो गाँव रेगिस्तान बन जाते हैं, उनमें सघन छाया और शीतल जल सुलभ हो जायगा। भूमि के शुष्क और कठोर होने से वहाँ के लोगों में जो रूखापन रहता है, वह बहुत-कुछ दूर हो जायगा। इस तरह सूक्ष्म विचार द्वारा अन्यान्य लाभ भी ध्यान में आ सकते हैं।

सभ्यता और संस्कृति के प्रसार में अखबारों की सहायता बड़े महत्त्व की है। अच्छी-अच्छी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं को देश के भीतरी भागों और कोने-कोने के गाँवों में पहुँचने के लिए अच्छी सड़क की आवश्यकता सबसे पहले है; क्योंकि अच्छी सड़क के बिना डाक-तार की सुविधा असम्भव-सा मालूम होती है। आधुनिक युग की दृष्टि से विचार करें तो कह सकते हैं कि जहाँ तक मोटर लारी या बस की आसानी से पहुँच हो सकेगी, वहाँ तक सभ्यता जा सकेगी। आगे का युग तो हवाई जहाज का आ रहा है, मगर उसका प्रसाद भी गाँव-गाँव तभी बँट सकेगा जब रेल नहीं तो कम-से-कम मोटर या लारी की गति सर्वत्र सुगम हो जाय।

हम यदि सचमुच देश को सभ्य और सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नत बनाना चाहते हैं तो हमें देश की भूमि को उर्वर, सरस, सजल, सफल बनाने के लिए सिंचाई का उत्तम प्रबन्ध करना होगा, जिससे देशवासियों को अन्न और फूल-फल पर्याप्त मिले—वे हृष्ट-पुष्ट, प्रसन्न, उत्साही, साहसी, कर्मठ और ज्ञानवान् बनें। तभी वे सभ्यता और संस्कृति की

चर्चा में दिलचस्पी ले सकेंगे। सड़क तथा डाक-तार की सुव्यवस्था होने से ही सभ्यता और व्यापार के छोटे-बड़े केन्द्रों तथा संस्कृति के मुख्य स्रोतों से देश के प्रत्येक भाग में बसनेवाले जन-जन का सहज सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा। जिस दिन इतनी भी सुविधाएँ सुलभ हो जायँगी, उस दिन देश-दशा वस्तुतः दर्शनीय होगी।

[अगस्त, १९५०ई०]

ग्राम-पंचायत का नाटक

आजकल गाँवों में पंचायतों की स्थापना हो रही है। सरपंच और पंच चुने जा रहे हैं। कुछ गाँवों में पंचायत का काम ठीक-ठिकाने से चल रहा है। किन्तु अधिकांश गाँवों में ऐसी खींचतान चल रही है कि एक तरह की अदावत-सी पैदा हो गई है। गाँव के लोगों में जब आपस का मनमुटाव हो जाता है तब उसका नतीजा बहुत भयंकर होता है। बहुत-से गाँवों में अभी तक पंचायतों की बुनियाद नहीं पड़ी है। मगर वहाँ भी पहले से ही कानाफूसी चल रही है। हमारी सरकार जिस नेकनियती से पंचायत कायम करा रही है, उसको ठीक ठीक न समझकर गाँव के लोग अपना मतलब गाँठने की धुन में लगे हैं। गाँवों में भी कितने ही ईमानदार पंच और सरपंच हैं; पर उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है और उनके पक्ष का दल बहुत निर्बल है। जैसे आजकल कांग्रेस के चुनाव में मुस्टण्डे लोग ही अधिकतर मैदान मार रहे हैं और सच्चे सेवक तथा त्यागी-बलिदानी बेचारे दूध की मक्खी हो रहे हैं, वैसे ही पंचायतों में भी तिकड़मबाजों की ही गोटी लाल हो रही है, सच्चे लोग फिसड्डी हो रहे हैं!

दलबन्दी का रोग

गाँवों में दलबन्दी या गुटबन्दी का रोग बहुत पुराना है। गाँव में रहनेवाले बहुतेरे परिवारों की नस-नस में यह रोग घर कर गया है। कई गाँवों में टोलबन्दी भी अनर्थ कर रही है। वहाँ जातिभेद की भावना निर्मूल नहीं हुई है। स्वार्थान्धता तो सीमा पार कर गई है। जो सचाई से कुछ ग्राम-सेवा भी करना चाहता है, वह फरफन्दियों के मारे कुछ करने नहीं पाता। अगर कोई चाहे कि स्वार्थ साधनेवालों के नाम सरकार में दे तो फिर गाँव में बसना मुश्किल हो जाय। गाँव की राजनीति भी हद से ज्यादा गन्दी हो गई है। इसलिए गाँव में पंचायत का पनपना और फलना-फूलना अत्यन्त कठिन है। कानून की कड़ाई से कुछ हो तो हो।

घूसखोरी निहायत खूबसूरत जादूगरनी है। वह हर क्षेत्र में मनचलों पर डोर डालती फिरती है। पंचायतों पर भी उसका टोना चल गया है। इसी लोभ से बड़े-बड़े घाघ इसमें घुस रहे हैं। डूबकर पानी पीनेवाले लोगों की कमी नहीं है। इस युग में भले-बुरे की ठीक-ठीक परख बड़ा बीहड़ काम है। जनता की भलाई चाहनेवाले असली लोग निहत्थे हो गये हैं। देश की भीतरी दशा पर इसका बहुत बुरा असर हो रहा है।

पंचों पर जबतक सर्वसाधारण जन का विश्वास नहीं जमता तबतक गाँव का वायुमण्डल शुद्ध नहीं हो सकता।

गाँवों का संगठन कैसे हो ?

लोक-मंगल के जितने काम हैं, सबमें पंचायतों का संगठन बहुत अच्छा है। यदि गाँव-गाँव की पंचायतों का सचमुच दृढ़ संगठन हो जाय तो देहात की बहुत-सी बुराइयाँ दूर हो सकती हैं। हरएक गाँव अपने आपमें स्वतन्त्र और गणतन्त्र राज्य-सा बन सकता है। किन्तु देश और समाज के कल्याण के जितने काम हैं, सबके लिए पक्के और सच्चे आदमियों की जरूरत है। गाँव में ऐसे आदमियों की बहुत कमी हो गई है। यह नहीं कहा जा सकता कि गाँवों में अब अच्छे आदमी रह ही नहीं गये। परन्तु इतना तो जरूर मानना पड़ेगा कि गाँव में भले आदमियों का जोर कम हो गया है और खुराफाती लोगों का हौसला बढ़ गया है। इसीलिए पंचायत का प्रचार एक तमाशा बन गया है।

सरकार या सरकारी अफसर या नेता तबतक गाँव के हित में किसी काम में सिद्ध नहीं हो सकता जबतक खुद ग्रामीण लोग अपने लाभ हानि पर ध्यान न देंगे। प्रचार के अनेक साधनों का उपयोग किया जा रहा है; परन्तु प्रचार का प्रभाव स्थायी नहीं हो पाता। बस सबके मूल में बात यह है कि पंचायत चलाने के लिए जैसे आदर्श चरित्रवानों की जरूरत है, वैसे लोग पंचायत में खपने नहीं पाते। कई जगह के पंच मौका पाकर पुराना वैर साधने लग जाते हैं। कहीं कहीं स्वार्थ संघर्ष के कारण पंचों में ही फूट पड़ जाती है। मतभेद के कारण कई गाँवों की पंचायत टूटकर बिखर गई है। असली रहस्य का पता तो है, मगर जो भंडाफोड़, करे वह झगड़ा मोल ले। सरकारी संरक्षण के भरोसे पर साहसी और निर्भीक बनकर भेद खोलनेवाले भी कुछ लोग जरूर हैं, मगर आकस्मिक विपत्ति कभी सरकारी आतंक से नहीं टल सकती। इन सब कठिनाइयों का हल निकालना हँसी-खेल नहीं है। जो ठेठ देहात के रहनेवाले हैं; वे ही इन्हें समझ भी सकते हैं।

जहाँ सरपंच अपनेको खुदसर समझकर मनमाने ढंग से स्याह-सफेद कर डालता है और अपने दबंगपन से पंचों को भी मौसेरा भाई बना लेता है, वहाँ पंचायत केवल प्रहसन है। ऐसे प्रहसन कई जगह हुए भी हैं और उनके चौतालिया पात्र मूँछ पर ताव देते फिरते हैं। मूक जनता कराह कर रह जाती है। अगर बेचारी चूँ करे तो मारी जाय। गाँव के उत्पाती लोग को सर करने की कोशिश करना आग से खेलना है। पानी में रहकर मगर से बैर! रक्षक बन्दूकधारी के पहुँचने से पहले ही मगर लील जायगा!

मैं निराशावादी नहीं हूँ। मैं यह भी नहीं मानता कि हमारे देश के गाँवों का सुधार होगा ही नहीं। गाँव-गँवई के गुण-दोष समझना और उनके हित की बात सोचते रहने में मेरी खास दिलचस्पी है। मैंने अखबारों में अच्छे सुधरे गाँवों की चर्चा भी पढ़ी है।

यदि कहीं पृथ्वी पर स्वर्ग के टुकड़े उतर आये हों तो ईश्वर की अनन्त सृष्टि में आश्चर्य की बात नहीं, परन्तु जहाँ तक स्वयं देखा-सुना और अनुभव किया है वहाँ तक ग्लानि-ही-ग्लानि हुई है। जहाँ पंचायत का काम बराबर चालू है, पंचों में एकता और उत्साह है, वहाँ भी लगातार कठिनाइयों के धक्के से पंचायत की नींव हिल-डोल रही है, अबतब गिर पड़ने की आशंका है। ऐसी हालत में 'गाँवों के देश' भारत की आंतरिक स्थिति चिन्ताजनक है। वह प्रत्यक्ष न होकर प्रच्छन्न भले ही हो, पर है वह भयावह !

सच्चरित्र व्यक्तियों की आवश्यकता

ग्राम-पंचायत क्यों नाटक बन गई है या बन रही है, इसका कारण मैंने अपनी ओछी बुद्धि से सोचा, समझा और टटोला है। वह कारण एकमात्र यही सूझ पड़ा है कि सारे देश में चरित्रवान मनुष्यों का अभाव हो गया है। गाँवों में भी सच्चरित्र व्यक्ति दाल में नमक के बराबर हैं। मैंने सुशिक्षित ग्रामीण से अशिक्षित ग्रामीण को चरित्रवान पाया है। देहात के पढ़े-लिखे लोग भी स्वार्थ के सामने कर्तव्य भूल गये हैं। जाहिल तो जाहिल हैं ही, साक्षर भी राक्षस बन गये हैं ! जनता के सामने कहीं उत्तम आदर्श का आलोक रह नहीं गया है। अनुकरणीय आदर्श बनने के लिए जिस त्याग-तपस्या की आवश्यकता है, उसके लिए किसी में प्रवृत्ति और प्रेरणा नहीं दीख पड़ती, और ग्राम पंचायत की सफलता त्यागी तथा चरित्रवान व्यक्तियों पर ही निर्भर है। नहीं तो अवसरवादियों के लिए मनोरंजक नाटक ही है यह।

[अगस्त, १९५० ई०]

देहात ही देश का दिल है

जैसे शरीर को नीरोग, स्वस्थ, सुंदर और सबल बनाने के लिए हृदय को निर्मल, निर्विकार और शुद्ध बनाने की जरूरत है, वैसे ही राष्ट्र-रूपी शरीर को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाने के लिए ग्राम-रूपी हृदय को स्वच्छ और पवित्र बनाना अत्यन्त आवश्यक है। दिल के बिगड़ने से देह और दिमाग की दशा दयनीय हो जाती है। हृदय की गति रुक जाने से प्राणान्त हो जाता है। हृदय जबतक अच्छी तरह काम करता रहता है तबतक शरीर में सजीवता और क्रियाशीलता रहती है। राष्ट्र-रूपी शरीर तबतक सजग और सचेत नहीं हो सकता जबतक ग्राम-रूपी हृदय में नवीन रक्त अर्थात् नवजीवन का संचार नहीं होगा। राष्ट्र का हृदय रक्तहीन, शुष्क, निर्जीव और निष्क्रिय हो गया है। उसमें नये ताजे खून का दौरा बन्दी-सा हो गया है। इसलिए राष्ट्र निष्प्राण-सा लगता है। यदि हमें सचमुच अपने विशाल राष्ट्र को बलवान और धनवान बनाना है तो हमें बिना विलम्ब गाँवों का सुधार और संगठन करने में दत्त-चित्त हो जाना चाहिए। सभी देश-हितैषियों का यही कर्त्तव्य है।

ठेठ देहात में आजतक नई रोशनी की सभ्यता का उजाला नहीं पहुँचा है। ऐसे अँधेरे में पड़े हुए गाँव बहुत-से हैं, जहाँ न अच्छी सड़क है, न स्कूल है, न पुस्तकालय है, न अस्पताल है; न वहाँ कोई सरकारी अफसर आसानी से पहुँच पाता है और न कोई नेता ही। ग्रामसुधार का काम अधिकतर ऐसे ही गाँवों में करना है। कहीं-कहीं गाँवों में ग्राम-सुधार-सभाएँ भी हैं। उनके कामों में तरह-तरह की कठिनाइयाँ आती रहती हैं। उन कठिनाइयों को देखकर यही अनुभव होता है कि गाँवों का सुधार करना बहुत ही कठिन काम है। लेकिन यह कठिन दीख पड़नेवाला काम भी आसानी से हो सकता है—अगर सच्ची लगन से काम करनेवाले ऐसे लोग मिल जायँ, जो गाँववालों से सच्ची सहानुभूति रखते हों, जो गाँवों की उन्नति को ही राष्ट्र की उन्नति समझते हों।

सरकारी योजनाओं (स्कीमों) और कानूनों से भी ग्राम-सुधार का काम शायद ही पूरा हो; क्योंकि सरकारी अफसरों में अभी तक गाँवों की भलाई करने का भाव अच्छी तरह नहीं जगा है। जब वे अपनी अफसरी भूलकर गाँववालों को स्वदेशी भाई समझने और मिलनसारी के साथ अपनाने लगेंगे तभी ग्रामसुधार का काम तेजी से हो सकेगा। मान लीजिए, गाँव की सफाई में गाँववालों को लगाना है। अगर ग्राम-सुधार के अफसर खुद टोकरी-झाड़ू या फावड़ा लेकर सफाई के काम में हाथ लगा देंगे, तो उन्हें केवल श्रीगणेश ही करना पड़ेगा, आगे का सारा काम तो गाँववाले खुद ही पूरा कर लेंगे। अगर किसी तालाब में से कोई अफसर, नेता या कार्यकर्ता एक टोकरी मिट्टी खोदकर बाहर फेंकेगा, तो गाँववाले देखादेखी तालाब खोदकर तैयार कर देंगे। गाँववालों से जो काम कराना हो, उसको पहले खुद ही करना पड़ेगा। गाँवों में जो स्कूल हैं, उनके शिक्षकों से बहुत सहायता मिल सकती है। वे प्रति सप्ताह एक दिन सब विद्यार्थियों को गाँव की सफाई के काम में लगा सकते हैं। इसके लिए कई तरह के पुरस्कार भी रखे जा सकते हैं।

ग्रामसुधार के लिए पहले कोई एक ही काम शुरू करके उसे पूरा कर दिखाना अच्छा होगा। गाँव की सफाई का काम ही अगर सब से पहले हाथ में ले लिया जाय, तो उसे पूरा करने के लिए गाँव के बड़े लोगों का एक झाड़ू-दल या कुदाल-टोली बनाकर गाँववालों के सामने आदर्श रखना होगा। वे किसी अफसर या नेता या सुधारक या गाँव के मुखिया लोगों को काम में जुटते देखेंगे तब उनका उत्साह और साहस चौगुना बढ़ जायगा। इस तरह गाँववालों की भलाई के काम गाँववालों से ही कराये जा सकते हैं। सिर्फ लेक्चर झाड़ने या प्रोपगंडा करने या रोब गाँठने से ग्रामसुधार नहीं हो सकता, उसके लिए पढ़े-लिखे और बड़े-बड़े लोगों को झिझक या संकोच छोड़कर सच्चा सेवक बनना पड़ेगा—बड़प्पन का घमंड छोड़ना होगा—गाँववालों के दिल में जँचाना होगा कि देहातियों के लिए बाबुओं में भी हमदर्दी है—गरीबों के लिए धनियों में सहानुभूति है—छुटभैयों के लिए जेठ-रैयतों में भी सद्भावना है। इसी तरह, थोड़े खर्च से भी ज्यादा काम हो सकेगा।

ग्रामसुधार के लिए पवित्र चाल चलनेवाले त्यागी पुरुषों और स्त्रियों की भी

जरूरत है। गाँव की स्त्रियों में काम करने के लिए वही स्त्री जा सकती है जो गाँव की स्त्रियों के दुख-दर्द जानती है और खुद भी सादगी से रहती है। गाँव में वही कार्यकर्ता गाँववालों से अपनी बातें मनवा सकता है, जो सब तरह के भेद-भाव भूलकर बहुत नरमी और मिठास के साथ सबसे बर्ताव करेगा। गाँव में काम करनेवाले सुधारक या कार्य-कर्ता, चाहे वह स्त्री हो वा पुरुष, सबसे पहले अच्छे चरित्र का होना चाहिए। वहाँ विशेष विद्या-बुद्धि की जरूरत नहीं है। वहाँ शुद्ध-सादा चालढाल और मेलजोल से ही काम निकल सकता है। इसके लिए ग्रामसेवक-दल का संगठन और उस दल की नियमित शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए। यह काम खुद गाँववाले ही शुरू कर दें तो अच्छा होगा। औरों के भरोसे यह काम बहुत देर से होगा। जैसे सेवासमितियों के स्वयंसेवकों में शेर-बच्चे होते हैं, बानर-दल होता है, वैसे ही गाँव के बच्चों और बालकों तथा बालिकाओं की भी एक छोटी सेना बनाई जा सकती है, जो ग्रामसुधार के छोटे-मोटे कामों में काफी सहायता देगी। ऐसी सेना के लिए मिठाई और पुरस्कार भी जरूरी होगा।

ग्रामसुधार के लिए सब से पहला जरूरी काम सड़कों का सुधार है। गाँवों में पहुँचनेवाली सड़कों का सुधार होने पर ही वहाँ अफसर, नेता, सुधारक, डाक्टर, प्रचारक, अखबार आदि आसानी से पहुँच सकते हैं। अच्छी सड़कों से ही गाँवों की उपज शहर या स्टेशन तक पहुँच सकती है। इस तरह गाँववालों की माली हालत भी अच्छी हो जायगी। उनकी शारीरिक दशा भी तब सुधरेगी जब गाँव के कुँओं के सुधार पर ध्यान दिया जायगा। कुँओं के सुधार से ही गाँववालों की तंदुरुस्ती और भी अच्छी रह सकती है। गाँवों में अच्छे-अच्छे कुँओं की संख्या बढ़ाने से ही गाँववालों में सफाई आ सकती है। अच्छे कुँओं और तालाबों से गाँव के पशुओं की दशा भी सुधर सकेगी; क्योंकि गंदे गड्ढे और पनाले का पानी पीने से अधिकांश देहाती पशु रोगी, निर्बल और अल्पायु हो जाते हैं। अच्छे जलाशयों से खेतों की सिंचाई में भी मदद मिलेगी। बाँध, नहर, बिजली आदि की पंचसाला और दस साला योजनाओं की आशा और प्रतीक्षा में ग्रामीण अकर्मण्य हो जायँगे; पर जलाशयों के सुधार और निर्माण से वे स्वावलंबी होंगे, कर्मठ और उद्योगशील बनेंगे।

इस तरह बस्ती की सफाई मकानों की बनावट, खेतों की चकबन्दी, पशुपालन और गोरक्षा, गोचरभूमि और खेलकूद के मैदान, स्कूल और पुस्तकालय, अस्पताल और बाजार, गृहशिल्प की उद्योगशाला, शौचालय अथवा शौचकूप आदि के विषय में गाँव के लोगों को सलाह सुझाव देने की जरूरत है। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति उनके सहयोग से भी हो सकती है। उनके अभाव की पूर्ति के लिए सरकार को उनझनदार कानूनों में भी सुधार करना होगा—आर्थिक सहायता देनी होगी। किन्तु ग्रामसुधारक को ही सरकार का ध्यान आकृष्ट करने योग्य काम कर दिखाना होगा।

[मार्च, १९४७ ई०]

❀

ग्राम-पंचायत और ग्रामोद्धार

ग्राम-पंचायत का प्रचार हमारे देश में दिन-दिन बढ़ रहा है। देखादेखी भी गाँवों में पंचायतों की स्थापना होती जा रही है। हमारी सरकार ने एक अलग पंचायत-विभाग ही खोल दिया है। किन्तु हमारे देश के लिए यह पंचायत-प्रथा कुछ नई नहीं है।

हमारे देश के गाँवों में यह प्रथा बहुत पुराने समय से प्रचलित थी। मगर उस समय कोई पंचायती कायदा-कानून नहीं था। फिर भी गाँव का जेठ-रैयत या मुखिया सूत का बाँधा हाथी चलाता था। वह स्याह-सफेद जो कुछ कर देता था, वही ब्रह्मा की टाँकी बन जाता था। वह दूध-पानी के बिलगाने में अपने-पराये का भेद-भाव भूल जाता था।

इसे कोई सतजुगी बात न समझे। यह पचास साल से बेशी पहले की बात नहीं है। उससे भी पहले की पंचायतों का हाल बड़े-बूढ़ों से सुना जाता है। आज भी देश में बहुतेरे बूढ़े स्त्री-पुरुष जीते हैं। उनसे पुरानी पंचायतों की कहानी सुनी जा सकती है। उनसे पुराने अनुभव पूछकर लिखे और छापे जा सकते हैं।

हम यह नहीं कहते कि पुराना सब-कुछ अच्छा ही था। मगर पुरानी पंचायतें आज की पंचायतों से बहुत अच्छी थीं। पुरानी पंचायतों की कहानियाँ संग्रह करने योग्य हैं।*

आज की पंचायतों का संघटन बड़े कायदे-कानून से हो रहा है। उनसे ग्राम-सुधार के बहुत-से काम हो रहे हैं। उनसे ग्रामोद्धार की भी आशा लगी हुई है। कितने ही गाँवों की पंचायतों में बड़ा उत्साह है। कई ग्राम-पंचायतों ने जोश में आकर बड़े-बड़े काम कर दिखाये हैं। कहीं कोई आदर्श ग्राम बन गया है। कहीं श्रमदान से लम्बी सड़क बन गई है। कहीं कुँआ-तालाब तक खुद गये। कहीं उलझनदार मामले भी फैसले हो गये।

लेकिन, लाखों गाँववाले देश में, ठीक परता बैठाकर देखा जाय तो, अबतक बहुत थोड़ा ही काम हुआ है। बरसों की लगी काई हड़बड़ाने से छूटेगी भी नहीं। धीरे-धीरे समाज के ऊपर छाई हुई काई फटेगी ही। शर्त्त इतनी ही है कि नेकनीयत पंच लोग ईमानदारी से काम करें।

कई पंचायतें तो अपनी सच्ची लगन से की गई ग्राम-सेवा के लिए सरकारी इनाम भी पा चुकी हैं। मगर ऐसी पंचायतें दाल में नमक के बराबर हैं। अधिकतर पंचायतों में गुटबन्दी, आपस की डाह, वैर-विरोध की खींचतान और मूँछ की लड़ाई चल रही है। कहीं-कहीं तो जाति-बिरादरी की चढ़ा-ऊपरी और स्वार्थलीला के कारण बड़ी-बड़ी दुर्घटनाएँ हो गई हैं।

ये सारी बातें जग-जाहिर हैं। इन सबका मूल कारण यही है कि आज देहाती भाइयों के दिल-दिमाग में सचाई की जगह खोटाई घर कर गई है। गाँववालों में कुटिलता बढ़ती जा रही है। वे अपने पुरखों के गुण बिसारते जा रहे हैं। उन्हीं के

---

* जैसे मुन्शी देवीप्रसाद मुन्सिफ का 'इनसाफ संग्रह' (इंडियन-प्रेस, प्रयाग)—ले०

पूर्वज लँगोट के पक्के और बात के धनी थे। वे मुखाग्र ही लेनदेन करते थे। उनके व्यवहार में लिखापढ़ी से बढ़कर वचन की प्रतिष्ठा थी। मगर अब लँगोट के सच्चे तो ढूँढ़े ही मिलेंगे, बात के सच्चे भी सपना हो गये। सेवा, त्याग और परोपकार की भावना मानों धरती छोड़ गई। जन-जन के, सब में स्वार्थ समाया दीखता है। बड़े-छोटे का शील-लिहाज गूलर का फूल हो गया है। परलोक के भय का युग लद गया। ईश्वर से सिर्फ मतलब की यारी रह गई, नहीं तो वह बस फुटबॉल ही है। ऐसी दशा में ग्रामोद्धार होगा तो कैसे ! यह समझना सरासर भूल है कि थैली का मुँह खोल देने से ग्रामोद्धार हो जायगा। गाँव की बस्ती या हाट-बाट सुधारने से नहीं, बल्कि गाँवों में बसनेवालों को सुधारने से ग्रामोद्धार होगा।

ग्राम-पंचायतों से ही ग्रामोद्धार होगा, इसमें सन्देह नहीं; मगर गाँवों की पंचायतों में जबतक खोटे दिल-दिमाग के प्रपंची और फसादी आदमी रहेंगे, तबतक चाहे करोड़ों खर्च हो या लाखों योजनाएँ बनें, ग्रामोद्धार असम्भव है। अच्छे और उँचे चरित्र के आदमियों से गाँव बिल्कुल खाली नहीं हो गये हैं, मगर वे पाखंडियों और 'चार सौ बीसों' से पार नहीं पा सकते। इसी समस्या के हल में पंचायतों की सफलता और गाँवों का कल्याण है। वास्तविक ग्रामोद्धार केवल कायदा-कानून से नहीं होगा। इसके लिए ग्रामीणों में नैतिक बल होना जरूरी है। ग्रामवासियों के चरित्र का स्तर ऊँचा उठाने के लिए कोई प्रयत्न न करके ग्राम-पंचायतों पर करोड़ों रुपये खर्च करना व्यर्थ है।

—मासिक 'ग्रामसेवक' (पटना), नववर्षाङ्क, जनवरी १६५५ ई०

ग्राम-पंचायत और पर्व-त्योहार

किसी देश के पर्व-त्योहार देखकर ही उसके बड़प्पन या छुटपन का अन्दाज किया जाता है। पर्व-त्योहार को सुन्दरता से मनाना ही जीती-जागती जाति का लक्षण है। हमारे सभी त्योहारों में आनन्द-मंगल की भरमार है। उन्हें मनाने का यही प्रयोजन है कि हम सदा नीरोग रहें, हमारा स्वास्थ्य बराबर ठीक रहे, हम बहुत दिन जीते रहें, हमारा मन शुद्ध और प्रसन्न रहे, परिवार और पड़ोसियों से सच्चा प्रेम बना रहे, लोक और परलोक में हमें सुख मिले। परन्तु आजकल हमारे पर्व-त्योहारों का स्वरूप बहुत-कुछ बिगड़ गया है।

ग्राम-पंचायतों को ग्राम-सुधार के लिए जैसे कुँआ, तालाब, सड़क, स्कूल, पुस्तकालय, अस्पताल आदि बनवाना है, वैसे ही त्योहारों को भी राष्ट्रीय रंग में रँगना है, जिससे हमारे गाँवों की भलाई और उन्नति हो, देहाती भाइयों में देशभक्ति और समाज-सेवा की उमंग हो, लोगों में आपस का भेदभाव कम होकर मेल-मिलाप बढ़े और संसार में भारत के गुणों का बखान हो।

हरएक पर्व की अपनी-अपनी विशेषता है। उसको बढ़िया ढंग से मनाने के लिए ग्राम-पंचायत को पहले से ही योजना बना लेनी चाहिए। प्रोग्राम बनाकर उसका प्रोपगण्डा गाँव-गाँव में किया जाय। एक पंचायत दूसरी पंचायत को नोटिस भेज दे। मगर सब अपनी-अपनी शक्ति और सुविधा के अनुसार मनावें। जिसकी सूझ-बूझ अच्छी हो, वह मनाने के तौर-तरीके में हेरफेर कर ले तो कोई हानि नहीं। हाँ, फजूलखर्ची से बचना होगा। फूहड़ मनबहलाव और फालतू खर्च से उद्देश्य भ्रष्ट हो जायगा।

होली, दीवाली, दशहरा, श्रावणी, वसन्तपंचमी, रामनवमी, जन्माष्टमी, रथयात्रा, देवठन, हनुमान-जयन्ती; रामविवाहपंचमी, गीताजयन्ती, सूर-तुलसी-जयन्ती, तिलसंक्रान्ति, महाशिवरात्रि, शरत्पूर्णिमा, कार्त्तिकी पूर्णिमा, गोपाष्टमी, अक्षयनवमी, गंगादशहरा आदि पर्व छोटे-बड़े पैमाने पर सब जगह मनाये जा सकते हैं। बहुतेरे गाँवों में इनमें से कई मनाये भी जाते हैं। गाँवों में रहनेवाले दूसरे सम्प्रदायों के लोग भी अपने त्योहार मनाते हैं। पंचायत को चाहिए कि सभी मतों की जनता में एकता कायम रखने के उपाय करे। आपसी मेल-जोल से सबके त्योहार मनाये जायँ। परस्पर प्रेम बढ़ानेवाली तरकीब सोच निकाली जाय।

दीवाली में सफाई की स्कीम चालू हो, सफाई का सप्ताह मनाया जाय, किरासन तेल के बदले रेंड़ी-सरसों-तेल जलाने का प्रचार किया जाय, घर-घर लक्ष्मीपूजा न हो सके तो मिलजुलकर पंचायत-भवन में हो। दशहरे में दुर्गापूजा, दंगल, हथियारों के खेल, रामलीला, नाटक आदि हों। वसन्तपंचमी को गाँव-गाँव सरस्वतीपूजा की चाल चलाई जाय (कहीं-कहीं महावीरी झण्डे के जलूस भी निकलते हैं तो खेलकूद में छोटे-मोटे इनाम बाँटे जायँ)। यदि जयन्तियों में भाषण या व्याख्यान का प्रबन्ध न हो सके, तो भजन-कीर्त्तन और रामधुन से ही काम चलाया जाय, सूर-तुलसी के पद गाये जायँ, रामचरित-मानस का अखण्ड पाठ हो। श्रावणी तो राखी बाँधने का पर्व है। उसमें आपस के स्नेह-सूत्र को दृढ़ करके राष्ट्रीय भाव भरा जाय। बरसात में वर्षा-मंगल का उत्सव मनाकर नये-नये पेड़-पौधे लगाये जायँ। फल-फूल के पेड़ों के लिए पुरस्कार भी दिये जायँ। पंच लोग इकट्ठे होकर सोचें-गुनें तो कई तरह से त्योहार सुधारे-सँवारे जा सकते हैं। इससे गाँवों में नई जान आ जायगी।

होली बहुत व्यापक पर्व है। एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय के लोगों से मेल-मुहब्बत बढ़ावें। हरिजनों की बस्ती साफ की जाय। समाज-सुधार के स्वांग निकाले जायँ। होलिका-दाह के समय विधिपूर्वक हवन किया जाय। सत्याग्रही प्रह्लाद का नाटक खेला जाय। कीचड़ उछालना और गाली बकना बन्द करके हरिकीर्तन और हास्यरस का कवि-सम्मेलन किया जाय। गीले रंग के बदले सूखे रंग का व्यवहार हो। स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों पर न कोई उँगली उठाये और न आवाज कसे। शिक्षा और उपदेश से भरे हुए गीत गाये जायँ। फाग-धमार और होरी-वसन्त के सुन्दर भाववाले गीतों को गाने-गवाने और मलिन व्यवहारों को छोड़ने के लिए जनता से अपील की जाय।

धर्म और राजनीति तथा साहित्य के क्षेत्र में जो बुराइयाँ दीख पड़ें, उनपर ताना कसनेवाले कौतुकी जलूस निकाले जायँ। समर्थ गृहस्थ लोग अपने पड़ोस के एक-एक गरीब आदमी को भोजन भी करावें तो सद्भाव बढ़ने से लाभ ही होगा।

रामनवमी, कृष्णाष्टमी आदि में रामायण और भागवत की कथा बाँचकर सुनाई जाय, दरिद्रनारायण को भोजन कराया जाय, रामलीला और रासलीला के नाटक खेले जायँ, भजनानन्दी-मण्डली गाँव की परिक्रमा करे। इसी तरह गाँधी-जयन्ती में चर्खा-दंगल हो, प्रभातफेरी में खादी-बिक्री हो। गणतंत्र-दिवस (२६ जनवरी) को तिरंगा झण्डा फहराकर राष्ट्रीय गान हों। स्वतंत्रता-दिवस (१५ अगस्त) को हवन और देवमन्दिरों में पूजापाठ हो तथा कंगालों को अन्न-वस्त्र दिया जाय। इससे अनेक उपद्रव शान्त होंगे, जनता का कल्याण होगा।

आषाढ़ में इन्द्रपूजा होने से वर्षा का लाभ होते देखा गया है। किन्तु इस युग में ऐसी धार्मिक बातों पर लोगों का विश्वास नहीं जमता। आज तो यह कोई न मानेगा कि नदियों की पूजा से बाढ़ का भय कम होगा। उस दिन काशी के घाटों के सुधार के लिए शास्त्र-विधि से गंगाजी की पूजा हुई। इसे नई रोशनी के लोग ढोंग कह सकते हैं। हरद्वार और काशी में गंगा की, अयोध्या में सरयू की तथा मथुरा में यमुना की आरती उतारी जाती है। प्रयाग में त्रिवेणी और अक्षयवट की पूजा होती है। उसका महत्त्व कोई माने या न माने, पर उसमें बड़ा गूढ़ तथ्य छिपा हुआ है। प्रकृतिदेवी की पूजा के रहस्य और तत्त्व तो भारत के पुराने ग्रन्थों के पढ़ने से ही समझ में आ सकते हैं। पुरानी परिपाटी के असली रूप को भुला देने से ही हमारी दुर्दशा हो रही है। अन्ध-विश्वास से बचकर, गुण-दोष का विचार करके, जो भी शुभ कर्म श्रद्धा के साथ किया जायगा, उसका फल निश्चय ही उत्तम और मंगलमय होगा।

ग्राम-पंचायतों को चाहिए कि गाँव के लोगों में सांस्कृतिक चेतना के जगाने का प्रयत्न करते रहें। हमारे पर्व-त्योहारों में भारतीयता का संस्कार पैदा करना और जनता की नैतिक शक्ति बढ़ाना ग्राम-पंचायतों का मुख्य काम होना चाहिए।

—मासिक 'ग्रामसेवक' (पटना), १९५५ ई०

महिला-महत्त्व

[महिलोपयोगी रचनाएँ]

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो-
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ।

—जगद्गुरु शंकराचार्य

सती-सीमन्तिनी सीता का चरित्रोत्कर्ष

सीता के शुभ जन्म से बिहार धन्य हुआ और भारत गौरवान्वित। अपने सतीत्व की तेजस्विता से वे जगज्जननी जानकी कहलाईं। समस्त भूमण्डल की नारी-जाति को उनके अचल पति-व्रत से प्रेरणा मिली।

मिथिला-महोदधि-मणि मैथिली की महिमा मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र से, स्वयं देवर्षि नारद ने, कही है—

जगतामादिभूता या सा माया गृहिणी तव ॥१०॥
त्वत्सन्निकर्षाज्जायन्ते तस्यां ब्रह्मादयः प्रजाः ॥११॥
लोकत्रयमहागेहे गृहस्थस्त्वमुदाहृतः ॥१२॥
त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः, शिवस्त्वं जानकी शिवा॥
ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा ॥१३॥
भवाञ्छशाङ्कः सीता तु रोहिणी शुभलक्षणा।
शक्रस्त्वमेव पौलोमी सीता स्वाहाऽनलो भवान् ॥१४॥
लोके स्त्रीवाचकं यावत्तत्सर्वं जानकी शुभा।
पुन्नामवाचकं यावत्तत्सर्वं त्वं हि राघव ॥१८॥
तस्माल्लोकत्रये देव युवाभ्यां नास्ति किञ्चन[1] ॥१९॥

राम-सीता का विवाह हो जाने के पश्चात् राजर्षि मिथिलेश जनक ने भी, रविकुल-गुरु वसिष्ठ और राम-गुरु विश्वामित्र मुनि से कहा है—एक बार नारद मुनि आकर मुझसे कह गये थे कि तुम्हारे घर में योगमाया ही सीता के रूप में उत्पन्न हुई है, अतः इन्हें रामचन्द्रजी को ही सौंपना ; क्योंकि ये पूर्वकाल से ही भगवान राम की पत्नी हैं, किसी और की नहीं। उसी समय से मैं सीता को विष्णुप्रिया लक्ष्मी ही मानता हूँ।

[2]योगमायाऽपि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि।
अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः ॥६५॥

---

१. अध्यात्मरामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग १।
२. अध्यात्म०, बाल०, सर्ग ६।

नान्येभ्यः पूर्वभार्यैषा रामस्य परमात्मनः ॥६६॥
तदारभ्य मया सीता विष्णोर्लक्ष्मीर्विभाव्यते ॥६७॥

जनकजी ने रामचन्द्रजी से भी विवाह-काल में कहा है कि आज आपको सीता के साथ एक ही आसन पर विराजमान देखकर मेरा जन्म सफल हो गया—

अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया ॥७१॥
एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रविं यथा[1] ॥७२॥

और भी, जिस समय ब्रह्मा, देवताओं के साथ, भगवान् विष्णु के पास गये हैं, उस समय उनसे दुखड़े का पचड़ा सुनाकर, स्तुति आदि के अनन्तर, कहते हैं—

अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि देवरिपुं प्रभो[2] ॥२४।

तदुपरान्त भगवान विष्णु ने ब्रह्माजी को बतलाया है कि हम अपनी विभूतियों के साथ अयोध्याधिपति दशरथ के गृह में जन्म लेंगे, और जनक के घर सीता नाम से मेरी योगमाया उत्पन्न होगी, जिसके साथ मिलकर मैं आपलोगों का सब कार्य सम्पादन करूँगा।

योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा।
उत्पत्स्यते तया सार्द्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम्[3] ॥२८॥

इस प्रकार मैथिली की महिमा प्रत्यक्ष है। राम और सीता की अभिन्नता ही सर्वोपरि प्रमाण है। वन-यात्रा में जब रामचन्द्रजी महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचे हैं, तब आदिकवि ने, वन में रहने का स्थान पूछने पर, उनको वासस्थान बतलाते हुए, सीता का भी साथ ही स्मरण किया है। एक ही श्लोक पर्याप्त होगा—

धर्माधर्मान्परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिशम्।
सीतया सह ते राम तस्य हृत्सुखमन्दिरम्[4] ॥५५॥

ऋषि-मुनियों की बात जाने दीजिए। रावण ने जब भरी सभा में विभीषण का तिरस्कार किया, तब अपने मंत्रियों के साथ आकाश-मार्ग में जाकर विभीषण, रामजी की शरण में पहुँचने से पूर्व ही, रावण को चेतावनी देते हैं कि राम काल हैं और सीता काली, तथा दोनों ही यहाँ पृथ्वी का बोझ हटाने आये हैं—

कालो राघवरूपेण जातो दशरथालये ॥३४॥
काली सीताभिधानेन जाता जनकनन्दिनी।
तावुभावागतावत्र भूमेर्भारापनुत्तये[5] ॥३५॥

१. अध्यात्म०, बाल०, सर्ग ६।
२. अध्यात्म०, बाल०, सर्ग २।
३. अध्यात्म०, बाल०, सर्ग २।
४. अध्यात्म०, अयोध्या०, सर्ग ६
५. अध्यात्म०, युद्ध०, सर्ग २।

विभीषण परम भागवत थे। इसलिए उनकी बात भी छोड़िए। स्वयं रावण के मुख से सुनिए। मेघनाद-बध के बाद वह यज्ञ करने लगा। मंत्रानुष्ठान के समय वानरी सेना पहुँच गई। यज्ञ-विध्वंस हुआ। मन्दोदरी का घोर अपमान हुआ। वह राम-प्रताप-वर्णन कर पति को समझाने लगी। तब रावण ने स्पष्ट कहा कि मैं विष्णु-रूप राम और रमा-रूपिणी सीता को जानता हूँ तथा यह जानकर ही मैं जानकी को जबरदस्ती जंगल से हर लाया—

जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम् ॥
ज्ञात्वैव जानकी सीता मया नीता वनाद् बलात्[1] ॥५७॥

इसके बाद ही उस रावण ने एक बहुत ही सुन्दर श्लोक कहा है। अप्रासंगिक होने पर भी वह राम-सीता के महत्त्व का सूचक है; क्योंकि रावण ने मन-ही-मन राम-सीता को भू-भार-भंजन के लिए अवतीर्ण समझ लिया था—

क्लेशादिपञ्चकतरङ्गयुगं भ्रमाढ्यं, दारात्मजाप्तधनबन्धुझषाभियुक्तम्।
और्वानलाभनिजरोषमनङ्गजालं, संसारसागरमतीत्य हरिं व्रजामि[2] ॥६१॥

अर्थात्—जिस संसार-सागर में पाँच प्रकार के (अज्ञान आदि) क्लेश ही लहरें हैं, भ्रम ही भँवर है, परिवार-धनादि ही मछलियाँ हैं, क्रोध ही बडवानल और कामवासना का जाल बिछा हुआ है, उस भवसागर को पारकर मैं हरिशरण में जाऊँगा।

भू-भार-भंजन में भगवान् रामचन्द्र की सहायिका होने की बात स्वयं महारानी सीता ने भी कही है। वन-यात्रा के समय जब रामजी ने उनसे वन के क्लेशों का वर्णन करते हुए भय दिखलाया और अयोध्या में ही रहने का आदेश दिया, तब उन्होंने चूडान्त सतीत्व प्रदर्शित करते हुए कहा कि आपके साथ रहते मुझे कौन छू सकता है; आपके जूठे फल मेरे लिए अमृततुल्य तथा कुश-कण्टक पुष्प-शय्या-तुल्य सुखद होंगे और मैं आपको कष्ट न देकर आपके काम में सहायता दूँगी।

त्वत्समीपे स्थितां राम को वा मां धर्षयेद्वने ॥७२॥
फल-मूलादिकं यद्यत्तव भुक्तावशेषितम्।
तदेवामृततुल्यं मे तेन तुष्टा रमाम्यहम् ॥७३॥
त्वया सह चरन्त्या मे कुशाः काशाश्च कण्टकाः।
पुष्पास्तरणतुल्या मे भविष्यन्ति न संशयः ॥७४॥
अहं त्वां क्लेशये नैव भवेयं कार्यसाधिनी[3] ॥७५॥

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि सीताजी वस्तुतः योगमाया का अवतार थीं। तब तो उनके चरित्रोत्कर्ष का वर्णन करना उपहासास्पद प्रयत्न है। जब वे योगमाया, लक्ष्मी, आदि-शक्ति और जगदम्बा थीं, तब उनके चरित्र का उत्कर्ष क्या दिखाया जाय? अपनी

१. अध्यात्म०, युद्ध०, सर्ग १०।
२. अध्यात्म०, युद्ध, सर्ग १०।
३. अध्यात्म०, अयोध्या०, सर्ग ४

एक-दो बातों के चमत्कार से ही उन्होंने अपनी पतिभक्ति की पराकाष्ठा भी प्रकट कर दी, तब फिर ऐसी जगतीतल-धन्या साध्वी का चरित्रोत्कर्ष क्या दिखाया जाय ?

फिर भी, लौकिक दृष्टि से, सती देवियों का चरित्र तो कसौटी पर कसा ही जाता है। किन्तु यह बात जगद्विख्यात है कि भगवती सीता का चरित्र सदैव लौकिक कसौटी पर भी खरा ही उतरा है।

एक ही उदाहरण देना अभीष्ट है। स्थालीपुलाक न्याय से यही एक प्रसंग उनके चरित्रोत्कर्ष का सुपुष्ट प्रमाण उपस्थित कर देता है। यों तो रामायण में अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनसे उनका आदर्श चरित्र प्रदर्शित किया जा सकता है।

अशोक-वन में हनुमानजी, सीताजी से, कहते हैं कि मेरी पीठ पर चढ़कर रामजी के यहाँ चलिए। यथा—

अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव स राक्षसात्।
अस्माद् दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते ॥२१॥
त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा सन्तरिष्यामि सागरम्।
शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणाम् ॥२२॥
पृष्ठमारोह मे देवि मा विकांक्षस्व शोभने[1] ॥२६॥ इत्यादि

तब सीताजी, हनुमानजी से, पूछती हैं कि लघुकाय होकर भी तुम कैसे मुझे रामजी के पास ले जाना चाहते हो—

कथं चाल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि।
सकाशं मानवेन्द्रस्य भर्तुर्मे प्लवगर्षभ[2] ॥३२॥

यह सुनकर हनुमानजी पर्वताकार शरीर दिखलाते हैं। तब विश्वासपूर्वक सीताजी कहती हैं कि तुम्हारा बल-वेग और तेज जानकर भी मैं तुम्हारे साथ जाना अनुचित समझती हूँ; क्योंकि इससे रामजी का यश छीजेगा और मैं अपने पति के सिवा किसी दूसरे पुरुष के शरीर को छू नहीं सकती, रावण का स्पर्श तो विवशता से करना पड़ा था, और रावण को मारकर रामजी मुझे ले चलेंगे तो यह उनकी मर्यादा के अनुकूल होगा।

[3]तव सत्त्वं बलं चैव विजानामि महाकपे।
वायोरिव गतिश्चापि तेजश्चाग्नेरिवाद्भुतम् ॥४२॥
अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ मया गन्तुं त्वया सह ॥४५॥
कामं त्वमपि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान्।
राघवस्य यशो हीयेत्त्वया शस्तैस्तु राक्षसैः ॥५७॥

---

१. वाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्ड, सर्ग ३७।

२. वा० रा० सु०, स० ३७।

३. वा० रा०, सु०, स० ३७।

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर ।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ॥६२॥
यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात् ।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥६३॥
यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम् ।
मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥६४॥

वाल्मीकीय रामायण की तरह अध्यात्म-रामायण में भी वही बात है। क्लेश से कृश हुई देवी को हनुमान अपने कन्धे पर चढ़ाकर ले चलने के लिए उनसे प्रस्ताव करते हैं। पर महारानी सीता उसे अस्वीकृत करके दृढ़ता के साथ कहती हैं कि रामजी अपने बाणों से समुद्र को सोखकर या बाँधकर वानरी सेना के साथ यहाँ आवेंगे और रावण को युद्ध में मारकर मुझे ले जायँगे तो उनका यश अमर हो जायगा, इसलिए तुम जाओ, मैं किसी तरह जीती रहूँगी।

रामः सागरमाशोष्य बद्ध्वा वा शरपंजरैः ।
आगत्य वानरैः सार्द्धं हत्वा रावणमाहवे ॥७॥
मां नयेद्यदि रामस्य कीर्त्तिर्भवति शाश्वती ।
अतो गच्छ कथं चापि प्राणान्संधारयाम्यहम्[1] ॥८॥

जहाँ प्रतिक्षण प्राणनाश का त्रास सिर पर मँडला रहा है, पग-पग पर आतंक के अंकुश की चुभन सहनी पड़ती है, प्रिय-वियोग की वेदना यमयंत्रणा से भी बढ़ी हुई है, विकराल मुखवाली राक्षसियाँ दिन-रात भय दिखाती रहती हैं, वहाँ एक असहाया अबला का ऐसा सत्य-संकल्प निश्चय ही उसके निष्कलंक चरित्र का महत्तम उत्कर्ष प्रकट करता है।

इतना ऊँचा आदर्श—ऐसा विस्मय-विमुग्ध-कर चरित्रोत्कर्ष—क्या भूमण्डल के किसी साहित्य में मिलेगा ? नारी-हृदय की यह दृढता और गम्भीरता—यह सहिष्णुता और धीरता—भारत के सिवा और कहाँ मिलेगी ?

इसीलिए ललना-ललाम-भूता मैथिली विश्ववन्द्या सती-शिरोमणि हैं। तभी तो भगवान रामचन्द्र ने हनुमानजी के द्वारा मुद्रिका के साथ महारानी सीता को यह सन्देश भेजा था—

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति-रस इतनेहि माहीं[2] ॥

—'रामचरित-मानस'

—साप्ताहिक 'मिथिला-मिहिर' (दरभंगा) का 'मिथिलाङ्क', सन् १९३६ ई०

१. अध्यात्म०, सुन्दर०, सर्ग ५।

२. 'सतीत्व का ऊँचा आदर्श' नामक लेख भी इसी लेख में सम्मिलित कर दिया गया है, क्योंकि दोनों में बहुत समानता थी। वह लेख 'हिन्दी बंगवासी' (कलकत्ता) में १९२३ ई० में छपा था। —लेखक

राधा

बरनौ श्रीवृषभानुकुमारि ॥

प्रथमहिं सुभग स्याम बेनी की सुखमा कहौं बिचारि।
मानहुँ फनिक रह्यौ पीवन को ससिमुख-सुधा निहारि॥

बरनौं कहाँ सीस-सिन्दुर को कवि जु रह्यौ पचि हारि।
मानहुँ अरुन-किरन दिनकर की निसरी तिमिर बिदारि॥

भृकुटी बिकट निकट नैनन के राजत अति वर नारि।
मनहुँ मदन जग जीति जेर करि राखेउ धनुष उतारि॥

ता बिच बनी आड़ केसर की दीन्हीं सखिन सँवारि॥
मानो बँधी इन्दु-मण्डल में रूपसुधा की पारि॥

चपल नयन नासा बिच सोभा अधर-सुरङ्ग सुढारि।
मनौं मध्य खञ्जन-सुक बैठो लुब्ध्यौ बिम्ब बिचारि॥

तरिवन सुघर अधर नकबेसर चिबुक चारु रुचिकारि।
कण्ठश्री दुलरी तिलरी पर नहिं उपमा कहुँ चारि॥

सुरँग गुलाब माल कुचमण्डल निरखत तन मन वारि।
मनु दस दिसि निरधूम अगिनि करि तपि बैठे त्रिपुरारि॥

राधा-सुधा-धारा से हिन्दी के काव्य-कला-कुशल एवं कल्पना-पटु कवियों का कीर्ति-क्षेत्र खूब ही परिप्लावित है। हिन्दी-साहित्यरूपी हिमालय से 'आदिरसा' नाम की अमर-नदी लोकोत्तर लावण्य-लहरी से लहराती हुई प्रेमानन्दसुधा-सागर में जा मिली है। उसे राधा-सुधा-धारा ने वस्तुतः सजीवता प्रदान की है। कहीं करुणा-कालिन्दी का कलकल कल्लोल और कहीं हास्य का हिरण्यबाहु भी बड़े वेग से आ मिला है।

राधा ने केवल कविवर बिहारी की ही विपत्ति-बाधा नहीं हरी है, बल्कि यों कहना चाहिए कि राधा का आधार न होता तो कितने ही कवियों का उद्धार भी न होता। कवियों ने राधा के रोम-रोम की रमणीयता पर कोटि-कोटि कमनीय कल्पनाएँ सहज ही न्योछावर कर डाली हैं; क्योंकि राधिका कवियों की सिद्धि-साधिका थीं।

यदि राधिका इस असार संसार की शून्य भित्ति को अपनी प्रेम-लीला के पवित्र चित्रों से रञ्जित और चित्रित न किये होतीं तो इस स्वार्थ-रञ्जित संसार में निष्काम प्रेम की निष्कलंक मूर्ति कभी देखने में नहीं आती। भगवान कृष्ण यदि राधाधरामृत पान कर

अनन्य प्रेम का मधुर स्वाद नहीं चखते तो बाँस की बाँसुरी से ऐसी सुधा-चरित सुस्वर-लहरी कदापि उत्पन्न नहीं कर सकते, जिसे सुनकर ब्रह्मानन्दमग्न भगवान् शंकर की भी समाधि टूट जाती, गोपियाँ देह-गेह की सुध भूलकर बृन्दावन के कुञ्जों में भटकती फिरतीं और आकाशमण्डल दिव्य विमानों से भरा रहता।

सचमुच राधा में कृष्ण की प्रीति अगाधा थी। वे राधा की आराधना करते थे; क्योंकि राधा प्रेमामृतसागर की रमा थीं। कोटि-कन्दर्प-दर्पहारी कृष्ण ने विश्वविमोहिनी मूर्त्ति धारण कर राधा को जितना अपने हृदय के अन्तरतम प्रदेश से प्यार किया, उतना अविरल प्यार न तो वे चार भुजाओं के गाढ़ालिंगन से लक्ष्मी पर ही प्रकट कर सके और न मर्य्यादापुरुषोत्तम राम होकर सीतादेवी के ही एकान्त प्रेम का पूरा-पूरा बदला चुका सके। लेकिन लीलापुरुषोत्तम बनकर उन्होंने सब कसर पूरी कर ली।

राधा यदि न होतीं तो रसिकेश कृष्ण रासमण्डल रचकर चाँद को चकित, सूर्य्य को थकित और नरलोक को सुरलोक नहीं बना सकते। राधा के खञ्जन-गर्व-गञ्जन मृग-मद-भञ्जन नेत्र यदि उनपर सुधावृष्टि न किये रहते तो वे कालीयनाग की विषम विष-ज्वाला न सह सकते। किसी ने क्या खूब कहा है—

राधे त्वमधिकधन्या हरिरपि धन्यो भवतारकोऽपि।
मज्जति मदनसमुद्रे तव कुचकलशावलम्बनं कुरुते॥

स्नेह-सम्पोषिका राधिका का उज्ज्वल चरित्र आर्य्यमहिलाओं का मुखोज्ज्वल करने-वाला है; क्योंकि राधिका-सी प्रेमिका नायिका और कृष्ण-सा निराला नायक आजतक किसी भी देश को प्राप्त नहीं हुए। 'मतिराम' कवि कहते हैं,—

भाग जगे ब्रजमण्डल के उमँगे दुहुँ अंग अनंग अखारो।
साहबी सील सिरोमनिरूप उनै रह्यौ भू पर ओज अपारो।
डोलनि बोलनि काम कलोलनि जोगजथा 'मतिराम' सँवारो।
राधिका जैसी सोहाग-भरी अनुराग-भरो तिमि नन्द के वारो॥

राधिका के सुधामधुर हृदयतल में कितना अथाह कृष्ण-प्रेम भरा था,—अपने सच्चे गुण-ग्राहक और प्रेम-पारखी कृष्ण के लिए उनके हृदय में कैसा अलौकिक अनुराग और कितना ऊँचा स्नेह-सिंहासन था, इसकी कल्पना करना तो बस अपार सागर में कागज की किश्ती छोड़ना है। किन्तु ब्रजभाषा के कवि, जो राधा से किसी जन्म में उऋण नहीं हो सकते, अपनी-अपनी प्रतिभा और विवेक-बुद्धि के अनुसार, राधा के कृष्ण-विषयक प्रेम के परिमाण का अनुमान कुछ-कुछ कर सके हैं। उन्हीं के 'युक्तियुक्तमुपादेयम्' वचन के बल पर राधा के प्रेम की नाड़ी पहचानी जा सकती है। किन्तु राधा के हृदयोद्यान के प्रेम-पुष्प की सुगंध लेने के पहले, उनके कुछ अभिराम अंगों की अनुपम सुषमा का वर्णन, ब्रजभाषा के सपूतों के सुहावने शब्दों में, सुन लेना आवश्यक है—

राधा-मुख-राकेन्दु !

ग्रहन में कीन्हो गेह सुरन दै देखी देह हरि सों कियो सनेह जाग्यौ जुग चार्‌यो है।
तरनि में तप्यो तप जलधि में जप्यो जप 'केसोदास' वपु मास-मास प्रति गार्‌यो है।
उडुगन ईस दुज ईस ओषधीस भयो जदपि जगत ईस सुधा सों सुधार्‌यो है।
सुनु नदनंदप्यारी तेरो मुखचंद सम चंद पै न आयो कोटि छंद करि हार्‌यो है॥

मन्द-स्मित

हेरि हारी भारती चहूँधा चारि-दस मध्य प्राकृत नवेलिन की सुखमा तलास में।
फेरि रुचि रंचक न पाइहैं प्रपञ्च बिधि ढूँढ़ि थकि बैठी सुर बालनि बिलास में।
'रसरंग' सुखमा अभूत गति देखी जौन राधे मुख इन्दु मृदु मुस्कान हास में।
हीरा खानि खास में न दामिनी अकास में न चन्द्र के प्रकास में न बारिज बिकास में॥

कपोल-तिल

कैधों रूपरासि में सिंगार-रस अंकुरित कैधों तम-कन सोहै तड़ित जुन्हाई में।
कहै 'पद्माकर' किंधौं काम कारीगर आनि नुकता दियो है हेम फरद सुहाई में।
कैधों अरबिन्द में मलिन्द-सुत सोयो आय ऐसो तिल सोहत कपोल की लुनाई में।
कैधों पर्‌यो इन्दु में कलिन्दी-जलबिन्दु अस गरक गुबिन्द कैधों गोरी की गुराई में॥

चरणकमल

कलपलता के कैधों पल्लव नवीन दोऊ हरन मंजुता के कंजता के बनता के हैं।
पावन-पतित गुन गावैं मुनि ताके छबि छलैं सबिता के जनता के गुरुता के हैं।
नवो निधि सिद्धि ताके आले हैं अमल 'हठि' तीनो लोक ताके प्रभु ताके प्रभुता के हैं।
कटैं पाप ताके बँधे पुन्य के पताके जिन ऐसे पग ताके वृषभानु की सुता के हैं॥

हिन्दी के कवियों ने राधा के रोम-रोम की रमणीयता का वर्णन किया है। जिसका प्रत्येक रोमकूप सौन्दर्य्यामृत से लबालब भरा है, उसका हृदय कितना मनोरम होगा, यह अनुभवनीय है। राधा के शारीरिक और मानसिक सौंदर्य्य को अद्वितीय समझ कर ही एक कवि ने महारानी राधा को सबसे ऊँची गद्दी पर बिठाया है—

अतर पुतायो चौक चन्दन लिपायो बिछी गिलम गलीचन गुल पंगति प्रमान की।
कारी हरी पीरी लाल झालरैं झलकि रहीं जैसी छबि छाई चारु चांदनी बितान की।
झीनी स्वेत सारी जरी मोतिन किनारीदार फैली मुख आभा सुठि राधे सुखदान की।
नाह नेह नद्दी कर रमा रूप रद्दी कर बैठी आनि गद्दी पर बेटी वृषभान की।

राधा के साथ कृष्ण का कैसा प्रेम था और कृष्ण में राधा की कैसी भक्ति थी, इस बात बात पर विचार करने से—**एक-एक बात में समात मनबुद्धि जब पुलकित गात दृग-झरी-सी लगाई है।**

राधा और कृष्ण ने ब्रजमण्डल में ऐसा अपार सुखसागर उमड़ाया था कि आजतक समस्त भारत उसकी आनन्द-लहरी में गोते लगा रहा है। वह प्रेम की पवित्र मदिरा, जिसे पी-पीकर ब्रजमण्डल के जड़-चेतन मौज से मस्ती में झूमते थे, आज भी असंख्य जीव-धारियों को नितनूतन नेह के नशे में चूर रखकर उनके नयनों को अनुराग-राग-रंजित बनाये रहती है। तभी तो—

'सेनापति' चाहत हैं सकल जनम भरि बृन्दाबन सीमा ते न बाहर निकसिबो।
राधा-मनरंजन की सोभा नैन कंजन की माल गरे गुञ्जनि की कुञ्जनि को बसिबो।

राधा की स्नेह-सुधा से सिक्त ब्रजमण्डल को अब भी जो सप्रेम निरखते हैं, उनके भी ऐसे ही मनोभिलाष जाग उठते हैं—

आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौं डारौं लोकलाज के समाज बिसराय कै।
हरिजन पुञ्जन में बृंदाबन कुञ्जन में रहौं बैठि कहूँ तरुवर तर जाय कै।

राधा अपने प्रेम की प्रौढ़ता प्रकट कर कृष्ण-सखा उद्धव को बतलाती हैं कि मेरे प्राणाधार कृष्ण जितने मुझे प्यारे हैं, उतने औरों के नहीं हैं। मैं जितना उन्हें अपना कर के मानती हूँ, उतना मेरा ही हृदय यथार्थतः अनुभव कर सकता है, दूसरे तो उतना स्वप्न में भी नहीं अनुमान कर सकते। उनके प्रेम में लीन होने से मेरे मन को हटाना तो असंभव ही है—

दहै अंग को पतंग दीप के समीप जाइ बारिज बँधाइ भृङ्ग दरद न मानई।
सुनि के बिपञ्ची धुनि बिसिख सहै कुरंग सती पति संग देह दुःख को न आनई।
मनी हीन छीन फनी मीन बारि सों बिहीन ह्वैके मलीन मति दीनता बितानई।
चातक मयूर मन मेह के सनेह ऊधो जाकी लगै नेह सोई देह भले जानई॥

पूरब ते पुनि पच्छिम ओर कियो सुर-आपगा-धारन चाहे।
तूलन तोपि के ज्यों मतिमन्द हुताशन दण्डप्रहारन चाहे।
'दास जू' देखि कलानिधि कालिमा छूरिन सौं छिलि डारन चाहे।
नीति सुनाई के मो मन ते नँदलाल के नेह निबारन चाहे॥

राधा को कृष्ण के दर्शन की जितनी उत्कट उत्कण्ठा रहती थी, उससे भी अधिक कृष्ण को राधिका के दर्शन की चाट हर घड़ी लगी रहती थी। राधा के रूप और गुण का अतुलनीय ऐश्वर्य कृष्ण की चिन्ता और कल्पना का एक विषय था। वह प्रेमवती देवी उनके मानस-मंदिर में अनन्योपासना की मधुर मूर्ति-सी विराजमान रहती थी। प्रेम-साम्राज्य की उस अधीश्वरी की बाँकी झाँकी पाने के लिए 'बरसाने' गाँव की गलियों में कृष्ण

प्रायः फेरी लगाया करते थे—यद्यपि राधा, लोक-लाज और संकोच के कारण, अपने गुप्त-गूढ़ प्रेम को प्रकट न करने देने के अभिप्राय से, बड़े अच्छे ढंग से, कह भी देती थी—

ऐ अहीर वारो तो सो जोरि कर बार-बार
बिनै सुनावौं वलि बाँसुरी बजावै जनि।
बाँसुरी बजावै तौ बजावै मो बलाय जाने
बड़ी बड़ी आँखिन ते एकटक लावै जनि।
लावै है तो लाव टक 'तोष' मो सों कहा काम
परी नाम दौरि दौरि मेरी पौरि आवै जनि।
आवै है तो आव हम आइबो कबूल्यो पर
मेरे गोरे गात में असित गात छ्वावै जनि॥

किन्तु कृष्ण भला क्यों मानने गये। वे तो उस गली की खाक छानने में ही शान्ति पाते थे ; क्योंकि निष्काम प्रेम में भय या लज्जा को स्थान नहीं मिलता।

किसी रोज शायद राधा ने न तो कृष्ण को दिन-भर देखा और न कृष्ण ही राधा के दर्शन से मुग्ध हो पाये। राधा अपने घर की अटा पर छबीली छटा छिटकाती हुई टहलती थीं। कृष्ण सामने की गली में जा पहुँचे। अब देखना चाहिए, दर्शनोत्सुक कृष्ण की साध कैसे पूरी होती है—दूर से ही दर्शन कैसे पाते हैं—

भादौं की कारी अन्हारी निसा झुकि बादर मन्द फुही बरसावै।
स्यामा जू आपनी ऊँची अटा पै छकी रसरीति मलारहिं गावै।
ता समै मोहन के दृग दूरि ते आतुर रूप को भीख यों पावै।
पौन मया करि घूँघट टारे दया करि दामिनि दीप दिखावै॥

इस सवैये की अंतिम पंक्ति बहुत ही अच्छी बन पड़ी है।

एक बार राधा यमुना में जल भरने गईं। तबतक पीछा करते हुए कृष्ण वहाँ पहुँच गये। बाँसुरी फूँकी, आँखें चार हुईं। अनिमेष एवं अतृप्त लोचनों से कृष्ण उनको देखने लगे। राधा भी एकान्त स्थान पाकर निस्संकोच और एकाग्र मन से कृष्ण की रूप-सुधा-माधुरी पीती रहीं। निःस्वार्थ प्रेम का स्वच्छन्द समागम होते ही लज्जा लुक गई, भीति भाग चली। संसारियों की दूषित दृष्टि ऐसे पवित्र प्रेम की बारीकी नहीं देख सकती। प्रेम की प्रफुल्लता से पुलकित हृदयों का, स्तम्भित शरीर में, शिथिल होकर ही रह जाना कितना मर्मस्पर्शी है—

देखादेखी भई छूटि तब ते सकुच गई
मिटी कुलकानि कैसो घूँघट को करिबो ?
लागी टकटकी उर उठी धकधकी
गति थकी, मति छकी ऐसो नेह को उघरिबो।
चित्र के से लिखे दोऊ ठाढ़े रहे 'कासीराम'
नाहीं परवाह लागे लाख करो लरिबो!

बंसी को बजैबो नटनागर बिसरि गयो

नागरि बिसरि गई गागरि को भरिबो ॥

राधा-माधव का जब मधुर प्रेमालिंगन होता था, तब राधा प्रेम-विभोर होकर कह उठती थीं—'देव हमैं तुम्हें अन्तर पारत हार उतारि इतै धरि राखौं[1] ।' इसी से यह पहचान करना असंभव हो जाता था कि—

कुन्दन की छरी आबनूस की छरी सों मिली

सोनजुही माल कैधों कुवलयहार सों ।

कैधों चन्द्र चन्द्रिका कलंक सों कलित भई

कैधों रति ललित बलित भई मार सों ।

'कालिदास' मेघ माहिं दामिनी मिली है कैधों

अनल की ज्वाल मिली कैधों धूमधार सों ।

केलि समय कामिनी कन्हैया सों लपटि रही

कैधों लपटानी है जुन्हैया अन्धकार सों ॥

कृष्ण और राधा की शारीरिक अभिन्नता जो ऐसी मुग्धकारिणी थी, उसका कारण उनकी मानसिक अभिन्नता ही है । राधा ने स्वयं इसकी घोषणा की है—

न्यारो न होत बफारो ज्यों धूम में धूम ज्यों जात घने घन में मिलि ।

'दास' उसास मिलै जिमि पौन में पौन ज्यों पैठत आँधिन में मिलि ।

कौन जुदा करै लोन ज्यों नीर में नीर ज्यों छीर में जात खरो मिलि ।

यों मति मेरी मिली मन मेरे सों मो मन गो मनमोहन सों मिलि ॥

राधा अपने प्यारे कृष्ण को कभी बिसारती न थीं । कवियों की कल्पना है कि राधा की कजरारी आँखों में बसने से ही कृष्ण काले हुए थे । राधा पर भी कृष्ण का गाढ़ा रंग चढ़ गया था । प्रायः वे ऐसा कहा भी करती थीं "रँग दूसरो और चढ़ैगो नहीं अलि साँवरो रंग रँग्यौ सो रँग्यौ ।" तभी तो श्यामसुन्दर के ध्यान में लीन राधिका को झूला झूलते समय 'पदमाकर' ने यों देखा था—

प्रेमरंग बोरी गोरी नवल-किसोरी भोरी झुलति हिंडोरे यों सुहाई सखियान में ।

काम झुलै उर में उरोजन में दाम झुलै स्याम झुलै प्यारी की अन्यारी अँखियान में ।

१. आजु मिले बहुतै दिन भावते भेंटत भेंट कछू मुख भाखो ।

ये भुज भूषन मो भुज बाँधि भुजा भरिकै अधरा रस चाखो ।

दीजिए मोहि ओढ़ाइ जरी-पट कीजिए जू जिय जो अभिलाखो ॥—'देव'

यही आँखों में झूलनेवाली साँवली-सलोनी मूरत जब "कुञ्ज-कुञ्ज में क्रीड़ा करि-करि गोपिन को सुख देहौं, गोप सखन सँग खेलत डोलौं ब्रज तजि अनत न जैहौं"—ऐसी लालसा रखते हुए भी अभाग्यवश मधुपुरी (मथुरा) चली गई तब उसकी चिन्ता में डूबी राधिका अपने प्रेम-रत्न के पारखी जौहरी की याद कर उदास मन से कहा करती थीं—

जा थल कीन्हे बिहार अनेकन ता थल बैठिके काँकरी चुन्यौ करे।
जा रसना ते करी बहु बातन ता रसना ते चरित्र गुन्यौ करे।
'आलम' जौन से कुञ्जन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यौ करे।
नैननि में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करे॥

अन्तिम पंक्ति में कितनी स्वाभाविकता है। बीते हुए सुख-सौभाग्यपूर्ण दिनों का कैसा मनोज्ञ चित्र है। कैसी प्रेमामृतमयी स्मृति है। मथुरा भेजे गये प्रेमपत्र में राधा के हृदय की माधुरी दर्शनीय है—

पाती लिखी सुमुखि सुजान प्रिय गोविंद को श्रीयुत सलोने स्याम सुखनि सने रहो।
कहै 'पदमाकर' तिहारी छेम छिन-छिन चाहियतु प्यारे मनमुदित बने रहो।
बिनती इती है कि हमेसहू मुहै तो निज पाँयन की पूरी परिचारिका गिने रहो।
या ही में मगन मनमोहन हमारो मन लगन लगाय लगि मगन बने रहो॥

कृष्णचन्द्र का नाम (घनश्याम) राधा (श्यामा) को इतना प्यारा था कि उनके नाम या रंग की कोई वस्तु देखकर राधा के हृदय का प्रेमोच्छ्वास उमड़ उठता था। कृष्ण के सुभग साँवले रूप के समान यदि कोई वस्तु देख पाती थीं तो झट कृष्ण की मनोहारिणी मूर्त्ति उनकी चित्त-भित्ति पर अंकित हो जाती थी। महाकवि 'हरिऔध' ने अपने 'प्रिय-प्रवास' में राधा के प्रेम की व्यापकता यों व्यक्त की है—

मधुकर ! सुन, तेरी श्यामता है न वैसी।
अति अनुपम जैसी श्याम के गात की है॥
पर जब नयनों में देख लेती तुझे हूँ।
छवि उर खिंच जाती श्यामली मूर्त्ति की है॥

श्यामसुन्दर कृष्ण के मनोहर शरीर-सदृश मेघ को देखकर राधा की विचित्र दशा हो जाती थी। उनकी सारी सुधि-बुधि भूल जाती थी। उनका हठीला मान भी नहीं टिकता था। अनायास वे कह उठती थीं—

तौ लौं हौं न बोलों जौ लौं चातक मयूर बोले
मैन की मरोर नैन कोरऊ न खोली मैं।
खुलि रही खुब खुसबोय की लहरि तैसे
सीतल समीर डोलै तनिकऊ न डोली मैं।

सुकवि 'निहाल' मैन मन में उमँगि आये
फरकि उठे उरज उतंग जुग चोली में।
कूकि उठी कोयल कसाइन कहाँ ते आय
देखि घनस्याम घनस्याम तोसों बोली मैं॥

किन्तु राधा जब मान ठानती थीं तब चाहे कोई लाख समझावे, मोर-चन्द्रिका को अपनी अलक्त-रञ्जित पद-नख-प्रभा से द्युतिमन्त बनाये बिना अपना गर्व खर्व नहीं करती थीं। यह और कुछ नहीं, केवल कृष्ण पर राधा के अनन्य प्रेम की विजय थी। कृष्ण की ओर से प्रेम-संवाद लेकर जानेवाली सखियाँ जब राधा से व्यंग्य बोलती थीं—

"बारिये बैस बड़ी चतुरै हो बड़े गुन 'देव' बड़ीयै बड़ाई।
सुन्दरै हौ सुघरै हौ सलोनी हौ सील भरी रस रूप सनाई।
नैसिक नाह के नेह बिना चकचूर ह्वै जैहैं सबै चिकनाई॥"

× × ×

"कौन सयानी जु कान्ह सुजान सों ठानि गुमान रही मन माहीं!
एक जो कंज कली न खिली तो कहौ कहूँ भौंर को ठौर है नाहीं?"

× × ×

"मेरे मनाये न मानौ बबा की सौं ऐहैं बसन्त लै जैहैं मनाय कै।"

तब सखियों का ताना सुनकर राधा भी झुँझला कर कह डालती थीं—

फूलनि की माला मोसों कहत मुलायम-सी,
फूलनि की माल मेलि राखत न क्यों गरे!
मेरे दृग रोज ही बतावत सरोज ऐसे,
लै लै कै सरोज रोज मन में न क्यों भरे!
हम तौ री न जैहौं आज बनमाली पास,
वोई प्रिय आय पाँय इतको न क्यों धरे!
मेरे मुखचन्द सों बतावैं ब्रजचन्द रोज,
कहौ ब्रजचन्द जू सों चन्द देखिबो करे।

अन्ततोगत्वा राधा की ही जीत होती थी। उनके चरणों की महावर नन्दनन्दन के माथे की रोली बनती थी।

मानिनी राधा को प्रसन्न करने के लिए कभी-कभी कृष्ण मालिन या मनिहारिन का वेश बनाकर उस प्रेम की अधिष्ठात्री देवी की अनुकूलता प्राप्त करने जाते थे। वह देवी विजयिनी होकर भी फिर क्षमा करती थीं; अपने सच्चे प्रेमी के प्रेम में तन्मय

हो जाती थीं। कृष्ण उनको सिंगारने लगते थे। फिर कहाँ मान का ध्यान रहने पाता था—

फूलन सों बाल की बनाइ गुहि बेनी लाल भाल दीनी बेंदी मृगमद की असित है
अंग-अंग भूषन बनाइ ब्रजभूषन जू बीरी निजकर कै खवाई अति हित है।
ह्वै कै रस बस जब दीवै को महावर कै 'सेनापति' स्याम गह्यो चरन ललित है
चूमि हाथ नाथ को लगाइ रही आँखिन सों कही प्राननाथ कह अति अनुचित है॥

विजयिनी और विजित जब परस्पर गले मिलते थे, तब जान पड़ता था, मानों, प्रेम और उत्कण्ठा, लावण्य और सुषमा, चित्त और चेतना, हृदय और अनुभूति, रंग और सुरभि, आनन्द और करुणा, माधुर्य और तृप्ति, योग और सिद्धि, रत्न और कान्ति मिलकर अभिन्न हो गये हैं।

[1]कोऊ उमाराज रमाराज धर्मराज कोऊ,
कोऊ रामचन्द सुखकन्द नाम नाधे में।
कोऊ ध्यावै गनपति फनिपति सुरपति,
कोऊ देव ध्याय फल लेत पल आधे में।
'हठी' को अधार निरधार को अधार,
तुही जप तप जोग जग्य कछुवै न साधे में।
कटैं कोटि बाधें मुनि धरत समाधे,
ऐसे राधे पद रावरे सदा ही अवराधे में।[2]

—त्रैमासिक 'आर्यमहिला' (भारतधर्ममहामंडल, काशी), १६१६ ई०

१. 'राधासुधाशतक' से।

२. इस लेख का वह अंश निकाल दिया गया है, जो पत्रिका-सम्पादक ने अपनी ओर से इसमें जोड़ दिया था। उन्होंने इसपर धर्मशास्त्र का रंग चढ़ा दिया था। उनके शास्त्रीय उद्धरणों से यह बोझिल हो गया था। इसके कुछ स्थल किञ्चित् परिवर्त्तित भी हुए हैं; क्योंकि दैनिक 'कलकत्ता-समाचार' के जन्माष्टमी-अंक (१६२५ ई०) में छपा 'राधाकृष्ण-प्रेमलीला' या 'प्रेमसाधिका राधिका' नामक लेख भी इसी में अन्तर्भुक्त है।

—लेखक

तुलसीदास तथा नारी-जाति[1]

गोस्वामी तुलसीदासजी भारत के मुखोज्ज्वलकारी महात्माओं में शीर्षस्थ होने योग्य हैं। प्रत्युत संसार के 'शिरसा वन्द्य' महापुरुषों में सम्मान्य आसन पाने योग्य हैं। आपकी रामायण हिन्दू-धर्म की ढाल है। आपकी कविता हिन्दी-साहित्य की जान है। 'रामचरित-मानस' लिखकर आप मोक्ष का द्वार खोल गये, परम पद पर आरूढ़ होने के लिए सोपान बना गये। भवसागर में अजर-अमर नौका छोड़ गये तथा भक्ति की उदय-घाटी से ज्ञान का सूर्य्य उगा गये। कवियों ने ठीक कहा है—

[2] देखकर सहसा हमारी साधना म्रियमाण
जिस कमण्डलु के अमृत ने थे बचाये प्राण।
वह तुम्हारे हाथ में था, साधु तुलसीदास
जी उठी फिर भावना, दृढ़ हो गया विश्वास॥

× × ×

जब तमोमय शून्य में भय-दृश्य थे सब ओर
जब अजानों की घटाएँ कर रही थीं शोर।
जब तुम्हीं ने था किया मानस-सरोज-विकास,
कवि कहें या रवि तुम्हें, हे अमर तुलसीदास॥

× × ×

[3] सुलभ कर गये ब्रह्म का ज्ञान।
तरने को भव-सिन्धु बनाया राम-नाम जलयान॥
दृश्य-अदृश्य, अलौकिक-लौकिक मिले एक ही ठाँव
भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि आ बसे एक ही गाँव॥
स्वार्थ और परमार्थ मिलाया, हुआ सार निस्सार।
अनुभव की कुंजी से खोला अगम मुक्ति का द्वार॥
मोह-शिखर पर फँसे जनों को सीढ़ी है तैयार।
गिरने का है डर न जरा भी, राम-नाम आधार॥
रोम-रोम में रमा तुम्हारे राम-रूप संसार।
भक्ति-प्रेम-अवतार! धन्य है तुमको बारम्बार॥

---

१. 'रामचरितमानस में नारी' नामक लेख भी इसी लेख में सम्मिलित है। वह साप्ताहिक हिन्दी वंगवासी (कलकत्ता) में १९२३ ई० में छपा था।—लेखक

२. मैथिलीशरण गुप्त।

३. बदरीनाथ भट्ट।

वेद-मत सोधि सोधि, देखि कै पुरान सबै संतन असंतन को भेद को बतावतो।
कपटी कपूत कूर कलि के कुचाली लोग कौन राम नाम हू की चरचा चलावतो।
'बेनी कवि' कहै मानो रे प्रमान यही पाहन से हिये में कौन प्रेम उमगावतो।
भारी भवसागर में कैसे जीव होते पार जो पै रामायन ना तुलसी बनावतो॥

ऐसे जगद्वन्द्य महात्मा के विषय में कोई ढिठाई की बात कहना अक्षम्य अपराध है। तब भी मेरे मन में जो चोर है, उसे प्रकट कर देना न्यायोचित है।

जिस नारी-जाति के विषय में शास्त्रकारों की सम्मति है कि जिस घर में नारियों का सत्कार नहीं होता, वह घर चौपट हो जाता है और जहाँ गृह-देवियों की पूजा होती है, वहाँ सभी देवता रमण करने लगते हैं, उसी नारी-जाति के सम्बन्ध में ठौर-ठौर पर गोस्वामीजी ने बड़ी ऊटपटाँग बात कह दी है।

यहाँ लोग कहेंगे कि गोसाईंजी विरागी थे; अतएव स्त्री उनके लिए विष-तुल्य थी। कुछ लोग कहेंगे कि नारियाँ मोह का फन्द फैलाती हैं, जिसमें फँसकर मनुष्य दुःख झेलता है। कल्पना करनेवाले कहते हैं कि नारियाँ इस भवसागर की तरल तरंगें हैं, यदि तरंगें न होतीं तो यह भवसागर सुगमता से पार किया जा सकता था।

तो, क्या तरंगों के विना समुद्र सचमुच समुद्र कहा जायगा? तरंगित समुद्र केवल देखनेवाले के लिए ही सुन्दर मालूम होता है! पार होनेवाले अपना जहाज मजबूत रखें। यदि तूफ़ान आ जाता है तो यह उस अघटित-घटना-पटीयसी प्रकृति का चक्र है, न कि तरंगों का दोष!

किसी व्यक्तिगत बात के लिए सारे समाज पर पंक-प्रक्षेप करना अनुचित है। किसी एक कलहकारिणी या कदाचारिणी को देखकर समस्त स्त्री-समाज को निन्द्य और दूषित करना अन्याय है। एक घोड़ा अगर अड़ैल-बिगड़ैल हो जाय तो घुड़सवारी छोड़ देना ही न्यायानुमोदित नहीं है।

दक्षसुता सती ने भ्रान्तिवश यदि एक बार अपने पति के वचन पर विश्वास न करके असली बात छिपाई तो क्या तब से कोई स्त्री विश्वसनीय नहीं समझी जा सकती? जानकी ने दण्डकारण्य की कुटी में लक्ष्मण से जो कटु वाक्य कहा था, उससे यह न समझना चाहिए कि स्त्रियों का हृदय बड़ा कुटिल होता है।

सती ने कुतूहल-वश पति की बात टाली तथा भयवश बात छिपाई। सीता दूध की जली थीं; अतः मट्ठा फूँकने लगीं। लक्ष्मण पर अविश्वास न था, पर पति-प्रेम की प्रगाढ़ता इतनी प्रौढ़ थी कि लक्ष्मण को राम के पास बरबस प्रेरित किया।

रावण बारम्बार मन्दोदरी को कायर-कामिनी कहकर डाँट देता था। तो क्या मन्दोदरी इतनी कायर थी जो वीरों के सम्मुख लड़ने से पति को मना करती? तब भला उसके गर्भ से मेघनाद-सा तेजस्वी पुत्र कैसे पैदा हुआ?

समझ में नहीं आता कि गँवार (मूर्ख) शूद्र और पशु की श्रेणी में स्त्रियाँ क्यों रखी गईं ? क्या मूर्ख का कुछ महत्त्व नहीं ? मूर्ख विना हास्यरस का आलम्बन कौन बनता ? मूर्ख न होते तो प्रवीणों को कौन पूछता ? शूद्र क्या लताड़ने ही लायक हैं ? कहते हैं, हरएक सवर्ण जाति की खाद शूद्र जाति है। अन्य जातियाँ शाखा-पल्लव-पुष्प-फलादि हैं और शूद्र जड़ (मूल) हैं। पुनः पशु भी क्या पीटने के ही योग्य हैं ? विना पीटे उनसे काम नहीं लिया जा सकता ? मनुष्यता उनपर विजयिनी नहीं बन सकती ? दया उन्हें प्रभावान्वित नहीं कर सकती ?

यदि स्त्रियाँ ताड़ने के योग्य हैं तो लालन के योग्य या पात्र कौन हैं ? तब तो उनका नाम 'ललना' से बदल कर 'ताड़ना' कर देना चाहिए।

समझदारों का तो कहना है कि कुसुमकोमलांगी नारियाँ दूब की साटी से भी छूने योग्य नहीं हैं। किन्तु जिनकी धारणा है कि स्वतंत्र होकर स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं, वे तो सदा स्वार्थ-पूर्ण अधिकार का अंकुश अबलाओं के शीश पर गड़ाये ही रहेंगे। क्या पुरुष स्वतंत्र होकर नहीं बिगड़ते ! इन्द्रियाँ स्वतंत्र होकर नहीं बिगड़तीं ? शायद केवल स्त्रियाँ ही पराधीन रहने के लिए जन्माई गई हैं ! किसी अवस्था में उन्हें परतंत्रता के कारागार से मुक्ति नहीं मिलती ! 'अङ्के गतापि युवती परिरक्षणीया !' क्या वे अपनी रक्षा आप नहीं कर सकतीं ? कर तो जरूर सकती हैं ; पर उन्हें हम वैसी होने दें, तब तो !

श्रद्धेय गोस्वामीजी के मतानुसार स्त्रियाँ कुवासनाओं की पिटारी हैं, कामाग्नि की घृताहुति हैं, ज्ञान-दुर्ग ढहाने के लिए बड़ी-बड़ी तोपें हैं ! भगवान रामचन्द्र के श्रीमुख से देवर्षि नारद के प्रति, गोस्वामीजी कहवाते हैं—

"काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह की धारि।
तिन महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥"

"सुनु मुनि कह पुरान स्रुति संता। मोह बिपिन कहँ नारि बसंता ॥
जप तप नेम जलासय झारी। है ग्रीषम सोखै सब नारी ॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इनहिं हर्षप्रद वर्षा एका ॥
दुर्वासना कुमुद समुदाई। तिन कहँ सरद सदा सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरुह बृन्दा। है हिम तिनहिं देति दुख मन्दा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहै नारि सिसिर रितु पाई ॥
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम तिय कहहिं प्रबीना ॥"

"अवगुनमूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि।"

मर्य्यादापुरुषोत्तम के मुँह से ऐसी कड़वी बातें ! स्त्रियाँ इस प्रसंग को पढ़कर क्या समझती होंगी।

कह सकते हैं कि आदर्श महापुरुष भगवान रामचन्द्र ने नारी की निन्दा इसलिए की है कि फिर कभी नारदजी-सरीखे भजनानन्दी भक्त का मन उस ओर भूलकर भी न जाय ! सही है, लेकिन रिमार्क पास करना खेल नहीं है। जगन्नायक भगवान रामचन्द्र की बात-बात में उच्चात्युच्च आदर्श देखने की हमारी स्वाभाविक रुचि है। पुनः भगवान रामचन्द्र ने अपने प्रिय अनुज से नारियों की अजेयता बतलाई है—

लछुमन देखहु काम अनीका। धरहिं धीर तिनकी जग लीका ॥
एहि के एक परम बल नारी। तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी ॥
लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष बचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि ॥

कामदेव की सेना में नारियाँ ही शस्त्रास्त्र-रूप में प्रयुक्त होती हैं क्या ? आश्चर्य है कि मुनियों ने भी विचार कर लेने के बाद यह बात कही है !

नारी को 'कामिनी' और 'रमणी' कहनेवाले कवि बहुत पहले से उसकी सबसे बड़ी उपयोगिता यही समझते आये हैं कि वह विलासिता की विभूति है। संस्कृत का एक कवि उसे इसी रूप में देखता है—

बाहू द्वौ च मृणालमास्यकमलं लावण्यलीलाजलं
श्रोणी तीर्थशिला च नेत्रशफरी धम्मिल्लशैवालकम्।
कान्तायाः स्तनचक्रवाकयुगलं कन्दर्पबाणानलै—
र्दग्धानामवगाहनाय विधिना रम्यं सरो निर्मितम् ॥

इस उक्ति से गोस्वामीजी की उक्तियाँ मिलती-जुलती-सी हैं। किन्तु उन्होंने नारी की महिमा भी खूब दरसाई है। निन्दा और स्तुति के पलड़े बराबर हो गये हैं। उनपर या उनके आराध्य इष्टदेव पर नारी-जाति के अपमान या तिरस्कार का दोषारोपण करने की प्रवृत्ति मन में नहीं होती ; क्योंकि उन्होंने नारी के कोमल हृदय और पवित्र चरित्र का चित्रण करने में 'रामचरितमानस' में सहृदयता दिखाई है तथा उनके उपास्य देवता ने भी नारी के प्रति हार्दिक प्रेम एवं सम्मान प्रदर्शित करके एक पत्नीव्रत का उच्चादर्श उपस्थित किया है।

विचारणीय बात यह है कि सन्त-असन्त के स्वभाव अथवा लक्षण का वर्णन तुलसीदास ने कई जगह किया है। उसमें सज्जन की स्तुति और दुर्जन की निन्दा स्पष्ट है। संसार में जैसे पुरुष स्तुत्य और निन्द्य—दोनों प्रकार के—हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी। जैसे खल ताडन के योग्य है, वैसे ही कुलटा भी। शास्त्र-पुराणादि में भी देवी पूज्य है, दानवी वध्य। समाज को सुव्यवस्थित और सुखशान्तिपूर्ण बनानेवाली नारी आदरणीय है, मन्थरा और शूर्पणखा तथा ताड़का और पूतना तिरस्करणीय हैं। नर हो या नारी, उसके गुण की प्रशंसा और दोष की निन्दा करना नीति-रीति ही है।

महिलाओं का महत्त्व विश्वविदित है। उनके विना संसार वास्तविक संसार नहीं रह जायगा। वे ही संसार की संचालिका हैं। संसार की शोभा उन्हीं से है। जननी और गृह-लक्ष्मी के रूप में वे जगत् की सम्पोषिका हैं। उन्हें केवल पुरुष की पाशविक वृत्ति की तृप्ति का साधन समझना लज्जा-जनक है! 'विधिप्रपंच गुन अवगुन साना' और 'पाप पुन्य गुन दोषमय विश्व कीन्ह करतार' के अनुसार नर-समाज में जैसे दुःशील व्यक्ति हैं, वैसे ही नारी-समाज में भी दुःशीला हैं। चरित्र की कसौटी पर जाँचकर दोनों के सम्बन्ध में यथायोग्य कहा जा सकता है। गोस्वामीजी ने संभवतः वैसा ही किया है। किन्तु स्पष्ट भेद न बतलाकर सामूहिक ढंग से आक्षेप अथवा दोषारोपण कर डालना ही आपत्तिजनक है। उन्होंने 'मानस' के अरण्यकाण्ड में सती-असती का भेद स्पष्ट किया है। यथास्थान पार्वती और सीता की पतिभक्ति की महत्ता भी दिखलाई है। इतना सब होने पर भी नारी के प्रति व्यक्त किए हुए उनके कुछ विचार सर्वथा अवांछनीय हैं।

कहा जाता है कि गोस्वामीजी वैरागी थे; अतः स्त्रियों से उनको स्वाभाविक घृणा थी। यह भी कहा जाता है कि उनको यदि अपनी पत्नी से फटकार न मिली होती तो वे स्त्रियों से इतनी घृणा नहीं करते। जिसे वे अमृत समझे हुए थे, वह विष निकली! सारी मनःकामनाओं की गठरी लेकर जिसके पास पहुँचे थे, उसने त्योरियाँ बदलकर उनकी आशा को ठुकरा दिया। बस, इसी कारण से उन्हें नारी-जाति पर कुठाराघात करने का चसका लग गया। यह तो वैसा ही हुआ कि चाणक्य के पिता के पैर में कुश गड़ गया तो वे कुशों की जड़ में मट्ठा-गुड़ डालते फिरते थे—कुश का समूल वंश-नाश करने पर तुल गये थे! किन्तु चाणक्य कूटनीतिज्ञ थे, उनकी प्रतिहिंसा में औचित्य है। गोस्वामीजी तो महात्मा थे, उनमें रागद्वेष नहीं सुहाता।

गोस्वामीजी को यह भी तो सोचना चाहिए था कि नारी के उपदेश से ही वे रामभक्त हो सके थे, अतः उसका उपकार मानना उचित है। यदि उनकी पत्नी कड़ी चेतावनी नहीं देती तो क्या वे सुधर सकते थे? उनकी पत्नी ने ही उनकी आँखों में 'निरंजन का अंजन' लगा दिया—उनके जीवन को जगदीश की ज्योति से जगमगा दिया। यदि उनकी पत्नी उनका तिरस्कार करके उन्हें सन्मार्ग नहीं सुझाती तो वे जंगल की तुलसी की तरह कहीं फूलते और कहीं झर जाते। उनके हृदय में जो लौकिक प्रेम की कर्मनाशा बहती थी, उसे उनकी पत्नी ने ही ईश्वरीय प्रेम की गंगा में मिला दिया। इसके लिए नारी को कृतज्ञता के बदले उपेक्षा मिली! यही चिन्त्य है।

विरागियों के समर्थकों से भी निवेदन है कि विरक्त सन्तों को यदि नारी-रूपी शत्रु का भय है तो वे अपनी किलेबंदी दृढ़ करें, अपने हृदय और नेत्रों को इतना निष्कलंक बनावें कि इस संसार की सभी वस्तुएँ उन्हें पवित्र प्रतीत हों और दिव्य दृष्टिगोचर हों। इस मायामय जगत् को भी 'सियाराममय' देखनेवाले की दृष्टि तो निश्चय ही निर्मल होनी चाहिए।

अच्छा तो यह होता कि जिन्हें संसार से सरोकार नहीं है, वे संसार की चीजों पर आक्षेप न करते। किन्तु, गोस्वामीजी तो संसार से विरक्त होने पर भी महाकवि थे, संसार

जिनके लिए हस्तामलक-समान था, और जिन्होंने मानव-समाज, मानव-स्वभाव तथा मानव-हृदय के चित्र अंकित करने में अभूतपूर्व काव्यकौशल प्रदर्शित किया है। तब भी उन्होंने नारी-जाति के प्रति यथोचित सहृदयता दिखाने में कोताही कर दी। कदाचित् पुरुषों का यह सहज स्वभाव ही है कि वे यदि नारियों की प्रशंसा भी करते हैं तो उस प्रशंसा में कामासक्ति की गन्ध रहती ही है।

यथा—"दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुमो वामलोचनाः" ॥
"द्विजराजमुखी मृगराजकटिर्गजराजविराजितमन्दगतिः।
यदि सा वनिता निहिता हृदये क जपः क तपः क समाधिरतिः ॥"

अधिकतर यही देखने में आता है कि पुरुष प्रायः नारी को स्वयं उपभोक्ता बनकर ही देखता है। और, उसके इस प्रकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन होने की संभावना बहुत कम दीख पड़ती है। परन्तु उस पुरुष-वर्ग में गोस्वामीजी की गणना नहीं हो सकती। वे तो पहुँचे हुए महात्मा थे। उनसे मातृजाति के सम्बन्ध में अरुचिकर बातें सुनने की अपेक्षा नहीं; यदि सुन पड़ीं तो यह हृदय-बेधक प्रसंग है।

—त्रैमासिक 'आर्यमहिला' (काशी), भाग ३, अंक १,
वैशाख-आषाढ़, संवत् १९७७ (सन् १९२० ई०)

हिन्दू-परिवार की महिला[1]

'हिन्दू-परिवार की महिला' कहते ही आँखों में एक लज्जावती, प्रसन्न-वदना, वात्सल्य-परायणा, पतिप्राणा, करुणामयी, मधुरभाषिणी, कोमलहृदया, प्रेम-प्रवीणा, कुलीना नारी के दिव्य रूप की ज्योति झलक उठती है। जिसको गृहस्थाश्रम में मंगलानन्दमयी देवी की प्रतिमा देखने की इच्छा हो, जिसको आदर्श पारिवारिक जीवन की झाँकी देखने की लालसा और उत्सुकता हो, वह हिन्दू-परिवार-मण्डल की शान्ति-विधायिनी देवी को देख ले। वह देखेगा कि गृह-साम्राज्य का शासन-सूत्र अपने करकमलों में सावधानता-पूर्वक ग्रहण करके एक सदय-हृदया मानोन्नता महिला बैठी हुई है। उस गृह-प्रबन्ध-पण्डिता एवं सद्गुणमण्डिता गृह-स्वामिनी की अविचल सहिष्णुता, सहृदयता, सहानुभूति, स्नेह-स्निग्धता से सारा परिवार सुखी दृष्टिगोचर होगा।

मैं प्राचीन काल के भारतीय परिवार का दृश्य दिखाना नहीं चाहता। उस समय के हिन्दू-परिवारों में जैसी कला-कुशला सदाचारिणी रमणियाँ थीं, वैसी नारियाँ तो संसार की सर्वापेक्षा समुन्नत जातियों में भी आजकल नहीं मिल सकतीं। मिलना तो दूर की

१. इस लेख का वह अंश काट दिया गया है जो दूसरे महिलोपयोगी लेखों में आ चुका है। दूसरे लेखों से भी कुछ वाक्य इसमें आये हैं, अतः एकाध जगह कुछ परिवर्तित प्रतीत होगा। —लेखक

बात है, सभ्यता-शिखरारूढ जातियों का साम्प्रतिक नारी-समाज प्राचीन भारत की गृह-देवियों के निष्कलंक चरित्र की कल्पना भी नहीं कर सकता।

प्राचीन भारत की गृहलक्ष्मियों की बात जाने दीजिए, वे स्वर्गागार भारत की पुण्य-श्लोक सतियाँ थीं, वे वीर-गर्भा एवं वीर-पत्नियाँ थीं ; आज भी भारत को यदि किसी महान् गौरव पर अभिमान हो सकता है तो केवल हिन्दू-नारी के स्तुत्य सतीत्व पर ही। बुभुक्षित और पीड़ित होकर भी इसने अपनी यह अमूल्य सम्पत्ति बचा रखी है।

रामायण, महाभारत और पुराणेतिहासों में सीता, सावित्री, सुलोचना, सुदक्षिणा, सुभद्रा, सुमित्रा, शकुन्तला, शैव्या, शर्मिष्ठा, देवयानी, देवकी, द्रौपदी, कुन्ती, कौसल्या, अरुन्धती, अनसूया, पन्ना, पद्मिनी, अहल्याबाई, लक्ष्मीबाई, दुर्गावती आदि की कथाएँ तो जगजाहिर हैं। किन्तु आज के कलिकाल में भी भारतीय महिला का आदर्श दर्शनीय और प्रशंसनीय है। एक कृषक-कुटीर में चलिए।

एक क्षुद्र पर्णशाला में कृषक-दम्पती अपना सुखमय जीवन, स्वाभाविक प्रेम के साथ, व्यतीत कर रहे हैं। भगवान् भास्कर की किरणों से रंजित होकर पूर्व दिशा सौभाग्य-शोभा धारण कर रही है। बेचारा किसान, अपने कन्धे पर हल रखकर, दो बलिष्ठ बैलों को आगे करके, सुदूरवर्ती खेत की ओर चला। पर्णकुटी के द्वार पर एक प्रेम-मुग्धा मूर्ति खड़ी है। वह साभिलाष अपने अतृप्त लोचनों को वहाँ तक दौड़ाती है जहाँ तक वह हलधर, सजला-सफला-शस्य-श्यामला वसुन्धरा को पार करके, एक समतल क्षेत्र में पहुँचता है। फिर वह अपने संकीर्ण गृह-प्रांगण में प्रवेश करके प्रातःकाल का कलेवा ले जाने की तैयारी करने लगती है।

अपने घर को स्वच्छ एवं परिष्कृत करने के बाद वह द्वार से बहिर्गत होती है। उसके शीश पर मकई की खीलों की एक पोटली है। हाथ में, तलहथी पर, एक स्वच्छ जलपात्र है। उसके पीछे-पीछे एक अष्टवर्षीया बालिका अपने शीश पर मिट्टी की कलसी लिये जा रही है। लहलहाते और लहराते हुए हरे-भरे खेतों को पार करके वह वहीं जा पहुँचती है, जहाँ उसका प्राणाधार पति श्रम-स्वेद-सिक्त होकर भी भूमि-कर्षण में अनुरक्त है। उसे देखते ही वह क्लान्त कृषक अपने बैलों को लेकर एक निकटस्थ सघन वृक्ष की छाया में चला जाता है। स्वल्प विश्राम के अनन्तर कलेवा करता है। वह बेचारी अपने पति का मुखमंडल निहारती है। पूछती भी है कि दुपहरी में क्या-क्या भोजन करने की रुचि है ?

कलेवा करके वह हलधर जब पुनः अपने काम में लग जाता है, तब कहीं उसकी गृहिणी घर लौट मुखमजन करती है। घर की ओर लौटते समय बीच रास्ते में यदि कोई पुरुष आता हुआ दीख पड़ता है तो दूर से ही वह अलग हटकर सलज्ज भाव से, खड़ी हो जाती है। घर पहुँचकर प्रेम से रसोई बनाती और भोजन-वेला का अतिक्रम होने पर भी पति की बाट जोहती रहती है। मध्याह्नकाल में पति के आते ही पंखा झलती, पैर पखारती, भोजन कराती, तम्बाकू पिलाती, बिस्तर बिछाती, पैर दबाती और आराम करने की सुविधा देती है। भला, किस देश के परिवार की महिला ऐसी पतिभक्ति-परायण है !

हिन्दू-कुल की एक रमणी अभी-अभी अपनी सुख-शय्या से उठी है। उठते ही उसके अर्द्धोन्मीलित लोचन सामने टँगे हुए पतिदेव के चित्र पर अड़ जाते हैं। वह अपने-आपको भूल जाती है। प्रेमपूर्वक करबद्ध नतमस्तक हो ध्यान करती है। एकाएक उसके अधरों पर मन्द मुस्कान की पतली रेखा खिंच जाती है। मुखमण्डल उद्भासित हो उठता है। झटपट वस्त्र सँभालती हुई उठती है। वह सद्यःस्नाता मुक्तकुन्तला शुभ्र-वसना हिन्दू महिला एकाग्र मन से पूर्वाभिमुख ध्यानमग्न हो जगदेक-साक्षी भगवान् सूर्य को अर्घ्य अर्पित कर साञ्जलि प्रार्थना करती है। तदुपरान्त रुचिर अजिर में श्रीतुलसी की आरती उतारकर अव्यक्त भाव से पतिप्रेम पाने का मनोरथ प्रकट करती है। उस समय वह पति के रूप की चिन्ता, उनके मधुर-मनोहर वचनों की स्मृति और उनकी प्रेम-प्रकटी-करण-प्रणाली की कल्पना में लीन हो जाती है। वह पूजा-पाठ भी करती है तो केवल पति के कल्याण के लिए, व्रतोपवास भी करती है तो पति की हितकामना से, दान भी देती है तो पति के मंगल के निमित्त ही। "यत्करोति यदश्नाति तत्करोति तदर्पणम्।" ऐसी अनन्यता किस देश की महिला में है!

हिन्दू-परिवार की महिला जिस समय अन्नपूर्णा का रूप धारण करके पाकशाला में प्रवेश करती है, उस समय वह विविध व्यंजनादि बनाकर तबतक निश्चिन्त नहीं होती जबतक परिवार के सब व्यक्तियों को सोत्साह, सुरुचिकर भोजन द्वारा तृप्त नहीं कर लेती। सारे परिवार के सन्तुष्ट होने से ही वह सन्तुष्ट होती है। भोजनालय से निकलते ही जब सोकर उठे हुए बच्चे को रोते देखती है तब झट उसके पास जाकर गोद में उठा उसे दुलारती और छाती से लगाकर चूमती तथा पुचकारकर, दूध पिलाने लगती है। दन्तावली-किरण-विहीन शिशु-मुख-बालेन्दु को अपने स्पर्श-सुखावह करकमलों से पोंछती-सँवारती है। बच्चे की मनोज्ञता देख-देखकर, पुलकित हो-होकर, न जाने, किस लोकोत्तरानन्द में डूब जाती है। घर में दास-दासियों की बहुलता रहने पर भी पति-सेवा का कार्य स्वयमेव सम्पन्न करके अपना अहोभाग्य मानती है। यदि पति को अर्थ-कष्ट में देखती है तो मीठी-मीठी वाणी से उनका मानसिक क्लेश दूर करती है। अपने परम प्रिय भूषणों तक को पति-कष्ट-निवारणार्थ उत्सर्गीकृत समझती है। ऐसा स्वार्थ-विसर्जन किस देश की महिला में पाया जाता है!

हिन्दू-परिवार के एक घर में एक शय्याग्रस्त रोगी के पास एक परदुःख-कातर-हृदया रमणी सेवा और सान्त्वना की मूर्ति बनी बैठी है। रोगी की शुश्रूषा में संलग्न होकर वह अपनी सुविधाओं को बिल्कुल भूल गई है। बस, दत्तचित्त होकर वह रोगी की देखभाल में लगी हुई है, तन्मयता ने उसे भी रुग्णा बना दिया है। यदि इसी बीच में अतिथि-परिचर्या का सुयोग आ पड़ता है, तो आतिथ्य में भी त्रुटि नहीं होने देती। अनेक कष्ट सहर्ष स्वीकार करके नवागन्तुक का सत्कार करने में लग जाती है। अभ्यागत का स्वागत करने में ही अपना परम सौभाग्य और उसका हर्ष-प्रकाश सुनकर अपने को सफल-श्रम समझती है। क्या ऐसी महिला हिन्दू-परिवार के अतिरिक्त कहीं मिल सकती है!

हिन्दू-महिला के सिवा किस देश की महिला अपने देवर को स्नेह-भाजन समझती है ? किस देश के परिवार में देवर और भाभी का परस्पर मधुर व्यवहार है ? हिन्दू-महिला की तरह किस देश की महिला अपनी ननद को प्यार की नजर से देखती है ? किस देश की भाभी अपनी परिहास-पटु ननद की विनोद-वाणी सुनकर फूले अंग नहीं समाती ? किस देश की महिला अपने पति के पूज्याग्रज को पिता और ससुर के तुल्य समझती है ? अपनी सास को माता मानकर पूजती है ? अपनी सास के स्नेह के सामने निज जननी का स्नेह भुला देती है ?

हिन्दू-परिवार की महिला, बहिन के रूप में भी अतुलनीय है। भारत में जैसा भाई-बहन का स्नेह-स्निग्ध व्यवहार है, वैसा किस देश में है ? जिस समय बहन अपने भाई को देखती है, उसका हृदय स्नेहोच्छ्वास से भर जाता है। वह जिस प्रीति के साथ भाई को खिलाती-पिलाती है, वह अनिर्वचनीय है। वह अपने भाई के पुत्र को भी देख अपने पुत्र के समान स्नेह जताती है। भ्रातृद्वितीया और रक्षाबन्धन के पर्व भारतीय भगिनी के ही महोत्सव-दिवस हैं।

हिन्दू-परिवार को स्वर्गीय सुखों का लीलास्थल बनानेवाली हिन्दू-कुलांगना के अनेक रूपों में पत्नी और जननी का रूप सर्वापेक्षा महान और महिमा-मण्डित है। किन्तु जिस समय हिन्दू-परिवार की विधवा पर दृष्टि पड़ती है, उस समय सारी कामनाओं का भस्म रमाकर एक तरुण तपस्विनी बैठी ध्यान में आती है। उसके चारों ओर सर्वेन्द्रिय-सुखों की चिताग्नि धधक रही है। उसकी लालसा की लोल लहरें किसी किनारे तक नहीं पहुँचने पातीं। उसकी अभिलाषाओं की अल्हड़ आँधी हृदय में हाहाकार मचाकर उद्धत बवण्डर की भाँति उसके मस्तिष्क में चढ़ जाती है। संयमशीलता का कैसा निष्ठुर निदर्शन है ! सहिष्णुता की कैसी गगनाकार सीमा है ! आत्मत्याग का कैसा ज्वलंत आदर्श है ! सामाजिक शाम का कितना भयंकर चित्र है ! हिन्दू-परिवार की यह कलंक-कालिमा कब धुलेगी ?

हिन्दू-परिवार की महिला के लिए यह चिरस्मरणीय है—

> **वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।**
> **पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥**

अर्थात्—विवाह की विधि स्त्रियों के लिए विधि-विहित वैदिक संस्कार है—पति की सेवा ही गुरुकुल का वास है और गृहकार्य्य के लिए अग्नि-सेवन ही अग्निहोत्र है।

—त्रैमासिक 'आर्य्यमहिला' (काशी), भाग ४, संख्या २, वि. सं. १६७८, (सन् १९२१ ई०)

❀

पति और पत्नी का परस्पर सद्भाव[1]

हर्षित होते थे हार गूँथ कर दोनों,
पहनाते थे फिर उन्हें परस्पर दोनों।
पल-पल में फिर वे उन्हें बदल लेते थे,
मिलकर पौधों को कभी सलिल देते थे॥

—'शकुन्तला' (मैथिलीशरण गुप्त)

वे उनको कछु खीन करैं नहिं वे उनसों न उदास करैं चित।
वे मित राखे रहैं उनके 'रघुनाथ' वे राखे रहैं उनकी मित।
प्रेम पगे दोउ आपस में इहि भाँति बरोबर क्यों न बढ़े हित।
वे सुख देत रहैं उनको नित वे सुख देत रहैं उनको नित॥

पति और पत्नी में कुछ भी भेद नहीं है। उनके भौतिक शरीर, केवल प्रत्यक्ष में दो हैं। किन्तु उनके मन, प्राण, हृदय, आत्मा, चिन्ता, विचार, भाव आदि एक ही हैं। दोनों ही का ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक के विना दूसरे की शोभा नहीं हो सकती। पति के विना पत्नीत्व और पत्नी के विना पतित्व का अस्तित्व सुखद नहीं होता।

पति-पत्नी संसार के आधार हैं—परिवार-पारावार में प्रेम-पोत के कर्णधार हैं—समाज-जहाज की पतवार हैं। दोनों का संयोग मणिकाञ्चन-संयोग-सा सुन्दर है। दोनों का स्नेह सोने में सुगंध-सा अलौकिक है। दोनों का मिलन गंगा-सागर-संगम-सा पवित्र है। प्रेम और आनन्द पति-पत्नी-रूपी चने की दो दाल हैं। पति-पत्नी प्रेमानन्दरूपी मधुर-मञ्जुल तण्डुल के संरक्षक 'तुष' हैं। 'तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुलाः।'

पति और पत्नी का पारस्परिक सद्भाव ही समाज में सुख का संचार कर सकता है। जिस परिवार में यह सुख नहीं है, वह समाज में घोर अशान्ति पैदा करता है। पड़ोस के परिवारों की शान्ति भी खतरे में पड़ जाती है। कलह और कल्याण में छत्तीस का नाता है। कलह का कुफल सन्तानों को भी भोगना पड़ता है।

पति और पत्नी में सद्भाव का अभाव होने से समाज में बहुत अनाचार भी फैलता है। किन्तु दोनों में सद्भाव का स्थिर रहना दोनों के शील-स्वभाव पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त एक का दूसरे के प्रेम से परितृप्त होना भी बहुत आवश्यक है। यदि पति के प्रेम से पत्नी सन्तुष्ट नहीं और पत्नी के प्रेम से पति भी सन्तुष्ट नहीं, तो पारिवारिक सुख स्वप्नवत् हो जाता है।

---

१. इस लेख का आधा अंश कट गया है; क्योंकि बहुत-से उद्धरण निकाल दिये गये हैं—वे दूसरे लेखों में आ चुके हैं। 'दाम्पत्य प्रेम' नामक लेख का भी कुछ अंश इसमें मिश्रित है। —लेखक

पति-पत्नी में प्रेम का आदान-प्रदान होने से पृथ्वी पर ही स्वर्ग की सृष्टि होती है। स्वर्ग कहीं और ठौर नहीं है। जहाँ दो निष्कपट हृदयों की स्वच्छन्द सन्धि होती है—जहाँ दो शुद्ध हृदयों के सद्भावों का सम्मिश्रण होता है—वहीं स्वर्ग है।

आजकल अधिकांश ऐसे पति-पत्नी-समुदाय हैं, जिनमें परस्पर सद्भाव यथेष्ट नहीं है। पति का वैमनस्य पत्नी को अखरता है और पत्नी का मनोमालिन्य पति को संतप्त करता है। पत्नी वस्त्राभरणादि की इच्छा करती है तो पति प्रायः पत्नी के सुन्दर रूप और एकान्त प्रेम के लिए लालायित है। जहाँ भोग-विलास की कामना है, जहाँ रूप-यौवन की वासना है, वहाँ सद्भाव स्थिर नहीं रहता। एक ओर विलासिता की तीव्र धारा और दूसरी ओर रूपतृष्णा की तरल तरंग, तब फिर सद्भाव का कमल कहाँ खिले? उसके लिए तो एक शान्त सुस्थिर हृदय-सरोवर चाहिए, जिसमें कुवासना की काई न हो और जिसका विमल विचार-वारि सघन प्रेम-पुरइन से प्रच्छन्न हो।

जब पत्नी अपने पति के प्रेम का दुरुपयोग करती है, उसका अनुचित लाभ उठाने लगती है और परिवार में पति की स्थिति का ध्यान छोड़ देती है, तब पति असमंजस में पड़कर कर्तव्यच्युत हो जाता है अथवा पत्नी का कोपभाजन बनने को बाध्य होता है। अतः प्रेमान्ध होकर अनीति करने से दोनो को बचना चाहिए। दुविधा के प्रसंग में सद्भाव को बचाये रखना ही कर्त्तव्य है।

पति-पत्नी में भेदभाव अथवा दुर्भाव तभी होता है, जब एक के मन में दूसरे के प्रति किसी प्रकार की शंका उत्पन्न हो जाती है। ऐसा होने पर दोनों को आपसी बातचीत से ही शंका मिटा लेनी चाहिए। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि अपने अधिकारों के आगे पत्नी के स्वत्वों को पुरुष कोई चीज ही नहीं समझता। ऐसी ही परिस्थिति में सद्भाव की रक्षा नहीं हो पाती। यदि पति अपनी पत्नी को पैरों की जूती और पत्नी भी पति को वशंवद अथवा किंकर न समझ परस्पर जीवन-संगी बने रहें, तो उनमें सद्भाव सदैव बना रह सकता है। अगर पत्नी के मन में यह भाव है कि 'प्राननाथ तुम बिनु जग माहीं, मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं' तो पति के मन में भी ऐसा भाव रहना उचित है कि 'प्राणानाथ प्रियायाश्च मूढ़ा सादृश्यकारिणः' ताकि उभय दिशि प्रीति-प्रतीति-पूर्वक सद्भाव रह सके। सामाजिक मर्यादा, पारिवारिक शील-शिष्टता और लोकलाज का ध्यान रखते हुए जो पारस्परिक सद्भाव का निर्वाह कर सकते हैं, वे ही आदर्श पति-पत्नी हैं।

> **दोऊ दुहूँ पहिरावत चूनरी दोऊ दुहूँ सिर बाँधत पागें।**
> **दोऊ दुहूँ के सिंगारत अंग गरे लगि दोऊ दुहूँ अनुरागें।**
> **'सम्भु' सनेह समोये रहैं रस के बस ह्वै सिगरी निसि जागें।**
> **दोऊ दुहूँन सों मान करैं पुनि दोऊ दुहूँन मनावन लागें॥**

—त्रैमासिक 'आर्य-महिला' (काशी), वर्ष २, अंक ३, विक्रम-संवत् १९७६; सन् १९१९ ई०

जगत् और जीवन की ज्योत्स्ना—'जाया'

विवाहिता और सन्तानवती स्त्री को 'जाया' कहते हैं। ऐसी स्त्री गृहस्थाश्रम को सुखमय बनाती है। गृहस्थाश्रम ही चारों आश्रमों में श्रेष्ठ है; क्योंकि शेष तीनों का पोषक-प्रतिपालक यही है। अतः इस आश्रम को जो सुख-शान्तिमय बनाती है, उसका महत्त्व सर्वोपरि है।

गृहस्थी को सुव्यवस्थित और आनन्दमय बनाने का श्रेय केवल विवाहिता (धर्मपत्नी) को ही है। उसके शुभागमन से गृहस्थी में लक्ष्मी का निवास होता है। उसके पुत्रवती होने से वंश सनाथ होता है। उसकी सन्तान से कुल-परम्परा कायम रहती है। पितृ-ऋण से उद्धार करानेवाली वही है। देव-ऋण, ऋषि-ऋण, गुरु-ऋण आदि से उद्धार कराने में भी वही सहायक होती है। उसको छोड़कर गृहस्थाश्रम का कोई धर्म या कर्त्तव्य पूरा नहीं हो सकता।

इस जगत् में पुरुष अकेला आता है। उसका जीवन तबतक अधूरा रहता है, जब तक उसे जीवन-संगिनी नहीं मिलती है। इसीलिए परिणीता वधू 'अर्द्धाङ्गिनी' कहलाती है। वह जीवन में खलनेवाली कमी की पूर्ति करके उसे पूर्ण बनाती है। उसके विना जगत् सूना और जीवन नीरस रहता है। सेवा, करुणा, ममता, त्याग, स्नेह आदि से वह जगत् और जीवन की रेखाओं में रंग भरती है।

जाया का सुख जिसे नसीब नहीं, वह सुखी गृहस्थ नहीं। जाया का जो आदर-मान नहीं करता, वह आदर्श गृहस्थ नहीं। जो जाया से प्राप्त होनेवाले सुख को विषय-वासना की तृप्ति मात्र समझता है, जो पति द्वारा जाया के प्रति प्रकट किये गये आदर-मान को स्त्रैण का लक्षण मानता है, वह आर्य-सभ्यता और भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ नहीं जानता। हिन्दू-समाज में तो जाया से ही जहान है।

जाया का आदर-सत्कार हमारे परिवारों में जैसा होना चाहिए, वैसा अब नहीं हो रहा है। इसीलिए हमारी गृहस्थी में यथेच्छ सुख-सुविधा और शान्ति नहीं आ पाती। इसमें जाया का भी दोष हो सकता है; पर उसका भी उत्तरदायित्व पुरुष पर ही है। यदि जाया के अधिकारों की रक्षा और उसकी उमंगों का अध्ययन सावधानता से पुरुष करता रहे तो फिर कहीं शिकायत की गुंजाइश नहीं रह सकती।

जाया वह ज्योत्स्ना—चाँदनी—है, जो निराशा के अन्धकार से भरे संसार में आशा की ज्योति जगाती चलती है, जो अभावों के अन्धकार से भरे इस जीवन में उत्साह की चाँदनी छिटकाती रहती है। इस चाँदनी में जिसके चित्त की चमेली-कली नहीं खिली या नहीं खिलती, उसके लिए यह संसार अन्धकार का पारावार है।

—मासिक 'ज्योत्स्ना' (पटना), वर्ष २, अङ्क १०, सितम्बर १९४९ ई०

❀

परदेसी पति की पत्नी

सरसिज बिनु सर, सर बिनु सरसिज, की सरसिज बिनु सूरे ?
यौवन बिनु तनु, तनु बिनु यौवन, की यौवन पिय दूरे ?
—विद्यापति

'पत्नी' शब्द के उच्चारण मात्र से ही सदाचारी मनुष्य के हृदय में पवित्र प्रेम का उद्गार भर आता है। पत्नी और पति के पारस्परिक प्रेम को 'प्रणय' कहते हैं। किन्तु पति में जो पत्नी की पुनीत प्रीति होती है, उसमें विनिमय का भाव नहीं रहता। पत्नी तो एकान्त रूप से पति को निःस्वार्थ भाव से प्यार करती है। उसे यदि कोई मनोरथ हो भी तो बस यही कि मैं अपने इसी पति की अनुरक्ता पत्नी बनी रहूँ। इसी मनोरथ-रथ पर चढ़कर उसकी जिन्दगी कर्तव्यपथ पर अग्रसर होती रहती है। वह अपने सौभाग्य की भूखी है। उसका पति यदि अंधा है, लँगड़ा है, कोढ़ी है तो बला से है; उसके लिए वही मुबारक रहे। उसका पति यदि निर्धन है तो उसके लिए वही कुबेर है। उसका पति यदि क्रोधी है तो वही उसके लिए द्रौपदी का वल्लभ भीम है।

धर्मराज ने जब सावित्री से कहा कि तू सत्यवान की प्राणवायु के मिलने की आशा छोड़कर चली जा, तब सावित्री ने ठीक कहा कि मैं कहाँ जाऊँ! 'तनु तजि रहै छाँह किमि छेंकी!' 'प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई? कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई!'

फिर सती सीता ने भी स्पष्ट ही कहा कि पितृगृह का वैभव-विलास भोग चुकी हूँ, ससुराल के असीम सुखों का अनुभव कर चुकी हूँ; पर जिसके विना तीनों लोक का राज्य भी विना लोन का व्यंजन है, उसे छोड़कर मेरी गति और कहाँ!

पत्नी का गर्व, सुख, अभिलाष, उसका सब कुछ उसके सौभाग्य के ऊपर निर्भर है। यदि वह सुहागिन बनी रही तो वह इस लोक को स्वर्ग मानती, चाँद को सुधाकर कहती, गंगामाई को चूनरी चढ़ाती और दुःख में भी फूली-फूली फिरती है। यदि उसका सोहाग-बाग हरा-भरा और फूला-फला न रहा तो उसके लिए यह अनोखा संसार उतना ही निस्सार हो जाता है--जितना योगियों के लिए भी नहीं होता। जब उसके प्राणों का प्राण कुछ दिनों के लिए भी बिछुड़नेवाला होता है तो वह अधीर हो उठती है—उसका कलेजा काँपने लगता है, उसकी छाती धड़कने लग जाती है और वह मर्म्माहत होकर चिन्ता से चूर एवं उद्विग्न हो जाती है। यदि अपने पति को दरिद्रता-देवी की कृपा से विदेश जाते देखती है तो सोचती है कि कहाँ ऐसी सम्पदा पाऊँ कि पति को निश्चिन्त बना कर जी जुड़ाऊँ। धन्य पत्नी की अनन्य गति!

एक पत्नी ने अपने प्राणेश के विदेश जाने का हाल सुना। उस दिन से वह खिन्न रहने लगी। उसकी एक सहेली ने उसके प्रियवर पति के पास यह संवाद पहुँचाया—

जा दिन ते चलिवे की चर्चा चलाई तुम ता दिन ते वा के पियराई तन छाई है।
कहै 'मतिराम' छोड़े भूखन बसन पान सखिन सों खेलनि हँसनि बिसराई है।
सोवति न रैन-दिन रोवति रहति बाल बूझे ते कहति सुधि मायके की आई है।

प्रेम-गोपन का यह कैसा निराला ढंग है ! कैसो बेकली है ! कितनी मधुर लज्जा है ! सिर्फ चर्चा चलने पर यह हालत हो जाती है तो फिर आगे की बात कौन कहे ! पुनः—

बात चली चलिबे की जहाँ फिर बात सुहानी ना गात सुहानो।
भूषन साज सकै कहि को 'महाराज' गयो छुटि लाज को बानो।
दो कर मीड़ति है बनिता सुनि प्रीतम को परभात पयानो।
आपने जीवन को लखि अन्त सु आयु की रेख मिटावति मानो॥

हाथ मलमल कर पछताने से कैसा अच्छा भाव प्रकट करती है सो अनुभव करने योग्य है। लाज का बाना छूट गया, पर इससे पतिप्रेम-प्रवीणा पत्नी निर्लज्ज नहीं बनती। वह लज्जा की मर्य्यादा नहीं तोड़ सकती। वह कैसे लाज निबाहती है और कैसे अपनी अत्युत्कट उत्सुकता मिटाने का सुशीलता पूर्वक प्रयत्न करती है, सो द्रष्टव्य है—

भाखै कछू लाज ते न सामुहैं सखीन हूँ सों
राखै नैन सैन ही में मैन ही को साखी है।
भनत 'कबिन्द' गुरु लोगन की पीठ पाछे
डीठ को बचाय चित चिन्ता अभिलाखी है।
घूँघट की ओट दै कै चितवै बदन-चन्द
हितवै हिये को सुन्दरताई सुधा चाखी है।
लाल को गमन सुनि ललकि सुगोरी भोरी
चोरा-चोरी नजर चकोरी कर राखी है॥

लज्जा की मर्य्यादा रखने के साथ ही, पति की परदेश-यात्रा के समय आँसू बहाना अमङ्गलजनक समझकर, वियोग-वेदना के वेग को रोकने का प्रयास करती है—

पी चलिबे की चली चरचा सुनि चन्दमुखी चितई दृग-कोरनि।
मोती-से पोइ रहे अँसुवान गिरैं न फिरैं बरुनीन के कोरनि।

इससे बढ़कर लज्जा निभाना कठिन है। प्रेम अपार है। मङ्गलकामना अलौकिक है। अपने पति की विदेश-यात्रा का संवाद मात्र सुनकर वह सोचती है कि पौ फटते ही मेरा भाग्य फूट जायगा—

बात चली यह है जब ते तब ते चले काम के तीर हजारन।
भूख औ प्यास चली मन ते अँसुआ चले नैननि ते सजि धारन।
'दास' चली कर ते बलया रसना चली लंक ते लागी अबारन।
प्रान के नाथ चले अनते तन ते नहिं प्रान चले केहि कारन॥

जिस दिन पति कहीं दूर जानेवाला होता है, उस दिन पत्नी की कैसी अवस्था रहती है सो कही नहीं जा सकती। वह मन-ही-मन मनाती रहती है—

'बिधना ऐसी रैन कर, भोर कबौ ना होय।'

वह प्रभात की सूचना देनेवाले मुर्गे से भी कहती है—

गन्ता विदेशे पथिकः प्रियो मे त्वद्वाक्य मात्रावधिरेव यात्रा।
अतोऽद्य मौनं भव ताम्रचूड त्वां स्वर्णचूडाख्यमहं वदामि[1]॥

किन्तु प्रेमोन्मत्ता पत्नी अपने पति-प्रेम में लीन होकर चाहे जो कुछ कहे, प्रकृति की प्राचीन प्रणाली पलटे कैसे! कुछ चाँदनी के रहते ही मुर्गे ने आवाज दी। पतिदेव चलने को तैयार थे ही, पत्नी भी बीच-बीच में ऐसे-ऐसे अनेक कातर वाक्य कहती ही जाती थी—

प्रान-पियारे तिहारे चले अबहीं यह चन्द जवाल ह्वै जैहैं।

कहती तो रही वह उस समय भी जब पति ने उससे अपने जाने की चर्चा चलाई थी—

बात कही सु कही चलिबे की न यों कबहूँ बहुरो उर आनबी।
आँसू चले सो चले ही चले अरु भूख हू प्यास चली पहिचानबी।
जो कहुँ जान कहौगे अचानक 'देव जू' यों निहचै मन मानबी।
ढूँढ़िहौ प्यारे कपूर लौं प्रान सो या तन ते उड़ि जात न जानबी॥

किन्तु इतनी कड़ी चेतावनी देने पर भी पति बेचारा लाचार होकर बाहर चला ही जाता है। यद्यपि पति अभाग्यवश वियुक्त होता है, तथापि अपने हृदय पर दाम्पत्य प्रेम की छाप लिये जाता है। वह पत्नी को समझाता जाता है, पर जिसको अविरल प्रेम अचेत किये हुए है, उसे कोई क्या उपदेश दे सकता है। पति निहोरता है कि प्रसन्नता से मुझे जाने दो और पत्नी दुविधा में पड़ी है—'प्रान पड़े साँकरे न हाँ करे न ना करै'। घोर असमंजस में प्रेम को निबाह ले चलना बस पत्नी का ही काम है। तो भी वह विवश हो कहती है—

जौ हौं कहौं रहिए तो प्रभुता प्रगट होति चलन कहौं तौ हित हानि नाहीं सहनो।
भावै सो करहु तौ उदास भाव प्राननाथ साथ लै चलहु कैसे लोक-लाज बहनो।
'केसोदास' की सौं तुम सुनहु छबीले लाल चले ही बनत जो पै नाहीं राज रहनो।
जैसियै सिखाओ सीख तुमहीं सुजान प्रिय तुमहीं चलत मोहिं जैसो कछु कहनो॥

१. ऐ मुर्गा! मेरे प्राणवल्लभ परदेश के पथिक हो रहे हैं। जहाँ तुम्हारी आवाज सुन पड़ी कि इनकी यात्रा आरम्भ हुई। अतः आज मौनी बनो। मैं आज से तुम्हें 'ताम्रचूड' (अरुणशिख) के बदले 'स्वर्णचूड' कहा करूँगी।—ले०

किन्तु इस अनन्त प्रेम के आगे मुग्ध पति की बुद्धि चकरा जाती है। उससे जाते नहीं बनता। वह रुक भी नहीं सकता। पत्नी का मुखड़ा निहारता है जिसपर प्रसन्नता, उदासीनता, चिन्ता, आतुरता आदि भाव आपस में होड़ मचा रहे हैं!

वह फिर अधीर होकर कहने लगती है—

बालम बिदेसे तुम जात हो तो जाउ पर
साँची कहि जाउ कब ऐहो भवन रीते पर।
पहर के भीतर कै दो पहर भीतर ही,
तीसरे पहर कैधों साँझ ही बितीते पर?

भला इस दयनीय उद्विग्नता को बेचारा प्रेम-विह्वल पति कैसे शान्त करे! वह किसी तरह पत्नी को ढाढ़स बँधाता हुआ कहता है—

हम चले जाते हैं तुमसे दूर जो,
प्राण को रखते तुम्हारे साथ हैं।
देह भर बिछुड़ी अगर तो क्या हुआ,
हृदय जब हरदम तुम्हारे पास है॥
हृदय हमने दान तुमको कर दिया,
प्यार करना, यत्न से रखना इसे।
मन को बहलाना खिलौना जानकर,
स्वप्न में भी तोड़ना तुम मत इसे॥

यह सुनकर पत्नी अपनी व्याकुलता व्यक्त करती हुई रोने लगती है। फिर रुँधे कण्ठ से कहती है—

परदेस तुम्हें चलिबो अबहीं बिरहागिनि जागी हमारे हिये।
कहो क्यों हमसों रहि जैहैं बिना इन आँखिन रावरो रूप पिये।
कितो हीरन ही के हरा सुख पैहौं कितौ मुकुतान की माल दिये।
पिय दीजिए ऐसी निसानी कछू जो तिहारे बिछोह में जोहि जियें॥

आखिर पति की बुद्धि भी कुण्ठित हो जाती है। उसका कण्ठ नहीं खुलता। पत्नी समझ जाती है कि पति का परदेश-गमन अनिवार्य्य है। किसी तरह धीरज धरकर वह कल्याण-कामना के साथ पति को विदा करती है—

हाय न जाय बिथा कहि बाल की आह कै धाई गरे लपटाई।

पति के चले जाने पर पत्नी पहले के लिखे प्रेमपत्रों को पढ़-पढ़कर मन बहलाती है। उन्हें वह बार-बार पढ़ती और भावावेश में छाती से लगाती है। वह सदा खिन्न और अन्यमनस्का रहती है। उसकी कारुणिक दशा अकथनीय है।

जो पै प्रानप्यारे परदेस को पधारे तातें बिरह तें भई ऐसी ता तिय की गति है।
करि कर उपर कपोलहिं कमल-नैनी 'सेनापति' अनमनि बैठिये रहति है।
कागहिं उड़ावै कबौं कबौं करै सगुनौती कबौं बैठि अवधि के बासर गिनति है।
पढ़ी-पढ़ी पाती कबौं फेरिकै पढ़ति कबौं पीतम के चित्र में स्वरूप निरखति है।

जब उसको बहुत उदास देखकर उसकी सखियाँ समझाती हैं, तब वह मौन रहकर केवल आँसू बहाती है। कभी-कभी अपनी सहेलियों से बिलख कर कहती भी है—

मेलि गरे मृदुबेलि-सी बाँहन कौनसी चाहन छाँहन डोलिहौं।
कासों सहास बिलास 'ममारख' ही के हुलासनि सों हँसि बोलिहौं।
स्रौनन प्याइहौं कौन सुधारस कासों व्यथा की कथा गढ़ि छोलिहौं।
प्यारे बिना हौं कहाँ लखिहौं सखियाँ दुखियाँ अँखियाँ जब खोलिहौं॥

जब सखियाँ सान्त्वना दे चुकती हैं, तब किसी तरह मन्द स्वर में कह देती है—

मन आपनो पास नहीं सजनी, तुम काको कहा समुझावति हो?

सखी-सहेलियाँ उसके जीवन की आशा छोड़ बैठी हैं; फिर भी स्नेहवश पूछती हैं कि आखिर दिन-दिन देह गलाती जाओगी तो कैसे जीती रहोगी? तब वह आश्वासनमात्र देती है—

सखि जा दिन ते परदेस गये पिय ता दिन ते तन छीजतु है।
निसिबासर भौन सुहात नहीं सुधि आये उसासनि लीजतु है।
अन्न और बनाव बनै न कछू अनुभौ इतनो सुख कीजतु है।
उनकी अनुहारि निहारि सखी ननदी मुख देखि के जीजतु है॥

कितना गम्भीर अनुराग है! प्यारे की समता करनेवाली कोई चीज अगर नजरों तले पड़ गई तो बस प्रेम के उज्ज्वल दर्पण में प्यारे की झलक मिल गई।

जब प्रेम-विह्वला पत्नी अपने परदेशी पति को प्रेम-पत्र लिखना चाहती है तब अनेक प्रकार के भाव उसके हृदय को मथने लगते हैं। वह अपने हृदय के उष्णतम उच्छ्वासों को रोक नहीं पाती, वह पति को मन की बात लिखना चाहती है; पर इच्छा रहते हुए भी चिट्ठी

लिखी नहीं जाती। तन-मन की दुर्बलता उसकी लालसा पूरी होने नहीं देती, पत्र-लेखन के प्रयत्न में असफल रहने से उसकी मानसिक स्थिति विशेष दयनीय हो जाती है—

आहि कै कराहि काँपि कृस तन बैठी आइ
चाहति सखी सों कहिबैको पै न कहि जाय।
फेर मसि-भाजन मँगायो लिखिबे को कछू
चाहत कलम गहिबे को प न गहि जाय।
एते में उमंगि अँसुवान को प्रवाह आयो
चाहति है थाह लहिबैको पै न लहि जाय।
दहि जाय गात बात बूझे ते न कहि जाय
बहि जाय कागद कलम हाथ रहि जाय॥

खैर, तन-मन की सुधि न रहने पर भी वह अनेक प्रेम-पोषक सम्बोधनों के साथ अपने पति को पत्र लिखती है। परदेश जाते समय पति ने जो आश्वासन दिये थे, उनका स्मरण कराती है। व्यंग्यों और उपालम्भों से भी काम लेती है। नम्रता, दीनता और आतुरता तो दिखाती ही है; पर कोई स्वार्थ की बात नहीं लिखती। पिछले प्यार-दुलार की याद दिलाती है—

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि नेह को तोरियै जू।
निरधार अधार दै धार मझार दई गहि बाँह न बोरियै जू।
'घनआनँद' आपने चातक को गुन बाँधि कै मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास मैं क्यों विष घोरियै जू॥

ऐसी प्रेम पत्रिका उसी पति के पास लिखी जाती है जो परदेश में जाकर अपनी प्रिया को बिसार देता है अथवा अत्यन्त कार्य्य-व्यस्त होकर सन्तोषदायिनी रीति से नित्य प्रति प्रेमपत्र नहीं लिख सकता है। किन्तु जो साध्वी पत्नी है, वह तो अपने पति द्वारा बिसराई जाने पर भी पति की हितैषणा में ही रत रहती है। वह अपने प्रीतम को ऐसा ही पत्र भेजती है जिससे परदेशी उसकी पति-भक्ति पर मुग्ध हो रहे—

आये सुख पावती न जाये सुख पावती हैं
हिय की न बात कछु 'सेवक' जतावती।
कहूँ रहौ कान्ह जू सुहागिन कहावती हैं
चाहती हैं यही और बात न बनावती।
जाके सुख पाये सुख पावो तुम प्यारे लाल
वाहू सुख दीजिए न या मैं भरमावती।
जामैं सुख पावो तुम सोई हम करैं यातें
हम तो तिहारे सुख पाये सुख पावती॥

उदारता की सीमा है। पति-प्रेम की पराकाष्ठा है। ऐसा निष्काम प्रेम आर्य-महिलाओं के हृदय के अतिरिक्त और कहाँ टिक सकता है? ऐसी अनन्य पतिपरायणता का उदाहरण किसी और देश की पत्नियों में ढूँढ़ने से भी मिल सकता है! केवल आर्य्यमहिलाओं में ही ऐसी पत्नियाँ प्रादुर्भूत होती हैं।

भारतीय पत्नी अपने पतिदेव का शुभ नाम अपने मुख से नहीं कहती। प्रभुजी, कन्हैया, राजा, स्वामी, सनेही आदि सुन्दर नामों से पति को पुकारती है। पत्र में सम्बोधन तो सैकड़ों तरह के रहते हैं। जब अपने प्रेमपत्रों का सन्तोषप्रद उत्तर उसे नहीं मिलता, तब वह चिन्तित होकर घबराती है। नाना प्रकार की आशंकाएँ उसके मन को घेर लेती हैं। प्रेमी के विषय में भयंकर भावनाएँ प्रतिपल जागती हैं। वह पत्रवाहक का पथ देखती रहती है। किन्तु उत्सुकता-पूर्वक पत्र की प्रतीक्षा में बैठी हुई प्रेमिका पत्नी की आशा जब पूरी होती है तब जमीन पर उसके पाँव नहीं पड़ते। पत्र पाते ही उसका कलेजा उछलने लगता है। वह काँपते हाथों से पत्र को चूमती और छाती से लगाती है—

कोऊ न आयो उहाँ ते सखी री जहाँ 'मुरलीधर' प्रानपियारे।
याही अँदेसे में बैठी हुती उहि देस के धावन पौरि पुकारे।
पाती दई धरि छाती लई दरकी अँगिया उर आनँद भारे।
पूछन को पिय की कुसलात मनो हिय द्वार किंवार उघारे॥

जब कोई पत्नी हताश हो जाती है कि अब जीते-जी प्राणपति नहीं आवेंगे या प्रेमपत्र नहीं भेजेंगे, तब अपने प्रेमी को अन्तिम पत्र में जीवन की अवधि निश्चित करके लिख देती है कि अमुक तिथि तक दर्शन न मिला या पत्र नहीं आया तो, मैं न बचूँगी। उसका यह संकल्प मिथ्या नहीं होता। अग्निपरीक्षा में वह सदा उत्तीर्ण होती आई है। घुल-घुल कर प्रेम की बलिवेदी पर निछावर हो जाना उसकी परम्परा है। एक प्रेमोन्मादिनी अपनी सखियों से यह कहकर प्राण छोड़ती है कि मेरे मरने पर यदि पत्र आवे तो—

तजि आगि लिखी गुनि प्रीतम की धरि दीजियो पाती मेरे मुख में!

भारतीय पत्नी के प्रेम की गहराई थाहना कठिन है। वह जानती और मानती है कि निश्चित अवधि से अधिक जीती रहूँगी तो पति प्रेम की मर्य्यादा न रख सकूँगी! मर जाने पर भी उसकी बार-बार दुहराई हुई दर्शनोत्कण्ठा व्यक्त होती है—

बिना प्रानप्यारे भये दरस तिहारे हाय मरे हू पै अँखियाँ खुली ही रह जायँगी।

विरहिणी पत्नी के लिए शुभ शकुनों का भी बड़ा महत्त्व है। शकुनों की सचाई में उसका दृढ़ विश्वास होता है। जब उसे शकुनों से आभास मिलता है कि मेरे पति आ रहे होंगे तब वह अपने हृदय में नाना भाँति की सरस अभिलाषाएँ पालती है और प्रति क्षण उल्लास से भर उठती है। शकुनों के लक्षण पहचानने में वह चतुर होती है। दो प्रेमासक्त हृदयों के स्नेहसूत्र की लम्बाई असीम होती है। वह शकुन का फल विचारती और सखियों से कहती है—

आजु आली माथे ते सु बेंदी गिरै बार-बार मुख पर मोतिन की लरी लरकति है।
धरत ही पग कील चूरे की निकसि जात जब तब गाँठि जूरे हू की भरकति है।

जानि ना परत 'प्रहलाद' परदेस प्रिय उससि उरोजन सों आँगी दरकति है।
तनी तरकति कर चूरी चरकति अंग सारी सरकति आँख बाँई फरकति है॥

बाईं आँख को प्रेमानुरक्ता की ओर से शुभ सूचना के लिए पुरस्कार भी घोषित है—

सीतल समीर ढार मंजन कै घनसार अमल अँगौछे आछे मन से सुधारिहौं।
देहौं ना पलक एक लागन पलक पर मिलि अभिराम आछी तपनि उतारिहौं।
कहत 'प्रवीनराय' आपनी न ठौर पाय सुन बाम नैन या बचन प्रतिपारिहौं।
जबहीं मिलेंगे मोहि इन्द्रजीत प्रानप्यारे, दाहिनो नयन मूँदि तोही सों निहारिहौं॥

इतना ही नहीं, वह अपनी बाईं भुजा से भी कह देती है कि तुम्हारी फड़कन के फल-स्वरूप यदि प्राणेश्वर से मिलन हुआ —

तौ तोहीं सों भेंटिहौं, राखि दाहिनी दूरि।

वह अपने प्राणाधीश के शुभागमन की सूचना देनेवाले कौवे से भी कहती है—

पैंजनी गढ़ाइ चोंच सोने सों मढ़ाइ देहौं,
कर पर लाइ पर रुचि सो सुधारिहौं।
कहै कवि 'तोष' छिन अटक न लैहौं कबौं,
कंचन कटोरे अटा खीर भरि धरिहौं।
एरे कारे काग तेरे सगुन सँजोग आज,
मेरे पति आवैं तो बचन ते न टरिहौं।
करती करार तौन पहिले करौंगी सब,
अपने पिया को फिरि पाछे अंक भरिहौं॥

कौवे को तो ऐसा अच्छा इनाम मिलता है; पर यदि कोई सखी सच्ची बात* भी कहती है तो मुस्कुराकर उसके कोमल कपोल पर एक मीठी चपत जड़ देती है।

सौभाग्यवती को विरह में भी कभी-कभी चाटूक्तियों से सुखानुभूति हो ही जाती है। सच है, यदि पत्नी का सौभाग्य बना हुआ है तो हर तरह के दुःख में वह धैर्य से काम ले सकती है।†

—त्रैमासिक 'आर्यमहिला' (काशी), भाग २, संख्या ४; विक्रम-संवत् १९७६, सन् १९१९ ई०।

*कलय वलयं धम्मिल्लेऽस्मिन्निवेशय मल्लिकां रचय सिचयं मुक्ताहारं विभूषय सत्वरम्।
मृगमदमसीपत्रालेपं कुरुष्व कपोलयोः सहचरि समायातः प्रातः स ते हृदयप्रियः।

† इस लेख में 'दाम्पत्य प्रेम' (सन् १९३० ई०) नामक लेख भी सम्मिलित कर दिया गया है। दोनों लेखों में जो समानता थी, वह हटा दी गई है, पर दूसरे लेख का आवश्यक अंश खपा देने से प्रस्तुत लेख के कुछ स्थल थोड़ा परिवर्तित प्रतीत होंगे।—लेखक

ग्रामीण स्त्रियों की दशा*

ग्रामप्रधान देश भारत के गाँवों की दशा शोचनीय होने से ही देश की दशा दयनीय हो गई है। गाँवों की दुर्दशा के कारणों में सबसे प्रधान है—ग्रामीण स्त्रियों की दुर्गति। यदि गाँवों में रहनेवाली हमारी माताएँ स्वस्थ, सुशिक्षित और स्वतन्त्र हों तो उनकी सन्तानें कहलानेवाले हम भी वैसे ही होंगे।

नगरों में जो लोग रहते हैं, उनमें अधिकांश ग्रामवासी ही हैं। किन्तु ग्रामवासी भी नागरिक बनकर अपने गाँवों को भूल जाते हैं। अनेक ग्रामवासी सज्जन नगरों में बहुत अधिक धन कमाते हैं और नगरों की संस्थाओं को दान देते हैं; पर उन्हें यह नहीं सूझता कि लोक-हितकारिणी संस्थाओं की सबसे अधिक आवश्यकता गाँवों में ही है। ग्रामीण धनी भी नगरों में बसकर गाँवों की सर्वथा उपेक्षा करते हैं। गाँव के लोगों की शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिए बहुत ही कम धनी अपनी थैली खोलते हैं। कहीं-कहीं गाँवों में ही रहनेवाले धनी केवल अपना परलोक सँवारने के लिए कुँआ तालाब बनवा देते हैं। लोकोपकार की भावना बहुत ही कम लोगों में देखी जाती है।

देहात की असंख्य स्त्रियाँ प्रसव-वेदना से मर जाती हैं। असंख्य विधवाएँ विधर्मियों द्वारा बहकाई और भगाई जाती हैं। असंख्य माताएँ प्रसव-काल में या रोगी होने पर, उचित देखभाल और सेवा-शुश्रूषा न होने के कारण, मर जाती हैं। पर कोई उनकी खोज-खबर लेनेवाला नहीं है। महिलाओं के हित के लिए आन्दोलन का ढोल पीटने-वाली अनेक संस्थाएँ देश में हैं; पर किसी की ओर से गाँवों में कोई काम होता नहीं दीख पड़ता। गाँवों में घूम-घूमकर स्त्रियों की वास्तविक स्थिति की जाँच करने, उन्हें उपदेश और शिक्षा देने, उनके अभाव-अभियोगों को संसार के सामने रखने तथा उन्हें सुमार्ग सुझाने के लिए कोई शिक्षिता महिला देहात में नहीं जाती। नारी-जाति की सेवा करने की इच्छा रखनेवाली पढ़ी-लिखी स्त्रियों को गाँवों में जाना चाहिए।

देहात के पुरुषों ने नारी-जाति का महत्त्व और गौरव अच्छी तरह नहीं समझा है। देहाती पुरुष अपनी स्त्रियों को बाहरी हवा से बचाने में बड़े सावधान रहते हैं। वे नहीं चाहते कि सुधार के आन्दोलन की हवा उनके घरों में पहुँचे। देहाती स्त्रियाँ बेचारी नाना प्रकार की जकड़बन्दियों से कसी हुई हैं। उनकी लाचारी और उनकी पराधीनता अत्यन्त दयनीय है।

गाँवों की स्त्रियों में अविद्या का घोर अन्धकार छाया हुआ है। इसलिए सबसे पहले उनमें महिलोपयोगी शिक्षा के निरन्तर प्रचार की आवश्यकता है। देश में आदर्श स्त्री-शिक्षा के लिए जो दो-चार प्रसिद्ध संस्थाएँ हैं, उनमें गाँवों की लड़कियाँ, कई अनिवार्य कारणों

* इस लेख में ग्रामीण स्त्रियों से सम्बन्ध रखनेवाली बातों को छोड़कर ग्रामहितविषयक अन्यान्य बातें काट दी गई हैं; क्योंकि वे पहले के ग्रामोपयोगी लेखों में आ चुकी हैं। —लेखक

से, नहीं पहुँच पातीं। अधिकतर ग्रामीण बालिकाओं के अभिभावक, आर्थिक कठिनाइयों के कारण, अपनी कन्याओं को आजकल की महँगी शिक्षा नहीं दिला पाते। गाँवों के कुछ धनी लोग अपनी कन्याओं को, रुपये के बल पर, बाहर भेजकर ऊँची शिक्षा दिलाते हैं; पर वे जब शिक्षिता होकर गाँव में आती हैं तब ग्रामीण स्त्रियों से उनके स्वभाव और रहन-सहन का मेल नहीं खाता तथा वे अपनी देहाती बहनों की दशा पर कुछ भी ध्यान नहीं देतीं। ठाट-बाट से रहनेवाली पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ तो देहात की गरीब और मैली-कुचैली स्त्रियों को देखकर घृणा करती हैं—बहुत भड़कती हैं। आज तक कोई सभ्य और भद्र महिला घर-घर में घूमकर देहाती स्त्रियों को यह भी सिखाने नहीं गई है कि शरीर और वस्त्र को कैसे और क्यों स्वच्छ रखना चाहिए तथा नारी-जीवन को सुख-शान्तिमय बनाने के लिए आचार विचार कैसा होना चाहिए।

स्त्रियों पर आदर्श महिलाओं का ही प्रभाव पड़ सकता है। इस समय कुछ ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता है जो गाँवों की स्त्रियों में शिक्षा और सभ्यता का प्रसार करने के लिए सेवाभाव-परायणा उपदेशिकाओं को तैयार करके उन्हें गाँवों में घूमने के लिए भेजे। जिन शिक्षिता स्त्रियों को निश्चिन्ततापूर्वक देशसेवा करने का उत्साह और अवसर हो, वे शहरों से निकलकर गाँवों में जायँ, वहाँ की स्त्रियों को सच्ची गृहिणी और आदर्श माता बनने की शिक्षा दें, उनके शारीरिक और मानसिक विकास में सहायता पहुँचावें, उनकी आर्थिक दशा के सुधारने में भी योगदान करें। केवल नगरों या प्रधान केन्द्रों में सभा-सम्मेलन करके व्याख्यान देने और प्रस्ताव पास करने तथा अखबारों में लेख लिखने या आन्दोलन मचाने से देहाती स्त्रियों का यथेष्ट हितसाधन नहीं हो सकता।

अधिकांश ग्रामीण स्त्रियाँ यह भी नहीं जानतीं कि नारी-समाज के सुधार और उत्थान के लिए देश में स्त्रियों की ओर से भी कोई उद्योग या आन्दोलन होता है। अखबारी दुनिया से वे कोसों दूर हैं। कुछ दो-चार सौ पढ़ी-लिखी और सम्पन्न घरानों की स्त्रियाँ कहीं किसी नगर में कोई बड़ी सभा करके चाहें कि ग्रामीण स्त्रियों का कल्याण हो जाय; तो यह सर्वथा असम्भव है।

पाश्चात्य जगत की स्त्रियों का आदर्श सिखाने के लिए यदि कोई शिक्षिता महिला गाँवों में जायगी तो उसे तिरस्कृत एवं हताश होना पड़ेगा। वहाँ उच्छृंखलता, स्वच्छन्दता और अमर्यादित स्वतन्त्रता का सन्देश सुनाने जो देवी जायगी, वह ग्रामीण स्त्रियों का महान् अपकार करेगी। ग्रामीण सद्गृहस्थ यदि भड़क जायँगे तो कहीं भी सफलता की आशा नहीं की जा सकती। समाज में विद्रोह की भावना फैलाने के लिए नारी-समाज के अखंड अधिकारों की आवाज उठाना शहरों में भले ही सम्भव हो, पर गाँवों में अभी संभव नहीं है, वहाँ फिर दूसरे ही उपद्रव खड़े हो जायँगे। गाँवों की स्त्रियों में सेवा और प्रेम का सुकोमल सन्देश ही कुछ काम कर सकता है, उग्र क्रान्तिकारी विचार वहाँ कृतकार्य नहीं हो सकते।

ग्रामीण स्त्रियों को स्वयंवर की प्रथा या तलाक की रीति का ज्ञान कराने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें तो ऐसी मीठी सलाह दी जाय जिससे वे अपने घर-परिवार को सुव्यव-

स्थित और सुख-शान्ति-पूर्ण बना सकें, घरेलू जीवन को आनन्दमय रख सकें, अपने गृह-प्रबन्ध-कौशल से सामाजिक जीवन में सुन्दरता एवं सुविधा ला सकें। उनके लिए ऐसी अध्यापिका और उपदेशिका चाहिए जो उन्हें सच्ची आर्यमहिला बना सके। उन्हें भारतीय नारी के ऊँचे आदर्श का ज्ञान करा सके, उन्हें युगधर्म की पुकार सुनाकर ऐसा संयत मार्ग दिखा सके जिससे उनकी सामाजिक स्थिति संकटापन्न न हो।

शिक्षा के अनुराग और सुप्रबन्ध की कमी तथा स्वास्थ्यरक्षा की भावना के अभाव से ग्रामीण स्त्रियाँ दुर्दशाग्रस्त हो रही हैं। उनके रक्षक पुरुष भी इन अभावों के शिकार हैं; इसलिए वे और भी विवश हैं। परदा-प्रथा में यद्यपि कुछ शिथिलता आ रही है, तथापि गाँवों में अभी तक इस कुप्रथा की प्रबलता देखी जाती है। इसके कारण उच्च जाति की कुलवधुओं का स्वास्थ्य दिन-दिन भ्रष्ट होता जा रहा है। निम्न जाति के गरीब लोगों की स्त्रियाँ अनेक असुविधाओं और आर्थिक कठिनाइयों के कारण स्वास्थ्य-सम्बन्धी सहज नियमों का भी पालन नहीं कर पातीं। गाँवों के अधिकांश घरों या परिवारों में कुँआ नहीं है। बड़े घर की स्त्रियाँ कुँओं पर बाहर नहीं जा सकतीं। उन्हें एक प्रकार से तौलकर पानी मिलता है। भला काक-स्नान से स्वास्थ्यरक्षा कैसे हो सकती है!

ग्रामीण पुरुषों को घर में अन्न और घी-दूध के प्रबन्ध की चिन्ता रहती है; पर यह खयाल नहीं रहता कि स्त्रियों के लिए रोज अच्छी दाँतून और शारीरिक स्वच्छता के लिए काफी जल की भी जरूरत है। जिनके पुरुष कमासुत हैं, जिनके घर में अन्न-वस्त्र का अभाव नहीं है, उनको भी खूब सफाई से रहने की सुविधा नहीं मिलती। ग्रामीण पुरुष अपना आराम खूब चाहते हैं, स्त्रियों के सुख-सुबीते का ध्यान उन्हें कम रहता है।

स्त्रियों के बीमार होने पर उनकी देख-रेख में भी ढील की जाती है। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति का भी विशेष ध्यान नहीं रखा जाता। अनेक स्त्रियाँ शुद्ध उन्मुक्त वायु न मिलने के कारण अनेक प्रकार के रोगों का शिकार हो जाती हैं। परिवार में उत्तम खाद्य पदार्थ भी पुरुषों के ही बाँटे पड़ता है, स्त्रियाँ न स्वयं अपने भोजन की पौष्टिकता पर ध्यान देती हैं और न पुरुष-वर्ग ही इसका खयाल रखता है। परिणाम इसका बड़ा भयंकर होता है, पर सामाजिक दुःखों के मूल कारणों पर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। छोटी-से-छोटी बातों पर ध्यान न देने से बड़ी-से-बड़ी विघ्न-बाधाएँ और विपत्तियाँ उठ खड़ी होती हैं। छोटे-मोटे अभावों की उपेक्षा से व्यापक अभावों और संकटों की सृष्टि होती है।

यदि ग्रामीण स्त्रियों को तुलसीकृत रामायण पढ़ने और समझने की भी शिक्षा मिल जाय तो वे सामाजिक अशान्ति मिटाने में समर्थ हो सकती हैं। किन्तु भारतीय नारी-समाज को जगाने का बीड़ा ऐसी देवियों ने उठाया है जो आधुनिक शिक्षा से प्रभावित हैं। समाज-सुधार के कामों में लगी हुई शिक्षिता स्त्रियाँ ग्रामीण नारियों की वस्तुस्थिति से ठीक-ठीक परिचित नहीं हैं और दूर-ही-दूर रहकर परिचित हो भी नहीं सकतीं।

ग्रामीण नारियों की दुरवस्था के मुख्य कारणों की जाँच-पड़ताल और छानबीन करने के लिए कभी किसी संस्था ने भी उद्योग नहीं किया। कहीं किसी परिवार में ईर्ष्या-द्वेषवश

कलह-कोलाहल का बोलबाला है, कहीं किसी घराने में कठोर एकतंत्र शासन का घोर आतंक है, कहीं स्त्रियों के सुख-दुःख की निन्दनीय उपेक्षा हो रही है, कहीं क्रूर सास की सताई बेचारी बहू कराह रही है, कहीं लम्पटों की विषाक्त दृष्टि से असहाय युवती विधवाएँ दावानल-ग्रस्त मृगी-सी कातर हो रही हैं, कहीं इन्द्रीय-लोलुप पुरुषों के पाशविक व्यवहार से सुशीला रमणियाँ घुल-घुलकर मौत की घड़ियाँ गिन रही हैं। ऐसी स्त्रियों के लिए सहानुभूति और सान्त्वना के दो शब्द भी दुर्लभ हैं।

ग्रामीण परिवारों में स्त्रियों की सत्ता और महत्ता समझानेवाले समझदार पुरुष बहुत ही कम हैं। इसलिए गाँवों में ऐसे आदर्श परिवार इने-गिने हैं जिनमें कोई स्त्री दुखिया नहीं है, अन्यथा प्रत्येक परिवार में किसी-न-किसी कारण कोई-न-कोई दुखिया अभागिनी अवश्य है। किसीका स्वास्थ्य चिन्ताजनक है, किसीको सन्तोषप्रद भोजन नहीं मिलता, किसी को चितचाही चीजें नसीब नहीं होतीं, किसी के मनोरथ छूछे पड़े हैं, कोई नाना जटिल बंधनों में जकड़ी हुई है, कोई सम्पन्न घराने में रहकर भी पैसे-कपड़े के लिए तरसती है, कोई घर-भर के व्यंग्यवाणों से दिन-रात घायल होती रहती है, कोई अहर्निश परिश्रम करते रहने पर भी प्रशंसा एवं सहानुभूति नहीं पाती, कोई बात-बात में दुतकारी-फटकारी जाती है, किसी का शारीरिक दुःख कोरा पाखण्ड समझा जाता है, किसी के मानसिक दुःख में ताने के तीर चुभाये जाते हैं, किसी की सहज ही कुटम्मस-मरम्मत होती है। समाज के हृदयहीन व्यवहार से कितनी ही ग्रामीण स्त्रियाँ कुढ़-कुढ़कर घिस-पिस जाती हैं। उनका रूप-यौवन टिकने नहीं पाता। उन्हें जीवन के सुखों का आभास भी नहीं मिल पाता। यह स्थिति सर्वथा असह्य है।

ग्रामीण स्त्रियों की हीन दशा का प्रभाव ग्रामीण बालक-बालिकाओं पर प्रत्यक्ष दीख पड़ता है। माताओं के अनुरूप ही सन्तानों का होना अनिवार्य है। जब माताओं में आलस्य और गन्दगी है, तब भला सन्तान में क्यों न हो? जबतक माताएँ स्वयं स्वच्छता के नियम और सामाजिक शिष्टाचार न जानेंगी, तबतक उनकी सन्तान कैसे जान सकती है। माता की गोद ही सबसे अच्छी पाठशाला है। माता के स्नेह से सिक्त घर ही सबसे बड़ा विश्वविद्यालय है।

देहात में आजकल कुछ सुशिक्षित जनों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ रही है। पर उनमें भी भारतीय सभ्यता के अनुकूल आचार-विचार का अभाव स्पष्ट झलकता है। इसका मुख्य कारण यही है कि स्कूल-कालेजों में तो ग्रामीण समाज में खपने योग्य शिक्षा मिलती ही नहीं, बचपन में माता द्वारा भी यथोचित सीख नहीं मिल पाती। इसलिए ग्रामीण समाज में सांस्कृतिक विकास नहीं आने पाता।

ग्रामीण स्त्रियों की अधिकांश बुराइयाँ और पीड़ाएँ तथा असुविधाएँ उन्हीं की अज्ञता के कारण उत्पन्न हुई हैं। जबतक समुचित शिक्षादान से उनका मोहान्धकार दूर नहीं किया जायगा, तबतक उनकी दशा सुधर नहीं सकती। किन्तु उन्हें ज्ञान का प्रकाश कौन देगा? अखबारों की उन तक पहुँच नहीं। जोशीले व्याख्यान देनेवाली महिलाएँ उनके बीच जाने का कष्ट झेल नहीं सकतीं। तब फिर उनका उद्धारक भगवान ही है।

ग्रामीण स्त्रियों की हेय दशा हमारी राष्ट्रीय उन्नति में बाधक है। गाँवों में रहने वाले और गाँवों से आर्थिक लाभ का सम्बन्ध रखनेवाले धनाढ्य व्यक्तियों को इधर नजर फेरनी होगी। गाँवों में अच्छे-अच्छे कुँओं और तालाबों, शौचालयों और स्नानागारों, कन्या-विद्यालयों और नारी-चिकित्सालयों, प्रसूतीगृहों या मातृ-मन्दिरों की बड़ी आवश्यकता है। इन अभावों की पूर्त्ति चाहे कोई भी करे, वही सच्चा देशहितैषी होगा।

ग्रामीण स्त्रियों की स्थिति यदि सन्तोषजनक हो जायगी तो देहात की जनता का जीवन भी परिष्कृत और सुखमय हो जायगा। जबतक मातृ-जाति अधोगति में पड़ी रहेगी, पुरुष-समाज सजग होकर भी उठने का बल न पा सकेगा। केवल नगरों के स्त्रियों में ही जागृति फैलाने से देशोन्नति की समस्या हल न होगी।

नारी-समाज के अभ्युदय के लिए जो संस्थाएँ यत्नशील हैं, वे गाँवों की ओर कदम बढ़ायें। भारतीय सभ्यता और संस्कृति से अनुराग रखनेवाली सुशिक्षिता महिलाओं के कुछ ऐसे संगठित दल तैयार हों जो निरन्तर गाँवों में ही घूमते फिरें। ग्रामीण स्त्रियों को वे स्वच्छता के आचरण, शिशु-पालन-प्रणाली तथा स्वास्थ्यरक्षा-विधान सिखायें।

गाँवों में जो दरिद्रता-दलित नारी-वर्ग है, वह भी यदि आलसी और मन्दोत्साह न रहकर कर्मठ और उद्योगशील हो जाय, तो कुछ दिनों में दशा पलट सकती है। सम्पन्न घरों की स्त्रियों के शुष्क जीवन में भी कला और सौन्दर्य का समावेश तभी होगा जब उन्हें अपनी ही सजग बहनों से मधुर उपदेश मिलेंगे।

—'आर्यमहिला' (काशी), विक्रम सं० १६८४ (सन् १६२७ ई०)

माँ की माया *

आते ही उपकार याद है माता, तेरा,
हो जाता मन मुग्ध भक्ति-भावों का प्रेरा।
तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावें,
मन तो होता तुझे उठा कर शीश चढ़ावें।

—मैथिलीशरण

माता की माया-ममता मनुष्य के जीवन की अमूल्य सम्पत्ति है। माता का नेह-छोह और लाड़-प्यार जिसको नहीं मिलता, वह समाज में 'टूअर' कहलाता है।

---

* 'मातृमहिमा' और 'मातृस्नेह' नामक दो लेखों का उत्तमांश इसी लेख में सम्मिलित है। तीनों में बहुत-कुछ समानता थी, अतः तीनों को मिलाकर एक लेख बना दिया। वे दोनों लेख क्रमशः १६२१ और १६२५ में छपे थे।—लेखक

माता का पद यदि स्वर्ग से भी ऊँचा माना गया है। यहाँ तक कहा गया है कि संसार में कुपूत होता है, पर कुमाता नहीं होती। माता की महिमा पिता से भी बड़ी है; क्योंकि वह सन्तान को नव मास तक अपने गर्भ में धारण करके उसे अपने रक्त के रस से पोसती और फिर संसार में पैदा करके जबतक जीती है तबतक पालती रहती है।

माता होने के कारण ही संसार में नारी की प्रतिष्ठा है। नारी यदि माता न होती तो संसार उसे केवल मायाविनी समझता। जगदम्बा की प्रत्यक्ष प्रतिमा होकर वह संसार का संचालन करती है। उसके अभाव में संसार उजाड़ हो जाता। वह न होती तो मानव शायद दानव बन जाता।

हिन्दूधर्म के अनुसार, जबतक घर में माता जीती है तबतक सन्तान के लिए किसी देवता की पूजा या तीर्थ की यात्रा करने की आवश्यकता नहीं है। माता की सेवा यदि सच्ची श्रद्धा और लगन से की जाय तो वह तपस्या का फल देती है। माता का अपमान अथवा अनादर करनेवाला कभी जीवन में सुख और सफलता नहीं पाता।

माता के स्नेह की समता किसी का स्नेह नहीं कर सकता। पत्नी के स्नेह में किञ्चित् स्वार्थ का होना संभव है, बेटी और बहन का स्नेह भी कुछ दिन स्वाभाविक रूप में रहकर पीछे विभक्त हो जाता है। किन्तु माता का स्नेह कभी नहीं घटता। उसका स्नेह अपनी सन्तानों में विभक्त होने पर भी नैसर्गिक रूप में कायम रहता है। उसकी मोहमाया इतनी जबरदस्त होती है कि सन्तान की मृत्यु के शोक में कभी-कभी वह भी वैसे ही प्राण त्यागती है जैसे कोई सती पत्नी अपने पति के वियोग में। उसका वात्सल्य अत्यन्त सुकुमार होता है। उसका हृदय करुणा का वरुणालय होता है।

संसार में समाज का निर्माण माता ही करती है। प्रत्येक मनुष्य बहुत-कुछ अपनी माता का बनाया हुआ है। व्यक्तियों के समूह से समाज बनता है और व्यक्तियों को माता बनाती है। इस तरह माता ही समाज बनानेवाली है। यदि माताएँ चाहें तो आदर्श समाज बना सकती हैं। मातृ-शक्ति की महिमा अपार है।

सन्तान को विद्वान, वीर और दानी बनाना माता का ही काम है। माता ही पुत्री को आदर्श गृहिणी और जननी तथा पुत्र को सदाचारी एवं यशस्वी बना सकती है। नर और नारी के जीवन तथा भविष्य का निर्माण माता ही करती है। तत्वज्ञों का कथन है कि परमपुरुष की त्रिगुणात्मिका प्रकृति अथवा परमात्मा की योगमाया ही जब मानवी की आकृति में भूतल पर आती है, तब माता कहलाती है। प्रकृति-माता ही प्रकृत माता के रूप में प्रकट होती है। इसीलिए, माता होने के कारण ही, नारी नित्य नमन के योग्य है। इसीलिए नारी की गणना मातृजाति में होती है। इसीलिए नारी मात्र को मातृवत् मानने का आदेश हिन्दूधर्मशास्त्रों ने दिया है।

यदि यह कहा जाय कि माता का प्रेम समुद्र से भी गहरा, आकाश से भी ऊँचा, पहाड़ से भी भारी, पृथ्वी से भी चौड़ा, सूर्य-चन्द्रमा से भी प्रकाशमान और वसन्त से भी सुन्दर है, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। जड़-जंगम में जननी की सत्ता का अनुमान करने पर, यह अत्युक्ति भी यथार्थ प्रतीत होती है।

संसार में जैसे सती देवियों की कथाएँ प्रसिद्ध हैं, वैसे ही पत्निव्रत पुरुषों और मातृभक्त सपूतों की कहानियाँ भी जगजाहिर हैं। जिस घराने या परिवार में माता का सत्कार नहीं होता, उसका अभ्युदय नहीं हो पाता। नारी जब कुमारी रहती है तब भी कल्याणी कहलाती है और जब गृहलक्ष्मी तथा जननी बन जाती है तब भी कल्याणकारिणी देवी के रूप में आराध्य होती है। विचारने से विदित होता है कि संसार मंगलमयी माँ की माया का ही विस्तार है।

माता के सम देव जगत में और न कोई,
मातृभूमि सम सुखद जगत में ठौर न कोई॥
मातृभूमि है प्राण, प्राण है माता प्यारी,
प्राणहीन हम हुए जहाँ ये गईं बिसारी॥
हर्षित हो दश मास गर्भ में हमको धारे,
त्यागे भोजन शयन जिन्होंने निज सुख सारे॥
जिनसे कंचनमयी हुई मिट्टी की काया,
है कृतघ्न जो भूल जाय उस माँ की माया॥[1]

—मासिक 'लक्ष्मी' (गया), १९१७ ई०

विद्या पढ़ना सीखो

हंस और मीनों से उसने जल में तरना सीखा था।
शीतल मन्द सुगन्ध पवन से मंद विचरना सीखा था॥
होम-शिखा से सद्भावों का जग में भरना सीखा था।
आश्रम के उन्नत विटपों से परहित करना सीखा था॥

—'शकुन्तला' (मैथिलीशरण)

अपनी चाल-चलन अच्छी बनाने और बुरे कामों के फन्दे से छुटकारा पाने तथा अपने विचारों को भ्रष्ट होने से बचाने के लिए विद्या पढ़ना बहुत जरूरी है। खूब मन लगाकर विद्या पढ़ने से चित शान्त और हृदय कोमल हो जाता है; क्योंकि विद्या पढ़ने में दत्तचित्त होने से मन एकाग्र होने लगता है। उसकी स्वाभाविक चंचलता मिटती जाती है—एकान्तवास रुचिकर और सुखद मालूम होने लगता है। पुस्तकें तो परम प्रिय मित्र से अधिक आनन्द देने लगती हैं—मन को कुकर्मों की ओर लपकने का अवसर ही नहीं मिलता—हृदय में कुत्सित भावों का छींटा तक नहीं पड़ने पाता—विचार निर्मल

१. कविवर पं० लोचन प्रसाद पाण्डेय।

रहते हैं—शुद्ध हृदय और स्वच्छ विचार होने से वाणी में मिठास और सुवास भर जाता है।

किन्तु वह शुभ विद्या, जिसमें मनुष्य के जीवन को सुधारने और सफल करने की शक्ति है, कूड़ा-करकट के समान फेंक देने योग्य गंदे उपन्यासों में नहीं है। राजा-रानी की दिलचस्प कहानियों में उस कल्याणकारिणी विद्या का बू-बास भी नहीं है। तोता-मैना और औरत-मर्द के झगड़े की कहानी में उस विद्या का स्वप्न-दर्शन भी नहीं हो सकता।

यदि तुम सच्ची विद्या पढ़ना चाहती हो तो सीता के प्रति अनुसूया देवी के उपदेशों को पढ़ो। सीता और सावित्री के निष्कलंक चरित्र से शिक्षा ग्रहण करो। उर्मिला, शकुन्तला, दमयन्ती, पार्वती और रुक्मिणी की पति-भक्ति की ओर ध्यान दो। बिदाई के समय शकुन्तला के प्रति कण्व ऋषि के कर्त्तव्योपदेश पर विचार करो।

रामायण पढ़ते समय तुम्हारी दृष्टि शूर्पणखा की ओर से हट कर शबरी पर अड़ जाय, कैकेयी की ओर से हटकर सुमित्रा पर टिक जाय। श्रीमद् भागवत पढ़ते समय यशोदा के वात्सल्य स्नेह की धारा में डुबकियाँ लगाओ। महाभारत पढ़ो तो द्रौपदी ने अश्वत्थामा का अपराध क्षमा करने में जो करुणा और उदारता दिखाई है, उसपर ध्यान दो। कुन्ती ने एक ब्राह्मण पुत्र के बदले अपने प्रिय पुत्र भीम को राक्षस के आहारार्थ भेजकर जो स्वार्थ-त्याग दिखलाया था, उससे सबक सीखो।

आदर्श आर्य-महिलाओं के निर्मल चरित्र का मर्म समझ कर तुम सचमुच विदुषी बन जा सकती हो। विद्या पढ़ने का सर्वोत्तम फल यही है कि हृदय के भाव स्वच्छ और सरल हों—आचरण निर्दोष और वाणी मधुर हो—स्वभाव नम्र और विचार उदार हो—दूसरों के दुःख में दया और अपने में धीरज हो—ईश्वर में विश्वास और बड़ों में पूज्य बुद्धि हो—अपने से छोटों पर स्नेह और जो कुछ सचाई की राह से मिल सके उसपर सन्तोष हो—दूसरों का धन और उत्कर्ष देखकर मन में डाह न हो।

तुमलोगों में अद्भुत शक्तियाँ भरी हुई हैं। जबतक उनको परख कर विकसित नहीं करोगी, तबतक तुम्हारी पूजा न होगी। तुम आप-से-आप अपनी प्रतिष्ठा बढ़ा सकती हो। तुममें वह शक्ति है कि चाहो तो ऐसा काम कर दिखाओ जैसा कोई बड़ा नेता या बड़ी सेना नहीं कर सकती। विद्या पढ़ने से ही तुम्हें अपनी वह शक्ति सूझेगी।

विद्या पढ़ने से तुम राजहंसी बन जाओगी। वह दूध और जल को अलग-अलग कर देती है। तुममें भी भले-बुरे का विचार आ जायगा। सूप और चलनी की कहानी तुमने सुनी होगी। सूप अच्छी चीज रख लेता है और कूड़ा-कचरा फेंक देता है; किन्तु चलनी उलटा ही काम करती है; क्योंकि उसमें सैकड़ों छेद होते हैं। तुम्हारी दृष्टि भी केवल छिद्र (दोष) ही ढूँढ़नेवाली होगी तो गुण परखने की शक्ति जाती रहेगी। जो कुछ पढ़ो, उसमें से केवल गुण ही ग्रहण करो, दोष को छाँट दो। दोष को देखो भी तो उससे बचने के लिए ही।

जहाँ तक हो सके, मन को बिगाड़नेवाली पुस्तकों से बची रहो। अच्छी पुस्तकों का चुनाव करने में अपने भाई और पति से ही सहायता लो। तुम्हारी पढ़ाई का प्रभाव तुम्हारी सन्तान पर भी पड़ेगा। तुम्हारे ऊपर सारे समाज के सुधारने का भार है, इस बात को कभी अपनी आँखों से ओझल न होने दो।

पाकशास्त्र में भी तुम्हारी अच्छी गति होनी चाहिए; क्योंकि भोजन के योग्य उत्तम-से-उत्तम पदार्थ बनाने की निपुणता पर आदिकाल से ही तुम्हारा पूर्ण अधिकार रहता चला आया है। जबतक तुम पाकशास्त्र में निपुण न हो सकोगी, तबतक तुम गृह-स्वामिनी बनने के योग्य नहीं हो सकती; क्योंकि अधिक-से-अधिक खाद्य पदार्थ खर्च करके भी तुम अपने अतिथि को, अपने प्यारे पति को, अपनी प्यारी संतान को और अपने परिवार को रुचिकर एवं तृप्तिकर भोजन नहीं खिला सकती हो। अतएव प्रति दिन के अभ्यास से तुम्हें अच्छी रसोई बनाना सीखना चाहिए। भोजन बनानेवाली को स्वच्छता-पूर्वक स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहिनना और क्रोध तथा ईर्ष्या से बचे रहना चाहिए।

सीने-पीरोने का काम भी तुम्हारी पढ़ाई का एक अंग है। माला गूँथना, चित्र बनाना, फूल काटना, बेल-बूटे काढ़ना, बच्चों का लालनपालन करना, रोगी की सेवा-शुश्रूषा करना, हारमोनियम और सितार तथा बाँसुरी बजाना भी तुम्हारी विद्या का ही अंग है। ललित कलाओं को सीखने से तुम्हारी विद्या अथवा शिक्षा की शोभा बढ़ जायगी।

घर का प्रबन्ध करना, घर को साफ-सुथरा रखना, घर की चीजों को सुव्यवस्थित रूप में रखना, घर की सजावट पर ध्यान देना, मितव्ययिता से घर का खर्च चलाना आदि सभी घरेलू काम तुम्हारी विद्या के ही अन्तर्गत हैं। पुस्तकें पढ़कर तुम इन कामों को भी सुन्दरता और सफलता से कर सकती हो। पाकशास्त्र, संगीतशास्त्र, गृह-प्रबन्ध-शास्त्र आदि में तुम्हारी गति तभी हो सकती है जब तुम विद्या पढ़कर शिक्षिता बनोगी। यदि तुम अपने घरेलू राज्य की बागडोर छोड़कर अधिकार के लोभ से इधर-उधर भटकती फिरोगी तो बाहरी संसार के प्रपंच में फँसने से तुम्हारा असली राज्य चौपट हो जायगा, फिर बाहर का अधिकार-क्षेत्र चाहे कितना भी सुन्दर हो, तुम्हारे लिए या तुम्हारे अपनों के लिए सुख-शान्ति-पूर्ण न होगा।

विद्या पढ़कर तुम समाज को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाओ। तुम्हारा विद्या पढ़ना तभी सार्थक होगा जब तुम परिवार और समाज के हित-साधन में अपना सारा समय लगा दोगी। परिवारों के सुधार से समाज का सुधार होगा और समाज के सुधार से देश का उद्धार होगा। भीतरी सुधार के बिना बाहरी सुधार न टिकाऊ होगा और न सफल ही होगा।

विद्या पढ़ने का सबसे बड़ा लाभ तुम्हें यह होगा कि तुम स्वावलम्बिनी बन जाओगी, तुम्हारी पराधीनता दूर हो जायगी, तुमको किसी का मुँह जोहना न पड़ेगा। विद्या पढ़ने से ही तुम्हारे स्वत्वों की रक्षा हो सकेगी। समाज में तुम्हारी साख और धाक बढ़ाने वाली विद्या ही है।

किन्तु विद्या पढ़कर तुम सच्ची भारतीय महिला बनो। यदि शिक्षा पाकर तुम पाश्चात्य देशों की महिलाओं का अनुकरण करोगी तो तुम्हारी परम्परा नष्ट हो जायगी। तब तुम्हारी सन्तानों में भी राष्ट्रीयता न रह जायगी। इस तरह भारत की राष्ट्रीयता बचाये रखने का उत्तरदायित्व तुम्हारे ही ऊपर है[1]।

—मासिक 'कायस्थ-महिला-हितैषी' (अयोध्या), आश्विन १९७५ वि०, सन् १९१८ ई०।

❁

सदा प्रसन्न रहो

सदा प्रसन्न रहने का स्वभाव एक ऐसा गुण है जिससे जीवन की जोत जगमगा उठती है, आत्मा में विचित्र शक्ति भर जाती है, तन्दुरुस्ती की तरक्की होती है, आँखों की रोशनी ठीक रहती है, दिल की कली खिलती है, मन ताज़ा रहता है, शरीर से आलस निकल भागता है, दिमागी चक्कर हवा हो जाता है, चिन्ता चकनाचूर हो जाती है, क्रोध आदि हृदय को जलानेवाले शत्रु मुँह काला कर जाते हैं, बोल-चाल में मिठास भर जाती है, खान-पान का स्वाद बढ़ जाता है, आसपास में आनन्द झलकने लगता है, रोगी भी ताक़त हासिल कर लेता है, आफत के पहाड़ से भी आनन्द का झरना झरने लगता है, विपद के बादल से भी अमृत की धारा बरसने लगती है, जङ्गल में भी मङ्गल होने लगता है, फूस की झोपड़ी भी महल बन जाती है, कम्बल भी दुशाला बन जाता है, बाँह से तकिया का काम निकल जाता है, चटाई भी तोशक को मात करती है, आसमान का चाँद भी घर का दीपक बन जाता है, गरीबी भी अमीरी का कान कतरती है।

सदा प्रसन्न रहने का मतलब हर घड़ी हँसते रहना नहीं है। यह तो पागलपन का लक्षण है। हँसना-हँसाना अच्छा गुण है, पर उसकी भी सीमा होनी चाहिए। निर्दोष हँसी से अपना मन भी हरा होता है और दूसरे का भी। जहरीली हँसी से फसाद पैदा होता है। द्रौपदी की कड़वी हँसी का नतीजा महाभारत का सर्वनाशी युद्ध हुआ।

हँसी का मतलब बतीसी का पर्दा फाड़ना, फेफड़े से फव्वारा छोड़ना, दिल की दौलत लुटाते फिरना, पेट में बल पड़ जाना नहीं है। तुम्हारी हँसी तो हल्की और कोमल होनी चाहिए, जिसमें चाँदनी का अमृत और फूल की सुगन्ध हो। उग्र हँसी तो उत्पात की जड़ है।

---

१. 'स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता' और 'विद्यावती ही भाग्यवती है'—इन दो लेखों की सामग्री भी प्रस्तुत लेख में सम्मिलित है; क्योंकि तीनों लेखों में बहुत-कुछ समानता थी। उक्त दो लेख क्रमशः १९२० ई० और १९२२ ई० में 'शिक्षा' में छपे थे।—लेखक

प्रसन्नता का मुख्य आधार है सुन्दर स्वास्थ्य, और स्वास्थ्य की सुन्दरता के लिए संयमशीलता आवश्यक है। आहार-विहार में संयम न रहने से चित्त का खिन्न रहना अनिवार्य है। जिसका आचार-विचार जितना ही शुद्ध और संयत होगा, उसका मन उतना ही प्रसन्न रहेगा।

हँसी जब पाताल-गंगा की तरह दिल के अन्दर से पैदा होती है तब हार्दिक प्रसन्नता का परिचय मिलता है। ऐसी हँसी में ही तुम्हारे शील और संयम की परीक्षा होती है।

तुम यदि संसार में अपना जीवन सुख-सहित बिताना चाहती हो, अपनी सन्तान का जीवन सुखशान्ति से बीतने देना चाहती हो, तो हमेशा प्रसन्न-वदना बनी रहो। तुम प्रसन्नता की अधिष्ठात्री देवी हो। तुममें पृथ्वी पर ही स्वर्ग की रचना करने की शक्ति है। देश के बच्चों का भाग्य-सूत्र तुम्हारे ही हाथों में है। तुम समाज पर अपने चरित्र का प्रभाव डाल सकती हो। तुम घिनौनी कुरीतियों को सुधार सकती हो। तुम परिवार और पड़ोस की बागडोर थाम सकती हो। तुम बालकों को वीर बना सकती हो।

तुम अपने बच्चों को प्रसन्नमुख बनाये रखने की चेष्टा करती रहो। अपने माता-पिता और सास-ससुर को सुखी करने की तदबीर सोचती रहो। अपने भाई के दुख-दर्द दूर करने में हाथ बटाती रहो। ननद-भाभी में मोद-विनोद सरसाती रहो। अपने प्यारे पति को प्रेम के खुशरंग में रँगती रहो। तुम्हारी प्रसन्नता तभी कायम रहेगी, सार्थक होगी।

जिस प्रकार पहाड़ी झरने का ठंढा और मीठा जल जंगली जन्तुओं को सुख देता है, उसी प्रकार सरल हँसी की स्वच्छ धारा बहा कर तुम भी परिवार के लोगों को सुख देती रहो। जैसे चाँदनी पौधों और घासों तथा जड़ी-बूटियों पर अमृत छिड़कती है जिससे अनेक जीवों की भूखप्यास मिटती है और बहुत-सी बीमारियों की जड़ में कुल्हाड़ी मारी जाती है, वैसे ही तुम भी अपनी कोमल हँसी से घर के सब लोगों के हृदय में आनन्द उपजाती रहो। तुम्हारी हँसी मोतियों की लड़ी है। बेशकीमत चीज को बेकार बरबाद करना ठीक नहीं। तुम्हारी हँसी दूध की धारा है, उसे राख की ढेरी पर मत डालो।

सबके सामने मुँह फाड़कर हँसने से तुम्हारी हँसी होगी। लाज-लिहाज में लिपटी हुई हँसी की लज्जत ही कुछ और है। हँसी में शिष्टता की मर्यादा रहनी चाहिए। जरा पलने पर पौढ़े हुए अपने दुधमुँहे बच्चे की ओर देखो। मन्द मुस्कान जैसे तुम्हारे मन को मोल ले रही है। उस बच्चे को गोद में लेकर जब तुम उसे उछालती हो तब ऐसा जान पड़ता है कि जो अमृत तुमने अपने हृदय से निकाल कर उसे पिलाया था, वह उसकी हँसी के साथ छलकने लग गया। इसी से अनुमान कर लो कि तुम्हारे हृदय का अमृत, जो प्रायः निर्मल हँसी के रूप में प्रकट होता है, मनुष्य में कैसी संजीवनी शक्ति भर सकता है।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि दया और प्रेम के लटपट पाग में शराबोर हँसी ही इस संसार में सुख का विस्तार कर सकती है। चहकती हुई चिड़िया जिस तरह जंगल

की झाड़ी को गुँजाती है, उसी तरह चमन की बुलबुल के समान, तुम भी अपने घर को गुलजार किये रहो। तालाब की कुमुदिनी अपने प्राण-पोषक चन्द्रदेव को देखकर जिस प्रकार खिल उठती है, उसी प्रकार तुम भी अपने पतिदेव के सामने सदा प्रसन्नमुख उपस्थित होकर उनकी श्रान्ति और चिन्ता दूर किया करो।

स्मरण रखने योग्य बात यह भी है कि परिश्रम में ही प्रसन्नता है, आलस्य में नहीं। घर के काम करने में जो परिश्रम होता है, वह स्वास्थ्य-रक्षा में बहुत सहायक होने के कारण ही प्रसन्नता का आधार है। गृहस्थाश्रम को सब आश्रमों का सिरताज बनानेवाली तुम्हीं हो। "बिनु घरनी घर भूत का डेरा"—यह कहावत तुम्हारी ही बड़ाई बखानती है। घरेलू काम-काजों में निपुणता और स्वच्छता दिखलाना ही तुम्हारी प्रसन्नता का कारण होना चाहिए। जब तुम्हारी आँखें खिली रहेंगी, जब तुम्हारे होठों पर हँसी की लकीर खिंची रहेगी, जब तुम्हारे कामों से सब लोगों को प्रसन्नता हो सकेगी, तभी तुम्हारी प्रसन्नता सार्थक होगी। घर की सभी चीजों को ठीक जगह पर सजाकर सफाई और नफासत के साथ रखने में तुम्हारी कुशलता देखकर जब दूसरों को प्रसन्नता होगी तब उससे तुम भी प्रसन्न हो जाओगी। जब जिस चीज की जरूरत पड़ेगी, वह अनायास मिल जायगी, नहीं तो समय पर जरूरत की चीज न मिलने से तुम्हीं झुँझला उठोगी और इस तरह तुम्हारी प्रसन्नता में बाधा पड़ जायगी।

तुम्हारी प्रसन्नता का बाधक तुम्हारे बिछावन, बरतन और वस्त्रों का मैलापन भी हो सकता है। बरतनों और कपड़ों को गन्दा रखने से आलस्य का म्लेच्छ सिर पर सवार रहता है, जिससे प्रसन्नता कभी पास फटकने नहीं पाती।

मन को चंगा करनेवाला साहित्य पढ़ने से भी प्रसन्नता प्राप्त होती है। परन्तु आदत खराब होने पर, मन में विकार पैदा करने-वाला साहित्य पढ़ने की लत भी लग जाती है। अगर वह लत नहीं छूटती तो नतीजा यह होता है कि प्रसन्नता से हाथ धोना पड़ता है। इसलिए मन को बिगाड़ने और बहकानेवाला साहित्य पढ़ने की आदत से बची रहो।

तुम्हारी प्रसन्नता की सूचना तुम्हारी मीठी बोली देती है। तीखी बोली तुम्हारी प्रसन्नता के साथ ही दूसरों की प्रसन्नता को भी नष्ट कर देती है। कड़वी बोली से परिवार और पड़ोस में जो जहर फैलता है वह भयंकर परिणाम प्रकट करता है।

तुलसी मीठे वचन सों, सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मन्त्र है, तजिए वचन कठोर॥

तुम चाहो तो आजमाइश करके देख सकती हो कि दोषी का कसूर माफ कर देने से, बड़ों की आज्ञा मानने से, सबके साथ नम्रता दिखाने से, सबके बच्चों को प्यार करने से गोतिया-दायाद से मिलजुल कर रहने से और शिक्षाप्रद पुस्तकें पढ़ने में चित्त लगाने से जो प्रसन्नता मिलती है, वही जीवन-भर सुख-शान्ति देती है।

"मन को छोटा करो न, हँसकर जग की कड़वी बात सहो।
घर को नन्दन बाग बनाकर, जग में सबका भला चहो॥
हँसो-हँसाओ हद-हिसाब से, सबसे मीठी बात कहो।
घर के लोगों को सुख देकर घर में सदा प्रसन्न रहो[1]॥"

—मासिक 'लक्ष्मी' (गया), सन् १६१५ ई०

परदा-प्रणाली[2]

बे-परदः नजर आईं जो कल चन्द बीबियाँ!
'अकबर' जमीं में ग़ैरते-क़ौमी से गड़ गया!
पूछा जो उनसे आपका परदा वह क्या हुआ?
कहने लगीं कि अक़्ल पै मरदों के पड़ गया!

परदा-प्रथा के औचित्य का समर्थन करने के निमित्त, स्त्रियों के विशेषण के रूप में व्यवहृत होनेवाले संस्कृत के 'असूर्यम्पश्या' शब्द को प्रमाण मानना उचित नहीं जान पड़ता। परदा-प्रथा से इस शब्द का कोई सम्बन्ध नहीं समझ पड़ता। 'असूर्यम्पश्या' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा गया है—"आर्य्य राजाओं की रानियों में परदा-प्रथा का पालन ऐसी कड़ाई से होता था कि पर-पुरुष की तो बात ही क्या, सर्वगत सूर्य भगवान भी उनको नहीं देख पाते थे।"

सुकोमलाङ्गी ललनाओं की सुकुमारता की अतिशयता व्यक्त करने के लिए ही 'असूर्यम्पश्या' शब्द का प्रयोग होता है।

यह तो काव्य-जगत् का एक मधुर-भावव्यञ्जक शब्द है। रानियों के लिए यह शब्द व्यवहृत हो सकता है, पर साधारण स्त्रियों के लिए यह उपयुक्त नहीं हो सकता। राजघरानों में परदा-प्रथा के रहने से यह नहीं प्रमाणित होता कि जन-साधारण में भी यह प्रथा थी। फिर राजमहलों की प्रथा से जन-साधारण के समाज की प्रथा का अन्दाज

---

१. साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित तीन अन्य लेख भी इस लेख में मिला दिये गये हैं—(१) तन्दुरुस्ती के लिए हँसना जरूरी, (२) चहकना और बहकना, (३) हँसने के गुण-दोष (१६१६-२५ ई०)। तीन लेखों की सामग्री इसीमें खपाने से इसका काफी अंश कट और बदल गया है; पर नया कुछ नहीं जोड़ा गया है, अतः त्रुटियों की संभावना है।—लेखक

२. 'आर्यमहिला' के आषाढ़-अंक में 'एक पुरानी लकीर के फकीर' महाशय का लेख (रामायणकाल में परदा-प्रणाली) 'हिन्दूपंच' (कलकत्ता) के 'रामाङ्क' से उद्धृत होकर प्रकाशित हुआ था। उसी के उत्तर में यह लेख लिखा गया था।—लेखक

लगाना ठीक नहीं। सार्वजनिक रूप से परदा-प्रथा प्रचलित होने के प्रमाण में 'यथा राजा तथा प्रजा' की लोकोक्ति पेश की गई है। किन्तु सामाजिक प्रथा में प्रजा के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह राजा का ही अनुकरण करे। राजमहलों के पहरे और देवढ़ी की रुकावट का प्रमाण देकर भी परदा-प्रणाली की प्राचीनता सिद्ध नहीं की जा सकती। साधारण जन के घर में भी कोई अपरिचित व्यक्ति नहीं जा सकता, फिर राजाओं और धनिकों के घर की तो बात ही क्या ? गृहप्रवेश-निषेध से भी परदा-प्रथा का समर्थन नहीं होता।

रामचरितमानस में वन-गमन के समय सीता जी के लिए महारानी कौसल्या ने भगवान रामचन्द्र के सामने कहा है—

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा॥
जिवन-मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ॥
सिय बन बसिहिं तात केहि भाँती। चित्र-लिखित कपि देखि डराती॥

महाकवि तुलसीदास की इन सुन्दर उक्तियों में वात्सल्य और करुणा की ही व्यंजना है। इससे सीता जी का असूर्यम्पश्या होना तो सिद्ध होता है; पर यह नहीं प्रतीत होता कि वे घोर परदे के अन्दर बन्द रखी जाती थीं।

प्राचीन भारत में आजकल की तरह कठोर परदा-प्रथा का प्रचलन नहीं था। स्त्रियों की सलज्जता और सुशीलता में शिष्टता की मर्यादा अवश्य थी। लज्जा और कुलीनता की रक्षा के लिए परदा रखने का मतलब यह नहीं है कि नारियाँ परदे में जकड़ी रहती थीं। आज का परदा तो कैदखाना है।

महात्मा तुलसीदास जी यद्यपि घोर परदा-युग में हुए थे तथापि उन्होंने सीताजी को राम-लक्ष्मण के बीच में होकर रास्ता चलने का मनोहर वर्णन किया है। जनकपुर की फुलवारी और धनुषयज्ञशाला में सीता जी पर परदे का प्रतिबन्ध नहीं लगाया है—

रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर-नारी॥

'अध्यात्म रामायण'[१] में रंगभूमि के अन्दर सीताजी का जो चित्र अंकित है, उसे देखने पर तो परदा-प्रथा की कल्पना भी नहीं होती—

सीता स्वर्णमयीं मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे।
स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वाभरणभूषिता॥
मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः क्वणच्चरणनूपुरा।
दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनी॥
रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमाना मुदं ययौ॥

अर्थात् (धनुष टूट जाने पर रामचन्द्रजी को जयमाल पहनाने के समय) सीताजी दाहिने हाथ में स्वर्णमयी माला लेकर चलीं। उनके अंग का रंग सुनहला था और चेहरे

१. बालकाण्ड, सर्ग ६, श्लोक २९-३०-३१।

पर मुस्कराहट थी। वे मुक्तामाला, कुण्डल आदि सब गहने पहने हुई थीं। उनके पायजेब रुनझुन बज रहे थे। रेशमी साड़ी ऐसी झीनी थी कि अंग झलकते थे। रामचन्द्रजी को जयमाल पहना कर प्रसन्न मन से मुस्कुराती हुई चली गई।

वाल्मीकीय रामायण में भी विवाह-प्रकरण के अन्तर्गत सीताजी ऋषि-मुनियों और ब्राह्मणों से भरे विवाह-मण्डप में सबके सामने लाई गई हैं—

ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम्।
समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा॥
अब्रवीज्जनको राजा कौसल्यानन्दवर्द्धनम्।
इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव॥[1]

अर्थात् (हवन आदि के बाद)—सब गहनों से सजी हुई सीता को लाकर अग्नि (साक्षी-देवता) तथा रामचन्द्र के सामने बैठाया और कौसल्यानन्दन राम से राजा जनक ने कहा कि यह मेरी कन्या सीता आपकी सहधर्मिणी है।

विवाहमण्डप में घूँघट (अवगुण्ठन) का वर्णन नहीं है। तुलसीदासजी ने भी घूँघट की चर्चा नहीं की है। वे कभी अप्रामाणिक और अविश्वसनीय बात नहीं लिख सकते। देखिए—

सिय-राम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परइ।
मन-बुद्धि-बर बानी-अगोचर प्रगट कबि कैसे करइ॥

इतना ही क्यों, इससे भी चार कदम आगे—

आवत दीख बरातिन्ह सीता। रूपरासि सब भाँति पुनीता॥
सबहिं मनहिं मन कीन्ह प्रनामा। देखि राम भये पूरन कामा॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँद जेता॥

× × × ×

राम सीय सुन्दर प्रतिछाहीं। जगमगाति मनि खम्भन माहीं॥
मनहुँ मदन रति धरि बहुरूपा। देखत राम बिबाह अनूपा॥

× × × ×

अनुरूप बर दुलहिन परस्पर लखि सकुचि हिय हरषहीं।
सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुरगन बरषहीं॥

गोस्वामीजी ने अपनी कल्पना के बल से कोई मनगढ़न्त बात नहीं लिखी है। वर-वधू परस्पर दृष्टिदान करते थे—विवाहमण्डप में सबके सामने ही, अतः परदा-प्रथा का होना सम्भव नहीं है। वाल्मीकीय रामायण का दूसरा एक प्रमाण पुनः विचारणीय है—

अथोपकार्यं जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दनाः।
राजाप्यनुययौ पश्यन्सर्षिसङ्घः सबान्धवः॥ (बाल० ७३।४०)

---

१. बा० कां०, सर्ग ७३, श्लो० २५-२६।

अर्थात्—चारों भाई (राम-लक्ष्मणादि) अपनी-अपनी दुलहिनों के साथ जनवासे के खीमे में गये और राजा दशरथ भी ऋषियों और सगे-सम्बन्धियों के साथ उन्हें (पुत्रों और उनकी बहुओं को) देखते हुए उनके (वर-दुलहिनों के) पीछे-पीछे गये।

इन प्रमाणों से साफ प्रकट होता है कि रामायण-काल में आज-जैसी परदा-प्रथा नहीं थी। महाभारत-काल में भी नहीं थी। प्रमाण देकर अनावश्यक विस्तार करना अभीष्ट नहीं। पुराणों में भी अनेक प्रमाण ऐसे हैं जिनसे परदा-प्रथा का खण्डन होता है। यह कुप्रथा भारत में यवन-शासन-काल में आई जान पड़ती है, इसमें सन्देह नहीं[1]।

—'आर्यमहिला' (काशी), भाग १०, संख्या ४, विक्रम-संवत् १९८४, सन् १९२७ ई०।

विधवा-विवाह-समस्या[2]

आजकल अन्यान्य विषयों में तो वेदशास्त्र की कुछ परवा नहीं की जाती, मगर विधवा-विवाहादि जटिल सामाजिक प्रश्नों में ही क्यों पग-पग पर वेद-शास्त्र की दुहाई दी जाती है ! जो वेद-शास्त्र के पारदर्शी पण्डित हैं, मैं देखता हूँ—बल्कि सारा संसार ही देख रहा है—वे भी "चलहिं कुपंथ वेद-मग छाँड़े !"

अगर आज इस आशय की विज्ञप्ति प्रकाशित की जाय, अथवा घोषणा ही निकाली जाय कि वेद-शास्त्र-निर्द्धारित पथ के कट्टर पथिक एकत्र उपस्थित होकर अपने वेदानुयायी होने का सत्य प्रमाण प्रदर्शित करें तो मैं समझता हूँ कि समग्र भारतवर्ष में मुष्टिमेय मनुष्य भी ऐसे नहीं निकलेंगे। सम्भव है, इस पुण्यभूमि भारत में कुछ धर्मात्मा पुरुष ऐसे भी निकल आवें, पर तब भी उनकी गणना के समय 'अनामिका सार्थवती बभूव' ही चरितार्थ होगा। ऐसी दशा में, क्या यह प्रश्न नहीं उठाया जा सकता कि बेचारी विधवाओं और अछूतों के मामले में ही बार-बार वेद शास्त्र क्यों घसीटे जाते हैं—सभी बातों में उनका पालन क्यों नहीं किया जाता—हर बात में उनकी आज्ञाएँ क्यों नहीं बरती जातीं ?

साधारणतः उदाहरण के तौर पर तिलक-दहेज की कुप्रथा को ही ले लीजिए। इस कुरीति के कारण समाज का जो अपकार हो रहा है, वह किसीसे छिपा नहीं है। इस जघन्य प्रथा ने भी विधवाओं की संख्यावृद्धि में बड़ी सहायता पहुँचाई है, और अभी न जाने कबतक पहुँचाती रहेगी। क्या वेद-शास्त्रों में तिलक-दहेज के रूप में कन्या के पिता का रक्त चूसने की आज्ञा दी गई है ! अगर हाँ, तब तो कोई सवाल ही नहीं; और अगर

---

१. 'परदा-प्रथा और भारतीय नारी-समाज' नाम का लेख भी इसमें अन्तर्भुक्त है। यह सन् १९२२ में कलकत्ता के एक दैनिक पत्र में छपा था। दोनों का मुख्यांश लेने से इसका कलेवर कुछ बदल गया है।—लेखक

२. आश्विन-कृष्ण ७, शनिवार (१७ सितम्बर १९२७ ईसवी) के 'आज' में पण्डित फूलचन्दजी शर्मा का एक लेख 'विधवा-विवाह-समस्या' छपा था, जो पूर्व-प्रकाशित 'विधवा-विवाह और कलियुग' शीर्षक लेख का आलोचनात्मक उत्तर था। उसीका यह प्रत्युत्तर है।—लेखक

नहीं, तो कौन ऐसा वेदशास्त्राभिमानी ब्राह्मण इस भारत-भूतल पर जीवित है, जिसने तिलक-दहेज लेनेवाले वेदशास्त्र-पराङ्मुख यजमान के यहाँ पैर पुजवाने या दान लेने या लड्डू चाभने से परहेज या इनकार करके सगर्व सहर्ष आत्मगौरव की रक्षा की है?

क्या वेश्या-लंपट यजमान का त्याग करने की आज्ञा वेद-शास्त्र नहीं देते? क्या बात-बात में वेदशास्त्र की अवहेलना करनेवाले यजमान का परित्याग करने की आज्ञा वेद-शास्त्र में कहीं नहीं है? क्या विदेशी वस्त्रों और विदेशी वस्तुओं का व्यवहार तथा व्यापार करके गो-वंश का ध्वंस करनेवाले यजमान का बहिष्कार करने के लिए वेद-शास्त्र ने निषेध नहीं कर दिया है? क्या वेद-शास्त्र-पारंगत होकर भी पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष एवं निंदा-कलह में रत रहने और अर्थ लोभवश ठकुरसुहाती कहने की आज्ञा वेदों ने दे रखी है?

मैं तो इस धर्मपुरी काशी में ही बैठा-बैठा देख रहा हूँ कि यहाँ एक-से-एक अगड़धत वेदज्ञ विद्वान् विद्यमान हैं, पर सब-के-सब अपनी-अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पका रहे हैं—न कोई किसी के उत्कर्ष एवं अभ्युदय से सन्तुष्ट या प्रसन्न है और न किसी में सच्चा पारस्परिक सौहार्द है। क्या यह इस वेदपीठ काशी के पूज्यपाद अगाध पण्डितों के लिए किञ्चिदपि ग्लानि का विषय नहीं है? क्या यही वेदज्ञों का आदर्श आचरण है? फिर क्या कारण है कि सभी बातों में तो यथेच्छाचार का प्रावल्य एवं बाहुल्य है; किन्तु दुर्दशाग्रस्त देश के सामने उपस्थित कुछ विकट समस्याओं पर ही वेदशास्त्र का सुतीक्ष्ण अंकुश दबाया जाता है?

स्मृतियों और संहिताओं के 'कलिवर्ज्य' प्रकरण में केवल विधवा-विवाह और अस्पृश्योद्धार पर ही निषेध-वाक्य मिलते हैं या और-और विषयों पर भी? अगर और-और विषयों पर भी मिलते हैं, तो उनमें से कितनों का पालन स्वयं वे महाशय करते हैं जो उनके पूरे जानकार हैं?

शर्माजी ने देहातों की विधवाओं की दशा पर पूर्ण सन्तोष प्रकट किया है।

अपने लेख के अन्तिम अंश में शर्माजी ने लिखा है—"देहातों में जाइए और ऐसी जगह जो रेल से बहुत दूर है। वहाँ के जीवन में वह पवित्रता, वह साधुता और वह मधुरता देखेंगे कि पुराने आदर्श के गौरव पर चित्त नाच उठेगा। वहाँ जाकर विधवा-विवाह की कल्पना करने में ही जी कुण्ठित हो उठेगा।"

मैं नहीं कह सकता कि शर्माजी किस प्रान्त के देहात के रहनेवाले हैं। सम्भव है, उनके देहातों में विधवाओं की ऐसी सन्तोषजनक स्थिति हो जिसे देखकर 'चित्त नाच उठे'! पर मैं अपनी बात कहता हूँ कि मैं घोरतर ठेठ देहात का रहनेवाला हूँ, और ऐसे-ऐसे देहातों में रह चुका हूँ, जहाँ बीसवीं सदी की सभ्यता की धुँधली रोशनी भी नहीं पहुँच पाई है। वहाँ के गृह-परिवार में विशेषतः नव-विधवाओं अथवा बाल-विधवाओं की जैसी अवस्था मैंने अपनी आँखों देखी और कानों सुनी है, उसे लिखकर मैं उसका ठीक-ठीक अनुमान भी नहीं करा सकता।

हाँ, उन्हीं देहातों में ऐसे भी कुछ परिवार हैं, जिनमें नव-विधवाओं की स्थिति किसी हद तक अच्छी है; पर ऐसे परिवार उँगलियों पर गिन लेने योग्य हैं। मैं तो बड़े गर्व के

साथ, काफी जोर देकर, यह बात कह सकता हूँ कि नवविधवाओं के साथ यदि परिवारवाले हृदय-हीनता एवं अमानुषिकता का बर्ताव न करें, तो उन त्यागमूर्ति देवियों के सामने पुनर्विवाह का कुछ मूल्य नहीं है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। बालपन और जवानी में विधवा होनेवाली बहनों को परिवार में जो-जो अपमान, कुत्सा, क्लेश, आक्रोश और मर्मभेदी दुर्वचन सहने पड़ते हैं, वे बस पुराने आदर्श के गौरव पर फूलनेवालों के ही नेत्र-कर्णों द्वारा देखे-सुने जा सकते हैं—हम सरीखे तुनुक दिलवाले तो उन्हें खुली आँखों नहीं देख सकते।

यदि किसी कारण-विशेष से, या परिस्थितिभेद से, या परम सौभाग्यवश (!) कहिए, पुराने आदर्श पर टिके हुए किसी परिवार में कोई बाल-विधवा अथवा नवयुवती विधवा है और वह अपने परिवारवालों के सद्भाव एवं सद्व्यवहार से सन्तुष्ट है, तो वास्तव में उसके लिए पुनर्विवाह का प्रश्न विशेष महत्त्व नहीं रखता। किन्तु जिन अधिकांश परिवारों में बाल-विधवा या युवती विधवा के लिए 'कुलच्छनी', 'डायन चबायन', 'राँड़-निगोड़ी', 'भतार-भच्छिनी', 'कलमुँही', 'घर-फुँकनी', 'कुलबोरनी', 'माँग-धोवनी', 'टोनही' आदि बीभत्स विशेषण नित्य प्रति प्रयुक्त होते रहते हैं, उन परिवारों की न देहातों में कमी है और न शहरों में ही।

देहातों में मुश्किल से ऐसे कुछ इने-गिने परिवार मिलेंगे, जिनमें विधवाओं पर वस्तुतः उतना ही ध्यान दिया जाता हो जितना सधवाओं को सहज सुलभ है। हा दैव! आँगन-घर में चारों ओर लालसाओं की ज्वाला धधक रही है, नाना प्रकार के मंगल-मोद-महोत्सव मनाये जा रहे हैं, पर किसी व्यक्ति के हृदय को बेचारी करुण-कातर विधवा की मर्मवेदना छूने भी नहीं पाती। वह दूर ही से सब-कुछ देख-सुनकर मन-ही-मन आह भरती और चुपके से आँसू पोंछकर परिवारवालों के सुख-सम्वर्धन में हाथ बँटाती है। आखिर क्या करे? हिंदू-परिवार में विधवा का कुछ दाय-भाग भी तो नहीं! उससे भर-मुँह मीठी बात बोलनेवाला कोई सहृदय भी तो नहीं! ताने और तिरस्कार ही उसके बाँटे पड़े हैं! आदर्शों की डींग मारना और बात है, तथा बात की असलियत पर गड़कर विचार करना कुछ और बात है।

मैं भी इस बात को सर्वान्तःकरण से स्वीकार करता हूँ कि देहातों या शहरों में ऐसी विधवाओं की भी कमी नहीं है जिनकी पवित्रता और साधुता के आगे अनायास नतमस्तक हो जाना पड़ता है, पर विरल उदाहरणों को पेशकर समष्टि की उपेक्षा घोर अन्याय है। हिन्दू-घरानों का विधवा-समुदाय आज कितना उत्पीड़ित हो रहा है, इसका पता वेद-शास्त्र के पन्ने उलटने से नहीं लगेगा, पोथी बन्द करके आँखें बन्द कीजिए, और ध्यानस्थ होकर हिन्दू-समाज के अन्दर अधिकारहीन तथा अवलम्बहीन होकर तड़पनेवाली विधवाओं की दशा पर विचार कीजिए, तब अपनी अन्तरात्मा से पूछिए कि मनुष्यता का तकाजा क्या है! और अगर ध्यानस्थ होने पर वस्तुस्थिति परखने में अड़चन हो, तो आँखें फैलाकर चारों ओर देख लीजिए कि विधवाओं की ज्वालामयी आह के धुएँ से समाज का वायुमण्डल कैसा व्याप्त हो रहा है।

तर्क-जाल या युक्ति-जाल में जकड़ कर अब आप इस समस्या को काबू में नहीं कर सकते। हाँ, इतना कह सकते हैं कि हृदय तो सब कुछ अनुभव कर रहा है; पर शास्त्र-मर्यादा-भंग करने का साहस नहीं है। यह उचित ही है। किन्तु बात तो असल यह है कि शास्त्र कभी लड़ाके तीतर-बटेर की तरह पाल रखने की चीज नहीं है कि दाँव देखकर ललकार दिया और कुघात देखकर पुचकार लिया। देहातों की विधवाओं का पवित्र चित्र दिखलाकर इस विषय में जनता को चकमा नहीं दिया जा सकता; क्योंकि जनलोक में जो सहृदय हैं और विधवाओं की दशा पर जिन्होंने कभी ध्यान देकर विचार किया है, उन्हें सब्ज बाग दिखाकर भुलावे में लाना जरा टेढ़ी खीर है।

अगर आज देहातों और शहरों में घूम-घूम कर कोई सहृदय दल बेचारी विधवाओं की असली दशा की जाँच करे, तो उसकी रिपोर्ट देखकर सचमुच आप चकित हो उठेंगे, और मन-ही-मन में अपनी धारणा पलट कर चुप बैठ जायँगे। अगर शास्त्र इतने शक्तिशाली हैं कि विधवाओं के विवाह रोक दें, तो उनमें इतनी और भी शक्ति होनी चाहिए कि विधवाओं के साथ होनेवाले दुर्व्यवहारों को भी रोक दें। विश्वास है कि शास्त्रों में यह सब-कुछ कर डालने की शक्ति है बशर्ते उन्हें पण्डिताऊ पींजड़े से निकलने का अवसर मिले।

देहातों में खास कर बाल-विधवाओं और नवयुवती विधवाओं की दशा अत्यन्त शोचनीय एवं दयनीय है। यह दूसरी बात है कि कहीं-कहीं कोई अच्छी दशा में भी मिल जायँ। किन्तु समष्टिरूप से यहाँ चर्चा की गई है, व्यष्टि की कोई गणना नहीं। मैं यह कहनेवाला होता कौन हूँ कि जो विधवाएँ दुःखी देखी जायँ, उन सबकी इच्छा के अनुसार उनका भाग्य-निर्णय अथवा विवाह अवश्य ही कर दिया जाय; पर इतना तो निश्चय ही कहूँगा कि उनकी दशा सुधारने के लिए यदि समाज के शासक सज्जन (शास्त्रज्ञपण्डितजन) कोई उपाय नहीं करेंगे, तो अनतिदूर भविष्य में शास्त्र-मर्यादा का भंग होना ध्रुव है।

—दैनिक 'आज' (काशी), आश्विन, संवत् १९८४ वि०;
गुरुवार, २९ सितम्बर, १९२७ ई०

⊕

विभूतियाँ

[बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्यसम्मेलन के गया-अधिवेशन के कवि-सम्मेलन में पठित]

शादी हुई प्रथम तो चौदह बरस के रहे,
बीबी रही बीस की—बड़ी ही मजबूतियाँ
दूसरी हुई, तो हम सोलह—सलोने रहे,
दुल्हन थी छोटी सात साल की सपूतियाँ!
तीसरी भी होने जा रही है इसी फागुन में,
सुनते हैं 'भावी' जी की भव्य करतूतियाँ!
जूतियाँ समाज ने जमाई खूब दो-दो बार,
अबकी है आशा बितरेगा वह विभूतियाँ!

—सुधा (लखनऊ), वर्ष १, खंड १, संख्या ४; नवम्बर १९२७ ई०

⊕

सीखो प्यारी बहनो! घर में मिलजुलकर रहने की रीति।
बाल परस्पर गूँथो हिलमिल, गाओ गीत, बढ़ाओ प्रीति।

× × × ×

बालिकाएँ ताश खेलें नष्ट भारतवर्ष हो।
गीत गा चरखा चलावें, देश का उत्कर्ष हो।

—'बालक' (लहरियासराय, दरभंगा); वर्ष ५, अंक ७, सावन १९८७ विक्रमी

⊕

बालोद्यान

[बालकोपयोगी रचनाएँ]

किसी देश की भाषा का बालसाहित्य देखकर उसके भविष्य की कल्पना की जा सकती है।

—*महावीरप्रसाद द्विवेदी*

आप यदि अपनी भावी पीढ़ी को उजागर करना चाहते हों तो स्वस्थ विचारों से भरा हुआ शिक्षाप्रद बालसाहित्य रचो।

—*मदनमोहन मालवीय*

हमारी शिक्षाप्रणाली में विदेशी भाषा का माध्यम हमारे देश के बालकों के लिए विष की घुट्टी का काम कर रहा है। स्वदेशी भाषा के माध्यम से ही बालकों को भारतीय संस्कृति का अमृत पिलाया जा सकता है। भारतीयता को पुष्ट करनेवाला बाल-साहित्य सरल भाषा और सुबोध शैली में होना चाहिए।

—*स्वामी श्रद्धानन्द*

बालकों को निर्भीक, साहसी, स्वाभिमानी, सच्चरित्र और बहादुर बनानेवाला साहित्य ही सच्चे अर्थ में राष्ट्रनिर्माण कर सकता है। उन्हें कायर, आलसी और विलासी बनानेवाले बालसाहित्य को नष्ट कर देना चाहिए।

—*गणेशशंकर विद्यार्थी*

निर्मल, सुगम, मनोरंजक और चित्ताकर्षक बालसाहित्य जिस भाषा में नहीं है, उसकी नींव पोली और पूँजी खोखली है।

—*'हरिऔध'*

साहित्य के मनोहर उद्यान में बालकों को लुभाने-रमानेवाले सुरंग-सुगंधमय भाव-पुष्पों की आवश्यकता सबसे पहले है।

—*रवीन्द्रनाथ ठाकुर*

बालक प्रह्लाद का सिद्धान्त

ईश्वर के भक्तों के सिरताज प्रह्लादजी का शुभ नाम जग-जाहिर है। वे स्वयं तो हर घड़ी राम-नाम रटते ही रहते थे, लाख सताये जाने पर भी दूसरे बालकों को राम-नाम रटते फिरने की प्रेरणा देते थे।

बात असल यह है कि अपने दैत्य-समाज में फैले हुए अहंकार आदि दुर्गुणों को देखकर उन्होंने सोचा कि कम-से-कम भावी पीढ़ी—बालकों—को सुधारना चाहिए जिससे आगे चलकर समाज का कल्याण हो। इसी उद्देश्य से वे बालकों की मंडली में 'राम-नाम' का कीर्त्तन करते फिरते थे। जिस पाठशाला में पढ़ते थे, उसके विद्यार्थियों—अपने सहपाठियों—को भी यही सिखाते थे कि सच्चे मन से राम-नाम रटने पर बुद्धि मँजती है और बुद्धि विमल होने से जीवन आदर्श बन जाता है।

श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण आदि पढ़ने से, जिनमें भगवान् वेदव्यास ने प्रह्लाद की विस्तृत कथा बड़े सुन्दर ढंग से लिखी है, यह पता चलता है कि राम-नाम के सुमिरन का अद्भुत प्रभाव है।

प्रह्लादजी का सिद्धान्त यह नहीं था कि रामनाम जपकर वे ही अकेले मुक्ति पा जायँ। उनका सिद्धान्त यह भी था कि जिस समाज में वे पैदा हुए हैं, उसकी भी भलाई हो। वे केवल अपनी ही मुक्ति नहीं चाहते थे। तामसी स्वभाव के कारण सर्वनाश की ओर जानेवाले अपने दैत्य समाज को भी वे सब दुर्गुणों से मुक्त कर देना चाहते थे। और, इसका यही एक उत्तम उपाय उन्हें सूझ पड़ा कि आगे आनेवाली पीढ़ी—बालकों—के हृदय में ईश्वरभक्ति का बीज बोया जाय। कारण, अपने समाज के बड़े-बूढ़ों पर तो वे अपने उपदेशों का प्रभाव डाल नहीं सकते थे। बालक की सीख भला बड़े-बूढ़े कब मानते ! इसलिए वे पल्लव सींचना छोड़ जड़ ही सींचने लगे।

वे संसार की दुर्दशा देख बड़े दुखी हुए। लोगों में अहंकार बढ़ता जा रहा था। हिंसा और द्वेष की तूती बोल रही थी। जीव-दया का भाव सपना हो गया था। उन्हें यह देखकर बड़ी चिन्ता हुई कि संसार के लोग सर्वनाश की ओर अंधाधुन्ध दौड़े जा रहे हैं। इस दुर्दशा से संसार को बचाने के लिए उन्होंने ईश्वर-प्रार्थना, विश्वप्रेम, सत्य का आग्रह, जीव-दया अथवा अहिंसा का पाठ पढ़ाना शुरू किया।

ईश्वर-प्रार्थना का नियम निबाहने से चित्त एकाग्र और निर्मल होता है। सब प्राणियों को प्यार करने से ईर्ष्या-द्वेष या भेद-भाव मिट जाता है। सत्य का संकल्प ग्रहण करने से आत्मा उन्नत होती है। अहिंसा से हृदय पवित्र होता है। यही सब सोचकर उन्होंने संसार के प्राणियों के क्लेश दूर करने की ठान ली।

वे चाहते तो संसार के झंझट-झमेले से दूर जाकर कहीं पहाड़ की कन्दरा में तपस्या करते। किन्तु वे अपनी ही मुक्ति नहीं, बल्कि संसार के सभी जीवों की मुक्ति चाहनेवाले थे। संसारी जीवों का दुःख उनका अपना दुःख था। सबको वे बड़े प्यार की नजर से देखते थे, हृदय से सबकी भलाई चाहते थे। उनके मन में किसी प्रकार का भेदभाव था ही नहीं। अपने पिता हिरण्यकशिपु से उन्होंने कहा था—

"भगवान् विष्णु तो आपमें, मुझमें और अन्यत्र भी सभी जगह वर्तमान हैं, फिर, यह मेरा मित्र है और वह शत्रु है, ऐसे भेद-भाव को स्थान कहाँ है[1] ?"

इससे स्पष्ट है कि वे सबमें राम को रमा देखते थे। फिर वैर किससे करें? अपने क्रूर पिता में, उसकी खिंची या तनी हुई तलवार में, कुचलनेवाले हाथी में—सर्वत्र ही, वे राम की ही झलक-झाँकी देखते थे। इसलिए सारा संसार ही उनका अपना परिवार था। उनका परिवार छोटे आँगन में नहीं, सारी पृथ्वी में था। उनका समाज दो-चार लाख दैत्यों का ही न था, भूमंडल-भर के समस्त प्राणियों का था। इसलिए वे सबको सांसारिक क्लेशों से मुक्त करना चाहते थे। अकेले ही मुक्ति की मिठाई चखनेवाले स्वार्थी बालक वे नहीं थे। वे तो सभी जीवों को वह मिठाई चखाकर स्वयं केवल सन्तोष का अमृत पीनेवाले महात्मा थे।

इसीलिए, उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की थी कि अज्ञान के कारण दुःख भोगनेवाले सभी जीवों का उद्धार कीजिए—केवल मुझे ही मुक्ति देकर बस न कीजिए। श्रीमद्भागवत महापुराण में उनका यह सिद्धान्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है। वे भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं—

"हे देव! मुनिजन प्रायः अपनी ही मुक्ति की इच्छा से एकान्त में रहकर मौन-व्रत धारण कर लेते हैं, वे दूसरे के हित में तत्पर नहीं होते। किन्तु मुझे इन बेचारे गरीबों को छोड़कर अकेले ही मुक्त होने की इच्छा नहीं है, और संसार में भटकनेवाले इन लोगों के लिए आपके सिवा और कोई उद्धार करनेवाला भी मुझे दिखाई नहीं देता[2] ?"

---

१. त्वय्यस्ति भगवान् विष्णुर्मयि चान्यत्र चास्ति सः।
यतस्ततोऽयं मित्रं मे शत्रुश्चेति पृथक्कुतः ॥३८॥
—(श्री विष्णुपुराण, अंश १, अध्याय १९)

२. प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थ-निष्ठाः।
नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥
(श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ७, अध्याय ९, श्लोक ४४)

कितना ऊँचा और निष्कलंक सिद्धान्त है। बालक प्रह्लाद का यह सिद्धान्त प्रत्येक बालक को याद रखना चाहिए। श्रीमद्भागवत के श्लोक का भाव कभी भूलना न चाहिए।

—मासिक 'बालक' (लहेरियासराय), वर्ष १८, अङ्क १, जनवरी १९४४ ई०

⊕

प्राचीन भारत की हवाई लड़ाई

आजकल की हवाई लड़ाई का वर्णन आजकल के अखबारों में कभी पढ़ने को मिला होगा; परन्तु अब यह भी जानना जरूरी है कि प्राचीन भारत में कभी हवाई लड़ाई हुई है या नहीं।

प्राचीन भारत के साहित्य में हवाई जहाजों के वर्णन अनेक स्थानों पर मिलते हैं। आकाश में विमान केवल उड़ते ही न थे, एक जगह इकट्ठे होकर ठहरते भी थे। जैसे समुद्री जहाजों का दल एकत्र होकर टिका रहता है, वैसे ही आसमानी जहाज भी समूह बाँधकर हवाई बेड़ा बनाते थे। राम-रावण-युद्ध को देखने के लिए रणभूमि के ऊपर आकाश में इन्द्रादि देवताओं के विमानों का झुण्ड टिका रहता था। कहा जाता है कि आज का विज्ञान अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया है, पर अभी तक हवाई जहाज को आकाश में ठहरने या खड़ा करने की कला सफल नहीं हुई है।

हाँ, आजकल पुराने गीत रोचक नहीं लगते। फिर भी पुराने गीतों से प्राचीन भारत की उन्नति का बहुत-कुछ अंदाज लग जाता है। इससे अपनी हीनता का अनुभव नहीं होने पाता। यह बड़ा भारी लाभ है। वर्तमान संसार की उन्नति का ज्ञान रखते हुए हमें स्वाभिमान की भी रक्षा करनी चाहिए।

वाल्मीकीय रामायण में 'पुष्पक-विमान' की चर्चा मिलती है। उसी पर चढ़कर रावण ने दिग्विजय की यात्रा की थी। उसी विमान पर वह अनेक देवताओं से लड़ा था। वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड में रावण की उस युद्ध-यात्रा का बड़े विस्तार से वर्णन मिलता है।

रावण का बलवान बेटा मेघनाद भी हवाई लड़ाई में बड़ा कुशल था। अपना रथ (विमान) आकाश में खड़ा करके वह भयंकर युद्ध करता था। उसी विमान पर उसने माया से नकली सीता बनाकर उनकी गरदन काटी थी। यह कथा वाल्मीकीय रामायण के लंकाकाण्ड में है।

हमारे पुराणों में विमानों के वर्णनों की कमी नहीं है। त्रिपुरासुर के हवाई बेड़े को शिवजी ने नष्ट किया था, यह कथा प्रसिद्ध ही है। ऐसी कथाएँ अनेक हैं, इसलिए उन्हें मनगढ़न्त कहना भूल है। श्रीमद्भागवत-महापुराण के दसवें स्कन्ध में शिशुपाल के मित्र 'शाल्व' की हवाई लड़ाई का वर्णन मिलता है। अध्याय ७६ और ७७ में जलयुद्ध और विमान-युद्ध का प्रसंग आया है। शाल्व ने द्वारका पर हवाई चढ़ाई की थी। उसके हवाई

जहाज का नाम 'सौभ' था। वह कठोर लोहे का बना था। समुद्र के ऊपर वह उड़ता और चक्कर काटकर लड़ता था। हवाई हमले से शाल्व ने द्वारका नगर को बेचैन कर डाला था। अन्त में यादव वीरों के सिरताज बलरामजी को द्वारका-नगर की रक्षा का भार सौंप कर भगवान् श्रीकृष्ण ने शाल्व को मार डाला। उसका 'सौभ' विमान भी चूर-चूर होकर द्वारका के पासवाले समुद्र में गिर पड़ा।

श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्ध में उपर्युक्त विमानों से भी बहुत पुराने एक विमान का वर्णन मिलता है। तेईसवें अध्याय में एक कथा है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी के सुपुत्र 'कर्दम प्रजापति' ने अपनी नई बहू 'देवहूति' के साथ विमान पर ही सोहाग-रात मनाई थी। वह विमान रंग-बिरंग परदों और पताकाओं से सुसज्जित था। उसमें एक के ऊपर दूसरे-कमरे बने थे, जिनमें अलग-अलग पलँग, पंखे, आसन आदि सुशोभित थे। उसमें सोने का कमरा, बैठकखाना, नहाने का घर, खेल-कूद की जगह, खुला चौक, सब अलग-अलग बने हुए थे। उसकी दीवारें सुनहली थीं, जिनमें हीरे-जवाहर जड़े थे। उसमें मूँगे और हाथी-दाँत की खिड़कियाँ थीं। उससे कर्दम-मुनि ने समस्त भूमंडल में भ्रमण किया था।

इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण के सुन्दर-काण्ड में पुष्पक-विमान का सौन्दर्य-वर्णन मिलता है। हनुमानजी लंका में सीताजी को खोजते-ढूँढ़ते रावण के महल में जब पहुँचे, तब वहाँ 'पुष्पक' की शोभा देख चकित रह गये। उन्होंने देखा कि विमान में सफेद रंग के कमरे बने हुए थे, जिनमें नाना प्रकार की चित्रकारी भी थी। वह जैसा चाहे, छोटे या बड़े रूप में हो जाता था। वह सब ओर से मोतियों की जाली से ढका हुआ था। वह न अधिक ठंढा था न अधिक गरम, सभी ऋतुओं में आराम पहुँचानेवाला था। उसकी दीवारों पर तरह-तरह के बेलबूटे बने थे। उसके भीतर अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक दृश्य थे।

'पुष्पक' इतना बड़ा विमान था कि उसी पर भगवान् रामचन्द्र अपने दल-बल के साथ लंका से अयोध्या आये थे। प्रधान बानर-सेनापतियों के सिवा विभीषण भी अपने चारों मंत्रियों के साथ उस पर सवार थे। किष्किन्धापुरी में सीताजी की इच्छा के अनुसार सुग्रीव की रानियाँ भी उसी पर सवार हुई थीं। वाल्मीकीय रामायण में उसका वर्णन पढ़कर दंग रह जाना पड़ता है।

आजकल के लोग अपने देश की इन पुरानी बातों में प्रायः विश्वास नहीं करते। आजकल की नई रोशनी ने उनकी आँखों को चौंधिया दिया है। चकाचौंध में पड़ी आँखों के लिए हमारे प्राचीन साहित्य में ही दिव्य-अंजन मिल सकता है।*

—मासिक 'बालक' (युद्धांक), पटना, सन् १९४० ई०

* इस लेख के आरंभिक अंश में कुछ बातें उस समय की थीं; जब यह छपा था। अब असामयिक होने के कारण वे बदल दी गई हैं।—लेखक

महाभारत कैसे लिखा गया ?

द्वापर-युग में कृष्ण-द्वैपायन नामक एक महात्मा थे। वे पराशर मुनि के पुत्र थे। उनकी माता का नाम सत्यवती था। बालपन से ही वे तपस्या करने में लीन हो गये। इतने बड़े तपस्वी हुए कि महर्षि और ब्रह्मर्षि कहलाने लगे। तपोबल के प्रभाव से उन्हें सारी विद्याएँ प्राप्त हो गईं। ज्ञान का अनन्त भांडार उनकी मुट्ठी में आ गया। ईश्वर की सारी सृष्टि में जो कुछ गुप्त और प्रकट है, सब उन्हें स्पष्ट सूझने लगा। उन्होंने देखा कि वेदों में जो ज्ञान की राशि है उससे संसार के प्राणी पूरा लाभ नहीं उठा पाते। इसलिए उन्होंने चारों वेदों के सारांश का संग्रह करके एक उत्तम ग्रंथ तैयार करने का विचार किया। उस ग्रंथ का नाम उन्होंने 'भारत' सोचा। संसारी जीवों के कल्याण के लिए वे उस ग्रंथ के प्रचार का ढंग सोचने लगे। अभी तो उन्होंने अपने मन में ही ग्रंथ की रचना की थी, इसलिए वे अपने शिष्यों को भी नहीं पढ़ा सकते थे। तब भला संसार में उसका प्रचार कैसे हो सकता था ?

यह बात छिपी न रही कि महात्मा कृष्ण-द्वैपायन चारों वेदों के गूढ़ तत्त्वों को भली-भाँति समझ गये हैं और संसार के हित के लिए उनका प्रचार करने को बड़े उत्सुक हो रहे हैं। उस समय वेदों के सबसे अच्छे जानकार होने के कारण उनका नाम 'वेदव्यास' प्रसिद्ध हो गया था।

पितामह ब्रह्मा ने सुना कि महर्षि वेदव्यास चारों वेदों के उपदेशों का संग्रह करके एक लोकोपकारी ग्रंथ बनाना चाहते हैं। उन्होंने सोचा—वेद बड़े गम्भीर और गूढ़ हैं, ज्ञान की खान हैं, सब लोग उन्हें नहीं समझ सकते; यदि वेदव्यास के समान तपस्वी उनके पवित्र तत्त्वों को निकालकर संसार के सामने रख दें तो निश्चय ही मनुष्य-जाति का बड़ा मंगल हो।

जगत् के जीवों का महान् उपकार सोचकर ब्रह्मा उसी समय महर्षि वेदव्यास के पास पहुँचे। ब्रह्मा को अचानक अपने सामने उपस्थित देखकर वेदव्यास बड़े चकित हुए। बड़े आदर से प्रणाम करके ऊँचा आसन दिया और हाथ जोड़कर नम्रता के साथ उनके आगे खड़े हो गये।

ब्रह्मा ने वेदव्यास को अपने पास बिठाया। कुशल-मंगल पूछा, प्रसन्नता प्रकट की और अन्त में कहा—"सुना है, तुम वेदों के आधार पर कोई ग्रंथ तैयार करनेवाले हो ? बड़ा ही शुभ विचार है, तुम्हारे ही योग्य काम है।"

ब्रह्मर्षि वेदव्यास ने बड़े नम्र भाव से निवेदन किया—"भगवन्, बात तो सच है; पर काम बड़ा कठिन है। चारों वेदों के गूढ़ तत्त्वों को सब लोगों के लिए सुलभ बनाना सहज नहीं है। मैं चाहता हूँ कि वेदों के उपदेशों से सब लोग लाभ उठावें, वेदों में भरा हुआ ज्ञान सबके लिए सुलभ हो जाय। इसी अभिलाषा से मैंने मन-ही-मन एक ललित काव्य-ग्रंथ की रचना कर डाली है। उसमें भारतवर्ष के प्रसिद्ध ऋषि-मुनियों और राजा-रानियों की मनोहर कथाओं का वर्णन है। कथाओं के साथ-साथ वेदों की अमृत-

मयी शिक्षाओं का भी समावेश है। संसारी मनुष्यों को रोचक कथाएँ बहुत रुचती हैं। वे ज्ञान की कोरी बातों में दिलचस्पी नहीं लेते। उन्हें कविता पढ़ने में अधिक आनन्द मिलता है। इसीलिए मैंने काव्य के रूप में ही उपदेश-युक्त कथाएँ वर्णित की हैं।"

ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—"वाह ! एक तो मनोहर कथा, दूसरे ललित काव्य, तीसरे मधुर उपदेश; फिर क्या कहना ! इससे बढ़कर मनुष्य-जाति का उपकार क्या हो सकता है ? उत्तम शिक्षाप्रद ग्रंथ रचकर संसार में ज्ञान का प्रकाश फैलाना ही मनुष्य-जाति की सबसे बड़ी सेवा है। धन्य है तुम्हारा पवित्र जीवन !"

ब्रह्मर्षि वेदव्यासजी को ब्रह्माजी की बातों से बड़ा उत्साह मिला। कहने लगे—"भगवन्, मैंने अपने मन में जिस ग्रंथ की रूपरेखा तैयार की है उसमें केवल वेदों के उपदेशों का ही संकलन नहीं है, बल्कि उसमें सभी शास्त्रों और उपनिषदों की उपदेशप्रद बातें आ गई हैं। इसके सिवा उसमें पुराणों और इतिहासों की बातें भी हैं। भूगोल का वर्णन, ईश्वर के अवतारों की कथा, नाना प्रकार के धार्मिक विषयों की चर्चा, पुण्य-श्लोक महापुरुषों के चरित्र, अनेक देशों का दिग्दर्शन, युद्ध के नियमों का वर्णन—सब कुछ उसीमें है। आपकी सारी सृष्टि का सच्चा चित्र उसमें अंकित है। मैं चाहता हूँ कि उस ग्रन्थ को शीघ्र ही लिखवा दूँ। क्षण-भंगुर शरीर का कोई भरोसा नहीं। अगर कोई तेज लिखनेवाला हो तो मैं बोलकर लिखा सकता हूँ। लिखाने के लिए मेरे मन में बड़ा उद्वेग हो रहा है। क्या तेज लिखनेवाला कोई सुयोग्य लेखक आपकी दृष्टि में है ?"

ब्रह्माजी झट बोल उठे—"हाँ, है। गणेशजी खूब तेज लिखते हैं। शीघ्रता और शुद्धता के साथ लिखने में वे बड़े सिद्धहस्त हैं। तुम्हारे विशाल ग्रंथ के लिखने योग्य वे ही एक लेखक हमारी दृष्टि में हैं। जितनी तेजी से तुम लिखा सकोगे, उतनी ही फुर्ती से वे लिखेंगे, और सब तरह से सही लिखेंगे। तुम उन्हीं का स्मरण करो। वे ही तुम्हारा मनोरथ सिद्ध करेंगे। वे विघ्नों का नाश करनेवाले और सब सिद्धियों के देनेवाले मंगलमूर्ति देवता हैं। उनके हाथ से जो काम होगा, वह सब तरह से निर्दोष और कल्याण-कारी होगा। हम हृदय से आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हारा ग्रंथ इस संसार में सबसे प्रसिद्ध और अमर काव्य हो।"

इतना कहकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये। वेदव्यास जी उत्साह और आनन्द से गद्गद् हो उठे। उन्होंने सिद्धिदाता गणेशजी का स्मरण किया। जब गणेशजी आ पहुँचे तब व्यास जी ने बड़ी श्रद्धा के साथ उनका सत्कार किया। इसके बाद उन्हें श्रेष्ठ आसन देकर विनयपूर्वक कहा—'हे विघ्न-नाशक गणेश ! मैंने अपने मन में एक बहुत बड़ा ग्रंथ रचा है। उसका नाम मैंने 'भारत' सोचा है। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों का उसमें वर्णन है। उसी को मैं आपसे लिखाना चाहता हूँ। इसीलिए आपका स्मरण किया है। अब आप कृपा करके उसे लिखिए।"

गणेशजी बोले—"लिखने को तो मैं सहर्ष तैयार हूँ, लेकिन शर्त यह है कि जितनी तेजी से मैं लिखूँगा उतनी ही तेजी से आपको बोलते जाना पड़ेगा। अगर कहीं बीच

में मेरी कलम रुक जायगी तो मैं लिखना छोड़ दूँगा। आपकी वाणी का प्रवाह रुकने पर फिर मैं आगे न लिखूँगा। इस बात को अच्छी तरह समझ लीजिए।"

वेदव्यास जी मुस्कुराकर बोले—"अच्छा, यही सही; मगर एक शर्त मेरी भी है। जो कुछ मैं लिखाऊँगा उसे अच्छी तरह समझ कर आपको लिखना होगा। जो श्लोक मेरे मुख से निकले उसका ठीक-ठीक अर्थ समझे बिना आप कदापि न लिखें। अगर यह बात आपको पसन्द है, तो मुझे भी आपकी शर्त मंजूर है।"

वेदव्यासजी की चतुरता देखकर गणेशजी बड़े हर्षित हुए। हँसकर उन्होंने लेखनी उठाई, और लिखने को तैयार हो गये। व्यासजी बोलकर लिखाने लगे। गणेशजी की लेखनी और व्यासजी की जिह्वा से होड़-सी लग गई। दोनों ही बड़े सावधान थे। गणेशजी की लेखनी के मानों पर लग गये। व्यास जी की वाणी ने भी आँधी से बाजी लगाई।

अपनी-अपनी शर्त पर दोनों महानुभावों का पूरा ध्यान था। व्यासजी बीच में ऐसे-ऐसे कूट-श्लोक बोलते जाते थे जिनका अर्थ समझने के लिए गणेशजी को कुछ क्षण ठिठककर सोचना पड़ता था। इतने अवकाश में व्यास जी आगे के बहुत-से श्लोक बना लेते थे। इस प्रकार 'भारत' ग्रंथ का छकड़ा चल पड़ा।

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के हार्दिक आशीर्वाद से ग्रंथ पूरा लिख गया। साथ ही गणेशजी और व्यासजी की शर्तें भी पूरी हुईं। ग्रंथ का नाम पड़ा 'महाभारत'; क्योंकि वह बड़ा भारी पोथा बन गया।

महाभारत में कुल एक लाख श्लोक हैं। उनमें आठ हजार आठ सौ गूढ़ अर्थ वाले श्लोक हैं। व्यासजी ने स्वयं कहा है—"इन गूढ़ अर्थवाले श्लोकों का वास्तविक अर्थ मेरे और मेरे पुत्र शुकदेव के सिवा और कोई नहीं जानता, संजय भी जानता है या नहीं—यह कहना कठिन है।"

वास्तव में महाभारत के वे कूट श्लोक बड़े-बड़े पंडितों के लिए भी दुर्गम पहेली हैं। जिनके अर्थ निकालने में गणेशजी की बुद्धि उलझ जाती थी, उनके गोरखधन्धे में विद्वानों का फँस जाना कोई अचंभे की बात नहीं।

भला, गणेशजी के ऐसा समझदार 'शार्टहैण्डराइटर' कौन हो सकता है?

—मासिक 'बालक' वर्ष ८, अङ्क २, फरवरी १६३४ ई०

⊕

उपनिषद् की एक कहानी

'उपनिषद्' शब्द का अर्थ है गुरु के पास बैठकर ब्रह्मविद्या पढ़ना, लेकिन यहाँ उपनिषद् का मतलब है हिंदुओं की वह पवित्र पोथी जिसमें आत्मा और परमात्मा के बारे में बहुत बारीकी से छान-बीन की गई है। उपनिषदें अठारह से एक सौ आठ तक बताई जाती हैं। वे वेदों की शाखाएँ मानी जाती हैं। उनमें ब्रह्मविद्या का विचार बड़ी गहराई से किया गया है। ज्ञान की तो वे खान ही हैं वे, पर उनमें मनोहर कहानियाँ भी हैं।

'प्रश्न' नामक उपनिषद् में एक कहानी बालकों के बड़े काम की है। उसमें बतलाया गया है कि संयम-नियम के साथ गुरु के पास रहकर जब श्रद्धा-सहित सेवा की जाती है, तभी सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। जबतक गुरुकुल में रहकर विद्यार्थी शुद्ध आचरण से गुरु को संतुष्ट नहीं करता था, तबतक गुरु उसे विद्यादान नहीं देते थे। पुराने भारत में यही रीति थी।

कहानी संक्षेप में इस प्रकार है—

पिप्पलाद-नामक एक मुनि थे। उनके आश्रम में एकबार ऋषियों के छः लड़के कुछ प्रश्न पूछने के लिए आये। उनके नाम ये थे—सुकेशा, सत्यकाम, गार्ग्य, कौसल्य, वैदर्भि और कबंधी। भरद्वाज ऋषि का पुत्र था सुकेशा। सत्यकाम के पिता का नाम था शिवि। गर्ग का पुत्र गार्ग्य। अश्वल का पुत्र कौसल्य। भृगु-वंशी वैदर्भि। कत्य का पोता कबंधी।

ये ऋषि-कुमार ज्ञान के प्रकाश की तलाश में निकले थे। ये जानना चाहते थे कि आत्मा और परमात्मा क्या है। इसलिए ये पिप्पलाद मुनि के पास गये। गुरु के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए, इसलिए ये लोग यज्ञ की सामग्री लेकर गये। जंगल से लकड़ी काट ली, और लकड़ियों का गट्ठर गुरु के पास ले गये। यज्ञ करने के लिए ईन्धन ही उन दिनों बहुत बड़ी फीस था।

पिप्पलाद मुनि ने उन्हें अपने आश्रम में आया देख उनसे आने का कारण पूछा। वे बोले—"हमलोग आपसे ज्ञान प्राप्त करने, शिक्षा और उपदेश ग्रहण करने आये हैं। और, आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहते हैं।"

पिप्पलाद मुनि ने हँसते हुए कहा—"राह चलते प्रश्न नहीं पूछे जाते। आये हो, तो यहीं ठहरो, कुछ दिन मेरे साथ रहो, अपने ब्रह्मचर्य से पहले मुझे सन्तुष्ट करो। जब मैं देख लूँगा कि तुमलोग ठीक-ठीक संयम-नियम का पालन करते हो, तब तुम लोगों को विद्या-दान दूँगा। तुम लोगों को पूरे एक वर्ष तक इस आश्रम में रहकर अपने सदाचार का प्रमाण देना होगा। पर मैं यह वचन नहीं दे सकता कि जो कुछ तुम लोग पूछोगे उसका उत्तर मैं दे ही दूँगा। तुम लोगों को जो कुछ पूछना हो, सो पूछना। मगर मैं तभी कुछ बताऊँगा, जब मैं पूछी हुई बात का ठीक-ठीक जवाब जानता होऊँगा। मैं अभी यह नहीं कह सकता कि 'तुमलोग जो भी पूछोगे, सब बताऊँगा। मैं झूठ नहीं बोल सकता।"

मुनि ने कितना स्पष्ट कहा। उनकी बात में जरा भी घमंड न था। पर वह ज्ञान की खैरात नहीं बाँटते थे। जो ज्ञान पाने योग्य होता था, उसी को शिष्य बनाते थे। अब वह बात नहीं। ऋषि-कुमारों ने मुनिजी की बात मान ली। वे बड़ी श्रद्धा से आये थे। उनके मन में विद्या पाने की सच्ची लगन थी। वे गुरु की परीक्षा लेने नहीं आये थे—गुरु के ज्ञान की थाह लेना नहीं चाहते थे। यदि वे यह टटोलने आये होते कि गुरु कितने पानी में हैं, तो उनकी आशा पूरी न होती। लेकिन वे गुरु की योग्यता

में विश्वास करके भक्ति के साथ आये थे, इसीलिए उनलोगों ने गुरु की कड़ी शर्त मान ली।

साल-भर वे आश्रम में बड़े संयम के साथ टिके रहे। अपनी श्रद्धा-भक्ति और चाल-चलन से उन्होंने गुरु को वश में कर लिया। उनकी सेवा-टहल, नम्रता, और सुशीलता देखकर गुरु प्रसन्न हो गये।

ऋषि-कुमारों की तपस्या पूरी हुई। उन्होंने अपनी रुचि के अनुसार प्रश्न पूछे। गुरु ने सबको ठीक उत्तर से खुश कर दिया। उनकी शंकाएँ दूर हो गईं। वे गुरु की पूजा और स्तुति करके घर गये।

प्रश्न क्या थे, और उनका उत्तर क्या मिला, यह सयाना होने पर समझ लेना। अभी आत्मा-परमात्मा की चर्चा तुम्हें नहीं रुचेगी। इतना तो जानते ही हो कि आत्मा अमर है, परमात्मा पूज्य।

आजकल के गुरुओं में न वैसी नम्रता है और न शिष्यों में वैसी भक्ति।

—मासिक 'बालविनोद' (लखनऊ), वर्ष ११, अंक १, जनवरी १९४४ ई०

धनुष-भंग

अगहन के महीने में रामचन्द्र जी का ब्याह सीताजी से हुआ था। किन्तु आजकल जैसा ब्याह होता है, वैसा वह नहीं था। आजकल 'धन' का ब्याह होता है, उन दिनों 'बल' का ब्याह होता था।

चलन यह थी कि बेटी वाला अपने यहाँ एक सभा करता था। उसमें आने के लिए चुन-चुनकर अच्छे लोगों को नेवता देता था, और वर की बहादुरी की जाँच के लिए कोई कसौटी रक्खी जाती थी। लोग आते थे और अपनी-अपनी बहादुरी का जौहर दिखाते थे। जो बहादुरी की कसौटी पर खरा—सबसे बढ़कर 'बहादुर'—निकलता था, उसीसे ब्याह होता था। बाहुबल ही विवाह की योग्यता का सबसे बड़ा प्रमाण था।

तिरहुत के राजा 'जनक' ने भी अपनी बेटी 'सीता' के लिए अपनी राजधानी 'जनकपुर' में एक सभा की थी। उसमें वर की बहादुरी की जाँच के लिए एक बड़ा भारी धनुष रक्खा गया था। शर्त्त यह थी कि जो धनुष तोड़ेगा, उसीके साथ सीताजी का ब्याह होगा। परन्तु धनुष तो वज्र का टुकड़ा—लोहे का चना था।

अनेक देशों के राजा और राजकुमार उस सभा में आये थे। विश्वामित्र-मुनि के साथ रामचन्द्र जी भी वहाँ जा पहुँचे। किन्तु धनुष बड़ा कठोर था। बड़े-बड़े नामी वीर भी उसे न तोड़ सके—तोड़ना तो दूर रहा, कोई उठा भी न सका!

तब, विश्वामित्र-मुनि की आज्ञा से, रामचन्द्र जी उठे। उनकी कोमल अवस्था और धनुष का भारीपन देखकर लोगों को बड़ा अचरज हुआ। किन्तु रामचन्द्र जी बड़ी शान्ति से धीरे-धीरे धनुष के पास गये। बड़ी फुर्ती से उसको उठाकर दो टूक कर डाला।

सभी वीर लजाकर खिसक गये। राजा जनक के आनन्द का ठिकाना न रहा। बड़ी धूमधाम से 'रामजी' और 'सीताजी' का ब्याह हुआ—'पुरुषार्थ' के साथ 'सुन्दरता' का ब्याह हुआ—'प्रेम' के साथ 'सेवा' की शादी हुई।

—मासिक 'बालक' (लहेरियासराय, दरभंगा), वर्ष ३, अंक ११, विक्रम-संवत् १९८५

विद्या की महिमा*

संसय भरम विभावरी, ताहि न सकै सताइ।
सदा उदय विद्या-तरनि, मन-सरोज बिगसाइ॥

भव-सागर का रत्न विद्या ही है। यह संसार बीहड़ जंगलों से ढके हुए दुर्गम पर्वत के समान है, जिसमें विद्या-रूपी रत्न की खान है। जैसे खान से रत्न निकालने के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता है, वैसे ही संसार में कठिन परिश्रम से ही विद्या-रत्न प्राप्त होता है। परिश्रम से जी चुराने पर विद्या नसीब नहीं होती।

विद्या धन उद्यम बिना, कहो जु पावे कौन।
बिना डुलाये ना मिले ज्यों पंखा की पौन॥

विद्या-रत्न की खान पुस्तक भी है। मननशीलता के अनवरत परिश्रम से वह रत्न हस्तगत होता है। निरन्तर अभ्यास की खराद पर चढ़ाकर उस रत्न का परिष्कार किया जाता है। तब वह कण्ठ का भूषण बनता है। फिर बाहरी गहनों की जरूरत नहीं पड़ती।

पंडितों ने बतलाया है कि विद्या शुद्ध घी और साफ रूई की दबीज बत्ती से जलाया हुआ सोने का दीपक है, जो दृढ़ परिश्रम की दीवट पर बलता है—संदेह, शंका, जड़ता, अज्ञता आदि पतंग उसमें जलकर भस्म हो जाते हैं। मनुष्य के मानस-मंदिर में ईश्वर के दिये हुए दया, क्षमा, सन्तोष, धैर्य्य आदि अनेक अच्छे-से-अच्छे गुण हैं। किन्तु विद्यारूपी दीपक के बिना न तो वहाँ का अन्धकार दूर होता है और न टटोलने से भी इन बहुमूल्य गुणों का पता लगता है। जैसे सूरज-चाँद की रोशनी के बिना कोई फूल अच्छी तरह खिल नहीं सकता वैसे ही विद्या का सहारा पाये बिना सुन्दर-से-सुन्दर गुण का भी पूरा विकास नहीं हो पाता।

एक अनुभवी विद्वान् का कथन है कि विद्या जगत्पावनी गंगा से भी अधिक पवित्र है। यदि संसार में विद्या की विमल धारा न बहती तो सुख का समुद्र सूख जाता। जिन लोगों ने विद्या-मन्दाकिनी में डुबकियाँ लगाकर अपना हृदय नहीं पखारा है, उन्हें केवल पुण्य-नदियों में स्नान करने से सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। नदियाँ जहाँ बहती हैं वहीं

*इस लेख के मूल रूप का अधिकांश काट दिया गया है; क्योंकि अन्य बालोपयोगी लेखों में वैसी ही बातें आ चुकी हैं। —लेखक

सुख-सम्पत्ति देती हैं, पर विद्या-रूपी नदी भूमण्डल-भर में पसरकर बहती और सर्वत्र सुख-सम्पत्ति की वृद्धि करती है।

विद्यानुरागी राजा भोज की राज-सभा में एक पण्डित ने कहा था कि हे देव! न तो मेरे पास पालकी है, न गाड़ी, न घोड़ा, न सेवक, न भूषण, न सुन्दर वस्त्र ही; पर साहित्य की सेवा करनेवाले विद्वानों के चित्त को प्रसन्न करनेवाली एकमात्र निर्दोष विद्या ही है।

विद्या मनुष्य को माता के सदृश लालती-पालती है, पिता के ऐसा पग-पग पर भलाई करती है, पत्नी के समान उदास मन को प्रसन्न करती है, देश-देशान्तर में यश फैलाती है, समाज में प्रतिष्ठा दिलाती है और अवकाश के क्षणों में हार्दिक आनन्द प्रदान करती है।

पुरानी कथा है कि राजा परीक्षित की सभा में प्रवचन करने के लिए जब व्यास के पुत्र शुकदेव पहुँचे तब सब ऋषि-मुनि उठ खड़े हुए। जब राजा ने आश्चर्यित होकर पूछा कि इस छोटे मुनि-नन्दन का इतना आदर बड़े-बड़े तपस्वियों ने क्यों किया, तब सब लोगों ने उत्तर दिया कि मनुष्य की प्रतिष्ठा विद्या से ही होती है—यह बाल-योगी ज्ञान में हमलोगों से बहुत श्रेष्ठ है, इसकी विद्याबुद्धि का सम्मान किया गया है।

विद्या की आधार-शिला पुस्तक के विषय में कहा गया है कि पुस्तक ही विद्या की कामधेनु है। वह खेद-खिन्नता खाती है, सुख-सौभाग्य लुटाती है और परम पद को पहुँचाती है।

विद्या-धन ही ऐसा धन है जो जितना ही खर्च होता है, उतना ही—दिन-दूना रात-चौगुना—बढ़ता जाता है। इसमें गोतिया-दायाद हिस्सा नहीं बाँट सकते। इसे चोर भी नहीं चुरा सकता। राजा रुष्ट होकर छीन भी नहीं सकता। न आग इसे जला सकती है और न जल इसे डुबा सकता है। बहुत अधिक होने पर भी यह भार नहीं प्रतीत होता। यह विद्या-धन जिसके पास है, उसके लिए परदेश भी अपने घर से बढ़कर है।

शास्त्रकारों ने विद्या को ही मनुष्य का नेत्र माना है। जिसके यह आँख नहीं, उसकी चमड़े की आँख निगोड़ी बेकार है। वह आँख रहते अन्धा है। वह बिना सींग-पूँछ का पशु है।

विद्याहीन रूपवान की सुघराई भी बिना नोन-पानी की हो जाती है। जो विद्या पढ़ने में आनाकानी करके जी चुराकर मूर्ख रह जाता है, वह कुत्ते की टेढ़ी पूँछ के समान निकम्मा हो जाता है।

—मासिक 'कायस्थ-महिला-हितैषी' (अयोध्या); वर्ष १, संख्या १, ज्येष्ठ, १९७५, १९१८ ई०

विनय

'विनय' का अर्थ नम्रता है। नम्रता का अर्थ है, स्वभाव की कोमलता। घमंड का न होना ही नम्रता है। मनुष्य को सचमुच मनुष्य बनाने के लिए जिन अच्छे-अच्छे गुणों की जरुरत है, उनमें 'विनय' एक प्रधान गुण है। विनय शीतल जल है। जहाँ विनय-रूपी जल है, वहाँ क्रोध की आग नहीं धधकती। यह जल दूसरों को भी क्रोध की ज्वाला में भस्म होने से बचाता है।

तुम अपने हृदय से अभिमान को विदा करो। चित्त में कोमलता को आसन जमाने दो। वाणी में मिठास और सचाई को बसाओ। दिल से छिछोरपन तथा कुटिलता दूर करो। 'विनय' की असली झलक तब पैदा होगी।

बादलों का झुण्ड जब झुक पड़ता है तब आकाश की शून्यता छिप जाती है। उसी तरह, जब मनुष्य में विनय का विकास हो जाता है, तब उसके सारे दोषों पर परदा पड़ जाता है।

विद्या से बुद्धि बढ़ती है। बुद्धि से विनय उपजती है। जिसमें बुद्धि है, किन्तु विनय नहीं; समझो कि उसके पास मणि है, लेकिन उसमें तनिक भी चमक नहीं है। जो विनयी है, उसके सभी गुण आपसे-आप जगमगाते रहते हैं।

नदी-तीर का बेंत, उसकी उमड़ी हुई तेज धारा के सामने, सिर नवा लेता है। धारा से पीछा छूटने पर फिर जैसा-का-तैसा खड़ा हो जाता है। पुनः उसी तट का पेड़, तनकर खड़ा रहने के कारण, जड़ से उखड़कर, धारा की चपेट में, बह जाता है। ऐसे ही, बड़ों के सामने घमण्ड में मतवाला होकर अकड़ने से नाश होते देर नहीं लगती।

दुष्टों पर भी विनीत भाव से शासन किया जा सकता है। आहिस्ता-आहिस्ता उन्हें भी विनय का पाठ पढ़ा देना असंभव नहीं है। विनयी मनुष्य को शान्तभाव से रास्ते में चलना चाहिए। धीर-गंभीर चाल का प्रभाव मन्द लोगों पर भी पड़ता है। सब लोगों से सरल और नरम बचन बोलना सीखो; मिठबोलिया जगजितैया होता है। बड़ों से अदब का बर्ताव करो। गुरुजन का आदर करने से बढ़न्ती होती है। विनय का मुकुट सिर पर धर लेने से सब गुणों के राजा बन जाओगे।

जब पेड़ फलों के बोझ से लद जाता है तब अपना मस्तक नीचे की ओर झुका लेता है। जब कोई लता फूलों के भार से नवती है तब ऊपर से नीचे लटक पड़ती है। जल से भरे मेघ भी पृथ्वी तक लटके हुए नजर आते हैं। ऐसा होने से पेड़ और लता तथा मेघ की सुन्दरता चौगुनी बढ़ जाती है। "**बरसहिं मेघ भूमि नियराये, जथा नवहिं बुध विद्या पाये**"। तुमलोगों के रूप और ज्ञान की शोभा भी तब अधिक बढ़ जायगी जब विनय को अपने गले का हार बना लोगे। प्रायः यह देखा गया है कि विद्या-बुद्धवाले मनुष्य जहाँ कठिनाई से पहुँचते हैं, वहाँ विनयी मनुष्य बेखटक पहुँच जाते हैं।

जो विनय का तिलक लगा लेता है, उसकी तमाम पैठ हो जाती है। जो डींग हाँकता और ऐंठता चलेगा, उसे सब जगहों से मुँह लटकाये छूछा ही लौटना पड़ेगा।

मगर, विनयी होने का मतलब यह कभी नहीं है कि वीरता और निर्भयता से बिलकुल हाथ धो दिया जाय। डरपोक बनकर और अपने को नीच या हीन समझकर सबके सामने अदब करने को ही विनय कहते हैं—ऐसा सपने में भी समझना भारी भूल है, अपमानों को सहकर दाँत दिखाते रहना विनय नहीं है। जिस विनय में वीरता नहीं, उसको कायरता कहते हैं।

कमजोर दिल का आदमी विनयी नहीं हो सकता। जिसका मन अपने वश में नहीं है, दूसरों को अपने गुण से वश में कर लेना उसके बूते से बाहर है। अपने गुण-गौरव को हृदय में छिपाकर, कलेजे को खूब प्रौढ़ बनाकर, सब तरह से निडर होकर, साहस के सहारे धीरज पर भार देकर, शिष्टता और सुशीलता के साथ, शुद्ध हृदय और प्रसन्न मन से, दूसरों के सामने विनय प्रकट करना ही मनुष्य के लिए उचित है। ऐसा ही करने से आत्म-गौरव की रक्षा होगी।

अपने ही मुँह अपनी प्रशंसा करने से प्रतिष्ठा नहीं मिलती। अपनी बड़ाई आप करना विनयी का लक्षण नहीं है। वह तो अपनी प्रशंसा सुनकर संकोच में पड़ जाता है, गड़ जाता है। जब तुम अपने गुणों को छिपाये रहोगे तब बरबस चारों ओर उनकी चर्चा चल पड़ेगी। जब ओछे आदमी के ऐसा गुणों को छींटते फिरोगे तब एक ही मुट्ठी में सब गुण बाहर बिखर जायँगे। बस, गुण का महत्त्व काफूर हो जायगा। तुम कौड़ी के तीन हो जाओगे।

पुराने ग्रन्थों के पन्ने उलटने पर यह मालूम होता है कि आदर-मान और बड़प्पन पाने का कारण विनय ही है। महाराज रघु संसार को जीतकर भी विनयशील ही बने रहे। रामचन्द्रजी ने विनय की महिमा दिखलाकर महाक्रोधी परशुराम को पानी-पानी कर दिया। लंका जलाने, समुद्र लाँघने और सीता की सुधि लाने के कारण हनुमानजी की बड़ी प्रशंसा होने लगी। उन्होंने सहज, शील और विनय के साथ शीश झुकाकर अपनी बड़ाई को आशीर्वाद के समान माथे पर चढ़ा लिया—कह दिया कि यह तो रामचन्द्रजी के प्रताप की बलिहारी है। राजा पुरूरवा ने केशी राक्षसी के पंजे से जब उर्वशी अप्सरा की रक्षा की, तब गन्धर्वों के राजा चित्ररथ ने उनकी बड़ी स्तुति की। राजा ने विनय-पूर्वक कहा—इसमें मेरी करनी कुछ नहीं है, यह तो केवल इन्द्र के पराक्रम का फल है।

जबतक मनुष्य विनयशील नहीं बनता तबतक वह सबकी आँखों में खटकता रहता है। जो विनयशील है, उसे सब लोग प्यार की दृष्टि से देखते हैं। विनयी बनने से मनुष्य में पात्रता (योग्यता) आ जाती है। अच्छे लोग सुपात्र को अपना गुण देने लग जाते

हैं। धीरे-धीरे सब अच्छे गुणों का सञ्चय विनयी में हो जाता है, जैसे गहरी जगह में चारों तरफ का पानी एकत्र हो जाता है। *

सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा, जिमि सद्‌गुन सज्जन पहँ आवा।

—(तुलसीदास)

—मासिक 'विद्या' (गया); भाग १, संख्या १, जून, १९१७ ई०

नेक बर्ताव

यह समझाने की जरूरत नहीं है कि भले बर्ताव से पराया भी अपना सगा बन जाता है और बुरे बर्ताव से अपना सगा भी पराया और दुश्मन बन जाता है। यह सब लोग जानते हैं कि चिड़िया और जानवर भी अपने हमदर्दों को पहचानते हैं, आदमी की तो कोई बात ही नहीं। सरकसों में तो बड़े-बड़े डरावने जानवर भी प्यार और पुचकार से अजीब करामात कर दिखाते हैं।

सुग्गा नमक-हराम चिड़िया कहलाता है, लेकिन वह भी अच्छे बर्ताव के वश में होकर अपने मालिक के हाथों पर खुला बैठा फिरता है। बहुत-से शौकीन आदमी अपने बढ़िया बिछावन पर बिल्ली और नेवले को बगल में लेकर सोते हैं। गाय, बैल, घोड़े, बकरे, कुत्ते, मेड़ वगैरह जानवर तो यहाँ तक पोस मानते हैं कि इनकी नेकी देखकर बड़ा अचरज होता है। लेकिन ये तो पालतू जीव हैं, इनका पोस मानना कोई अचरज की बात नहीं है। अलबत्ता हाथी, भालू, बाघ, चीता वगैरह जंगली जानवरों की अजब नेकनीयती देखकर जरूर ही अचरज होता है। नेक सलूक एक ऐसी चीज है, जिसकी बदौलत आदमी चाहे तो जहरीले साँप को भी अपना दोस्त बना सकता है।

सुना जाता है कि पहले जमाने में हिन्दुस्तान के ऋषि-मुनियों के आश्रम में खूँखार जानवर भी बेखटक घूमा करते थे—जंगलों में पेड़ों की छाँह में बाघ और हिरन एक साथ ही आराम करते थे। महात्मा गाँधी के 'साबरमती-आश्रम' में रहनेवाले उनके एक साथी ने अपनी एक किताब में लिखा है कि एक दफा महात्माजी चुपचाप बैठे कुछ लिख रहे थे और उनकी बगल में ही एक भयानक साँप फन फैलाये जीभ लपलपा रहा था; लेकिन जब महात्माजी की नजर उधर इशारे से खींची गई, तब उन्होंने मुस्कुराकर कहा कि इसे छेड़ो मत, ठंडक पाकर यहाँ आ बैठा है! बस, थोड़ी देर में वह साँप चुपचाप महात्माजी की पलथी के ऊपर से सरककर झट निकल गया। क्या अब भी कोई कह

*'शिक्षा' (पटना) में प्रकाशित 'नम्रता और सुशीलता' (१९१६ ई०) इसी लेख में सम्मिलित है। दोनों लेखों के मिलाने से कुछ सामग्री घटी-बढ़ी है। पर नया कुछ नहीं जोड़ा गया है। शैली में भी कोई हेरफेर नहीं किया गया है। —लेखक

सकता है कि हिन्दुस्तान के ऋषियों के बच्चे बाघिनों की गोद में या बाघों की देह पर लोट-पोट नहीं करते थे ?

बात असल यह है कि नेक दिल और अच्छे खयाल का सब जीवों पर जरूर ही अच्छा असर पड़ता है—चाहे आदमी हो या जानवर।

सुना गया है कि एक अँगरेज औरत को तो साँप पालने का शौक है। वह जहरीले साँपों के मुँह को चूम लेती है। कितने ही अँगरेज और राजा-रईस बाघों और चीतों को कुत्तों की तरह पालतू बनाकर उन्हें अपनी कुर्सी या पलँग के नजदीक बिठाते और उनके बदन पर हाथ फेरते हैं। यह कोई अनहोनी बात नहीं, आँखों-देखी घटना है।

बन्दर जैसे नटखट जानवर भी अच्छे बर्ताव पर काबू में आ जाते और पालनेवाले के पीछे-पीछे घूमते और उसका हुक्म बजाते हैं। असल में 'नेक बर्ताव' एक ऐसी चीज है जिससे आदमी खतरनाक जानवरों तक को भी अपना साथी बना लेते हैं।

—मासिक 'होनहार' (लहेरियासराय); सन् १९३७ ई०

स्वयंसेवक

जो अपनी इच्छा से, मन में कोई स्वार्थ न रखकर, श्रद्धा के साथ दूसरों की सेवा करता है, वही स्वयंसेवक है। स्वयंसेवक का काम बड़ी जवाबदेही का है। जैसे सेना में सिपाही, वैसे समाज में स्वयंसेवक। अपने कर्त्तव्य के पालन में सिपाही चौकस होता है। जहाँ तैनात कर दिया गया, आखिरी दम तक वहीं डटा रहेगा। जान चली जाय, बला से, मोर्चा न छोड़ेगा। धार पर डटे रहना ही उसका ध्येय हो जाता है।

स्वयंसेवक में भी ऐसी ही मुस्तैदी चाहिए। जिम्मेवारी को जान से भी बढ़कर समझना—सौंपे हुए काम को तत्परता से पूरा करना स्वयंसेवक का प्रधान कर्त्तव्य है। किसीके ताकीद करने की जरूरत न रहे—चेतावनी का मौका ही न आने दे, तब तारीफ।

ऐसा स्वयंसेवक होना कठिन नहीं तो सहज भी नहीं। अभ्यास और अनुभव से क्या नहीं होता ? अभ्यास से ही साहस और दृढ़ता बढ़ती है तथा अनुभव से सफलता सुलभ होती है। अभ्यास और अनुभव के बिना सेवा में सफल होना कठिन है।

इसीलिए स्वयंसेवकों को नाना प्रकार की शिक्षाएँ दी जाती हैं, कष्ट सहने का अभ्यास करवाया जाता है, कठिनाइयों का सामना कराके अनुभवी बनाया जाता है। फिर तो वे लहराती हुई अगाध गंगा को निडर होकर तैर जाते, धधकते हुए मकान के अन्दर से माँ के प्यारे बच्चे को निकाल लाते, सावन-भादों के जल-प्रलय में बेखटके किश्तियाँ छोड़कर डूबतों की जान बचाते फिरते, रोग की पीड़ा से कराहते हुए रोगी की सेवा-शुश्रूषा करके उसे शान्ति देते और असहायों की सहायता कर लोक का हाहाकार मिटाते हैं। इस प्रकार लोक-कल्याण के अनेक कार्य करके वे समाज का संकट-निवारण कर अपना जीवन चरितार्थ करते हैं।

किन्तु, आकस्मिक विपत्तियों के समय सेवा और सहायता पहुँचानेवाले स्वयंसेवकों के सिवा, ऐसों की भी जरूरत है, जो निरन्तर समाज-सेवा में लगे रहें। ऐसे समाज-सेवक सब लोग बन सकते हैं। थोड़ा समय निकालकर, शान्त भाव से, नियमित सेवा-कार्य करना सबके लिए सहज है। सेवा की लगन सच्ची हो तो कोई अड़चन नहीं पड़ सकती। केवल अदम्य उत्साह चाहिए। सेवा करने की निष्ठा चाहिए। और चाहिए सबके प्रति स्वाभाविक बन्धुत्व।

बाढ़, आगलगी, मेला, महोत्सव, महामारी अथवा दैवी दुर्घटना के समय अस्थायी सेवा की आवश्यकता होती है। किन्तु, समाज में प्रतिदिन ही सेवा की दरकार है। स्थायी सेवा-प्रणाली से समाज की उन्नति सम्भव है। अचानक होनेवाली दुर्घटनाओं के समय छोटे-बड़े जनों पर जो बीतती है, उससे त्राण पाने के लिए सब सहायता चाहते हैं। किन्तु, समाज के अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जो सदा के लिए आश्रयहीन हैं, जिन्हें नियमित सहायता की जरूरत है। यदि ऐसों की सहायता करनेवाला एक दल प्रत्येक स्थान में संघटित हो जाय, तो देश और जाति का महान् उपकार हो। श्रीरामकृष्ण-मिशन आदि संस्थाओं में ऐसे ही लोकसेवकों का दल चुपचाप जन-सेवा करता है।

समाज में ऐसी असंख्य विधवाएँ हैं, जो केवल आश्रय न पाने के कारण कलंकिनी बन जाती हैं, यद्यपि उनके लिए आश्रय के स्थान देश में कई बने हुए हैं। उनको कोई ठीक राह बतानेवाला नहीं मिलता। फलतः वे पथभ्रष्ट हो जाती हैं—समाज के हृदय में ज्वाला बनकर धधकने लगती हैं। बहुत-से बालक भी ऐसे हैं जो फीस और पुस्तक के विना पढ़ नहीं सकते, भोजन-वस्त्र के विना कष्ट पाकर हट्टे-कट्टे नहीं होते, अनाथ होने के कारण अपने समाज से बिछुड़ जाते हैं। उनके लिए 'दस-पाँच की लाठी, एक का बोझ' कहावत चरितार्थ करना समाज के प्रत्येक सेवक का धर्म है।

इस देश में अनेक रोगी और गरीब ऐसे पड़े हुए हैं, जिनकी आह किसीके कानों तक नहीं पहुँचती। दवा-दारू की तो बात ही क्या, उन्हें एक घूँट जल देनेवाला भी कोई नहीं। पथ्य विना, वस्त्र विना, आश्वासन विना, वे कीड़ों की मौत मर जाते हैं, कोई जानता भी नहीं। ऐसी दयनीय दशावाले देशवासियों की खबर लेना सच्चे 'स्वयं-सेवक' का ही काम है।

देहातों और शहरों में रहनेवाले किसान और अशिक्षित लोग सफाई की मामूली बातें तक नहीं जानते, कमखर्ची के सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं रखते, दुनिया की धोखा-धड़ी से वाकिफ नहीं होते। इसलिए रोग, दरिद्रता और विपत्ति के पंजे में फँसकर कष्ट पाते हैं। यदि उन्हें साफ-सुथरे ढंग से रहने के फायदे बताये जायँ, फिजूलखर्ची के शिकार होने से बचाया जाय और उनके रक्त चूसनेवालों का यथार्थ परिचय दिया जाय, तो उनका जीवन बहुत-कुछ शान्तिमय हो सकता है। गरीबों और बेबसों की शान्ति में ही स्वराज्य का उदय है।

—मासिक 'स्वयंसेवक' (कलकत्ता); वर्ष १, संख्या २, सन् १९२६ ई०

भाई-बहन

भाई और बहन का नाता, अगर ठीक-ठीक निबाहा जाय तो, सचमुच बहुत पवित्र और मधुर है। कोई नाता अच्छी तरह निबाहना बड़ा कठिन है—सबसे पार नहीं लगता।

आपस का नाता निबाहने को ही प्रेम या प्रीति कहते हैं। नाता निबाहने में कुछ घटी भी होती है—कष्ट भी होता है। मगर नाता तो निबाहने की ही चीज है। हाँ, ताली दोनों हाथों से बजती है, चुटकी भी बजती है दो अँगुलियों से ही। भाई-बहन दोनों जब अपना-अपना कर्त्तव्य समझें तब कहीं माता की कोख की लाज रह सकती है।

संसार में जो अपने सगे-सम्बन्धी और कुटुम्बी हैं, उनके साथ यथायोग्य व्यवहार-बर्ताव न करने से समाज में कोई आनन्द नहीं रह जायगा। सबसे मिलजुलकर रहने वाला मनुष्य ही असली मनुष्य है। मगर मनुष्य केवल मनुष्य से ही, पशु-पक्षी और वृक्ष-लता से भी, नेह निबाह सकता है—पिशाच या राक्षस से नहीं।

माँ-बाप और बेटा-बेटी में, भाई-भाई में, बहन-बहन में, ससुर-दामाद में, सास-पतोहू में, भाभी-ननद में, भाई-बहन में, पति-पत्नी में, मामा-भानजे में, मालिक-नौकर में, गुरु-चेले में, इसी प्रकार पड़ोसियों और सहपाठियों तथा हिले-मिले साथी-संगियों में, आपस का जो बिना छल-कपट का भाव-बर्ताव होता है, उसी को यथा-योग्य स्नेह, प्रीति, प्रेम श्रद्धा आदि कहते हैं। जो इस बात को नहीं मानते वे समाज की कोई भलाई नहीं कर सकते—उनका जन्म और जीवन व्यर्थ है।

बड़ों का छोटों पर नेह-छोह और बड़ों में छोटों की श्रद्धा न रहे तो समाज में सुख-शान्ति नहीं रह सकती। बड़ी बहन ने छोटे भाई को प्यार न किया, और छोटे भाई ने बड़ी बहन से नेह-नाता नहीं निबाहा, तो दोनों ने माता की कोख खराब की। उसी तरह, बड़े भाई ने छोटी बहन को स्नेह से न सींचा और छोटी बहन ने बड़े भाई को बाप-सरीखा न माना, तो उनकी भी माता सचमुच बाँझ ही रह गई।

केवल सन्तान पैदा कर देने से ही माता की कोख नहीं जाती। सपूत और सपूती की पैदाइश से ही माता की कोख फलती है। सगे भाइयों या सगी बहनों या सगे भाई-बहनों में जहाँ अटूट नेह-नाता न हो, वहाँ समझना चाहिए कि उनकी माता निपूती ही है। सगी सन्तानों के आपसी मेल-जोल में मिठास होने से ही माता की कोख उजियार होती है।

भारतवर्ष में भाई-बहन के पवित्र सम्बन्ध की महिमा कातिक सुदी दूज (भैया-दूज) के त्योहार से प्रकट होती है। आज भी भैया-दूज के दिन भाई-बहन आपसी नाते की गाँठ को प्रेम-जल से सींचते हैं। पुराण की कथा है कि उस दिन यमराज-जैसे क्रूर देवता भी अपनी बहन यमुना के पास जीमने जाते हैं। इसीलिए उस दिन यमुना के जल का दरस-परस करने वाला मनुष्य यमदूतों के डर से छुटकारा पा जाता है। इस

कथा का असली भेद यही है कि भाई-बहन का प्रेम इस धरती पर स्वर्ग को भी उतार सकता है।

जब से अँगरेज इस देश पर राज करने लगे तब से परिवार (Family फेमिली) का अर्थ ही बदल गया। बदल ही नहीं गया, सिकुड़ कर तंग भी हो गया। परिवार (फेमिली) में केवल पति-पत्नी और उनके लड़के-लड़कियों की ही गिनती होने लगी। अँगरेजी कायदे के मुताबिक भाई-बहन, माता-पिता आदि परिवार में शामिल नहीं समझे जाते। इस कायदा-कानून ने भाई-बहन के रिश्ते को बहुत धक्का पहुँचाया। आज भी सरकारी नियम वैसा ही है। इसका फल यह हुआ है कि जिन लोगों पर अँगरेजी का गाढ़ा रंग चढ़ा, उनके यहाँ भाई के परिवार से बहन का नाता ढीला पड़ गया और बहन के परिवार से भाई का नाता टूट चला। फिर भी, जिनपर अँगरेजियत का असर नहीं है उन हिन्दू-गृहस्थों के परिवार में आज तक भाई-बहन का वही पुराना सम्बन्ध चालू है जो भारत में अनेक युगों से चलता आ रहा है।

—मासिक 'चुन्नूमुन्नू' (पटना); 'भाई-बहन-विशेषांक', वर्ष २, अंक १, सन् १९५१ ई०

आदर्श बालक के लक्षण

'आदर्श' शब्द का एक अर्थ है 'आइना'—वह शीशा, जिसमें चेहरा देखा जाता है। आइना या शीशा जब खूब साफ रहता है तभी उसमें मुखड़ा झलकता है। शीशे पर धब्बा या धूल हो तो मुँह साफ नहीं नजर आता।

'आदर्श' शब्द का दूसरा अर्थ है 'टीका'—वह सरल अर्थ या व्याख्या जिससे किसी ग्रंथ या पुस्तक के शब्दों और वाक्यों का भाव ठीक-ठीक मालूम हो जाय। जैसे—तुलसीदास की रामायण की टीका या किसी कवि के काव्य का आदर्श। पाठक को कवि या लेखक की रचना का मतलब समझाने के लिए जो कुछ लिखा जाता है वह 'टीका' या 'आदर्श' कहलाता है। यदि मूल रचना का भाव अच्छी तरह 'आदर्श' में नहीं प्रगट हुआ तो वह सचा 'आदर्श' या शुद्ध 'टीका' नहीं है।

'आदर्श' का तीसरा अर्थ है 'नमूना'। नमूना देखकर बहुत-सी अच्छी चीजें तैयार की जाती हैं। सफल कारीगर वही है जो अपनी बनाई हुई चीज को हूबहू नमूने के समान बना दे। किसी नमूने की नकल पर कोई चीज बनाकर उस नमूने से ठीक मिला देना बड़ी कठिन कला है। जो कला में कुशल होता है वह नमूने से मिलती-जुलती ही नहीं, कभी-कभी नमूने से भी बढ़ी-चढ़ी चीज बना देता है

यदि तुम आदर्श बालक बनना चाहते हो, तो आइने की तरह अपने तन-मन को साफ रखो। शरीर को स्वच्छ रखने से स्वास्थ्य सुन्दर रहता है। शरीर को साफ रखने की ओर तुम्हारा झुकाव होगा, तो तुम जिस स्थान में रहते हो उसको भी साफ रखोगे; अपने कपड़ों और अपनी किताबों को भी साफ रखोगे, जिन चीजों का तुम रोज

व्यवहार करते हो उन सबको भी साफ रखोगे; तुम्हारी सफाई की आदत तुम्हारे जीवन को सुन्दर और सुखी बना देगी; तुम रोगों से तो बचोगे ही, समाज में भी प्रतिष्ठा पाओगे।

इस तरह, मन की सफाई, हृदय की पवित्रता, चित्त की शुद्धता भी तुम्हारे जीवन को आदर्श बनाने के लिए बहुत जरूरी है। तुम्हारे तन-मन के दर्पण में ही तुम्हारा असली रूप साफ झलकेगा। यदि वह दर्पण मलिन है तो तुम्हें देखकर किसी को यह नहीं सूझेगा कि तुम मनुष्य हो या पशु। मन की सफाई से ही तुम्हारी बातों और आदतों में भी सफाई हो सकती है। बात की सफाई का मतलब यह है कि तुम्हारी हरएक बात मीठी हो, उसमें घमंड और छल-कपट न हो, उससे किसी का दिल न दुखे, उसमें लोभ या डाह की गंध न हो। आदर्श बालक की बात-बात में नम्रता और मिठास होनी चाहिए। फिर आदतों की सफाई का भी यही मतलब है कि खाने-पीने में, सोने-बैठने में, लिखने-पढ़ने में हमेशा सफाई का खयाल रखो। तुम्हारे खा चुकने के बाद तुम्हारी थाली देखकर यह अन्दाज किया जा सकता है कि तुम्हारी आदतों में गन्दगी अधिक है या सफाई। थाली के चारों ओर जूठा अन्न बिखेर देना गन्दी आदत है। बिना पैर धोये और बिछावन झाड़े बिस्तर पर सोना-बैठना मनहूस आदत है। सफाई-सुघराई से न लिखना और पुस्तकों के पन्ने तथा जिल्द को गन्दा रखना बहुत बुरी लत है। जिस बालक का मन साफ होगा, वह सफाई से खायेगा, सफाई से सोयेगा, सफाई से लिखेगा और अपने कपड़े-लत्ते, किताब-कलम-दावात की सफाई पर भी ध्यान रखेगा। ऐसे ही बालक का जीवन निर्मल दर्पण के समान होगा, जिसमें उसके भविष्य के रूप की झलक-झाँकी स्पष्ट दीख पड़ेगी। वही आदर्श बालक कहलायेगा।

अब 'टीका' पर विचार करो। वह मूल रचना का भाव झलका देती है; तुलसीदास की रचना में जो रस भरा हुआ है उसे निकालकर तुम्हें पिला देती है; जो आनन्द कविता के भीतर छिपा रहता है उसको वह पाठक के हृदय तक पहुँचा देती है। तभी वह सच्ची टीका है—सच्चा आदर्श है। जब तुम भी अपने वंश के मूल पुरुषों, अपने पूर्वजों या पूर्व पुरुषों की प्रतिष्ठा को ठीक-ठीक निबाहोगे—उनके यश और गौरव को बराबर कायम रखोगे, तब तुम भी अपने कुल की आदर्श सन्तान—अपने बाप-दादा का बड़प्पन निबाहनेवाले आदर्श वंशधर कहे या समझे जाओगे। तुम्हारे गुरुजनों के स्वभाव में जो गुण हैं, उन्हें जब तुम भी अपने स्वभाव में उतार सकोगे तब तुम आदर्श कहे जाने योग्य बनोगे। तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे दादा-दादी की सेवा करते हैं और तुम उनकी देखादेखी भी अपने माँ-बाप को रोज प्रणाम तक नहीं करते। तुम्हारे पिता नित्य हरिकीर्तन करते हैं और तुम कभी भगवान का नाम भी नहीं लेते। तुम्हारे पिता बहुत अच्छे वक्ता या लेखक हैं और तुम दोनों में से एक भी बनने का जतन या अभ्यास नहीं करते। भला तब तुम आदर्श कैसे बन सकते हो ? सोचो तो सही।

'नमूना'-वाली बात बिलकुल साफ है। तुम्हारे देश में, समाज में, साहित्य में नमूनों की क्या कमी है, अनगिनत नमूने हैं— सैकड़ों साँचे हैं। जो 'नमूना' या 'साँचा' तुम्हें पसन्द हो—तुम्हारे मन को रुचता हो, तुम्हरे दिल को अपनी ओर खींचता हो, उसीको अपनाओ। तुम हृदय से जो कुछ भी बनना चाहोगे, बन जाओगे। तुम्हारे देश में बड़े-बड़े वीर, त्यागी, विद्वान्, संत, भक्त, नेता आदि हो चुके हैं और आज भी है। तुम्हारे साहित्य में—रामायण और महाभारत में, भागवत आदि पुराणों में—अनेक ज्ञानी, दानी, तपस्वी, योद्धा और परोपकारी महापुरुषों की चर्चा है। तुम्हारी पाठ्य पुस्तकों में भी महात्माओं का गुणगान मिलता है। तुम उनमें से किसी एक को भी 'नमूना' मानकर, उन्हीं की जिन्दगी के साँचे में अपने आपको ढालो। बस, तुम आदर्श बन जाओगे—तुम्हारा भविष्य बन जायगा। गान्धीजी का नाम और गुण तुम बहुत सुनते और पढ़ते हो, मगर कभी यह नहीं सोचते कि उनका नाम कैसे जग-जाहिर हुआ—उनके गुण का देश-विदेश पर कितना असर हुआ। यदि तुम उनके एक भी गुण को अपने आचार-व्यवहार में ला सकते, तो तुम अवश्य आदर्श बालक कहलाने योग्य हो जाते। राम-लक्ष्मण-भरत की कहानी तुमने बहुत बार सुनी और पढ़ी होगी। उनमें जैसा भाईचारा था वैसा तुम्हारा भी अपने भाइयों के साथ है या नहीं, इसपर थोड़ी देर विचार करो। जैसे तालाब में कमल का फूल देखकर चित्रकार कागज पर वैसा ही उरेहता है वैसे ही तुम भी अपनी पसंद का नमूना चुनकर अपने जीवन को गढ़ो। नमूना चाहे कोई भी हो, राम या कृष्ण, भीष्म या अर्जुन, बुद्ध या महावीर, विवेकानन्द या रामतीर्थ, गान्धी जी या मालवीय जी। ऐसे ही महापुरुषों के जीवन से तुम्हें सच्चे नमूने मिलेंगे। उन्हीं में से जिसकी ओर तुम्हारे दिल-दिमाग का झुकाव हो, उसीके सहारे अपनी जिन्दगी को सँवारो। निश्चय ही तुम आदर्श बालक हो जाओगे।

—मासिक 'चुन्नू-मुन्नू' (आदर्श बालकांक, पटना); सन् १९५२ ई०

किशोर

'किशोर' बड़ा सुंदर शब्द है। यह संस्कृत-भाषा का शब्द है। संस्कृत देवताओं की भाषा कही जाती है। संस्कृत के शब्द बड़े विलक्षण होते हैं। उनमें बड़ा चमत्कार भरा रहता है। उनके अनेक अर्थ भी होते हैं। 'किशोर' के भी कई अर्थ हैं। इसलिए यह सुंदर ही नहीं, विचित्र भी है।

'किशोर' का एक प्रचलित अर्थ है 'शिशु' या 'बच्चा'। जैसे—'पक्षिकिशोर'—चिड़िया का बच्चा। 'मृगेंद्र-किशोर'—पशुओं के राजा 'सिंह का बच्चा'।

इसका दूसरा प्रचलित अर्थ है 'बालक'। ग्यारह से पंद्रह वर्ष तक के बालक को किशोर कहते हैं। जैसे—'भूप-किशोर'—राजकुमार। यह बाल्यावस्था बहुत ही सुंदर होती

है। तुलसीदास ने लिखा है—'वय किसोर सुषमासदन'। किशोरावस्था में शरीर सुंदरता का भंडार बन जाता है। 'सुषमा' कहते हैं 'परमा शोभा' को। बालक देखने में अत्यंत सुंदर होता ही है।

'किशोर' का तीसरा प्रचलित अर्थ 'जवानी' है। युवावस्था में भी शरीर की शोभा बढ़ जाती है। तुलसीदास ने कहा है—'वय किसोर सब भाँति सुहाये'। जवानी चढ़ने पर देह की गठन सब तरह से सुहावनी लगती है। 'कौसल-किशोर', 'नंद-किशोर' आदि से रामचंद्र जी और कृष्णचंद्र जी का बोध होता है। ये नाम उन लोगों की जवानी के समय के हैं। इसी प्रकार 'जनक-किशोरी' और 'गिरिराज-किशोरी' से जानकी जी और पार्वती जी का बोध होता है—साथ ही, इनकी युवावस्था का भी। इतना ही नहीं, 'किशोर' और 'किशोरी' से पुत्र और कन्या का भाव भी प्रकट होता है, जो ऊपर के उदाहरण में स्पष्ट है।

'किशोर' के दो अप्रचलित अर्थ भी हैं। एक है—'सूर्य'। दूसरा है—'बछेड़ा' घोड़े का बच्चा। इन्हीं दो अर्थों पर, जो विशेष प्रचलित नहीं हैं, विचार करना चाहिए।

भगवान् सूर्य में सबसे बड़ा गुण है—'कर्त्तव्य-परायणता'। उनके समान कर्त्तव्यशील इस संसार में कोई नहीं। जो सच्चा 'किशोर' बनना चाहे, उसे कर्त्तव्यनिष्ठ होना चाहिए।

हाँ, आजकल के किशोर सचमुच बछेड़े की तरह बेचे जाते हैं। मा-बाप तिलक-दहेज के मोल पर उन्हें बेच लेते हैं। ऐसे ही किशोर देश के कलंक हैं। जो किशोर माता-पिता की इच्छा पर बिक जाता है, वही बछेड़ा है—ऐसा बोदा बछेड़ा, जो लड़ाई के मैदान में कभी टिक नहीं सकता। सच्चा बछेड़ा तो वह, जो अपने शरीर को सुंदर बनावे और उस सुंदर शरीर को देशसेवा में लगावे—साहित्यसेवा में खपावे।

तुमलोग पक्षिकिशोर बनकर चारो ओर चहचहाते फिरो, मृगेंद्र-किशोर के समान निडर बनो, भूपकिशोर की तरह स्वाभिमानी बनो, कौसलकिशोर और नंदकिशोर की तरह भारत के सपूत बनो। अगर बछेड़ा ही बनना पसंद हो, तो माँ-बाप के मुँहमाँगे दाम पर बिकने वाले बछेड़ा न बनकर लड़ाई के मैदान में काम आनेवाला बछेड़ा बनो।

—मासिक 'किशोर' (पटना); वर्ष १, अंक १, अप्रैल, १९३८ ई०

हाथ का लिखा मासिक पत्र*

छपा हुआ मासिक पत्र तो सब जगह चालू है और सबने देखा है। हाथ का लिखा मासिक भी आजकल प्रायः कहीं-कहीं देखने में आता है। देहाती स्कूलों के बालक या देहाती क्षेत्र के पुस्तकालय के सदस्य प्रायः मिल-जुलकर ऐसा पत्र निकालते हैं। कस्बों

*'स्थानीय साहित्य और इतिहास के निर्माण में हस्तलिखित पत्रिकाओं का योगदान' नामक लेख का भी आवश्यक अंश इसी लेख में यथास्थान मिला दिया गया है। वह लेख एक ग्रामीण पत्रिका (वागीश्वरी) के लिए लिखा गया था। (सन् १९४० ई०)—लेखक

और शहरों के उत्साही नवयुवक तो बहुत ही सुन्दर और कलापूर्ण-हस्तलिखित पत्र निकालते हैं।

विशेषतः बालकों के लिए यह काम बड़ा मनोरंजक खेल और शिक्षाप्रद भी है। यह ऐसा विचित्र खेल है कि खेलते समय तो इसमें लगन लगी ही रहेगी, खेल खतम होने पर तुरत उसका नतीजा सामने देखकर चौगुनी प्रसन्नता होगी। इतना ही नहीं, आगे के जीवन में जब-जब कलम, कूची और कैंची के इस खिलवाड़ पर नजर पड़ेगी, अधिक-से-अधिक प्रसन्नता होगी।

यदि तुम हथलिखा पत्र निकालना चाहते हो तो उत्साही साथियों की एक टोली बना लो। उनमें से चुनाव कर लो कि कौन सुन्दर अक्षर लिखता है, कौन चित्र बनाना जानता है, कौन कहानी और कविता लिखने योग्य है, कौन लेख लिखने का शौकीन है, कौन चुटकुले लिख सकता है, कौन जिल्द मढ़ सकता है—आदि।

पत्र के लिए पहले एक मधुर और पवित्र नाम चुन लो। बढ़िया कागज एक ही आकार का, पक्की स्याही, कील की कलम, लाल-हरी पेंसिल, चाकू, रबर, कैंची, गोंद या लेई, रंग की प्याली, कूची, रंगीन कागज, सब सामान जुटा लो। अगर तुम लोगों में कोई फूल-पत्ती या तस्वीर बनानेवाला न हो, तो इधर-उधर से काट-छाँटकर रखते जाओ। अगर कोई कविता रचनेवाला न हो, तो जहाँ-कहीं जो कोई कविता पढ़कर पसंद करो, नकल करके रख लो। अखबारों से बड़े-बड़े लोगों के भाषण निकाल लो। महापुरुषों की उपदेश-भरी वाणियों का संग्रह करते जाओ।

अब कहीं एकान्त स्थान में सब साथी एक साथ बैठ जाओ। किसी रविवार को या किसी दूसरी ही छुट्टी के दिन ऐसा हो सकता है। मंडली में सब लोग अपना-अपना चुना हुआ सामान आगे रख दें। सुडौल अक्षर लिखनेवाले दिखावें कि किसने क्या लिखा है। पढ़वाकर सब लोग सुन लें। जो सबको अच्छा लगे, वह सबसे पहले। नंबर देकर सूची बनाते जाओ। यदि आठ-दस चीजें चुनी गईं, तो उन्हें अब सजाना शुरू करो। सजावट का सामान तैयार रहे। जहाँ जैसा वर्णन हो, वहाँ वैसा चित्र लगाओ। अगर कलम-कूची से लेखों के चारों ओर लहरदार किनारी बन सके, तो बहुत अच्छा हो। बेल-बूटे बन सकें, तो क्या बात। कोई सुन्दर अखबार या नई मासिक पत्रिका सामने रखकर काम चलाया जा सकता है। सजावट के बाद जिल्द-बन्दी। जिल्द पर भी कोई मनमोहन चित्र रहे। पन्नों के बीच-बीच में भी कटे तराशे चित्र चिपकाये जा सकते हैं। शुरू के पन्ने पर आपस की सलाह से चुने गये किसी सम्पादक का नाम लिखा जाय। साल और महीना तो जरूरी ही है। सबके ऊपर पत्र का नाम फूलदार अक्षरों में। ऐसे अक्षर कैंची से जहाँ-तहाँ से काटकर जुटाये जा सकते हैं।

घर-परिवार में जो नये कपड़े खरीदकर आते हैं, उनपर रंगीन तस्वीरें चिपकी रहती हैं। उन्हें लेकर रखते जाओ। टोली के सब साथी चाहें तो ऐसी तस्वीरों का ढेर लगा दें। घरों में जो रोज कितने ही अखबार आते हैं, उन्हें उलट-पुलटकर देखते रहो।

कोई मनोरंजक समाचार या दिलचस्प बात मिल जाय, तो घरवालों से पूछकर कतरन निकाल लो। अखबारों के विज्ञापनों में भी बहुत-से आकर्षक चित्र छपते हैं। उनमें ढूँढ लो कि कौन तुम्हारे काम का है। उन्हीं में फूल-पत्ती की किनारी भी मिल जायगी। इस तरह सच्ची लगन और पक्की धुन होगी, तो काफी मसाला जुट जायगा।

स्वच्छ, सुन्दर लिखावट और सुहावनी-लुभावनी सजावट पर विशेष ध्यान रक्खो। मगर भद्दापन से बचकर यह काम होना चाहिए। ऐसा न हो कि एक ही जगह सजावट की भरमार हो जाय। दाल में उतना ही नमक, जितने से स्वाद बने। इसी तरह कला का पारखी बनने का अभ्यास किया जा सकता है। सच्चा प्रेम हो, तो दिन-दिन सूझ गहरी होती जायगी। खोज करते रहोगे, तो नमूने बहुत मिलेंगे।

ऐसा पत्र हर महीने निकाला जा सकता है। यदि ऐसा न हो सके, तो तीन महीने पर एक सही। साल में दो बार भी होली-दिवाली या रामनवमी-जन्माष्टमी के समय, निकाल सकते हो। 'वसंतांक' और 'विजयांक' निकालना भी अच्छा ढंग होगा। कोई एक बात पहले ही तय कर लो। जिस अवसर पर निकालने का निश्चय हो जाय, उस अवसर पर जरूर निकाल डालो। मगर याद रहे, पत्र का हरएक अंक सुरक्षित रखना होगा—किसी पड़ोस के पुस्तकालय में या किसी विश्वासी सज्जन के पास। ऐसे साथी के पास हरगिज नहीं, जो गुम कर दे या पचा जाय।

ऐसा पत्र जिस स्थान से निकाला जाय उस स्थान की सभी चीजों का वर्णन उस पत्र में रहना चाहिए। वहाँ या आसपास में कोई नदी, पहाड़, झरना, जंगल, पुराना खँडहर या टीला, गढ़, मन्दिर, तालाब, कारखाना, तीर्थ, दर्शनीय स्थान या दृश्य, मेला आदि हो तो उन सबके सम्बन्ध में जानने योग्य बातों का संग्रह करके लेख लिखें और लिखवाये जायँ। उस क्षेत्र के फूल, फल, वृक्ष, पशु, पक्षी, उपज, मिट्टी, पर्व-त्योहार, रस्म-रिवाज, बोली, खेल-तमाशे, जनसंख्या, घरेलू उद्योग-धन्धे, बाजा, हथियार, खेतीबारी आदि के विषय में भी लेख रहें तो एक मनोरंजक इतिहास तैयार हो सकता है। इतने बड़े काम को खेल में ही नई पीढ़ी पूरा कर सकती है।

हाँ, लेख लिखने के लिए विषय का चुनाव करना होगा। इसमें अपने शिक्षकों या गुरुजनों से पूरी मदद ले सकते हो। अगर खुद ही सब कुछ करना चाहो, तो और भी अच्छी बात है। अपने गाँव या मुहल्ले के किसी आदर्श पुरुष या स्त्री का परिचय लिखो। अपने आसपास के बड़े-बूढ़ों का अनुभव पूछकर लिखते चलो। नामी पहलवानों और गानेवालों तथा कारीगरों के बारे में लेख तैयार करो-कराओ। अपनी परीक्षा में आ सकने योग्य प्रश्नों के विषयों पर निबन्ध लिखो। घर में बड़ी-बूढ़ियों से सुनी हुई कहानी लिखो। अपने गाँव और नगर तथा जिले की खबरें चुन कर रख लो। शादी-ब्याह या जन्म-बधाई के गीतों का संग्रह करो। कहीं कोई मार्के की बात, मुहावरा, कहावत, पहेली आदि भी सुनो तो नोट कर लो। किसी की सीख जँच जाय, तो टाँक लो। पाठ्य-पुस्तकों में जो पाँती अच्छी लगे, उतार लो। अपने छोटे भाई का नटखटपन लिख डालो।

सोचोगे, तो लेख के विषयों की कमी नहीं हो सकती। अपने गाँव-घर में ही लिखने-योग्य बातें मिल जायँगी। रामायण और महाभारत का खजाना तो भरा हुआ है ही। अपने देश और समाज की दशा पर संपादकीय टिप्पणी में अपने स्पष्ट विचार प्रकट करो। समाज-सुधार, शिक्षा-सुधार, स्वास्थ्य-रक्षा, ग्राम-संगठन, घरेलू नुस्खे नये-नये आविष्कार, म्युनिसिपैलिटी के दोष, अशुद्ध बाजारू चीजों से हानि, रेल के मुसाफिरों की कठिनाइयाँ, देहातियों की गंदी आदतें, गाँवों की सड़कें, बरात और भोज में फिजूलखर्ची, स्काउटों के खेल, सिनेमा से लाभ-हानि—इस तरह के अनेक विषय तुम्हारे सामने हैं, जिनपर अपनी सम्मति लिख सकते हो।

शर्त यह है कि जहाँ तक हो सके, शुद्ध और सरल भाषा में लिखने की कोशिश करो। इसमें यदि गुरुजनों से पूछताछ कर लो, तो कोई हानि नहीं।

दूसरी शर्त यह है कि सब अंकों का कागज एक ही आकार का होना चाहिए। हर अंक में कागज का रंग बदल सकता है, मगर आकार नहीं। एक ही अंक के लेखों की रोशनाई बदल सकती है, मगर-कागज का आकार नहीं। तभी सुन्दरता कायम रहेगी।

सब साथी मिलकर तैयारी करो। आगे आनेवाला युग तुम्हीं लोगों का है। आनेवाले युग में हाथ के लिखे सचित्र पत्र की बहुत कद्र होगी। कला की दृष्टि से ऐसे पत्र का बड़ा महत्त्व समझा जायगा। उसकी खोज और प्रदर्शनी होगी। संभव है कि ऐसे पत्रों का कभी इतिहास भी लिखा जाय।

—मासिक 'बालविनोद' (लखनऊ); वर्ष ११, अङ्क २, फरवरी, १६४४ ई०

नख और दाँत

नखों और दाँतों का तन्दुरुस्ती पर बड़ा गहरा असर पड़ता है। जिसके नख और दाँत गंदे रहते हैं, वह कई तरह की बीमारियों का शिकार हो जाता है।

यह शरीर शुद्ध भोजन से ही स्वस्थ रह सकता है। नख तथा दाँत जब तक साफ न रहेंगे तबतक पवित्र-से-पवित्र भोजन भी गंदा ही होकर पेट में पहुँचता रहेगा, जिससे शरीर को पालने और बढ़ानेवाला खून बिगड़ता चला जायगा।

हाथों के सहारे भोजन मुँह में जाता और दाँतों से कुचल कर पेट में पहुँचता है। अगर हाथों की उँगलियों के नख गंदे हैं, तो उनकी गंदगी का जहर भोजन में मिल जायगा। वह अच्छे-से-अच्छा भोजन भी पेट में जाकर खून में उस जहर को फैला देगा। नखों की गंदगी के जहर के साथ अगर दाँतों की गंदगी का जहर भी मिल गया, तो फिर दोनों ही मिलकर खून को ऐसा विषैला बना देंगे कि शरीर में नाना प्रकार के उपद्रव होने लगेंगे। 'नख से मख और दाँत से आँत' बिगड़ने की जो कहावत लोग कहा करते हैं वह सचमुच सटीक है।

बालक स्वभाव से ही चंचल और खिलवाड़ी होते हैं। इसलिए दिनभर तरह-तरह की चीजें छूते और हाथ में लेते रहते हैं। इसीसे उनके नखों में मैल जमने का सिलसिला बराबर जारी रहता है। चंचलता के कारण, भोजन के बाद, अच्छी तरह कुल्ले भी नहीं करते। भलीभाँति मुँह न धोने से, खाये हुए अन्न के छोटे-छोटे कण दाँतों के बीच की दरारों में अटके या सटे रह जाते हैं। सुबह में भी भूख की हड़बड़ी या मिठाई के लोभ से, कितने ही बालक अच्छी तरह मुँह साफ नहीं करते ; जीभी करना तो जल्दबाजी में भूल ही जाते हैं। मुँह में रात-भर की जमी हुई गंदगी खूब साफ नहीं हो पाती और ताबड़तोड़ नाश्ता करने लग जाते हैं। दाँतों में और जीभ पर जो मैल की परत जमी रहती है, वह खाने की चीजों के साथ लिपटकर पेट के अंदर चली जाती है। दाँत और जीभ गंदी रहने से मुँह की लार भी गन्दी हो जाती है। लार ही भोजन पचाने-वाली चीज है। गन्दी लार भोजन को भी जहरीला बना देती है।

इसलिए बचपन से ही नखों और दाँतों की सफाई पर पूरा ध्यान देना चाहिए। हाथ के नख जब बढ़ जाते हैं, तभी उनमें मैल जमता है। बालकों के शरीर का विकास जल्दी-जल्दी होता है। तो नख भी वैसे ही बढ़ते रहते हैं। उन्हें काटते-तराशते रहने से मैल जमने का डर नहीं रहता। दाँत और जीभ की सफाई भी सुबह में तो अच्छी तरह होनी ही चाहिए, खाना खाने के बाद भी हर बार दाँत माँजना और खूब कुल्ले करना बहुत जरूरी है।

नख तो बराबर काँट-छाँटकर साफ रखे जा सकते हैं; मगर दाँतों को साफ रखने के लिए हमेशा सजग रहना जीवन की रक्षा में तत्पर रहना है; क्योंकि दाँत और आँत का अत्यन्त घना सम्बन्ध है थोड़ा-सा भी आलस करने से दाँत ठीक साफ नहीं हो पाते। दाँतों की सफाई पर ही तन्दुरुस्ती टिकी रहती है, बल्कि जिन्दगी का सुख कायम रहता है। इसलिए उसमें जल्दबाजी कभी न करनी चाहिए।

दाँतों के लिए नीम, बबूल और मौलसरी की दाँतून बहुत अच्छी समझी जाती है। उसकी मुलायम कूची से धीरे-धीरे दाँतों को आगे-पीछे रगड़ना और फिर जीभी करके अच्छी तरह कुल्ले कर लेने चाहिए।

काशी के एक बहुत बड़े वैद्य जी का कहना था कि सुबह-शाम दंत-मंजन और जीभी का व्यवहार करना बड़ा लाभदायक है। उन्होंने बताया था कि सबसे अच्छा स्वदेशी मंजन है—लौंग और काली गोल मिर्च की बुकनी के साथ खूब बारीक पिसा हुआ सेंधा नमक और शुद्ध कड़वा (सरसों का) तेल। इससे दाँत तो चमकीले होते ही हैं, उनकी जड़ें भी मजबूत होती हैं, तथा दाँतों के कीड़े भी नष्ट हो जाते हैं। बालकों को इस सस्ते मंजन से लाभ उठाना चाहिए।

कहते हैं, विदेशों—योरप और अमेरिका—के स्कूलों में पढ़नेवाले बालकों के नखों और दाँतों की सफाई जाँचकर उन्हें इनाम बाँटे जाते हैं। जिस बालक के नख और

दाँत खूब साफ होते हैं, वह सबसे ज्यादा और सबसे अच्छा इनाम पाता है। इस देश के स्कूलों में ऐसा कहीं नहीं सुना जाता। ऐसा तो हर एक परिवार में होना चाहिए।

—मासिक 'बालविनोद' (लखनऊ); वर्ष १४, अङ्क ११, नवम्बर १९४७ ई०

डंड-बैठक

पूरी-कचौरी, मालपुआ, लड्डू, जलेबी, रसगुल्ला, मलाई, रबड़ी, सब कुछ थाली में आगे परसा हुआ हो और शरीर नीरोग न हो, तो सब धूल है—मिट्टी है। पर अगर शरीर नीरोग हो तो सत्तू और नमक में भी मोहनभोग का मजा मिलता है।

तेल-फुलेल, चंदन, फूलों का गजरा, पान-इलायची, बढ़िया-से-बढ़िया कपड़ा, सब कुछ खाने-पहनने को नसीब हो और शरीर नीरोग न हो, तो सब कौड़ी का तीन है। और, अगर शरीर नीरोग हो तो धूल मलने से भी तेल-मालिश के बराबर लाभ होगा और मामूली मोटा कपड़ा भी खूब फबेगा।

कहने का मतलब यह है कि शरीर नीरोग रहने से ही संसार के सब सुख भोगे जा सकते हैं। जिसको ईश्वर ने हाथी-घोड़ा, रुपया-पैसा, स्त्री-पुत्र, सब कुछ दिया है; पर शरीर नीरोग नहीं है, तो उसके लिए सब गुड़-गोबर है—न उसे हाथी घोड़े की सवारी भाती न उसे घर सुहाता। मगर जो शरीर से सुखी है वह अपने पैर-गाड़ी के सामने हाथी-घोड़े को कोई चीज नहीं समझता।

इसलिए इस संसार में नीरोग शरीर ही सबसे बड़ा अनमोल धन है। नीरोग शरीर से धन पैदा हो सकता है; किन्तु केवल धन से शरीर नीरोग नहीं हो सकता। शरीर नीरोग रखने का सबसे बढ़िया एक ही उपाय है—कसरत करना। घी-दूध कितना भी पी जाओ, कसरत के विना कुछ लाभ न होगा शरीर नहीं खिलेगा—जैसे सूरज की रोशनी विना फूल नहीं खिलता—उलटे अपना शरीर ही बोझ हो जायगा। और, अगर कसरत करते रहो, तो साधारण भोजन से भी शरीर खिल उठेगा। जैसे, पेड़ा-बर्फी के बदले खिलौना देखकर तुम्हारा मन खिल उठता है।

सौ बात की एक बात—कसरत में शरीर को नीरोग करने का अजीब जादू भरा हुआ है। इसलिए बालकों को तो छुटपन से ही कसरत का पहला पाठ शुरू कर देना चाहिए।

डण्ड-बैठक ही कसरत का पहला पाठ है। इसका अभ्यास किये विना आगे का कोई पाठ मँज नहीं सकता। कितने लोग तो जिन्दगी भर इसी पहले पाठ को माँजते और देह भाँजते फिरते हैं। इसका एक कारण है। डंड-बैठक में अपनी देह के सिवा किसी दूसरी चीज का सहारा नहीं ढूँढना पड़ता—न मुगदर, न लाठी, न पट्टा, न बंद। सफर में भी जब जहाँ चाहो, मजे से डंड-बैठक कर लो।

मगर एक बात जरूर है—इसमें साँस को खूब बाँधना पड़ता है। साँस के बँध जाने पर जल्दी दम नहीं फूलता—हरारत नहीं मालूम होती। लेकिन साँस ऐसा रोकना चाहिए

कि उसके चढ़ाव-उतार पर अपना पूरा अधिकार रहे ; क्योंकि जब बैठक में उठते-बैठते समय साँस को चढ़ाना-उतारना पड़ता है तब उसके बँधेज की ताकत की बड़ी कड़ी आजमाइश होती है।

फिर डंड में भी ऐसा ही होता है—ज्यों-ज्यों अपनी हथेली और पैर के पंजे पर समूचे शरीर का भार झुकाया और उठाया जाता है, त्यों-त्यों बँधी हुई चाल से साँस के नीचे आने और ऊपर खींचने में भी बड़ी मशक्कत होती है, नसें तन जाती हैं, चेहरा तमतमा उठता है, आँखें चढ़ जाती हैं, नथने फूल जाते हैं। गाँठें चिढ़खने लगती हैं। छाती, बाँह, गर्दन जाँघ और कन्धे फूलते जाते हैं।

डंड पेलकर तैयार होने के बाद एक बार कंधे और छाती के खिलने पर जब नजर जाती है तब खुशी से फड़क कर आप-से-आप भुजदंड बज उठते हैं, और सुडौल देह के जोम में गर्दन भी तन जाती है।

याद रहे, डंड करते समय शरीर में लँगोट के सिवा कोई ढीला या चुस्त कपड़ा न रहना चाहिए। जमीन बराबर और चिकनी हो। देह सीधी और तनी रहे। खड़ी बाँहें दृढ़ता से तलहथी पर अड़ी रहें। साथ ही, साँस की गति भी सधी रहे।

किन्तु, शरीर सदा एक ही दशा में नहीं रहता। वह साँस की बँधी हुई गति के साथ दृढ़ता से जमाई हुई बाँहों के बल पर धीरे-धीरे नीचे झुकता और ऊपर उठता है, पर बिलकुल सीधा तना रहता है। पैर का पंजा भी टस-से-मस नहीं होता, कमर अथवा गर्दन में भी तनिक लचक नहीं आने पाती।

हाँ, इतना ध्यान रहे कि इस दशा में अंगों के चंचल रहने पर भी साँस की बागडोर कड़ी ही रखी जाती है।

इसी प्रकार की क्रिया करते-करते शरीर को सीधा रखते हुए जमीन के पास तक सटा देते हैं और उस समय साँस की चाल को पूरी तरह अपने काबू में रखकर, गर्दन को दायें-बायें मोड़ते भी हैं।

इन कठिन क्रियाओं के बाद और भी कई तरह की क्रियाएँ होती हैं। तलहथी का स्थान हाथ का पंजा ले लेता है छाती से सिर तक का अङ्ग झुककर जमीन से लग जाता है। बाकी हिस्सा ऊपर ही उठा रहता है। हाथ के साथ पैर भी, एक के बाद दूसरा, अपनी दिशा को उठकर, फिर अपनी जगह पर आ डटता है।

यदि तुम रोज तड़के नहा-धोकर डंड-बैठक किया करो, तो तुम्हारे अंग सुडौल हो जायँगे। भूख और फुर्ती बढ़ेगी, बल भी बढ़ता हुआ मालूम होगा। आलस्य से पिंड छूटेगा और चित्त सदा प्रसन्न रहेगा। अगर जिन्दगी भर के लिए रोज का आधा घंटा इसीके नाम पर निकाल दो, तो समझ लो कि नीरोग देह और सुखी जीवन तुम्हारे घर के आले पर रखा है।

—मासिक 'बालक' (लहेरियासराय दरभंगा); वर्ष १, अंक ६, (सं० १९८३ वि०)

सद्भाव का प्रभाव

'सद्भाव' का सीधा-सादा मतलब है 'सच्चा भाव'—'अच्छा व्यवहार'—'नेक सलूक'—'भला बर्ताव'। यह बात समझाने की जरूरत नहीं है कि अच्छे व्यवहार या भले बर्ताव से पराया भी अपना सगा बन जाता है और बुरे व्यवहार से अपना सगा भी पराया तथा दुश्मन बन जाता है।

यह सब लोग जानते हैं कि पशु-पच्छी भी अपना हित और अनहित पहचानते हैं; मनुष्य की तो कोई बात ही नहीं। सरकसों में बड़े-बड़े भयावने जानवर भी प्यार और पुचकार से अजीब करामात कर दिखाते हैं।

'सुग्गा' नमकहराम-पच्छी कहलाता है; पर वह भी सद्भाव के वश में होकर अपने अन्नदाता के हाथों पर खुला बैठा फिरता है। बहुत-से शौकीन आदमी अपनी सुन्दर सेज पर बिल्ली और नेवले को बगल में लेकर सोते हैं। गाय, बैल, बकरे, कुत्ते, भेड़े आदि पशु तो यहाँ तक पोस मानते हैं कि इनकी स्वामिभक्ति देखकर बड़ा अचम्भा होता है। किन्तु, ये तो पालतू जीव हैं ही, इनका पोस मानना कोई अचम्भे की बात नहीं है।

हाँ, हाथी, भालू, बाघ, चीता आदि जंगली जन्तुओं की अद्भुत स्वामिभक्ति देखकर अवश्य ही आश्चर्य होता है। किन्तु, सद्भाव या सद्व्यवहार एक ऐसी चीज है, जिसकी बदौलत मनुष्य चाहे तो विषधर सर्प को भी अपना मित्र बना सकता है।

सुना जाता है कि प्राचीन भारत के ऋषि-मुनियों के आश्रम में हिंसक जन्तु भी बेखटक घूमा करते थे—तपोवनों के वृक्षों की छाया में बाघ और हिरन एक साथ ही विश्राम करते थे।

महात्मा गांधी के साबरमती-आश्रम में रहनेवाले एक विद्वान सज्जन ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि एक बार महात्माजी चुपचाप बैठे कुछ लिख रहे थे और उनकी बगल में ही एक भयंकर सर्प फन फैलाये जीभ लपलपा रहा था, पर जब महात्माजी का ध्यान उधर खींचा गया तो उन्होंने बड़े शान्त-भाव से मुस्कुराकर कहा कि इसे छेड़ो मत, ठंडक पाकर यहाँ आ बैठा है! बस, थोड़ी ही देर में वह विषधर चुपचाप महात्माजी की पलथी के ऊपर से सरककर निकल गया।

क्या अब भी कोई कह सकता है कि भारतीय ऋषियों के बच्चे बाघिनों की गोद में या बाघों की देह पर लोटपोट नहीं करते थे! बात असल यह है कि शुद्ध-हृदय के सच्चे भाव का सब जीवों पर अवश्य ही प्रभाव पड़ता है, चाहे मनुष्य हो या पशु।

सुना गया है कि एक अँगरेज औरत को साँप पालने का शौक है। वह जहरीले साँपों के मुख को हँसते-हँसते चूम लेती है। कितने ही अँगरेज और राजा-रईस बाघों और चीतों को कुत्तों की तरह पालतू बनाकर उन्हें अपनी कुर्सी या अपने पलँग के पास बिठाते और उनके बदन पर हाथ फेरते हैं। यह कोई अनहोनी बात नहीं है, आँखों-देखी घटना है।

बन्दर के समान चंचल पशु भी 'सद्भाव' के वश में होकर अपनी चंचलता छोड़ देता है—पालनेवाले के पीछे-पीछे घूमता और उसका हुक्म बजाता है। वास्तव में 'सद्भाव' एक ऐसा अस्त्र है, जो अज्ञान पशुओं तक को जीत लेता है।

प्रह्लादजी भूखी शेरनी की गोद में पड़कर भी अपनी मस्ती में चूर रहते थे। ध्रुवजी घनघोर जंगल में भी अकेला विचरते फिरते थे। सुदामाजी भी जंगल में भटकने पर बनैले पशुओं को मित्र की तरह गले लगाकर भगवान श्रीकृष्ण की याद करते थे।

अधिक कहाँ तक कहा जाय, 'सद्भाव' के ही प्रभाव से भगवान रामचन्द्र ने बन्दरों की फौज पर हुकूमत की थी, और आज महात्मा गांधी भी सद्भाव के ही प्रभाव से सारे संसार के लोगों की सहानुभूति बटोरे हुए हैं तथा शत्रुता रखनेवालों के दिल भी छीन चुके हैं। 'सद्भाव' से ही शत्रु भी मित्र और भूलोक भी स्वर्ग बन जाता है।

—मासिक 'बालक' (लहेरियासराय, दरभंगा); वर्ष ५, अंक ५ (संवत् १९८७ वि०)

❁

मन्दिर

'मन्दिर' बड़ा ही सुन्दर शब्द है। इसके उच्चारण से ही चित्त प्रफुल्ल हो उठता है। इसके आरम्भ में 'म' और अन्त में 'र' है। रकार और मकार बड़े ही पवित्र अक्षर माने गये हैं। 'र' और 'म' की महिमा प्रत्येक आस्तिक हिन्दू जानता है।

'मन्दिर' केवल पूजा का स्थान नहीं है। वास्तव में वह स्वच्छता की शिक्षा ग्रहण करने का स्थान है। जो 'मन्दिर' में केवल मूर्त्तिपूजा करता है वह 'मन्दिर' का महत्त्व नहीं जानता। जो 'मन्दिर' को सब तरह से बाहर-भीतर अत्यंत स्वच्छ रखता है, वही सच्चा पुजारी है।

'मन्दिर' के आसपास भी स्वच्छता और शीतल हरियाली चाहिए। स्वच्छता या पवित्रता का ही दूसरा नाम देवत्व है। जहाँ चित्त को प्रसन्न कर देनेवाली स्वच्छता नहीं है, वहाँ महिमामयी सुसज्जित मूर्त्ति के रहते हुए भी देवत्व का सम्पूर्ण अभाव है।

देवता स्वर्ग में रहते हैं। स्वर्ग वहीं है, जहाँ मन को निर्मल कर देनेवाली स्वच्छता विराजमान है। मन्दिर वही है, जो स्वच्छता का आदर्श पाठ सिखाता है। सदाचारी और सतोगुणी पुरुषों के गृह भी कितने ही मन्दिरों से अधिक स्वच्छ पाये जाते हैं।

भारतवर्ष में मन्दिरों की बड़ी दुर्दशा है। खोखली भक्ति के अन्धों ने बहुत से ऐसे मन्दिर बनवा डाले हैं, जिनमें न पूजा-पाठ की कोई व्यवस्था है और न राग-भोग का कुछ ठिकाना। जिस 'मन्दिर' में नित्य दीपक नहीं जलता, उत्सव नहीं होता, पुष्प-चन्दन-धूप की सुगन्ध नहीं उड़ती रहती, स्थावर सम्पत्ति की आय से अभ्यागत का सत्कार और दरिद्रनारायण का पोषण नहीं होता, वह 'मन्दिर' नहीं, बल्कि श्मशान है और उसका बनानेवाला प्रेत-तुल्य है।

—मासिक 'बालक' (लहेरियासराय, दरभंगा); वर्ष ५, अंक ४, बैसाख (१९८७ वि०)

❁

साहित्यिक भाषणावली

[ग्यारह भाषणों का संग्रह]

हिन्दी-संसार की अनेक साहित्यिक संस्थाओं के वार्षिकोत्सवों तथा विशेषाधिवेशनों के अवसर पर जो महत्त्वपूर्ण भाषण होते हैं या हो चुके हैं, उनका संग्रह न होने से साहित्य का बड़ा अपकार होता है और हो रहा है। अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों के सभापतियों एवं स्वागताध्यक्षों के भाषणों का सुसम्पादित संग्रह प्रकाशित होने से हिन्दी-क्षेत्र का क्रमबद्ध साहित्यिक इतिहास एक नजर में देखा जा सकता है। स्वागत-भाषणों में स्थानीय साहित्यिक प्रगति का विवरण रहा करता है। उनसे अनुसन्धायकों को काफी सहायता मिल सकती है। असंख्य सम्मेलनों और परिषदों के अमूल्य भाषण आज सर्वथा दुष्प्राप्य हैं। अनेक साधक साहित्यकारों के भावोद्गार और विचार आज हमारी आँखों से ओझल हैं। साहित्य-भाण्डार की अपार सम्पत्ति हमारी उदासीनता और असावधानता से नष्ट होती जा रही है। भाषणों से मुख्यांशमात्र संकलित करके भी प्रकाशित किया जा सकता है।

— 'त्रैमासिक साहित्य', (पटना)

बिहार की साहित्यिक प्रगति और समस्याएँ *

यस्यावतारचरितानि विरञ्चिलोके
गायन्ति नारदमुखा भवपद्मजाद्याः ।
आनन्दजाश्रुपरिषिक्तकुचाग्रसीमा
वागीश्वरी च तमहं शरणं प्रपद्ये ॥[1]

सज्जनो और देवियो,

'जा पर कृपा राम की होई, ता पर कृपा करैं सब कोई' के अनुसार आपने मुझ पर जो कृपा दरसाई है, उसके लिए मैं 'घट-घट-व्यापी राम' वा 'उरप्रेरक रघुबंसविभूषन' के मनसा-चिन्तनीय एवं शिरसा-वन्दनीय चरणों में अपनी आभ्यन्तरिक कृतज्ञता की कुसुमांजलि अर्पित करते हुए आपको सविनय कोटिशः धन्यवाद देता हूँ।

कविप्रवर पंडित श्रीधर पाठक के शब्दों में आपने 'रेणु की सत्ता में मेरु की महत्ता का सन्निधान'[2] करके अपनी उदाराशयता का जो प्रशस्त परिचय दिया है उसके लिए कृतज्ञता-प्रदर्शनमात्र का दम्भ न दिखाकर मैं कर्त्तव्यवश इतना ही निवेदन करना चाहता हूँ कि इस सम्मान-प्रदान से मेरा सौभाग्यसंवर्द्धन तो सम्यक् रूप से हुआ; पर खेद है कि आपकी गौरव-वृद्धि वा मनस्तुष्टि न हो सकेगी; क्योंकि अपनी जिस विषम परिस्थिति में मैंने यह गुरुतर दायित्व-भार अपने अनभ्यस्त कन्धों पर सँभालने का दुस्साहस किया है, वह ऐसी निदारुण है कि उसकी कठोर शास्ति के सामने प्रतिभा, बुद्धि और स्मृतिशक्ति ने सहसा घुटने टेक दिये हैं—बेचारा मस्तिष्क विश्वविस्मृत एकान्त के सदृश सर्वथाशून्य प्रतीत होता है और हहरा हुआ हृदय उन्माद-ग्रस्त-सा प्रायः करुणा के साथ छेड़छाड़ करता रहता है।

साहित्य से सम्बद्ध हृदय सम्भवतः सुकुमार होता ही है। वह अपनी परम प्रिय वस्तु के बिछुड़ने से यदि व्यथित हो उठता हो तो इसमें कोई विस्मय या अस्वाभाविकता नहीं।

---

* बिहार-प्रादेशिक-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सत्रहवें अधिवेशन के सभापति का अभिभाषण। ५ फरवरी, १९४१ ई०।

१. अध्यात्मरामायण, बालकाण्ड, अहल्यास्तोत्र।

२. अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पंचमाधिवेशन (लखनऊ, १९१४ ई०) के सभापति-भाषण से। —लेखक

मुझे अपनी जीवनसंगिनी के वियुक्त होने का जो दुःख है वह तो है ही, सबसे बड़ा दुःख इस बात का है कि इस सम्मेलन का सभापतित्व स्वीकृत करने के लिए उस देवी ने आज से पहले जब जब आग्रह किया, मैं बराबर असमर्थता प्रकट करता गया। किन्तु, आज जब उन्हें मेरा संग छोड़े कुल ढाई महीने हुए, मैं निठुर उसी स्थान पर खड़ा हूँ जहाँ मुझे देखने के लिए उनके ललाम लोचन लालायित ही रहकर लोकान्तरित हो गये। यह स्मृति और भी व्यथित करती है कि वे मेरे साथ सम्मेलन के महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए ही बार-बार आग्रह करती रहीं; इसलिए अब उनके अतृप्त नेत्रों का ध्यान टाले नहीं टलता। वे न सुशिक्षिता थीं, न साहित्य की सेविका ही। पर, साहित्य-सेवकों की सेविका अवश्य थीं। काशी, दरभंगा और छपरा में मेरे साथ ही लगातार बारह बरसों तक रहने के कारण युक्तप्रांत और बिहार के अनेक प्रमुख साहित्य-सेवियों के स्वागत-सत्कार का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हो चुका था। उनके आतिथ्य की स्मृति आज भी बहुतों के पास बिलखती होगी। मैं उन्हें साहित्य की शिक्षा न दे सका था; पर प्रेम का पाठ उन्हीं से पढ़ा था। गृहिणीत्व, पत्नीत्व और मातृत्व का विशद विकास होने से वे स्वयं ही साहित्य की मनोज्ञ मूर्त्ति बन गई थीं। उसी मूर्त्ति के सहसा विलीन होने से हृदय में रह-रहकर हाहाकार उठा करता है। पर आज वह हाहाकार नहीं है, अब है वह पुरुष के कठोर हृदय के परिष्कृत दम्भ पर किया हुआ उसी मूर्त्ति का व्यंग्यपूर्ण अट्टहास!

आप सोचते होंगे, यह बेसुरा राग अलापनेवाला कैसा पथभ्रष्ट है जो हँसिया के ब्याह में खुरपी का गीत गाने लगा। किन्तु, कृपया यह न भूल जाइए कि यही खुरपी साहित्य-क्षेत्र में उड़ान भरनेवाले तरुण-तुरङ्गों को मृदुल दूर्वादल का ग्रास देनेवाली होती है। साहित्य से संलग्न हृदय इस 'खुरपी' का तिरस्कार किस प्रकार कर सकता है!

विश्वास कीजिए, अनेक दिन ओदी आँखों में रात काटकर ऐसा एकान्त अवकाश ढूँढना चाहा, जहाँ बैठ आपकी सन्तुष्टि का साधन सँजोता; पर जब कभी ढूँढ़ भी पाया, वहाँ स्मृतियों का मेला लगा देखा, जिसकी घनी हाट में विना मोल बिकने को हृदय उतावला हो उठता हो—और, स्मृतियाँ भी ऐसी जो कल्पना में मधुर होते हुए भी अनुभूति में वृश्चिक-दंशन-सी प्रतिभात होती। यही कारण है कि भाषण न मेरे मनोऽनुकूल हो सका, न आपके। हो भी कैसे सकता, आपने तो रणप्रस्थित अश्वारोही सैनिक की भाँति बर्छी से बेधकर बाटी का स्वाद लेना चाहा, पर भाले की नोक में बाटी भले ही बिंध जाय, खीर नहीं गुँथ सकती, और न चूरमा ही।

मैं सचमुच बहुत लज्जित हूँ कि जिस हृत्तंत्री पर आज सरस्वती-समाराधन का संगीत झंकृत होना चाहिए, उसपर मैं कारुण्य-लहरी छेड़ रहा हूँ। पर, यदि वास्तव में हृदय के साथ साहित्य का अविच्छेद्य सम्बन्ध है, तो आपको मेरी चंचलप्राय चित्तवृत्ति पर दयादृष्टि करके मुझे क्षमा-प्रदान करना चाहिए; क्योंकि आपकी सहृदयता को मेरी सेवा से तृप्त होने की आशा कदापि न थी—आपने केवल स्थानापन्न होने के लिए मेरा आह्वान किया, और अब मैं स्वयमुपगत की भाँति आपकी सेवा में उपस्थित हूँ, जी चाहे तो अपने प्रत्येक सूत्र-संकेत पर थेई-थेई करा लीजिए।

सच मानिए, पूज्य राजेन्द्र बाबू की शारीरिक अस्वस्थता से आपको जो निराशा हुई है, उससे कहीं अधिक निराशा मेरी मानसिक अस्वस्थता से होगी, इसी की ग्लानि मेरे कर्कशाघात-पीड़ित मन को पग-पग पर क्लेश दे रही है। किन्तु, अब इस अरण्यरोदन से कोई लाभ नहीं। आप अपना 'शुल्क' लिये बिना नहीं मानेंगे। किसान चाहे दाँत दिखावे या आँत, कूतनेवाला खेत की खड़ी फसल ही देखता है। तब भी मैं यह जानता हूँ कि अनवसर का यह रूखा राग सुनकर आप मुझे बहुत कोसेंगे ; पर मुझे भी तो आपके प्रति वैसा ही करने का अब दूसरा अवसर न मिलेगा !

बिहार की इस महिमामयी राजधानी में सम्मेलन को सनाथ करने के लिए पूज्य राजेन्द्र बाबू का वरण करके आपने जो गुणग्राहकता दिखाई थी, उसे आपने मुझ-जैसे अव्यवस्थितचित्त मर्माहत को मनोनीत करके निष्प्रभ-सा बना दिया है। मैं तो उनके चरण-रेणु-कण की समता को भी नहीं पहुँच सकता, फिर उन साम्प्रतिक जटिल प्रश्नों का समाधान कैसे करूँगा, जिनका निबटारा करने के एकमात्र अधिकारी बिहार में वे ही हैं।

किन्तु, जब आपका नियति-कठोर-निर्णय 'जिमि अमोघ रघुपति कर बाना' मेरे पास पहुँचा, सिर झुका देने के सिवा कोई चारा न रहा; पर इतना तो आप भी मानेंगे कि भयवश जो प्रतिश्रुत होता है वह स्कंध-न्यस्त कार्यभार के वहन करने में सक्षम नहीं होता। इसके अतिरिक्त आपके सामने बिहार के कई वयोवृद्ध विद्वान् एवं यशस्वी साहित्यसेवी विद्यमान थे, जिनकी सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं, तो भी न जाने क्या सोचकर आपने अपनी सेवा के लिए ऐसे समय मेरा स्मरण किया जब मैं अपने स्वल्पवयस्क मातृहीन बच्चों की शुश्रूषा में व्यस्त होकर पिता की अभिधा से च्युत एवं मातृत्व के दायित्व से कातर हो गया हूँ। परन्तु, असमय के आह्वान का रणभेरी-निनाद भी जुझार सैनिक के मस्तिष्क से असुविधा की कल्पना को भगा देता है; तदनुसार मैं भी अपनी कठिनाइयों को घूरता हुआ आपकी सेवा में आ जुटा हूँ; जगदाधार परमात्मा मुझे बल दे कि अपनी तुच्छ सेवा से आपको तृप्त कर सकूँ।

सबसे पहले मैं हिन्दी-संसार के उन सभी स्वर्गीय साहित्यसेवियों के निमित्त अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना चाहता हूँ जिनके निधन से इन दो वर्षों की अवधि में हिन्दी-माता के हृदय पर अनेक बार वज्र-प्रहार हुए हैं।

अभी गत चौथे दिन जो अनभ्र वज्रपात हुआ है उससे तो हिन्दी-मंदिर का विशाल गरुडस्तम्भ टूट गया। आज आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कैलासवासी होने से हिन्दी निच्छत्र हो गई ! इस वज्राघात के सहन करने की शक्ति हिन्दी-संसार में नहीं है। शुक्ल जी इस युग के साहित्यिक ऋषि थे। उनकी साहित्य-सुरसरि-निमज्जित आत्मा आज स्वर्ग के जिस कमनीय कक्ष में होगी, उसकी शोभा-सम्पत्ति कल्पनातीत है, देवेन्द्र भी उसकी छटा देख छक रहे होंगे। किन्तु, हमारी हिन्दी-माता आज रामविरह-विह्वल कौसल्या की भाँति अपने प्राणाधार 'रामचन्द्र' को चारों ओर ढूँढ रही है—पागल की तरह बौखलाती-बिललाती फिर रही है, कहीं उस 'महारथी' को नहीं पाती। आज उसे

सान्त्वना देनेवाला वसिष्ठ कोई रह नहीं गया। हा हन्त! इस दुःख को हम हिन्दीवाले कैसे सहन करें!

सज्जनो, इस सम्मेलन के आदि-सूत्रधार पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी और बिहार के प्रतिनिधि ब्रजभाषा-कवि पंडित अक्षयवट मिश्र 'विप्रचंद' के निधन ने साहित्यिक बिहार को निर्धन कर दिया है। चतुर्वेदी जी बंगाल के हिन्दी-केन्द्र कलकत्ता-नगर की साहित्यिक जागृति के प्रामाणिक इतिहास थे और वाग्विलास में उनका प्रत्युत्पन्नमतित्व पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था, तथा मिश्रजी संस्कृत एवं प्राकृत के प्रकृत विद्वान थे। दोनों ने बिहार-वसुन्धरा का आँचल छूछा कर दिया।

यहाँ स्थान और समय के संकोच से सब स्वर्गीय साहित्यसेवियों का नामोल्लेख और गुणगान तो नहीं हो सकता; पर एक नम्र निवेदन अवश्य है। बिहार के स्वर्गीय साहित्य-सेवियों के सम्बन्ध में शोक-समवेदना-सूचक प्रस्ताव स्वीकृत करते समय कृपया इस दयनीय दशा पर भी ध्यान दीजिएगा कि आज तक हम उनका सचित्र परिचय भी जनता के सामने यथोचित रूप में उपस्थित नहीं कर सके हैं, तब फिर उनके संस्मरणों की क्या कथा! हमारी यह उपेक्षा, उदासीनता और थोथी गुणग्राहकता वास्तव में शोचनीय है।

किन्तु, साहित्यसेवियों के स्वर्गगामी होने के बाद की चर्चा तो छोड़िए, उनके जीवन-काल में ही हम उनका क्या कुछ उपयोग कर पाते हैं।

इस प्रान्त के सर्वतोऽधिक वयोवृद्ध साहित्यसेवी पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र, जो अस्सी की सीमा पार कर चुके हैं, आजकल काशी-वास कर रहे हैं। आप उनको इसी महानगरी में, सम्मेलन के अध्यक्ष-मंच पर आसीन करके, पूज्य राजेन्द्र बाबू की स्वागताध्यक्षता में, विधिवत् सम्मानित कर चुके हैं। बिहार के वही एकमात्र जीवित साहित्य-सेवी हैं, जिन्होंने अनेक बार हिन्दी के परम उन्नायक भारतेन्दु के दरस-परस का सौभाग्य प्राप्त किया था—यहाँ तक कि भारतेन्दु के जीवन-काल में ही, युक्तप्रान्त और बिहार के कई जिलों में घूम-घूमकर, उन्होंने भारतेन्दु-समितियाँ और साहित्य-सभाएँ स्थापित की थीं, तथा हरिश्चन्द्र जी के प्रत्यक्ष आदर्श से अनुप्राणित होकर हिन्दीप्रेमियों में 'विद्या-धर्म-दीपिका' नामक पत्रिका का बरसों निःशुल्क वितरण किया था। क्या हमने कभी उनके अभिनन्दन का स्वप्न देखा है? क्या उनकी आत्मकथा लिखाने से बिहार का गौरव कुछ घट जायगा? क्या उनके संस्मरणों से हमारी वर्त्तमान प्रगतिशीलता पश्चात्पद हो जायगी?

मध्यप्रदेश के हमारे हिन्दीप्रेमी भाई अपने श्रद्धास्पद 'भानु' को सोल्लास अर्घ्य दे रहे हैं; पर हम देखादेखी भी अपने 'चन्द्र' को चार चावल चढ़ाना नहीं चाहते।

आप जानते हैं, महाभारत के दुर्द्धर्ष धनुर्द्धर और द्वापर के सर्वश्रेष्ठ मनीषी भीष्माचार्य जब रक्ताक्त कुरुक्षेत्र में शर-शय्या पर पड़े थे, तब उनके साथ ही भारत की राजनीति, धर्मनीति और समाजनीति का सूर्य अस्त होने जा रहा था। भला गो-दोहन-दक्ष गोपाल कृष्ण खुली आँखों यह अनर्थ कब देख सकते थे? उन्होंने आचार्य की पंचतत्त्व-

प्राप्ति से पूर्व ही ऐसे सदुपाय द्वारा ज्ञानामृत-दोहन किया कि आचार्य तो शान्तिपूर्वक उत्तरायण-सूर्य के साथ ढल ही गये, मानव-जाति को भी शाश्वत शान्ति उपलब्ध हुई। महाभारत का शान्तिपर्व इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

क्या हम भी अपने साहित्यिक वृद्धों का वैसा ही सदुपयोग नहीं कर सकते ? उनमें से सार-तत्त्व खींचकर क्या अपनी अगली पीढ़ी को कुछ पूँजी नहीं सौंप सकते ! क्या हममें 'दोग्धा गोपालनन्दन' कोई है ही नहीं ?

हमारे यहाँ पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र, पंडित जनार्दन झा 'जनसीदन', 'द्विजदेनी' कवि, महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्मा, श्री व्रजनन्दन सहाय 'व्रजवल्लभ', रायसाहब लक्ष्मीनारायण लाल आदि वयोवृद्ध साहित्यिसेवी हैं। उनके साहित्यरससिक्त जीवन का वृत्तान्त यदि स्वयं उन्हीं से अनुरोधपूर्वक लिखाया जाय, तो बिहार की पुरानी साहित्यिक स्थिति पर यथेष्ट प्रकाश पड़ सकता है।

भला कहिए तो, इसी सम्मेलन के मंच से जिन्होंने बिहार के हिन्दी-साहित्य के लुप्तप्राय इतिहास का उद्धार किया था, उन स्वर्गीय बाबू शिवनन्दन सहाय के लिए भी हमने अब तक क्या किया है ? उनके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के सुन्दर संस्करण भी आजतक न निकले। उनके दिवंगत होने के समय से आजतक बिहार में लाखों टन कागज पर छपाई हो चुकी होगी; पर उनकी एक चवनिया जीवनी भी हम अभीतक न छाप सके ! उन्होंने अपने जीवन-काल में ही बिहार के हिन्दी-साहित्य के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डालनेवाली सारी बातें स्वयं लिपिबद्ध कर डाली थीं। इसमें कोई अतिरंजना नहीं कि वे बिहार का जीता-जागता साहित्यिक इतिहास कहे जाने योग्य थे। पर, अब उनके लिखे पोथे की खोज-खबर लेनेवाला कौन है ?

और तो और, इस सम्मेलन के सर्वप्रथम सभापति स्वर्गीय पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी को भी हम क्रमशः विस्मृति के अन्धकारमय गर्त्त में धकेलते चले जा रहे हैं। उन्होंने अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मंच पर, बिहार के सुयोग्य प्रतिनिधि के रूप में, अपनी वाग्विदग्धता से, अनेक बार बिहार की मुखाम्बुजश्री को प्रफुल्ल बनाया था। सन्तोष की बात है कि उनके सुपुत्र पंडित रमावल्लभ जी उनकी स्मृति-रक्षा के निमित्त एक स्मारक-ग्रन्थ* तैयार कर रहे हैं, जो सम्भवतः अन्य स्वर्गीय साहित्य-सेवियों के उत्तराधिकारियों के लिए आदर्श-स्वरूप सिद्ध होगा। इस ग्रन्थ को सांगोपांग सम्पन्न करने के लिए पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी, पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, पंडित सकलनारायण शर्मा आदि स्वनामधन्य साहित्यकारों की अपील निकली है, जिसकी ओर बिहार के साहित्यानुरागियों तथा इस सम्मेलन का ध्यान आकृष्ट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। यद्यपि मैं उस स्मारक-ग्रन्थ की रूपरेखा से परिचित नहीं हूँ, तथापि मुझे आशा है कि

* यह स्मारक-ग्रन्थ इस समय बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (पटना) के अनुशीलन-विभाग में अप्रकाशित पड़ा है।—ले०

उसमें हास्यरसावतार कहे जानेवाले चौबेजी के उन समस्त साहित्यिक विनोदों का भी संग्रह होगा, जिनमें उनकी विलक्षण वाग्विभूति और प्रतिभा प्रस्फुटित हुई है।

बिहार ही में एक दूसरा स्मारक-ग्रन्थ भी बहुत ही सुन्दर तैयार हो रहा है, जो लहेरियासराय के पुस्तक-भंडार की रजत-जयन्ती और उसके संस्थापक श्री रामलोचनशरण जी की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है।* उसमें विविध ज्ञानवर्द्धक विषयों पर विख्यात विद्वद्वरों के सुचिन्तित सचित्र लेख हैं, जिनमें अधिकतर बिहार के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक महत्त्व से ही संश्लिष्ट हैं। बिहार के साहित्यिक प्रकाशन-क्षेत्र में अबतक 'भंडार' ने जो सराहनीय सेवाएँ की हैं, यह स्मारक-ग्रन्थ उन सबका सिरमौर होगा और उसके द्वारा बिहार की ऐसी बहुतेरी बातें प्रकाश में आवेंगी, जिनपर अबतक घनान्धकार का आवरण चढ़ा हुआ था।

यहीं पर यह भी जान लेना बड़ा सन्तोषप्रद होगा कि बिहार के सुपरिचित हिन्दी-लेखक श्री गदाधरप्रसाद अम्बष्ठ ने 'बिहार-दर्पण' नामक परमोपयोगी ग्रन्थ प्रस्तुत कर बिहार के भौगोलिक और ऐतिहासिक विवरणों का यथालब्ध प्रामाणिक स्वरूप बिहारियों के सामने उपस्थित कर दिया है, जिसके द्वारा अब हिन्दी-संसार को भी बिहार-विषयक व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। यदि अम्बष्ठ जी बिहार के साहित्यिक इतिवृत्त पर भी उसी ढंग से प्रकाश डालने का प्रयत्न करते तो हमारे विशेष धन्यवादभाजन होते। पता नहीं, खड्गविलास प्रेस के प्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थ 'बिहार-दर्पण' का नवीन संस्करण किस युग की प्रतीक्षा में है!

यह सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है कि इसी सम्मेलन के एक दूसरे स्वर्गीय अध्यक्ष रायबहादुर रामरणविजय सिंह जी की स्मृति-रक्षा के लिए खड्गविलास प्रेस के समर्थ स्वत्वाधिकारियों ने आज तक कोई उद्योग न किया, और हमने भी उन्हें उकसाते रहने का उपक्रम न किया। उन्हें तो अब रायबहादुर के नाम को अमर एवं उनकी स्वर्गस्थ आत्मा को तृप्त करने के लिए इस सम्मेलन के नये भवन में 'रामरणविजय व्याख्यानशाला' बनवा देने का सक्रिय संकल्प करना चाहिए। लगे हाथों यहाँ यह भी कहना अप्रासंगिक न होगा कि खड्गविलास प्रेस के समान सुसम्पन्न एवं सुप्रतिष्ठित संस्था को, पटना-विश्वविद्यालय के 'रामदीन-रीडरशिप' की समकक्षता में, इस सम्मेलन-भवन के अन्दर भी एक 'रामदीन-स्मारक-संग्रहालय' स्थापित कर देना चाहिए, जिसमें वह सम्पूर्ण साहित्यिक सामग्री सुरक्षित रूप से संचित रहे, जो अगणित वर्षों से कीटभक्षण द्वारा उक्त प्रेस में ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाने के लिए पड़ी है। वह बिहार के साहित्य-सम्बन्धी इतिहास के अन्वेषकों के लिए अतीव अमूल्य वस्तु होगी। बिहार के हिन्दी-प्रेमियों और सम्मेलन के हितैषियों को इसके लिए निरन्तर प्रेरणात्मक प्रयत्न करना चाहिए।

इसी प्रकरण में एक और आवश्यक बात कह देना असंगत न होगा। वह यह कि इसी सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर सकलनारायण शर्मा की सारी रचनाओं के

* वह ग्रन्थ पुस्तक-भंडार (पटना) से प्रकाशित हो गया है।—ले०

संरक्षण का दायित्व भी खड्गविलास प्रेस पर ही है। उनकी अधिकांश रचनाएँ अस्तङ्गत साप्ताहिक 'शिक्षा' के जीर्ण-शीर्ण पृष्ठों में पड़ी हुई हैं। वहाँ अब उनकी कोई उपयोगिता नहीं। उन्हें भी कीड़ों के उदरस्थ होने से बचाने के लिए यह अत्यावश्यक है कि सुसम्पादित एवं सुसज्जित ग्रन्थाकार में वे यथावत् प्रकाशित कर दी जायँ। चाहे हमारे इतिहासकार और समालोचक मानें या न मानें, शर्माजी भी हिन्दी-गद्यशैली के निर्माताओं और परिष्कर्त्ताओं में हैं। उनकी रचनाओं में व्याकरण-संगत विशुद्ध भाषा का आदर्श दर्शनीय है। जैसी उनकी मंजुल प्राञ्जल भाषा है, वैसे ही पाण्डित्यपूर्ण सारगर्भ विचार। उनका संकलन एवं प्रकाशन बिहार के गद्य-साहित्य में निश्चय ही अपूर्व रत्न-संचय होगा। उससे भाषातत्त्व के जिज्ञासुओं का भी उपकार होने की सम्भावना है।

शर्माजी की रचनाओं के समान ही बिहार के अनेक प्रथितयशा लेखकों की संग्रहणीय रचनाओं का भी उद्धार होना चाहिए। इस सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय अखौरी जी की कितनी बहुमूल्य रचनाएँ 'भारतमित्र' आदि कलकतिया पत्रों की पुरानी फाइलों में पड़ी सड़ रही हैं। पुस्तक भंडार और ग्रन्थमाला-कार्यालय को मैं इस दिशा में अग्रसर होने के लिए सादर आमंत्रित करता हूँ। जैसे 'भंडार' ने प्रो० अक्षयवट मिश्र के चुने हुए लेखों को सुन्दर पुस्तक-रूप दिया है, वैसे ही अखौरी जी, बाबू शिवनन्दन सहाय, पं० रामावतार शर्मा, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, बाबू व्रजनन्दन सहाय आदि के चुनिन्दा लेखों को भी विस्मृति के गर्भ से निकालना चाहिए।

बड़े हर्ष की बात है कि सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह ने अपने पूज्य स्वर्गीय पिताजी की काव्य-ग्रन्थावली की सर्वाङ्गसुन्दर संस्करण प्रकाशित कर तथा उनके शुभ नाम पर अपनी राजधानी में भी राजराजेश्वरी-साहित्य-मंदिर स्थापित कर सर्वथा श्लाघ्य कार्य किया है। इस मन्दिर द्वारा स्वयं राजा साहब की अपनी रुचिर रचनाएँ जो प्रकाशित हो रही हैं, वे बिहार के लिए निस्संदेह मुखोज्ज्वलकारी हैं। अब श्रीमान् कुमार गंगानन्द सिंह को भी अपने पूज्य पिता स्व० राजा कमलानन्द सिंह की ग्रन्थावली प्रकाशित करने में विलम्ब न करना चाहिए; क्योंकि उसकी अग्निशेष सामग्री बहुत-कुछ तैयार हो चुकी है।* मेरी तो यह भी प्रार्थना और उत्कट कामना है कि इन दोनों साहित्यिक राजाओं के नाम पर इस सम्मेलन में भी ऐसी निधियाँ संचित होनी चाहिए जिनसे बिहार के उदीयमान लेखकों को प्रोत्साहन प्रदान किया जा सके। क्या यह याचना अमोघ सिद्ध हो सकती है?

संभवतः, मेरी इन बातों को आप अनावश्यक समझ रहे होंगे। पर मेरी अपनी ओछी दृष्टि में ये वैसी नहीं हैं। फिर भी, आपकी अरुचि का सादर ध्यान रखते हुए, दूसरा प्रसंग छेड़ने के पहले, मैं एक बात और अन्त में कह लेना चाहता हूँ। वह है इस सम्मेलन के भूतपूर्व सभापतियों और स्वागताध्यक्षों के भाषणों का संग्रह, जिसके पूर्वार्द्ध का

*सुना है कि स्व० राजा कमलानन्द सिंह की ग्रन्थावली भी प्रेस में देने के लिए तैयार की जा रही है।—लेखक

किञ्चिदंश लहेरियासराय के पुस्तक-भंडार द्वारा 'बिहार का साहित्य' नाम से प्रकाशित हो चुका है; पर उसमें केवल पाँच सम्मेलनों के ही भाषण हैं, अभी लगभग एक दर्जन अप्रकाशित पड़े हुए हैं, और बहुत संभव है कि कुछ ही दिनों में सर्वथा अप्राप्य हो जायँगे। यदि ऐसा न भी हो, तो भी उनका पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो जाना परमावश्यक इसलिए है कि उनमें बिहार की साहित्यिक प्रगति का क्रमबद्ध विवरण सुलभ है, अतएव पुस्तकाकार धारण करके वे साहित्यिक अनुसन्धान में बड़े सहायक सिद्ध होंगे। आशा है, आप इस विषय को केवल प्रस्ताव का ही नहीं, कार्य का रूप भी देने में सचेष्ट होंगे।*

सम्मेलनाध्यक्षों के सम्बन्ध में इतना कह लेने के बाद मेरा ध्यान स्वतः इस सम्मेलन की ओर आकृष्ट हो रहा है। यदि मैं यह कहूँ कि हिन्दी-साहित्य संसार के प्रान्तीय सम्मेलनों में इसका एक विशिष्ट स्थान है तो अमार्जनीय अत्युक्ति न होगी। किन्तु, इधर आपकी विरक्ति से इसकी प्रगतिशीलता में जो शैथिल्य आता जा रहा है, वह भी प्रत्यक्ष है।

इसके मुखपत्र 'साहित्य' का प्रकाशन सम्प्रति स्थगित कर दिया गया है; पर उसका प्रकाशन अब अनिवार्यरूपेण आवश्यक प्रतीत हो रहा है; क्योंकि बिहार में इस समय जो साहित्यिक जागृति की कुछ दीप्तिमती रेखाएँ परिलक्षित हो रही हैं, उन्हें उत्तरोत्तर वृद्धिङ्गत एवं परिपुष्ट करने के लिए 'साहित्य' का पुनर्जन्म निस्संशय अपेक्षित है। यह दूसरी बात है कि इस बार वह लोकरंजक रूप धारण करके कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हो। मेरा विचार है कि सबसे पहले उसकी सारी व्यवस्था सर्वतोभावेन निश्चित कर ली जाय, फिर उसे हमलोगों के सहानुभूतिपूर्ण करावलम्बन का पूर्ण आश्वासन प्राप्त हो जाय, तब वह स्वाभाविक वेशभूषा में रंगमंच पर उपस्थित हो।†

किन्तु, उसे नेपथ्य से निकालने के पूर्व उसकी स्थायी रंगशाला को भव्य रूप दे लेना होगा। मेरा संकेत इस दृश्यमान सम्मेलन-भवन की ओर है, जिसका कंकाल हमारी दीर्घसूत्रता का साक्षी है। यदि हम इसमें साहित्यदेव की प्राण-प्रतिष्ठा करके इसे सँवारेंगे—इसे साहित्य की अर्चना-सामग्री से संवलित करेंगे, तो निश्चय ही हमारा यह आज का खँड़हर निकट भविष्य में ही साहित्यिकों के आकर्षण का केन्द्र बन जायगा।* मैं समझता हूँ, और ठीक समझता हूँ कि केवल पटना नगर के हजारों हिन्दीप्रेमी ही यदि अपने घर में समस्त प्रान्त की साहित्यिक प्रगति का मुख्य केन्द्र स्थापित होते देख उत्साहित हो जायँ, तो यह बेड़ा पार हो सकता है।

आप जानते हैं, इस सम्मेलन को साकार बनानेवाले इसके जीवन-सर्वस्व प्रधान मंत्री

---

*सम्मेलन के रजत-जयन्ती-महोत्सव (१९५६ ई०) के अवसर पर उसके सभापतियों के भाषणों का संग्रह प्रकाशित हो गया।—लेखक

†'साहित्य' अब नियमित रूप से त्रैमासिक रूप में प्रकाशित हो रहा है।—लेखक

*सम्मेलन-भवन अब सर्वाङ्ग सुन्दर और सुसज्जित रूप में तैयार होकर साहित्यानुरागियों के लिए आकर्षण-केन्द्र बन गया है।—लेखक

पंडित छविनाथ पांडेय की सतत श्रमशीलता से ही इस साहित्य-सदन का सर्जन हुआ है। इसके पुस्तकालय और वाचनालय को यथाशक्य सार्वजनिक उपयोग के उपयुक्त बनाने और इसके मुखपत्र 'साहित्य' का सविधि संचालन करने में पांडेय जी ने अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए जो तत्परता दिखाई है उसके लिए हमें हृदय से उनका कृतज्ञ होना चाहिए। उनके मंत्रित्वकाल में जो कुछ भी हो सका है, इस सम्मेलन के जीवनेतिहास में अभूतपूर्व है। अतः मेरी तो दृढ़ धारणा है कि केवल उन्हीं की उद्योगपरायणता से आगे का शेष कार्य भी सम्पन्न हो सकेगा। यदि वे अबतक की स्तुत्य तल्लीनता के साथ ही इस काम में लगे रहे तो वह दिन दूर नहीं है जब इस शारदा-मंदिर में हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी गवेषणा करनेवाले विद्वान एकत्र होकर अत्यन्त आप्यायित होंगे।

मैं तो बड़ी आस्था के साथ उस सुदिन की ओर टक बाँधे हुए हूँ जब इस भारती-भवन में, आप के ही समुचित सहयोग से, हिन्दी का एक विशाल ग्रन्थ भांडार होगा—अपूर्व साहित्यिक वस्तुओं का आलोकप्रद संग्रहालय होगा। तब आप इसमें अपने प्रान्त की विभूतियों के दर्शन कर सकेंगे—तब आप इसमें बड़े चाव से देखने आया करेंगे—बिहार के पुराने हिन्दी-लेखकों की अप्राप्य पुस्तकें, उनके चित्र, उनकी चिट्ठियाँ, बिहार की समाधिस्थ पत्र-पत्रिकाएँ और बिहार की कला-कृतियाँ। कृपया उस सुखावह क्षण की कल्पना कीजिए, जब आप यहाँ आकर इसी नगर के भारत-प्रसिद्ध यशोधन चित्रकार स्वर्गीय रामेश्वरप्रसाद वर्मा की उन लम्बी सरस चिट्ठियों को देख सकेंगे, जो लन्दन की रॉयल आर्ट सोसाइटी से हिन्दी में लिखी गई हैं। आप यहीं पर इस सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष, दक्षिण-अफ्रिका-प्रवासी, स्वामी भवानीदयाल संन्यासी के उन बृहदाकार पत्रों को भी पढ़ सकेंगे, जिनमें प्रवासी भारतवासियों के बीच हिन्दी-भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार के शुभ प्रयत्नों का विस्तृत विवरण विद्यमान है।*

आशा है, इन प्रलोभनों को मृग-मरीचिका न समझकर आप इस साहित्य-सौध के सिंगारने का भरपूर प्रयत्न करेंगे। आप कलकत्ता जाकर देखें, वंगीय साहित्य-परिषद् में प्रवेश करते समय उसके मुख्य-द्वार पर ही नाट्याचार्य अर्द्धेन्दुशेखर मुस्तफी की शुभ्र प्रस्तर-प्रतिमा के दर्शन होंगे। यदि हम भी इस भवन में विद्वच्चक्रचूडामणि पंडित रामावतार शर्मा और अमर चरितकार बाबू शिवनन्दन सहाय की मूर्त्तियाँ स्थापित करने के लिए कृतसंकल्प हों तो सचमुच हमारी गुण-ग्राहकता कृतकृत्य हो जाय। इतना ही नहीं, उपर्युक्त परिषद् में आप राजा राममोहन राय की पगड़ी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की मेज-कुर्सी, वंकिमचन्द्र की कलम-दावात, रमेशचन्द्र दत्त की चिट्ठियाँ, अमृतलाल बसु की गुड़गुड़ी आदि अनेक स्मृति-चिह्नों को विस्मय-विस्फारित नेत्रों से देखकर बंगाली भाइयों

*सम्मेलन के पुस्तकालय, वाचनालय, कार्यालय और अनुशीलन-विभाग में अनेक महत्त्वपूर्ण, संग्रहणीय एवं अलभ्य पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, साहित्यिक चिट्ठियों, साहित्यसेवियों के स्मारक-चिह्नों तथा चित्रों का संचय किया गया है और संग्रह का काम बराबर जारी है। —लेखक

के अतुलनीय मातृभाषानुराग पर चकित-पुलकित हो उठेंगे। किन्तु, सोचिए तो सही, आपके अपने घर में पंडित केशवराम भट्ट, मुंशी राधालाल, बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री, पंडित विजयानन्द त्रिपाठी, पंडित भुवनेश्वर मिश्र, बाबू यशोदानन्दन अखौरी, पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री, पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा, कविकिंकर पाण्डेय जगन्नाथप्रसाद, प्रोफेसर राधाकृष्ण झा, डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल, कविवर 'सुमति', बाबू सोनासिंह चौधरी आदि साहित्यसेवियों का एक भी स्मृतिचिह्न न होना कितने परिताप की बात है! जिन्होंने साहित्य-यज्ञकुण्ड के धधकाने में अपनी हड्डियों को चन्दन की चैलियाँ बना डाला, उनको आपने सदा के लिए आँखों से ओझल ही नहीं किया, अपने मस्तिष्क से भी उन्हें निर्वासित कर दिया। परन्तु, अब भी समय है और इन सबके स्मृति-चिह्न आज भी ढूँढ़े मिल सकते हैं।*

सज्जनो, इस उपालम्भ द्वारा मैं आपकी उदारता पर अनास्था नहीं प्रकट कर रहा हूँ। ईश्वर-विश्वासी होने के कारण मैं निराशावादी नहीं हूँ। आपके साहित्यानुराग पर मुझे सोलहो आने विश्वास है। किन्तु क्षमा कीजिए, पूर्वोक्त उपालम्भ भी बावन तोले पाव रत्ती ठीक है। फिर भी, मैं बिहार की वर्त्तमान साहित्यिक प्रगति को देखते हुए किसी तरह निराश नहीं, प्रत्युत अधिकाधिक आशान्वित हूँ। जब मैं बिहार के लेखकों, कवियों, कथाकारों, सम्पादकों, समीक्षकों और प्रकाशकों के विराट् समुदाय पर दृष्टिनिक्षेप करता हूँ तब संतोष की ही साँस लेने का जी चाहता है और चारों ओर आशा की ही ज्योति जगमगाती दीख पड़ती है। यद्यपि यहाँ सभी साहित्यिकों की विविध-क्षेत्रगत सेवाओं का सविस्तर वर्णन तो असाध्य कर्म है, तथापि कम-से-कम उनका नाम-स्मरण भी न करने से आज के इस महोत्सव की सार्थकता ही सिद्ध न होगी। अतएव, अपनी गति-मति के अनुसार उनके नाम-स्मरण से अपनी वाणी को पवित्र करता हूँ, कृपया आप भी गर्वस्फीत वक्ष से इस नामावली को हृदयंगम कीजिए। सचमुच नैराश्य के लिए कहीं तिलमात्र भी स्थल न रहेगा।

जहाँ डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, डाक्टर गंगानाथ झा, महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्मा, राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, आचार्य बदरीनाथ वर्मा, कुमार गंगानन्द सिंह, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, प्रोफेसर अमरनाथ झा, प्रिन्सिपल मनोरंजनप्रसादसिंह प्रिन्सिपल विश्वमोहन कुमार सिंह, डाक्टर सत्यनारायण, डाक्टर जनार्दन मिश्र, प्रोफेसर फूलदेवसहाय वर्मा, प्रो॰ ललितकुमार सिंह, दर्शनकेसरी गोपाल शास्त्री, श्रीपारसनाथ सिंह, श्रीसाँवलियाबिहारीलाल वर्मा, श्रीरामधारी प्रसाद 'विशारद', मौलवी पीर मुहम्मद मूनिस, प्रो॰ कृपानाथ मिश्र, प्रोफेसर विश्वनाथप्रसाद, अध्यापक रामखेलावन पांडेय, श्रीगंगाशरण सिंह, पांडेय रामावतार शर्मा, पं॰ रासबिहारी राय शर्मा, प्रो॰ माहेश्वरी सिंह 'महेश', प्रो॰ जगन्नाथराय शर्मा, प्रो॰ रत्नचन्द्रछत्रपति, श्रीकालीचरण चटर्जी, श्रीकार्तिकेय-

* बिहार के अनेक पुराने और स्वर्गीय साहित्यसेवियों के स्मृति-चिह्न अब सम्मेलन के अनुशीलन-विभाग में सुरक्षित हैं।—ले॰

चरण मुखोपाध्याय, श्रीउमाशंकर, श्रीउमाशंकर प्रसाद, श्रीरमेशप्रसाद, श्रीगोपीनाथ लाल वर्मा, श्रीमती विमला देवी 'रमा', श्रीगिरिधारीलाल शर्मा 'गर्ग', श्रीशुकदेवनारायण, श्रीतारकेश्वरप्रसाद, श्रीसतीशचन्द्र आदि प्रसिद्ध लेखक हैं, वहाँ निराशा का कोई कारण नहीं।

जहाँ द्विज, दिनकर, दिवाकर, विमल, वियोगी, प्रभात, भुवन, कैरव, केसरी, किसलय, कमल, अरविन्द, आरसी, नैपाली, नटवर, नवल, सुजन, सुमन, सुहृद, सहृदय, मनोरंजन, माधव, मधुकर, रमण, राकेश, शक्र, श्रीरघुवीरनारायण, श्रीजयकिशोरनारायण सिंह, पंडित हंसकुमार तिवारी, श्रीरामदयाल पांडेय, श्रीहरेन्द्रदेव, श्रीश्यामधारीप्रसाद, श्रीमोहनलाल गुप्त आदि भावुक कवि हैं, वहाँ की सजलमूला साहित्य-सरिता कभी आशा-लता को मुरझाने न देगी।

जहाँ पं० नन्दकिशोर तिवारी, श्रीरामलोचनशरण 'विहारी', श्रीदेवव्रत शास्त्री, श्रीबेनीपुरी, पंडित जगन्नाथप्रसाद मिश्र, पं० श्रीकान्त ठाकुर विद्यालंकार, पंडित रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ, पं० मथुराप्रसाद दीक्षित, श्रीअच्युतानन्द दत्त, श्री दिनेशदत्त झा, श्रीव्रजशंकर, साहित्याचार्य 'मग', साहित्याचार्य 'सुमन', श्रीसुरेश विद्यालंकार, श्री युगलकिशोर सिंह शास्त्री, श्री त्रिवेणीप्रसाद श्रीवास्तव, श्री 'मुक्त' और श्री 'भुवन' के समान अनुभवी पत्रकार तथा सफलीभूत सम्पादक हैं, वहाँ की साहित्यिक प्रगति में कभी रोड़े नहीं अटक सकते। इनमें कई सज्जनों का सेवामार्ग परिवर्त्तित हो गया है; पर उनकी कला उनके साथ ही है।

यदि हम अपने कथाकारों की ओर देखें, तो भी उमंग की ही तरंग उठती है। पूर्वोक्त राजा साहब के अतिरिक्त बाबू व्रजनन्दन सहाय, प्रो० द्विज, प्रो० दिवाकर, श्री अनूपलाल मंडल, श्री मोहनलाल महतो, श्री आरसीप्रसाद सिंह, श्रीप्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त', श्री जानकीवल्लभ शास्त्री, श्री राधारमण शास्त्री, श्री नलिनविलोचन शर्मा, श्री कमलाकांत वर्मा, पं० सरयू पंडा गौड़, श्री राधाकृष्ण प्रसाद, श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह, श्री सूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव, श्री वृन्दावनविहारी, श्री राधाकृष्ण, श्री नवलकिशोर गौड़ आदि कुशल कथाकारों का रचा हुआ कथा-साहित्य उज्ज्वल भविष्य की ही ओर इंगित करता है।

जब हम मौलिक निबन्ध और साहित्यिक समालोचना के लेखकों की खोज में दृष्टि-प्रसार करते हैं, हमारे सामने श्री सुधांशु, प्रो० दिवाकर, श्री जयकिशोरनारायणसिंह, श्री गोवर्द्धनलाल गुप्त, प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, प्रो० द्विज, प्रो० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, प्रो० केशरीकिशोरशरण, पं० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', पं० जानकीवल्लभ शास्त्री, पं० लक्ष्मीकान्त झा, आई० सी० एस्० की कृतियाँ स्पष्ट झलक उठती हैं।

इतना ही नहीं, हमारे यहाँ प्रो० सकलनारायण शर्मा, प्रो० द्विज, प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी आदि के समान ओजस्वी वक्ता भी हैं, जो हिन्दी-संसार के किसी भी मंच से विहार की महत्ता उद्घोषित कर सकते हैं।

आप कहेंगे, नाम-माला तो बड़ी लम्बी सरका गये, पर न किसी का परिचय दिया—न किसी की समीक्षा की। तब फिर मुझे भी इतना कहने की अनुमति दीजिए कि साहित्य की गति-विधि से जो परिचित हैं, उनके लिए विशेष परिचय अथवा समीक्षा सापेक्ष भी नहीं है, और सच तो यह है कि मुझमें समीक्षक होने की पात्रता ही नहीं है, मैं तो अपने दही

को खट्टा न कहनेवाला एक गँवार अहीर हूँ। ऐसे अनाड़ी की ऊटपटाँग समीक्षा में आपको कोई रस न मिलेगा, फिर समय अतिवाहित करने से लाभ ही क्या?

अब आगे बढ़कर हम देखें, हमारे प्रकाशकों में सबसे अधिक जाज्वल्यमान नाम पुस्तक-भंडार के अध्यक्ष श्री रामलोचनशरण जी का है, जिन्होंने अबतक अनेक उत्तमोत्तम सुसम्पादित साहित्यिक पुस्तकें, आकर्षक एवं सुरुचिपूर्ण सजावट के साथ, प्रकाशित की हैं। ग्रन्थमाला-कार्यालय के स्वामी पंडित रामदहिन मिश्र ने भी अपने पूर्वारब्ध साहित्यिक कार्य को इधर बड़े वेग से आगे बढ़ाया है और कई उल्लेखनीय पुस्तकें लेकर अभिनव उत्साह के साथ पुनः साहित्य-प्राङ्गण में पदार्पण किया है। मिश्रजी स्वयमेव साहित्यसेवी हैं। अतएव, मैं साहित्य की श्रीवृद्धि के अभिलाष से प्रेरित होकर इन दोनों प्रौढ़ प्रकाशकों का हार्दिक स्वागत करता हूँ। किन्तु, जो सरकार अकारण ही हमारी हिन्दी-सीता पर भृकुटीविकटानन दशानन हो रही है, उसके हिन्दुस्तानी-प्रचार-सम्बन्धी कुत्सित कार्यक्रम में यत्किञ्चित् सहयोग देने के कारण, मैं साहित्य के नाते, विशेषतः केवल इन्हीं दोनों प्रकाशकों से, सप्रेम निवेदन करना चाहता हूँ कि व्यर्थ ही मृगतृष्णा में न पड़कर वे सन्तोषपूर्वक केवल अपने विशुद्ध हिन्दी-सेवा-मार्ग का ही अवलम्बन किये रहें। यदि उनकी इस अनासक्ति से दूसरे उदरम्भरि प्रकाशक, हिन्दुस्तानी के नाम पर अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा करेंगे, तो हमें भय है, हम उनके साथ शिष्टता का सम्यक् परिपालन न कर सकेंगे। हमें अपनी भाषा और संस्कृति की रक्षा के लिए मानवोचित निष्ठुर कर्त्तव्यों का पालन करना ही पड़ेगा।

परन्तु, इनके सिवा और भी कुछ प्रकाशक बिहार में हैं, जिनमें 'युगान्तर-साहित्य-मंदिर'-वाले अनूपजी, 'नवशक्ति-प्रकाशन-मंदिर'-वाले श्री देवव्रतजी शास्त्री, 'युगान्तर-प्रकाशन-समिति' वाले-जगदीशनारायण जी, 'सरस्वती-साहित्य-सदन'-वाले अखौरी जी, 'किताब-घर'-वाले परमेश्वर सिंह जी, 'वाणीमन्दिर'-वाले ठाकुर मंगलसिंह आदि की प्रकाशन-पद्धति आधुनिक रुचि के अनुकूल है। खड्गविलास प्रेस तो इस क्रान्ति-युग में भी उन्नीसवीं शताब्दी के गहन गह्वर से निकलना नहीं चाहता और उसी की तरह आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा का भी समाधि-भंग अनिश्चित-सा जान पड़ता है। सभा की पुराकृत सेवाएँ पुरस्करणीय अवश्य हैं; पर खेद है कि शुष्क कृतज्ञता ढोने का युग कब का लद गया!

पुनः मुजफ्फरपुर की बर्मन-कम्पनी, राँची का विद्यामंदिर, गया का राजेश्वरी बुक-डिपो, मुंगेर का पब्लिशिङ्ग हाउस, सुलतानगंज का वैदिक-ग्रन्थ-कार्यालय आदि प्रकाशन-संस्थाएँ भी बिहार में सर्वविदित हैं। इनमें अधिकांश, केवल वैदिक-ग्रंथ-कार्यालय को छोड़कर, मुख्यतः साधारण पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन में ही दत्तचित्त हैं। इनका कोई साहित्यिक कार्य मेरे दृष्टिगत नहीं हुआ, अतएव इनका नामोल्लेख-मात्र ही अलम् है।

किन्तु, इसी दौड़ में जब हम पत्र-पत्रिकाओं की ओर निरखते हैं, हमारा उछलता आता हुआ मन क्षण-भर ठिठक जाता है। यद्यपि नवशक्ति, योगी, प्रभाकर, मिथिलामिहिर, तिरहुत-समाचार, राष्ट्रसन्देश आदि साप्ताहिक पत्र और आरती, बालक, किशोर, मेल-मिलाप, खादी-सेवक, रोजगार, किसान आदि मासिक पत्र तथा 'ढिस्को रिव्यू' नामक चित्र-बहुल

त्रैमासिक पत्र (हिंदी-खंड) अपने-अपने लक्ष्य की ओर बड़े उत्साह से अग्रसर हो रहे हैं, तथापि बड़ी खिन्नता के साथ कहना पड़ता है कि हम इन्हें दिल खोलकर अपनाते नहीं।

बिहार पर जो यह परम्परागत कलंक था कि यह पत्र-पत्रिकाओं के लिए मरुस्थल-तुल्य है, उसे 'नवशक्ति' ने अपनी धैर्य-धारा से धो डाला है। वह हिन्दी के गिने-चुने श्रेष्ठ साप्ताहिकों में अत्युच्च स्थान की अधिकारिणी है; किन्तु उसे यह गौरव अपने दृढ़व्रती सम्पादक की कष्टसहिष्णुता और अध्यवसाय के बल पर मिला है, कुछ हमारी गुण-ग्राहकता के बूते नहीं। यदि ऐसा होता, तो उसके दैनिक संस्करण में उसकी बची-खुची पूँजी भी स्वाहा न होने पाती। इस प्रान्त के प्रत्येक भाग में हम अपनी जेब के जोर से सिनेमा-घरों को मजे से चलने दे रहे हैं; पर उसका दैनिक संस्करण हम न चला सके! उसकी अपील आजतक खटाई में पड़ी हुई है और हमें मन्दी का बना-बनाया बहाना मिल गया है। आपसे इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि आप 'नवशक्ति' की लोकप्रियता से भली-भाँति परिचित हैं और उसके प्रति अपने कर्त्तव्यपालन की महत्ता भी खूब समझते हैं; पर इतना कह देना असामयिक न होगा कि एक अच्छे दैनिक पत्र के विना हम अपने प्रान्त को किसी भी दिशा में प्रगतिशील होता नहीं देख सकते।

आप तो 'योगी' की कठिनाइयाँ भी जानते ही हैं। वह इस प्रान्त का सबसे पहला साप्ताहिक पत्र है, जो बरसों से संकटों के दलदल में अपना मनोरथ-रथ ठेल रहा है। उसको यदि व्रजशंकर जी के समान धुन का पक्का साथी न मिला होता, तो बिहार का कलंक-पंक-प्रक्षालन करने के बदले वह हरद्वार की हवा खाने रम देता। आप यदि उसे मधुकरी न देंगे, तो भी वह अनासक्त की भाँति निर्लिप्त भाव से अपने उद्देश्य-शिखर की पगडंडी नापता चला जायगा; परंतु आपके औदार्य का नगाड़ा भी औंधा ही पड़ा रहेगा।

यह दुखड़े का पचड़ा सुनकर आप ऊब रहे होंगे, पर यहाँ तो आप सहगल और कानन का मधुर संगीत सुनने आये नहीं हैं, आये हैं अपने प्रान्त की साहित्यिक प्रगति पर मापदंड रखने, तो फिर देखिए कि बिहार का भारत-प्रसिद्ध 'बालक' चौदह बरसों से हिन्दी में उत्कृष्ट बाल-साहित्य की सृष्टि कर रहा है; पर आजतक वह स्वावलम्बी न हो सका! उसके साहसी सम्पादक की साधन-सम्पन्नता भले ही उसे मोटर पर सवार कर दौड़ाती फिरे; पर वह अपने पैरों के बल खड़ा होने योग्य आज भी नहीं है।

सज्जनो, अनामिका यहीं सार्थवती नहीं होती। 'किशोर' भी आपके आलस्य का शिकार है! उसकी सुन्दर सम्पादन-शैली से आपके प्रान्त का सुयश वर्द्धमान होता है और आप घाते में ही स्वाद चखने के आदी बन बैठे हैं। उसके समर्थ संचालक भी आपके उत्साह की मन्थर गति देखकर घर का आटा गीला कर रहे हैं, और आप अपनी गुणज्ञता को घर की देहली भी नहीं लाँघने देते।

संसार के अन्यान्य कार्यों के लिए अभाव-अभियोग की चिकनी-चुपड़ी बातें नहीं कही जातीं; पर केवल साहित्य के ही नाम पर अंटी सूखी हो जाती है। आप स्पष्ट देखते हैं कि 'आरती' की प्रदीप्त शिखा से बिहार का साहित्य-मन्दिर कैसा देदीप्यमान हो रहा है; फिर भी आप उसे यथेच्छ रीति से स्नेहाभिषिक्त नहीं करते। पर यदि 'मुक्त' जी के

इस अन्तिम प्रयास को भी आपने सूखे घाट उतारा, तो वे बस जीवन्मुक्त होकर आपका उजागर नाम ही जपते रह जायँगे और आपके हाथ लगेगी निर्वापित आरती की कालिख !

तब, क्या आप अपने बारे में दुनिया को यह बतलाना चाहते हैं कि इन तिलों तेल ही नहीं है ? ऐसा तो हो नहीं सकता। आप अपनी सुषुप्त शक्ति को जगाइए। आपमें ऐसी अपरिमेय शक्ति निहित है कि जितने पत्र इस समय यहाँ चल रहे हैं, उनसे ड्योढ़े-दुगुने पत्रों का आप पोषण कर सकते हैं। फिर भी, यदि इस विकट युद्धकाल में वर्त्तमान पत्र पत्रिकाओं को ही आप जीवित रख सकें, तो प्रान्त की साहित्यिक प्रगति कभी अवरुद्ध नहीं हो सकती।

किन्तु, यह बात सपने में भी न भूलिएगा कि केवल उसी पत्र-पत्रिका को आपका आश्रय पाने का अधिकार है जो हिन्दी की रक्षा और हिन्दुस्तानी का पूर्ण बहिष्कार करने में प्राण-पण से प्रवृत्त है। हिन्दुस्तानी आज हिन्दी के पुष्पास्तृत पथ का कंटक बन रही है। उसके शीश पर आज सरकार का अभयवरद हस्त है। सरकार को हिन्दी की अजेय शक्ति का पता लग चुका है। वह जानती है कि हिन्दी में राष्ट्र-निर्माण की अद्भुत सत्ता विद्यमान है। हिन्दी की सुगमता के विषय में भी वह जानती है कि उसी के घर के पिनकाट साहब ने सात भाषाएँ सीखकर केवल हिन्दी को ही पसन्द किया था—उन्होंने भारतेन्दुजी को जो पत्र लिखा था, उसमें हिन्दी की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। हिन्दी की अनुदिन अभिवृद्धि को भी वह सशंक दृष्टि से देखती है। किन्तु, आतंक-ग्रस्त होने पर भी वह अपने कलेजे की धुकधुकी छिपाने में उस्ताद है। वह नाना प्रकार के कुटिल प्रयत्नों द्वारा हिन्दी को अपदस्थ करने पर तुल गई है। इसलिए, हमें बड़ी विनय के साथ, किन्तु अतिशय स्पष्ट शब्दों में, यह व्यक्त कर देना चाहिए कि राष्ट्रभाषा के नाम से हम केवल हिन्दी को ही पुकार सकते हैं, हिन्दुस्तानी को कदापि नहीं। राष्ट्रभाषा की तो बात ही क्या, केवल भाषा के अर्थ में भी 'हिन्दुस्तानी' शब्द का ग्रहण असंभव है। हिन्दी स्वयं इतनी शक्तिशालिनी हो चुकी है कि अब उसे किसी की सहायता चाहिए ही नहीं। उसका शब्द-भांडार इतना परिपूर्ण है कि वह दूसरे का मुँह जोहना पसन्द नहीं करती। झोपड़ी से महल तक उसकी पैठ है। आसेतु-हिमाचल भूमि पर उसकी धाक है। वह ठेठ देहाती किसान के दिल में भी घर कर सकती है और सुसभ्य नागरिक का चित्त चुराने में भी चतुर है। उसे सूर और तुलसी ने चन्दन-चर्चित किया है। केशव, देव और बिहारी ने उसे नखशिख अलंकृत किया है। कबीर और जायसी ने उसकी दुन्दुभि बजाई है। रहीम और रसखान ने उसे अमृत पिलाया है। भारतेन्दु और द्विवेदी ने उसकी जड़ पाताल पहुँचाई है। अब शेषनाग के मस्तक से उसकी जड़ उखाड़ने का जो दुस्साहस करेगा, वह निश्चय ही भूकम्प-ध्वस्त होगा। अब वह धूसर खेत की मूली नहीं है। उसके स्वर में कृष्ण की बाँसुरी की सुरीली तान है। उसकी वाणी में राम के धनुष-टंकार का गम्भीर गर्जन है। उसके नेत्रों में भूषण और गुरुगोविन्द की तेजस्विता है। इतने पर भी जो कोई उससे आँखें बराबर करेगा, उसकी आँखों की रोशनी बुझा दी जायगी। हिन्दी को मुट्ठी में मसलकर जो समुद्र में फेंकना चाहता है, वह हिमालय

को बटखरा बनाना चाहता है। जिसको समझना हो, वह समझ ले कि हमारी हिन्दी निपूती नहीं है। उसकी रक्षा के लिए उसके हजारों सपूत सन्नद्ध हैं।

सज्जनो, यह खोखली गर्वोक्ति नहीं है। हिन्दीवाले जबतक असावधान थे, चाहे जिसकी तूती बोल गई। पर, जब हमारी नींद टूट गई, किसी का कौआ भी नहीं बोल सकता। हमें अब दृढ़प्रतिज्ञ होकर हिन्दी की हित-रक्षा में लग जाना चाहिए। भय किसी बात का नहीं है। आप जानते हैं कि तलवार और लेखनी की लड़ाई में लेखनी ही विजयिनी हुई है। तलवार के बल से न कोई भाषा चलाई जा सकती है, न मिटाई। हमें तनिक भी कदराना न चाहिए। हमारे पक्ष की प्रबलता प्रचंड है। हिन्दी-जैसी समृद्धिशालिनी भाषा को मटियामेट करना खिलवाड़ नहीं है। हिन्दुस्तानी के पास है ही क्या जो हिन्दी के सामने टिक सकेगी। उस आकाश-वल्लरी को हम नोंच फेंकना चाहें तो कोई बड़ी बात नहीं। हम नोन-सत्तू बाँधकर उसके पीछे पड़ जायँ। हाँ, हिन्दी की छत्रच्छाया में जैसे अन्य उपभाषाएँ पलती हैं; वैसे ही यदि वह भी गुजर करना चाहे तो किसी कोने में पड़ी रहे; पर वह भी असह्य ही प्रतीत होता है। जो सौत बनकर आई है, कभी सहेली नहीं बन सकती।

सज्जनो, कुछ लोग राष्ट्रीय एकता की दुहाई देकर हमसे हिन्दुस्तानी का समर्थन कराना चाहते हैं। उनसे भी दो-टूक बात कह देना ठीक है। वे हिन्दी को राष्ट्रीय एकता की सिद्धि में बाधक समझते हैं तो यह उन्हीं का मस्तिष्क-विकार है, हिन्दी का कोई दोष नहीं। वह तो मुसलमानों, ईसाइयों, सिक्खों और पारसियों के समझने योग्य भी अपना रूप बना लेती है। सबके घर की बोलियों को पचाने से ही हिन्द में उसका बोलबाला हुआ है। जो लोग नाहक उसकी व्यापकता में सन्देह करते हैं, वे आँखें फाड़कर देख लें कि सीमाप्रान्त के गाँधी भी मिथिला में आकर जिस भाषा के सहारे जनता के दिल में अपनी बात उतार गये, पंडित जवाहरलाल नेहरू भी सीमाप्रान्त में जाकर उसी भाषा के सहारे पठानों को पिघला आये। वह भाषा भी हिन्दुस्तानी नहीं, हिन्दी ही है। उसी तर्ज की भाषा लिख गये हैं राजा शिवप्रसाद, बालमुकुन्द गुप्त और पद्मसिंह शर्मा, जो हिन्दी के ही प्रसिद्ध लेखक हैं, हिन्दुस्तानी के कुछ भी नहीं। हमारे सूर्यपुराधीश राजा साहब की शैली को भी यार लोग हिन्दुस्तानी ही कहकर अपने लचर पक्ष में पम्प भरते हैं; पर उनको भी हम हिन्दी का ही गद्यकवि मानते हैं, हिन्दुस्तानी का उनपर राई-भर भी हक नहीं है। हिन्दी के जीते-जी भाषा के क्षेत्र में हिन्दुस्तानी को पैर रखने का कोई अधिकार नहीं। उसको बढ़ावा देने के लिए लाख कमिटियाँ बनती रहें, हिन्दी को इसका डर नहीं। मनगढ़न्त शब्दों का कोष बनाकर जो उसे हिन्दी का राष्ट्रभाषा-पद छीनने के लिए ललकारते हैं, उन्हें हिन्दी भी चुनौती देती है कि प्रतिस्पर्द्धा के अखाड़े में उतर आवें। हिन्दीवालों के सामूहिक जागरण का कलरव अब दिग्दिगन्त को गुँजा कर ही रहेगा।

आजकल हिन्दी की शैली जो बिगाड़ी जा रही है, प्रारम्भिक शिक्षा-प्रणाली पर धावा बोलकर हमारी संस्कृति के मर्म पर जो आघात किया जा रहा है, मनुष्य-गणना में दिन-दहाड़े जो हिन्दी की हत्या हो रही है, सब-के-सब हिन्दुस्तानी के ही चोचले हैं। इनका

मुँहतोड़ जवाब हमें देना पड़ेगा। इसका उपाय हमें सोचना पड़ेगा। सन्तोष की बात है कि मुजफ्फरपुर के 'सुहृद-संघ' और छपरा की 'लोकमान्य-समिति' ने इस दिशा में बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है।

हमें गाँव-गाँव में दौरा, संगठन, प्रचार और सम्मेलन का सन्देश-वहन करना होगा। शिक्षकों और विद्यार्थियों का सहयोग प्राप्त करना होगा। स्वेच्छासेवकों की टोली बनानी पड़ेगी। त्याज्य वस्तुओं की होली जलानी पड़ेगी। निहत्थों के जितने अपार्थिव शस्त्र हैं, सबका प्रयोग करना होगा। विजय हमारी निश्चित है।

हिन्दुस्तानी के बाद हमारे सामने दूसरी समस्या लिपि-सुधार की है, जिसके लिए हो-हल्ला मचानेवाले आजकल बहुत पैदा हो गये हैं। किन्तु, मेरी दृष्टि में देवनागरी-लिपि की वैज्ञानिक महत्ता स्वयंसिद्ध है, उसका रूप विकृत करनेवाले अक्षम्य अपराधी हैं। पूना के महासम्मेलन में लिपिसुधार-सम्बन्धी जो प्रस्ताव पास हुए हैं, वे अदूरदर्शितापूर्ण हैं। वहाँ देवनागरी का अंगभंग करके एक ऐसा जघन्य कर्म किया गया है, जिसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। मैं बिहार के हिन्दी-प्रेमियों से साग्रह अनुरोध करता हूँ कि उस प्रस्ताव को अवश्य तिरस्कृत करें। नये सुधरे हुए अक्षरों की कुरूपता और दुर्दशा देखकर सुधारकों की सूझ पर दया आती है। भाषा-शैली में अनेक सुधारों की आवश्यकता है, उनपर किसी की दृष्टि नहीं है। लिखावट की विभिन्नताएँ दूर करने के लिए कोई बद्धपरिकर नहीं है। भला अक्षरों का कलात्मक सौन्दर्य नष्ट करना कहाँ का न्याय है? आजकल लोग झंझटों से बचने के लिए ऐसे-ऐसे अनेक अनर्थ कर डालते हैं। छपाई में झंझट है तो अक्षरों को तरोड़-मरोड़ डालिए और गृहस्थी में झंझट है तो बाल-बच्चों को मार डालिए। यह अनोखा सिद्धान्त मुझे पसन्द नहीं।

हमारे सामने तीसरी समस्या सन्ताल भाइयों में हिन्दी-प्रचार करने की है। मेरी दृष्टि में इसका समाधान केवल द्रव्य से हो सकता है। सन्ताल भाइयों में हिन्दी-प्रचार करने का उद्योग यथासंभव शीघ्र होना चाहिए। सम्मेलन के सामने सबसे कठिन प्रश्न यही है। हिन्दी-प्रेमियों को इस कार्य के लिए सहायता करनी चाहिए।

सज्जनो, बिहार के पुस्तकालयों के संगठन का प्रश्न भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। बड़े आह्लाद का विषय है कि हमारे प्रान्त में दिन-दिन पुस्तकालयों की संख्या बढ़ रही है। इस आन्दोलन को प्रगतिशील बनाने में 'नवशक्ति', नियमित रूप से अपना एक स्वतंत्र पृष्ठ देकर, अनिवर्चनीय सहायता पहुँचा रही है। यदि समीचीन रीति से सब पुस्तकालयों का संगठन हो जाय तो इस सम्मेलन का भी बड़ा उपकार होगा। जिस स्थान में जो पुस्तकालय है, वह यदि अपने आसपास के कलाकारों और सहित्य-स्रष्टाओं की कृतिओं का संग्रह एवं संचय करता जाय तो, सहज ही बहुत बड़ा काम कर सकता है। ग्रामगीत-संग्रह के काम में तो आशातीत सफलता मिल सकती है। हस्तलिखित पोथियों की खोज में भी बड़ा सुबीता होगा।

किन्तु, हमारे पुस्तकालयों के ध्यान देने योग्य एक बात और भी है। उन्हें प्रत्येक पत्र-पत्रिका की पूरी-पूरी फाइल सुरक्षित रखने का प्रयत्न करना चाहिए। जो अखबार बन्द हो जायँ,

कम-से-कम उनके प्रथम और अंतिम अंक को सावधानतापूर्वक सँभाल रखना चाहिए। पुस्तकों के प्रथम संस्करणों और पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांकों की रक्षा पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। इस तरह चाहिए तो बहुत-कुछ; यदि कोई करनेवाला हो। कर्मठ और धुनी सर्वत्र नहीं मिलते। किन्तु, लौ लगाने से सभी कर्मण्य बन सकते हैं। पुस्तकालय की दुर्गति तभी होती है जब वह किसी अकर्मण्य के पल्ले पड़ जाता है और उन्नति तब होती है जब उसी में धूनी रमानेवाला कोई धुनी मिल जाता है। पुस्तकालय तो सचमुच धूनी रमाने की ही जगह है।

पुस्तकालयों का निरीक्षण करते रहने के लिए सम्मेलन अधिकारी साहित्यसेवियों को नियुक्त करे, जो निश्चय ही अवैतनिक होंगे, पर निरीक्षण का विवरण सम्मेलन-कार्यालय में भेजने के लिए बाध्य होंगे।

पुस्तकालयों द्वारा सम्मेलन के प्रचार-कार्यों के साथ-साथ रचनात्मक कार्यक्रमों में भी बड़ी सहायता मिल सकती है। आपलोग इसपर भली-भाँति विचार कर कोई योजना स्वीकृत करें।

अब मैं आपकी सेवा में दो पत्र अविकल रूप में उपस्थित करता हूँ। आशा है, इनमें लिखी हुई बातों पर आप अवश्य विचार करेंगे—

हिन्दी-संसार के आदर्श पत्रकार, वर्त्तमान 'मधुकर'-सम्पादक तथा भूतपूर्व 'विशालभारत'-सम्पादक, पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी टीकमगढ़ से गत २३ जनवरी के पत्र में लिखते हैं—

"सबसे प्रथम हमारा कर्तव्य है कि हम अपने प्रान्त के प्रत्येक जिले का संगठन करें। साहित्यिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र जितने भी अधिक खुल सकें, उतना ही अच्छा होगा।

"ग्रामीण स्कूलों के अध्यापकों से हमें अपने कार्य में बहुत सहायता मिल सकती है। उनके द्वारा ग्रामगीत, कहानी, शब्द और मुहावरों का संग्रह किया जा सकता है। अगली वसन्त-ऋतु के लिए कोई प्रोग्राम बनाइए। घुमक्कड़-दल की आयोजना कीजिए। आपका प्रान्त तो प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से काफी सौभाग्यशाली है। फारबिसगंज से दार्जिलिङ्ग तक की यात्रा पैदल की जाय, तो क्या कहना है। अप्रत्यक्ष रूप से जो शिक्षा मिलती है, वह अधिक प्रभावशाली होती है।

"जो प्रतिनिधि आपके सम्मेलन में पधारें, उनके सुपुर्द कोई-न-कोई काम कीजिए। सालभर तक उन लोगों से सम्पर्क बनाये रखने की जरूरत है। छुट्टियों में कभी-कभी दौरा तो आप करेंगे ही।

"सम्पूर्ण प्रान्त का साहित्यिक सर्वे (Survey) हो जाय, तो बहुत भारी काम हो जाय। प्रत्येक साहित्य-प्रेमी युवक का नाम तथा पता आपके कार्यालय में होना चाहिए। प्रत्येक के व्यक्तित्व का सम्मान किया जाय और प्रत्येक से कुछ-न-कुछ काम लिया जाय।

"बिहार में पुस्तकालय खूब खुल रहे हैं और यह बड़े सौभाग्य की बात है। इन पुस्तकालयों का भी संगठन होना चाहिए और ऐसे उपाय निकालने चाहिए जिससे वे अधिकाधिक उन्नति कर सकें। इन पुस्तकालयों के वार्षिक अधिवेशन तो अवश्य होने ही चाहिए; पर साथ-ही-साथ ऋतु-ऋतु के उत्सव भी मनाये जाने चाहिए।

"सबसे जरूरी बात यह है कि आपके पास एक सहायक—एक असिस्टैंट—का प्रबन्ध

होना चाहिए, जो आपके पत्र-व्यवहार में सहायता दे सके। अकेले आप यह सब कार्य कर नहीं सकते।"

भाई बेनीपुरी ने, हजारीबाग के सेंट्रल जेल से, गत १७ जनवरी के पत्र में, लिखा है—

'मेरा अनुरोध है, भाषण में आप दो-तीन बातों का देना नहीं भूलिएगा।

"पहली बात—आपका संग्रहालयवाला वह प्रोग्राम, जिसे आपने 'माधुरी' में छपवाया था। अब तो सम्मेलन का भवन हो गया है। उसमें संग्रह का काम शुरू हो जाना चाहिए। आप अपनी चीजों से ही शुरू कीजिए। यही नहीं, इसके लिए दौड़-धूप भी कीजिए। अगर आपने एक वर्ष में इस सम्बन्ध में अच्छा प्रारम्भ कर दिखाया, तो सम्मेलन के लिए सबसे बड़ा काम आप कर जायँगे।

"दूसरी बात है—ग्रामगीतों के संग्रह की। यह अमूल्य रत्न व्यर्थ न जाय, इसकी चेष्टा होनी चाहिए। रामनरेशजी के संग्रह का, उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, अधिकांश बिहार का है। इधर 'राकेश' ने कुछ काम किया है। लेकिन, इस सम्बन्ध में एक अजीब गड़बड़ी हो रही है—लोग सिर्फ प्रेमगीतों का ही संग्रह करते हैं। ग्रामगीतों में तो ग्रामीणों के सुख-दुःख सभी सन्निहित हैं। सिर्फ एक ही ढंग का संग्रह तो बिलकुल गलत बात है।

"तीसरी बात हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में। इस बारे में अजीब उलझन पैदा की जा रही है। एक तरफ कुछ लोग हैं जो हिन्दुस्तानी नाम सुनकर ही भड़कते हैं, दूसरी तरफ इसके लिए सब कुछ कुर्बान करने को तैयार हैं। मेरा खयाल है, यह दोनों ही पराकाष्ठाएँ बुरी हैं। एक मध्यम मार्ग निकलना चाहिए। इस सम्बन्ध में सबसे ज्यादा गड़बड़झाला हुआ है हिन्दुस्तानी-कमिटी को लेकर। जब कोई चीज ऊपर से लादने की चेष्टा होती है, तो बुरा लगता ही है। इसपर आपको कुछ ठंढे दिमाग से सोचकर रास्ता निकालना चाहिए।"

सज्जनो, मैंने ऊपर जो कुछ कहा है, ठंडे दिमाग से सोच-समझकर ही कहा है। मैं मध्यम मार्ग निकालकर समझौता करना नहीं चाहता। भारत की राष्ट्रभाषा होने का जन्मसिद्ध अधिकार एकमात्र हिन्दी को ही प्राप्त है। यह प्रकृति-प्रदत्त, ईश्वर-दत्त, अधिकार है। इसे जो छीनना चाहेगा, मुँह की खायगा।

अब आपके साथ-साथ मैं भी श्रान्त हो गया हूँ। मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका। इतनी देर तक मेरे वाग्जाल में फँसकर आप धैर्य धारण किये रहे, इसके लिए मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। मुझ-जैसे अपरिवर्त्तनवादी और अप्रगतिशील व्यक्ति को इतना महत्त्व देकर आपने अपना ही बड़प्पन प्रकट किया है। इस खद्योत में विद्युत् का प्रकाश आपके सिवा कौन देख सकता है? मेरे इस भाषण की भूलों पर ध्यान न देकर सार वस्तुमात्र ग्रहण करने की कृपा कीजिए। और, साहित्य का सुमिरन करते हुए घर जाइए। घर या बाहर, कहीं भी, साहित्य की सुधि न भूलिए। सच्चा साहित्य वही है, जिससे मानव-चरित्र का उत्कर्ष हो, हृदय ईर्ष्या-द्वेष-शून्य हो, समाज में सद्भाव का प्रचार हो, देश में पारस्परिक प्रेम और शान्ति का प्रभुत्व हो। हमारा साहित्य वैसा ही है। ईश्वर उसकी रक्षा करे।

यह संसार भी एक पुस्तकालय है*

"वीणा-पुस्तकरञ्जितहस्ते भगवति भारति देवि नमस्ते।"

सज्जनो,

यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो यह संसार भी एक प्रकार का पुस्तकालय ही है। इसका प्रत्येक प्राणी पुस्तक के समान है। पुस्तकों के संस्करण पुनर्जन्म के दृष्टान्त हैं। पुस्तकों के पन्ने खोलकर हम उनकी उत्तमता और निकृष्टता का परीक्षण करते हैं। प्राणियों का भी हृदय टटोलकर भले-बुरे की जाँच की जाती है। पुस्तकों के समाज में जैसे कोई महान आदर्श ग्रन्थ उत्पन्न होकर संसार की विचारधारा पर प्रभाव डालता है, वैसे ही प्राणियों में भी कोई महान आत्मा आविर्भूत होकर संसार की प्रगति में सहायक होता है। यदि कोई विशेष प्राणी विशेष अवसर पर क्रान्ति द्वारा संसार-चक्र की गति को परिवर्त्तित करता है, तो पुस्तकें भी वैसा करने में समर्थ हैं और पुस्तकों द्वारा की गई क्रान्तियों के वर्णन संसार के इतिहास में भरे पड़े हैं। प्राणियों में जैसे जीवन्मुक्त पाये जाते हैं, वैसे हम पुस्तकों में भी देखते हैं। गीता और रामचरितमानस हमारे सामने ही हैं। प्राणियों के विकास क्रम की कहानी के समान ही पुस्तकों के विकास-क्रम की कहानी भी मनोरंजक है। तालपत्र और भोजपत्र के युग से 'आर्ट-पेपर' और 'आइवरी-फिनिश' के युग तक हम दृष्टि दौड़ावें, तो डारविन दादा का सिद्धान्त सहज ही हृदयंगम हो जायगा।

हमारे अति प्राचीन देश में तो पुस्तक-जगत में भी प्रस्तर-युग, ताम्र-युग आदि बीते हैं। रामभक्त हनुमान ने पर्वत की शिलाओं पर 'हनुमन्नाटक' लिखा था, जिसकी खोज राजा भोज ने कराई, जिससे आज वह संस्कृत-साहित्य का अमूल्य रत्न है। भारतीय राजाओं की प्रशस्तियाँ और विज्ञप्तियाँ आज भी ताम्रपत्रों पर अंकित भूगर्भ से निकलती हैं। इस प्रकार संक्षेप में हम देखते हैं कि जगत के प्राणियों से पुस्तकों की समता सटीक बैठती है। और, यह संसार तो वास्तव में हर तरह से पुस्तकालय की समता को प्राप्त है। प्रकृतिदेवी हमारे सामने अपनी असंख्य पुस्तकें खोलकर खड़ी हैं। पर्वत, समुद्र, नदी, मरुस्थल, आकाश, जंगल जो कुछ भी दृश्यमान जगत है, सचमुच पुस्तकालय के समान है। इनका अध्ययन अनन्तकाल से होता आया है और आगे भी अनन्तकाल तक होता रहेगा।

किन्तु, जब हम वास्तविक पुस्तकालय, अर्थात् ग्रन्थागार या ग्रंथभांडार, के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं, तब देखते हैं कि संसार के पुस्तकालय का सर्वप्रथम ग्रन्थ वेद ही है।

*सार्वजनिक पुस्तकालय (दौलतगंज, छपरा, बिहार) के प्रथम वार्षिकोत्सव के सभापति का भाषण। विक्रम-संवत् १९९८; सन् १९४१ ई०।

पाश्चात्य जगत के ऋषितुल्य मान्य विद्वान मोक्षमूलर महोदय का यह वाक्य हम बड़े गर्व से पढ़ते हैं कि—

"The Vedas, I feel convinced, will occupy scholars for centuries to come and will take and maintain for ever its position as the most ancient of books in the library of mankind."—

—अर्थात् मेरा विश्वास है कि कई आगामी शताब्दियों तक विद्वान लोग वेदों का मनन करते रहेंगे और मनुष्यजाति के पुस्तकालय में सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद ही समझा जायगा।*

आप सब जानते हैं कि हमारे वैदिक युग में भूमंडल के अन्यान्य देशों की क्या दशा थी। जब प्राचीन भारत में ही वेद के अतिरिक्त दूसरी कोई पुस्तक नहीं थी, तब पृथ्वी-मंडल के दूसरे देशों की क्या कथा! जो हो, भारत के पुस्तकालय में तो सबसे पहले केवल चार वेदों का ही संग्रह हुआ। तब, क्रमशः उनकी शाखा-प्रशाखा बढ़ती हुई शास्त्र, स्मृति, उपनिषद्, संहिता, पुराण आदि तक आ पहुँची। अब उनकी रक्षा की भी चिन्ता हुई; क्योंकि हमारे देश का देवासुर-संग्राम अथवा आर्य-अनार्य-संघर्ष प्रसिद्ध है, जो युगों तक चलता रहा। इतिहास-युग में हम पुस्तकालयों के जलाये जाने का वृत्तान्त पढ़ते हैं, तो प्राचीन युगों में भी असुरों या अनार्यों द्वारा पुस्तकों के फाड़े जाने, समुद्र में फेंके जाने और यज्ञ-भ्रष्ट करते समय हवनकुण्ड में डाले जाने का विवरण पढ़ते हैं। इसीलिए, हमारे पुस्तक-प्रेमी या ग्रंथानुरागी पूर्वजों ने सभी ग्रंथों को कंठस्थ कर लेने की प्रथा चलाई थी। ऋषियों की वंशपरम्परा ने अपने कंठ में सरस्वती को धारण करके अनार्यों के आक्रमण से ज्ञान-सम्पत्ति की रक्षा की थी। पढ़कर नहीं, बल्कि अधिकारी आचार्य से सुनकर ही सुपात्र छात्र पुस्तक के ज्ञान को अपने स्मृतिकोष में संचित करते थे। कहा जाता है कि 'श्रुति' और 'स्मृति' शब्दों में इसी बात की ध्वनि है—इन शब्दों की रचना का यही संकेत है।

भारत के आदिकाव्य श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में भी हम लोग पढ़ते हैं कि आदि-कवि ने अपना काव्य सीतापुत्रों को कंठस्थ करा दिया था और अयोध्या में जब कुश-लव ने वीणा के सहारे सम्मिलित कंठ से उसे गाकर सुनाया, तब स्वयं भगवान रामचन्द्र भी मुग्ध एवं स्तब्ध हो गये। इस तरह हम देखते हैं कि वेद-वेदाङ्ग की वृद्धि होने पर जब दर्शन, व्याकरण, ज्यौतिष, वैद्यक, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, नीतिशास्त्र, काव्य आदि की परम्परा बढ़ी, तब भी सार्वजनिक पुस्तकालयों की सृष्टि न हो सकी। विद्वानों और गुरुओं का घर ही पुस्तकालय का काम करता रहा। तब आचार्य का घर तीर्थतुल्य था। बड़े-बड़े राजकुमार भी आचार्य के पास ही जाकर विद्या ग्रहण करते थे। पर, जब कंठ और वाणी के द्वारा श्रवणशक्ति पर असह्य भार पड़ने लगा, तब लेखन-कला की शरण लेनी पड़ी। फिर भी ग्रंथलेखन के अधिकार का द्वार सबके लिए खुला नहीं छोड़ा गया।

*'सरस्वती' (फरवरी, १९१८ ई०) के 'प्राचीन भारतीय सभ्यता' लेख से। —सं०

उसके लिए अधिकारी पात्र की व्याख्या कर दी गई। इसलिए भी जन-समाज में सर्वत्र पुस्तकालयों का बाहुल्य न हो सका। केवल देवालय, विद्यालय, राज-भवन, गुरु की पाठशाला और आचार्य के घर में ही पुस्तकों के दर्शन हो सकते थे, क्योंकि लेखन-कला में घोर परिश्रम होने के कारण पुस्तक-लेखकों का पारिश्रमिक चुका कर पुस्तकों का संग्रह करना सबके लिए साध्य न था।

उस समय पुस्तक लिखकर दान देने की भी बड़ी महिमा थी। ऐसे पुस्तक-दान के माहात्म्य का वर्णन हमलोग पुराणों में अनेक स्थलों पर पढ़ते हैं। साथ ही, यह देखते भी हैं कि प्राचीन काल में पुस्तक से अधिक आचार्य पर ही विश्वास किया अथवा निर्भर रहा जाता था। एक ही आचार्य अकेला एक पुस्तकालय का काम कर सकता था। उसी एक के पास जाकर असंख्य जिज्ञासु व्यक्ति लाभ उठाते थे।

किन्तु, जो ग्रंथ पहले मौखिक थे, वे जब लिपिबद्ध होने लगे, तब ज्ञान का क्षितिज विस्तृत हो चला। जो केवल एक की थाती थी, यह बहुतों की पूँजी बन गई। प्राचीन वैदिक और पौराणिक युगों के बाद इतिहास के बौद्ध युग में हमलोग हस्तलिखित ग्रंथों के कई संग्रहालयों अथवा पुस्तकालयों का वर्णन पढ़ते हैं। जगद्गुरु शंकराचार्य के मठों के अतिरिक्त इतिहास-प्रसिद्ध राजाओं के द्वारा स्थापित और संचालित विश्वविद्यालयों में भी बड़े-बड़े ग्रंथागारों के होने का पता मिलता है। नालन्दा के विराट पुस्तकालय का वर्णन पढ़कर ललाट में सिकुड़न पड़ जाती है। यहाँ तक कि मुसलमानी शासन-काल में भी हस्तलिखित पुस्तकों के ही संग्रहालय कहीं-कहीं पाये जाते थे—गुरुओं के घर में, या धनिकों के महल में, या बड़े विद्यालयों में ही पुस्तकालय होते थे।

किन्तु, मुद्रण-प्रणाली का जन्म होते ही ज्ञान की धरोहर बनी हुई पुस्तकें सार्वजनिक सम्पत्ति हो चलीं। गुरुकुल की मर्यादा ने मुद्रण-कला के समक्ष आत्मसमर्पण किया। जहाँ लेखन-कला के युग में केवल मठ-मन्दिर, राजमहल और गुरुगृह ही पुस्तकालय को अपना दत्तक माने बैठे थे, वहाँ मुद्रण-कला ने मुक्तहस्त हो कृपण के चिरसंचित धन को जनसमुदाय में वितरित कर डाला। नगर-नगर में, डगर-डगर में, पुस्तकालय देख पड़ने लगे।

किन्तु, इससे यह न समझना चाहिए कि लेखनकला-युग के पुस्तकालयों का महत्त्व घट गया। मुद्रणकला-युग के पुस्तकालय आज भी उनका मुँह जोह रहे हैं। आधुनिक कागज पर प्राचीन तालपत्र और भोजपत्र की धाक आज भी जमी हुई है। हाँ, उस युग के पुस्तकालयों में पुस्तकों की जो प्रतिष्ठा थी, उसका रूप अब बदल गया है। तब वे चन्दन-पुष्प और धूप-दीप से पूजी जाती थीं, अब लाल-हरी पेन्सिल के निशानों से रँगी जाती हैं। तब उन्हें सिर नवाते थे, अब आवश्यकतानुसार तकिया भी बनाते हैं! तब पुस्तकालय को सरस्वती-मन्दिर मान लोग देवालय-सा व्यवहार करते थे, अब उसे क्रीडा-कौतुक का भी अड्डा मानकर मनोरंजन-गृह-सा बरतने लगे हैं। तब वह केवल लोकशिक्षक था, अब लोकशिक्षक के साथ-साथ लोकरंजक भी है। जहाँ कभी मुखरित पाठशाला थी, वहाँ आज मौन वाचनालय है। आज वह केवल पुस्तकालय

रहकर लोकरुचि को तृप्त नहीं कर सकता, इसलिए धीरे-धीरे विविधवस्तुसंग्रहालय बनने का भी प्रयास कर रहा है। यहाँ तक कि स्थावर रहते-रहते ऊबकर अब जंगम बनकर भी निकल पड़ा है। चलते-फिरते पुस्तकालय इसके प्रमाण हैं। इस प्रकार समय की प्रगति के साथ चलकर पुस्तकालय हमें बता रहा है कि परिवर्त्तनशील संसार में वही टिका रह सकता है, जो विकास की धारा के अनुकूल चल सके।

सृष्टि के विकास की कहानी कहनेवाले हमें साफ बतला रहे हैं कि जो पहले जंगल में मंगल मनाते थे, वे आज ध्रुव-प्रदेशों में भी सभ्यता की पताका फहरा रहे हैं। हमारे पुस्तकालय भी प्रस्तर-युग, ताम्र-युग आदि को पार कर, तालपत्र और भोजपत्र के युगों को बेधते हुए तथा 'सत्य कहौं लिखि कागद कोरे' के युग को पीछे छोड़ते हुए, मुद्रणकला के युग में प्रवेश कर गये हैं। इस युग में उनके विकास की घुड़दौड़ अभी जारी है। कैसे कहा जाय कि उनकी सरपट चाल कहाँ तक जाकर साँस लेगी। पर, इतना तो हम कह सकते हैं कि हिन्दी के पुस्तकालयों का विकसित रूप अभी पूरी तरह निखर नहीं पाया है।

कहा जाता है कि हिन्दी-पुस्तकों के छपने की व्यवस्था उसी समय हुई, जब उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम प्रहर में कलकत्ता के फोर्ट-विलियम-कालेज में वर्नेक्युलर-सोसाइटी खुली तथा उसी के आसपास श्रीरामपुर में ईसाई मिशनरियों के द्वारा ईसाई मत के प्रचार के लिए छोटी-छोटी हिन्दी-पुस्तिकाएँ छापी जाने लगीं। यद्यपि हिन्दी के इतिहास में हमलोग पढ़ते हैं कि वारेन हैस्टिंग्स के शासन-काल* में ही काशी में देवनागरी-अक्षरों का एक प्राचीन छापाखाना जमीन के अन्दर से निकला था, जो जगद्गुरु शंकराचार्य के समय का माना गया था, तथापि प्राचीन मुद्रित हिन्दी-पुस्तकों का अस्तित्व उन्नीसवीं सदी से पीछे की ओर नहीं खिसकता। और, भारतेन्दु-युग में ही मुद्रित हिन्दी-पुस्तकों के संग्रहालयों की छिट-फुट चर्चा सुन पड़ती है।

भारतेन्दुजी और उनके साहित्यिक सहयोगियों के उद्योग से उस समय जितनी साहित्य-सभाएँ, नाटक-मंडलियाँ और लाइब्रेरियाँ स्थापित हुई थीं, उनका अस्तित्व अब कहीं सुना भी नहीं जाता, केवल उनकी जीवनियों में उल्लेख-भर मिलता है। हाँ, उनका निजी पुस्तकालय आज भी काशी के भारतेन्दु-भवन में दर्शनीय वस्तु है—यद्यपि वह सार्वजनिक सम्पत्ति नहीं है।

जिस साल हमारी राष्ट्रीय महासभा (काँगरेस) की स्थापना हुई उसी साल, सन् १८८५ ई० में, भारतेन्दु अस्त हुए और उसके आठ वर्ष बाद सन् १८६३ ई० में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई तथा सन् १८६४ ई० में हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यसेवी और 'कादम्बरी' के यशस्वी अनुवादक बाबू गदाधर सिंह ने अपना 'आर्यभाषा-पुस्तकालय' सभा को दे डाला। यद्यपि बाबू साहब अपने इस घरेलू पुस्तकालय को सन् १८८४ ई० में ही मिर्जापुर में स्थापित कर चुके थे, तथापि दस वर्ष बाद ही इसे काशी की सभा में आकर सार्वजनिक रूप मिला।

* सन् १७७३ ई० में वारेन हैस्टिंग्स विजित भारत का पहला गवर्नर जेनरल हुआ और सन् १७८६ ई० में उसकी जगह पर कार्नवालिस आया था।—ले०

यही हिन्दी का सब से पहला और अद्यापि जीवित पुस्तकालय आँखों तले आता है। इसके कुछ ही (छह-सात) साल बाद, बीसवीं सदी का आरम्भ होते ही (सन् १९०१ ई० में), बिहार के 'आरा' नगर में भी नागरी-प्रचारिणी सभा स्थापित हुई और उसमें नागरी-प्रचारक पुस्तकालय भी खुला। बिहार में बीसवीं शताब्दी के श्रीगणेश के साथ स्थापित होनेवाला यही सब से पहला सार्वजनिक हिन्दी-पुस्तकालय है। एक 'देशहितैषी आर्य-पुस्तकालय' सन् १८८८ ई० में ही पहली अप्रैल को स्वनामधन्य साहित्यसेवी पंडित किशोरीलाल गोस्वामी ने आरा नगर में ही खोला था; पर अब उसका पता नहीं है, शायद आरा से काशी चले जाने पर गोस्वामी जी उसे साथ ले गये या उक्त नागरी-प्रचारक पुस्तकालय को दे गये।

जो हो, अब तो बिहार में पुस्तकालयों का खासा प्रचार होता जा रहा है। उज्ज्वल भविष्य के ये शुभ लक्षण हैं। पुस्तकालयों में जिस जाति या देश का अनुराग बढ़ता जाता है, उसकी उन्नति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं होता। आप जानते हैं कि हमारे बंगाली भाई पुस्तकालयों के कैसे प्रेमी हैं—उनके प्रायः प्रत्येक घर में घरेलू पुस्तकालय है। भारत-साम्राज्य की राजधानी कलकत्ता से उठकर जब दिल्ली चली गई, तब भारत-सरकार का बृहत् पुस्तकालय भी, जो इम्पीरियल लाइब्रेरी के नाम से प्रसिद्ध है, कलकत्ता से उठकर दिल्ली जाने लगा। किन्तु, पुस्तकालय के अनन्य प्रेमी बंगाली भाइयों ने ऐसा हड़कम्पी आन्दोलन मचाया कि भारत का वह अद्वितीय पुस्तकालय कलकत्ता से बाहर न जा सका। उसके लिए बंगाली भाइयों ने एँड़ी-चोटी का पसीना एक करके सरकार के मन में यह भाव जमा दिया कि उस विशाल पुस्तकालय का वास्तविक सदुपयोग करनेवाले बंगाल में ही हैं, दिल्ली में नहीं। सचमुच उस महान पुस्तकालय में जाकर देखने से ही बंगाली विद्वानों की अध्ययनशीलता और अनुसन्धान-परायणता का पता लगता है। अभी वह बात बिहार में नहीं पैदा हुई है। हाँ, इस समय हमारे प्रान्त में पुस्तकालयों की जैसी प्रगति हो रही है, उससे अवश्य ही यह आशा बँधती है कि अनतिदूर भविष्य में ही यहाँ भी पुस्तकालयों के प्रति लोगों का वैसा ही अनुराग बढ़ जायगा। ईश्वर करे, ऐसा ही हो।

आधुनिक हिन्दी-जगत् की दो अनमोल विभूतियाँ*

आज ईश्वर की असीम दया से ही यह परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि हमलोग दो समादरणीय साहित्यिक अतिथियों का स्वागत करने लिए यहाँ एकत्र हुए हैं। बिहार-

---

* तारीख ४ अप्रैल (१९४२ ई०) को, बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भवन (कदमकुँआ, पटना) में, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और काशी के कलाविद् रायकृष्णदासजी के अभिनन्दन-समारोह के अध्यक्षपद से पठित भाषण। ता० ८ बुधवार, अप्रैल, १९४२ ई० की दैनिक 'राष्ट्रवाणी' में प्रकाशित।

प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का यह विशाल भवन जब से बना है तब से अनेक माननीय अतिथियों का शुभागमन हुआ है, पर आज जिन अतिथियों का हम अभिनन्दन कर रहे हैं उनके समान यशस्वी एवं लोकप्रिय अतिथियों के स्वागत का सौभाग्य आजतक सम्भवतः नहीं प्राप्त हुआ था।

इन बहुमानास्पद अतिथियों में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये दोनों ही हमारे आधुनिक साहित्य के निर्माता प्रातःस्मरणीय आचार्य द्विवेदी जी के अक्षय यश स्तम्भ हैं। हिन्दी-संसार में इन दोनों को पूज्य द्विवेदी जी का जितना स्नेहदान मिला था उतना और किसी को नसीब न हुआ। इन दोनों मंजुल मूर्त्तियों के गढ़नेवाले और इन्हें सँवारकर साहित्य-मन्दिर में स्थापित करनेवाले द्विवेदी जी ही थे। हम द्विवेदी जी की अन्य साहित्यिक सेवाओं का महत्त्व तो भूल ही नहीं सकते, हिन्दी-माता के आँचल में इन दो अनमोल लालों को देकर उन्होंने जो हमारा उपकार किया उसे भी हम कभी भूल नहीं सकते।

द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ की सेवा करते समय—और वह ग्रन्थ भी राय कृष्णदासजी की कलात्मक सुरुचि का सर्वाङ्गसुन्दर निदर्शन है—मैंने राय साहब की कृपा से द्विवेदीजी के द्वारा सम्पादित 'सरस्वती' की पाण्डुलिपियाँ देखी थीं, जो काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा में अद्यावधि सुरक्षित हैं। उनमें इन दोनों की आरम्भिक कृतियों पर द्विवेदीजी की ममता देखकर छाती फूल उठी थी। देखा कि उस साहित्य-हिमांचल से निकली हुई साहित्य-सरिता में अवगाहन करनेवाले ये ही दो पुण्यात्मा सबसे अधिक प्रफुल्ल और आनंद-गद्गद हैं।

श्रीमान् रायकृष्ण दासजी हिन्दी-संसार के एकमात्र कलाविद् और कला-सम्बन्धी प्राचीन शोध के अद्वितीय मर्मज्ञ हैं। हिन्दी संसार में भारतीय कला का ऐसा सूक्ष्मदर्शी एवं पारदर्शी तत्त्वज्ञ दूसरा है ही नहीं। आपने कलादेवी के कमनीय चरणों पर सर्वस्व की भेंट चढ़ाई है। भारतीय मूर्त्तिकला और चित्रकला पर आपकी जो पुस्तकें हिन्दी में निकली हैं, केवल उन्हीं के सहारे हम आपको ठीक परख नहीं सकते। आपके जीवन के प्रत्येक कण और प्रत्येक क्षण में कला रम गई है। हम आपके निकट कुछ काल रहकर ही यह समझ सकते हैं कि कला के अनुसन्धान में आपका कैसा अनन्य अनुराग है।

आपका जन्म एक ऐतिहासिक और धनसम्पन्न घराने में हुआ है; पर आप कला की पूजा में ऐसे तल्लीन रहते हैं कि आपको वैभव का सुख सपने में भी नहीं रिझा पाता। समस्त पार्थिव सुखों से मुँह मोड़ कर आप एकान्त भाव से कला की आराधना में मग्न रहा करते हैं। यदि आज कुबेर का धन-भाण्डार भी आपको सौंप दिया जाय तो उसे आप निःसंकोच भारतीय कला के उद्धार में ही लगा देंगे। कला की सेवा में अपना तन-मन-धन होम कर संतोषामृत पान करनेवाला ऐसा पुजारी पाकर सचमुच हिन्दी कृत-कृत्य हुई है।

आपने मातृभाषा हिन्दी को अपनी ललित रचनाओं से अलंकृत करके प्रभूत यश उपार्जित किया है। आपके गद्यकाव्य में और आपकी आख्यायिकाओं में जो भाषा-सौष्ठव, कल्पनाकौशल, भावसौकुमार्य आदि गुण हैं, वे प्रत्येक सहृदय साहित्यरसिक के लिए अत्यन्त रुचिकर एवं तृप्तिकर हैं। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण पर आपने जो अनुसंधानकार्य किया है वह तो महत्त्वपूर्ण है ही, अष्टादश पुराणों के सम्बन्ध में आपकी खोज ऐसी है कि उसका परिणाम जब कभी हिन्दी में प्रकट होगा, साहित्य को एक अमूल्य रत्न की उपलब्धि होगी।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा में जो भारत-कलाभवन है, उसके जीवन-सर्वस्व आप ही हैं। जगत्प्रसिद्ध कलाकार रोरिक के नाम पर जो चित्रशाला उक्त 'सभा' में है, जिसका उद्घाटन काशी-नरेश द्वारा हुआ था, और जिसमें रोरिक के बहुमूल्य चित्रों का दर्शनीय संग्रह है, आप के ही सतत प्रयास से स्थापित हुई थी। बात यह है कि आपको बचपन से ही कलामंडित वस्तुओं के संग्रह एवं संचय का बड़ा अनुभव था। इसलिए, अबतक के जीवन में आपने जो कुछ जुगाया और सँजोया था उसे मातृभाषा-मन्दिर को सौंप कर आपने हिन्दी को एक ऐसी निधि दी है, जिस पर हम स्वभावतः गर्व का अनुभव कर सकते हैं।

किन्तु, अभी एक और साहित्यिक निधि आपके पास है। पता नहीं, उसे आप कब-तक हिन्दी-माता को अर्पित करेंगे। वह है स्वनामधन्य बाबू जयशंकर प्रसाद जी की पुण्य-स्मृतियाँ। आप उनके लँगोटिया साथी हैं। आपका और उनका अनिर्वचनीय बन्धुत्व इन आँखों ने देखा है। 'प्रसाद' जी के संस्मरणों के सबसे बड़े धनी हिन्दी संसार में आप ही हैं। काशी की अनेक विभूतियों का इतिहास लेकर 'प्रसाद' जी तो चले गये, पर आपके द्वारा उस लुप्तप्राय इतिहास का उद्धार हो सकता है। हिन्दी-जगत में ऐसा कोई गुणग्राही दृष्टिगोचर नहीं होता, जो आपसे यह निधि भी लेकर हिन्दी को गौरवान्वित कर सके। फिर भी, हम लोग साहित्य के नाते आपसे प्रार्थना करते हैं कि कृपा करके इस निधि को भी हिन्दी के साहित्य-कोष में सुरक्षित कर दीजिए।

आपने भारती-भंडार नामक आदर्श प्रकाशन-संस्था स्थापित करके साहित्य-भाण्डार की जो श्रीवृद्धि की है, उससे सभी हिन्दी-प्रेमी परिचित हैं। अब आपने उसका संचालन-भार प्रयाग के लीडर प्रेस को सौंप दिया है। आज भी उसके द्वारा प्रकाशित पुस्तकें हिन्दी-संसार में पर्याप्त प्रतिष्ठा पा रही हैं।

आपने हमारे पटना-विश्वविद्यालय को कला-सम्बन्धी साहित्य की मणिमंजूषा देकर सचमुच बड़ा उपकृत किया, इसके लिए बिहार का साहित्यिक-मण्डल आपका विशेष कृतज्ञ है, क्योंकि हिन्दी-रीडरशिप की व्याख्यानमाला में आपके इस कला-कौस्तुभ की अपूर्व शोभा है। हम विश्वविद्यालय की गुणग्राहकता की भी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते, जिसने सच्चा रतन-पारखी बनकर हिन्दी-रीडरशिप को सार्थकता प्रदान करने का आयोजन किया।

परन्तु, हम तो आपके सबसे अधिक कृतज्ञ इसलिए हैं कि आप हमारे राष्ट्रीय महाकवि

गुप्त जी को भी अपने साथ लाये हैं, जिनको देखकर इस सरस्वती-मन्दिर का प्रत्येक कण पुलकित है, क्योंकि वर्त्तमान युग में श्रद्धेय गुप्त जी के समान लोक-प्रियता-सम्पादन करनेवाला दूसरा कोई हिन्दी-कवि दृष्टि-पथारूढ़ नहीं होता।

हमारे प्रोफेसर विश्वनाथ प्रसाद जी के शब्दों में यह सर्वथा सत्य है कि वाल्मीकि के अवतार जैसे तुलसी थे, वैसे ही तुलसी की 'गुप्त' मूर्त्ति आधुनिक हिन्दी-जगत में प्रकट हुई है। जिस प्रकार तुलसी की कवित्व-शक्ति के पीछे रामभक्ति की साधना लगी हुई है, उसी प्रकार इनका काव्य-कानन भी रामभक्ति-कलकण्ठी के कल-कूजन से कूंजित है। जैसे 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' लिखते समय तुलसी की लेखनी को हनुमान जी का सहारा मिलने की बात प्रसिद्ध है, वैसे ही यह कौन कह सकता है कि गुप्तजी की लेखनी से भी किसी अदृश्य दिव्य शक्ति ने यह अमर पंक्ति नहीं लिखवाई—'भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती'—जो वास्तव में अक्षरशः सार्थक हुई है। इनकी भारती की गूँज से आज हिन्दी-संसार का कोना-कोना मुखरित है।

इनमें रामभक्ति और राष्ट्रभक्ति का जो मणिकांचन-संयोग है वह हिन्दी-जगत में अन्यत्र दुर्लभ है। इनका महाकाव्य 'साकेत' हमारे साहित्य का नन्दन-निकेतन है। इनकी कृतिओं में हम भारतीय सभ्यता और संस्कृति की अमिट छाप पाते हैं। इनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता की ज्योति जगमगाती दीख पड़ती है। वे राष्ट्र को उद्‌बुद्ध करनेवाली भव्य भावनाओं से ओतप्रोत हैं। उन्हीं में युग धर्म की पुकार सुनकर हमारे अनेक नवयुवक प्रबुद्ध और सन्नद्ध हुए हैं। उनमें भारतीयता के उत्कर्ष का शंखनाद सुनकर हम स्वाभिमान की अनुभूति में मग्न हो जाते हैं। उनके द्वारा भारत के शौर्य-वीर्य और पौरुष-पराक्रम की ओजस्विनी गाथा सुनकर हम भविष्य-निर्माण के लिए साहस-संचय करते हैं।

हम तो स्पष्ट देख रहे हैं कि खड़ी बोली की कविता के उत्थान-काल से इस प्रगतिशील युग तक गुप्तजी बराबर परिवर्त्तनशील समय के साथ कन्धे से कन्धा मिलाये चलते जा रहे हैं। समय के प्रवाह के साथ चलनेवाले ऐसे वयोवृद्ध यशोधन महाकवि का अभिनन्दन करते हुए हमें आज असीम आनन्द हो रहा है। जिनका अभिनन्दन जगद्‌वन्द्य महात्मा गांधी द्वारा हो चुका है, उनको हम अपने साधारण अभिनन्दन से कैसे सन्तुष्ट कर सकते हैं? फिर भी हमारे प्रेमपूर्ण सत्कार में श्रद्धा की जो मृदुल मधुर सुरभि है, वह अवश्य ही इन्हें आप्यायित करेगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

बड़े आह्लाद का विषय है कि दो आदर्श साहित्यिक बन्धुओं को हम आज एक साथ अपने बीच देख रहे हैं। रायसाहब और गुप्तजी में जो अभिन्नता है, वह साहित्य का ही प्रसाद है। साहित्य का नाता कितना घनिष्ठ होता है, इसके ज्वलन्त प्रमाण हमारे आज के दोनों अतिथि हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी के नाते ये हमारे भी अपने ही हैं। सार्वभौम साहित्य की तरंगों में भौगोलिक सीमाओं का लय हो जाता है। अतः हम

अन्त में फिर बड़े निजत्व के साथ सर्वान्तःकरण से अपने उभय अतिथि-देवता की अभ्यर्थना करते हैं।[1]

हिन्दी की व्यापकता*

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माऽच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैस्सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निश्शेषजाड्यापहा॥

श्रीमान् स्वागताध्यक्षजी, साहित्यानुरागी सज्जनो, और प्यारे विद्यार्थियो !

परमात्मा की असीम दया से आज मैं आपकी सेवा में, आपके आदेश-पालन के निमित्त, उपस्थित हूँ। आपने मुझे अपनी हिन्दी-साहित्य-परिषद् के सर्वप्रथम वार्षिकोत्सव का सभापतित्व करने के लिए बुलाया है। इसका कारण और कुछ नहीं। मुझपर जो श्रीमान् राजा साहब की स्नेहमयी कृपा है, वह सम्मान-प्रदान उसी का मधुर फल है। पर आपने स्नेह-परवश होकर तुच्छ को भी महत्त्वपूर्ण समझ लिया। यह केवल आपकी उदारता के लिए संभव है। आपकी कृपा-दृष्टि की बलिहारी, जिसने सूर्य की किरणों की तरह इस काँच के टुकड़े में भी मणि की कान्ति पैदा कर दी। ठीक है, 'अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः'—महज्जन यदि पत्थर के टुकड़े को भी प्रतिष्ठा दे देते हैं, तो वह देवत्व को प्राप्त हो जाता है।

आज मैं भी आप की ही महिमा से महिमान्वित होकर कृतकृत्य हुआ। इसके लिए नम्रतापूर्वक हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

आपकी परिषद् जिस शिक्षण-संस्था से सम्बद्ध है, वह एक ऐसे यशोधन साहित्य-सेवी का स्मारक है, जो अपने युग के साहित्य-महारथियों और महाकवियों की मण्डली के मण्डन-स्वरूप थे—अर्थात् आपका यह विद्यालय जिनकी स्मृति में स्थापित है, वे भारतेन्दु-सखा और रवीन्द्र-सखा होने के कारण उस युग की साहित्यिक मण्डली के एक प्रमुख उन्नायक थे। युग-प्रवर्त्तक साहित्य-स्रष्टा भारतेन्दु के साथ उनकी जो घनिष्ठ मैत्री थी, उसका उल्लेख उनकी ग्रन्थावली[2] में, भारतेन्दु की जीवनी[3] में, कविवर 'विप्रचन्द' की

१. लहेरियासराय (दरभंगा) के पुस्तक-भण्डार में भी, संभवतः सन् १९३८ ई० में, इन्हीं दोनों साहित्यिक अतिथियों का अभिनन्दन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। परन्तु, उस शुभ अवसर का मेरा भाषण कहीं प्रकाशित न हो सका और अब उसकी पाण्डुलिपि भी नहीं मिल रही है।—लेखक

* सूर्यपुरा (शाहाबाद, बिहार) के राजराजेश्वरी-हाईस्कूल की राजराजेश्वरी-साहित्य-परिषद् के प्रथम वार्षिकोत्सव के सभापति का अभिभाषण (१६ मई, १९४२ ई०)।

२. राजराजेश्वरी-ग्रन्थावली, अशोक प्रेस, पटना।

३. स्वर्गीय शिवनन्दन सहाय-लिखित।

आत्मकथा[1] में आप पढ़ चुके होंगे। विश्वकवि रवीन्द्र से भी उनकी जो अन्तरंगता थी, उसका सांकेतिक सूत्र भी उनकी ग्रन्थावली में आपको मिल चुका है; पर इधर एक नया विश्वस्त सूत्र भी मिला है। उन्होंने रवीन्द्र के सर्वप्रथम सर्वाङ्गसुन्दर नाटक 'चित्राङ्गदा' का गद्य-काव्यमय हिन्दी-अनुवाद किया, जो उनकी ग्रन्थावली में छपकर आपके सामने आ चुका है।

कवीन्द्र रवीन्द्र की अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिवाली संस्था 'शान्तिनिकेतन' से एक त्रैमासिक पत्रिका अँगरेजी में निकलती है—'विश्वभारती', जिसका अब हिन्दी-संस्करण भी निकलने लग गया है। उसी के रवीन्द्र-स्मृति-अंक (जनवरी, १६४२ ई०) में शान्तिनिकेतन के हिन्दी-विभाग के विद्वान् अध्यापक और हिन्दी-संसार के समर्थ समालोचक पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अँगरेजी में एक सुन्दर निबन्ध लिखा है—"Rabindranath as an inspirer of modern literature", जिसमें उपर्युक्त नाटक के प्रसंग में वे लिखते हैं—"The late Raja Raj Rajeshwari Prasad Singh of Surajpura, Bihar, a close friend of the poet (Rabindra) translated it (Chitrangada) as early as the nineties of the last century, that is, just after its first appearance. The Raja belonged to the old conventional school of Hindi poetry and he took a deal of sedulous care to represent faithfully the spirit of the original even at the expense of Hindi construction. The work has since been published in the Raj Rajeshwari Granthawali."—अर्थात् बिहार-प्रान्तान्तर्गत सूर्यपुरा के स्वर्गीय राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह कवीन्द्र रवीन्द्र के अन्तरंग मित्र थे। उन्होंने गत शताब्दी के अन्तिम प्रहर में, 'चित्रांगदा' नाटक के प्रथम बार प्रकाशित होते ही, उसका हिन्दी-अनुवाद किया। राजा साहब हिन्दी की प्राचीन काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि थे। उन्होंने 'चित्राङ्गदा' के अनुवाद में हिन्दी की शैली का पीछा छोड़कर नाटक की मौलिकता की रक्षा पर विशेष ध्यान दिया। वह अनुवाद उनकी ग्रन्थावली में छप चुका है।

केवल इतना ही नहीं, आपके विद्यालय के वर्त्तमान संरक्षक श्रीमान् राजा साहब के विषय में भी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ समालोचक स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' नामक प्रामाणिक ग्रंथ में लिख गये हैं—"सूर्यपुरा के राजा राधिकारमणप्रसाद सिंहजी हिन्दी के एक अत्यन्त भावुक और भाषा की शक्तियों पर अद्भुत अधिकार रखनेवाले पुराने लेखक हैं। उनकी एक अत्यन्त भावुकतापूर्ण कहानी 'कानों में कँगना' संवत् १६७० (सन् १६१३ ई०) में 'इन्दु' में निकली थी। उसके पीछे आपने 'बिजली' आदि कुछ और सुन्दर कहानियाँ भी लिखीं। उनका 'राम-रहीम' भिन्न-भिन्न जातियों और मतानुयायियों के बीच मनुष्यता के व्यापक सम्बन्ध पर जोर देनेवाला उपन्यास है।"

अब समालोचक-शिरोमणि शुक्लजी की सम्मति के बाद अन्य समालोचकों की

१. आत्मचरितचम्पू—प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र, पुस्तक-भण्डार, पटना

सम्मतियाँ उद्धृत करना अनावश्यक है—यद्यपि अन्य प्रसिद्ध समालोचकों की सम्मतियाँ भी कुछ कम नहीं हैं; क्योंकि शुक्लजी की सूक्ष्मदर्शिनी लेखनी बहुत ही संयत और सावधान होकर चलती थी, फिर भी उससे दो बार 'अत्यन्त'-जैसे पराकाष्ठासूचक विशेषण-शब्द का प्रयोग हुआ है, जैसा आप ऊपर के उद्धरण में स्पष्ट देखेंगे। शुक्लजी की गम्भीर समालोचना-शैली का रहस्य जाननेवाले ही इस 'अत्यन्त' शब्द का महत्त्व परख सकते हैं।

इस प्रकार आपके इस विद्यालय को एक विशिष्ट साहित्यिक परम्परा का सम्पर्क एवं संरक्षण प्राप्त है। तब तो इसमें 'हिन्दी-साहित्य-परिषद्' की स्थापना करके आपने अपनी गौरवपूर्ण परम्परा का ही अनुपालन किया है, और उसके आरम्भिक महोत्सव का श्रीगणेश करने के लिए मेरा आह्वान करने में भी आपकी वही परम्परागत प्रवृत्ति सहायक हुई है; क्योंकि लगभग पचीस वर्षों से मुझपर श्रीमान् राजा साहब का अकारण स्नेह सदा एकरस बना हुआ है, जिसको मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ। मेरे उस सौभाग्य को साकार बनाकर आपने जो मुझे कृतज्ञ किया, उसके लिए आपको पुनः आन्तरिक धन्यवाद देता हूँ।

सच पूछिए तो, हम हिन्दीवालों के लिए सूर्यपुरा एक साहित्यिक तीर्थ ही है। हिन्दी के गद्य-पद्य-क्षेत्र में, यहाँ से जो रस की लोकोत्तरानन्ददायिनी धारा प्रवाहित हुई है, वह सजलमूला सरिता के समान भविष्य में भी अखण्ड प्रवाहित होती रहेगी, ऐसे लक्षण स्पष्ट लक्षित हो रहे हैं। तथास्तु;

भारत की देववाणी संस्कृत और प्राचीन लोकवाणी प्राकृत से घना सम्बन्ध होने के कारण हिन्दी-भाषा में एक अद्भुत शक्ति, सौन्दर्य और माधुर्य है। सर्वत्र उसकी सत्ता व्याप्त है। बंगाल की राजधानी कलकत्ता पिछली शताब्दी के आरम्भ से ही हिन्दी का गढ़ है। आसाम में हिन्दी का प्रसार क्रमशः हो रहा है। दार्जिलिंग, कार्सियाँग, शिलाँग, रंगून आदि महानगरों में जो हिन्दी की सजीव संस्थाएँ वर्षों से चल रही हैं, उनकी कार्यावली पर दृष्टिपात करने से आप हिन्दी की प्रगति भलीभाँति समझ सकते हैं। दक्षिण-भारत में तो हिन्दी ने अपना अड्डा ही बना लिया है। वहाँ की प्रचार-सभा का कार्य-विवरण देखकर आप हिन्दी की व्यापकता की वृद्धि का सहज ही अनुमान कर सकते हैं। महाराष्ट्र की राजधानी पूना में अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जो महाधिवेशन हो चुका है, उससे आप वहाँ भी हिन्दी के लिए अनुकूल स्थिति मानने में नहीं हिचक सकते। बम्बई तो पिछली शताब्दी से ही हिन्दी का केन्द्र बना हुआ है। हैदराबाद के निजाम-राज्य में, अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थिति होते हुए भी, हिन्दी आप-से-आप बद्धमूल होती जा रही है। वहाँ की तो अधिकांश प्रजा हिन्दू है; कश्मीर-राज्य की अधिकांश प्रजा मुसलमान है; फिर भी वहाँ हिन्दी पाँव फैलाती जा रही है। सिन्ध और गुजरात में भी हिन्दी के अखबार निकलते और चलते हैं, जिससे स्पष्ट जान पड़ता है कि यह अपने अतुलनीय गुणों के कारण ही सर्वत्र लोकप्रियता-सम्पादन कर रही है।

देशी राज्यों का प्रमुख केन्द्र जो राजपुताना है, उसमें तो हिन्दी का अखंड साम्राज्य

ही स्थापित है, और वही दशा मध्यभारत के देशी राज्यों की भी है। इसका और कोई कारण नहीं। हिन्दी अपनी ही शक्ति और उदारता से भारत के कोने-कोने में फैलती जा रही है। फैली हुई तो यह बहुत पहले से ही है। इसके अनेक पुराने कवि गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, राजस्थान, बुन्देलखण्ड आदि प्रान्तों के हैं। उनकी रचनाएँ देखकर आप इसकी सत्ता की महत्ता सहज ही समझ सकते हैं। केवल पुराने कवि ही नहीं, गद्य-युग में भी अनेक लेखक बंगाल, गुजरात और महाराष्ट्र से हिन्दी को मिले हैं, जिनकी सेवाओं से हिन्दी का बहुत बड़ा उपकार हुआ है। मुसलमान भाइयों और ईसाई भाइयों की हिन्दी-सेवाएँ तो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

हिंदी-साहित्याकाश में मुसलमान कवियों का नक्षत्र-मंडल सदियों से जाज्वल्यमान है। ईसाई-मिशनरियों और पादरियों ने विशेषतः हिंदी का ही सहारा पकड़कर अपने मत और सिद्धांत का प्रचार किया। हिन्दी को सार्वदेशिक भाषा जानकर ही, गुजराती और संस्कृतज्ञ होते हुए भी, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपना सिद्धान्त-ग्रन्थ-'सत्यार्थ-प्रकाश'-हिन्दी में ही लिखा और अपने जीवन-काल में उसका अनुवाद किसी भी भाषा में न होने दिया; क्योंकि वे हिन्दी को ही ऐसी भाषा समझते थे, जो आसमुद्र भारतभूमि पर सिक्का जमा सकती है। इतिहास और पुरातत्त्व के प्रकाण्ड पंडित महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की वंशानुगत मातृभाषा हिन्दी नहीं रही है; फिर भी उन्होंने राष्ट्रभाषा के नाते हिन्दी को ही अपनाया और अपने सारे प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थों को हिन्दी में ही लिखने का संकल्प कर लिया है।

इससे आप स्पष्टतया हिन्दी की सार्वदेशिकता का अनुमान कर सकते हैं। आसेतु-हिमाचल की तो बात ही छोड़िए, नैपाल और नेटाल की बात भी जाने दीजिए; मारिशस, फीजी, ट्रिनीडाड आदि सुदूरवर्त्ती द्वीपों में भी हिन्दी की तूती बोल रही है। सिंगापुर और अदन में, स्याम की राजधानी बैंकॉक में, हिन्दी-प्रेमियों की सभा का संवाद सुनकर मन में इस निश्चय का दृढ़ होना स्वाभाविक है कि हिन्दी की लहर अबाध गति से आगे बढ़ती जा रही है। इन सभी स्थानों में हिन्दी के अखबार पहुँचते और पढ़े जाते हैं।

विदेशी भाषाओं के असंख्य शब्द उसकी गोद में प्रेम की मिठास-भरी थपकियों से सुख की नींद सो रहे हैं। उसकी पाचन-शक्ति तो महर्षि अगस्त्य से भी बढ़ी-चढ़ी है! वह सचमुच सर्वभक्षी हुताशन के समान है। उसने अगणित विदेशी शब्दों की काया का मल निखारकर कंचन बनाया है।

मुसलमान भाई तो जब से इस देश में आये, उसका अवलम्ब लेने को बाध्य हुए। वे भले ही अपने मन का नाम उसे दे लें, या चाहे जिस किसी नाम से उसे पुकारा करें; पर उसकी अमिट छाप उनके अपने कहे जानेवाले अनेकानेक लेखकों और कवियों पर स्पष्ट है। अमीर खुसरो, कबीरदास, मलिक मुहम्मद जायसी, रहीम खानखाना, रसखान, मुबारक, उसमान, शेख, आलम आदि तो हिन्दी के हैं ही; मीर, गालिब, दाग, जौक, नजीर, हाली, अकबर, इकबाल, चकबस्त आदि भी जितने सगे उनके हैं, उतने ही हमारे भी। इन सबकी रचनाओं पर हिन्दी की छाप साफ झलकती है। इनमें अधिकांश

की रचनाएँ हिन्दी में प्रकाशित होकर लोकप्रिय हो चुकी हैं। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में आज भी उनके वर्त्तमान कवियों की जीवनियाँ और कविताएँ प्रायः छपा करती हैं। जोश मलीहाबादी, हफीज जालन्धरी, जमील मजहरी आदि उनके आधुनिक कवियों की रचनाएँ भी हिन्दी-संसार में बड़े शौक से पढ़ी और सुनी जाती हैं।

हिन्दी को किसी भाषा से ईर्ष्या-द्वेष है ही नहीं। वह तो अपनी सुगमता के भरोसे निश्चिन्त है। वह किसी को नेवता नहीं देती, दुनिया अपने मतलब से उसकी ओर खिंची चली आ रही है। जुग-जुग जियें उसके सूर, तुलसी और कबीर ; चौथा कोई भी न मिले, तो वह इन्हीं तीन सपूतों के बल जग जीत लेगी। उसके खजाने में ऐसे-ऐसे अनमोल रत्न हैं कि वह कभी निराशा के अन्धकार में पड़ नहीं सकती। उसका गहरा नाता वैदिक और पौराणिक युग से है ; ऐतिहासिक युग और महाकाव्य-युग से भी। इसलिए, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के रंग से वह शराबोर है, उसके रहते भारत-राष्ट्र या महत्तर भारत—विशाल भारत—में किसी की दुन्दुभी बज नहीं सकती। यहाँ तो प्रकृति-प्रदत्त सुविधाएँ उसे सुलभ हैं। इसलिए उसके सर्वग्रास से कोई मुक्त नहीं हो सकता। वह समस्त भारतवासियों के हृदय के भावों को अपने रेकार्ड में भरने की क्षमता रखती है। वह तो विभिन्न परिपुष्ट शैलियों के बल से सहस्रधारा होकर भारतीय भावसागर में मिल रही है ; फिर भी यदि कोई दुराग्रह करता है, तो वह हिन्दी के हित में अच्छा ही है। हिन्दी की प्रबल धारा जब मानससरोवर से चल चुकी है, तब भारतीय प्रान्तों और प्रान्तरों को परिप्लावित किये बिना रह नहीं सकती, रोके रुक नहीं सकती, रास्ते के रोड़े भी उसके प्रवाह-क्षेत्र में बालू के कण बन जायँगे और चट्टानें भी उसके प्रखर संघर्ष से घिस-पिसकर उसी दशा को प्राप्त होंगी। हिन्दी अपनी नेक नीयत की बदौलत ही मैदान मारेगी। आप यदि सचमुच देखना चाहें तो देख सकते हैं कि हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य के सुदिन क्षितिज पर चमक रहे हैं।

प्रियवर छात्रवृन्द !

आप ही इस परिषद् के अंग हैं, आपकी परिषद् का जन्म तभी सार्थक होगा जब आप तन-मन-धन से भाषा और साहित्य की श्रीवृद्धि में संलग्न होंगे। अपनी परिषद् के द्वारा आप आस-पास की और स्थानीय जनता में साहित्यानुराग का बीज-वपन कर सकते हैं। लोगों के भाषा-ज्ञान की वृद्धि के लिए पुस्तकालयों और वाचनालयों की संख्या क्रमशः बढ़ाई जा सकती है। आपकी परिषद् को दूसरी संस्थाओं के सामने आदर्श उपस्थित करने में सचेष्ट होना चाहिए। परिषद् के जितने सदस्य और संचालक हैं, उनके हृदय में अपनी भाषा और अपने साहित्य के लिए स्वाभाविक अनुराग, श्रद्धा एवं सहानुभूति होनी चाहिए। यदि आप परिषद् के सच्चे सदस्य कहलाना चाहते हैं, तो जिस तरह भोजन, वस्त्र, मनोरंजन आदि जीवन की अनेक आवश्यकताओं में सैकड़ों रुपये वार्षिक व्यय करते हैं, उसी तरह भाषा और साहित्य के नाम पर भी दो-चार-दस खर्च करने की आदत डालिए। आजकल की दूसरी आदतों की भाँति, सिनेमा के व्यसन की तरह, साहित्य का व्यसन भी जब पैदा हो जायगा तब कुछ काम हो सकेगा। आज सिनेमा के लिए

हरएक शहर और कस्बे के लोग किसी-न-किसी तरह कुछ पैसे की गुंजाइश निकाल ही लेते हैं ; पर आप इसका भी हिसाब लगाकर देखिए कि साल-भर में हिन्दी के नाम पर कितने पैसे खर्च हुए ! आप दुनिया-भर की चीजों के शौकीन बनते हैं, तो साहित्य के शौकीन बनने की कोशिश कीजिए। खुद भी बनिए, औरों को भी बनाइए। अपना सम्प्रदाय बढ़ाते चलिए। जैसे खान-पान आपके जीवन का अंग बन गया है, वैसे ही साहित्य का चसका भी आपका जीवनसंगी होने योग्य है। यह कोई बुरी लत नहीं है। यदि नई-नई पुस्तकें पढ़े विना आपका खाना हजम न हो, ताजा अखबार पढ़े विना आपकी नींद हराम हो जाय, तबीयत उदास रहे, तो क्या इसे आप कोई बला समझेंगे ? तब तो परिषद् की सदस्यता चरितार्थ न हो सकेगी।

सदस्यता की सफलता के लिए आपको बहुत-कुछ करना होगा। घर में ईश्वर की दया से कोई पुत्रजन्मोत्सव है, कोई विवाह इत्यादि का समारोह है, जिसमें आप सैकड़ों-हजारों रुपये खर्च होते हुए देखते हैं, तो लगे-हाथों हिन्दी के नाम पर भी कुछ देने-दिलाने की कृपा कीजिए। यदि आप ऐसी प्रथा चलाने में दत्तचित्त हों, तो बूँद-बूँद से तालाब भरने लगेगा। संस्था का अर्थकष्ट तो दूर होगा ही, वह कितने ही उपयोगी कार्य कर सकेगी। कम-से-कम केवल सदस्य ही पहले कृत-संकल्प हों कि हम अपने घरों में यह प्रथा जारी करेंगे। शुभ अवसरों पर हमारे समाज में दान-दक्षिणा देने की प्रथा प्राचीन काल से है। यदि चौंसठ में एक पाई हिन्दी को भी मिला करे तो हानि क्या है ? अन्य दानपात्रों से हिन्दी हमारा विशेष हित करती है। फिर हिन्दी की उपेक्षा का कोई कारण नहीं। जैसे बौद्ध-संघ के भिक्षु जहाँ-जहाँ जाते थे, ज्ञान का आलोक फैलाते थे, वैसे ही आप भी अपने दायरे के अन्दर काम कीजिए। इर्द-गिर्द की बस्तियों में भाषा और साहित्य के प्रति लोगों की रुचि आकृष्ट कीजिए। सच्ची लगन से काम करनेवाले हों, तो काम की कमी नहीं। आप संसार में कालचक्र की परिवर्त्तित गति प्रत्यक्ष देख रहे हैं। अब वह समय हमारे सिर पर मँड़रा रहा है, जिसकी गति के साथ चलने का प्रयत्न किये विना हम अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकते। हमें अपने देशबन्धुओं को शिक्षित, स्वावलम्बी, स्वाभिमानी, सुसभ्य और सुसंस्कृत बनाने में जुट जाना है। परिषद्-जैसी संस्थाओं के द्वारा यह काम मजे में हो सकता है। भाषा और साहित्य को आप जितना ही लोकप्रिय बना सकेंगे, जनता का उतना ही कल्याण होगा।

यदि आप केवल तुलसी की रामायण को ही पहले उठा लें, तो साक्षरता और सद्भाव का खासा प्रचार कर सकते हैं। इसी तरह, लोगों को प्रकाश देने के लिए बहुतेरे काम हाथ में लिये जा सकते हैं। यदि आप उनके पढ़ने योग्य अच्छी पुस्तकों का चुनाव कर दें और उनकी रुचि को परिष्कृत करके उन्हें साहित्य की ओर प्रवृत्त कर सकें, तो परिषद् की उद्देश्य-सिद्धि में देर न लगे। इस समय हमारे देश की जनता में केवल ऐसे ही साहित्य के प्रचार की आवश्यकता नहीं है जो रस, छन्द और अलंकार से परिपूर्ण हो; बल्कि ऐसे साहित्य के प्रचार की भी आवश्यकता है, जो लोगों को मनुष्यता के ऊँचे स्तर तक पहुँचा सके, जो लोगों के हृदय में मानवीय अनुभूतियों को जगा सके। आपको

समझना चाहिए कि केवल काव्य ही साहित्य का अंग नहीं है; बल्कि मनुष्य के ज्ञान की परिधि को बढ़ानेवाले जितने भी विषय हैं, सभी का समावेश साहित्य में है। सामाजिक सुख-शान्ति एवं सुव्यवस्था के लिए जितनी बातों की जानकारी जरूरी है, सबको साहित्य अपनी सीमा में सहेज लेता है।

हमारे देश के लोगों को तो यह भी बतलाना है कि प्लैटफार्म और मुसाफिरखाने में मत थूकिए, ईश्वर ने इसके लिए काफी लम्बी-चौड़ी पृथ्वी बना दी है, हमारे पूर्वजों ने उस पृथ्वी का नाम भी 'सर्वंसहा वसुन्धरा' रख दिया है। हमारे यहाँ के लोगों को यह भी सिखलाना है कि कृपा करके गाड़ी में बैठे-ही-बैठे डब्बे के अन्दर मूँगफली और केले-सन्तरे न छीलिए, केले की फलियों के छिलके प्लैटफार्म पर न फेंकिए, जिसके फलस्वरूप एक बार मौलाना आजाद के पैर में इलाहाबाद-स्टेशन पर गहरी चोट आ गई थी।

कहने का आशय यह है कि हमें अपने देशवासियों को छोटी-से-छोटी बातें बतलाने की भी जरूरत है। संकेतमात्र से आप समझ गये होंगे। अभी तो आप सब विद्यार्थियों को भी यह सीखना है कि पुस्तक किस तरह पढ़नी चाहिए। आप अपने ही साथियों को बतलाइए कि कृपया पुस्तक से तकिया का काम न लें, उसे मोड़कर न पढ़ें, उसे गन्दा न करें, जहाँ तक पढ़ें, वहाँ निशान लगाने के लिए पन्ने को न तोड़ें, इस तरह उसे मोड़कर न हथियावें कि सीवन उघड़ जाय, पत्र-पत्रिकाओं के सुन्दर चित्र न फाड़ें, इत्यादि। सहसा देखने में बातें बहुत मामूली मालूम होती हैं; पर इनपर ध्यान न रखने से जो-जो हानियाँ हो रही हैं, उन्हें गिनाने की जरूरत नहीं।

इसके अतिरिक्त आप ग्राम्य साहित्य का उद्धार करने में बड़े सहायक सिद्ध हो सकते हैं। आप तो जानते हैं कि अबतक जितना साहित्य हमारे नगरों के छापाखानों ने प्रकाशित किया है, उससे कहीं अधिक आपके पड़ोस के गाँवों में बिखरा पड़ा है। हमारे ग्राम-गीतों में देश की अधिकांश जनता के हृदय की अनुभूतियाँ भरी-पड़ी हैं। उन्हीं में 'गाँवों के देश' भारत के सुख-दुःख की सच्ची अभिव्यक्ति है। उनके संग्रह का काम यदि आप आपस में बाँट लें, तो एक-एक मुट्ठी चून से महाभोज हो सकता है। और, केवल ग्रामगीत ही क्यों, गाँव-गँवई के गँवार गायकों के द्वारा जो पद्यबद्ध वीरगाथाएँ और प्रेमगाथाएँ सानुप्रास गाई जाती हैं, वे भी कुछ कम ललित और मनोज्ञ नहीं हैं। स्थानीय बोली भोजपुरी के भावव्यंजक अर्थगर्भित शब्द, मुहावरे और कहावतें भी हमारे साहित्य के कोष में संचित हो जायँ, तो उससे होनेवाले लाभ की अभी कल्पना नहीं की जा सकती। यह काम आपके लिए बड़ा ही दिलचस्प भी है। आप इस परिषद् को यदि सजीव संस्था बनाना चाहते हैं, तो इसमें सेवा की प्रवृत्ति जगाइए। जबतक सेवा-भावना न जगेगी, इसमें स्फूर्त्ति नहीं आ सकती।

सेवा के अनेक अवसर आपके सामने बराबर आते रहते हैं। होली, दसहरा, दीवाली को ही ले लीजिए। ये हमारे जातीय त्योहार हैं। त्योहारों में राष्ट्र की आत्मा का उल्लास छिपा रहता है। हमारे त्योहारों का रूप विकृत हो गया है। उनके रूप का परिष्कार आप कर सकते हैं। लोगों में पत्रक या पर्चे बाँटकर यह बतला सकते हैं कि

अमुक त्योहार अमुक रीति से मनाया जाय। होली बड़े आनन्द का त्योहार है। पर, उसमें अनेक दूषण पैठ गये हैं। उन्हें दूर कर आप उस मेल-मिलाप के त्योहार का सुधार कर सकते हैं।

इसके अलावा आप साहित्यिक जयन्तियाँ समारोह के साथ मनाने का आयोजन कर सकते हैं। सूर, तुलसी और भारतेन्दु की जयन्तियाँ मनाकर आप जनता की सहानुभूति और सहायता के अधिकारी बन सकते हैं। जिनके शुभ नाम पर आपका यह विद्या-मन्दिर जग-जाहिर है, उनकी पुण्यतिथि श्रीरामनवमी को पड़ती है। उस दिन यदि आपकी परिषद् में चैतन्य आ जाय, तो 'एक पन्थ दो काज' सिद्ध हो सकता है। आप जानते और देखते हैं कि वर्त्तमान जीवन कैसा संघर्षमय हो गया है। इस संघर्ष से उत्पन्न विष को पचाने के लिए, जीवन को स्फूर्तिशाली बनाने के लिए, साहित्यिक रसायन की बड़ी आवश्यकता है। तात्पर्य यह कि साहित्य की थोड़ी-घनी चर्चा बराबर होती रहे, तो जीवन की उलझनें खलतीं नहीं।

आप और कुछ न कर सकें, या कोई लम्बा-चौड़ा कार्यक्रम अपने हाथ में न ले सकें, तो पहले सरस्वती-पूजा का ही उपक्रम कीजिए। प्रतिवर्ष वसन्त-पंचमी को गाँव-गाँव में, घर-घर में, इस पूजा का आयोजन कराइए। यह सरस्वती-समाराधन कभी विफल न होगा। आपका तो यह धर्म ही है, जनता को भी इसका सुफल शीघ्र ही मिलेगा। किन्तु, ये सारे काम तभी हो सकते हैं जब आप प्रेमजल से साहित्य का बिरवा सदा सींचते रहें। इसके लिए हमें जीवन-रथ को सुख के पथ पर ले चलनेवाली आवश्यकताओं में साहित्य को भी सम्मिलित करना होगा। केवल अन्न की भूख और पानी की प्यास की तरह नहीं, वासना की भूख और हृदय की प्यास की तरह, जब हमें साहित्य की भूख-प्यास भी सताने लगेगी, तब कहीं हमें समझना होगा कि साहित्य अब हमारे रोम-रोम में रम चुका।

सच मानिए, साहित्य के आन्तरिक सौंदर्य का विधिवत् विश्लेषण करने में जो विचक्षण हैं, वे ब्रह्मानन्द-सहोदर सुख का उपभोग करते हैं। साहित्य का रस सभी रसों से आला और निराला है। इसके द्वारा आप ईश्वरभक्ति-जनित परमानन्द की अनुभूति उपलब्ध कर सकते हैं, सांसारिक सुखों के रसास्वादन में अलौकिक तल्लीनता पा सकते हैं, नाना प्रकार के लाभ-लोभ से बचकर अपने ही मानसिक आनन्द में मग्न रह सकते हैं, स्वाभिमान और सन्तोष से जीवन में सच्ची शान्ति का अनुभव कर सकते हैं। साहित्य का रस जिसने पा लिया, उसके लिए भूतल ही स्वर्ग बन गया—चाहे वह किसी भाषा का साहित्य हो। साहित्य का रस जिस रस में मिल जाता है, उसे अनुपम माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है। यदि साहित्य के रस से हम वंचित हैं, तो प्रकृति की सुषमा में हमारे लिए कोई विशेष स्वाद नहीं—शरत्-पूर्णिमा के हास-विलास में या सुरभित सुमनों के विकास में हमें रस का आभास तक न मिलेगा।

साहित्य को चिरसंगी बनाये बिना हम इस दृश्य-जगत् का भीतरी सौन्दर्य नहीं देख सकते। वृक्ष पर चढ़ी हुई लोनी लता को सभी देखते हैं; पर साहित्यिक की पैनी दृष्टि केवल लहलही लता ही नहीं देखती, कुछ और भी देखती है। कोयल की कूक सारी

दुनिया सुनती है ; पर साहित्यिक का सुनना कुछ और ही है। फूल को जितना साहित्यिक समझता है, उतना शायद भौंरा भी न समझता होगा। परमात्मा ने अपने सृष्टि-रचना-कौशल का रहस्य समझाने के लिए ही साहित्य को सर्जन किया। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, सूर, तुलसी आदि साहित्य के ही प्रतीक हैं। साहित्य को ईश्वर ने अद्भुत शक्ति प्रदान की है। वह अतीत को वर्त्तमान बना सकता है। वह भविष्य का रहस्यभेदन कर सकता है। अदृश्य को भी दृश्यमान बनाना उसके बायें हाथ का खेल है। उसकी दिव्य दृष्टि संजय की अन्तर्दृष्टि से भी होड़ बद सकती है। वह आज भी सदियों पहले के युद्ध की विभीषिका से आपके कलेवर को कंटकित कर सकता है। उसके श्रीमुख से आप सुनना चाहें, तो राम का धनुष्टंकार सुन लें, पार्थ का गाण्डीव-घोष सुन लें, मुरली-मनोहर की वंशी-ध्वनि सुन लें, भीम के भुजदण्डों का भीषण गर्जन सुन लें, हल्दीघाटी की तलवारों की झनकार सुन लें, शिवा और गुरु गोविन्द की प्रचंड ललकार सुन लें। उसके सामने रेडियो और ग्रामोफोन की क्या हस्ती है ? ये निर्जीव यंत्र उसी के प्रताप से सजीव बने हैं। वह ऐसा पारस है, जो लोहे को कंचन बनाकर ही नहीं छोड़ता उसे पारस बना देता है ! वह मिट्टी छू दे तो सोना हो जाय, उकठे काठ को ठोक दे तो जलतरंग हो जाय।

साहित्य की महिमा अपार है। यदि वह न होता, तो हमारे जीवन-सर्वस्व राम और कृष्ण भी हमारे बीच न होते। उसकी मधुरिमा और गरिमा का बखान करना शब्द-शक्ति के परे है। ऐसा महामहिम होने के कारण ही वह सुसेव्य है, आराध्य है। किन्तु, उसकी सेवा में तत्पर होने के लिए शुद्ध और एकाग्र मन चाहिए। तभी आप सुन्दर साहित्य की रचना कर सकते हैं। मलिन और चंचल मन से की हुई साहित्य-रचना 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' की परिभाषा में नहीं आती। इसलिए आप यदि साहित्य की रचना में भी प्रवृत्त होना चाहते हैं, और विद्यार्थी-जीवन में प्रायः ऐसी प्रवृत्ति होती भी है, तो स्वस्थ चित्त से पहले स्वाध्याय का अभ्यास कीजिए ; फिर मननशीलता को क्रमशः बढ़ाते जाइए। आप विद्यार्थी हैं ; इसलिए आपको यह याद रखना चाहिए कि मनन के बिना अध्ययन निस्सार एवं निष्प्रयोजन है।

योगवासिष्ठ में एक श्लोक है—

> तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृग-पक्षिणः।
> स जीवति मनो यस्य मननेन हि जीवति ॥

—अर्थात् जीने को तो पेड़-पौधे और पशु-पक्षी भी जीते हैं, पर वास्तव में जीता वही है, जिसका मन सदा मनन में ही मग्न रहता है।

इसी मनन की शक्ति से आप रुचिकर साहित्य की सृष्टि कर सकते हैं। तभी आपकी यह परिषद् भी धन्य होगी जब इसके सदस्य अच्छे साहित्यकार निकलेंगे। इस आर्ष वाक्य पर सदा ध्यान रखना होगा कि एक शब्द का भी यदि हम ठीक-ठीक उच्चारण करें, या उसको शुद्ध रूप में लिखें, उसका अर्थ अच्छी तरह समझे हुए रहें, उसका सुन्दरता से प्रयोग कर पावें, तो वह दोनों लोकों में मनोरथ पूरा करनेवाला होता है।

इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक विद्यार्थी को शब्दों के शुद्ध रूप और शुद्ध प्रयोग पर विशेष मनोयोगपूर्वक ध्यान देना चाहिए। तभी वह आगे चलकर अपने देश की सेवा करनेवाला साहित्यकार या पत्रकार हो सकता है। आपके मन में महत्त्वाकांक्षा अवश्य ही होगी। उसे सफल करने के लिए परिषद् की छत्रच्छाया में साहित्य-सेवा का अभ्यास करते चलिए। ईश्वर आपके सारे मनोरथ पूर्ण करेगा।[1]

⊕

साहित्य और विज्ञान का सम्बन्ध*

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।—(गीता)

सज्जनो,

ईश्वर की असीम दया से ही आज ऐसा सुयोग हुआ कि मैं यहाँ आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर सका। इसका श्रेय आपको ही है। मैं तो आपके दर्शन से कृतकृत्य हो गया ; पर आप मुझसे हताश होंगे, इसी का बड़ा संकोच है।

यह विज्ञान का युग है। प्रगतिशीलता इसकी विशेषता है। यह संस्था भी विज्ञान-विशिष्ट है। पर, मेरा नाता विज्ञान से छत्तीस का है। फिर भी, आपने मुझ-जैसे अवैज्ञानिक और अप्रगतिशील को ही सभापति बनाया। यह भी आपका एक अभिनव आविष्कार ही है।

मेरे आदरणीय साहित्यिक मित्र और इस हिन्दी-साहित्य-संघ के सभापति प्रोफेसर अमरेन्द्रनारायणसिंहजी पर इस अनुपयुक्त और असामयिक चुनाव का दायित्व है। उनका आदेश पालन करने के निमित्त ही मैं यहाँ आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। इसलिए अपनी अयोग्यता का ध्यान छोड़कर कृतज्ञता-प्रकाशपूर्वक आपकी सेवा में प्रवृत्त होता हूँ।

आपका यह सायंस-कॉलेज विज्ञानशास्त्र की उत्कृष्ट शिक्षा के लिए उत्तर-भारत में बहुत प्रसिद्ध है। सुना है कि उसका यह हिन्दी-साहित्य-संघ सन् १९२८ ई० में ही स्थापित हुआ था। ऐसे संघ अन्य कॉलेजों में भी हैं; पर एक सुप्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्था का अंग होने के कारण इसकी अपनी एक विशेषता है। बड़े हर्ष और संतोष की बात है कि वह विशेषता गत वर्ष से आपके 'कॉलेज-मैगजिन' द्वारा प्रकट होने लगी है।

इस संघ के स्थायी सभापति उक्त प्रोफेसर साहब की कृपा से आपके 'कॉलेज-मैगजिन' के दो हिन्दी-अंक मैंने देखे हैं। वे अंक हिन्दी के प्रति आपके आदर्श अनुराग के निष्कलंक निदर्शन हैं। प्रतिवर्ष एक हिन्दी-अंक निकालने का निश्चय करके आपने

---

१. इस भाषण के कई स्थलों में कुछ अंश काट दिये गये हैं ; क्योंकि वैसे ही भाव-विचार दूसरे भाषणों में आ चुके हैं।—लेखक

* सायंस-कॉलेज (पटना) के हिन्दी-साहित्य-संघ के ग्यारहवें वार्षिकोत्सव के सभापति का अभिभाषण। रविवार, २८ मार्च, १९४३ ई० (संवत् १९९९ वि०)।

हिन्दी पर जो ममता दिखाई है, उससे स्पष्ट विदित होता है कि आप युगधर्म की पुकार से असावधान अथवा उदासीन नहीं हैं। यह आपकी वैज्ञानिकता और प्रगतिशीलता का भी प्रमाण है।

आपके सामने विज्ञान का गुणगान करना मेरी बड़ी भारी ढिठाई है। किन्तु, किसी विषय की गुणगरिमा जानते हुए भी उसके व्यक्त करने में कुंठित होना ईश्वर की दी हुई वाणी को निष्फल करना है। बड़ी-बड़ी बातों को तो जाने दीजिए, छोटी-से-छोटी बात में भी विज्ञान की सत्ता व्याप्त दीखती है। हाँ, आजकल के लिखे पढ़े लोग भी इस भ्रम में हैं कि प्राचीन भारतवर्ष में विज्ञान की उन्नति उस पराकाष्ठा तक कभी नहीं पहुँची थी जिस चरम सीमा तक आधुनिक काल में पहुँची है। यद्यपि इसपर विचार प्रकट करने की क्षमता मुझमें नहीं है, तथापि मैं आपसे नम्र निवेदन करना चाहता हूँ कि आपका यह 'हिन्दी-साहित्य-संघ' इस विषय के भी गवेषणापूर्ण लेख कॉलेज-मैगजिन के हिन्दी-अंकों में प्रकाशित किया करे। उक्त भ्रम से लोगों में जो एक प्रकार की स्वाभिमानशून्यता और अपनी हीनता की धारणा बद्धमूल हो गई है, उसको आप ही दूर कर सकते हैं। मैं अँगरेजी नहीं जानता, इसलिए आपको यह नहीं बतला सकता कि इस विषय के अनुसंधान में अँगरेजी के कौन-से ग्रन्थ आपको सहायता दे सकते हैं। पर केवल हिन्दी के सहारे मैंने कुछ वैज्ञानिक बातों का जो परिचय-मात्र प्राप्त किया है, उसके आधार पर आपसे कह सकता हूँ कि आप भी चाहें तो केवल हिन्दी का सहारा लेकर इस विषय के अन्वेषण का काम आगे बढ़ा सकते हैं।

वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, विष्णुपुराण, देवी-भागवत, अध्यात्मरामायण, कौटिल्य-अर्थशास्त्र आदि अनेक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ अब हिन्दी में सुलभ हैं। इनमें आपको कई ऐसी बातें मिलेंगी, जिनपर अपने 'मैगजिन' में आप आधुनिक दृष्टि से तुलनात्मक या समीक्षात्मक विचार प्रकट कर सकते हैं। तभी आप यह भी निर्णय कर सकते हैं कि अठारह पुराणों के कर्त्ता भगवान वेदव्यास का एक नाम जो 'विज्ञानपाद' भी है, वह केवल उनकी तत्त्वदर्शिता के कारण है अथवा वैज्ञानिक विषयों की विज्ञता के कारण।

एक छोटा-सा उदाहरण दे देना अप्रासंगिक न होगा। अध्यात्मरामायण के किष्किन्धाकाण्ड में, जटायु के भाई सम्पाती से, चन्द्रमुनि ने, गर्भाधान से भूमिष्ठ होने तक की, मानव-शरीर के क्रमिक विकास की, जो कहानी कही है, उसको आप ही आधुनिक कसौटी पर कसकर हिन्दीवालों को बतला सकते हैं कि उसमें क्या तथ्य है। 'संकर्षण' नाम से प्रसिद्ध बलरामजी की जो जन्मकथा श्रीमद्भागवत में है, उसमें कुछ वैज्ञानिकता भी है या नहीं, इसपर आप या आपके अध्यापक 'मैगजिन' में कुछ प्रकाश डालें, तो इससे लाभ यह होगा कि हमलोगों की बहुतेरी भ्रान्तियाँ दूर हो जायँगी।

आपके 'मैगजिन' में विज्ञान-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों के अभाव की कठिनाइयों पर ध्यान आकृष्ट किया गया है। इस अभाव की पूर्त्ति के लिए कई प्रामाणिक ग्रन्थों का

संग्रह अपेक्षित है। पारिभाषिक शब्दों का एक बृहत् शब्दकोश अखिलभारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तैयार करा रहा है। पर, तबतक आप काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा और हिन्दू-विश्वविद्यालय तथा गुरुकुल-काँगड़ी के द्वारा प्रकाशित, विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के पारिभाषिक शब्दों के, कोश काम में ला सकते हैं। हिन्दू-विश्वविद्यालय का पारिभाषिक शब्दकोश विषय-विभाग करके खंडशः प्रकाशित हुआ है और उसमें सामयिक आवश्यकता की पूर्त्ति पर ध्यान भी दिया गया है। राजनीति-विज्ञान तथा समाज-विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों की तालिका वृन्दावन के श्रीभगवानदास केला ने प्रकाशित की है। गुरुकुल में तो शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही है, इसलिए वहाँ उच्च कोटि के वैज्ञानिक ग्रन्थ भी हिन्दी में तैयार किये गये हैं। आपके 'संघ' में ऐसे सहायक-ग्रंथों का संग्रह होना चाहिए।

आपका यह 'संघ' जैसे समय-समय पर निबन्ध-पाठ की व्यवस्था करता है, वैसे ही वह इस प्रान्त के पत्रों में लोकोपकारी विषयों पर वैज्ञानिक लेखों के छपवाने का भी प्रबन्ध कर सकता है। इससे लाभ यह होगा कि जो लेख स्थानाभाव से 'मैगजिन' में नहीं छप पाते, वे ठीक समय पर सामयिक पत्रों में छपकर आपके विचारों को जनता तक पहुँचा देंगे, और अपने यहाँ के हिन्दी-पत्रों में वैज्ञानिक चर्चा की जो थोड़ी कमी रहा करती है, वह भी दूर हो जायगी। इस प्रकार जनता के उपकार में रत रहने से 'संघ' का सुयश भी बढ़ेगा। जनता की बात तो अलग रहे, यदि आप विचार करें तो आपको अपने 'मैगजिन' के पाठकों में ही साधारण-से-साधारण वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रचार करने की आवश्यकता सूझ पड़ेगी।

भारतीय आयुर्वेद-विज्ञान, संगीत-विज्ञान आदि यदि आपकी शिक्षा के विषय न भी हों, तोभी आपको ऐसे लोककल्याणकारी वैज्ञानिक विषयों में भारतीयों की निपुणता का पता लगाना चाहिए। अतः संघ के लिए इस बात पर भी ध्यान रखना उचित है कि कम-से-कम उसके सदस्य वर्त्तमान वैज्ञानिक वैभव के चाकचिक्य से चकित होकर अपने आपको न भूल जायँ। तभी उसका 'हिन्दी-साहित्य-संघ' नाम सार्थक होगा ; क्योंकि हिन्दी की यह एक विशेषता है कि वह भारतीयता के साथ आत्मीयता स्थापित करा देती है।

सज्जनो, आपने बड़े धैर्य और शान्ति से मेरी अनर्गल बातें सुन लेने की कृपा की, इस उदारता के लिए बहुत कृतज्ञ हूँ। विश्वास है, मेरी निस्सार बातों में भी आपकी सारग्राहिणी बुद्धि कोई-न-कोई काम की बात खोज ही लेगी। तदर्थ पुनः हार्दिक धन्यवाद ![1]

१. इस भाषण के वे अंश निकाल दिये गये हैं, जो 'साहित्य और विज्ञान'—शीर्षक लेख में आ गये हैं। वह लेख 'रचनावली' के तीसरे खण्ड में पृष्ठ २०९ पर छपा है।—ले०

कृषि-प्रधान भारत में गोरक्षा-साहित्य का प्रचार परमावश्यक*

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः ॥

सज्जनो,

आपने इस पवित्र महोत्सव का सभापति एक ऐसे अयोग्य को बनाया जो न सच्चे अर्थ में गोभक्त है, न गोसेवक है, न गोरक्षक ही है। इस उत्सव का सभापति ऐसे पुण्यात्मा को बनाना चाहिए था जो सच्चे अर्थ में हिन्दू कहलाने का अधिकारी हो। मैं तो आपके नगर की सबसे बड़ी शिक्षा-संस्था का एक तुच्छ सेवक हूँ। शायद इसी नाते आपने राह चलते मुझे धर-पकड़कर यहाँ बिठा दिया।

आज के दिन हमारे देश की अनेक गोरक्षिणी संस्थाओं में गोपाष्टमी का यह उत्सव मनाया जाता होगा। इस उत्सव का अधिकांश श्रेय हमारे देश की वैश्यजाति को है, विशेषतः धनी मारवाड़ी गोभक्तों का उत्साह इसमें सबसे अधिक प्रेरक है। मारवाड़ी-जाति की गो-भक्ति के प्रभाव से हमारे देश में कई ऐसी भी गोरक्षिणी संस्थाएँ हैं जो कई अंशों में विदेशों की उन्नत गो-संस्थाओं के बराबर कही जा सकती हैं। किन्तु, आज के उत्सव में सब जगह वही पुराने गीत गाये और दुहराये जायँगे कि गौओं के रोम-रोम में देवता हैं—भगवान गोपाल कृष्ण ने भी गौओं को चराया था—राजा चित्रकेतु ने साठ करोड़ सुन्दर गौएँ दान की थीं—भगवान कृष्ण के चढ़ाई करने पर बाणासुर ने राज-पाट की चिन्ता न कर केवल अपनी बारह श्रेष्ठ गायों की रक्षा का ही प्रबन्ध किया था—इत्यादि। मेले-तमाशे भी होंगे। कहीं-कहीं गौओं को मिठाइयाँ भी खिलाई जायँगी। बस, आज भर ही सब-कुछ हो लेगा!

आज तो हर जगह यहाँ तक जान पड़ेगा कि गोभक्तों की बाढ़-सी आ गई है। किन्तु, हमलोगों को आज अपनी छाती पर हाथ रखकर अन्तरात्मा से सच-सच पूछना चाहिए कि यह सारा नाटक खेलते हुए भी क्या हम सच्चे गोभक्त हैं—क्या हममें वे गुण हैं जो एक भारतवासी हिन्दू में होने चाहिए—क्या हम भगवान गोपाल कृष्ण के भक्त कहलाने के पात्र हैं? तुरत भीतर से आत्मा ठोकर देगी—"अरे तुम और कुछ भले ही न होओ, मगर इसमें जरा भी शक नहीं कि ढोंग-ढकोसले दिखाने में बड़े बहादुर हो।" हम आत्मा की इस आवाज पर चौंकें या त्योरी चढावें, पर आत्मा कहती बात सच्ची है। हरएक हृदय इसका साक्षी है। पर यह युग हृदय का नहीं रह गया, बुद्धि का युग है। जिसके पास हृदय की आवाज सुनने के कान हैं, वह भोंदू और बुद्धू है; पर जिसके पास तर्क की कसौटी पर कसकर ही सभी चीजों के परखने की बुद्धि है, वही चतुर है, वही समाज में खपने योग्य है। आजकल की बुद्धि ईश्वर को भी तर्क की कसौटी पर रगड़ने से बाज

* सारन-पिंजरापोल (छपरा, बिहार) के गोपाष्टमी-महोत्सव के सभापति का अभिभाषण। शुक्रवार, ५ नवम्बर, १९४३ ई० (विक्रम-संवत् २०००) राजेन्द्र-कॉलेज (छपरा)।

नहीं आती। इस युग की बुद्धि ने भगवान को भी घूसखोर समझ लिया है। पर हमें याद रखना चाहिए कि वह मायापति भगवान फुसलाया नहीं जा सकता। हम दुनिया की आँखों में धूल झोंक सकते हैं, पर दुनिया के मालिक की आँखों में नहीं। हम आडम्बर फैलाकर संसार को ठग सकते हैं; पर भगवान के सामने तो हमारे पाखंड की कलई खुले विना न रहेगी।

जब हम अपने गोपालजी को, कुँअर-कन्हैयाजी को, लड्डू-रबड़ी खिलाकर यह कहते हुए बहकाते हैं कि गांधी बाबा के फेर में न पड़िए—विदेशी कपड़े से गो-हत्या का कोई सम्बन्ध नहीं है, तब हमारे मन की तह में पैठनेवाले गोपालजी खूब ठठाकर हँसते हैं कि यह तो धोखे की कुनैन मिसरी में लपेटकर खिलाता है! मगर हम उनकी हँसी का रहस्य नहीं समझते। हम तो समझते हैं कि गोपालजी को तो सिर्फ लड्डू-रबड़ी से ही मतलब है, चाहे वह दुर्योधन के घर से आवे या शिशुपाल के। लेकिन हम यह भूल गये हैं कि उन्हें विदुर के घर का अलोना साग ही छप्पन प्रकार से भी बढ़कर रुचता है। हम उन्हें बढ़िया माल खिलाकर अपने पक्ष में मिला नहीं सकते। वे तभी हमारी ओर ढलेंगे जब हम उनकी प्राणों से प्यारी गौओं की खोज-खबर लेंगे। हमलोग लाखों रुपये लगाकर संगमर्मर के मन्दिर बनवाते और सोने के सिंहासन पर उन्हें पधराते हैं; पर उनकी परम प्यारी गौओं के लिए एक-दो बीघा गोचर-भूमि भी नहीं खरीद देते। तो क्या हम समझते हैं कि उनके दरबार में घूसखोरी घुस गई है? यही तो हमारी समझ की बलिहारी है! हर साल हमारे देश में करोड़ों रुपये मन्दिर बनवाने और कन्हैयाजी को झूला झुलाने में खर्च हो रहे हैं; पर आज तक यह कहीं नहीं सुना गया कि गोचर-भूमि खरीदने में एक लाख भी सालाना खर्च हुआ है; यदि हुआ होता तो आज गौओं की यह दुर्दशा न होती।

हमारे देश के धनी-मानी दानियों की दान-प्रणाली में सुधार होने की आवश्यकता है। बड़े-बड़े दानवीरों का ठट्ट मारवाड़ी-समाज है। वे लोग तो गौओं की रक्षा में तन-मन-धन से तत्पर हैं ही। वे ही तो भारत में गोरक्षा-कार्य की रीढ़ हैं। पर, देखादेखी औरों को भी आगे आना चाहिए। हमें संकल्प करना चाहिए कि मन्दिर अब बहुत बन चुके, जो बन चुके हैं, उन्हीं की रक्षा की जाय, और आगे अब केवल गौओं के लिए ही दान दिये जायँ। पुत्र-जन्म में, उपनयन में, विवाह में, वृद्धों के श्राद्ध में, सभी हिन्दू गौओं के लिए यथाशक्ति दान देने का नियम बना लें, जैसा प्रायः मारवाड़ी-समाज ने बना लिया है। जबतक हमारी दान-प्रणाली नहीं सुधरेगी तबतक न अपनी गो-सेवा से भगवान गोपाल को हम तृप्त कर सकेंगे, न गोरक्षा करके अपने राष्ट्र को बलवान बना सकेंगे।

इस लोक को बिगाड़कर परलोक बनाने की मूर्खता हम भारतवासी ही करते हैं, और किसी देश के लोग नहीं करते। हम हिन्दू किसान हैं, परती धरती की तो बात ही क्या, खेत की मेंड़ को भी काट-छाँटकर चप्पा-चप्पा जमीन जोत डालते हैं, बेचारी मेंड़ को इतनी भी पतली नहीं रहने देते कि उसपर खड़ी होकर गाय आराम से दूब चर सके। मगर हमारी होशियारी सुनिएगा? हम जब मरने लगते हैं, तब कुश-गंगाजल के टिकठ

पर गाय को पहले ही वैतरणी-तट पर चालान कर देते हैं ! उसी गाय को, जिसके सुन्दर बछड़े को हमने बधिया करा डाला था, जिसकी सुघर बछिया को चाँदी के टुकड़ों से तोलकर कसाईखाने में भेज दिया था, जिसके जवान बेटे को जिन्दगी-भर अच्छी तरह जोतकर बुढ़ापे में घर से खदेड़ दिया था, जिसके तड़पते बच्चे को जबरदस्ती खूँटे में बाँधकर हम सारा दूध पी गये थे । भला बताइए तो, हमसे बढ़कर चालाक और परलोक का राज चलानेवाले भगवान से बढ़कर गँवार इस ब्रह्माण्ड में कहीं ढूँढे भी मिल सकता है ? धन्य है हमारी गोभक्ति का मनोहर दम्भ ! हम अगर भगवान को ठीक-ठीक नहीं पहचानते, तो क्या भगवान भी हमें ठीक न पहचानेंगे ? ऐसा भी कभी हो सकता है ! भला उनकी निगाह से किसका भेद छिपा रह सकता है ! वे तो हमारी नस की भी नस पहचानते हैं । जब हम उनके आगे मन्दिर और मोहनभोग का घूस लेकर खड़े होते हैं, तब वे ओठ बिचकाकर मुँह फेर लेते हैं; क्योंकि वे तबतक वह नजराना मंजूर नहीं कर सकते जबतक उसमें गोचर-भूमि का तुलसी-दल न पड़ा हो ।

आप निश्चय समझिए, वे हरे-भरे मैदान में गौओं को मस्ती से चरते देखकर जितना प्रसन्न होते हैं, उतना झूलन के सुन्दर खिलौनों और फव्वारों को देखकर नहीं । हम उनके आगे चाहे सोने की गाय रख दें या चाँदी की, उन्हें रेशम की डोरी से मखमल के गद्दे पर झुलावें या फूलडोल का सजीला जलूस निकालें, हम उनको कदापि रिझा नहीं सकते—उनको किसी प्रकार की थोथी भक्ति से भुलावे में नहीं डाल सकते । वे तो मशहूर पक्के गोहयाँ हैं । नारदजी का हाल मालूम ही है । भगवान के आगे आजतक किसी की कला न लही । वे तबतक हम हिन्दुओं के संकट न टालेंगे जबतक हम उनकी गौओं का दुःख-दर्द न समझेंगे ।

हम तो यह चाहते हैं कि इधर गाय-बैलों को चालानी सौदा बनाकर तोड़े ऐंठते रहें और उधर गोमुखी में सुमिरनी डालकर भगवान को भी भरमाते रहें । मगर यह कभी होने का नहीं । भगवान बहुत मट्ठा फूँककर पी चुके हैं । उनको हम किसी तरह चकमा नहीं दे सकते । उनको हम लम्बी चुटिया और जनेऊ दिखाकर नहीं लुभा सकते । वे कंठी और तिलक-छाप पर लट्टू होनेवाले असामी नहीं हैं । वे तो गोलोक में रहनेवाले हैं, कजरी-धौरी के झुण्ड में विहरनेवाले हैं । जहाँ गौएँ प्रसन्न रहेंगी वहीं उनका मन रमेगा । चाहे भारतभूमि के बित्ते-बित्ते में मन्दिर बन जायँ, वे तबतक कभी उनमें टिक नहीं सकते जबतक उनकी गौएँ आँसू ढालकर उन्हें पुकारती रहेंगी । हम सभी हिन्दुओं को, जो अब भी गोभक्त होने का दम भरते हैं, भगवान की इस प्रवृत्ति को पहचानना चाहिए । हमें दूसरों के सिर दोष थोपने की आदत छोड़नी होगी । गौओं की दुर्दशा के मूल कारण हम हिन्दू ही हैं, मुसलमान या ईसाई नहीं । जिस दिन हम गौओं का महत्त्व भलीभाँति समझ जायँगे उस दिन कोई गौओं का बाल भी बाँका न कर सकेगा ।

हम आज देहातों में चलकर अपने ही भाइयों की करतूत देखें, तो हमारी आँखें खुल जायँगी । आज के उत्सव में हर जगह देहात के असंख्य हिन्दू जुटेंगे, जोशीले भाषण सुनेंगे,

तालियाँ पीटेंगे, गोमाता की जय बोलेंगे; मगर घर जाकर क्या करेंगे, यह सब लोग अपने-अपने ब्रह्म से पूछें। आजकल के कवियों ने किसानों पर खूब कविताएँ लिखी हैं, जिनमें वे भोले-भाले और सीधे-सादे बताये गये हैं। पर वे सचमुच कैसे हैं, यह अदालतों और मेलों में जाकर देखिए। अदालतों में उनके सरल हृदय के चित्र देखिए, मेलों में उनकी गोभक्ति की प्रदर्शनी देखिए। मेले-ठेले की बात छोड़िए, वे तो घर-बैठे ही तोड़ों की मार से बथान के सब खूँटे उखाड़ रहे हैं। तब भी हमारी चतुराई अपने चेहरे पर गोभक्ति का घूँघट डाले मौज करती फिरती है। हमलोग तो ऐसे चुस्त चालाक हो गये हैं कि झट दूसरे के सिर दोष मढ़कर पल्ला झाड़ अलग हो जाते हैं। मगर सच तो यह है कि जो अपने-आपको बिलकुल भूला बैठा है, उसे राह-चलता आदमी भी आसानी से चूना लगा सकता है। जब हमको इस बात का ध्यान ही नहीं कि हमारे पूर्वज कैसे गोभक्त थे—हमारे धर्मग्रंथों में गो-महिमा का कैसा बखान किया है—हमारे जीवन की यात्रा में गौओं की सहायता कितने महत्त्व की है, तब भला ऐसे अनाड़ियों को दूसरे क्यों न उलटे छुरे से मूँड़ें ?

हम दूसरों पर अपना कसूर लादकर दूध के धुले नहीं बन सकते। हम खुद ही अपने दोषों पर गहरी नजर डालें और सोचें कि हम कैसी निर्दयता से अपने पूर्वजों के मूलधन 'गोधन' का संहार करते जा रहे हैं। यही सोचावट जब हरएक हिन्दू के हृदय में पैदा होगी तब खेतिहरों के इस देश का बेड़ा पार होगा। जब गोपालक ही गोघालक हो गया है तब तो उसका बेड़ा मँझधार में फँसना ही चाहिए। जिस डाल पर हमें खड़ा रहना है उसीमें कुल्हाड़ा लगाकर हम अपने कल्याण का सपना देख रहे हैं। इस सपने के टूटने के कुछ उपाय भी हम नहीं करते !

गोभक्ति का सच्चा पाठ पढ़ानेवाले श्रीमद्भागवत-महापुराण को या रघुवंश-महाकाव्य को हमारे कितने हिन्दू भाई पढ़ते हैं ? हमारी कितनी गोरक्षिणी-संस्थाएँ गोरक्षा-साहित्य का प्रचार करने पर ध्यान देती हैं ? ईसाई-मिशनरियों का जाल इस देश में बिछा हुआ है, पर हम उनसे रत्ती-भर भी कोई शिक्षा नहीं लेते। वे हर साल अपने सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए करोड़ों पुस्तिकाएँ छापकर बाँटते फिरते हैं। हम गौओं की रक्षा के उपाय सुझानेवाली एक लाख पुस्तिकाएँ भी अपने देश के अज्ञान किसानों में हर साल न बाँट सके हैं। हम किसी के गुण नहीं सीखते, सबके दुर्गुण ही मोल लेते हैं। हमारे पुराणों में जो गौओं की महिमा भरी पड़ी है उसे हम कभी भूले-भटके भी नहीं देखते। सिनेमा देखने से फुर्सत हो, तब तो देखें। इश्कबाजी का सबक सिखलानेवाली किस्से-कहानी की किताबों के लिए पैसे हैं, पुराणों और धर्मग्रन्थों के लिए ही पैसों का टोटा है। फिर आँखों में अंजन कहाँ से लगे ? कैसे हम जानें कि कामधेनु का अपमान करने से राजा दिलीप के संतान नहीं होती थी और कामधेनु की पुत्री नंदिनी गाय की सेवा करने से उन्हें रघु के समान विश्वविजयी पुत्र प्राप्त हुआ।

आज तो हम पग-पग पर गो-जाति का अपमान करते हैं। फिर भी हम चाहते हैं कि हमारा वंश बढ़े। शास्त्र में जिस गाय की प्रदक्षिणा भूमंडल की परिक्रमा कही गई है,

उसी गाय को लात और लाठी से हिन्दू मारते हैं और चाहते हैं कि बाप के रहते बेटा न मरे। यह है हमारे अज्ञान का नतीजा! दिन-रात गाय का तिरस्कार करके साल में सिर्फ एक दिन उत्सव मना लेने से कुछ नहीं होने-जाने का। एक दिन की सुनी-सुनाई बात एक कान से होकर दूसरे कान की राह से निकल जाती है। दूसरे की दी हुई बुद्धि ढाई घड़ी ही ठहरती है। लेकिन हमेशा पढ़ते-गुनते रहने से मन पर विचित्र प्रभाव पड़ता है। इसलिए जो पढ़े-लिखे हैं, वे अपने पूर्वजों की लिखी और कही हुई बातों का मनन करें। जो अपढ़ हैं, उनके हित के लिए गोरक्षिणी संस्थाएँ प्रचारकार्य करें।

बिहार में इस समय ८८ गोशालाएँ हैं। यदि सबके प्रतिनिधि एकत्र होकर एक संघ बनावें और लोगों में फैले हुए अज्ञान को दूर करने का बीड़ा उठावें, तो बहुत बड़ा काम सध सकता है। आज गौओं के इस विस्तृत देश में हमारे ग्रामीण भाई न गोपालन की विधि जानते हैं और न गौओं के रोगों की चिकित्सा ही जानते हैं, जिसका भयंकर फल हम भोग रहे हैं। हमें उन्हें ये बातें बतानी चाहिए। अब वह युग आ गया है जब केवल बूढ़ी गौओं को भर-पेट चारा दे देने से ही गौओं की रक्षा नहीं हो सकती, बल्कि अच्छी नस्ल के साँढ़ों और गाय-बछड़ों की वृद्धि करते जाने से ही गोवंश का मंगल हो सकता है।

जबतक लोगों के दिल पर हम इन गायों से होनेवाले अनगिनत लाभों की अमिट छाप न लगा देंगे तबतक लोग चेतेंगे भी नहीं। आज तक इस तरह का कोई उद्योग यहाँ नहीं किया गया। यदि एक-एक पैसे की एक सौ पुस्तिकाएँ सरल भाषा में छापकर घर-घर में पहुँचा दी जायँ, जिनमें गौओं के सम्बन्ध की सारी पुरानी और नई बातें समझा दी गई हों, तो गोवंश का बड़ा भारी उपकार हो सकता है। अभीतक सामूहिक रूप से ऐसा कोई देशव्यापी प्रयत्न नहीं हुआ है। उन एक सौ पुस्तिकाओं में वेद-पुराणों से लेकर आजकल के विज्ञान-युग तक की सारी मुख्य बातें रख दी जा सकती हैं। इससे लोगों की जानकारी बढ़ेगी, अज्ञान का अंधकार दूर होगा, लोगों को गोपालन की रीति मालूम हो जायगी।

गौओं के विषय में बहुत-सी बात न जानने के कारण भी लोगों के हाथों गौओं की हानि होती जा रही है। इसके रोकने का प्रयत्न होना चाहिए। आजतक अनेक गोरक्षा-सम्मेलनों ने अनेक प्रस्ताव पास किये, पर सारे देश के घर-घर में लगातार सन्देश पहुँचाते रहने का कोई ठोस काम न हुआ। केवल भाषणों और प्रस्तावों से कभी कुछ काम न सरेगा। गायक और भजनीक भी वार्षिकोत्सवों में ही अपना राग अलापकर चले जाते हैं, गाँव-गाँव का दौरा नहीं करते। फिर कैसे गोरक्षा की आशा की जाय! गोरक्षा का केवल स्वांग रचने से देश की मनचाही भलाई नहीं हो सकती।

दुबली, पतली रोगी और गन्दी गायों के दूषित दूध से देशवासियों की भी दुर्गति हो रही है। गौओं के बे-हिसाब कटते जाने से दूध-घी का भी घोर अभाव हो रहा है।

खाने-पीने की चीजों के अकाल का मुख्य कारण गौओं का सर्वनाश ही है। गीता में हमलोग पढ़ते हैं—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

अर्थात् अन्न से प्रजा बढ़ती है, मेघ के बरसने से अन्न उपजता है और यज्ञ से मेघ बनते हैं।

पर गौओं के विना यज्ञ का होना ही असंभव है, फिर वर्षा और अन्न की चर्चा ही बेकार है, प्रजा की बढ़ती तो अलग रहे। और, इस युग में यज्ञ का हाल क्या पूछते हैं। चर्बी मिला हुआ घी सूँघकर देवता गेचा गये हैं! बनस्पति-घी से अग्निदेव को अजीर्ण हो गया है! अधिकांश हिन्दू तो अपने घर में नित्य कौड़ी-भर घी का हवन भी नहीं करते, मगर चाहते यह हैं कि ठीक समय पर वर्षा हो, और उपज भी चौगुनी हो। तो कैसे होगा?

जबतक यहाँ के लोग गौओं की सेवा और उनका पालन-पोषण करने में ही अपना कल्याण समझते रहे तबतक यहाँ कभी अन्न-वस्त्र या घी-दूध की कमी न हुई। इसीलिए पहले के लोग हट्टे-कट्टे और दीर्घजीवी भी होते थे। पुराणों की बातें जाने दीजिए। इतिहासों में हम देखते हैं कि हिन्दू राजाओं के समय में, जिन दिनों कोई विदेशी शक्ति यहाँ नहीं आई थी, गौओं के प्रताप से चैन की बंसी बजती थी। चन्द्रगुप्त के राज्य में एक आने का एक मन चावल, एक आना मन दाल, आठ आने मन तेल, बारह आने मन घी, दस आने मन चीनी और दो पैसे मन नमक मिलता था। यह तो लगभग ढाई-तीन हजार वर्ष पहले की बात है, आज से छ सौ वर्ष पहले भी, पठान बादशाह मुहम्मद तुगलक के समय में, पौने दो आने मन चावल, साढ़े ग्यारह आने मन तेल, एक रुपया सात आने मन घी और चीनी, तथा दो रुपये का पन्द्रह गज बढ़िया सूती कपड़ा मिलता था। मुगल-बादशाह अकबर के समय में, आज से चार सौ वर्ष पहले, खूब बढ़िया चावल पंद्रह आने मन था और मोटा चावल दस आने मन, दाल साढ़े तेरह आने मन, घी पाँच रुपये मन, चीनी पाँच रुपये ग्यारह आने मन और नमक बारह आने मन। आज जिस बंगाल में अकाल के गाल में कितने समा गये, उसी देश में, आज से ढाइ सौ वर्ष के पहले, बहुत बारीक बाँसफूल-चावल एक रुपये का एक मन दस सेर मिलता था, और मोटा मामूली चावल तो एक रुपये में सात मन बीस सेर! शुद्ध तेल एक रुपये का इक्कीस सेर, उत्तम घी एक रुपये का साढ़े दस सेर! अंगरेजी राज्य में भी, ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय में, लगभग १८१० ई० में, सवा रुपये मन उम्दा चावल, डेढ़ रुपये मन दाल, दो रुपये मन आटा, दो आने सेर तेल, सात आने सेर घी और छ आने की एक साधारण धोती मिल जाती थी।

इससे साफ पता लगता है कि ज्यों-ज्यों गौओं का क्षय होता गया त्यों-त्यों पैदावार घटती गई, लोगों का शरीर भी कमजोर पड़ता गया और तरह-तरह के रोगों का भी दौर-दौरा होता गया। इस कृषिप्रधान देश की असली पूँजी गौएँ ही रही हैं और रहेंगी। जबतक इस पूँजी को हम अपने पूर्वजों की थाती समझकर सुरक्षित रखने का प्रयत्न नहीं

करेंगे तबतक हमारी बिगड़ी दशा सुधर नहीं सकती, चाहे हम लाख पूजापाठ या कीर्त्तन करें; क्योंकि भगवान् गोपाल कृष्ण तो गौओं के चिकने रोएँ देखकर ही प्रसन्न हो सकते हैं, और किसी तरह नहीं।

सज्जनो,

मैंने जो सोचा और अनुभव किया, आपके सामने स्पष्ट कह दिया। 'संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार' के अनुसार आप फालतू बातें छाँटकर सार-मात्र ग्रहण कर लेंगे, ऐसा विश्वास है।

आपकी यह गोशाला शायद सन् १६१० ई० में स्थापित हुई थी। चौंतीस वर्षों से यह संस्था गो-सेवा कर रही है। मैं आज इसके दर्शन से अपने को कृतकृत्य मानता हूँ। इस सौभाग्य की प्राप्ति के लिए मैं इस सम्पन्न संस्था के सभापति श्रीमान् रायसाहब (श्याम बाबू) का बहुत कृतज्ञ हूँ।

सुना है, सीवान, गोपालगंज और महाराजगंज में भी, जो इस जिले के प्रधान स्थान हैं, गोशालाएँ हैं। यदि सबके सहयोग से इसी जिले को कार्यक्षेत्र बनाकर गोरक्षा-सम्बन्धी प्रचारकार्य किया जाय, तो दूसरे जिले की गोशालाओं के सामने एक आदर्श उपस्थित हो सकता है। देशपूज्य राजेन्द्र बाबू की जन्मभूमि में जो संस्था है, उसे तो निश्चय ही आगे बढ़कर दूसरों के लिए अनुकरणीय बनना चाहिए।

पूज्य राजेन्द्र बाबू जब सन् १६२८ में योरप गये थे, तब वहाँ उन्होंने जो कुछ देखा-सुना, उसे हम लोगों के लाभ के लिए पुस्तक-रूप में लिख डाला। उनकी वह पुस्तक अपने देखी होगी। उसका नाम है—'मेरे योरप के अनुभव'। योरप से लौटे हुए बहुत-से विद्वानों ने हिन्दी में अपने-अपने विचार लिखे हैं; किन्तु पूज्य राजेन्द्र बाबू के विचार सबसे निराले हैं। उन्होंने वहाँ की छोटी-से-छोटी बातों की भी हिन्दुस्तान की नजर से देखा है। गौओं के बारे में उन्होंने एक पूरा अध्याय ही लिखा है, मगर यहाँ आप दो-चार बातें सुन लीजिए। लिखते हैं—

"जो जानवर यहाँ देखने में आते हैं उनमें दुबला तो एक भी नहीं मिलता। मैंने एक भी दुबली गाय या दुबला घोड़ा नहीं देखा। भेड़ों को देखकर तो आश्चर्य होता है कि वे कैसे इतनी मोटी होती हैं। जान पड़ता है कि उनको खाने की तकलीफ नहीं है। मारकर खाने के लिए जो जानवर पाले जाते हैं, उनको भी खूब खिला-पिलाकर तैयार रखते हैं। देश तो इंगलैंड छोटा है, आबादी बहुत अधिक है; पर वहाँ जितनी परती जमीन देखने में आती है उतनी हमारे देश में—कृषिप्रधान होने पर भी—नहीं देखने में आती। जिसको कुछ भी खेती है उसकी जमीन में प्रायः आधी जमीन अनाज उपजाने के लिए है तो आधी जमीन घास के लिए, जिसमें जानवर चर सकें। जो जमीन परती रखी जाती है, उसकी पूरी हिफाजत की जाती है। प्रत्येक खेत चारों ओर तार से या लकड़ी के कठघरों से घेरा हुआ है, जिसमें छोटा-सा फाटक लगा हुआ है, जिसमें ताला लगा रहता है। गृहस्थ अपने जानवरों को उसी घिरी हुई परती में लाकर

छोड़ देते हैं और ताला बन्द करके घर चले जाते हैं या दूसरे काम में लग जाते है। जानवर दिन-भर उसमें चरते रहते हैं और खूब मोटे हो जाते हैं। गाय, भेड़ और घोड़े ऐसी ही परती में रहते हैं। बहुत स्थानों में तो इसी परती में उनके रहने के लिए भी स्थान बना रहता है। हिन्दू अपनेको गोभक्त कहते हैं। हिन्दूधर्म में जीवदया का बहुत महात्म्य है। उसी जीवदया की पराकाष्ठा—अन्तिम सीमा—गोभक्ति है। कितना खून-खराबी प्रत्येक वर्ष गोवध के कारण हुआ करता है। पर हिन्दुओं की पूज्य गायें उतने आराम से नहीं रखी जाती हैं जितने आराम से अंग्रेजों की खाद्य गायें! मैंने देखा है कि हिन्दू-जमीन्दार भी गायों के लिए परती छोड़ना बहुत बड़ा नुकसान मानते हैं। हिन्दू-राज्यों में भी गायों की चरी पर 'कर' लगाया जाता है! उन गरीब रैयतों से, जिनको अपना पेट भरने के लिए भी काफी अन्न नहीं मिलता, गायों और भैंसों के चराने के लिए मालगुजारी वसूल की जाती है! छोटे-मोटे हिन्दू-गृहस्थ भी, जहाँ थोड़ी भी जमीन परती देखने में आई, उसे या तो आहिस्ता-आहिस्ता किसी-न-किसी प्रकार से कब्जे में कर लेते हैं या जमीन्दार यदि कड़ा आदमी है तो उससे लगान पर ले लेते हैं। अपने गाँव में मैं अपने बचपन में देखा करता था कि गाँव की सड़कें, जिनको छवर कहते हैं, बहुत चौड़ी थीं और इन छवरों पर भी घास इतनी उगा करती थी कि बहुत गायों का चारा छवरों से निकल आता था। इसके अलावा परती जमीन भी चरी के लिए बहुत थी। मगर अब छवर पगडंडी मात्र रह गई है! परती तो शायद एक-दो बीघे भी कहीं देखने में न आवेगी! वहाँ पर एक छोटी नदी है, जो बरसात के सिवा और दिनों में सूख जाती है। उसको भी लोगों ने जोत लिया है। उसके दोनों किनारों पर गायों के चरने की जो सुविधा थी, वह भी अब जाती रही! यह सब मेरे देखते-देखते हुए हैं। जब मैं एक बार बीमार पड़कर घर गया तो गाय का दूध मिलने में कठिनाई होने लगी! साधारण लोगों को तो बीमारी में भी दूध नहीं मिलता होगा। सभी गाँवों में, वहाँ के लिए जरूरी जानवरों की संख्या का अन्दाज करके, काफी परती चरागाह, जिस प्रकार से हो, छोड़वा दिया जाय। प्रत्येक गाँव में आबाद जमीन का चतुर्थांश कानून मजबूरन परती बना दिया जाय, जिसे बन्दोबस्त करने का न तो मालिक को अधिकार रहे और न जोतने का रैयत को। यह जमीन गाँव भर के जानवरों के चरने और खेलने-कूदने के लिए रहे। जहाँ परती जमीन अब नहीं रह गई है, वहाँ परती रखने के लिए काफी जमीन दाम देकर ले ली जाय और दाम का आधा हिस्सा जमीन्दार और आधा वहाँ की रैयत देवें।"

यह आपके घर के उस नेता की सलाह है जो इस देश के बड़े-बड़े नेताओं का सिरताज माना जाता है। इसी प्रकार स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने अमेरिका की हरएक गोशाला को दुग्धशाला के रूप में व्यापारिक ढंग पर चलते देखा था। और, उन्होंने भी अपने अमूल्य अनुभव वहाँ की गौओं के विषय में लिखे हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के जन्मदाताओं में एक पंडित रामनारायण मिश्र ने भी योरप-यात्रा पर लिखी अपनी पुस्तक में इस विषय पर लिखा है। काशी के 'ज्ञानमण्डल' और 'आज' के

स्वामी, परम देशभक्त, बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने भी अपनी 'पृथ्वी-प्रदक्षिणा' नामक पुस्तक में विदेशों की गौओं का अच्छा हाल लिखा है। लेकिन यहाँ सबका ब्योरा सुनाने का समय नहीं है। केवल अपने घर के सबसे बड़े नेता की बात ही हमारे लिए काफी है —यदि हम ध्यान दें, तो। नहीं तो, हमारी गोभक्ति का यह नाटक तो हर साल होता ही रहेगा।

अब अंत में हम गाय की एक अर्जी आपकी सेवा में पेश करके अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'नरहरि' बादशाह अकबर के दरबार में रहते थे। एक बार एक गाय कसाई के हाथ से छूटकर उनके घर में काँपती हुई घुस गई। उन्होंने कसाई को गाय नहीं दी, एक छप्पय लिखकर उसके गले में अर्जी के तौर पर बाँध दिया, और अकबर के सामने ले गये। बादशाह ने गाय को तो छुड़वा ही दिया, अपने राज में गोबध भी बन्द करा दिया। उस छप्पयवाली अर्जी में गाय जो कुछ कहती है उस पर सोचते-विचारते घर जाइए और अपना कर्त्तव्य निश्चित कीजिए—

अरहुँ दन्त तृन धरैं ताहि मारत न सबल कोई।
हम सन्तत तृन चरहिँ बचन उच्चरहिं दीन होई॥
अमृत पय नित स्रवहिँ बच्छ महिथम्भन जावहि।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरुकहिँ न पियावहि॥
कह कवि 'नरहरि' अकबर सुनो, बिनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुयहु चाम सेवइ चरन॥

ग्रामीण पुस्तकालय द्वारा लोकोपकार *

सियाराममय सब जग जानी,
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।

सज्जनो,

ईश्वर की इच्छा के विना संसार में एक पत्ता भी नहीं हिलता। उसी जगत्पिता की दया से मुझे आपलोगों के दर्शन हुए हैं। इस सौभाग्य के लिए मैं उसी दयामय प्रभु को कृतज्ञ हृदय से धन्यवाद देता हूँ। विश्वास है कि मेरा यह हार्दिक धन्यवाद आप लोगों की सेवा में अवश्य पहुँच जायगा; क्योंकि वह घट-घट व्यापी प्रभु आप सब में रम रहा है। वह ब्रह्मण्य देव है। यहाँ परम पूज्य ब्राह्मणों का ही बाहुल्य है। मेरा

---

* इस भाषण के आरम्भ का कुछ अंश काट दिया गया है; क्योंकि उसका सम्बन्ध उस समय के व्यक्तियों से था।—ले०

* श्रीज्ञानप्रकाश-पुस्तकालय (परोरहा-केहुनिया, डाकघर लौरिया, जिला चम्पारन, बिहार) के तीसरे वार्षिकोत्सव के सभापति का भाषण। आषाढ कृष्ण ४, शनिवार, संवत् (२००१); १० जून १९४४ ई०।

अहोभाग्य कि आपने मुझ-जैसे तुच्छ व्यक्ति को अपने आशीर्वाद का पात्र चुना। यह उसी 'ब्रह्मण्य देव रघुराई' की कृपा है। उसी की शुभ प्रेरणा से यह उत्सव भी हो रहा है। जब वह किसी देश का कल्याण करना चाहता है तब उस देश के लोगों के मन में अच्छे-अच्छे भाव और विचार जगाता है। हमारा देश बहुत दिनों से दुखी है। परन्तु इधर कुछ दिनों से इस देश के लोगों के मन में धीरे-धीरे अच्छे काम करने के भाव और विचार उगने लगे हैं। उन्हीं अच्छे कामों में यह पुस्तकालयों का प्रचार भी एक है। देश में जगह-जगह पुस्तकालय खुल रहे हैं और उनमें से कितने ही मजे में चल भी रहे हैं। इसके अन्दर भगवान की मंगलमयी इच्छा ही काम कर रही है। निश्चय ही इससे देश का बड़ा मंगल होगा। विद्या का अनुराग लोगों के हृदय में पनपेगा। ज्ञान की ज्योति सारे समाज में फैलेगी। इसलिए जिसके मन में ईश्वर की सच्ची प्रेरणा होगी वही इस काम में सहायता करने के लिए तत्पर होगा। आपलोग बड़े उत्साह से इस काम में तत्पर देख पड़ते हैं। ब्राह्मणों की बस्ती में 'ज्ञान-प्रकाश-पुस्तकालय' का होना यथार्थ ही है। आदिकाल से ही हमारे देश के पूज्य ब्राह्मणों ने समस्त भूमंडल में ज्ञान का प्रकाश फैलाया है। मनुजी का यह वाक्य सर्वथा सत्य है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

निश्चय ही ईश्वर की यह इच्छा जान पड़ती है कि आप लोगों के उद्योग से यहाँ के लोगों में भी ज्ञान का प्रकाश फैले—उनका विशेष उपकार हो।

पुस्तकालय से अनेक प्रकार के उपकार हो सकते हैं। इससे लोगों में पुस्तकें पढ़ने की रुचि पैदा होगी। कामकाज से छुट्टी पाने पर समय काटने और मन बहलाने का एक अच्छा सहारा मिल जायगा। तरह-तरह की नई-नई और लाभ की बातें मालूम होंगी। संसार के रङ्ग-ढङ्ग का पता लगता रहेगा। अनेक रोगों, दुःखों और संकटों के दूर करने के सरल उपाय सूझते रहेंगे। बड़े-बड़े विद्वानों और महात्माओं की विचार-गंगा में गोते लगाते रहने से मन पवित्र और शीतल होता रहेगा। पुस्तकालय से होनेवाले उपकार सहज ही गिनाये नहीं जा सकते।

आजकल बहुत सी ऐसी अच्छी-अच्छी पुस्तकें निकल चुकी हैं, जिन्हें देखकर और पढ़कर मन में बरबस यह इच्छा उपजेगी कि हम ऐसी-ऐसी मनभावनी पुस्तकें अधिक-से-अधिक पढ़ें। काम-धन्धे से छुटकारा पाने पर फालतू बातों में समय गँवाने और झूठ-फुर बतियाने में रस लेने से कहीं अच्छा है कि हम अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ा करें, जिससे चित्त शुद्ध हो, बुद्धि का विकास हो। हम पुस्तकों और अखबारों से बहुतेरी नई बातें सीख सकते हैं। हम जान सकते हैं कि संसार की दशा इस समय कैसी है—दूसरे देशों में क्या-क्या हो रहा है--हमको अपने देश की भलाई के लिए क्या-क्या करना चाहिए। यदि हमारे पशुओं में, जो हमारी मुख्य जीविका खेती के मूल धन हैं, कोई रोग फैल रहा है, तो हम पुस्तकों में उस रोग की दवा पा सकते हैं—उसे आसपास के लोगों को बतलाकर परोपकार कर सकते हैं। यदि हमारे अपने शरीर में या कुटुम्बियों और

पड़ोसियों के शरीर में कोई रोग है तो हम पुस्तकों में उससे छुटकारा पाने का उपाय ढूँढ़ सकते हैं। अभी हाल ही में पिछले चैत-बैसाख के गोरखपुरिया 'कल्याण' में आपने व्रतों पर एक लेख देखा होगा, जिसमें "पापों से होनेवाले सब प्रकार के रोगों और कष्टों को दूर करनेवाले व्रत" बतलाये गये हैं; किस तरह के पाप से कौन-सा रोग होता है, यह बात उसमें शास्त्रों के अनुसार बतलाई गई है। किन्तु आजकल युग के प्रभाव से हम-लोगों के मन में शास्त्रों पर विश्वास बहुत कम रह गया है। फिर भी शास्त्रों में श्रद्धा रखनेवाले लोग उस लाभदायक लेख को पढ़कर और दूसरों में उसकी चर्चा फैलाकर अपने साथ-साथ पराये का भी हित कर सकते हैं।

हमारे देश के बहुतेरे लोग, नीरोग रहने के साधारण नियमों को न जानने के कारण, नाना प्रकार के छोटे-बड़े रोगों के शिकार बना करते हैं। आजकल आरोग्य की राह सुझानेवाली बहुत सी अच्छी पुस्तकें मिलती हैं। उनमें सरल ढंग से ऐसे उपाय बताये गये हैं, जिनसे हम सहज ही अपने शरीर को सुखी रखकर धर्म-कर्म का पालन कर सकते हैं। किन्तु खेद है कि हमारे दरवाजे पर ही गंगा बह रही है और हम ऊसर में कुएँ खोदते फिरते हैं। हमारे पुरुखे बहुत दिनों तक नीरोग रहकर जीते थे। वे बड़ी-बड़ी पोथियाँ लिखकर बता गये हैं कि मनुष्य कैसे नीरोग रहकर अधिक-से-अधिक दिन जी सकता है। परन्तु हम उन पोथियों को पढ़ते ही नहीं, यदि भूले-भटके कहीं पढ़ भी लेते हैं, तो उनमें लिखी बातों पर विश्वास नहीं करते, उनके अनुसार का काम नहीं करते। फिर भी पुस्तकालय यदि हमारे सामने सदा बना रहेगा तो हम पुस्तकें पढ़ते-सुनते रहने के अभ्यास से कल्याण के रास्ते पर आ सकते हैं।

आपके मन में यदि सचमुच श्रद्धा होगी तो आप स्पष्ट देखेंगे कि पुस्तकालय में हमारे पुण्यात्मा पूर्वजों की आत्माएँ हमारे ही उपकार के लिए सदा विराजमान हैं। वाल्मीकि और व्यास, मनु और याज्ञवल्क्य, सूर और तुलसी आज से बहुत पहले हो चुके हैं। किन्तु उनकी सच्ची आत्माएँ आपके पुस्तकालय में, आपको सुखी बनाने के लिए ही, बैठी हुई हैं। आप उन दिव्य आत्माओं के दर्शन कीजिए, पुस्तकालय के मन्दिर में। उन आत्माओं की ज्योति से आपका हृदय जगमगा उठेगा। गोसाईं तुलसीदासजी का शरीर हमारी आँखों से ओझल हो गया है। पर उनकी असली आत्मा तो हमारी आँखों के सामने हर घड़ी खड़ी रहती है। पर हम तो ऐसे अभागे हैं कि कल्पवृक्ष की छाया में रहकर भी दरिद्र बने हुए हैं। यदि केवल 'रामचरितमानस' अर्थात् तुलसीकृत रामायण ही हम प्रेम से पढ़ा करें तो लोक-परलोक दोनों बन जायँगे। लौकिक व्यवहार की कोई बात उसमें छूटी नहीं है। परलोक सँवारने का सबसे सुगम रास्ता उसी में है। तुलसी का 'मानस' अकेला ही अनेक पुस्तकालयों का काम कर सकता है। तुलसी की 'विनयपत्रिका' शरीर और मन के अनेक असाध्य रोगों पर रामवाण का काम कर सकती है। उनका 'हनुमान-चालीसा' अनेक घरों का भूत भगा सकता है।

कहाँ तक कहूँ, तुलसी ने तो घर-घर में कामधेनु बाँध दी है, कंठ-कंठ में राम को रमा दिया है। तब भी हम तुलसी का तत्त्व नहीं परखते। जब हम ढोलक-झाल पर उनकी

रामायण गाते हुए झूमने लगते हैं, तब जान पड़ता है कि हम स्वर्ग को पृथ्वी पर उतार लेंगे। किन्तु खेद है कि तुलसी की अमृतमयी वाणी अभी तक हमारे रोम-रोम में नहीं रमी है। घर-घर में तुलसीकृत रामायण की पोथी है, मगर राम और भरत जैसे भाई कहीं सौ में एक ही देख पड़ते हैं। हम राम के भक्त कहलाने में बड़े बहादुर हैं; पर राम के आदर्शों का पालन करने में बड़े कंजूस हैं। राम का सच्चा भक्त उनके सुन्दर रूप पर नहीं रीझता, बल्कि उनके ऊँचे आदर्शों की सुन्दरता पर अपने-आपको निछावर कर देता है।

आजकल 'मन में राम बगल में छुरी', 'राम-राम जपना पराया माल अपना' इत्यादि कहावतें चारों ओर सच होती दिखाई दे रही हैं। फिर पुस्तकालय खोल कर सिर्फ ढोल पीटने से क्या लाभ ! पुस्तकालय का वास्तविक महत्व न समझने से वार्षिकोत्सव का कुछ मूल्य नहीं। पुस्तकालय तो सरस्वती-मन्दिर है। जैसे सरस्वती जी की सवारी हंस में यह गुण है कि वह दूध और जल को अलग-अलग कर देता है, वैसे ही सरस्वती के सेवक में भी भले और बुरे का विचार होना चाहिए। पुस्तकालय के पुजारी में भी जब पुण्य-पाप का, सच-झूठ का, न्याय-अन्याय का विचार हो, तब पुस्तकालय का सच्चा महत्व प्रकट होगा। ऐसा नहीं कि पुस्तकालय की पुस्तकों में हम अच्छी-अच्छी शिक्षा और उपदेश की बातें पढ़ें, और पुस्तकालय से बाहर चारों ओर अनीति और अवगुण करते फिरें।

पुस्तकालय से लाभ तभी होगा जब उसकी पुस्तकों का प्रभाव हमारे मन पर पड़ेगा। हम साल-भर में एक दर्जन किताबें पढ़कर भी यदि अपने भीतर यह अनुभव न कर सकें कि हम पहले से अब बहुत-कुछ सुधर गये हैं, तो पढ़ने से लाभ ही क्या हुआ। पुस्तकालय तो हमारे शारीरिक और मानसिक सुधार का एक अच्छा साधन है। उसमें बैठकर हम वाल्मीकि और व्यास की विचार-धारा में नहा सकते हैं। उसमें जाकर हम प्रेम और सेवा का प्रसाद पा सकते हैं। आप जानते हैं कि खूब खाने से ही कोई मोटा-तगड़ा नहीं होता। जो खाकर पचा सकता है वही पुष्ट होता है। पढ़ी हुई विद्या मनन करने से पचती है। जैसे पशु पगुरी करके खाना पचा लेता है, वैसे ही हम पुस्तक की शिक्षाओं का मनन करके अपने हृदय के रस में मिला लेते हैं। यदि हम ऐसा नहीं करते, तो फिर हम चाहे हजार पुस्तकालय चट कर जायँ, हम दीमक ही बने रहेंगे।

हमारे यहाँ पुस्तक पढ़नेवाले या ग्रन्थ सुननेवाले दो तरह के माने गये हैं। एक सूप के समान और दूसरा चलनी के समान। सूप ही श्रेष्ठ है; क्योंकि वह जो कुछ अपने अन्दर लेता है उसमें से बेकार चीजों को छाँटकर फेंक देता है और असल चीज रख लेता है। मगर चलनी तो बढ़िया पदार्थ बाहर निकाल देती है और नीरस वस्तु को रख लेती है। मतलब कि पुस्तकें पढ़नेवाले को हजार छेदों वाली चलनी न होकर गुण-ग्राही सूप ही होना चाहिए। ऐसा ही होने से हम पुस्तकालय का सच्चा स्वाद पा सकते।

किन्तु जो लोग पुस्तकालय के इस तरह के प्रेमी होंगे उन्हें पुस्तकालय की रक्षा पर भी ध्यान रखना होगा। कुछ लोग पुस्तकालय के शत्रु भी होते हैं, चूहे और दीमक से भी भयंकर हैं। पुस्तकें ले जाकर असावधानता से पढ़ते हैं, पन्ने मोड़ देते हैं, जिल्द तोड़

देते हैं, चित्र फाड़ लेते हैं, यहाँ तक कि पुस्तक भी भुला देते हैं। ऐसे महापुरुषों से सजग रहना पड़ेगा! जो पुस्तक का आदर नहीं करता वह पुस्तक पढ़ने का पात्र नहीं है। जो पुस्तक से तकिया का काम लेता है, वह पुस्तक का महत्त्व नहीं जानता। पुस्तक पूजा करने की चीज है। हमारे यहाँ पोथी की पूजा सनातन धर्म है। नवरात्रों में पुस्तकों की पूजा की प्रथा अब भी है।

पुस्तकालय की पुस्तकें पढ़नेवाले हर एक मनुष्य को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पुस्तकें नष्ट-भ्रष्ट न हों। अँगरेजों के पुस्तकालय में जाकर देखिए। सैकड़ों हाथों में गई हुई पुस्तक भी नई-की-नई दीख पड़ती है। अपने यहाँ का भी यही हाल था। एक ही 'सिद्धान्त-कौमुदी' पाँच पुश्त चलती थी; पर पोथी जैसी-की-तैसी बनी रहती थी। अब आज के विद्यार्थी या पाठक तो मानो पुस्तकों को दाँतों से नोच डालते हैं। पुस्तकालय को ऐसे जहरीले दाँतवालों से बचाना होगा। नहीं तो पुस्तकालय का दिवाला निकल जायगा। पुस्तकालय की रक्षा में सब लोगों को शुद्ध मन से तत्पर रहना चाहिए। जो पुस्तकें भुलवा दें या जो चन्दा न दें, उनसे निहोरा-विनती करके नई पुस्तकें खरीदवाने या चन्दे की रकम वसूल करने-कराने में सब लोगों को एकमत होकर लगना होगा। तभी तो पुस्तकालय खोलने का उद्देश्य सिद्ध होगा, नहीं तो साल में एक बार उत्सव करके गा-बजा लेने से कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता।

आपलोग यदि इसको स्थायी बनाना चाहते हैं तो इसकी रक्षा के लिए आपस में मिल-जुलकर कुछ ऐसे नियम बना लीजिए जिनसे इसकी उन्नति बराबर होती रहे। जैसे, इसके सभी सदस्य अपने मन में संकल्प कर लें कि जब-कभी परिवार में कोई उत्सव या भोज होगा तब उस अवसर के कुल खर्च में से सैकड़े एक रुपया या आठ आने या चार आने पुस्तकालय को भी दिया करेंगे।

किंतु, ऐसा तभी हो सकेगा जब पुस्तकालय भी अपने सहायकों और रक्षकों की सेवा में चित्त देगा। पुस्तकालय के सभापति और मन्त्री चाहें तो लोगों की सेवा अनेक प्रकार से कर सकते हैं। उनके लिए वे अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें मँगाकर उन्हें पढ़ने के लिए दें और उनकी रुचि के अनुकूल पुस्तकें चुनकर उन्हें अच्छी सलाह दें कि ऐसी ही पुस्तकें पढ़ने से लाभ होगा। मानस-रामायण और विनयपत्रिका की नई-नई टीकाएँ मँगाई जायँ। व्रजविलास, सुखसागर, विश्रामसागर, योगवाशिष्ठ आदि पुस्तकें देहात के साधारण लोगों को बहुत पसन्द हैं। इनके सिवा ऐसी पुस्तकें भी रखी जायँ जिनमें सस्ते घरेलू नुस्खे मिल सकें, जिनसे स्वास्थ्य-रक्षा के सरल नियम मालूम हो सकें। खेती-बारी की, गौओं के पालन-पोषण की, पशुओं की चिकित्सा की बातें बतानेवाली पुस्तकें तो अच्छी-से-अच्छी मँगाकर रखी जायँ। धार्मिक पुस्तकों पर तो सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। हिन्दी में अब ऐसी पुस्तकों की कोई कमी नहीं है। उन्हें देखते ही लोगों के मन में पढ़ने का चाव बढ़ेगा, मन में अपने देश के गौरव का भाव भी जमेगा।

आजकल की हवाई लड़ाई पर हम अचम्भा करते हैं; क्योंकि हमने श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के छिहत्तरवें अध्याय में द्वारका पर शाल्व की हवाई चढ़ाई का वर्णन नहीं

पढ़ा है; मेघनाद और घटोत्कच की आसुरी लड़ाई हमारे ध्यान से उतर गई है। हम अपने देश के आकाश में हवाई जहाज मँडराते देखकर या अखबारों में हवाई दौड़ की कहानी पढ़कर चकित रह जाते हैं; क्योंकि महर्षि कर्दम का विमान पर सुहाग रात मनाना और भगवान् राम का पुष्पक पर अयोध्या लौटना हमारे मन में से निकल गया है। मैं यह नहीं कहता कि अपने पुरखों के बड़प्पन पर फूलने के लिए ही हम पुस्तकें पढ़ें। मैं कह चुका हूँ कि अपनी वर्त्तमान दशा सुधारने के लिए भी हमें पुस्तकें पढ़कर अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। इसलिए पुस्तकालय चलानेवाले सज्जनों से निवेदन किया है कि आज की बिगड़ी बनानेवाली पुस्तकें मँगा कर लोगों को दीजिए, जिन्हें पढ़कर लोग समझें कि हमारी हीन दशा के क्या-क्या कारण हैं और हम किस प्रकार अपना पिछला गौरव प्राप्त कर सकते हैं।

इसके सिवा पुस्तकालय की ओर से इस बात की भी चेष्टा होनी चाहिए कि मुख्य-मुख्य पर्व-त्योहार मेल-मिलाप के साथ मनाये जायँ। व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से वसन्त-पंचमी को सरस्वती-पूजा, विजयादशमी को दुर्गा-पूजा और दीवाली को लक्ष्मी-पूजा की प्रथा चलाने से लोगों का कल्याण ही होगा—विद्या, बल और वैभव की वृद्धि ही होगी। होली और श्रावणी को शुद्ध रूप में मनाने से समाज का कितना उपकार होगा, यह तो एक बार परीक्षा कर देखने से ही पता लगेगा।

आपने अखबारों में एक पुस्तकालय की अपील पढ़ी होगी। हिन्दी के प्रसिद्ध महाकवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त के गाँव में, झाँसी जिले के चिरगाँव में, 'प्रताप' के प्रतापी सम्पादक स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी के नाम पर एक पुस्तकालय है। उसने पचीस हजार रुपये की अपील निकाली है। उस पुस्तकालय के चलानेवालों ने सोचा है कि इन रुपयों से व्यायाम के लिए अखाड़ों का प्रचार किया जाय और ग्राम-संगठन भी हो। आप भी इस तरह के कामों के लिए इस पुस्तकालय को केन्द्र बना सकते हैं। यदि आप करना चाहें तो बहुत-कुछ कर सकते हैं। काम की कमी नहीं, करनेवाले की कमी है।

पुस्तकालय के कार्यकर्त्ता यदि ग्राम-संगठन का बीड़ा उठा लें, ग्राम-सुधार का जिम्मा ले लें, तो गाँव के लोगों की भलाई का कोई भी काम बाकी न रह जायगा। अखाड़े खुल जायँगे, दंगल हुआ करेंगे, शरीर की सुन्दर बनावट के लिए इनाम बाँटे जायँ तो देह की गठन पर नौजवानों का ध्यान बना रहेगा। कुँओं की सफाई और मरम्मत पर निगाह रखी जाय तो शुद्ध जल मिलने से बीमारियाँ नहीं फैलेंगी। हैजा, प्लेग, चेचक आदि महामारियों से बचने के लिए जिन बातों की जानकारी जरूरी है, उन बातों की नोटिस गाँव-जवार में घुमाई जा सकती है। पशुओं के रोगों की दवाएँ भी पुस्तकों में से उतारकर गाँव-गाँव में भेजी जा सकती हैं। इसी तरह की अनेक बातें हैं। जैसे, बस्ती के बीच में जो फालतू परती जमीन या खंड़हर हो, जिससे गंदगी फैल रही है, उसमें फूल-पत्ती या साग-सब्जी उपजाने के लिए लोग उत्साहित किये जायँ। इस काम में सहायता देने योग्य बहुत-सी पुस्तकें हिन्दी में हैं।

पुस्तकें यह भी बता सकती हैं कि मकान कैसा बनाना चाहिए—ऐसा मकान, जिसमें हम सब ऋतुओं में स्वस्थ और सुखी रह सकते हैं। पुस्तकें आपको यह भी बतावेंगी कि पशुओं को कैसा चारा-पानी देने से वे नीरोग और पुष्ट रहेंगे, खेती के कीड़ों से फसलें कैसे बच सकेंगी, किस तरह अच्छी खाद बनाई और काम में लाई जा सकती है। किन्तु, हमलोग तो ऐसे संतोषी हैं कि जिस खेत में बीस मन अन्न पैदा होता है, उसमें तीस मन पैदा करने की चिन्ता नहीं करते—सोचते हैं कि काम चलता ही है, कौन खटराग पाले। विदेशों के किसान दिन-रात अखबारों और पुस्तकों में ढूँढते रहते हैं कि किस चीज की पैदावार बढ़ाने के लिए कौन-सा नया तरीका निकला है। हमें भी आलस्य छोड़कर उद्योग करना चाहिए जिससे हमारी धरती अधिक-से-अधिक उपजाऊ बन सके, हमारी गाय-भैंसें अधिक-से-अधिक दूध दे सकें, उनके दूध में अधिक-से-अधिक मक्खन निकल सके। हमलोग केवल अनाज की खेती में ही साल बिता देते हैं, विदेशों के किसान फलों की खेती करके भी अपनी आमदनी बढ़ाते हैं।

हमलोग तो धान और ईख के सिवा काफी तरकारियाँ भी नहीं उपजाते। तरह-तरह की साग भाजी खाने का शौक ही नहीं है। रुखे-सूखे पर ही संतोष करने की आदत पड़ गई है। पुस्तकों के प्रभाव से यह आदत छूट सकती है। पुस्तकों में ऐसे आसान तरीके मिलेंगे कि कम-से-कम एक बार तो आजमाइश करने की ओर हमारा झुकाव जरूर ही होगा। तात्पर्य यह कि हमारे जीवन को सुख और शान्ति से भरपूर कर देनेवाली जितनी बातें हैं, सब-की-सब पुस्तकों में मिल सकती हैं। इस तरह पुस्तकालय हमें घर-बैठे सब-कुछ दे सकता है। पर यदि हम लेना ही न चाहें, तो ईश्वर की दी हुई विभूति भी हम नहीं पा सकते।

देखिए, सूर्य का प्रकाश ईश्वर की दी हुई सबसे बड़ी विभूति है। उसमें सब रोगों के नष्ट करने की अद्भुत शक्ति है। सूर्यनमस्कार और सूर्य की उपासना से प्रत्यक्ष आरोग्य-लाभ होता है। किन्तु, फिर भी हमलोग रोगी रहना पसन्द करते हैं और सूर्य की महिमा नहीं समझते। खेद है कि इस युग में भी, जब भूमंडल के अनेक देश दिन-रात अपनी उन्नति में लगे हुए हैं तब, हमारे देश के लोग आलस्य और मोह की नींद में बेसुध पड़े हैं। बहुत ही कम लोगों को अपने शरीर की, अपने पशु-धन की, अपने देश की, अपने समाज की, अपने धर्म की; अपनी भाषा की और अपने साहित्य की चिन्ता है। दूसरे देशों की देखादेखी भी हमारे देशवासी कुछ करना-धरना नहीं चाहते। पुस्तकें पढ़ने के लिए उनसे कहिए, तो वे कहने लगेंगे कि पैसों का अभाव है। किन्तु मुकदमे लड़ने के लिए पैसों का अभाव नहीं है, बरात में फिजूलखर्ची के लिए पैसों की कमी नहीं है, केवल पुस्तकों के लिए ही पैसों का टोटा है। ऐसी दशा में हमारा उद्धार भगवान् भी नहीं कर सकते। भगवान् तो पक्के हिसाबी हैं। कौड़ी-कौड़ी का हिसाब जोड़ते हैं। 'जैसी करनी वैसी भरनी' उनका अटल नियम है। मगर वे किसी की एक पाई मजूरी भी बाकी नहीं रखते। उनके ऐसा खरा दाता कोई नहीं। हमारे काम का दाम कूतने में वे कोताही नहीं कर सकते। इसलिए, हमें तन-मन-धन से किसी

एक ही ऐसे अच्छे काम के साधने में लग जाना चाहिए जिससे बहुतेरे भलाई के काम निकल आवें। पुस्तकालय चलाना वैसा ही एक अच्छा काम है। 'एकहि साधे सब सधे'।

अब, पुस्तकालय चलानेवाले होनहार नवयुवकों से भी एक नम्र निवेदन है। वे अपने गाँव-जवार के बड़े-बूढ़ों और धनी-मानियों से पुस्तकालय के लिए सहायता माँगने जायँ तो कोमलता और मधुरता, प्रेम और शिष्टता से काम लें; लोगों के मन को पुस्तकालय की ओर खींचने की चेष्टा करें; लोगों के मन में अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने की सुरुचि और अनुराग उत्पन्न करें। 'तोता-मैना, का किस्सा' पढ़ने का युग लद गया। अब लोग प्रेमचन्द का 'गोदान' पढ़ें; ऐसी पुस्तकें पढ़ें जिनसे उनको देश की वर्त्तमान आवश्यकताएँ और समस्याएँ सूझ पड़ें—जिनसे जीवन को सुखी और स्वतंत्र बनाने के उपाय मालूम हों। इसके लिए नवयुवकों को एक हस्तलिखित मासिक पत्रिका निकालनी चाहिए। उसमें पुस्तकों और अखबारों से चुनी हुई उपयोगी बातें, सूचनाएँ और जानकारियाँ नोट की जायँ। गाँव-जवार के आदर्श पुरुषों के जीवन-चरित और अनुभव लिखे जायँ। आसपास के गवैयों, पहलवानों, गुणियों, कारीगरों और कलावन्तों के परिचय और पुराने दर्शनीय स्थानों के रोचक वर्णन भी रहें। देहाती कहानियों, कहावतों, मुहावरों और सुन्दर शब्दों का भी संग्रह किया जाय।

एक देहाती पुस्तकालय के लिए जितनी बातों का कहना बहुत ही जरूरी है, उतनी ही बातें कही गई हैं। अधिक बातें बढ़ाने से बड़ा लंफाड़ हो जायगा। यहाँ के नौजवानों का उत्साह बढ़ाना आपका धर्म है। वे आँखफोर हो गये हैं। वे देख रहे हैं कि दुनिया किस तेज चाल से आगे बढ़ती जा रही है। वे चाहते हैं कि हमारा देश भी उन्नति की घुड़दौड़ में पिछड़ा न रहे। आशा है कि आप सभी बड़े-बूढ़े लोग उनके सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखकर उन्हें सफलमनोरथ करेंगे। ईश्वर से मेरी भी यही प्रार्थना है कि यह 'ज्ञानप्रकाश-पुस्तकालय' चारों ओर ज्ञान का प्रकाश फैलाकर अपने नाम को सार्थक करने में समर्थ हो। एवमस्तु।

हिन्दी-साहित्य का अभ्युदय और उत्कर्ष*

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥

सहृदय सज्जनो और देवियो,

रामकृपा का ही यह प्रभाव है कि जिस पवित्र आसन पर बड़े-बड़े विद्वान बिठाये जा चुके हैं, उसपर मुझ-जैसे हिन्दी के अकिञ्चन किङ्कर को भी बैठने का सुअवसर दिया गया।

*अखिलभारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के बत्तीसवें महाधिवेशन (जयपुर, राजस्थान) की 'साहित्य-परिषद्' के सभापति का भाषण। आश्विन, संवत् २००१ विक्रमी; सन् १९४४ ई०।

और, यह भी रामकृपा का ही प्रताप है कि सौभाग्यवश आपकी कृपादृष्टि की कोर बिहार की ओर फिरी भी, तो उसने राह में पड़े रोड़े को ही देखा, अमूल्य रत्नों पर ध्यान ही न दिया। अस्तु, जो काम रामकृपा की प्रेरणा से ही हुआ है, उसमें सफलता मिलने की आशा भी रामकृपा पर ही अवलम्बित है।

इस मंच से अबतक हिन्दी-साहित्य की गतिविधि के परखने का ही काम होता आया है। पर, यह काम विचारकों और समीक्षकों का है। मैं न चिन्तक हूँ, न समालोचक। हिन्दी की पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं में जहाँ-कहीं कोई अनूठी पाँती पा जाता हूँ, मन-ही-मन गुनगुनाने लगता हूँ—मस्ती में झूमने लगता हूँ—उमंग और आह्लाद से थिरक उठता हूँ। ऐसे तरंगी हृदय का व्यक्ति साहित्य की अन्तर्गतियों का विवेचन या विश्लेषण कैसे कर सकता है? जो समीक्षक बनकर कभी साहित्य का अध्ययन नहीं करता, केवल अपनी रसानुभूति को तृप्त करके ही स्वाध्याय को चरितार्थ मानता है, उसे आपने उदारतावश साहित्य की नाप-जोख का बड़ा भारी दायित्व सौंप दिया! 'साक-बनिक मनि-गन-गुन जैसे'!

आपकी इस उदारता के लिए कृतज्ञ हृदय से धन्यवाद देते हुए मैं आरम्भ में ही आपसे निवेदन कर देना चाहता हूँ कि मेरे पास साहित्य की कोई कसौटी नहीं है। कसौटी तो उसके पास होती है, जो बुद्धि-विवेक-सम्पन्न होता है। पर मैं न विवेकी हूँ, न बुद्धिजीवी। मैं तो शुद्ध श्रमजीवी या कोरा मसिजीवी हूँ। इसलिए आरम्भ से ही छानबीन से उदासीन रहकर रचनात्मक कार्यों की ओर मेरी प्रवृत्ति रही है। यद्यपि विषम परिस्थितियों ने कोई ठोस रचनात्मक कार्य करने न दिया, तथापि इस भारतीय महासम्मेलन से ही कुछ साहित्यिक संकेत और प्रेरणाएँ पाकर अपनी क्षुद्र शक्ति के अनुसार मैं अपने ही प्रान्त में कुछ खोज-ढूँढ़ करता रहता हूँ।

इस सम्मेलन के गत इकतीसवें महाधिवेशन के अध्यक्ष पूज्य पण्डित माखनलालजी चतुर्वेदी ने अपने कवित्वपूर्ण भाषण में जो छब्बीस योजनाएँ हिन्दी-संसार के सम्मुख उपस्थित की थीं, उन्हीं में से कुछ को कार्यान्वित करने के प्रयत्न में लगा हुआ था, और तबतक पूज्य पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी तथा विद्वद्वर श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल की योजनाएँ भी उत्तेजना एवं स्फूर्त्ति देने पहुँच गईं। मैं इन्हीं के उजाले में कुछ इधर-उधर टटोल ही रहा था कि आपका आदरणीय आदेश भी जा पहुँचा। मैं आपके निर्णय का उद्देश्य समझ ही न सका। भला जिस उच्च मंच से आप साहित्य और कला की पाण्डित्यपूर्ण परिभाषा तथा विश्लेषणात्मक व्याख्या सुन चुके हैं, उससे क्या अब आप चारण के गीत सुनना चाहते हैं? जान पड़ता है, रसिकशिरोमणि महाकवि बिहारीलाल की कीर्त्ति-कौमुदी से जिसका दिङ्मण्डल उद्भासित है, अनुप्रास के अट्टहास से साहित्यसौध को मुखरित करनेवाले 'पद्माकर' की चतुरंगणी शब्दसेना के जयघोष से जिसका कोना-कोना निनादित है, तथा अनेक साहित्य-संरक्षक नरेन्द्रों के यशश्चन्दन से जहाँ की दिगङ्गनाओं के अंग चर्चित एवं सुरभित हैं, उस राजस्थानी राजधानी में संभवतः एक साहित्यिक वैतालिक की ही आवश्यकता अनुभूत हुई। पर क्या यह कभी संभव है कि साहित्य-

सागर के अन्तस्तल में पैठकर निकाले हुए अनमोल मोतियों से आपके जो कान अलंकृत हैं, वे इस वन्दीजन की विरुदावली से तृप्त होंगे ? मुझे एसी आशा नहीं; फिर भी प्रयत्न कर देखूँ।

हमारा हिन्दी-साहित्य यद्यपि इस जाग्रत युग में भी अनेक अभावों से युक्त है, तथापि उसके विशाल गौरव हमें प्रतिक्षण अनुभव होता है। उसके सेवकों, सहायकों और समर्थकों की टोली देखकर यह आशा भी बँधती है कि उसके अभावों का अन्त अनतिदूर भविष्य में ही होनेवाला है। जब साहित्य-मन्दिर को अपनी दिव्य ज्योति से जगमगानेवाले पुजारियों में हम शिरसावन्द्य महापुरुषों और श्रद्धेय वयोवृद्ध विद्वानों को देखते हैं, तब स्वभावतः हमारा हृदय हर्षोल्लास से उत्फुल्ल हो उठता है। महात्मा गांधी, महामना मालवीयजी, त्यागमूर्त्ति टण्डनजी, रायबहादुर श्यामसुन्दरदासजी, डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी, डाक्टर भगवानदासजी, माननीय सम्पूर्णानन्दजी, शिक्षणशास्त्री पंडित रामनारायण मिश्रजी, काका कालेलकर, स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, डाक्टर सुनीतिकुमार, महामहोपाध्याय-ओझाजी, महामहोपाध्याय 'भानु'जी, महामहोपाध्याय गिरिधर शर्माजी चतुर्वेदी, महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्मा, भारतेन्दु-सखा पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र, पंडित अम्बिका प्रसादजी, वाजपेयी, बाबू हरिकृष्णजी जौहर, बाबू गोपालरामजी गहमरी, श्रीनाथूरामजी प्रेमी, सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार, लाला सन्तरामजी, आदि हिन्दीमाता के सपूतों की विद्यमानता हमारे सौभाग्य की ही सूचना देती है। इनकी तपस्या की सिद्धि ही हमारी आज की पूँजी है।

जब स्वदेश, समाज और साहित्य के कर्णधार-स्वरूप अपने प्रथितयशा पत्रकारों की ओर हम दृष्टिपात करते हैं तब हमारा मस्तक और भी गर्वोन्नत हो उठता है। पूज्य पराड़करजी, तपोधन गर्देजी, श्रद्धेय पंडित माखनलालजी और पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी, तप्तकाञ्चनप्रभ पंडित हरिभाऊ उपाध्याय, उद्योगवीर बाबू मूलचन्दजी अग्रवाल, तेजस्वी इन्द्रजी और पालीवालजी, कर्मयोगी पंडित सुन्दरलालजी, एकान्त सरस्वती-सेवक पंडित रूपनारायणजी पाण्डेय, मृगयामर्मज्ञ पंडित श्रीरामशर्मा, बहुश्रुत विद्वान् डाक्टर हेमचन्द्र जोशी, विविधकलाविचक्षण श्रीदुलारेलालजी, सम्पादकाचार्य द्विवेदीजी के परम स्नेहभाजन पंडित देवीदत्तजी शुक्ल, व्यंग्यविनोद-विशारद पंडित हरिशंकर शर्मा, ज्यौतिषाचार्य पंडित सूर्यनारायण व्यास, राष्ट्रभाषाभक्त पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय, उद्भट पराक्रमी पंडित मातासेवक पाठक, राजस्थान-रत्न पंडित झाबरमल्ल शर्मा, 'बोल-शिव-जयम्' के उद्घोषक पंडित रमाशंकर अवस्थी, ललकार-भरी लेखनी के धनी निर्भीकोदात्त उग्रजी, मौनभाव से पत्रकार-कला की पूजा में सलग्न पंडित नन्दकिशोर तिवारी और प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, अपनी धुन के पक्के पंडित रामशंकर त्रिपाठी और श्रीआगरकरजी, नवोत्साह के उद्रेक से उद्दीप्त श्रीसत्यदेव विद्यालंकार और श्रीकान्तठाकुर विद्यालंकार नई लहर और नई उमंग के साथी श्रीगंगाधर अधिकारी, पंजाब में हिन्दी का झंडा ऊँचा रखनेवाले श्रीखुशहालचन्दजी खुरसन्द, बिहार में संवाद-पत्र-प्रकाशन की नींव जमानेवाले श्री देवव्रतशास्त्री और श्रीव्रजशंकर वर्मा, बाल-साहित्य के उन्नायक रायसाहब रामलोचनशरणजी

किशोर-साहित्य के उद्भावक पंडित रामदहिन मिश्रजी, युवक-साहित्य के प्रवर्त्तक श्री बेनीपुरीजी, महिला-साहित्य के संवर्द्धक श्रीरामरखसिंहजी सहगल, भक्ति-साहित्य के अनन्य अनुरागी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, आध्यात्मिक साहित्य के उत्प्रेरक श्रीनागरजी, सब-के-सब, हमारे पत्रकार-जगत् के सुविस्तृत नभोमण्डल में देदीप्यमान नक्षत्र-मण्डल की भाँति शोभा पा रहे हैं। इनमें कई महानुभाव कई अनिवार्य कारणों से सम्प्रति संन्यास ले चुके हैं या कर्मक्षेत्र से दूर हैं; पर आधुनिक पत्रकार-कला के विकास में उनकी सेवाएँ निस्सन्देह चिरस्मरणीय हैं।

किन्तु, आश्चर्य है कि ऐसे यशस्वी एवं मनस्वी पत्रकारों के रहते हुए भी अनेक क्षेत्रों में हिन्दी का पक्ष अभी यथेष्ट सबल नहीं है। हम तो यही आशा रखते हैं कि देश की राजनीतिक समस्याओं के साथ-साथ ये हमारी साहित्यिक समस्याएँ सुलझाने में भी दत्तचित्त रहा करेंगे। पर खेद है कि हमारी यह आशा पर्याप्त रूप से पूरी नहीं हो पाती। भाषा की रूप-रेखा सँवारने-सुधारने में, शब्दों के शुद्ध रूप स्थिर करने में, शब्द-शुद्धि के लिए अक्षरों के उपयुक्त प्रयोग में हिन्दी-पत्रकारों का सामूहिक सहयोग बड़ा लाभदायक हो सकता है। भाषा और लिपि की समस्याएँ इनका मुँह जोह रही हैं। ये चाहें तो साहित्य-सम्मेलन, नागरी-प्रचारणी सभा और लेखकों तथा जनता को सदा सजग रख सकते हैं। संगठन का अमोघ अस्त्र पाकर भी यदि ये बिखरी शक्तियों को समेट न सके तो दूसरा कौन है जो हिन्दी को सनाथ करेगा? अभी हाल में गोरखपुर के प्रोफेसर राजनाथ पाण्डेय, एम्० ए० ने तृतीय युक्तप्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन (बस्ती) की साहित्य-परिषद् में 'भाषा-संस्कार' नामक जो विचारपूर्ण लेख पढ़ा था, उसका सदुपयोग जैसा पत्रकारों द्वारा होना चाहिए था वैसा नहीं हुआ, और ऐसे उदाहरणों की कोई कमी नहीं है!

चित्रपट और रेडियो की समस्या भी हिन्दी-पत्रकारों के लिए कुछ बीहड़ नहीं है। इनकी सत्ता जनता पर स्थापित हो चुकी है। इनकी सम्मिलित शक्ति जनता की मनोवृत्ति पलट सकती है। यद्यपि विज्ञापनों का मोह बड़ा भारी प्रलोभन है तथापि पत्र की लोक-हितकर नीति या सिद्धान्त पर उसका प्रभाव पड़ना न्यायसंगत नहीं। युक्तप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने रेडियो की भाषानीति पर जो माननीय श्रीरविशंकर शुक्लजी की अँगरेजी-पुस्तक प्रकाशित की है (जिसका हिन्दी-संस्करण भी निकलना जरूरी है), वह अत्यन्त प्रशंसनीय प्रयत्न है और उसके आधार पर हमारे पत्रकार इस विषय को बहुत आगे बढ़ा सकते हैं। काशी-नागरी प्रचारिणी सभा के गत स्वर्ण-जयन्ती-महोत्सव में इस विषय का एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था, जिसे पत्रकार यदि ले उड़ते तो अबतक 'सभा' की बहुत-कुछ अभीष्ट-सिद्धि हुई होती। अकेली 'सभा' ही कितने कामों का बोझ ढो सकती है? मुजफ्फरपुर के 'सुहृद्-संघ' के सजीव प्रधानमंत्री श्रीनीतीश्वर प्रसाद सिंह ने 'आर्यावर्त्त'-सम्पादक 'आजाद' जी और 'योगी'-सम्पादक व्रजशंकरजी के सहयोग से इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किया है; किन्तु यह काम किसी एक के बूते का नहीं। इसके लिए तो वैसा ही व्यापक हाहाकार उठना चाहिए जैसा दिगन्तव्यापी हाहाकार व्योमकेश की जटा में गंगावतरण के समय सुन पड़ा था। हमें उस समय के लिए भी तैयार रहना

चाहिए जब अपनी भाषा की प्रतिष्ठा और संस्कृति की रक्षा के लिए हमें सिनेमा और रेडियो से पूर्ण असहयोग करना पड़ेगा। वर्त्तमान परिस्थिति के पर्यवेक्षण से ऐसा अनुमान होता है कि उस समय को निमंत्रण देते समय हमारी कड़ी अग्निपरीक्षा होगी।

ऐसी ही अनेक समस्याएँ हैं जिनका हल निकालने के लिए हिन्दी-पत्रकारों की संघ-शक्ति अपेक्षित है। साहित्य-संसार की इन गुत्थियों के सुलझने में तभी तक विलम्ब हो हो रहा है जबतक हमारे हिन्दी-पत्रकार इस दिशा में अपनी तत्परता नहीं दिखाते। आजकल बहुत-से निरवलम्ब साहित्य-सेवियों और उनके असहाय परिवार की सहायता की समस्या बड़ी विषम होती जा रही है। इसपर हमारे पत्रकार यदि उचित ध्यान दें तो यह अधिक दिन जटिल नहीं रह पायगी। सहानुभूति के छूछे शब्दों से हिन्दी-माता की छाती का यह घाव भरने का नहीं। इस समय भी कई साहित्यसेवी बड़े संकट में हैं। हमारे कितने ही विपद्ग्रस्त बन्धु अपने अनाथ परिवार को अश्रुगंगा में मँझधार छोड़ चुपचाप चले गये और बहुतेरे अब भी संघर्ष की चक्की में पिस रहे हैं। यदि हमारे पत्रकार उनकी सुध न लेंगे तो न कोई पूँजीपति पसीजेगा और न कोई संस्था ही द्रवेगी। मेरे प्रान्त के पुराने साप्ताहिक 'तिरहुत-समाचार' (मुजफ्फरपुर) ने अपनी सीमित शक्ति के अनुसार केवल पचीस रुपये की छोटी पूँजी से एक सहायता-कोष खोलकर अपने पाठकों और हिन्दी-प्रेमियों से अपील की है। यदि सभी पत्र इस तरह के शुभ उद्योग का श्रीगणेश करें तो बूँद-बूँद से तालाब भर सकता है। किन्तु सर्वोत्तम यही होगा कि सभी पत्र अजस्र स्रोत बनकर 'सम्मेलन' की निधि को ही भरपूर करें जिससे इस गुरुतर कार्य का सुव्यवस्थित संचालन हो सके।

हमारे स्वर्गीय साहित्य-सेवियों की स्मृति-रक्षा की समस्या तो अतिशय महत्त्व-पूर्ण है। यहाँ प्रसंगवश बड़े क्लेश के साथ कहना पड़ता है कि हमारे कितने ही साहित्यसेवियों के स्वर्गीय होने पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में तो समवेदना के दो शब्द भी नहीं निकलते। यदि अतिशयोक्ति न समझी जाय, तो यहाँ तक कहने का साहस कर सकता हूँ कि पत्र के किसी फालतू कोने में दो-चार पंक्तियों का संक्षिप्त समाचार प्रकाशित करके ही कर्त्तव्य की इतिश्री कर दी जाती है! शरच्चन्द्र और रवीन्द्र के निधन के दूसरे ही दिन भोर में हमने दैनिक 'आनन्द-बाजार-पत्रिका' और 'वसुमती' के बीस-बीस सुदीर्घ पृष्ठों को नखशिख शोकनिमग्न देखा; पर अपने 'प्रेमचन्द' और 'प्रसाद' के लिए हमें अनेक पत्रों में अग्रलेख तक पढ़ने को न मिले! क्या हमारी छाती को छलनी कर जानेवाले ये महारथी केवल दस पंक्तियों के ही अधिकारी थे? आप भलीभाँति जानते हैं कि हमारे वर्चस्वी सम्पादक-प्रवर श्रद्धास्पद विद्यार्थीजी के लिए शुरू में तो बड़े जोर-शोर से हूह उठी; पर जो सहसा पट पड़ी तो फिर कभी किसी के कानों पर जूँ भी न रेंगी। पंडित बनारसीदासजी और पं० श्रीराम शर्मा ने कई बार हिन्दी-जगत् के हृदय की भस्मराशि कुरेदने की कोशिश की, पर उसमें से अग्नि का एक कण भी न जागा। हमारे गणेशजी की ओजस्विनी लेखनी ने 'प्रताप' के रूप में जो महाभारत तैयार किया, उसमें देशसेवा के निमित्त जूझनेवाले असंख्य युवकों की कारुणिक कहानियाँ हैं; पर उन

अभिमन्युओं के स्रष्टा और संरक्षक पार्थ का स्मृति-तीर्थ हम आजतक न बना सके। उस बलिदानी वीर ने अपने रक्त की एक-एक बूँद से सींचकर अपनी मातृभूमि में जो जागृति की फसल उगाई और लहलहाई थी उसी की कटनी करके आज हमारे बड़े-बड़े धुरन्धर नेता कीर्त्ति के खलिहान लगा रहे हैं। पर, हमारे पत्रकार यह सब जान-बूझकर भी उस हुतात्मा की स्मृति-रक्षा के लिए संगठित प्रयत्न करना कदाचित् असामयिक समझते हैं।

इसी प्रकार हम बहुत-सी दिवंगत आत्माओं और जीवित विभूतियों को भी भूले बैठे हैं। श्रद्धेय पंडित कृष्णकान्त मालवीय के संग्रहणीय सम्पादकीय लेखों से हम दीमकों को दावत दे रहे हैं! बाबू महावीरप्रसाद गहमरी का स्वयं अखबार छापना और स्वयं बाजार में बेचना हमारे ध्यान से उतर गया है! 'स्वदेश'-संवाद्व्रती पंडित दशरथप्रसाद द्विवेदी के पत्र-सम्पादन-कौशल में हमारे लिए कोई आकर्षण नहीं! गर्देजी की साधना हमारे लिए शायद नीरस हो गई है! आखिर और कहा क्या जाय? हमारी उदासीनता की चिकित्सा सहज नहीं है; स्वर्गीय हेमचन्द्र मोदी की स्मृति-रक्षा के लिए श्रीयशपालजी ने जैसा श्लाघ्य प्रयत्न किया, अथवा 'माधुरी'-सम्पादक ने 'पढ़ीस'-स्मृति-अंक निकालकर जैसा आदर्श उपस्थित किया, वैसा ही कुछ अगर सबके लिए हुआ करता, तो स्वर्गस्थ साहित्यिकों के ऋणभार से हम बहुत-कुछ मुक्त हो जाते।

हमारे हिन्दी-पत्रकारों की शक्ति अपरिमित है। यह युग उनका लोहा मान गया है। वे जुट जायँ तो हिमालय हिला दें। मेरी यही प्रार्थना है कि वे अपनी शक्ति पहचानें और साहित्यिक विषयों में भी उतनी ही निष्ठा दिखावें जितनी राजनीतिक विषयों में दिखाते हैं। वे कृपया उदाराशयता के साथ यह इत्तला दर्ज कर लें कि उनके पत्रों में सम्मेलन के महाधिवेशनों की पूरी रिपोर्ट भी नहीं छपती!

पत्रकार-कला हिन्दी में अनुदिन उन्नतिशील दीख पड़ती है, यह बात बहुत रोचक प्रतीत होती है; परन्तु यह देख बड़ा विस्मय होता है कि अभी तक वह मुट्ठी-भर लेखकों को भी सर्वथा स्वावलम्बी नहीं बना सकी है। शायद ऐसे लेखकों की गणना में अनामिका सार्थवती हो जाय तो कोई अचम्भा नहीं, जो केवल पत्र-पत्रिकाओं का ही आश्रय-ग्रहण करके निश्चिन्ततापूर्वक अपने योगक्षेम का निर्वाह कर रहे हों।

जबतक लेखकों को शान्तिपूर्वक जीवन-यापन का सुयोग न मिलेगा तबतक साहित्य का अभ्युदय असंभव है। पत्रकारों और प्रकाशकों से उन्हें जैसा सहारा मिलना चाहिए, नहीं मिल रहा। यदि हमारे लेखक इस विषय के अपने सच्चे अनुभव लिपिबद्ध कर दें तो बहुतों को न्यायालय अथवा हिमालय की शरण लेनी पड़ेगी। हमारे सुधी समालोचक उनके मस्तिष्क की उपज को तो कसौटी पर कसते हैं; पर उनकी वास्तविक स्थिति की कोई धुँधली रेखा भी अपनी अनुभूति की कसौटी पर नहीं पड़ने देते। हम काफी खाद्य उपजाने का आन्दोलन खड़ा करने में तो बहादुर हैं; किंतु पशुधन के भीषण ह्रास पर हम फूटी निगाह भी नहीं डालते। क्या हम चाहते हैं कि नखों से जमीन खोदकर उपज चौगुनी बढ़ाई जाय? यह त्रिकाल में भी नहीं होने का। यहाँ एक-आध साधारण उदाहरण दे देना अप्रासंगिक न होगा। हमलोग पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी की साहित्य-सेवा से अच्छी तरह

परिचित हैं। यदि उनकी लेखनी जीविका के जंजाल में न फँसी होती तो उनकी प्रतिभा का जौहर और भी अधिक खुलता। मध्यप्रदेश की उर्वर भूमि का वह ललित पौधा श्रीरामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल', जो हिन्दी-माता के अंचल का एक सुरभित सुकुमार सुमन है और जिसे देख-देख हिन्दीमाता का दृगंचल आनन्दाश्रु-सिक्त होता होगा, क्या पर्याप्त पोषण और प्रोत्साहन पाकर साहित्योद्यान की और अधिक शोभा न बढ़ाता! अजी, ऐसे-ऐसे कितने ही फूल विकट परिस्थितियों की लू-लपट में झुलसकर विना खिले ही मुरझा गये! यदि हम उनके विकास में सहायक होते तो मातृ-मन्दिर की पूजा कितनी सुहावनी होती, यह सहज ही अनुभवगम्य है।

किन्तु, ऐसी दशा में अपने लेखक-बन्धुओं से भी मैं कहूँगा कि वे हिन्दी-माता की आराधना के लिए सच्ची साधना का अभ्यास करें। संतोष का संबल लेकर मातृ-मन्दिर के मार्ग पर अग्रसर होते रहने के निमित्त कृतसंकल्प हो जायँ। अपनी कामनाएँ और अपने स्त्री-बच्चों की आवश्यकताएँ मातृचरणों में अर्पित करके ही अपने को निहाल समझें। कंचन की माया की छाया वे अपनी आँखों में न पड़ने दें। प्रायः इस युग के लिए तो यह एक कल्पनातीत बात होगी कि वे लँगोटी बाँधकर नगर की हलचल से दूर कहीं 'अन्नपूर्णा के मन्दिर' में कुशासन पर आसीन हो साहित्य-साधना-लीन हों; पर इसकी आजमाइश की गुंजाइश इस युग में भी हो सकती है, यह कल्पना के परे नहीं है। हमारे जो लेखक-बन्धु नगर की माया-मरीचिका से मोहान्ध नहीं हुए हैं, उनके लिए हमारे असंख्य गाँव पलकों के पाँवड़े बिछाये हुए हैं। यदि उन्हें प्रकृति की गोद पसंद हो, रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वास हो, अपने चरित्र में पूरी प्रतीति हो, तो वे दस-बीस गाँवों का मंडल बनाकर किसी उपयुक्त केन्द्र-स्थल में साहित्य-कुटीर रच सकते हैं। वहाँ बस धूनी रमाने भर की देर है, 'सूर' और 'तुलसी' के प्रताप से जन-मन जीतने में देर न लगेगी। वहाँ समय की बचत और स्वास्थ्य की वृद्धि होगी, दुर्व्यसनों से पिण्ड छूटेगा और चिन्तन की धारा सदा स्वच्छ बनी रहेगी। स्वदेश के मौलिक रूप की बाँकी झाँकी वहीं मिल सकती है। वहाँ के विशुद्ध वायुमंडल में जो साहित्य-सर्जन होगा, उससे यश-अर्जन भी कुछ कम न होगा। इसी प्रकार वे 'सम्मेलन' के सन्देश को भी देश के अन्तस्तल तक पहुँचा सकते हैं।

इस युग में लेखकों और कवियों से यह कहना कि भाषा और भाव की शुद्धता, सुन्दरता और पवित्रता से ही साहित्य की मर्यादा बढ़ती है, बड़ी भारी धृष्टता है। तो भी कर्त्तव्य-विवश हो कहना ही पड़ता है; क्योंकि उनका ध्यान जैसा चाहिए, वैसा इधर नहीं है। यदि उनके सामने महर्षि पतंजलि का यह वाक्य कह दिया जाय कि 'एकः शब्दः सकृदुच्चरितः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति' तो वे हँसकर अप्रगतिशीलता का आरोप करने लगेंगे। किन्तु, उन्हें स्मरण रखना होगा कि इसी एक वाक्य में उनकी सारी सफलता निहित है। शब्दों के सम्यक् ज्ञान और सुन्दर प्रयोग में ही उनकी कला की सिद्धि है। 'सम्यक् ज्ञान' और 'सुन्दर प्रयोग' का आशय जितना ही गंभीर है, उतना ही विस्तृत भी। 'लोकहिताय' अथवा 'लोकरंजनाय'—प्रायः दो ही उद्देश्यों से वे कुछ लिखते होंगे।

इनमें किसी की पूर्त्ति मनमाने ढंग की रचना से नहीं हो सकती। अभी कुछ ही दिन हुए कि हिन्दी के चिन्तनशील लेखक और विद्वान् आलोचक प्रोफेसर प्रभाकर माचवे ने आधुनिक गद्य-कवियों को बड़ी मिठास के साथ कुछ कोमल चेतावनियाँ दी थीं; पर यदि उन्हें अन्य होनहार गद्यकार और पद्यकार भी हृदयङ्गम कर लेते, तो हिन्दी का बड़ा उपकार होता।

साहित्य-सरिता में जो उद्बुद्ध युग की अनियंत्रित भावनाओं की बाढ़ दिन-दिन उमड़ती जा रही है, उसके दुर्द्धर्ष वेग को रोकना या बाँधना सहसा संभव नहीं, तथापि बाढ़ के पानी को स्वास्थ्योपयोगी बनाने के लिए 'निर्मली' के प्रयोग द्वारा उसका परिष्कार कर लेना दुस्साध्य नहीं है। तात्पर्य यह कि जो कुछ भी प्रकाशित होकर जनता के सामने आवे, विधिवत् परिमार्जित होकर ही आवे। स्वस्थ भाषा और स्वस्थ विचार से ही स्वस्थ साहित्य का निर्माण हो सकता है। स्वच्छता से परसा हुआ सत्तू भी रुचिकर होता है; किन्तु, मलिनतापूर्ण छप्पन प्रकार नहीं। आजकल के नये शौकीन इस बात पर उचित ध्यान नहीं देते। पुस्तक की बाहरी सजावट में भी सुरुचि और सादगी का खयाल न रखकर प्रायः उद्दीपन-सामग्री का ही उपयोग करते हैं। किन्तु जब हम आकर्षक बहिरंग पर लट्टू होकर अन्तरंग का निरीक्षण करने लगते हैं तब बड़ी ग्लानी और निराशा होती है।

मेरी यह निश्चित धारणा है—भले ही यह भ्रान्त एवं उपहासास्पद समझी जाय—कि सुसम्पादित ग्रन्थों और पत्रों से ही साहित्य की श्रीवृद्धि हो सकती है। आजकल अधिकांश पुस्तकें संशोधित-सम्पादित नहीं होतीं। लेखक की फटी झोली से प्रकाशक की रंगीन मेज पर—बस दो ही छलाँग में बाजार की हवा खाने लगती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी-साहित्य का वैभव और प्रभाव दिन-दिन बढ़ रहा है; परन्तु उसका भाण्डार जिन विपुल वस्तुओं के संचय से सजाया या सम्पन्न किया जा रहा है, उनमें काँच के चमकीले टुकड़े कम नहीं हैं। निश्चय ही, 'लालों की नहीं बोरियाँ' यथार्थ उक्ति है, फिर भी, सजावट की सुन्दरता बढ़ाने के लिए काँच के टुकड़ों की भी आकृति सुडौल और सुहावनी होनी चाहिए।

हमें पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं की संख्या-वृद्धि पर न इतराना चाहिए, और न इस गर्व में फूलना चाहिए कि हमारी हिन्दी में हर साल अन्य भाषाओं से कहीं अधिक पुस्तकें और पत्रिकाएँ निकलती हैं। पुस्तकों और पत्रों के संख्या-बाहुल्य से साहित्य की अभिवृद्धि का अनुमान तो होता है; पर हमें देखना यह चाहिए कि भाषा और भाव की दृष्टि से वे कहाँ तक लोकोपयोगी हैं। प्रकाशन का केवल संख्या-बल ही साहित्य को शक्तिशाली नहीं बना सकता। हम भारतीयों का संख्या-बल तो भूमण्डल में अद्वितीय है; पर हमारी शक्ति से संसार खूब परिचित है!

इन दिनों बहुत-सी रचनाएँ तो ऐसी देखने में आती हैं, जिनके विषय में जीभ हिलाना भी बड़ा भयावह जान पड़ता है। उन्हें पढ़ने से मालूम होता है कि केवल अर्थ की क्लिष्टता पर ही विशेष ध्यान दिया गया है। कुछ लोग देखादेखी गूढ़ार्थवादी बनने का

स्वांग रच रहे हैं। हमारे गौरवालंकार 'प्रसाद', पन्त, निराला, महादेवी, रामकुमार, मिलिन्द, दिनकर, प्रभात, बच्चन, सियारामशरण, उदयशंकर आदि में भले ही कहीं-कहीं दार्शनिक पहेलियाँ मिल जाती हों; पर थोड़ी देर ठिठक कर जब हम उनके अभ्यन्तर में पैठने का प्रयत्न करते हैं तब देखते हैं कि नारिकेल-फल के स्फटिक-स्वच्छ जल के समान विमल-शीतल रस का प्याला छलक रहा है। अगर नई पीढ़ी अपनी भावाभिव्यंजना की विकलता नहीं सँभाल सकती, तो कोई चिन्ता नहीं, खुल खेले साहित्य-प्राङ्गण में; मगर सहसा कबीरपंथी न बने—उठती जवानी की उमंगों का क्रीड़ा-कन्दुक न बने। आरम्भ में तो भाषा की रमणीयता, भाव की बोधगम्यता और अभिव्यक्ति की प्रांजलता पर ही विशेष ध्यान रहना चाहिए। इसके लिए हमारे भुवन-मन-मोहन सोहनलालजी एक उत्कृष्ट निदर्शन हैं। 'नवीन' और 'हितैषी', 'द्विज' और 'मनोरंजन', 'नेपाली' और सुभद्राकुमारी भी इस क्षेत्र में अनुकरणीय आदर्श हैं। इनमें भाषा-शैली के तीनों 'गुण' सुलभ हैं। इनकी भावाभिव्यक्ति में जितनी सरलता है, उतनी ही सरसता भी।

आजकल की गद्य-पद्य-रचनाओं में भावाभिव्यंजन का जो विलक्षण ढंग दीख पड़ता है, उसपर कुछ कहने से कोई लाभ नहीं। हाँ, ऐसे अवसर पर पूज्य आचार्य द्विवेदीजी का स्मरण हो आता है, जो साहित्य की सर्वोपयोगिता के खयाल से निरंकुशों पर कशाघात करने में कभी कुण्ठित न होते थे। सचमुच उनके न रहने से हिन्दी अनाथ हो गई! उसकी पूजा-विधि में कोई नियमितता अथवा सुव्यवस्था नहीं रह गई। आज ऐसा कोई प्रभुत्वशाली सम्पादक नहीं नजर आता जो भाषा की वेशभूषा और भाव की हृदयग्राहिता पर किसी प्रकार का नियंत्रण रख सके। यह काम तो 'सरस्वती' और 'सम्मेलन पत्रिका' के अपनाने योग्य है। 'माधुरी' और 'सुधा' में भाषा-भाव-सम्बन्धी उच्छृङ्खलता पर कुछ अधिकारी विद्वानों के लेख छपे थे; पर उतने से ही काम न सरेगा, इस विषय में निरन्तर जागरूकता की जरूरत है। आदर्श समालोचक श्री गुलाबरायजी की देखरेख में 'साहित्य-सन्देश' पत्रिका जिस प्रकार समालोचना-क्षेत्र को उर्वर बना रही है, उसी प्रकार इस तरफ भी उसे आँख रखनी चाहिए। मासिक और साप्ताहिक पत्र ही सुचारु रूप से यह काम कर सकते हैं। श्री निर्मलजी का 'देशदूत' द्विवेदीजी का यह प्रिय कार्य अपने हाथ में ले ले और 'भारत' के सहयोग से 'सम्मेलन' के मुख्य गढ़ में ही इस आन्दोलन का सूत्रपात करे, तो बहुत प्रभाव पड़ेगा। ठाकुर श्रीनाथ सिंह जी निर्द्वन्द्व मनचले यारों की धर-पकड़ मजे से कर सकते हैं। पूरबी छोर पर 'विशाल-भारत', 'विश्वमित्र' और 'जागृति' देखभाल करें। पच्छिमी छोर का भार 'वेंकटेश्वर', 'लोकयुद्ध', दैनिक 'हिन्दुस्थान' और साप्ताहिक 'विक्रम' पर रह जाय। इस काम में 'विक्रम' के उग्र पराक्रम का ज्यादा भरोसा है। मध्यप्रान्त और बरार के सजग प्रहरी 'कर्मवीर' की चौकसी पर भी कम भरोसा नहीं है। पंजाब में 'दीपक' का उजाला तो रहेगा ही, पंजाब-प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन का भी सहयोग होना चाहिए। देशी राज्यों में 'जयाजी-प्रताप', 'प्रकाश', मासिक 'वीणा' तथा 'विक्रम' सावधान रहें। मध्यभारत में 'मधुकर'-सम्पादक चतुर्वेदीजी तो चिर-चैतन्य ही हैं। उनके हाथ में तो सबकी नकेल रह सकती है। युक्तप्रान्त में

काशी के मासिक 'हंस' और साप्ताहिक 'आज' तथा 'संसार' विशेष सफलता से यह काम कर सकते हैं। बिहार में पं० हंसकुमार तिवारी की 'ऊषा' इस काम का बीड़ा उठा चुकी है। दक्षिणभारत का जिम्मा वहाँ की 'हिन्दी-प्रचार-सभा' ले लेगी और वहाँ की आवश्यकता के अनुसार 'हिन्दी-प्रचारक' काम सँभालेगा। इस प्रकार सुसंघटित प्रयत्न करने पर ही यह काम हो सकेगा। यदि यह काम लोगों को प्रहसन न प्रतीत हुआ, तो इसका परिणाम निस्संशय हितकर होगा।

जिस भाषा को एक-से-एक सूक्ष्मदर्शी और मर्मतलस्पर्शी समीक्षक प्राप्त हैं, उसका सुधारात्मक आन्दोलन निश्चय ही सफल होगा। प्रोफेसर नन्ददुलारे वाजपेयी, प्रोफेसर सद्गुरुशरण अवस्थी, प्रोफेसर प्रभाकर माचवे, प्रोफेसर जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', प्रोफेसर नगेन्द्र, डाक्टर रामविलास शर्मा, डाक्टर रामकुमार वर्मा, श्रीरामनाथ 'सुमन', डाक्टर जगन्नाथप्रसाद शर्मा, डाक्टर केसरीनारायण शुक्ल, पंडित विनयमोहन शर्मा, पं० हंसकुमार तिवारी, ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु', पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाबू कृष्णानन्द गुप्त, पंडित गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', श्रीसच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, पंडित भगीरथप्रसाद दीक्षित, पंडित किशोरीदास वाजपेयी, श्रीशिवदान सिंह चौहान, पंडित गंगाप्रसाद पाण्डेय, प्रोफेसर देवराज उपाध्याय, श्रीकान्तिचंद्र सौनरिक्सा, प्रोफेसर दिवाकर प्रसाद विद्यार्थी, प्रोफेसर राजेश्वरप्रसाद 'अर्गल', प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, श्री-प्रभागचन्द्र और श्रीप्रकाशचन्द्र तथा प्रोफेसर नलिनविलोचन शर्मा और श्रीशिवनाथ एम्० ए० के समान मननशील, साहित्यमर्मज्ञ एवं सहृदय समालोचकों के रहते हुए भी यदि भाषा और साहित्य के दोषों का मार्जन न हुआ, तो यह बड़े सन्ताप की बात होगी। 'सम्मेलन' की इस साहित्य-परिषद् को एक समालोचक-मण्डल स्थापित कर भाषा और साहित्य का समुचित संस्कार करना चाहिए। प्रत्येक प्रान्त में, प्रान्तीय सम्मेलनों अथवा वहाँ की प्रभावशाली साहित्यिक संस्थाओं के तत्त्वावधान में, पृथक्-पृथक् संघटनात्मक प्रयत्न भी हो सकता है।

मेरा यह व्यक्तिगत विचार है कि हिन्दी में समालोचना के आदर्श का निरूपण बहुत सोच-समझकर किया जाना चाहिए। हमारे समालोचक के लिए विदेशी साहित्य के समालोचन-सिद्धान्तों की जानकारी के साथ-साथ स्वदेशी साहित्य की आलोचना-पद्धति का भी परिज्ञान अत्यावश्यक है। आजकल यह बहुधा देखने में आता है कि हमारे साहित्य के इतिहास में, हमारी विचार-प्रणाली में, हमारी आलोचना-शैली में, विदेशी रंग का चटकीलापन बढ़ता जा रहा है। हम विदेशों के साहित्य की कसौटी पर ही अपने साहित्य को भी परखते हैं। विदेशी साहित्यिकों के बहुरुपिया सिद्धान्तों ने हमारे साहित्य को इस तरह ग्रस लिया है कि उसके सांस्कृतिक महत्त्व का लोप हो जाने की आशंका-सी होने लगी है। हमें विदेशी साहित्य की महत्ता का प्रशंसक अवश्य होना चाहिए; पर हमें अपने घर के साहित्य का निरीक्षण करने के लिए आँखों पर विदेशी साहित्यिकों का चश्मा नहीं चढ़ाना चाहिए। यदि वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली के प्रभाव से विदेशी साहित्य में ही हमारी विशेष गति-मति है, तो हम उसके गुणों से लाभ अवश्य उठावें; किन्तु उससे

इतने प्रभावान्वित न हो जायँ कि उसके आगे अपने साहित्य की हीनता स्वीकृत कर लेने में हमें तनिक भी झिझक न हो। हमें दुराग्रह से दूर रहना चाहिए; पर स्वाभिमान से सर्वथा वंचित होना समीचीन नहीं।

हमारे साहित्य में प्रगतिशीलता की जो धारा आई है, चारों ओर नवीन सुशिक्षित समाज में उसके स्वागत की धूम है, यह सन्तोष का विषय है। कालचक्र की अबाध गति और परिवर्त्तित परिस्थितियों के प्रभाव से सजीव साहित्य में नई-नई प्रवृत्तियों का पदार्पण स्वाभाविक है। परन्तु, हमें इस बात पर ठंडे दिल-दिमाग से विचार करना चाहिए कि वास्तव में यह धारा सर्वथा नवीन है, पाश्चात्य जगत् का प्रसाद है अथवा हमारे साहित्य-हिमाद्रि में ही कहीं इसका उद्गम-स्थल है। यदि हम इस धारा के लिए विदेश के ही विशेष उपकृत हैं और इसे अपने साहित्य के लिए बहुत गुणकारी भी मानते हैं, तो इसकी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए हमें हिन्दीभाषी जनता को इसका वास्तविक तत्त्व-महत्त्व स्पष्ट शब्दों में समझना चाहिए। अभी इसके सम्बन्ध में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ फैल रही हैं। कहीं-कहीं तो खंडन-मंडनात्मक संघर्ष भी चल रहा है। पारस्परिक मतभेद से कई स्थानों की संगठित साहित्यिक शक्तियाँ बिखर गई हैं। इसलिए, हमें युक्ति-युक्त ढंग से हिन्दीप्रेमी जनता को सुझाना चाहिए कि अमुक कारणों से 'कार्लमार्क्स' हमारे काम के हैं और 'कौटिल्य' निकम्मे हैं, तथा 'प्रेमचन्द' की अपेक्षा 'गोरकी' हमें अधिक अनुप्राणित करते हैं।

आजकल हम देखते हैं कि कुछ लोग इधर आवेशपूर्ण चित्त से प्रगतिशील भाइयों को कोसते नजर आते हैं और उधर हमारे कुछ प्रगतिवादी बन्धु भी अमर्यादित बातें अनियंत्रित रीति से कहकर लोगों का मन खट्टा कर रहे हैं। किसी नूतन सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन आमर्ष-आक्रोश के बल पर नहीं हो सकता और न हम रोष या असन्तोष व्यक्त करके किसी अभिनव प्रवृत्ति का तिरस्कार ही कर सकते हैं। साहित्य में मधुर मतभेद की शोभा हो सकती है; पर ईर्ष्या-द्वेष और पक्षपात-प्रपंच की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती—नहीं होनी चाहिए। हमारे साहित्य की प्रतिष्ठा और पौष्टिकता तभी बनी रह सकती है, जब उसकी रीढ़—भारतीय संस्कृति—पर आघात न पहुँचे। यदि हम ठीक-ठीक समझते हैं कि नाना प्रकार के 'वाद' उसपर आघात पहुँचा रहे हैं, तो हमें निस्संकोच उनके अनधिकार प्रवेश पर रोक लगानी होगी, और इस बात की आशा भी रखनी होगी कि उनके समझदार समर्थक और अनुयायी भी भारतीयता के नाम पर इस रोक-थाम के काम में सहायक होकर रहेंगे। मुझे विश्वास है कि हमारे साहित्यसेवी बन्धु यदि निष्कपट हृदय से भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धालु बने रहेंगे, तो कोई 'वाद' हमारे साहित्य की लहलही खेती न चर सकेगा।

खेद है कि इस 'वाद' का हुलिया मैं नहीं जानता। जहाँ तक याद है, यह 'वाद' हिन्दी पर 'सुन्दरवन' की ओर से लपका था। पहले के साहित्य में किसी 'वाद' की कभी चर्चा तक नहीं सुन पड़ती थी। पर आज तो 'वाद' का दुन्दुभि-निनाद साहित्य-जगत् की हर एक दिशा में गूँज रहा है। शायद इस 'वाद' के पनपने योग्य पहले कोई उर्वर

मस्तिष्क ही नहीं था! अब तो इस 'वाद' की गृहस्थी खूब आबाद है। देखते-देखते यह रक्त-बीज बन गया। हमारी भारतीयता की भावना ही इसके लिए दुर्गाभवानी बन सकती है। कुछ लोग तो बड़े प्रसन्न हैं कि हमारे साहित्य की सरस भूमि 'वाद' की खाद से बहुत उपजाऊ हो गई है। लेकिन जहरबाद से फूला हुआ गाल देखने में भले ही लाल हो, चखने में खतरनाक ही होगा!

हमारे अनाड़ी किसानों ने गोबर को चूल्हे में झोंक दिया और बाजारू खाद से पैदावार बढ़ा ली। जब उस अन्न के दाने पेट में पहुँचकर करामात दिखाने लगे तब गान्धी बाबा की गाई हुई गोबर-गुण-गाथा समझ में आई। मगर होश होने ही से क्या हुआ जब 'चिड़िया चुग गई खेत'। रग-रग में रमा हुआ रक्त दूषित होकर सन्तति-परम्परा को क्षीण करने लगा! मुझे भय है कि 'वाद' का स्वाद भी कहीं हमारी प्रकृति के प्रतिकूल न सिद्ध हो।

इस समय इसकी पैठ और पूछ हमारे यहाँ हर जगह है। इसने हमारे हृदय के प्रत्येक स्तर में घर कर लिया है। कविता, कहानी, उपन्यास, समालोचना, कोई इसके सर्वग्रासी चंगुल से बचा नहीं है। मेरा अपना विश्वास है कि विश्लेषण की प्रक्रिया से जानकारी भले ही बढ़ जाय, आनन्द नहीं उमड़ सकता। कविता या कहानी को आपने तो प्रगतिवाद का श्रेष्ठ नमूना कह दिया; पर हमने जब नमूने का नीबू निचोड़ा तो रस की एक बूँद भी न टपकी! क्षमा कीजिए, साहित्य की आत्मा तो रस ही है।

हम अपने प्राचीन साहित्य-मन्दिर में भी 'वाद' का घंटानाद सुनते हैं; पर वह हमें संस्कृति के घंटापथ पर सचेत होकर चलने का संकेत देता है, भूलभुलैयाँ में नहीं डालता; और यह तो हमें ऐसा पाठ पढ़ाता है कि अपने यहाँ के दिग्गज साहित्य-स्रष्टाओं के बौद्धिक विकास पर हमारा विश्वास नहीं जम पाता।

कृपा करके मुझे 'वाद' का विरोधी न समझ लीजिए। मैं विरोधी उस मनोवृत्ति का हूँ जिससे आविष्ट होकर आप 'वाद' के सिर पर तो अभयवरद पाणि-पल्लव पसारते हैं और हमारे साहित्यलोक के पुण्यश्लोक पूर्वजों को 'वाद'-विदग्धता के आतंक से त्रस्त करना चाहते हैं। विश्वास कीजिए, किसी 'वाद' से मेरा कोई विवाद नहीं है। वह चाहे कहीं से आया हो; पर जब वह हमारा अतिथि बन गया तब भारतीयता के नाते 'सर्वदेवमय' हो गया। किन्तु, जिस पत्तल में वह खायगा उसी में छेद करने लगेगा, तो उसका गुजर हरगिज न होगा।

विविध वादों के बादलों से साहित्याकाश को घिरा देखकर भी मैं उपवृष्टि की आशंका कभी नहीं करता, बल्कि जी जुड़ानेवाली रिमझिम बूँदों का ही आसरा करता हूँ; क्योंकि हिन्दी-साहित्य के उज्ज्वल भविष्य में मेरा उतना ही दृढ़ विश्वास है जितना उसके परमोज्ज्वल अतीत में अविचल श्रद्धा तथा प्रगतिशील वर्त्तमान में स्वाभिमानयुक्त अनुराग।

ईश्वर की दया से उसके क्षेत्र का ऐसा निस्सीम विस्तार हो गया है कि उसकी पूरी परिक्रमा के लिए रवि-रथ की आवश्यकता प्रतीत होती है। उसपर हम जब दृष्टिनिक्षेप

करते हैं, उसकी फुलवारी फूली-फूली दिखाई देती है। उसके कुसुमित काव्यकानन में प्रवेश करने पर अनोखे दृश्य देख पड़ते हैं। बहुकालीन उत्तुङ्ग अश्वत्थ 'हरिऔध' से भी लिपटकर कविता लता फूली नहीं समाती। मंजु मौलिश्री मैथिलीशरण की सघन सुशीतल छाया में विश्राम-कामना से मानों स्वर्ग के तारे फूल बनकर चू पड़े हैं। कहीं रसाल गोपालशरण के किसलय-कुञ्ज में कलकण्ठी कूज रही है। कहीं पक्वफलों की सलोनी लाली से हृदयहारिणी हरीतिमा को रंजित-चित्रित करनेवाले विशाल वट 'सनेही' सुशोभित हैं। कहीं किसी स्वर्णवर्णाङ्गी की पुलकावली का भान करानेवाले मुरलीधर-प्रिय कदम्ब 'भारतीय आत्मा' विराजमान हैं। कहीं वीरों की कंटकित काया का स्मरण करानेवाले फलभार-नम्र पनस 'अनूप' हैं। कहीं मिलनोत्सुक प्रेमपथिक के स्वप्न को साकार प्रदर्शित करनेवाले श्रीफल रामनरेश त्रिपाठी हैं। कहीं योद्धा के रक्ताक्त शरीर कल्पना करानेवाले कुसुमित किंशुक हरदयाल सिंह हैं। कहीं रसीले जम्बु के रूप में प्रकृति-पुजारी गुरुभक्त सिंह अपने सुपक्व फलों से भ्रमरों का भ्रम करा रहे हैं। कहीं फहराती हुई विजय-वैजयंती के समान कमनीय कदली सुभद्राकुमारी हैं।

इस प्रकार काव्य-कानन की छटा देखते हुए जब हम आगे की पुष्पवाटिका में पहुँचते हैं, तब देखते हैं कि वह शोभा-सम्पत्ति तो आँखों में नहीं अँटती। बीच की पुष्करिणी के तट पर उधर किसलय-पुलकित अशोक 'प्रसाद' मंगल कलश लिये खड़े हैं, इधर जल-तल पर प्रफुल्ल नीलेन्दीवर 'निराला' नयनों की मकरन्द-मिलित भाषा में कुछ कह रहे हैं। इस सरसी की मराली होमवती देवी हैं। उधर दूसरे किनारे के रमणीय कुंजगृह को पल्लव-पुष्पजाल से अलंकृत कर नन्दन-निकेत बनानेवाली माधवी महादेवी हैं। इधर उसके सामने के तट पर मुकुलित वल्लरी-वितान ताने मालती-लता सुमित्रा कुमारी सोहती हैं। उधर अशोक के सामनेवाले तीर पर सौरभ-सम्पन्न शिरीष पन्त खड़े हैं, इधर प्रवेश-मार्ग के द्वार पर ही सुमन-लाज-विकीर्णकारी हरिचन्दन हरिवंश राय 'बच्चन' अपनी सुरभि की मादकता से द्राक्षासव पिला रहे हैं। उधर रसलम्पट षट्पद को फटकारने में तत्पर होकर भी किसी कंचन-काया की कल्पना कराने में कुशल चम्पा 'दिनकर' मन-पंछी पर कम्पा लगा रहा है, इधर वियोग-वह्नि के अंगारों का आभास देनेवाला अनार 'वियोगी' विराजता है। इसी प्रकार कहीं रजनीगन्धा रामकुमार वर्मा दूर ही से चित्ताकर्षण कर रहे हैं, कहीं वाटिका-वीथिका को आमोदित करनेवाली यूथिका की तरह उदयशंकर भट्ट गमक रहे हैं। कहीं तो 'अंचल' इसमें विहार करनेवाले के अंचल को अंगूर-गुच्छ से भर देता है, कहीं भगवतीचरण वर्मा उसके गले में मल्लिका-माला पिन्हा देते हैं। 'मिलिन्द' तो बस मिलिन्द ही हैं। पर एक ही भौंरा देख न भड़किए। हरिकृष्ण 'प्रेमी', नरेन्द्र, सर्वदानंद आदि रसलुब्ध मधुपों की टोली भी मँड़रा रही है। 'द्विज', 'नवीन' और 'प्रभात' इस उद्यान के ललितकण्ठकोकिल हैं, जो सप्तम स्वर के शर-संधान से मर्मवेधन-क्रिया में बड़े दक्ष हैं! लली और तारा पांडेय कपोती और शुक-सारिका हैं। शिव-मंगल सिंह 'सुमन', श्यामनारायण पाण्डेय, सोहनलाल द्विवेदी, पद्मकान्त मालवीय, 'अज्ञेय', 'गिरीश', 'आरसी', 'केसरी' आदि इसमें थिरकनेवाले और अपने पुच्छ-पुंज से

इसकी भावभूमि को चित्रित करनेवाले मस्त मयूर हैं। 'चोंच', 'बेढब', 'बेधड़क', श्रीनारायण चतुर्वेदी आदि इसमें चहकनेवाले विविध विहंग हैं।

सज्जनो, ऐसा है हिन्दी का 'परम रम्य आराम यह'! किन्तु ऐसे मनोरम बाग की रखवाली कोई निपुण माली ही कर सकता है। अब वह समय आ गया है जब 'सम्मेलन' को अपनी इस परिषद् के द्वारा इसका प्रबन्ध करना चाहिए। यों तो कथा-साहित्य की क्यारी में भी निर्ममता से कैंची चलानेवाले माली की जरूरत है। नाना जाति के अनावश्यक तृणगुल्मों से सारी क्यारी ढक गई है।

कथा-साहित्य और साहित्य की वृद्धि जिस परिमाण से हो रही है, उसी परिमाण से उनके द्वारा भाषा-भाव की शक्ति-वृद्धि नहीं हो रही। लब्धकीर्त्ति और उदीयमान लेखकों को छाँट लेने के बाद जो कुछ बच रहता है, उसमें हम भविष्य के लिए सन्तोषवर्द्धक सामग्री नहीं पाते।

बरसों से जो शुभ नाम कथाक्षेत्र में श्रुतिमधुर बन गये हैं, उनकी श्रेणी में बिठाने योग्य कोई नया नाम उपयुक्त नहीं जँचता। प्रसिद्ध नामों की ही आवृत्ति हमें हर बार करनी पड़ती है। उनके अतिरिक्त अभी और भी ऐसे नाम गिनाये जा सकते हैं, जिनकी प्रसिद्धि अपनी प्रान्तीय सीमा लाँघने के लिए छटपटा रही है। और, तारीफ यह कि उसके बाद भी नामों की लड़ी टूटती नहीं। इतने ही से आप अनायास अनुमान कर सकते हैं कि कथा-साहित्य का क्षेत्र कितना विस्तृत हो गया है। संभवतः यही अनर्गल विस्तार भाषा-भाव के पक्ष में हानिकारक सिद्ध हो रहा है।

हर्ष की बात है कि हमारे कथाकारों में कुछ की कई रचनाएँ तो ऐसी हैं, जिन्हें लेकर हम अन्य उन्नत भाषाओं के समक्ष सगर्व खड़े हो सकते हैं। प्रेमचन्द, प्रसाद आदि को तो अभी रहने दीजिए; वर्माजी, निरालाजी, वाजपेयीजी, जैनेन्द्रजी, राजा साहब (सूर्यपुरा), राय कृष्णदासजी, व्यासजी, जोशीजी, यशपालजी, अज्ञेयजी, द्विजजी, उग्रजी पहाड़ीजी, वियोगीजी, अञ्चलजी, आरसीजी, पंतजी, राधाकृष्णजी, सौनरिक्साजी, उषा-देवी आदि के ही बल पर हम किसी भी भारतीय साहित्य के सामने सोत्साह डट सकते हैं। हमारी ये विभूतियाँ हमारे गर्व की जड़ को पाताल में ले गई हैं। इनकी स्मितपूर्वा-भिभाषिणी भाषा, इनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, इनका स्वाभाविक चरित्र-चित्रण, मानव-प्रकृति और मानव-हृदय के रहस्योद्घाटन में इनका प्रकृत कौशल, इनकी घटनाचक्र-संचालन-सम्बन्धिनी क्षमता यदि हम हिये की आँखों से देखें तो हमें बरबस कहना पड़ेगा कि हमारा कथा-साहित्य निकट भविष्य में ही विश्व-साहित्य में सम्मानभाजन होगा। यों तो 'दोषः कस्य कुले नास्ति'!

यदि अतिरंजना का आरोप न हो तो मैं कुछ एकांकी नाटकों के सम्बन्ध में भी इसी उक्ति को दुहराना चाहूँगा। सेठ गोविन्ददास, डाक्टर रामकुमार वर्मा, पं० सद्‌गुरुशरण अवस्थी, पं० उदयशंकर भट्ट, श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि की कई चीजें बहुत ही सुन्दर बन पड़ी हैं, और वे ऐसी हैं जिन्हें हम साभिमान साहित्य की स्थायी सम्पत्ति समझकर सँजोते रहेंगे।

अबतक हम अपने साहित्य की जो स्थिति देख चुके, उससे निराश होने का कोई कारण नहीं सूझता। कविता, कहानी और नाटक के क्षेत्र तो अभिनव आशा की मधुर ज्योति से जगमगा रहे हैं। किन्तु निबंध, समालोचना, यात्रा, विज्ञान, जीवनी, आत्मकथा, बालजगत्, नारीजगत्, हास्यरस आदि से सम्बन्ध रखनेवाले साहित्य की वृद्धि के लिए हमें अभी बड़ी लगन से प्रयत्न करना पड़ेगा। मैं साहित्य के इन या ऐसे ही और विभागों पर विचार करने के लिए आपके अधीर समय को अब अधिक चपेटना नहीं चाहता।

अन्त में, इतनी ही प्रार्थना है कि हम सब मिलकर ऐसे ही साहित्य की रचना पर ध्यान दें जिससे हमारी सांस्कृतिक चेतना में विकृति या विकलाङ्गता आने की आशंका न रह जाय।

नीरक्षीरविवेकी सज्जनो, कहना बहुत-कुछ है; पर आप इस षड्रस-नवरस-हीन एवं वाग्जालपूर्ण भाषण से ऊब गये होंगे। मेरी वाणी में न ध्वनि है, न स्वर में संगीत। फिर आप को रिझाऊँ किस प्रकार! तब भी आशा है कि मेरी अज्ञता-महारानी आपको घर पहुँचने तक हँसने का काफी मसाला देती चली जायँगी। वन्दे हिन्दीमातरम्!*

साहित्य केवल मनोरंजन का ही साधन नहीं†

आपलोग विशुद्ध साहित्यिक भावना से प्रेरित होकर इस संघ का संचालन कर रहे हैं, इसलिए आपके शुभ प्रयत्नों की सफलता निश्चित है। साहित्यिक संस्था का कल्याण भी इसी में है कि वह राजनीतिक और साम्प्रदायिक संघर्षों से बचकर एकाग्रता के साथ साहित्य-सेवा में तल्लीन रहे। राजनीतिक और साम्प्रदायिक मत-मतान्तरों से रहित होकर एकान्त भाव से साहित्य की उन्नति में दत्तचित्त रहना आपके संघ का उद्देश्य भी है। इसीलिए, आप अपने भिन्न-भाषा-भाषी सहकर्मियों की सहानुभूति पा सके हैं।

हिन्दी की यही विशेषता और महत्ता है कि वह भिन्न-भाषा-भाषी भाइयों के हृदय पर भी अपने निश्छल प्रेम की छाप लगा देती है। वह चाहती है कि सभी भाषाएँ अपने-अपने स्थान पर फूलें-फलें। वह किसी से होड़ करना नहीं चाहती; क्योंकि यह उसकी पद-मर्यादा के विरुद्ध है। वह स्वयं ही अपने अनेक स्वाभाविक गुणों के कारण सर्वप्रिय हो रही है। उसके साहित्य की सेवा अनेक भिन्न-भाषा-भाषी सज्जनों ने भी की है। संतोष की बात है कि आपके संघ को अन्य-भाषा-भाषियों का भी हार्दिक सहयोग मिल रहा है।

हमें साहित्य की अनिवर्चनीय शक्ति में दृढ़ विश्वास रखना चाहिए। हमें यह भी न भूलना चाहिए कि राजनीतिक और साम्प्रदायिक समस्याओं का समाधान करने में साहित्य

---

* इस भाषण के कुछ अंश 'रचनावली' के तीसरे खण्ड के एक लेख (हिन्दीसाहित्य की कुछ समस्याएँ—पृष्ठ २५७) में भी आ चुके हैं।—ले०

† तारीख २६ नवम्बर (१९४४ ई०) को गर्दनीबाग (पटना) के हिन्दी-साहित्य-संघ के वार्षिकोत्सव के अध्यक्ष-पद से किये गये भाषण का मुख्यांश। ता० १ दिसम्बर १९४४ ई० की दैनिक 'राष्ट्रवाणी' में प्रकाशित।

ही समर्थ है। साहित्य के सहारे मानव-हृदय पर आश्चर्यजनक प्रभाव डाला जा सकता है। हाँ, इस अमोघ अस्त्र का प्रयोग उचित कौशल के साथ होना चाहिए।

इस संघ के उद्देश्यों की सिद्धि के लिए आपने अध्ययन-मंडल और साहित्य-गोष्ठी की स्थापना की है। आपके संघ में दोनों का कार्य-कलाप कुछ मिलता-जुलता-सा है। मेरी समझ से दोनों के कार्यक्रम में कुछ अपनी विशेषता होनी चाहिए। अध्ययन-मण्डल में मनोरंजक कहानी का पाठ या ललित कविता का गान अच्छा नहीं जँचता। 'गोष्ठी' में सुरुचिपूर्ण कहानियाँ और भावपूर्ण कविताएँ पढ़ी जायँ, पर मंडल में तो अध्ययन-परायण सदस्यों अथवा स्वाध्यायशील विद्वानों के गवेषणापूर्ण और समीक्षात्मक निबन्ध ही पढ़े जायँ तो उसकी सार्थकता होगी। पूर्व-निर्द्धारित महत्त्वपूर्ण विषयों पर भाषण भी कराये जा सकते हैं।

'मंडल' के निबन्धों और भाषणों का संग्रह भी, अनुकूल समय पाकर प्रकाशित करने के लिए, सुरक्षित रखा जा सकता है। 'मंडल' में हिन्दी की नई और पुरानी कविताओं के गूढ़ पदों का अर्थ-विवेचन भी होना चाहिए। 'गोष्ठी' तो आपलोगों के लिए, दिन-भर आफिसों में खटने के बाद, थोड़ी देर मनोविनोद की सामग्री जुटाने का साधन बन सकती है। इसके सिवा उसमें उपन्यासों और कहानियों तथा नाटकों और कविताओं के चमत्कारपूर्ण स्थलों पर—शब्दयोजना, भावव्यंजना, वर्णनशैली आदि की दृष्टि से—विचार-विनिमय भी हो सकता है। इससे संघ की आकर्षण-शक्ति बढ़ेगी और प्रभाव-क्षेत्र विस्तृत होगा!

हमें चाहिए कि साहित्य को केवल मनोरंजन का ही साधन न बनावें। हमें इसे अपने जीवन में इस तरह खपा देना चाहिए कि आहार-विहारादि के समान यह भी जीवन का एक अंग बन जाय। ऐसा होने पर यह द्वंद्वमय जीवन आनन्दमय बन जाता है। साहित्य के आनन्दगढ़ को चिन्ताओं की तोपें नहीं तोड़ सकतीं। हमें अपने जीवन को यदि स्वस्थ बनाना है तो साहित्य की क्षुधा को जाग्रत करना चाहिए। साहित्य की भूख संसार की सब प्रकार की भूखों को खा जाती है। यदि हम साहित्य से वंचित हैं, तो विश्वास कीजिए, हमारे लिए संसार के सभी सुखभोग नीरस हैं। सांसारिक सुखों में अपूर्व स्वाद और विलक्षण तृप्ति लाने का श्रेय साहित्य को ही है। हर्ष की बात है कि साहित्य की ओर आपकी अभिरुचि और प्रवृत्ति बढ़ रही है।

'मंडल' और 'गोष्ठी' के अतिरिक्त आप एक हस्तलिखित त्रैमासिक पत्रिका 'रश्मि' भी निकालते हैं। मुद्रण के इस युग में भी, हस्त-शिल्पकला की दृष्टि से, ऐसी पत्रिकाओं का विशेष महत्त्व है। मैंने ऐसी कई पत्रिकाएँ देखी हैं। सबके संचालकों के सामने मैंने, अपनी सूझ बूझ के अनुसार, कुछ सुझाव पेश किये। मुद्रित पत्रिकाओं से इन पत्रिकाओं में कुछ अपनी विशेषता होनी चाहिए। मुद्रित पत्रिकाओं में अधिकतर प्रसिद्ध विषयों पर ही रचनाएँ रहती हैं। किंतु बहुत-सी बातें अभी हमारे देश में अन्धकार में पड़ी हुई हैं, जो प्रसिद्ध होने योग्य हैं, लोगों में कुतूहल उत्पन्न करने योग्य हैं, पर उनकी ओर इन पत्रिकाओं का भी ध्यान अभी नहीं गया है। इन पत्रिकाओं में स्थानीय विषयों का भी समावेश होना चाहिए।

हमारे गाँवों में या शहरों के मुहल्लों में बहुत-सी चीजें हैं या पहले थीं, जिनके विषय में अड़ोस-पड़ोस के बड़े-बड़े लेखक और कवि भी कुछ नहीं जानते, या जानते भी हैं तो उन-पर ध्यान नहीं देते या ध्यान भी देते हैं तो उनपर कुछ लिखने की चेष्टा नहीं करते। आपलोगों में से अधिकांश लोग गाँवों में रहनेवाले होंगे। यदि आप 'रश्मि' का प्रकाश देश के उस अंधकारमय क्षेत्र में ले जायँ, तो कहानी और कविता के लिए अनेक अछूते विषय मिलेंगे, जो साहित्य में स्थान पाने योग्य होने पर भी उपेक्षित पड़े हुए हैं। आशा है, संकेतमात्र से आप मेरा आशय समझ इस विषय पर विचार करेंगे।

आपका उद्देश्य साहित्यिकों को उत्साहित करना भी है। आपलोग राजधानी के शासन-केन्द्र में रहते हैं, जहाँ द्रव्याभाव के लक्षण नहीं दीख पड़ते। आप चाहें तो अधिक-से-अधिक हिन्दी-पुस्तकें खरीदकर पढ़ सकते हैं, अपने घरों में हिन्दी-पुस्तकों और पत्रिकाओं की पैठ करा सकते हैं। इससे हिन्दी-साहित्य-सेवियों को अर्थलाभ भले ही न हो, यशलाभ अवश्य होगा, जिस पर उनका संतोष टिका रहता है। यदि इस संघ को ही सब तरह से आप सम्पन्न बना सकें, तो इससे भी साहित्यिकों को बहुत-कुछ प्रोत्साहन मिल सकती है।

इस संघ के भवन-निर्माण का भी आपने संकल्प किया है। सरकारी गढ़ के भीतर हिन्दी की संस्था स्थायी हो जाय तो बड़ी प्रसन्नता की बात है। इसके लिए आपको सरकारी सहायता भी सुलभ हो सकती है; क्योंकि यहाँ के यंत्रों की गति-विधि से आप भलीभाँति परिचित हैं। आप अपने घरेलू उत्सवों के अवसर पर भी इस संस्था को प्रेमोपहार दे सकते हैं। यदि इस क्षेत्र में आप हिन्दी-मन्दिर बना सकें तो आपकी सेवाएँ चिरस्मरणीय होंगी।

साहित्य के प्रति आपका अनुराग सर्वथा अभिनन्दनीय है। आज गीता-जयन्ती के दिन साहित्यमूर्त्ति भगवान् पार्थसारथी से यही प्रार्थना है कि आपके हृदय में साहित्यानुराग की दिन-दिन वृद्धि करें।

भारतीय साहित्य विश्व-साहित्य का मेरुदण्ड है

'हिन्दी-साहित्य-परिषद्' के साथ जुड़े हुए तीनों शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। पहला शब्द जो 'हिन्दी' है, हमारी राष्ट्रभाषा का पवित्र नाम है। यह नाम इतना पुराना और प्यारा है कि इसके साथ हमारा परम्परागत रक्त-सम्बन्ध स्थापित हो गया है। हमारे प्राणों में और हमारे हृदय में, हमारे जीवन की प्रत्येक दिशा में, हमारी संस्कृति में, यह इस तरह रम गया है कि इससे अलग होकर हम अपना अस्तित्व सुरक्षित नहीं रख सकते। दूसरा है 'साहित्य', जो बड़ा ही व्यापक अर्थ रखनेवाला एक महान् गौरवपूर्ण शब्द है। यह विश्वजनीन भाव का द्योतक है, विश्व-बन्धुत्व का सन्देशवाहक है, देश और जाति के जीवन का रस है, समाज की आन्तरिक दशा का दिव्य-दर्पण है, सभ्यता और संस्कृति का संरक्षक है। इसमें सहित का भाव है। अतएव, यह अपने में वह सब-कुछ समेटे हुए है, जो मानव-जाति के जीवन के लिए हितकर, सुखकर और श्रेयस्कर है। यह ईश्वर के विराट् रूप के समान

विश्व की समस्त विभूतियों का आश्रय-स्थल है। दृश्यमान जगत के समग्र वैभवों की तो निधि है ही, अदृश्य लोकों की सम्पदा का भी कुबेर यही है। लौकिक और अलौकिक, सब कुछ इसी के भाण्डार में हैं। इहलोक और परलोक इसके लिए हस्तामलकवत् है। जान पड़ता है, शब्दमय अनादि अनन्त ब्रह्म का यह प्रतीक है। इसमें हम ब्रह्माण्ड का चित्र देख सकते हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष, कुछ भी इससे परे नहीं जान पड़ता। ऐसे सर्वशक्ति-सम्पन्न शब्द के संयोग से तीसरा शब्द 'परिषद्' भी महिमान्वित हो गया है, यद्यपि यह स्वयं भी बड़ा लब्धप्रतिष्ठ शब्द है। इसके द्वारा विद्वानों की सभा का अर्थबोध होता है। सभा भी ऐसी-वैसी नहीं, जिसका निर्णय सर्वमान्य हो, वह परिषद् कहलाती है। इसके परिषद् अथवा सभासद भी सम्मानित व्यक्ति होते हैं। विश्वसनीय कोशकारों का यही अभिमत है। इस प्रकार आपकी यह संस्था त्रिवेणी-संगम के समान परम पावन प्रतीत होती है। इसमें क्रमशः राष्ट्रीयता और सार्वभौमिकता तथा विदग्धता का मणि-काञ्चन संयोग है।

जैसा देवता वैसा अच्छत

हिन्दी एक ऐसी भाषा है, जिसका प्राचीन साहित्य बहुत उन्नत और समृद्ध तथा आधुनिक साहित्य बहुत विस्तृत और प्रगतिशील है। इसकी लिपि देवनागरी भी वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण एवं निर्दोष मानी जाती है। इसकी सरलता या सुगमता की बराबरी करनेवाली कोई दूसरी भाषा नहीं है। इसमें एक अद्भुत शक्ति है। जैसे तुलसी की रामायण बड़े-बड़े पंडितों के भी छक्के छुड़ाती है और अपढ़ गँवारों का भी मन बहलाती है, वैसे ही हिन्दी सबको सन्तुष्ट करने योग्य सामग्री अपने पास रखती है। यह हरएक श्रेणी के लोगों के दिल में घर कर सकती है। इसके तरकस में नाना प्रकार के अस्त्र हैं। चाहे तो बड़े-बड़े विद्वानों पर भी मोहनी डाल दे, चाहे तो ठेठ देहाती किसानों को भी मुट्ठी में कर ले। जब जैसा चाहिए, वैसा रूप बना लेने में यह सबसे बढ़ी-चढ़ी है। भारत के सभी प्रान्तों और सभी जातियों के लोगों के हृदय में वह अनायास पैठ सकती है। भारत में जिस प्रकार की संस्कृतियाँ इस समय हैं, सबको इसने अपनी सीमा में समेट लिया है। तब भी कुछ लोग कहते हैं कि राष्ट्रीय काम-काज चलाने के लिए हिन्दी की जगह एक दूसरी ही नई भाषा गढ़ी जाय, यह बड़े आश्चर्य और खेद की बात है। यदि किसी को हिन्दी नाम से ही चिढ़ वा कुढ़न हो तो वह दूसरी बात है। डाह की कोई दवा नहीं। पर यदि आप केवल सुबोध भाषा ही चाहते हैं, तो हिन्दी का यह पक्का दावा है कि भारत के विभिन्न प्रान्तों के हिन्दुओं की तो कोई बात नहीं, मुसलमान भाइयों की समझ में भी यह आ सकती है—समा सकती है, यहाँ तक कि भारत में रहनेवाले काबुली लोगों को भी अपना भाव बता सकती है। जैसा देवता वैसा अच्छत इसके पास है। यदि किसी को विश्वास न हो तो पेशावर के पठानों की सभा में किसी सच्चे हिन्दी-लेखक को खड़ा करके देख ले, वह हिन्दी के अक्षय तूणीर से ऐसा अस्त्र निकालेगा कि पठान भाई मुग्ध हो जायँगे। भला हिन्दी से बढ़कर बहुरुपिया की कला में प्रवीण कौन-सी भाषा है, जो इससे आँखें मिला सके?

हम हिन्दीवाले इस बात को डंके की चोट कह सकते हैं और अंगद-पद रोपकर आज की तरह बराबर कहते रहेंगे कि भारतवर्ष में केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिसकी आवाज हिमालय के गौरीशंकर शिखर से कन्या कुमारी तक काफी प्रभाव के साथ गूँज सकती है—अटक से कटक तक छाई रह सकती है। इतने पर भी यदि कोई दुराग्रह करे, तो उसके लिए केवल ईश्वर-प्रार्थना करनी होगी कि न्यायी परमात्मा उसे सुबुद्धि दे।

हिन्दी तरन-तारन और पतितपावनी है!

आप इसे कोरी डींग न समझिए। विना सोचे-समझे, इसे पक्षपात भी न कहिए। यदि हिन्दी के हिमायती अहंकारी या पक्षपाती होते, तो उनकी हिन्दी आज कहीं की न होती; पर आज यह सब कहीं की है, सर्वत्र इसकी सत्ता व्याप्त दीख पड़ती है। इसका और कोई कारण नहीं है। हिन्दी अपनी ही शक्ति और उदारता से भारत में फैलती जा रही है। इसने अपने क्षेत्र को कँटीले तारों से घेरकर फाटक नहीं लगाया है। इसका सुविस्तृत क्षेत्र हर तरफ से खुला है। जो चाहे जिधर से आ जाय। जैसे समुद्र बड़ी उमंग से नदियों को गले लगाता है, वैसे ही यह भी सबको निस्संकोच अपनाती है—सबका यथोचित स्वागत करती है। इसकी भाव-गंगा में मिलकर पनाले भी पवित्र हो जाते हैं। इसका बाना तरन-तारन है। यह प्रत्यक्ष पतितपावनी है। इसकी गोद में शान्ति की मिठास-भरी थपकियाँ किसको सुख की नींद नहीं सुलातीं? चाहे वह मुसलमान हो या ईसाई, पारसी हो या सिक्ख। आपको विश्वास न हो तो इसका कोष टटोलकर देखिए, इसके भरे-पूरे भाण्डार की तलाशी लीजिए। अँगरेजी, अरबी, फारसी, तुर्की, फ्रांसीसी, पोर्चुगीज, आदि सभी विदेशी भाषाओं के शब्दों की प्रदर्शनी आप हिन्दी के क्षेत्र में देखेंगे। इसका शुद्धि-आन्दोलन इतना व्यापक और अमोघ है कि कोई उसकी पकड़ से बच नहीं पाया है। इसका घेरा दिन-दिन बढ़ता ही चला जाता है। इसका रंग इतना पक्का है कि जिस पर चढ़ जाता है उसको सदा के लिए अपना बना लेता है। रंगत या पंगत का भेदभाव इसके यहाँ है ही नहीं। इसका साँचा ही ऐसा है कि जो इसमें ढल गया, वह उसीका हो रहा। इसका यह कारखाना दिन-दूना रात चौगुना उन्नत होता जा रहा है।

अज्ञान का परिणाम

किन्तु, खुली आँखों देखते हुए भी जो सचाई की ओर से आँख मूँदे हुए हैं, उनको ब्रह्मा तो नहीं समझा सकता, पर समय का अखंड प्रवाह उन्हें निकट भविष्य में ही अवश्य समझा देगा। हिन्दी के राष्ट्रीय अधिकार छीनने का प्रयास सर्वथा निष्प्रयोजन तथा अवांछनीय है।

कुछ लोगों की कठहुज्जत यह है कि हिन्दी केवल साहित्यिक भाषा रह सकती है, बोलचाल की नहीं। पर यह लचर-दलील सिर्फ उन्हीं की है जो हिन्दी की ग्राहिका शक्ति से सुपरिचित नहीं हैं। यदि हिन्दी की विलक्षण आन्तरिक शक्ति का उन्हें पता होता; तो वे कदापि ऐसा कुतर्क न करते। उन्हें भलीभाँति याद रखना चाहिए कि हिन्दी में साहित्यिक भाषा होने की जैसी योग्यता है, वैसी ही बोलचाल की भाषा होने की भी।

यदि वे इस पर चुनौती देना चाहेंगे, तो हिन्दीवाले भी उनकी ललकार पर डटने के लिए कमर कसे हुए हैं। शर्त्त बदकर कसौटी पर कस लीजिए हिन्दी को, वह बावन तोले पाव रत्ती खरी-चोखी उतरेगी। यों तो किसी की जबान पर लगाम देना हिन्दी के बूते की बात नहीं, चाहे कोई हिन्दुस्तानी का नाम रटे या हिन्दी को जली-कटी सुनावे। हिन्दी तो हिमालय की चोटी से बार-बार यह घोषणा कर रही है कि राष्ट्र की भाषा होने के सभी गुणों से वह भूषित है और राष्ट्रभाषा के रूप में सारा राष्ट्रीय कामकाज करने में पूर्ण समर्थ है; पर कहीं इसकी सुनवाई भी तो हो। मगर हो भी कैसे, वहाँ तो दूसरी ही धुकधुकी है। लेकिन, वह दिल की धड़कन बेबुनियाद है। हिन्दी के लिए अन्य भाषाएँ भले ही अपने को खतरनाक साबित करें, पर हिन्दी अपनी राष्ट्रभाषा की मर्यादा निर्द्वन्द्व निबाहेगी—वह अपनी छत्रच्छाया में सबको फूलने-फलने देगी, जैसी यह आज भी सबपर प्यार की निगाह रख रही है। और कोई भले ही उसकी राह का काँटा बने, मगर यह सबके आगे फूलों के पाँवड़े ही बिछायेगी। और इसी की बदौलत यह जीतेगी, केवल जीतेगी ही नहीं, युग-युग जीतेगी; क्योंकि इसकी नीयत साफ है। यह दूसरे की लकीर मिटाये बिना ही अपनी लकीर बड़ी करके दिखा सकने में सिद्धहस्त है।

संजीवनी शक्ति

अब यदि साहित्य पर हम दृष्टिपात करते हैं, तो देखते हैं कि किसी राष्ट्र या जाति में संजीवनी शक्ति भरनेवाली यही है। इसलिए, यह सर्वतोभावेन संरक्षणीय है। सब-कुछ खोकर भी यदि हम इसे बचाये रहेंगे, तो फिर इसी के द्वारा हम सब कुछ पा सकते हैं। इसे खोकर यदि हम बहुत-कुछ पा भी लेंगे, तो न उसे सुरक्षित रख सकेंगे और न इसे ही फिर पा सकेंगे। कारण, यह हमारे पूर्वजों की कमाई है। किसी जाति के पूर्वजों का चिर-संचित ज्ञान-वैभव ही साहित्य है। अन्यान्य लौकिक वैभव नश्वर हैं, यह अविनाशी है। इसीलिए, जो इसका पल्ला पकड़े रहेगा, वह भी अमर होगा। भारत के हिन्दुओं की स्वतंत्रता खो गई, धन-सम्पत्ति लुट गई, उनके विपुल ऐश्वर्य के गौरवमंडित स्मारक भी लुप्त हो गये; पर उन्होंने अपने साहित्य का बहुलांश बचा लिया, उसे भ्रष्ट या कलुषित या विनष्ट न होने दिया। जब ग्रंथों पर आपत्ति देखी कि वे फाड़े-जलाये जा रहे हैं, तब मस्तिष्क और कंठ में धारण कर उन्हें वाणी का अमृत पिलाया। भला अपने पूर्वजों के इस ज्ञान-भांडार को हम भी क्यों न बचायें। हमारा यही धर्म और कर्त्तव्य है। हमारा यह साहित्य विश्वसाहित्य का मेरुदण्ड है। इसकी प्रखर किरणें भूमण्डल में फैली हुई हैं। इसके खजाने की भी खुलेआम लूट-खसोट हुई है। फिर भी इसकी रीढ़ नहीं टूटी। इसमें आज भी जो कुछ है, अनोखा है, अनूठा है, अमूल्य है, अनिर्वचनीय है।

झूठी हेकड़ी नहीं

हमारी हिन्दी का साहित्य अभी शायद आधे से अधिक अप्रकाशित ही है। अनेक प्राचीन ग्रन्थ कहीं बेठनों में लिपटे पड़े हैं, कहीं कूपमंडूकों के घरों में दीमकों को दावत दे रहे हैं। इसी प्रकार अनेक आधुनिक साहित्यकारों की कृतियाँ भी, प्रकाशकों के

अभाव से तथा हमारी अगुणज्ञता एवं असावधानता से, प्रकाश में नहीं आई है। यदि हमारा सम्पूर्ण साहित्य सांगोपांग प्रकाशित हो जाय, तो हिन्दी का रत्नागार देखते ही बने। कुछ लोग हिन्दी-साहित्य की वास्तविक महत्ता से अपरिचित होने के कारण इसे अधूरा और हेय समझते हैं। उन्हें जानना चाहिए कि ग्रन्थों का संख्याबाहुल्य ही किसी साहित्य की श्रेष्ठता का प्रमाण नहीं है। काँच के चमकीले टुकड़ों की राशि से दो-चार-दस जगमगाते अनमोल लाल कहीं अच्छे हैं। हिन्दी-साहित्य में आज भी, जब उसके अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ अन्वेषकों और प्रकाशकों की प्रतीक्षा में पड़े बिलख रहे हैं, ऐसे-ऐसे देदीप्यमान ग्रन्थरत्न हैं जिनकी तुलना के ग्रन्थ अन्य भाषाओं के साहित्य में दुर्लभ हैं। जब कभी हिन्दी का सितारा चमकेगा—और ईश्वर की दया से शीघ्र ही उसके भाग्याकाश के बादल छँटनेवाले हैं—तब विस्मृति के अन्धकारपूर्ण गिरिगह्वर से उसके बहुत-से ग्रन्थ-तपस्वी निकलेंगे। उस दिन संसार आँखें फाड़कर उन्हें देखेगा।

किन्तु, आप कहेंगे कि इन सूखी और थोथी गर्वोक्तियों से अब काम नहीं चलने का, ससार में युगान्तर उपस्थित हो गया है। ठीक है; पर कृपा करके इसे छूछी हैंकड़ी ही न समझिए। मैंने अतिरंजना से कहीं काम नहीं लिया है। हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य के सुदिन अभी आ रहे हैं। इस समय तो दोनों विविध संकटों और विघ्नों से जूझ रहे हैं। उन कठिनाइयों की ओर स्पष्ट संकेत की आवश्यकता नहीं। फिर भी दोनों की वर्त्तमान प्रगतिशीलता में आशा और उत्साह की किरणें झलक रही हैं। उपयुक्त अवसर और समीचीन संरक्षण पाकर दोनों की विजय-पताकाएँ आकाश में लहरायेंगी।*

पुस्तकालय ही असली विद्यालय है

आशासु राशीभवदङ्गवल्लीभासैव दासीकृतदुग्धसिंधुम्।
मन्दस्मितैर्निन्दितशारदेन्दुं वन्देऽरविन्दासनसुन्दरि त्वाम्॥

सज्जनो,

पुस्तकालय तो ज्ञान-गंगा है। ईश्वर की दया से उसके तीर्थ-सलिल में गोते लगाने का सुअवसर देने के लिए मैं आप का बहुत कृतज्ञ हूँ।

आजकल पुस्तकालयों की संख्या बढ़ रही है। उनके वार्षिक उत्सव भी बहुत हो रहे हैं। उन उत्सवों में भाषणों की कमी नहीं रहती। किन्तु, इतना सब होने पर भी पुस्तकालय का वास्तविक महत्त्व लोगों ने अच्छी तरह नहीं समझा है। पुस्तकालय को सरस्वती-मन्दिर समझनेवाले पाठक आज भी बहुत कम हैं। पुस्तकों में लोगों की जैसी श्रद्धा होनी चाहिए वैसी नहीं दीख पड़ती। इसका मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि हमारे यहाँ शिक्षा-प्रचार बहुत ही कम है। अविद्या के फैले हुए अन्धकार में हमलोग पुस्तकों के सच्चे रूप को नहीं देख पाते।

*बरहज(गोरखपुर) की हिन्दी-साहित्य-परिषद् के वार्षिकोत्सव में अध्यक्ष-पद से किये गये भाषण का मुख्यांश। सितम्बर, १६४५ ई०।

अनेक पुस्तकालयों के संचालकों से यह जानकर बहुत खेद होता है कि हर साल पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं की मरम्मत में काफी रुपये खर्च करने पड़ते हैं। कोई पुस्तक ज्यादा-से-ज्यादा दो-चार साल तक ही अच्छी दशा में रह पाती है। अधिकांश पुस्तकें एक-दो साल में ही निकम्मी हो जाती हैं। किसी की जिल्द या सीवन टूट जाती है, किसी के पन्ने फट या उखड़ जाते हैं, किसी के अन्दर से चित्र गायब हो जाते हैं, कोई ऐसी गन्दी हो जाती है कि उसकी जिन्दगी खतरे में रहती है। बहुत-सी पुस्तकें भूल भी जाती हैं। पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें पूरी नहीं रहने पातीं। इसी तरह की और भी शिकायतें हैं जिनसे शायद ही कोई पुस्तकालय बचा होगा।

हमारे पुस्तकालयों के अधिकतर पाठक सिर्फ अपना आराम और अपनी सुविधा ही देखते हैं। वे पुस्तकों की प्रतिष्ठा का कुछ भी ध्यान नहीं रखते। कोई पुस्तकों को मोड़ या मरोड़कर लेटे-लेटे पढ़ता है, कोई उनसे तकिया का काम लेता है। जहाँ ऐसे श्रद्धालु पाठक हैं, वहाँ सैकड़ों सभाओं और भाषणों से भी क्या लाभ ?

जो पुस्तकों के सच्चे अनुरागी हैं, वे जानते हैं कि पुस्तकों से बढ़कर न कोई गुरु है, न मित्र ही। किन्तु गुरु के उपदेश तभी सफल होते हैं जब गुरु में हमारी श्रद्धा होती है। मित्र की सलाह तभी हमारे काम की हो पाती है जब हमारे दिल में मित्र के लिए आदर का स्थान हो। पुस्तकालयों का प्रचार होता जा रहा है, पुस्तकों के पढ़नेवाले भी बढ़ रहे हैं, मगर हमारी शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दशा में विशेष सुधार नहीं नजर आता। पुस्तकालयों के संचालक जानते हैं कि उपन्यासों और कहानियों के पाठक आजकल सबसे अधिक देखे जाते हैं। आज हिन्दी-साहित्य दिन-दिन उन्नति करता जा रहा है। फिर भी उसमें ऐसे उपन्यासों और कहानियों की कुछ कमी जान पड़ती है जो पाठकों के चरित्र को ऊँचा उठा सकें। पुस्तकालयों के संचालक यदि चुनी हुई पुस्तकों का ही प्रचार करना चाहते हैं तो उन्हें मनचाही सफलता नहीं मिलती; क्योंकि अच्छी-से-अच्छी पुस्तकों के पाठक बहुत कम मिलते हैं। जो पैसेवाले हैं, वे पुस्तकालय के सदस्य इसलिए होते हैं कि घड़ी-भर दिल बहलाने के लिए कोई दिलचस्प किताब मिल जायगी। जो निर्धन या गरीब हैं, वे पुस्तकालय से पूरा लाभ नहीं उठा पाते। इसी तरह की और भी कठिनाइयाँ हैं। वास्तव में पुस्तक केवल मनोरंजन का ही साधन नहीं है। पुस्तक को आदि से अन्त तक एक बार पढ़ लेने से भी कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। जबतक हम पुस्तक में लिखी हुई बातों पर गहराई से विचार नहीं करते, मनन नहीं करते, तबतक पुस्तक-पाठ का उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। ऊपर-ऊपर तैरने से तिनके मिलते हैं और तह तक डूबने पर मोती।

हमारे देश में पहले पक्की स्याही बनती थी, अब भी सेठ-साहूकारों के यहाँ बनती है—बही-खाते लिखने के लिए। वह कई दिन लगातार घोटी जाती थी। फिर इतनी पक्की हो जाती थी कि उसकी लिखावट अगर वर्षा में दिन-भर पड़ी रहे तो कागज भले ही गल जाय, स्याही नहीं धुल सकती। बूटी का भी यही हाल है। जितनी ही घुटेगी उतनी ही

नशीली होगी—आनन्द देगी। पशु भी चारा खा चुकने पर पगुरी करके ही उसे पचाते हैं। पगुरी के बिना चारा पच नहीं सकता। उसी प्रकार मनन किये बिना अध्ययन किसी अर्थ का नहीं। हमारे यहाँ मननशील पाठकों का बहुत अभाव है, इसलिए पुस्तकालयों के बढ़ते जाने पर भी हमारे जीवन में, परिवार में, समाज में अभ्युदय के स्पष्ट लक्षण नहीं दीख पड़ते। पारस्परिक सद्भाव का आज भी अभाव सर्वत्र ही है। सामाजिक कुप्रथाएँ अब भी हमारे चारों ओर मँडरा रही हैं। चरित्र की उच्चता, हृदय की स्वच्छता, वाणी की मधुरता, व्यवहार में शिष्टता और सचाई बहुत ही कम दिखाई देती है। हमलोग सौ-सौ पुस्तकें चाट जाते हैं, मगर सच्चे मनुष्य नहीं बन पाते। कितने ही लोगों को अकेले 'रामचरित-मानस' ने ही आदर्श मनुष्य बना डाला है। पर आज हम यह देखकर आश्चर्य करते हैं कि उस अलौकिक ग्रंथ को कई बार पढ़ जानेवाले भी मनुष्य नहीं बन सके हैं। इसका मुख्य कारण है वही, मननशीलता का अभाव।

जबतक हम मननशील नहीं बनेंगे तबतक पुस्तक का महत्त्व नहीं समझेंगे। और, पुस्तक का महत्त्व समझे बिना हम पुस्तक की कद्र या इज्जत नहीं कर सकते। जब पुस्तकों के कद्रदाँ पैदा होंगे तभी हमारे पुस्तकालयों की उन्नति हो सकेगी। कहा जा सकता है कि लोगों के शिक्षित हुए बिना उनके मन में पुस्तकों के प्रति आदर का भाव नहीं हो सकता। किन्तु, देखा यह जाता है कि आजकल के शिक्षित लोग भी पुस्तकों का आदर करना नहीं जानते। कारण यह है कि वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली ने हमारे पुराने संस्कारों को मिटा दिया है। नहीं तो हम भारतीयों से बढ़कर ग्रंथ का पुजारी कौन हुआ? आज भी पुरानी संस्कृति के पोषक लोग नवरात्रों में पोथी की पूजा किया करते हैं। अब भी संस्कृत के विद्यार्थी अनध्याय के दिन सरस्वती को विश्राम देते हैं। यद्यपि गुरु और ग्रंथ में अब पहले-जैसी सात्त्विक श्रद्धा कहीं देखने में नहीं आती, तथापि उस पुरानी भारतीय संस्कृति का अस्तित्व अभी बिल्कुल नहीं मिटा है। हाँ, सर्वसाधारण के हृदय में वह संस्कार जागता होता तो आज पुस्तकालयों की उतनी क्षति भी न हो पाती जितनी हो रही है।

अब तो हमारे प्रान्त विहार में भी वसंत-पंचमी को सरस्वती-पूजा होने लगी है; किन्तु कितने ही सरस्वती-पूजकों को भी हम पुस्तकों की दुर्दशा करते देखते हैं। बंगाल में घर-घर सरस्वती-पूजा होती है। वहाँ अधिकांश परिवारों में घरेलू पुस्तकालय हैं। कभी उन्हें जाकर देखिए। वहाँ के सार्वजनिक पुस्तकालयों को भी देखिए। वे लोग पुस्तकें पढ़ने का तरीका जानते हैं। अँगरेज लोग तो सरस्वती-पूजा भी नहीं करते; पर वे पुस्तकों की रक्षा और प्रतिष्ठा करने में बंगाली भाइयों से भी बढ़े-चढ़े हैं। अँगरेज लोग इतनी सफाई और सावधानता से पुस्तकें पढ़ते हैं कि अनेक हाथों में पड़कर भी पुस्तक नई-सी बनी रहती है। इम्पीरियल लाइब्रेरी[1] (कलकत्ता) की रिपोर्ट देखने से आपको पता लगेगा कि पुस्तकों के साथ हिन्दुस्तानियों का व्यवहार अँगरेज पाठकों के मुकाबले कैसा शोचनीय है।

आपकी निगाह में ये बातें छोटी-मोटी हो सकती हैं; मगर मेरी दृष्टि में इनकी महत्ता बहुत बड़ी है। मैं तो चाहता हूँ कि जो पाठक पुस्तकों के साथ असभ्य-जैसा व्यवहार

---

१. अब नेशनल लाइब्रेरी

करता है उसको किसी पुस्तकालय का सदस्य बने रहने का अधिकार ही नहीं है। पुस्तकों की दुर्गति कराते हुए, लोगों में शिक्षा-प्रचार करने या लोगों का मनोरंजन करने के पक्ष में कम-से-कम मैं तो कदापि नहीं हूँ। बचपन में पाठशाला के लड़के भी पुस्तकों की चिन्दी कर डालते हैं; पर उनकी वह बाल-सुलभ चंचलता क्षम्य समझी जाती है। किन्तु, सयाने और बड़े-बूढ़े तथा लिखे-पढ़े लोग भी जब पुस्तकों की धज्जियाँ उड़ा डालते हैं तब विवश होकर यह कहना पड़ता है कि ऐसे लापरवाहों के लिए पुस्तकालय का दरवाजा हमेशा के लिए बन्द कर देना ही अच्छा है। जबतक इस दिशा में काफी कड़ाई न की जायगी तबतक अवस्था न बदलेगी, न सुधरेगी। जो बुराई हमारी आदत बनकर रोम-रोम में रम जाती है, उसको दूर करने अथवा उससे पिण्ड छुड़ाने के लिए कठोर-से-कठोर अनुशासन की आवश्यकता होती है।

आप कहेंगे कि ज्ञान का प्रसार करने के लिए पुस्तकों का मोह छोड़ना ही चाहिए; क्योंकि पुस्तक तो ज्ञान प्राप्त करने का साधन मात्र है, उसे आवश्यकता से अधिक महत्त्व देना अवांछनीय होगा। किन्तु, इस लचर दलील का सहारा लेकर हम पुस्तकालयों की रक्षा नहीं कर सकते। एक पुस्तक के नष्ट होने पर आप दूसरी पुस्तक मँगा या खरीद तो लेंगे, मगर आपको जानना चाहिए कि पुस्तक के प्रत्येक संस्करण का अलग-अलग महत्त्व होता है। विशेषतः प्रथम संस्करण का महत्त्व तो इतना अधिक है कि उसी पर पुस्तकालय की प्रतिष्ठा और महिमा निर्भर करती है। पत्र-पत्रिकाओं के लिए तो यह बात और भी महत्त्वपूर्ण है। अधिकतर उनके अंक दुर्लभ होते हैं। कभी-कभी हम पैसे के बल पर भी उन्हें पा नहीं सकते। ऐसी दशा में, जैसे एक ईंट के खिसकने से इमारत बिगड़ जाती है, वैसे ही एक अंक के विना सारी फाइल बेकार हो जाती है। असावधान पाठक से हम दण्ड-स्वरूप पुस्तक या पत्रिका का मूल्य तो ले लेते हैं; पर खोई हुई अमूल्य वस्तु फिर हाथ नहीं लगती। इससे पुस्तकालय के गौरव में बट्टा लगता है। बहुतेरी पुस्तकें ऐसी हैं जिनका दूसरा संस्करण छपा ही नहीं और बहुत-सी ऐसी भी हैं जिनका दूसरा संस्करण काफी हेरफेर के साथ छपा है। ऐसी स्थिति में प्रथम संस्करण यदि खो गया या फट गया, तो मानो पुस्तकालय का ऐतिहासिक महत्त्व कम हो गया। इसलिए, प्रत्येक पुस्तकालय के संचालक को सदैव इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि असली पूँजी जो पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ हैं, उनकी भलीभाँति रक्षा की जाय।

एक बार एक बहुत पुराने और प्रसिद्ध पुस्तकालय* में बिहार के सबसे पुराने साप्ताहिक 'बिहारबन्धु' की खोज हुई। एक रियासत † के बहुत बड़े मुकदमे में उसके कुछ अंकों की पेशी बहुत जरूरी थी। पुस्तकालय के पास संवाद आया कि आवश्यक अंक देने पर पचीस हजार रुपये भवन-निर्माण के लिए तुरत दिये जायँगे। किन्तु अदूरदर्शी पुस्तकालय ने तो बेचारे बूढ़े साप्ताहिक को बनिया के घर धनिया बेचने के लिए कौड़ी के मोल फेंक दिया था। पचीस हजार का चेक कटते-कटते रह गया, हाथ मलकर रह जाना पड़ा।

* आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा। † डुमराँव-राज का वर्मा-केस

आपको मालूम होगा कि आज भी अँगरेजी दैनिक 'अमृतबाजार-पत्रिका' और बँगला दैनिक 'आनन्दबाजार-पत्रिका' के एक-एक अंक का दाम प्रति सप्ताह दो आने के हिसाब से बढ़ता चला जाता है। इसका क्या अर्थ है ? अखबार जितने ही पुराने होते हैं, उनका दाम बढ़ता जाता है। किन्तु, हमारे पाठक जब पुस्तकालयों के वाचनालय में समाचार-पत्र पढ़ने जाते हैं तब कैसी असावधानता और क्रूरता से अखबारों का उपयोग करते हैं, यह बतलाने की जरूरत नहीं। फिर पुस्तकों को अपने घर ले जाकर उनके साथ जो दुर्व्यवहार करते हैं, उसका फल-भोग भला किस पुस्तकालय को नसीब नहीं है !

मैं नहीं जानता कि आपके प्रसिद्ध पुस्तकालय के सामने ये समस्याएँ हैं या नहीं, लेकिन कई छोटे-बड़े पुस्तकालयों से निकट सम्बन्ध रखने के कारण मुझे यही अनुभव हुआ है कि हमारे यहाँ भद्र पाठकों की संख्या उँगलियों पर गिन लेने योग्य ही है। पुस्तकालय के प्रति हर-एक पाठक का क्या कर्त्तव्य और दायित्व है, यह समझनेवाले अभी इने-गिने ही हैं। कारण इसका यही है कि हमारे पाठक अपनी सदस्यता के शुल्क अर्थात् मासिक या वार्षिक चन्दे का जितना महत्त्व समझते हैं, उतना पुस्तकालय के मूलधन ग्रन्थों का महत्त्व नहीं समझते।

पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ ही पुस्तकालय की सम्पत्ति हैं। उनकी रक्षा के लिए जिसके हृदय में सहानुभूति और ममता नहीं है, वह पुस्तकालय का सदस्य या पाठक होने का पात्र नहीं है। यह पात्रता लोगों में तब आयगी जब पुस्तकालयों की ओर से ही इसके लिए निरन्तर प्रयत्न होते रहेंगे। ऐसे ही प्रयत्नों से हमारे पुस्तकालयों का अस्तित्व और गौरव सुरक्षित रह सकता है।

हमलोग जो यह सोचते हैं कि शिक्षा का प्रचार बढ़ने से अध्ययनशील और मननशील पाठक भी बढ़ने लगेंगे, वह केवल आशा ही आशा है। वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति से हमें श्रद्धालु मननशील पाठक नहीं मिल सकते। देश की जन-संख्या के अनुसार शिक्षण-संस्थाओं की पर्याप्त संख्या होने की संभावना निकट भविष्य में नहीं दीख पड़ती। शिक्षण संस्थाओं के संस्थापन और संचालन में बहुत अधिक खर्च की जरूरत है। मगर उसके मुकाबले पुस्तकालय में उतने खर्च की जरूरत नहीं है। फिर भी स्कूलों या विद्यालयों से कहीं अधिक शिक्षा-प्रचार हमारे पुस्तकालय कर सकते हैं।

अक्षर-परिचय, शब्द-ज्ञान, वाक्य-बोध आदि के लिए प्रारम्भिक शिक्षा का भी प्रबन्ध हम पुस्तकालयों द्वारा कर सकते हैं। क्रमशः अभ्यास से लोगों की विद्या-बुद्धि और प्रतिभा-शक्ति विकसित हो सकती है। स्कूल खोलने में सरकारी मंजूरी का बखेड़ा है, नाना प्रकार के साधन जुटाने की जरूरत है। किन्तु, पुस्तकालय खोलने और चलाने में केवल सच्ची लगन और पक्की धुन की ही जरूरत है। यदि हम पुस्तकालयों का ठीक तरीके से उपयोग करें तो ये सचमुच ही ज्ञान-प्रसार के क्षेत्र में विद्यालयों से बाजी मार ले जायँगे। जिस देश में शिक्षा-प्रचार के साधनों पर अनेक वैधानिक बन्धन हैं, उसके लिए पुस्तकालय ही सकल-मनोरथ-दाता कल्पवृक्ष है। इसके खोलने और चलाने में

कोई बन्धन नहीं है, केवल उत्साह और परिश्रम के बल पर हम स्वतंत्रतापूर्वक इससे जनता की सेवा कर सकते हैं। हमें स्वावलम्बन का पाठ पढ़ानेवाला यही है।

अगर हम किसी दूसरे की खुशामद या मदद का आसरा छोड़कर आपस के मेल-मिलाप से ही अपना काम बनाने पर उतारू हो जायँ तो पुस्तकालयों और वाचनालयों के द्वारा हम सारे देश में काफी जागृति फैला सकते हैं। मगर जबतक हम जन-समूह की शक्ति का सदुपयोग न करके सिर्फ औरों का ही भरोसा करते रहेंगे, तबतक कुछ होने जाने का नहीं। इसलिए, यदि हम सचमुच चाहते हैं कि अविद्या के घोर अन्धकार में भटकनेवाले अपने देशवासियों को ज्ञान की ज्योति दिखावें, तो हमें पुस्तकालयों की वृद्धि पर, उनकी दशा सुधारने पर, उनके संगठन पर शीघ्र ध्यान देना चाहिए।

बड़े हर्ष और सन्तोष की बात है कि पुस्तकालयों के संगठन और सुधार के लिए हमारे प्रान्त में शुभ उद्योग का श्रीगणेश हो चुका है। प्रान्तीय पुस्तकालय-सम्मेलन और जिला-पुस्तकालय-सम्मेलनों को, पूरी तत्परता के साथ, लोक-सेवा और जन-जागरण के इस अमोघ साधन, अर्थात् पुस्तकालय पर, अपनी शक्ति भिड़ा देनी चाहिए। समस्त प्रान्त में पुस्तकालयों के प्रति लोगों का जो अनुराग दिन-दिन बढ़ रहा है, वह इस बात की सूचना दे रहा है कि लोगों में ज्ञान की प्यास बढ़ रही है—ज्ञान के प्रकाश की तलाश हो रही है, ऐसे अच्छे अवसर से लाभ उठाना प्रत्येक देशहितैषी का कर्त्तव्य है। हममें से जो सुशिक्षित और अनुभवी विद्वान हैं, वे ऐसी राह सुझावें जिस पर सुविधा के चलकर हरएक पुस्तकालय जनता की जानकारी बढ़ाने और आधुनिक युग की माँग पूरी करने में समर्थ हो।

जो धनी-मानी दानी पुरुष हैं वे देशहित का ध्यान रखते हुए अपने धन का सदुपयोग समयानुकूल रीति से करें। अब मन्दिर बनवाकर परलोक सँवारने की चिन्ता छोड़ें। मन्दिर काफी बन चुके, और उनमें से अधिकांश में राग-भोग की उचित व्यवस्था न करके काफी लोग स्वर्ग के धोके नरक जा चुके। बस, अब सरस्वती-मन्दिरों की ही जरूरत है। धनीधोरी धर्मात्मा अब युगधर्म पहचानें, परलोक से पहले इहलोक सुधारें। इस अन्नपूर्णा पुस्तकालय के संस्थापक और संचालक ने अपने धन के सदुपयोग की उत्तम प्रणाली से धनिकों के सामने बहुत सुन्दर आदर्श उपस्थित किया है। इस पुस्तकालय से लाभ उठानेवाली जनता को उनका कृतज्ञ होना चाहिए। स्वयं उन्हें भी इस पुस्तकालय को सर्वोपयोगी बनाने की चिन्ता और चेष्टा करते रहना चाहिए।

पाठकों में सुरुचि उत्पन्न करने की आवश्यकता है। जबतक उनकी रुचि का परिष्कार न होगा तबतक वे पुस्तकालय को घड़ी-भर की दिलबस्तगी का सामान समझते रहेंगे। उपन्यास-कहानी पढ़ना पसन्द करनेवाले पाठकों को भी अच्छी-से-अच्छी चुनिन्दा पुस्तकें दी जानी चाहिए। पाठकों के लिए उत्तम पुस्तकों का चुनाव होना बहुत जरूरी है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा-पुस्तकालय में जब वयोवृद्ध पं० केदारनाथ जी पाठक उसके व्यवस्थापक थे तब हर श्रेणी के जिज्ञासु पाठकों को उनकी रुचि और

आवश्यकता के अनुसार उचित परामर्श दिया करते थे, अनाड़ी पाठकों को तो काफी सहानुभूति के साथ अच्छी राह सुझा देते थे। उनको सब लोग चलता-फिरता पुस्तकालय कहा करते थे। यद्यपि उनके समान पुस्तकालय-प्रबन्धक सब जगह नहीं मिल सकते तथापि पुस्तकालय के संचालक और हितैषी पारस्परिक सहयोग से ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं जिससे पाठकों को हर तरह की सुविधा हो।

कथा-साहित्य के अतिरिक्त नाटक, कविता, जीवनी, इतिहास, यात्रा, कृषि, विज्ञान, स्वास्थ्य, वाणिज्य आदि भिन्न-भिन्न विषयों की पुस्तकें भी पाठकों को दी जानी चाहिए। ग्राम-सुधार, गो-पालन, नागरिक शास्त्र, समाज-सुधार, राष्ट्रीय आन्दोलन आदि से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकों के पढ़ने में भी पाठकों की प्रवृत्ति कराने की आवश्यकता है।

यह पुस्तकालय अनेक गाँव के बीच केन्द्र में है। इसके द्वारा ग्रामवासियों को बहुत-सी ऐसी बातें बताई जा सकती हैं जो उनके जानने योग्य हैं और उनकी जानकारी न होने से वे नाना प्रकार की कठिनाइयाँ झेल रहे हैं। कृषि, गोरक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा, उद्योग-धन्धे, सामाजिक शिष्टाचार, अपने देश का इतिहास-भूगोल आदि ऐसे विषय हैं जिनपर गाँववालों की गहरी दृष्टि पड़नी चाहिए। ऐसा तभी हो सकेगा जब हमारे पुस्तकालय इसपर पूरा ध्यान देंगे। पुस्तकालय तो अपढ़ लोगों को भी इन आवश्यक विषयों का ज्ञान प्रदान कर सकता है। इसके लिए चार्ट, नक्शे, लैण्टर्न-लेक्चर आदि का प्रयोग किया जाय, तो बहुत लाभ हो।

बड़ौदा-राज्य में पुस्तकालयों की व्यवस्था हमारे देश में सर्वोत्तम समझी जाती है। वहाँ इसके लिए एक स्वतंत्र विभाग ही खुला हुआ है। उसकी सालाना रिपोर्टों से हमारे पुस्तकालय बहुत-सी काम की बातें सीख सकते हैं। छोटी पूँजी के पुस्तकालय भी उससे लाभ उठा सकते हैं। जैसे—काली दीवार या काले तख्ते पर महत्त्वपूर्ण आँकड़े और समाचार लिखकर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना इत्यादि। इस तरह के और भी बहुत-से उपाय हैं।*

---

* श्री अन्नपूर्णा-पुस्तकालय (हिलसा, जिला पटना) के तृतीय वार्षिकोत्सव के सभापति का भाषण। रविवार, २४ फरवरी, १९४६ ई०।

इस भाषण के कुछ अनुच्छेद काट दिये गये हैं। फिर भी इसमें एकाध जगह कुछ ऐसी बातें रह गई हैं जो दूसरे भाषणों में भी कही गई हैं। किन्तु उनके कहने के ढंग में विभिन्नता है।—लेखक

सेवा-धर्म

[श्री जॉर्ज सिडनी अरण्डेल-कृत 'The Way of Service' का भावानुवाद]

'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।'

चिरस्मरणीय

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथा मूकभावः परेषाम् ।
तृष्णास्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः ॥

*   *

विरलाः परकार्यरताः परदुःखेनापि दुःखिता विरलाः ।
विरलाः सत्याग्रहिणः पतितजनोद्धारमानसा विरलाः ॥

*   *

स्पृहणीयाः कस्य न ते सुमतेः सरलाशया महात्मानः ।
अयमपि येषां सदृशं हृदयं वचनं तथाचारः ॥

*   *

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

*   *

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः ॥

*   *

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः ॥

'सेवाधर्म्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः'

१

यदि तुम दूसरों की सेवा करने की इच्छा रखते हो, जिसमें उन लोगों की भलाई है और तुम्हारी कुछ हानि नहीं है, तो तुम्हें निम्नलिखित तीन नियमों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए—

(क) विश्वसेवा करना ही तुम अपने मन का सर्वोत्तम आनन्द जानो।

(ख) अपने को तुम उस महती बलीयसी शक्ति से प्रेरित होता हुआ समझो जो तुम्हें विश्वसेवा करने को प्रेरित करती है।

(ग) तुम दूसरों में भी उसी दैवी प्रकृति का विकास अनुभव करो जो स्वयं तुममें भी है।

२

स्मरण रखो कि जो कुछ तुम दूसरे के विषय में कहते या सोचते हो, सम्भव है कि पहले से ही दूसरा भी तुम्हारे विषय में उसी प्रकार की बात कह या सोच चुका हो।

३

यदि तुम्हें कोई कष्ट दे तो जान लो कि कष्ट देनेवाला पीड़ित प्राणी से कहीं अधिकतर दुःख उठाता है।

४

अपने प्रेम की शक्ति द्वारा अपनी तथा दूसरे की मानसिक स्थिरता विचलित न करो। तुम्हारी सेवा दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़नी चाहिए, न कि घटनी।

५

सेवा करने में दूसरे की अधिक शक्ति देखकर जी में कुढ़ो मत, बल्कि प्रसन्न हो कि ऐसा भी पुरुष विद्यमान है जो उन लोगों की सहायता कर सकता है जिन्हें तुम्हारी परिमित शक्ति सहायता नहीं पहुँचा सकती।

६

जब कुछ दान करो तो इस आशा से नहीं कि पानेवाला ही उसे लेकर सुखी हो। तुम्हें उस समय अधिक आनन्द अनुभव करना चाहिए जब तुम यह देखो कि तुम्हारे दान देने से दानपात्र ही नहीं, बल्कि दूसरे भी आनन्दित हो सके हैं।

७

जब तुम दूसरे की सहायता करने लगो तो ठीक उसी आदर्श पर अपने को बनाओ जिससे तुमने सेवा करने की शक्ति पाई है। इससे तुम अपने आदर्श तक पहुँच सकोगे और सहायता भी खूब अच्छी तरह से पहुँचा सकोगे।

८

देखो—सेवा की रीति सीखो। विश्व की सेवा करने से ही चन्द्रमा का मुख उज्ज्वल है—गंगा का ही-तल शीतल है—मेघ का खजाना अघट है।

९

यदि सच्चा सेवी बनना चाहो तो निष्काम सेवा करो, अर्थात् अपनी की हुई सेवा के फल की आशा न रखो। सेव्य पुरुष के कृतज्ञता-सूचक वचन सुनने की कामना न करो। समझो—जिस प्राणी की तुम सेवा करते हो उसके शरीर की नहीं, बल्कि उसकी अन्तरात्मा की सेवा करते हो। यद्यपि सेव्य पुरुष के होंठ भी नहीं हिलते तथापि वह शुद्धान्तरात्मा अपनी कृतज्ञता गुप्त रीति से तुमपर जता रही है।

१०

जिसे तुम प्यार करो—उसके प्यार की इच्छा न रखो। यदि तुम्हारा प्रेम सच्चा होगा तो आज हो या कल, उसके अन्तःकरण में ध्रुवमेव प्रवेश कर जायगा और उसका प्रेम झट तुम्हारे प्रेम के गले का हार बन जायगा। अगर तुम्हारा प्रेम चन्दरोजा हो तो भला होगा कि यह रहस्य तुम उसपर कभी प्रगट न करो जिसमें तुम्हारे श्लाघ्य प्रेम के हट जाने से किसी दिन उसे मर्मवेदना अनुभव न करना पड़े।

११

स्मरण रखो—चेत लो—जो अपने को संयत नहीं रखता वह कभी विश्वसेवा नहीं कर सकता। सेवा किये मेवा मिलता है, अतएव माना गया है कि भवसागर की नौका का खेवा है—वैकुण्ठ के बटोहियों का कलेवा है। ('मेवा नीकी काबुल की, सेवा नीकी राम की')

१२

सच्ची सेवा वही है जो भार (बोझ) को हलका कर दे—यह नहीं कि उसे एकदम हटा ही दे।

१३

तुम तभी औरों की पूरी सहायता कर सकोगे जब तुम उन्हें अपने-अपने आदर्श पर गठित हुआ समझकर स्वीकार करोगे।

१४

मनुष्य में जो उत्तम गुण है उसी से वह दूसरे की सेवा-सहायता करने में समर्थ है। सेवा की उतनी ही भाँतियाँ संसार में हैं जितने साहाय्यापेक्षी मनुष्य हैं।

१५

सुरभित सुन्दर सुमनों का सौरभ लेकर सर्वसाधारण को प्राणामोद पहुँचानेवाली हवा को और ग्रीष्मातपक्लान्त तृषार्त्त पथिक को सुखाश्रय देनेवाले शीतलजलान्वित कूप को गोदी में लिये हुए सघन-विशाल वट-वृक्ष देव को—इन दोनों सेवा-पथ के पान्थों को—आदर्श बनाकर चलो।

१६

विचारो—दिन का एक-एक मुहूर्त्त सत्सेवा के लिए है। कारण, यद्यपि प्रतिक्षण दयापूर्ण कार्य्य करने का अवसर नहीं प्राप्त हो सकता है, तथापि दयार्द्र याद बनाये रखने का शुभ अवसर हर घड़ी सामने रहता है।

१७

मनुष्य जितना ही अपने (सुख के) विषय में कम विचार करेगा उतना ही वह अपनी उन्नति का सहायक हो सकेगा। सेवा का छोटा-से-छोटा कार्य्य भी—सेवी के समक्ष—विश्वसेवा-भाव की उत्तरोत्तर वृद्धि के रूप में दिखाई देता है।

१८

यदि कोई मनुष्य तुम्हारी सेवा उस रूप में अंगीकार नहीं करता है जिस रूप में तुम देना चाहते हो तो कोई दूसरी राह (नई रीति) निकालो। तुम्हारी मनोकामना तो यही रहनी चाहिए कि किसी प्रकार सेव्य पात्र की उचित सेवा बन पड़े। उसके प्रति तुम्हें यह कदापि प्रगट न करना होगा कि किस प्रकार तेरे द्वारा उसकी योग्य सेवा की जायगी।

१९

किसी की सेवा करने में लज्जित मत हो, चाहे वह तुम्हारा परिचित हो या अपरिचित। उसकी आवश्यकता (चाह-दरकार) तुम्हें उसका भाई बना देती है, किन्तु तुम्हारी लज्जा एक प्रकार का मोहमय गर्व है जो आवश्यकता पड़ने पर एक सहायक से उसे वंचित कर डालती है।

२०

अपने मन में कभी ऐसी भावना न आने दो कि तुमने आज औरों की कुछ सहायता की है, बल्कि यही सोचते रहो कि तुम और अधिक सहायता किसी को पहुँचा सकते हो या नहीं। साथ ही साथ यह भी ध्यान रखो कि इस प्रतारणामूलक संसार के कितने प्राणियों का कष्ट-निवारण करने में तुमने सहायता पहुँचाई है; अर्थात् तुम्हारी सेवा द्वारा कितने दुःखी जीव सुख प्राप्त कर सके हैं।

२१

जो लोग सद्‌गुरु के सच्चे शिष्य हैं, वे ही लोग (समाज) के नेता हो सकते हैं; क्योंकि जो आज्ञापालन करना नहीं जानता, वह कदापि दूसरे को अपनी आज्ञा का वशवर्त्ती नहीं बना सकता।

२२

यदि किसी मनुष्य को तुम अपनी सलाह मानने को बाध्य करना चाहते हो तो पूर्व ही से तुम स्वयं उसके सदुपदेशों के अनुसार चलने लग जाओ।

२३

निष्कलंक एवं अनवद्य कार्य्य तुम तभी सम्पादन कर सकते हो जब तुम अपनी प्रशंसा या कीर्त्ति का विचाराङ्कुर अपने मानस-क्षेत्र से एकदम ध्वंस कर दोगे। संसार में अमर होना चाहते तो विना किसी लाग-लपेट या स्वार्थ के अपनी सेवा व्यय करते जाओ।

२४

यदि सज्जनों द्वारा अपने अच्छे कार्य्य और विचारों के बदले में तुम अपनी प्रशंसा चाहते हो तो दूसरों के अच्छे कार्य्य और विचारों पर हार्दिक हर्ष और अपनी प्रशंसावादिनी सम्मति प्रकट किया करो। अपनी भलाई चाहते हो तो दूसरों की भलाई करने का दृढ़ व्रत धारण कर लो।

२५

जबतक मनुष्य अपने को (अपनी ही करनी से) नीचा नहीं बना देता तबतक वह कभी अपने कार्य्यों के करने में लज्जित नहीं हो सकता। कारण यह है कि लाञ्छन मनुष्य की नीचातिनीच प्रकृति का फल है—वह कभी सपने में भी उदार-हृदय पुरुष को नहीं छू सकता।

२६

एक आम का वृक्ष है—अपने पल्लवाञ्चल को डुला-डुलाकर अभ्यागत पथिकों को पंखा झलता है—अपने हाथ पर बैठी हुई कोयल से दूर-दूर के पथिकों को हँकारने को कहता है—आगत अतिथियों को दँतौन (दन्तधावन), शीतल छाया, पल्लव का दोना (जलपात्र) देकर सादर स्वागत करता है—मधुर-मधुर फल चखाता है—पत्थर की चोट सहकर भी अमृत की घूँट* पिलाता है। बस, अपना सर्वस्व व्यय कर देने पर—जीर्णावस्था प्राप्त होने पर यज्ञ की समिध बनकर सेवा करता है, पाक प्रस्तुत करने के लिए अपनी देह जलाता है, कोयला बनकर भी सोना का मल धोता और अपनी उस खाक (भस्म-राशि) में से भी किसी की जीविका उपजाता है। अहा! धन्य! ठीक, उसी की मूर्त्ति अपने सामने आदर्श रूप से रख लो—"तुल्यनिन्दा समोस्तुतिः" का अर्थ जान लो और सेवा-पथ पर बेखटके अग्रसर होते चले जाओ।

२७

जब तुम्हारे मन में वह निकृष्ट विचार अंकुरित हुआ कि तुम विश्व-सेवा करने में समर्थ हो और तुम्हारे देखने में दूसरा कोई तुमसे बढ़कर विश्वसेवक नहीं है, उसी दम तुम्हें भलीभाँति समझना चाहिए कि तुम सच्ची सेवा से सैकड़ों कोस की दूरी पर हो।

---

* तुलसी सन्त सुअम्ब तरु फूलि फलहिं परहेत, इतते ये पाहन हनत उतते वे फल देत।

२८

सच्ची सेवा इसी में है कि तुम अपने जीवन को दूसरे के जीवन के साथ मिला दो। चाहे किसी तरह से हो—यह प्रकट करने की चेष्टा कदापि न करो कि तुम एक अनुकरण-योग्य पुरुष हो।

२९

अच्छा यही है कि पहले काम करो तब कुछ बोलो। यह नहीं कि काम करने के पहले ही बक-बक करने लगो। सबसे अच्छी बात तो यही है कि कार्य्य करो और एकदम चुप हो रहो।

३०

मनुष्य की—सेवा करने की—योग्यता उसके दैनिक गृहकार्य (दिनचर्या, डायरी) देखने से समझी जा सकती है, न कि उसकी लिखी पुस्तकों से, न यशःसौरभ से, न उसकी झाड़ी हुई सर्वसाधारण के समक्ष वक्ताओं से अथवा न उसके अन्य कार्य-कलाप से। सर्वसाधारण के लिए किये हुए महत्कार्यों से कोई महान पुरुष नहीं हो सकता, बल्कि छोटे-छोटे नित्य के कार्य्यों में आत्मत्याग का ज्वलन्त उदाहरण पाने से—जो सब लोगों को ज्ञात तक नहीं है—बड़े और सच्चे आदमी की सच्ची पहचान हो सकती है।

३१

जो विश्वसेवा करने को तत्पर होता है, उसे अपना सर्वस्व सेवा-हित में अर्पण करने को प्रस्तुत रहना चाहिए—जिससे वह सचमुच विश्वसेवक कहलाने का अधिकारी हो।

३२

एक आदमी अपनी सहायता तुमसे हजार तरह से ले सकता है, पर तुम्हारी उचित सहायता वही है कि उसकी आवश्यकता के अनुसार तुम उसकी मदद करो—केवल उसकी इच्छा ही के अनुसार नहीं। समय-समय पर वह इस विषय में तुमसे कुछ रुष्ट भी हो सकता है, परन्तु तुम यही चेष्टा करते रहो कि तुम्हारी सेवा का ढंग उसकी स्वीकृति के उपयुक्त हो।

३३

जो मनुष्य वस्तुतः सेव्य है—जिसे सहायता की दरकार है—उसे छोड़कर यदि अन्यान्य की सेवा-सहायता की गई तो वह कदापि सच्ची सेवा नहीं है। सेवा की सच्ची राह से विपथ होकर अनेक मनुष्य सेवा करने की चाह रखते हैं—जिन्हें सेवा-सहायता की आवश्यकता नहीं है उनकी सेवा में तत्पर होना चाहते हैं और जिन्हें सेवा-सहायता की चाह है उनकी ओर उदासीनता एवं असावधानता फेंक देते हैं।

३४

तुम्हारी की हुई सेवा जितनी ही उत्तम होगी, तुम्हारा जीवन उतना ही सेव्य (आदर्श) हो जायगा।

३५

संसार में ऐसा कोई नहीं है जो किसी प्रकार की सहायता न चाहता हो और ऐसा भी संसार में कोई व्यक्ति नहीं जो दूसरों की कुछ सहायता न कर सके।

३६

जब तुम दूसरों की सेवा करने लगो तो उसकी (सहायता की) आवश्यकता देखकर अधीर मत हो जाओ। यदि उसे कोई आवश्यकता नहीं आ पड़ती तो तुम्हें सेवा करने का अवसर ही कहाँ प्राप्त होता। यही मनसूबा रखो कि बहुत लोग तुम्हारी सेवा से सुखी हो सकें। जैसे, ऐसा कोई क्लेश नहीं है जो भावी आनन्द का सूचक न हो—(ऐसी कोई रात्रि नहीं जिसके पश्चात् सौम्य सूर्योदय न हो—ऐसा कोई बादल नहीं जिसके पीछे पूर्णेन्दु न छिपा हो)—ठीक उसी प्रकार ऐसी कोई आवश्यकता या चाह नहीं है जिसकी किसी-न-किसी दिन पूर्त्ति न हो जाय—ऐसा कोई दोष नहीं जिसका कभी सुधार या संशोधन न हो सके।

३७

जब तुम दूसरे किसी की सेवा में रत हो तो इस बात का पूरा ध्यान रखो कि यदि तुम्हारी सेवा शुद्ध और सच्ची होगी तो उसके दोषों का वेग भी मुड़कर आगे (भविष्य में) सत्पथ की ओर प्रवाहित होने लगेगा। तुम उसकी शमन-शक्ति का प्रतिरोध नहीं कर सकते, किन्तु तुम्हें उसके रूप और उसकी राह—चाल या गति के परिवर्त्तन में सचेष्ट होना पड़ेगा।

३८

तुम्हारा यदि विचार है कि जिस दशा में तुम हो उससे भी कहीं उत्तम दशा में होते तो विश्व की अच्छी सेवा कर सकते और अपनी वर्त्तमान दशा के अनुसार तुम यथाशक्ति अखिल विश्व की सेवा में अपनी क्षुद्र शक्ति का सदुपयोग कर रहे हो, तो तुम्हारी सेवा करने की पहली बड़ी चिन्ता ही इस दूसरी सेवा से कहीं बढ़-चढ़कर है। सेवा करने की लालसा है, पर सामग्री का अभाव है, तो उस प्रथमाङ्कुर की रक्षा करो और उसकी सहायता ले-लेकर दूसरों की सहायता करो।

३९

जिन गुणों के अभाव से दूसरा कोई विश्व-सेवा से वंचित है, उन्हीं सद्गुणों की मात्रा बढ़ाकर तुम दूसरों की अनन्य सेवा कर सकते हो।

४०

नित्य-प्रति की हुई अपनी सेवा का यदि मूल्य समझना चाहते हो तो विचार करके देखो कि तुम दिन-दूना रात-चौगुना अधिक सुखी, संतुष्ट, शान्तिप्रिय, प्रसन्न और विशोक होते जाते हो या नहीं? जो नित्य प्राणी-समुदाय की सेवा में लीन रहेगा उसके सामने कहाँ शोक? कहाँ परिताप? कहाँ रोग? कहाँ बन्धन? चतुर्दिक् शान्ति!!!

४१

संसार तुमसे तुम्हारी पूर्ण शक्ति के अनुसार सेवा माँगता है—दूसरों से नहीं—तुम्हें यही सोचना उचित है। जितनी अच्छी शक्ति तुम्हें मिली है यदि उसका पूर्ण रूप से तुम सदुपयोग कर रहे हो, तो समझ लो कि जो कुछ तुम्हारा उचित कर्त्तव्य है, उसका पालन तुम भलीभाँति कर रहे हो।

४२

जिसकी सेवा करने की तुम श्रद्धा रखते हो, पर तुम्हारी सेवा वह किसी प्रकार स्वीकार नहीं करता, तो एक-दो बार की बात भूल जाओ; किन्तु सदा अपनी सेवा की अस्वीकृति को मार्जनीय मत बना डालो। देखते रहो—जो तुम्हारी सेवा करने की चाह से भरे हुए हृदय को फटकार-दुत्कार बतलाता है—एक दिन वही ऐसी आवश्यकता की तह-पेच में पड़ जायगा कि तुम्हारी सेवा से भी अत्यधिक सहायता की चाह उसे घेर लेगी।

४३

निःस्वार्थता-पूर्वक जो प्रेममयी सेवा दूसरों के द्वारा तुम्हारी की गई हो उसका तिरस्कार मत करो—उसकी ओर उदासीनता न प्रकट करो—सावधान! विचार करो कि सेवा करने में जितनी सहृदयता की आवश्यकता है उतनी ही सेवा प्राप्त करने में भी।

४४

जब तुमने, जितनी तुममें शक्ति थी उतनी प्रवीणता और उदारता से, सेवा की है तो उसके परिणाम के लिए लालायित न रहो; क्योंकि तुम्हारी सेवा की पवित्रता सुख-शान्ति के रूप में परिणत होकर सेवक के पास लौटकर चली आवेगी और सेव्य पुरुष के चारों ओर सन्तोष छा जायगा।

४५

प्रेम का केन्द्र सुविस्तृत बनाने की शक्ति तथा तदनुसार सेवा करने की क्षमता—यही सेवा के आदर्शभूत परिणाम हैं। प्रेम विना सेवा कैसे होगी? सुगन्ध विना पुष्प क्योंकर मन मुग्ध कर सकेगा? जो मनुष्य वास्तविक सुखी नहीं है वह दूसरों को कहाँ तक सुखी बनाने में समर्थ हो सकेगा?[1]

४६

सेवा यदि प्रेम-भरे हृदय से की गई हो, चाहे वह अज्ञानता-भरी ही क्यों न हो तो उस सेव्य पुरुष की कुछ भी हानि नहीं कर सकती। प्रेम की शक्ति उस अज्ञानता-जनित हानि से बचा लेगी।

१. "अहा! किस काम का वह गुल जिस गुल में बू नहीं
किस काम का वह दिल जिस दिल में तू नहीं।'

४७

कभी-कभी हमलोगों का यह कर्त्तव्य हो सकता है कि हमलोग दूसरों की जाँच करें, अर्थात् सेवा की रीति-नीति देखें-भालें, किन्तु साथ-ही-साथ हमलोगों का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि जहाँ उनकी त्रुटि पावें वहाँ पूरी-पूरी सहायता पहुँचावें।

४८

यदि तुम अपनी आध्यात्मिक उन्नति की जाँच करने की इच्छा रखते हो तो ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया करो कि पहले से अब तुम सेवा करने में चूक तो नहीं कर रहे हो—तुम्हारी सेवा-प्रणाली कुछ क्षीण तो नहीं होती जाती है।

४९

जो सम्भ्रान्त पुरुष दोषी का दोष क्षमा करता है उसकी ऐसी दया-भरी चेष्टा, उत्सुकता और प्रीति केवल दोषी के हृदय की निर्बलता भविष्य में दूर करने के लिए ही होती है जिससे कि वह लज्जा, संकोच और पश्चात्ताप में पड़कर फिर क्षमा माँगने योग्य कोई अपराध न करे! यह भी किसी तरह एक प्रकार की सेवा-शिक्षा हुई।

५०

तुम जब दूसरे की सेवा की रीति की समालोचना करते हो, तुम्हारी सरासर भूल है। शायद वह उन व्यक्तियों की सेवा उनके मनचाहे ढंग से कर रहा हो जिन लोगों तक तुम्हारी सेवा वास्तविक रूप में पहुँच न सकी हो।

५१

विश्वसेवकों की ओर से जो तुम्हें सेवा करने की शिक्षा प्राप्त हुई है, उसका मूल तत्त्व प्रकाश करने में भयभीत मत हो; क्योंकि अपने आनन्द के उद्भव स्थान का यथार्थ ज्ञान हो जाना एक अतिशय सुन्दर उपहार है जो संसार के समक्ष तुम उपस्थित कर सकते हो।

५२

प्रेममयी सेवा जो तुम दूसरे की करते हो तो वह सेवा-रूपिणी स्वर्गीय देवी तुम्हारे सेव्य व्यक्ति की सर्वदा सर्वत्र रक्षा किया करती है। सेवा-देवी के युगल चरणों पर जितना ही प्रेमामृत का अर्घ्य-दान देते जाओगे उतना ही वह तुम्हें सर्व-प्रिय बनाती हुई सेव्य पुरुष को तुम्हारी सेवा सादर सानुराग स्वीकार करने के लिए उत्साहित करती रहेगी।

५३

यह मत समझ बैठो कि केवल वही लोग सेवा करने में दक्ष हैं जिनकी सेवा-रीति चर्म-चक्षु-गोचर है। सेवा के महतो-महीयान् कार्य्य वही हैं जो सर्वथा अगोचर हैं। बड़ों की बात तो जाने दीजिए, भला कहिए तो कि गंगा की ही सेवा-प्रणाली अन्तरिक्ष होने पर भी कैसी सुहावनी और कितनी सुखदायिनी है!

५४

जो सेवा तुम्हें आज सुलभ हुई है, उसे कल के लिए मत रख छोड़ो। ऐसा करने से तुम सेवा के उचित सुअवसर को सुचारु रूपेण व्यवहृत करने से चूकते हो। हो सकता है कि कल उस सेवा की आवश्यकता नहीं रहे जो आज किसी तरह पूरी नहीं हो सकी।

५५

जितने सेवा-प्रार्थी जन तुम्हारी सत्यसेवा के भाजन बनने के लिए आते जायँ, उन प्रत्येक की ओर अपना सम्पूर्ण ध्यान दृढ़ रूप से लगा दोगे, तो शायद आगे आनेवाले सेवा चाहनेवालों की ओर उतनी ही प्रेम-दृष्टि न पड़ सके। सेवा का क्षेत्र विस्तृत करो—संकुचित अवस्था में मत रहने दो। तुम्हारी सेवा उसी समय अर्द्ध-सफलीभूत हो गई जब कि तुमने सानुकूल हो सेवार्थी की प्रार्थना सुन ली।

५६

जब तुम दुःखी रहो तो इस बात को कभी मत भूलो कि तुम बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करते हुए एक प्रकार का अनुभव प्राप्त कर रहे हो, जिसके द्वारा तुम्हें दूसरों के दुःख के साथ सहानुभूति दर्शाने की शक्ति अर्जन होती जाती है। अपने शोकाकुल हृदय की मर्म-वेदना और पीड़ित प्राण की दुरवस्था का विचार करके तुम्हें अच्छी तरह से दूसरे दुःखी जनों के साथ समप्राणता प्रकट करने और समवेदना प्रकाश करने की रीति सीखनी चाहिए।

५७

सेवा-प्रणाली दो प्रकार की है। एक सुख-सनी—दूसरी कुछ दुःख-मिश्रित। सच्चे सेवक लोगों को इसका पूर्ण अनुभव प्राप्त है। दुःख तो घी से भी चिकना, रूई से भी हलका और दूध के फेन से भी कोमल मालूम पड़ता है किन्तु, केवल उन्हीं लोगों को जो प्रेम के सहारे से ही सेवा करते हैं। सेवा करन के समय जो दुःख होता है, वह सुख का प्रतिविम्ब है।

५८

हो सकता है, जितना तुम अपनी सेवा-रीति पर ध्यान रखते हो उतना संसार तुम्हारी सेवा के ऊपर न रखता हो। तो इससे क्या? तुम अपने सत्पथ पर अचल होकर अग्रसर होते जाओ।

५९

बहुत-से मनुष्य ऐसे हैं जो कतिपय स्थानों में सेवा के लिए पहुँचने को उत्सुक हैं, किन्तु भला ऐसे कितने हैं जो सब जगह सर्वदा सेवा के लिए प्रस्तुत रहने के इच्छुक हों?

६०

यदि चतुर्दिक तुम्हारी अपकीर्त्ति फैल रही है तो बड़ी आवश्यकता है कि तुम सेवा-व्रत को धारण करके अपनी कीर्त्ति का शृंगार करो।

६१

जिस प्रकार मरुस्थल में मुकुलित मंजुल मल्लिका मिल जाती है, उसी प्रकार संयोगवश असमय में, भदेस-कुदेश में भी, आवश्यकता पड़ने पर, सच्ची सेवा मिल जाया करती है। दोनों का सम्मान सम है।

६२

स्वार्थपरता से घिरे हुए स्थान में एक छोटी-मोटी सेवा भी उसी उज्ज्वलता के साथ देदीप्यमान होती है, जिस प्रकार अन्धकार-पुंज में प्रज्ज्वलित प्रभा की एक पतली-सी रेखा।

६३

जिस दशा में तुम वर्त्तमान काल में हो, यदि उस समय तुम्हें सेवा करने का सुअवसर प्राप्त न हो सका, तो यह निश्चय है कि तुम भविष्य में चाहे किसी (भली या बुरी) दशा में भी क्यों न रहो, तुम सेवा करने में सर्वदा असमर्थ बने रहोगे।

६४

वह व्यक्ति इस संसार में नितान्त शून्य, अधम और दुःखभागी है जो बहुत तरह से अपनी सेवा कराकर भी उसके उपलक्ष्य में दूसरे की सेवा नहीं करता। यदि तुम्हारे दुःख पर दया करके किसीने सहायता कर दी तो उस सहायता के बदले में तुम अपने तन-मन-धन से उसकी सेवा कर देने को उद्यत रहो और दया के बदले चिर-कृतज्ञता प्रकट करते रहने की जी में ठान लो।

६५

शारीरिक संसार में सेवा का नाम कार्य्य वा कर्त्तव्य है, मानसिक संसार में सेवा का नाम मेल-जोल (एकता की बुद्धि) है और हृदयोद्गार की वस्तुओं में सेवा का नाम सहानुभूति है।

६६

जैसे दिवस की उज्ज्वलता दिवसेश के प्रकाश पर ही निर्भर है, उसी प्रकार तुम्हारे दिन भी सेवा-कार्य्य की ही प्रभा से उदित, मुदित और विदित होंगे।

६७

प्रेम, श्रद्धा, उत्साह, सद्विचार और सहानुभूति के रस से सनी हुई सेवा का छोटा-सा कार्य्य भी, जो बाल्यकाल ही से अभ्यस्त हो रहा हो, भावी जरावस्था के लिए सुख के कोषागार का ताला खोलने की कुंजी-स्वरूप है।

६८

जैसे दयावान और दयापात्र दोनों ही को सुख-लाभ होता है, उसी प्रकार सेव्य और सेवक को भी।

६९

अपने-आपको (आत्म) विस्मरण करके जो दूसरों की सेवा की जाती है, उससे अपने-आपको परखने की शक्ति प्राप्त होती है।

७०

जो सेवा स्वाभाविक बुद्धि से की जाती है, वही सेवा सच्ची और सुहावनी है, जिसमें बनावट का बू-बास न हो, बल्कि सर्वाङ्ग में सर्वतोभावेन प्रेम का ही आभास, विकास और प्रकाश हो।

७१

सब लोगों के प्रति जो तुम्हारा कर्त्तव्य है उसको बड़ी मधुरता और मुलायमियत से प्रकट करो—वही सत्सेवा है। जो लोग तुमसे बुद्धिमान और विवेकी हैं उन लोगों के प्रति आदर-पूर्वक प्रेम प्रकट करना, सम्मानपूर्ण स्नेह दर्शाना उचित है। जो लोग अपने से छोटे हैं, उनमें प्रीति-प्रतीति रखना तथा उनके अरमान पूरे करना यही उनकी सेवा है।

७२

कुछ लोग अपनी प्रशंसा कराने के लिए तथा दूसरों को प्रसन्न करके अपनी कीर्त्ति बढ़ाने के लिए सेवाव्रत को धारण करते हैं, वे अधमाधम हैं।

७३

विशुद्ध मानसवाले जैसे मित्र हैं, ठीक वैसे ही विमल हृदयवाले सेवक भी सुखवर्द्धक हैं। तुम अपने हृदय की जाँच करके देखो कि सेवा करने की जो तुम्हारी कामना और बुद्धि है, वह कहाँ तक स्वार्थ-शून्य है।

७४

कभी-कभी यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि जिसके बहुत मित्र हैं उसकी सहायता करें, किंवा जो सर्वप्रकारेण सहायकहीन है और हमलोगों की सहायता की आशा रखता है, उसकी। यदि असहाय निरवलम्ब को कोई आधार या आश्रय न मिले तो हमलोगों का सर्वोपरि कर्त्तव्य यही है कि बहुत-से सहायकों द्वारा उसी की सहायता करें।

७५

जो लोग चाहते हों कि दूसरों का व्यवहार-बर्त्ताव हमारे साथ अच्छा और भला रहे, तो उन्हें दूसरों के साथ भी वैसा ही बर्त्ताव-व्यवहार रखना चाहिए। जो लोग दूसरों को आश्रय देते हैं उन्हें स्वयं आश्रय मिलता है। जो दूसरों के हित के लिए सर्वस्व दे देता है उसके लिए संसार-भर प्राण तक का विसर्जन करने को तैयार रहता है। अपनी सेवा कराने की इच्छा रखनेवालों को दूसरों की सेवा करने का व्रत धारण करना चाहिए। जो अपनी भलाई चाहे—दूसरों की भलाई करे। जो सुखी होना चाहे—दूसरों को सुख पहुँचाने की चेष्टा करे।

७६

जो मित्र तुम्हें स्वार्थी समझे, उससे किसी प्रकार की प्रार्थना न करो। जो सेवा प्रेममयी नहीं है उसे स्वीकार करने का साहस न करो। जो सहायता स्नेह-सनी न हो उसे ग्रहण तक न करो। जो वस्तु तुम्हें दिल खोलकर न दी जाय उसे स्पर्श भी मत करो। निष्काम और निष्कपट प्रेम में बोरी हुई सेवा सर्वथा ग्राह्य है।

७७

सच्चे प्रेम का पूर्ण परिचायक वही सेवा सहायता है, जिसकी प्राप्ति के लिए की गई हुई प्रार्थना स्वार्थ-शून्य समझी गई हो। प्रकृति ही सेवा के सकल कार्य्यों का भली-भाँति निरीक्षण करती है और मनुष्य केवल उन्हीं कार्य्यों का हिसाब रखते हैं जो वे रुचिकर समझते हैं और जिनसे उन्हें सन्तोष होता है।

७८

परम्परागत प्रथा की लाज निबाहने के लिए संकोच-वश जो सेवा की जाती है वह कच्ची है और स्नेह-सुधा-सिंचित सेवा हृदयग्राहिणी एवं स्तुत्य है।

७९

अभाव या आवश्यकता के मुँह से जो आह निकलती है, वही दुःख है। वही आह शायद सेवा के मुख से प्रेम बनकर निकलती है।

८०

दूसरे का दोष-निरीक्षण करते समय अपनी ओर भी निहार लो। जिस दोष के लिए तुम दूसरे की हँसी उड़ाते हो—वह दोष तुम अपना ही समझ लो; क्योंकि यदि तुम दोष-युक्त नहीं होते तो दूसरे का दोष तुम्हें कदापि नहीं सूझता।

८१

दूसरों के विषय में ऐसी बात कहीं भी मत बोला करो कि उस आदमी के समक्ष वही बात पुनः बोलने में तुम असमर्थ हो जाओ।

८२

विद्या का महत्त्व यही है कि जब वह तुम्हारे पास है तो तुम्हें अपने कुटुम्ब-परिवार और सहवासियों के साथ पूर्ण सहानुभूति है।

८३

जबतक प्रेम का पाठ नहीं पढ़ोगे—तुम्हारी जानकारी दूसरों से नहीं बढ़ सकती। अतएव, दूसरों से बढ़कर सेवा करना सीखो।

८४

जो लोग पूर्णतया विद्या-सम्पन्न हैं वे अपनी पूरी जानकारी का गर्व नहीं करते; क्योंकि वे जानते हैं कि अहंकार में चूर रहनेवाले कैसे नीचातिनीच हैं।

८५

यदि तुम्हें दूसरों के ऊपर शासन करने या प्रभुत्व रखने का अधिकार प्राप्त हो तो यह बात भलीभाँति स्मरण रखो कि जबतक तुम अपने उच्च पद के गर्व से उन लोगों की सहानुभूति और ठकुरसुहाती संचय करना चाहोगे तबतक केवल तुम्हारी गुणावली ही उन लोगों की प्रीति पर विजय-लाभ कर लेगी।

८६

स्तुति करना छोड़ दो—सेवा करना सीखो! मनसा-वाचा-कर्मणा-कृत सेवा का आदर्श गो-माता को समझ लो। सूखी घास खाती, पर मधुर दूध पिलाती। उसकी सारी सन्तान, देह, आत्मा, सम्पत्ति केवल पर-हित-साधन के लिए हैं।

८७

भेद-भाव छोड़कर सेवा-व्रत धारण करो। संसार-भर चरणों पर लोटेगा।

८८

यदि तुम अपने दोषों को स्वयं सहर्ष स्वीकार कर लेने में समर्थ होगे तो सारी जनता तुम्हारे गुणों को भी ग्रहण करने में प्रसन्नता और उत्सुकता प्रकट करेगी।

८९

यदि तुम्हें अपने प्रभुत्व का गर्व होने लगे तो पहले इसकी जाँच कर लो कि यह कहाँ तक तुम्हारे आचरण और प्राप्त अधिकार के योग्य है, अर्थात् अपने अधिकार और स्वभाव की सीमा से बाहर बहक कर गर्व न करो। समझ लो कि प्रत्येक मनुष्य को—प्राणी-मात्र को—जिसे कुछ भी शक्ति दी गई है उसे, भिन्न-भिन्न प्रकार के—छोटे या बड़े अधिकार भी प्राप्त हैं।

९०

कर्त्तव्यच्युत मनुष्यों के साथ सहानुभूति न रखो। सचेत हो जाओ—कर्त्तव्य से विमुख किसी पुरुष पर कृपा की कोर न निहारो।

९१

सेवा करना ही केवल सच्ची प्रीति-पूजा है। सदा साथ-साथ लिपटे फिरने से—पीछे-पीछे लगे रहने से—सेवा नहीं हो सकती और न प्रेम ही निबह सकता है।

९२

पहले अपने को ठीक—दुरुस्त—करके काम-काज करने में लगाना चाहिए। ऐसा नहीं कि आप तो ठीक ही नहीं हुए—व्यर्थ की बातें झाड़कर बस अलग हो गये कि मेरे योग्य काम ही ठीक नहीं है। 'अपने तो नाचे न जाने, आँगन टेढ़ा'!

९३

जब तुम अपरिचित मनुष्यों के मध्य में रहो तो उन लोगों के प्रति अपने लिए शुभ कामना प्राप्त करने की चिन्ता रखो—उन लोगों की प्रीति-भरी सहानुभूति लाभ करने की चेष्टा करो—ऐसा नहीं कि अपनी बड़ाई और बहादुरी की डींग हाँककर उन लोगों पर अपने बड़प्पन का भार लादने में ही मस्त रह जाओ और अनेन-प्रकारेण सेवा से च्युत हो जाओ।

९४

प्रकृति-निर्मित संसार-भर की सेवा-शुश्रूषा में तन-मन से तत्पर रहना ही उस सर्वव्यापी जगदाधार की पक्की पूजा है।

९५

गुरु, पिता, माता, हित, मित्र, बन्धु, बान्धव, कुटुम्ब, परिवार, पड़ोसिया और सहवासी—इन मान्य-गण्य व्यक्तियों की सेवा करते हुए लोक-सेवा, देश-सेवा और क्रमशः विश्व-सेवा करना सीख जाओ।

९६

शुद्ध-शुद्ध विचारों को हृदय में स्थान देने का यही परिणाम होता है कि सेवा करने की जोरदार शक्ति प्राप्त होती है और हमलोगों की स्वार्थ-सिद्धि की बुद्धि का ह्रास हो जाता है। स्वार्थपरता को भूलकर विश्व-सेवा करने की लगन तभी लगेगी जब हम लोगों के विचार परिष्कृत और सुष्ठु होंगे।

९७

हमलोग जब बीमार पड़ते हैं तो तीमारदारी करनेवाले की सेवा-शुश्रूषा देखकर हमलोगों को यह अनुभव होता है कि सेवा के कार्य्यों को सविधि सम्पादन करने में मस्तिष्क को नियुक्त या उसका प्रयोग करने की उतनी ही आवश्यकता है जितनी शरीर की कार्य्य-कारिणी शक्ति की। दूसरों की विपत्ति देखकर अस्पष्ट रूप से अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करो; क्योंकि तुम्हारे अज्ञान के कार्य्यों से वह कहीं अधिकतर मूल्यवान है। समझो—लल्लो-चप्पो की चिकनी-चुपड़ी बातों से बढ़कर गुप्त साहाय्य-दान की महिमा है।

९८

जो लोग समझते हैं कि मेरे सेवा के कार्य्यों की समाप्ति हो गई, वे शायद पशुओं और पौधों की स्थिति भूल गये हैं, क्योंकि विश्व-सेवा ही के लिए ये भी हैं—विचार कर देख लो। ऐसे कितने पड़े हैं जिन्हें दूसरों की सेवा करने का समय नहीं मिलता, किन्तु उन्हें ही किसी प्रकार अपनी सेवा दूसरों से कराने के लिए प्रचुर समय मिल जाता है।

९९

जिस पुरुष के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है, उसके विषय में अपनी भली या बुरी सम्मति प्रकट नहीं करना ही दुर्लभ सेवा-कार्य्य है। जिसका बाह्याभ्यन्तर तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं है, उसकी समालोचना न करो। अयोग्य की निन्दा करो न योग्य की प्रशंसा।

१००

सेवा की जिस 'रीति' से सेव्य पुरुष सुखी हो सके वही (रीति) ग्राह्य है। अपनी मनमानी 'रीति' से सेवा करने से विश्व-सेवा का उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। जिस तरह की सेवा की जिसे आवश्यकता है उसे उसी तरह की सेवा सुलभ कराना या पहुँचाना विश्व-सेवकों का दृढ़ व्रत होना चाहिए। जो लोग इस बात पर असन्तोष प्रकट करते हैं कि उनकी सेवा उन्हीं की इच्छानुकूल 'रीति' से क्यों न स्वीकार की गई, स्यात् उन्हें अभी यह मालूम ही नहीं है कि सच्ची सेवा क्या वस्तु है।

१०१

सावधान हो—ध्यान दो—चेष्टा करो कि तुम्हारे सेवा के कार्य्यों से तुम्हारे वचनों की अपेक्षा अधिकाधिक उत्कृष्टता हो। कहने से बढ़कर करने में तत्पर रहो। उसे कदापि सच्ची सेवा न समझो जिसमें लग जाने से तुम अपने कर्त्तव्य से पराङ्मुख हुए जाते हो। मानव-जीवन को साफल्य प्रदान करनेवाले कर्त्तव्यों को करते हुए यदि विश्व-सेवा में अपनी प्रवृत्ति करोगे तो तुम्हारा जीवन निस्सन्देह अनुकरणीय एवं निष्कलङ्क हो सकेगा।

आसमुद्र पृथिवी—मेरा देश

और

परहित-साधन—मेरा धर्म्म !

आदर्श-परिचय

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता, ३,२१

मर्यादा-पुरुषोत्तम

राज्यं येन पटान्तलग्नतृणवत्त्यक्तं गुरोराज्ञया
पाथेयं परिगृह्य कार्मुकवरं घोरं वनं प्रस्थितः।
स्वाधीनः शशिमौलिचापविषये प्राप्तो न वै विक्रियां
पायाद्वः स विभीषणाग्रजनिहा रामाभिधानो हरिः॥

यदि एक ही व्यक्ति के व्यक्तित्व में अनेक आदर्शों का विकास देखना हो तो श्रीरामचन्द्रजी और श्रीकृष्णचन्द्रजी के व्यक्तित्व पर ध्यान दीजिए। राम और कृष्ण की भाँति अनेक आदर्शों का आधार संसार का कोई महापुरुष अकेला नहीं हुआ है। राम और कृष्ण में, चाहे जिस आदर्श को ढूँढ लीजिए, सबमें वे ही अलौकिक और अद्वितीय निकलेंगे। यही भारत का गौरव-स्थल है। यही भारत का मुख उज्ज्वल करनेवाला अक्षय यश है। यही भारत का सर्वस्व है।

भगवान रामचन्द्र आदर्श पुत्र, आदर्श शिष्य, आदर्श भाई, आदर्श जितेन्द्रिय आदर्श सुन्दर, आदर्श पति, आदर्श लोक-सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श नीतिज्ञ, आदर्श दृढ़प्रतिज्ञ, आदर्श वीर, आदर्श शरणागतवत्सल और आदर्श दयावान थे। प्रत्येक भाव और भेष में तथा प्रत्येक स्थान और अवस्था में वे निष्कलंक आदर्श ही तो थे। उनका चरित्र, उनका जीवन, उनका लौकिक व्यवहार, उनका कार्य-कलाप, सब-कुछ आदर्शमय है। उनमें समस्त आदर्शों की सम्पूर्णता देखकर ही केवल उन्हीं को मर्यादा-पुरुषोत्तम माना जाता है। प्रत्येक आदर्शों की कसौटी पर उन्हें कसकर देख लीजिए, खरा सोना की भाँति, वे सोलहो आने सच्चे निकलेंगे। मालूम होता है कि प्रत्येक आदर्श ने उन्हीं में पूर्ण विकास पाया है। जिस रूप में उन्हें देखिए, बस साक्षात् मूर्त्तिमान आदर्श के रूप में वे विराजमान दीख पड़ेंगे। उनका आदर्श मन-ही-मन, चिन्तन करने योग्य है। उनका आदर्श अहर्निश अध्ययन करने योग्य है। उनका आदर्श संसार की समस्त जातियों के लिए आदर्श होने योग्य है। उनका आदर्श भारतवर्ष का अभिमान-केन्द्र होने योग्य है। उनका आदर्श अखिल भूमण्डल के इतिहास का अलंकार होने योग्य है। वह किस योग्य नहीं हैं यह विचारने ही योग्य नहीं है। उनका तो विचार करने मात्र से ही सर्वाङ्ग में

रोमांच हो जाता है, गला भर आता है, आँखों में आँसू उमड़ आता है, छाती उमड़ उठती है, जी जुड़ा जाता है, जीभ जकड़ जाती है, कलेजा ठण्डा हो जाता है और प्राणों में परमानन्द-पुलकावली छा जाती है। कितना प्रभावशाली आदर्श है! कैसा अमृतमय आदर्श है। क्या ही अनुपम आदर्श है! कुछ कहते नहीं बनता।

आदर्श पुत्र के रूप में—

वैसा सर्वस्वत्यागी पुत्र भारत के सिवा किसी अन्य देश के किसी पिता को प्राप्त करने का सौभाग्य आज तक नहीं हुआ, न आगे होनेवाला है। पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र के लिए कितना बड़ा धर्म है, यह तो उन्होंने प्रत्यक्ष प्रमाणित करके दिखा दिया है। जिस-किसी को देखना हो, आँखें खोलकर देख लें।

तुलसीदास जी भगवान रामचन्द्र की मंगलदायिनी चिरप्रसन्न मुखाम्बुजश्री का स्मरण करते हुए कहते हैं—

'प्रसन्नतां या न गताभिषेकतः तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।'
नव गयन्द रघुबीर मन, राज अलान समान।
छूट जानि बन-गवन सुनि उर अनन्द अधिकान॥ —(*तुलसीदास*)

जब कैकेयी ने रामचन्द्र से कहा कि हे राम! तुम्हारे ही अधीन सब-कुछ है, राजा तुमसे कहते शर्माते हैं, वे सत्य के पाश में बद्ध हैं, तुम्हीं राजा को उबार सकते हो; क्योंकि 'पुत्रशब्देन चैतद्धि नरकात् त्रायते पिता' तब यह सुनकर रामचन्द्र ने कहा—

पित्रर्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्वणम्।
सीतां त्यक्ष्येऽथ कौसल्यां राज्यं चापि त्यजाम्यहम्॥
अनाज्ञप्तोऽपि कुरुते पितुः कार्य्यं स उत्तमः।
उक्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः॥
उक्तोऽपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते।
अतः करोमि तत्सर्वं यन्मामाह पिता मम॥
सत्यं सत्यं करोम्येव रामो द्विर्नाभिभाषते॥[1]

पुनः पिता को आश्वासन देते हुए कहते हैं—

राज्यात्कोटिगुणं सौख्यं मम राजन्वने सतः।
त्वत्सत्यपालनं देव कार्य्यञ्चापि भविष्यति॥

१. पिता के लिए प्राण दे दूँगा, विष पी लूँगा, सीता-सी सती और कौसल्या-सी माता तथा राज्य भी त्यक्त कर दूँगा। बिना कहे जो पिता की आज्ञा का पालन करता है, वह उत्तम पुत्र है। कहने पर आज्ञापालन करनेवाला मध्यम है। कहने पर भी न करनेवाला 'मल' है। इसलिए, जो कुछ मेरे पिताजी की आज्ञा है, सो सब करूँगा। मैं सच कहता हूँ, निश्चय ही उनका सत्य रक्खूँगा। मेरा यह वचन अब मिथ्या या अन्यथा नहीं हो सकता।—(अध्यात्म रामायण, अयोध्याकाण्ड)

फिर लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं—

भोगा मेघवितानस्थ विद्युल्लेखेव चञ्चलाः ।
आयुरप्यग्निसन्तप्त लोहस्थजलबिन्दुवत् ॥
यथा व्यालगलस्थोऽपि भेको दंशानपेक्षते ।
तथा कालाहिनो ग्रस्तो लोको भोगानशाश्वतान् ॥[1]

किन्तु, जब सीताजी के पास आते हैं, तब वह सुस्मितभाषिणी सीता स्वर्णपात्रस्थ सलिल लेकर भक्तिपूर्वक पद-प्रक्षालन करती हुई पूछती है कि 'सेना बिना क्यों आये ? श्वेत-छत्र कहाँ है ? बाजे-गाजे कहाँ हैं ? किरीट-कुण्डल क्या हुए ? सामन्तराज के साथ सादर क्यों नहीं आये ?'

इतिस्म सीतया पृष्टो रामः सस्मितमब्रवीत् ।
राज्ञा मे दण्डकारण्ये राज्यं दत्तं शुभेऽखिलम् ॥
अतस्तत्पालनार्थाय शीघ्रं यास्यामि भामिनि ॥[2]

आदर्श शिष्य के रूप में—

(१)

कौतुक देखि चले गुरु पाहीं । जानि बिलम्ब त्रास मन माहीं ॥

(२)

मुनिवर सयन कीन्ह तब जाई । लगे चरन चाँपन दोउ भाई ॥
बार-बार मुनि आज्ञा दीन्हीं । रघुबर जाइ सयन तब कीन्हीं ॥

(३)

गुरु ते पहिलेहिं जगतपति जागे राम सुजान ।

(४)

समय जानि गुरु आयसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥

(५)

हृदय सराहत सीय लुनाई । गुरु समीप गवने दोउ भाई ॥
राम कहा सब कौसिक पाहीं । सरल सुभाव छुआ छल नाहीं ॥

(६)

गुरुहिं प्रनाम मनहिं मन कीन्हा । अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा ॥

—(*जनकपुर-प्रसंग*)

---

१. बादल में कड़कती हुई बिजली की तरह भोग चंचल हैं । यह आयु भी तप्त लोहे के तवे पर का जलविन्दु है । जैसे सर्पग्रस्त मेढ़क भी पतंगों को खाने के लिए लालायित रहता है वैसे ही कालग्रस्त मनुष्य भी क्षणिक भोगों की अपेक्षा किया करता है ।

२. सीता द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर हँसकर बोले कि हे शुभे ! राजा ने मुझे समस्त दण्डकारण्य का राज्य दे दिया ! इसलिए, उसका पालन करने के निमित्त मैं शीघ्र जंगल में जाऊँगा ।

आदर्श भाई के रूप में—

(१)

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा, कहुँ पट कहुँ निषंग धनुतीरा।
बरबस लिये उठाइ उर लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरा सबहिं अपान॥
मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी, कविकुल अगम करम मन बानी।
परम प्रेम पूरन दोउ भाई, मन बुधि चित अहमिति बिसराई।
—(चित्रकूट-प्रसंग)

(२)

गहे भरत पुनि प्रभुपद पंकज, नमत जिनहिं सुरमुनि शंकर अज।
परे भूमि नहिं उठत उठाये, बर करि कृपासिन्धु उर लाये।
स्यामल गात रोम भये ठाढ़े, नव राजीव नयन जल बाढ़े।
—(चित्रकूट-प्रसंग)

(३)

सुत बित नारि भवन परिवारा, होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।
अस बिचारि जिय जागहु ताता, मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।
जथा पंख बिनु खगपति दीना, मनि बिनु फनि करिवर कर हीना।
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही, जौं जड़ दैव जिवावइ मोही।
जैहों अवध कवन मुँह लाई, नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।
—(लक्ष्मण-मूर्च्छा-प्रसंग)

आदर्श जितेन्द्रिय के रूप में—

(१)

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ, मन कुपंथ पग धरै न काऊ।
मोहि अतिसै प्रतीति जिय केरी, जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी।
—(जनकपुर-पुष्पवाटिका)

(२)

सुनहु सखा कह कृपानिधाना, जेहि जय होइ सो स्यंदन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल बिबेक दम परहित घोरे, छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजन सारथी सुजाना, बिरति चर्म सन्तोष कृपाना।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा, बर बिज्ञान कठिन कोदण्डा।
अमल अचल मन त्रोन समाना, सम दम नियम सिलीमुख नाना।

कवच अभेद विप्र पद पूजा, यहि सम विजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाके, जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।
महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो वीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मति धीर॥

—(लंका-युद्ध में विभीषण के प्रति)

आदर्श सुन्दर के रूप में—

कितनी अपार 'सुषमा' है! विदेह जनकजी श्रीविश्वामित्र मुनि से कहते हैं—

इनहिं विलोकत अति अनुरागा, बरबस ब्रह्मसुखहिं मन त्यागा।
सहज बिराग रूप मन मोरा, थकित होत जिमि चन्द चकोरा।

जनकपुर के हाट-बाट में—

जुवती भवन झरोखन्हि लागीं, निरखहिं रामरूप अनुरागीं।
कहहिं परस्पर बचन सप्रीती, सखि इन्ह काम कोटि छबि जीती।
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं, सोभा अस कहुँ सुनियत नाहीं।
बिष्णु चारि भुज बिधि मुख चारी, बिकट बेख मुख पंच पुरारी।
अपर देव अस कोउ न आही, यह छबि सखि पटतरिये जाही।
कहहु सखी अस को तनुधारी, जो न मोह अस रूप निहारी।

विवाह के समय—

(१)

राम रूप नख सिख सुभग, बारहिं बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल, उमा समेत पुरारि॥

(२)

आनन्दकन्द बिलोकि दूलह सकल हिय हर्षित भई।
अंभोज अम्बक अम्बु उमँगि सु अंग पुलकावलि छई॥
जो सुख भा सिय मातु मन, देखि राम बर बेष।
सो न सकहिं कहि कलप सत, सहस सारदा सेष॥

वनयात्रा के समय—

(१)

मुदित नारि नर देखहिं सोभा, रूप अनूप नयन मन लोभा।
एक टक सब सोहहिं चहु ओरा, रामचन्द्र मुख चन्द्र चकोरा।

(२)

जों पै इनहिं दीन्ह बनवासू, कीन्ह बादि विधि भोग बिलासू॥
जौं ए मुनि पट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किये करतार॥

(३)

इनहिं देखि बिधि मन अनुरागा, पटतर जोग बनावइ लागा।
कीन्ह बहुत स्रम एक न आये, तेहि इरिषा बन आनि दुराये।

चित्रकूट में कोल-किरात—

कहत सुनत रघुबीर निकाई, आइ सबन्हि देखे रघुराई।
करहिं जो हारु भेंट धरि आगे, प्रभुहिं बिलोकहिं अति अनुरागे
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े, पुलक सरीर नयन जल बाढ़े

पंचवटी में राक्षसी सेना—

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी, थकित भये रजनीचर भारी।
सचिव बोलि बोले खर-दूषन, यह कोउ नृपबालक नर-भूषन।
नाग असुर सुर नर मुनि जेते, देखे जिते हते हम केते।
हम भरि जनम सुनहु सब भाई, देखी नहिं असि सुन्दरताई।
जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा, बध लायक नहिं पुरुष अनूपा।

समुद्र-तट पर—

सेतुबन्ध ढिग चढ़ि रघुराई, चितव कृपालु सिन्धु बहुताई।
देखन कहँ प्रभु करुनाकन्दा, प्रगट भये सब जलचर बृन्दा।
मकर नक्र झख नाना ब्याला, सत जोजन तन परम बिसाला।
ऐसेउ एक तिनहिं जे खाहीं, एकन्ह के डर तेपि डेराहीं।
प्रभुहिं बिलोकहिं टरहिं न टारे, मन हरषित सब भये सुखारे।
तिन की ओट न देखिय बारी, मगन भये हरि रूप निहारी।

आदर्श पति के रूप में—

जैसे ब्रह्मा की इस सृष्टि में सीता के लिए दूसरे रामचन्द्र नहीं, वैसे ही राम के लिए दूसरी सीता भी नहीं। अनन्य पत्नीव्रत भगवान रामचन्द्र कहते हैं—

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा, जानत प्रिया एक मन मोरा।
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं, जानु प्रीति रस एतनहिं माहीं।
—(हनुमान द्वारा सीता को संदेश)

'हनुमन्नाटक' में—

सद्यः पुरीपरिसरेषु शिरीषमृद्वी गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥[1]

कवितावली-रामायण में—

जल को गये लक्खन हैं लरिका परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं अरु पाय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े॥
'तुलसी' रघुबीर प्रिया स्रम जानि कै बैठि बिलम्ब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े॥
—(वन-यात्रा के मार्ग में)

सीता-हरण के समय विरह-विलाप—

हा गुनखानि जानकी सीता, रूप सील व्रत नेम पुनीता।
लछिमन समझाये बहु भाँती, पूछत चले लता तरु पाँती।
हे खगमृग, हे मधुकर स्रेनी, तुम देखी सीता मृगनैनी।
खंजन सुक कपोत मृग मीना, मधुप-निकर कोकिला प्रबीना।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं, नेकु न सङ्क सकुच मन माहीं।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू, हरषे सकल पाइ जनु राजू।
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं, प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं।
—(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड)

---

१. अयोध्यापुरी से निकलते ही, सिरिस-सुमन की-सी सुकुमारी सीता ने तीन-चार ही कदम चलकर बार-बार पूछा कि अब और कितनी दूर चलना बाकी है? यह सुनकर रामचन्द्र की आँखों में पहले-पहल आँसू भर आया! (पहले कभी रोये नहीं थे, राजपाट और प्रिय परिवार छोड़ने के समय भी हँसते ही रहे थे।)

पुर ते निकसी रघुवीर बधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की, पट सूखि गये मधुराधर वै।
फिर बूझति है चलनो अब केतिक पिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥ (तुलसी)

रोते ही रोते रामचन्द्र कहते हैं—

अरुणदलनलिन्यास्निग्धपादारविन्दा
कठिनतनुधरण्यां यात्यकस्मात्स्खलन्ती।
अवनि! तव सुतेयं पादविन्यासदेशे
त्यज निजकठिनत्वं जानकी यात्यरण्यम्॥ - (हनुमन्नाटक)

अर्थात्—अरुण कमलदल के समान कोमल चरणोंवाली सीता कठोर भूमितल पर अकस्मात् ठुकराती चलती है। अतएव, हे पृथ्वी! तुम्हारी पुत्री जानकी जंगल को जा रही है, जहाँ-जहाँ उसका चरण पड़े, वहाँ-वहाँ अपना काठिन्य छोड़ दो।

आदर्श लोक-सेवक के रूप में—

निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आस्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ।।—(अरण्यकाण्ड)

आदर्श मित्र के रूप में सखा सुग्रीव से—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी, तिनहिं बिलोकत पातक भारी ।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना, मित्रक दुख रज मेरु समाना ।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा, गुन प्रगटइ अवगुनहिं दुरावा ।
लेत देत मन सङ्क न धरई, बल अनुमान सदा हित करई ।
बिपति काल कर सतगुन नेहा, स्रुति कह सन्त मित्र गुन एहा ।
—(किष्किन्धाकाण्ड)

आदर्श नीतिज्ञ की तरह सुग्रीव से कहते हैं—

एक रूप तुम भ्राता दोऊ, तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ ।
कर परसा सुग्रीव सरीरा, तनु भा कुलिस गई सब पीरा ।
मेली कण्ठ सुमन कै माला, पठवा पुनि बल देइ बिसाला ।
पुनि नाना बिधि भई लराई, बिटपओट देखहिं रघुराई ।

बालि का उपालम्भ सुनकर बोले—

अनुज-बधू भगिनी सुत-नारी, सुनु सठ ए कन्या सम चारी ।
इनहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई, ताहि बधे कछु पाप न होई ।
मूढ तोहि अतिशय अभिमाना, नारि सिखावन करेसि न काना ।
मम भुजबल आस्रित तेहि जानी, मारा चहसि अधम अभिमानी ।

शरणागत विभीषण के प्रति—

कहु लंकेस सहित परिवारा, कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ।
खल मंडली बसहुँ दिन-राती, सखा धर्म निबहइ केहि भाँती ।
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती, अति नय निपुन न भाव अनीती ।
तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे, धरउँ देह नहि आन निहोरे ।

सागर-शासन के रोष में—

लछिमन बान सरासन आनू, सोखउँ बारिधि बिसिख कृसानू ।
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती, सहज कृपन सन सुन्दर नीती ।
ममता-रत सन ज्ञान-कहानी, अति लोभी सन बिरति बखानी ।
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि कथा, ऊसर बीज बये फल जथा ।
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा, यह मत लछिमन के मन भावा ।

आदर्श दृढप्रतिज्ञ के रूप में—

उनकी प्रण-वीरता तो देखिए—

(१)

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहिं एकहिं बान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गये न उबरहिं प्रान ॥

(२)

यदि जानामि तां साध्वीं जीवंतीं यत्र कुत्र वा ।
हठादेवाहरिष्यामि सुधामिव पयोनिधेः ॥
प्रतिज्ञां शृणु मे भ्रातर्येन मे जनकात्मजा ।
नीता तं भस्मसात्कुर्य्यां सपुत्रबलवाहनम् ॥*

आदर्श वीर के रूप में—

(१)

राम कहा मुनि कहहु बिचारी, रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी ॥
छुवतहिं टूट पिनाक पुराना, मैं केहि हेतु करउँ अभिमाना ॥
जो हम निदरहिं विप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ ।
तौ अस को जग सुभट जेहि भयबस नावहिं माथ ॥
देव दनुज भूपति भट नाना, सम बल अधिक होउ बलवाना ॥
जौं रन हमहिं प्रचारइ कोऊ, लरहिं सुखेन काल किन होऊ ॥
छत्रिय तनु धरि समर सकाना, कुल कलंक तेहि पामर जाना ॥
कहउँ सुभाव न कुलहिं प्रसंसी, कालहुँ डरहिं न रन रघुबंसी ॥

—(परशुराम के प्रति)

* यदि सती सीता का कहीं भी पता लग जाय और वह अबतक जीवित हो तो उसे ठीक वैसे ही बलपूर्वक हरण कर लाऊँगा जैसे समुद्र मथकर अमृत निकाला गया था। हे भाई! मेरी जानकी का जो हरण कर ले गया है, मैं तुमसे प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, उसका सकुल ससैन्य संहार कर डालूँगा।—(अध्यात्मरामायण से)

(२)

हत्वा युद्धे दशास्यं त्रिभुवनविषमं वामहस्तेन चापं।
भूमौ विष्टभ्य तिष्ठन्नितरकरधृतं भ्रामयद्बाणमेकम्।
आरक्तोपान्तनेत्रः शरदलितवपुः सूर्य्यकोटिप्रकाशो।
वीरश्रीबन्धुराङ्गस्त्रिदशपतिनुतः पातु मां वीररामः ॥[१]

—(अध्यात्म रामायण)

आदर्श राजा के रूप में—

(१)

भूमि सप्त सागर मेखला, एक भूप रघुपति कोसला ॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज नहिं काहुहिं ब्यापा ॥
राम राजकर सुख संपदा, बरनि न सकई फनीस सारदा ॥
चारिहु चरन धरम जग माहीं, पूरि रहा सपनेहु अघ नाहीं ॥

(२)

राघवे शासति भुवं लोकनाथे रमापतौ।
वसुधा शस्यसम्पन्ना फलवन्तश्च भूरुहाः ॥
जना धर्मपराः सर्वे पतिभक्तिपराः स्त्रियः।
नापश्यत्पुत्रमरणं कश्चिद्राजनि राघवे ॥[२]

(३)

नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥
न पर्यदेवन्विधवा न च व्यालकृतं भयम्।
न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥[३]

१. सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुन्दुभि गहगही।
संग्राम अङ्गन राम अङ्ग अनंग बहु सोभा लही ॥
सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उड्डगन भ्राजहीं ॥
भुजदण्ड सर कोदण्ड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु राय-मुनी तमाल पर बैठी बिपुल सुख आपने ॥

—(रामचरितमानस, लंकाकाण्ड)

२. राम-राज्य में भूमि हरी-भरी, वृक्ष फलयुक्त, प्रजा धर्मपरायण और स्त्रियाँ पतिव्रता थीं। किसी को पुत्र-शोक नहीं होता था। —(अध्यात्म रामायण)

३. वृक्ष सदा फल-फूल से लदे रहते थे। प्रजा की इच्छा के अनुसार मेघ जल बरसाते थे और त्रिविध वायु बहती रहती थी। वैधव्य का दुःख और सर्प तथा रोगों का भय 'रामराज्य' में नहीं था। —(वाल्मीकि-रामायण)

आदर्श शरणागतवत्सल के रूप में—

कोटि विप्रवध लागहि जाहू, आये सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं, जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥
जो नर होइ चराचर द्रोही, आवइ सभय सरन तकि मोही ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना, करउँ सद्य तेहि साधु समाना ॥

आदर्श दयालु के रूप में—

दीन मलीन अधीन है अङ्ग विहङ्ग पर्यौ छिति खिन्न दुखारी ॥
राघव दीनदयालु कृपालु को देखि दुखी करुणा भई भारी ॥
गीध को गोद में राखि दयानिधि नैन सरोजनि में भरि बारी ॥
बारहिं बार सुधारत पंख जटायु की धूरि जटान सों झारी ॥

रामायण ही भारतवर्ष के महान् आदर्शों का आदिम भाण्डार है। एक-से-एक आदर्श उसके अन्दर भरे पड़े हैं। अन्वेषक और अनुयायी का अभाव है।

संसार की कौन-सी ऐसी वस्तु है जो अपने अमूल्य आदर्श से कोई शिक्षा नहीं देती। 'सर्वमादर्शमयं जगत्।'

—मासिक 'आदर्श' (कलकत्ता); कार्त्तिक, संवत् १९७९ वि० (सन् १९२२ ई०)

लीला-पुरुषोत्तम

भगवान श्रीकृष्ण संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष माने जाते हैं। केवल भारतीयों द्वारा ही नहीं, संसार के बड़े-बड़े आदर्श विद्वानों ने, निस्संकोच भाव से, यह स्वीकार किया है कि भगवान श्रीकृष्ण का जीवन सर्वथा आदर्श है और वे संसार के आदर्श व्यक्तियों के सिरताज हैं। कारण यह है कि भगवान श्रीकृष्ण का जीवन अविरल प्रेम और अलौकिक माधुरी से यथेष्ट परिपूर्ण है। वे पूर्ण-कला-युक्त ईश्वरावतार हैं, विश्वविख्यात अनुपम गीता-ग्रंथ के व्याख्याता हैं, सौन्दर्य और माधुर्य के भाण्डार हैं, महिमामय ज्ञान के जगत्पूज्य आचार्य्य हैं,—केवल इन्हीं कारणों से वे आदर्श नहीं हैं, बल्कि वे इसलिए सर्वोच्च आदर्श महात्मा हैं कि वे निष्काम प्रेम की साक्षात् सजीव मूर्त्ति हैं, आदि-रस के मर्मज्ञ रसज्ञ एवं रसिक-शिरोमणि होने पर भी वे योगीश्वर हैं, व्रजराजेश्वर होकर भी वे गोपाल हैं, पार्थ के स्वार्थ के लिए सारथी होकर भी वे युद्ध में तटस्थ ही रहे, द्वारकाधीश होकर भी वे दरिद्र सुदामा के सखा ही रहे और भक्तराज भीष्म पर चक्र चलाकर भी वे भक्त-वत्सल ही रहे!

लोग कहते हैं कि, वे सोलह हजार नारियों में विहार करते थे; अतएव, सौन्दर्य्योपासक थे। शास्त्र कहते हैं कि नहीं, सोलह हजार नारियों में विहार करते थे; शरीर में सोलह हजार नाड़ियाँ हैं। योगी लोग नाड़ियों में रमण करते हैं। अतएव अन्तःप्रज्ञ, अन्तर्ज्योति, अन्तर्यामी थे।

लोग कहते हैं कि वे चीर-चोर और माखन-चोर थे। शास्त्र कहते हैं कि नहीं, द्रौपदी-चीर-वर्द्धक और नवनीत-हृदय[1] सन्तों के चित्तचोर हैं, बल्कि अनेक जन्मार्जित पाप-चौर होने के कारण चौराग्रगण्य हैं! ब्रह्मण्य हैं! शरण्य हैं! धन्य हैं!

लोग कहते हैं कि महाभारत के मूल कारण बनकर उन्होंने ही भारत को गारत कर दिया। शास्त्र कहते हैं नहीं, अत्याचारियों का अन्त करके उन्होंने देश में शान्ति स्थापित की। विद्वानों की भी राय है कि महाभारत होने से ही भारत गारत नहीं हुआ, बल्कि भारत गारत हो चुका था! इसलिए महाभारत हुआ।

महाभारत द्वारा भारत का संहार करना भगवान श्रीकृष्ण का उद्देश्य नहीं था; किन्तु वैर-विरोध, ईर्ष्या-द्वेष, मनोमालिन्य, वैमनस्य आदि मनुष्यताध्वंसक दुर्गुणों की जड़ काटकर, देश में, नये सिरे से, शान्ति और सुख का उजाला फैलाने के लिए ही उन्हें अपना यह सत्य वाक्य चरितार्थ करना पड़ा—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥—(गीता)

भगवान श्रीकृष्ण की बाल-लीला, रासलीला, अलौकिक लीला, नीति-लीला, ज्ञान-लीला, प्रेम-लीला, भक्ति-लीला, शक्ति-लीला, सभी कुछ विचित्र और पवित्र हैं, सभी कुछ मधुर और मनोहर हैं, सभी कुछ स्वास्थ्यमय और रहस्यमय हैं, सभी कुछ अचिन्त्य और अनन्त हैं। उनकी लीला रसीली और रँगीली है, उनकी शोभा छबीली और फबीली है, उनकी प्यारी वंशी सुरीली और चुभीली है। उनकी सबसे प्यारी वस्तु बाँस की बाँसुरी थी। उनकी सबसे प्यारी भोज्य-सामग्री माखन-मेवा-मिसरी थी। उनकी सबसे प्यारी क्रीड़ास्थली व्रजभूमि थी। उनकी सबसे प्यारी देवी कजरी छबरी गैया थी। उनकी सबसे प्यारी लीला कदम की छहियों में गलबहियाँ थी। धन्य लीला-ललाम विश्वलोचनाभिराम घनश्याम!

भगवान श्रीकृष्ण को आदर्श बालक, आदर्श युवक, आदर्श वीर, आदर्श प्रेमी, आदर्श रूपवान, आदर्श ज्ञानी, आदर्श शरणागतवत्सल आदर्श नीतिज्ञ तथा आदर्श त्यागी—चाहे जिस रूप में देखिए, आप उनकी पूर्णता देखकर चकित और थकित हो जायँगे।

भगवान कृष्ण ने अपने रामावतार से भी बढ़कर कृष्णावतार में अपने आदर्श शक्ति-परिचय से संसार को मुग्ध कर दिया है। जिस प्रकार भगवान श्रीरामचन्द्र को, जनकपुर की रंगशाला में, राजाओं ने रणधीर-वीर के रूप में, राक्षसों ने महाकाल के रूप में देखे थे, उसी प्रकार मथुरा की रंगभूमि में, श्रीकृष्णचन्द्र भी, पहलवानों और योद्धाओं को वज्र के समान, स्त्रियों को कामदेव के समान, ग्वालबालों को बन्धु के समान, राजाओं को सम्राट् के समान, कंस को प्राणान्तक यमराज के समान, ज्ञानियों को ब्रह्माण्ड-व्याप्त विराट् मूर्त्ति के समान, मनुष्यों को सुन्दर राजा के समान, और अपने माता-पिता

1. 'कहा कबिन पै कहै न जाना, सन्त हृदय 'नवनीत' समाना।'—तुलसीदास

को प्यारे-दुलारे कुँवर-कन्हैया के समान तथा यदुवंशियों को ईश्वर के समान प्रतीत हुए थे। जो जिस दृष्टि से देखे, उसी दृष्टि के अनुसार सम्पूर्ण उच्चादर्श से युक्त देख पड़ना—ठीक उसकी दृष्टि-कामना के अनुरूप ही नजर आना—यही आदर्श की महत्ता है, यही आदर्श की चरम सीमा है, यही आदर्श का चूड़ान्त गौरव है और यही आदर्श की ज्वलन्त शक्ति है।

वाल्मीकि और तुलसी के महाकाव्यों को राजा और रंक, पण्डित और मूर्ख, रसिक और विरक्त, सती और वेश्या, भक्त और अभक्त तथा साधु और कुकर्मी, सभी पढ़ते हैं, सभी सुनते हैं, सभी सुख पाते हैं, सभी आनन्दित होते हैं, सभी अपने मन की लगन पूरी करते हैं, सभी संतुष्ट हो जाते हैं; पर प्रत्येक जन के सुख-सन्तोष में आकाश-पाताल का अन्तर है, अथच अपनी-अपनी अभिलाषा के अनुकूल सब-के-सब अपने आदर्श को भी पा जाते हैं। यही आदर्श की सम्पूर्णता है।

भगवान श्रीकृष्ण का आद्यन्त जीवन केवल शुद्ध प्रेम के अमृतमय प्रवाह में प्रवाहित हो रहा है। वे प्रेम के आदर्श थे या स्वयं आदर्श प्रेम के रूप थे, यह निर्णय करना असम्भव है। उनके अनूप रूप में प्रेम का जादू, उनकी मीठी वाणी में प्रेम का जादू, उनके मधुर मिलन और बिछुड़न में प्रेम का जादू, उनके सलोने नयनों में प्रेम का जादू, उनकी प्यारी वंशी में प्रेम का जादू, उनकी प्रत्येक अद्भुत लीला में प्रेम का जादू—केवल जादू, केवल मोहिनी शक्ति, केवल छू-मन्तर और केवल प्रबल आकर्षण! कैसे विलक्षण बाजीगर हैं, कितने बड़े मायावी नट हैं, कुछ कहा नहीं जाता, कुछ समझ में नहीं आता। अपार है उनकी महिमा, असीम है उनकी लीला, अगाध है उनका प्रेम-सागर। फलतः, वे प्रेम के सर्वश्रेष्ठ आदर्श हैं और आदर्श प्रेम के सर्वश्रेष्ठ आचार्य हैं; वे आदर्श प्रेम के विश्ववन्द्य विधाता हैं और प्रेम का उच्च-से-उच्च आदर्श प्रकट करनेवाले जगद्गुरु हैं।

उन्होंने अपना आदर्श इस खूबी के साथ दिखाया है कि प्रत्येक अवस्था में अद्वितीय आदर्श महापुरुष दृष्टिगोचर होते हैं। जिसने श्रीमद्भागवत को ध्यानपूर्वक पढ़ा है, वह अच्छी तरह समझ सकता है कि भगवान श्रीकृष्ण का आदर्श जीवन जिस प्रकार प्रेम-पीयूष-परिपूर्ण है, उसी प्रकार महाभारत पढ़कर यह जान सकता है कि वे एक आदर्श नीतिज्ञ और आदर्श ज्ञानी थे। श्रीमद्भागवत और महाभारत में एक ओर उनका रण-कौशल, उनकी अद्भुत वीरता और उनका प्रेम-प्रभाव देखकर यदि चकित होना पड़ता है तो दूसरी ओर उन्हें आदर्श साम्राज्य-संस्थापक, आदर्श अत्याचार-संहारक आदर्श क्रान्तिकारी नीतिज्ञ और आदर्श ज्ञानोपदेशक के रूप में देखकर उनके प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न होती है। निस्स्वार्थ क्रान्तिकारी और निःस्पृह नीतिज्ञ की—उनकी—आदर्श मूर्ति जो महाभारत में विराजमान है वह संसार की प्रत्येक जाति और प्रत्येक राष्ट्र के नीतिज्ञों और क्रान्तिकारियों के लिए आदर्श है।

हिन्दी-साहित्य में भगवान श्रीकृष्ण की मनमोहिनी एवं लोकरंजिनी लीला का विशद वर्णन अनेक यशस्वी कवियों के प्रसिद्ध ग्रंथों में विद्यमान है। उसे देखकर यह कहना

पड़ता है कि वे आदर्श प्रेमी और आदर्श रूपवान् तो थे ही—आदर्श काव्यमर्मज्ञ और आदर्श सच्चरित्र भी थे। कुछ हिन्दी-कवियों के काव्यों में उनका चरित्र अरुचिकर देख पड़ता है; पर वह केवल कल्पना का हवाई महल है, उसमें तथ्य का लेश नहीं। श्री सूरदासजी आदि भक्त-कवियों के महाकाव्यों में उनके आदर्श रूपलावण्य, आदर्श प्रेमासक्ति, आदर्श लीला-वैलक्षण्य और आदर्श विश्वहितैषणा का नेत्ररंजक चित्र देखिए, हर्गिज आप मुग्ध हुए बिना न रहेंगे। उनके आदर्श जन्मभूमि प्रेम के विषय में एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'सर्व सोन की बनी द्वारिका, मथुरा की छवि नाहीं'।

उनकी आदर्श बाल-लीला भक्तप्रवर सूरदास के सूरसागर में देखिए—संसार में वैसा आदर्श बाल्य-जीवन दुर्लभ है। उनकी आदर्श मातृभक्ति, पितृभक्ति, पत्नी-प्रेम, बन्धु-बान्धव-स्नेह और सख्य का महत्त्व भी श्रीसूरदासजी के ललित पदों में ही पाइएगा। अनेक उत्पाती राक्षसों का वध करने में उनके अपार वीर्य्य की महिमा देखिएगा। मथुरा छोड़कर द्वारका-नामक कंचन-दुर्ग समुद्र-तट पर निर्माण करके अपने वंशधरों को शान्तिमय जीवन-निर्वाह करने के योग्य बना देने में उनकी आदर्श दूरदर्शिता देखिएगा। अनेक अन्यायी राज्यों को भयंकर क्रान्तियों की चक्की में पीसकर, प्रजावर्ग की शान्ति की रक्षा करके, राज्य-प्राप्ति के लोभ से सर्वथा मुक्त रहने में उनकी आदर्श निःस्वार्थता और निराली नीतिज्ञता देखिएगा। अनेक साम्राज्यों के संस्थापक होकर भी स्वयं राजा न होना, यह खूबी उन्हीं की आदर्श प्रकृति में पाइएगा। कौरव-सभा में, महाभारत की रणभूमि में, परीक्षित को जीवन-दान देने में उन्होंने जो अपने अचिन्तनीय योग-बल की अखण्ड महिमा प्रकट कर दी है उसे देखकर आप उन्हें निस्सन्देह आदर्श योगीश्वर मानिएगा—इसमें कहीं कोई मीन-मेख नहीं।

विश्व-ग्रंथ-शिरोमणि, सकल जगत्पूज्य, ज्ञानामृत-समुद्र, महामहिमशाली एवं सर्वसिद्धान्तैकसारभूत श्रीमद्भगवद्गीता ही भगवान श्रीकृष्ण की आत्मा है। वह गीता ही उनकी चरित्र-कसौटी है। वह गीता ही उनके हृदय का सच्चा चित्र है। वह गीता ही उनके जीवन की स्वर्गीय ज्योति है। वह गीता ही उनके सिद्धान्तों की वह अटूट धारा है, जो प्रलय तक कदापि सूख नहीं सकती और जिसमें संसार के सारे मत डूबकर बहते रहेंगे। वह गीता ही उनकी दिव्य वाणी है, जो त्रिकाल-सत्य और त्रिकाल-आराध्य तथा त्रिकाल-उपास्य है। वह गीता ही श्रीकृष्ण के समस्त आदर्शों की विश्रामस्थली है। वह गीता ही प्रणव-पादप की जड़ है। वह गीता ही निगमागम का नवनीत है। केवल वही भगवान श्रीकृष्ण के समस्त अलौकिक आदर्शों पर अमृतमयी प्रकाश-धारा बरसा रही है। उसी गीता के दो महद्वाक्यों को आमरण स्मरण रखकर अपना यह नरजन्म सार्थक कीजिए—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

—मासिक 'आदर्श' (कलकत्ता); मार्गशीर्ष, १९७९ वि० (सन् १९२२ ई०)

आदर्श देश—स्वर्ग-सहोदर भारतवर्ष

जितने गुणसागर नागर हैं, कहते यह बात उजागर हैं।
अब यद्यपि दुर्बल, आरत है, पर भारत के सम भारत है।।
नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है,
नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूल तारे मण्डन हैं,
बन्दीजन खगवृन्द शेष-फन सिंहासन हैं।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्त्ति सर्वेश की।।[1]

पुराण-पुरुषोत्तम की परम प्यारी पुण्य-भूमि—अर्थात् ईश्वरावतार की आदि-भूमि—भारतवर्ष है। यह देश समस्त ब्रह्माण्ड का 'संक्षिप्त संस्करण' कहा जाता है। बड़े-बड़े भूगोल-तत्त्व-वेत्ता कहते हैं कि 'Indian is an epitome of the whole world'—अर्थात् भारतवर्ष समस्त संसार का 'सार-संग्रह' है। अँगरेज विद्वान् कहते हैं कि "India is the fairest jewel in the British Crown and in many ways, the metaphor is an apt one"—अर्थात् भारतवर्ष ब्रिटिश ताज का जगमगाता हुआ रत्न है—बहुलांश में यह उपमा-उपयुक्त है।

'पृथ्वी के इतिहास'[2] से हम यहाँ जो उदाहरण देते हैं उसे पढ़कर आप भारत-जैसे आदर्श देश का प्रशस्त परिचय पाकर प्रफुल्लित हो उठेंगे। देखिए, इस वर्णन में भारत की उत्कर्षता और ऊर्जितावस्था का कैसा आदर्श चित्र अंकित है—

"पृथ्वी के इतिहास में भारतवर्ष का स्थान सबसे ऊँचा है। सभ्यता, ज्ञान, मनुष्यता, वीरता, सबकी आदि-भूमि भारतवर्ष ही है। सभ्यता की धारा पहले-पहल कहाँ बही थी ? इसी भारतवर्ष में। ज्ञान का प्रकाश सबसे पहले कहाँ फैला था ? इसी भारतवर्ष में। दर्शन, विज्ञान, गणित, ज्योतिष—इस समय जिसके गौरव से सभ्य संसार श्रेष्ठ समझा जा रहा है—कहाँ उत्पन्न हुए थे ? इसी भारतवर्ष में। सत्य, सरलता, दया-दाक्षिण्य आदि गुण-समूहों का उच्च आदर्श पहले-पहल कहाँ देखा गया था ? इसी भारतवर्ष में। शौर्य्य, वीर्य्य, आत्मत्याग, स्वदेशानुराग — मानव-चरित्र की जितनी विभूतियाँ हैं—पहले कहाँ उदित हुई थीं ? इसी भारतवर्ष में।

"भारतीय सभ्यता का एक-एक कण पाकर ही पृथ्वी के अन्य देश गौरवशाली तथा सुसभ्य हुए हैं। भारतवर्ष से ही ज्ञान-विज्ञान की किरण-छटा छिटक कर दिग्दिगन्त में विस्तृत हुई है। भारतवर्ष ही संसार के गौरव का आधार-स्थल है। प्रकृति-देवी ने भी इस देश को अनुपम सौन्दर्य-सुषमा से विभूषित कर रक्खा है। इस देश में सदा छह मनोहर ऋतुओं का अपूर्व सामञ्जस्य रहता है।

---

१. कविवर मैथिलीशरण गुप्त।
२. श्रीदुर्गादास लाहिड़ी-लिखित बँगला का विशाल ग्रन्थ।

यहीं का कुसुम-कानन सदा भ्रमर की गुंजन-ध्वनि से परिपूर्ण रहता है। यहीं वसन्तकाल की मृदु-मन्द मलयानिल से मन-प्राण स्निग्ध होता है। यहीं का मधु-वन कोयल, पपीहा, और श्यामा के कल-कूजन से गूँजता रहता है। भारत के समान ग्रीष्म-ऋतु की प्रखर मार्तण्ड-किरण, वर्षा-काल का प्रबल वारि-वर्षण और शीतकाल का प्रचण्ड हिमानी सम्पात—अन्यत्र कहाँ मिलेगा ?

"यहाँ—यदि आप पर्वतराज हिमालय की चोटियों पर चढ़ जाइए, तो शीत से शरीर संकुचित हो जायगा। यदि आप ग्रीष्मकालीन सूर्य्य का तीक्ष्ण ताप सहन करना चाहते हैं, तो दाक्षिणात्य अथवा राजस्थान में चले जाइए। यदि आप सुजला-सुफला सस्य-श्यामला भूमि के दर्शन की आकांक्षा रखते हैं तो वंग और बिहार की निराली हरियाली छटा देख लीजिए। कोमलता और कठोरता, सुन्दरता और भयंकरता, सरसता और शुष्कता, सबका एकत्र समावेश—भारत के सिवा दूसरे किस देश में मिलेगा ?

"पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ पर्वत हिमालय इसी देश में है। संसार की परम पवित्र नदी गंगा इसी देश में है। भूमण्डल की जातियों में अग्रगण्य और प्रथम-पूज्य ब्राह्मण-जाति इसी देश में है। पृथ्वी की आदि-वाणी वेद[1] इसी देश में है। पृथ्वी के आदि-धर्म का जन्म इसी देश[2] में हुआ था। आज भी, भारत की इस अधःपतित अवस्था में भी, पृथ्वी की अधिकांश जनता जिस धर्म की अनुयायिनी है, वह धर्म इसी भारतवर्ष से प्रकाशित हुआ है—इसका हमें गर्व है।

"प्रकृति ने इस देश को अपनी अनुपम सौष्ठव-सम्पत्ति से सुसज्जित कर दिया है। इसीलिए, यहाँ की दृश्यावली मन-प्राण-विमोहिनी है। भारत के समान उर्वरा-शक्ति-सम्पन्न भूमि क्या किसी और देश की है ?

"भारत की तरह क्या किसी दूसरे देश में विविध विचित्र जन्तु और रंग-बिरंग के बिहंग देखने को मिलेंगे ? फलतः, संसार-भर की सुख-सम्पदा समेट-कर सृष्टिकर्त्ता ने इस स्वर्ग-सहोदर को सिरजा है।"

अन्यान्य देशों के धुरन्धर और यशस्वी विद्वानों ने भारतवर्ष के विषय में जो कुछ कहा है, वह भारत के आदर्श देश होने के प्रमाण में—संक्षिप्त रीति से—उद्धृत किया जाता है—

---

१. One thing is certain there is the nothing more ancient and primitive, not only in India, but in the whole Aryan world, than the hymns of the Rigveda.

—Origin and Growth of Religion

—अर्थात् यह बात निश्चित है कि केवल भारत में ही नहीं—समस्त आर्य्य-जगत् में—ऋग्वेद के मंत्रों से बढ़कर कोई वस्तु प्राचीन और आदि-कालीन नहीं है।— (लेखक)

२. India is the source from which not only the rest of Asia but the whole Western world derived their knowledge and their religion.

— Prof. Heeren

पाश्चात्य जगत् के महर्षि श्रीमान् मोक्षमूलर महाशय ने कहा है कि—

"समस्त पृथ्वी में यदि कोई ऐसा देश है, जो प्राकृतिक ऐश्वर्य्य और शक्ति-सौन्दर्य्यादि विभूतियों से परिपूर्ण है, जिसे 'इस लोक का स्वर्ग' कहना भी अतिशयोक्ति नहीं, तो वह केवल भारतवर्ष ही है।[१] यदि हमसे कोई पूछे कि, किस आकाश के नीचे (किस भूमि में) या किस प्रदेश-विशेष में पहले-पहल मनुष्य की मानसिक वृत्तियों का विकास हुआ था और कहाँ दिव्य ज्ञान की स्फूर्त्ति से मानवीय मस्तिष्क प्रस्फुटित हुआ था, तो हम निश्चय रूप से यही कहेंगे कि वह उज्ज्वल आकाश भारतवर्ष का है, वह प्रदेश भारतवर्ष ही है, वह देश और वह स्थान भी भारतवर्ष ही है।

"यदि कोई हमसे पूछे कि वह कौन-सा देश है, जहाँ रहस्यपूर्ण मानव-जीवन की जटिल समस्याओं के उलझनदार जाल सुलझाये गये थे—जिनकी ओर-छोर ढूँढ़ निकालने में प्लेटो और कौण्ट-जैसे पाश्चात्य दार्शनिकों की बुद्धि भी कुण्ठित हो गई थी—तो हम उसे सीधे दिखला देंगे कि वह देश भारत के सिवा और कोई नहीं। यदि कोई हमसे प्रश्न करे कि इहलौकिक और पारलौकिक जीवन का संगठन तथा सुधार करने के लिए किस देश या किस भाषा में से प्रकृत तथ्य-संग्रह किया जा सकता है, तो हम एकमात्र भारतवर्ष और संस्कृत भाषा के ही नाम बतला सकेंगे। क्या भाषा, क्या धर्म, क्या पुरातत्त्व, क्या दर्शनशास्त्र, क्या विधि-विधान, क्या आचार-व्यवहार, क्या आदिम शिल्प और क्या आदिम विज्ञान—चाहे जो कोई वस्तु या विषय हो—मनुष्य जितना कुछ अध्ययन कर सकता है अथवा मानव-जाति के इतिहास की जो कुछ सारभूत सामग्री है, वह सारी शिक्षा-प्रद और मूल्यवान् सामग्री केवल इस भारतवर्ष के ही अनन्त भाण्डार में संचित है।"

मोक्षमूलर की उक्तियों में इस आदर्श देश का जैसा उत्कर्ष-वर्णन है, वह प्रत्येक भारतवासी के अभिमान का कारण हो सकता है। फिर देखिए, 'मुरे' साहब (Mr. Murray) अपने इतिहास-ग्रन्थ में लिखते हैं कि "भारतवर्ष के मनोहर प्राकृतिक दृश्य और इफरात उपज की तुलना संसार के किसी भी देश से नहीं की जा सकती।"

—अर्थात् प्रोफेसर हीरेन ने अपने 'Historical Researches' नामक ग्रंथ के दूसरे खंड (Vol. II) में लिखा है कि केवल एशिया-महादेश ही नहीं, समस्त पाश्चात्य संसार के ज्ञान और धर्म का पिता अथवा आचार्य्य भारतवर्ष ही है।—लेखक

(ख) No nation on earth can vie with the Hindus in respect of the antiquity of their civilization and the antiquity of their religion.

—*Theogony of the Hindus*.

—अर्थात् सभ्यता और धर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में संसार की कोई जाति हिन्दुओं का मुकाबला नहीं कर सकती।—लेखक

१. If I were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power, and beauty that nature can bestow—in some parts a very Paradise on earth—I should point to India...... (*Maxmuller*)

करनल टाड साहब अपने 'राजस्थान-इतिहास' में—'सोने के अक्षरों में'—लिख गये हैं कि—"यूनान के दार्शनिक जिनके आदर्श से अनुप्राणित हुए थे; प्लेटो और थेल्स तथा पिथोगोरस आदि दर्शनशास्त्रविशारद जिनके सामने जिज्ञासु शिष्य थे, उन आदर्श विद्वानों की जन्मभूमि कौन थी ? क्या कोई कह सकता है ? जिनकी ज्योतिर्विद्या के अलौकिक प्रभाव से आज भी यूरोप चकित और मुग्ध है; उन विद्वानों की आवास-भूमि कहाँ थी ? क्या कोई बतला सकता है ? जिनके अद्भुत शिल्पकौशल को देखकर आज भी संसार आश्चर्यित हो रहा है, वे विश्वकर्मा-सन्तान शिल्पी कहाँ के रहनेवाले थे ? जिनकी संगीत-सुधा-लहरी आनन्द की मूसलधार वृष्टि करती थी—करुणा, प्रेम, शान्ति, विनोद और प्रसन्नता की धारा को तीव्रगति बनाती थी—वे संगीत-शास्त्र-पारंगत किस देश के निवासी थे ? क्या कोई बतलाने में समर्थ है ? हमारी समझ में वे ही इन प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं जो भारत-निवासियों के कला-पाण्डित्य से पूर्ण परिचित हैं।"

'Theogony of the Hindus' के लेखक काउण्ट जोंस जर्ना ने लिखा है कि—"भारत[1] की प्रत्येक सामग्री अभिनव-वैभव-सम्पन्न और कौतूहल-वर्द्धक है। मालूम होता है कि मायाविनी प्रकृति जादूगरनी बनकर यहाँ बैठी हुई है। एक ओर मुकुल-मंजरी-मंडित सुन्दर श्यामल रसाल-कुंज, दूसरी ओर धधकता हुआ सुदीर्घ मरु-प्रान्तर। एक ओर भीषण हाहाकारमयी लू की लोल लपटें और दूसरी ओर इन्द्र-चाप-शोभित नयनाभिराम घन-घटा। एक ओर तुषार-धवलित रजत-शुभ्र हिमालय की महीयसी मूर्त्ति, दूसरी ओर तप्त मरुस्थल की उष्ण ज्वाला। एक ओर प्रशान्त, विस्तृत, समतल हरित क्षेत्र की कमनीय कान्ति और दूसरी ओर उन्नत-मस्तक पर्वत-श्रेणी की अपूर्व गम्भीर प्रकृति। एक ओर अतीत इतिहास का अनन्त जीवन और दूसरी ओर कवित्व के पुष्प-पराग में अतीत की विमल स्मृति।"

फिर देखिए, एक पाश्चात्य विद्वान् ने क्या खूब कहा है कि—

"Soil of India ! Cradle of Humanity ! Hail ! Hail ! Venerable and efficient nurse ! Whom centuries of brutal invasions have not yet buried under the dust of oblivion. Hail ! Fatherland of Faith, of Love, of Poetry and of Science ! May we hail and revival of thy past in our Western Future".

—अर्थात् हे पुण्य भारतभूमि ! तुम्हारी ही गोद में मनुष्यता पली थी। तुम धन्य हो ! तुम पूजनीया और संपोषिणी माता हो ! तुम्हें शताब्दियों के पाशविक अत्याचार और आक्रमण भी विस्मृति के गर्भ में न डाल सके। तुम सचमुच धन्य हो ! हे श्रद्धा, प्रेम, काव्य और विज्ञान की पितृभूमि ! तुम सर्वथा धन्य हो ! ईश्वर से प्रार्थना है कि तेरी प्राचीन महिमा—तेरा अतीत गौरव—हमारे पाश्चात्य संसार के भविष्य में प्रत्यक्ष जागरित हो।

१. पृथ्वीर इतिहास (बँगला)

इतना ही नहीं, मौन्सियर डेलबौस ने भी लिखा है कि—

"The influence of that civilization worked out thousands of years ago in India is around us and about us in every day of our lives. It pervades every corner of the civilized world. Go to America and you find there, as in Europe, the influence of that civilization which came originally from the banks of the Ganges".

—अर्थात् उस सभ्यता का प्रभाव, जिसका विकास सहस्रों वर्षों तक भारतवर्ष में होता रहा, हमारे जीवन में प्रतिदिन हमें परिवेष्टित कर रहा है। वह सभ्य संसार के कोने-कोने में व्यापक है। आप अमेरिका जाइए। योरोप के समान आप वहाँ भी उस सभ्यता का प्रभाव देखेंगे, जो पहले-पहल गंगा के तट पर उत्पन्न हुई थी।[1]

अब अन्त में, एक फ्रांसीसी विद्वान् की भी सम्मति सुन लीजिए। उन्होंने कहा है कि—

"If there is a country on earth which can justly claim the honour of havinig been the cradle of human race, or at least the scene of primitive civilization....that country assuredly is India"—(*Cruiser*)

—अर्थात् यदि पृथ्वी में कोई देश है जो न्यायपूर्वक मनुष्य-जाति तथा प्राचीन सभ्यता के उत्पत्ति-स्थान होने की प्रतिष्ठा का अधिकारी हो सकता है.......तो वह देश निस्सन्देह भारतवर्ष है।[2]

यहाँ आपको शंका हो सकती है कि आर्यगण तो एशिया के मध्य-खण्ड से भारत में आये थे, तो फिर भारत ही प्राचीन हिन्दू-सभ्यता का आदिम स्थान कैसे हुआ! हमारा निवेदन यह है कि जिन ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर आपकी यह शंका खड़ी है, वह आधार काल्पनिक है, वास्तविक नहीं। इतिहासकारों ने भ्रमवश भारत-वासियों को मध्यएशिया का निवासी बतलाया है; पर सच पूछिए, तो भारतवासी कहीं दूसरी जगह से नहीं आये। जब से पाश्चात्य संसार के साथ भारत का संसर्ग हुआ है, तभी से यह भ्रमात्मक प्रश्न उठा है और सिर्फ इसीलिए यह उठाया गया है कि भारत पर भारतवासियों की ममता न रहने पाये। यहाँ हम अपने कथन की पुष्टि के लिए कुछ प्रमाण देते हैं—

"प्रबल ऐतिहासिक युक्तियाँ भी असत्य कही जाती हैं। तर्क द्वारा सब-कुछ सिद्ध किया जा सकता है। प्रारंभिक आर्यों का निवास अन्य देशों में रखकर लोग इस देश का मान घटाना चाहते हैं।" —(प्रोफेसर बालकृष्ण, एम्० ए०)

"यूरोपियन लोगों की यह राय सब लोग स्वीकार नहीं करते और न हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थों में इस मत का पोषक कोई प्रमाण ही मिलता है। हिन्दुओं के परम प्राचीन ग्रन्थों अर्थात् वेदों से विदित होता है कि भारत में अति प्राचीन काल से आर्य लोग बसे हैं।" —(पण्डित हरिमंगल मिश्र, एम्० ए०)

---

१. 'सरस्वती' (प्रयाग) से उद्धृत।—ले०

२. प्रयाग की मासिक पत्रिका 'सरस्वती' से संकलित।—ले०

"सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वती का मत है कि आर्य लोग कहीं बाहर से आकर यहाँ नहीं बसे, वे यहाँ के सनातन निवासी हैं। और भी अनेक विद्वान् इस मत के पोषक हैं।" —(प्रोफेसर रामदास गौड़, एम्० ए०)

"पूर्व और पश्चिम दोनों देशों के शास्त्रीय सिद्धान्तों से यह बात निश्चय होती है कि सृष्टि के आदिकाल में पूर्ण पुरुष उत्पन्न होते हैं। सृष्टि की प्रथम दशा में जो पूर्ण पुरुष उत्पन्न होते हैं, वे पृथ्वी के किस स्थल में होते हैं? पूर्ण पुरुषों की उत्पत्ति पूर्ण-प्रकृति-युक्त भूमि में ही हो सकती है। सबने एकवाक्य होकर स्वीकार कर लिया है कि पृथ्वी-भर में भारतवर्ष की ही प्रकृति सर्वथा पूर्ण है। अब तो यह बात निस्सन्देह है कि आदि-सृष्टि भारतवर्ष में ही हुई थी, और किसी देश में नहीं। आर्य-जाति की आदि-निवास-भूमि भारतवर्ष ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अतः पूर्ण मनुष्यत्वयुक्त आर्य-जाति और किसी देश में रहती थी, वहाँ से भारतवर्ष में आई, यह कल्पना मिथ्या कपोल-कल्पना-मात्र है।" —(स्वामी दयानन्द, बी० ए०—'श्रीधर्म कल्पद्रुम')

Dr. J. Muin says—"I must, however, begin with a candid admission that so far as I know, none of the Sanskrit books, not even the most ancient contain any distinct reference or allusion to the foreign origin of the Indians".

—अर्थात् मैं साफ-साफ स्वीकार करता हूँ कि जहाँ तक मुझको ज्ञात है, किसी संस्कृत-ग्रंथ में—प्राचीनतम ग्रंथों में भी भारतवासियों के विदेशी होने का कोई उल्लेख या संकेत नहीं है।" —'सरस्वती' (प्रयाग)

"भारतवर्ष की प्रतिष्ठा जिस प्रकार अनन्तकालीन है उसी प्रकार आर्य्यजाति की प्रतिष्ठा भी अनन्तकाल-व्यापी है। भारतवर्ष ही आर्य-जाति का उद्भव-क्षेत्र है, भारत ही उसकी उन्नति का विकास-क्षेत्र है और भारत से ही उसका प्रभाव संसार में फैला है।" —'पृथ्वीर इतिहास' (बँगला)

प्रिय पाठक! क्या इतने प्रबल प्रमाणों से भी आपको सन्तोष नहीं हुआ? हम समझते हैं कि अब आप सदा इस आदर्श देश को अपनी आदिम मातृभूमि मानेंगे। यह निश्चय जानिए कि संसार में यदि कोई देश 'सर्वोत्तम आदर्श' का अधिकारी हो सकता है तो बस भारतवर्ष ही। उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ होकर भारतवर्ष न जाने कितनी जातियों का उत्थान और पतन देख चुका है। इसकी आँखों के सामने ही कितनी नवीन जातियों और कितने नूतन साम्राज्यों का आरंभ और ध्वंस हो चुका। जल-बुद्बुद के समान अनेक जातियाँ उठीं और गिरकर सो गईं। किन्तु, भारत की आर्य्य-जाति का कभी क्रम-भङ्ग नहीं हुआ। उसके धर्म, समाज और सभ्यता की प्राचीनता बहुत दिनों तक स्थिर रहेगी। वही प्रणवध्वनि आज भी प्रत्येक आर्य्य-हिन्दू के प्राणों में

प्रतिध्वनित हो रही है! वही ब्रह्मण्य-गर्व आज भी देश में हर तरफ नजर आ रहा है वही समाज, वही धर्म, वही आचार-व्यवहार और वही रीति-नीति तथा पद्धति आज भी विराजमान है। वही शास्त्र, वही वेद-वेदाङ्ग, वही स्मृति-संहिता, वही पुराण और वही साहित्य, सब-कुछ आज तक विराजमान है। ऐसी क्रमबद्ध जाति कहाँ हैं? ऐसा शुद्ध वर्णाश्रम-धर्म किस देश के निवासियों में है!

इन्हीं सब कारणों से हर किसी को यह कहना पड़ता है, और विवश होकर सहर्ष कहना पड़ता है कि—"भारतवर्ष ही एकमात्र आदर्श देश है। यही भगवती प्रकृति की आदर्श लीलास्थली है। यही भगवती सरस्वती देवी की आदर्श विहार-भूमि है। यही सर्वसुखदायिनी लक्ष्मी का आदर्श क्रीड़ा-केन्द्र है। यही अन्नपूर्णा देवी का आदर्श स्वर्णमन्दिर है।"

इसीलिए तो श्रीमद्भागवत के पाँचवें स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय के आरम्भ में ही देवताओं ने यह इच्छा प्रकट की है कि—'वह सौभाग्य का दिन कब प्राप्त होगा, जब हमलोग भारतभूमि में जन्म ग्रहण करेंगे।' यह प्रसिद्ध भी है कि—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।

भारतवर्ष के विषय में कहा भी गया है कि—

मन्ये विधात्रा जगदेककाननं विनिर्मितं वर्षमिदं सुशोभनम्।
धर्माख्यपुष्पाणि कियन्ति यत्र वै कैवल्यरूपं च फलं प्रचीयते॥

—अर्थात् भारतवर्ष भगवान् का बनाया हुआ रमणीय उद्यान है, जिसमें धर्म-रूपी फूल और मुक्ति-रूपी फल उत्पन्न होता है।

भगवान् मनु ने भी अपनी स्मृति में लिखा है कि—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

—अर्थात् भारत में उत्पन्न आर्य्य ब्राह्मणों के पास से ही पृथ्वी की अन्यान्य जातियों को चरित्र का आदर्श ग्रहण करना चाहिए।

जिस देश की जाति आदर्श नहीं होती, भाषा और कला आदर्श नहीं होती, साहित्य और धर्म आदर्श नहीं होता, समाज और व्यवहार आदर्श नहीं होता, वह देश भी किसी प्रकार आदर्श नहीं कहा जा सकता।

देश की आत्मा उसके पर्वतों और नदियों में नहीं रहती, बल्कि उसके अन्दर बसनेवाली जनता में ही रहती है। बसनेवाली जाति और साहित्य तथा धर्म ही किसी देश के प्राण हैं। पर्वतों और प्रान्तरों तथा नदियों और जंगलों में देश नहीं रहता है। जनता ही देश है। देश का प्राकृतिक रूप तो उसका शरीरमात्र है; पर प्राण तो वही जनता ही है। इसीलिए, भारतवर्ष के शरीर और प्राण, हृदय और आत्मा, विचार और चरित्र तथा भाषा और भाव की सुन्दरता का विशद वर्णन ऊपर दिया गया है।

उक्त वर्णन से यह प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि भारतवर्ष का शरीर भी सुन्दर है, आत्मा भी पवित्र है, भेष-भूषा भी भव्य है; धर्म भी महान् है और ज्ञान भी पूर्ण है।

अतएव, वह सब प्रकार से आदर्श है। सब प्रकार से आराध्य है। सब प्रकार से शीर्ष-स्थानीय है—अर्थात् विश्वमौलिमुकुटमणि है, सकल जगत् का आचार्य्य है, शिरसा-वन्द्य और वाचा-स्तुत्य एवं प्रातःस्मरणीय है।

भगवान आदिकवि वाल्मीकि ने कहा है—

काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितं
स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचीभिरान्दोलितं।
दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्संवीज्यमानाः कदा
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः॥

—अर्थात् हे त्रिलोकपावनी गंगे! कब हमारा ऐसा भाग्य होगा कि हम अपने शरीर को तुम्हारे तीर पर काकों से नुचता हुआ, कुत्तों और स्यारों से खाया जाता हुआ और तुम्हारी धारा में बहता हुआ अथवा तुम्हारे कछार की कल्लोलों के साथ हिलता हुआ तथा तुम्हारी तरंगों के साथ आन्दोलित होता हुआ एवं चवँर झलती हुई दिव्य सुन्दरियों के साथ स्वर्गारोहण प्राप्त करता हुआ देखेंगे।

महाकवि भर्तृहरि की भी अभिलाषा थी कि—

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मज्ञानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य।
किं तैर्भाव्यः मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः श्रृङ्गमङ्गे मदीये॥

—अर्थात् वह सौभाग्य का दिन कब नसीब होगा, जब हम गंगातट की हिमाचल-शिला पर पद्मासन लगाकर ब्रह्मानन्द में मग्न समाधिस्थ बैठे रहेंगे और बूढ़े हिरन हमारे अंग को अपने सींगों से खुजलायेंगे।

कैसी विशुद्ध अभिलाषा है! क्या ही अनूठा भाव है!

अन्यच्च—सुभाषितरत्नभाण्डागारेषु—

कदा वाराणस्याममरतटिनीरोधसि वसन्
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलिपुटम्।
अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥
कदा वा साकेते विमलसरयूतीरपुलिने
चरन्तं श्रीरामं जनकतनयालक्ष्मणयुतम्।
अये राम स्वामिन् जनकतनयावल्लभविभो
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥
कदा वृन्दारण्ये विमलयमुनातीरपुलिने
चरन्तं गोविन्दं हलधरसुदामादिसहितम्।
अये कृष्ण स्वामिन्मधुरमुरलीवादनविभो
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥

—मासिक 'आदर्श' (कलकत्ता); वर्ष १, संख्या ३-४, १९७९ वि० (सन् १९२२ ई०)

आदर्श बन्धु—महात्मा भरत

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले।
अयत्नादागतं राज्यं यतस्त्वं त्यक्तुमिच्छसि॥[1]

"तुम धन्य हो, तुम्हारे समान संसार में कोई भी नहीं देख पड़ता; क्योंकि तुम आपसे-आप आये हुए राज्य का भी परित्याग करने की इच्छा रखते हो।"—निषादपति गुह ने त्यागमूर्त्ति भरत से यह कहा था।

संसार के इतिहास में, न मालूम कितनों ने, राज्य के लिए अपने श्रद्धेय पुरुषों को, कारागार में बन्द किया, मार डाला। कितने भाई एक-दूसरे के रक्तपिपासु शत्रु बन गये। कितने देशों में रणचण्डी ने प्रलय मचाया, और क्या कहें, जो न होना चाहिए था, सो हो गया और हो रहा है।

राज्य के लिए तो कहना ही क्या, थोड़ी-थोड़ी-सी भूमि के लिए, अत्यन्त अर्थलाभ के लिए भी, जो दशा आजकल संसार की हो रही है, वह हम नित्य देखते ही हैं। फिर, विना परिश्रम, विना प्रयत्न किये ही, यदि राज्य मिल जाय, नहीं-नहीं, कोई भी वस्तु मिल जाय, तो कहना ही क्या! सिवा भरत-सरीखे महापुरुषों के और कौन उसका परित्याग करने में समर्थ है? महाराज दशरथ को भी भरत के धर्म-निष्ठ होने में, किसी प्रकार का किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं था। कैकेयी से भरत की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था—

रामादपि हितं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्।[2]

'श्रीराम को चौदह वर्ष का वनवास और भरत को अयोध्या का राज्य'—कैकेयी के इस सर्वनाशी वरदान में, कुछ कुविचारी लोग, भरत की रायजनी समझते थे। ऐसा सोचना उनकी भारी भूल थी। भरत के जीवन-काल के आरम्भ का अंश अत्यन्त क्लेश-पूर्ण रहा है। उसमें सुख का, सच्चे आनन्द का अंश बहुत थोड़ा था। उनके इसी कष्टपूर्ण जीवन ने उन्हें सदा के लिए संसार में अमर कर दिया है। यदि यह क्लेश उनके जीवन को पीड़ित न किये होता, तो कदाचित् उन्हें यह गौरव, जो आज दिन प्राप्त है, न मिलता—वे एक आदर्श बन्धु के रूप में, हमारे पवित्र आदर्श न होते। जान पड़ता है, संसार में महापुरुषों का आविर्भाव, केवल कष्ट-सहन के लिए ही हुआ करता है। कष्ट-सहन ही महापुरुषों की सच्ची कसौटी है। सच बात तो यह है कि यदि सोना धधकती आँच में तपाया न जाय तो उसका असली जौहर न खुले।

भरत के दुर्दिनों का प्रारंभ उनके ननिहाल से हुआ था। जिस दिन अवधपुरी में कैकेयी ने अपने अपकीर्त्ति-भवन की अचल नींव डाली थी, उसी रात महामना भरत को अशुभ-सूचक दुःस्वप्न होने लगे थे। श्रीतुलसीदासजी ने इस प्रसंग में लिखा है—

अनरथु अवध अरंभेउ जब ते, कुसगुन होंहिं भरत कहुँ तब ते।
देखहिं रात भयानक सपना, जागि करहिं कटु कोटि कलपना।

वह रातें उन्हें आँखों में ही काटनी पड़ीं। चित्त को किसी प्रकार भी विश्राम न मिला।

१—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड।
२—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड।

ऐसी व्याकुलावस्था में ज्यों ही वसिष्ठजी के भेजे हुए राजदूत उन्हें लिवाने पहुँचे, भरत ने तुरन्त अशुभ का अनुमान किया। पिता, माता, भाई, परिवार और नगर आदि की कुशलता जानने के लिए वे व्यग्र हो उठे। दूतों से पूछने पर उत्तर मिला-'कुशलास्ते महाबाहो येषां कुशलमिच्छसि।'

क्या भरत को पिता, भाई, राम-लक्ष्मण आदि की कुशलता की इच्छा दिन-रात नहीं थी? फिर इस प्रकार का व्यंग्यपूर्ण उत्तर क्यों मिला? कदाचित् दूत यह समझते रहे हों कि इस षड्यंत्र में भरत गुप्त रीति से अवश्य सम्मिलित हैं। अथवा, श्रीवसिष्ठजी की आज्ञानुसार उन्होंने सच्चा समाचार बताना उचित न समझा हो। जो कुछ भी हो, यह व्यंग्यपूर्ण उत्तर सुनते ही उनकी जो दशा हुई, उसका वर्णन श्रीमद्वाल्मीकिजी ने इस प्रकार किया है—

बभूव स्वस्थहृदये चिन्ता सुमुद्भुती तदा।
त्वरया चापि दूतानां स्वप्नस्यापि च दर्शनात्॥[1]

एक तो रात के दुःस्वप्न, दूसरे दूतों का यह कहना कि 'महाराज वसिष्ठजी ने तुरन्त बुलाया है'—भरत की चिन्ता का ठिकाना न रहा। तुरन्त 'गुरु अनुसासन स्रवन सुनि, चले गनेसु मनाइ।'[2] रथ के घोड़े बड़ी तेजी से हाँके गये। दुर्गम नदी, नद, पहाड़ जंगल आदि पार कर भरत कान्तिरहित अयोध्या के निकट पहुँचे। वहाँ वही दृश्य दिखाई पड़ा, जिसकी आशंका पहले से ही थी। उन्होंने नगर के बाहर ही यह अशुभ-सूचक दृश्य देखा।

रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।
खर सियार बोलहिं प्रतिकूला, सुनि सुनि होइ भरत उर सूला।
श्रीहत सर सरिता बन बागा, नगर बिसेषि भयावन लागा।
नगर नारि नर निपट दुखारी, मनहुँ सबनि सब सम्पति हारी।

प्यारे श्रीराम के वियोग से व्यथित पुरवासी भरत जी को राह में मिले तो, पर कुछ कह न सके। उस समय नगर की दशा दावानल से भस्मीभूत सघन वन की-सी हो गई थी।

हाट बाट नहिं जाहिं निहारी, जनु पुर दहुँ दिसि लागि दवारी।

जिस प्रकार दावाग्नि लग जाने से समस्त सुन्दर वन भस्म हो जाता है, वृक्षों के न रहने से कुछ पक्षी तो भस्म हो जाते हैं और जो शेष बच रहते हैं वे अपने आत्मीय वियोग में व्याकुल रहते है। सुन्दर वन करुण-क्रन्दन से भर जाता है, वही दशा अयोध्या की थी। वियोग-व्यथित लोग अपने-अपने घरों में विलाप करते हुए विधाता से मृत्यु-याचना कर रहे थे; क्योंकि यह व्यथा केवल मृत्यु देवी की गोद की सुख-नींद में ही भुलाई जा सकती है, अन्यथा नहीं।

१. वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड।

२. श्री गणेशजी विघ्ननाशक तथा कल्याण करनेवाले हैं। अस्तु, भरतजी ने उन्हीं की वन्दना कर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया।—लेखक

कुछ दिन पहले जिस अयोध्या की समता इन्द्रपुरी भी नहीं कर सकती थी, वही अनाथ, निःसहाय और अभागिनी बन रही थी। सत्य है—"चिड़िया निकल गई पिंजरे से, खाली पड़ी रही तसवीर!"

अयोध्या के घर-घर में राम, लक्ष्मण और सीता के वियोग के मारे लोग तड़प रहे थे। राजा दशरथ का मरना तो एक प्रकार से लोग भूल-सा गये थे। सारी अयोध्या की दशा, पुत्र-हीना कौसल्या की-सी हो रही थी। तनिक विचारिए, इस समय धर्म-मूर्त्ति भरत की क्या दशा हुई होगी!

महात्मा भरत को तो इस षड्यंत्र के कारण का जरा भी पता न था। वे सर्वप्रथम अपने पिता के मन्दिर को गये। पिता तो वहाँ क्या, संसार में ही नहीं थे जो मिलते! पर भरत ने समझा—'राजा भवति भूयिष्ठमिहाम्बाया निवेशने'।

अस्तु, घबराये हुए तुरन्त अपनी माता के भवन में पहुँचे। सद्योविधवा माता इन्हें देखते ही प्रफुल्लित हो उठीं।

तुरन्त—

सजि आरती मुदित उठि धाई, द्वारेहिं भेंटि भवन लइ आई।

भरत की चिन्ता और भी बढ़ी। उन्होंने समस्त नगर की, राज-दरबार की और समस्त परिवार की दशा और अपनी माता की दशा में बिल्कुल विपरीतता पाई। भरत की यह दशा देखकर माता झट बोली—"कहो बेटा, तुम्हारे ननिहाल में सब प्रकार कुशल तो है?"

भरत ने थोड़े में सब कुशल-समाचार कह सुनाये और 'पूछी निज कुल कुसल भलाई' और कहा—'कहु कहँ तात कहाँ सब माता'? और 'कहँ सिय राम लषन प्रिय भ्राता'?

रानी ने 'कपट नीर भरि नयन' कहा—'या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः'—अर्थात् 'भूपति सुरपतिपुर पगु धारेउ'।

यह सुनते ही भरत के हृदय में असह्य वज्राघात हुआ। वे 'तात! तात!! हा तात!!! पुकारी' अचेत हो पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े। थोड़ी देर पश्चात् जब कुछ चेत हुआ तब कुछ धीरज धरकर बोले—'कहु पितु मरन हेतु महतारी?'

कैकेयी को दुःख कहाँ? उसने 'आदिहुँ ते सब आपनि करनी, कुटिल कठोर मुदित मन बरनी।'

जब प्राणप्रिय राम के वन जाने का समाचार अपने ही कारण सुना तो 'भरतहि बिसरेउ पितु मरन।' वे कुछ बोल न सके और 'थकित रहे धरि मौन!' इस समय उन्होंने चाहा कि यदि पृथ्वी फट जाय तो मैं उसमें धँस जाऊँ, जिससे मुझ बंधु-विरोधी का मुँह और कोई देख न सके। ग्लानि के समय ऐसी दशा सबकी हुआ करती है। परन्तु, क्या कभी अपना सोचा कुछ हो सकता है?

कैकेयी ने सोच रक्खा था कि मेरी इस 'करतूत' से भरत अत्यन्त प्रसन्न होंगे और मैं 'राजमाता' कहलाऊँगी। पर यहाँ बिलकुल उलटा हुआ। सोच रक्खा था क्या, और हो गया क्या! उसके सब मनोरथों पर पानी फिर गया। वह यह सब वृत्तान्त सुनाकर, भरत के मुँह की ओर देखकर, अपने अनुकूल उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी। धर्म-स्वरूप भरत के लिए यह कष्ट असह्य था। वे माता की भर्त्सना करते हुए बोले—

"जो पै कुरुचि रही यह तोही, जनमत ही किन मारेसि मोही।
वर माँगत मन भई न पीरा, गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।
जो हसि सोहसि मुँह मसि लाई, आँखि ओट किन बैठेसि जाई।

भरत न तो माता को ही कुछ अधिक कह सकते थे; क्योंकि धर्मनाश का भय था, और न विना कहे रहा ही जाता था। उस समय उनकी "भइ गति साँप छछून्दर केरी' !

इसी समय इस सर्वनाशी चक्रव्यूह की आदि निर्माता, इस कुकर्मकांड की कर्त्ता 'मन्थरा' भरतजी को राज्य-प्राप्ति का शुभ संवाद (?) सुनाने आई। कैकेयी की कष्टप्रद कृति से क्रोधित शत्रुघ्न ने 'हुमकि लात तकि कूबर मारा' बस फिर क्या था! कूबरी का 'कूबर टूटेउ फूट कपारू' और 'दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू'। ठीक है, 'जो जस करइ सो तस फल चाखा' !

क्षमा-मूर्त्ति भरत ने उसकी इस दशा से दयार्द्र होकर शत्रुघ्न को रोक दिया, उन्हें उनके दिल की कसक न निकालने दिया।

उधर, भगवती कौसल्या की दशा देखते ही भरत ने वियोग-व्यथा को मूर्त्तिमान देखा। उनकी दशा इस प्रकार थी—

'मलिन बसन, बिबरन बिकल, कृस सरीर दुख भारु,
कनक कलप बर बेलिबन, मानहु हनी तुषारु।'

सचमुच रामवियोग-रूपी पाला से एकमात्र कौसल्या की ही नहीं, वरन् समस्त अयोध्या-रूपी बेल की वह दुर्गति थी, जिसे देखते ही प्रत्येक भावुक हृदय पसीज उठता है। जब कौसल्या ने भरत से कहा—

"पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमय हरष न हृदय कछु, पहिरे बलकल चीर॥

और—

'राम लषन सिय संग सिधाये, गइउँ न संग न प्रान पठाये।"

तब—

कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवास।
व्याकुल बिलपत राजगृह, मानहुँ सोक-निवास॥

भरत ने समझा कि कौसल्या इस सर्वनाशक कार्य्य में मेरी सम्मति अवश्य समझती होंगी, इससे वे अपने को निर्दोष सिद्ध करते हुए बोले—

जो परिहरि हरिहर चरन, भजहिं भूत गन घोर।
तिन्ह कै गति मोहिं देउ बिधि, जौ जननी मत मोर॥

इसी प्रकार की अनेक छल-छिद्र-रहित शपथें, भरत ने, शुद्ध चित्त से कौसल्या से कीं। वे इस व्यापार का विन्दु-विसर्ग भी नहीं जानते थे। अन्त में शोकाकुल हो, मूर्च्छित हो, पृथ्वी माता की गोद में गिर पड़े, देवी कौसल्या ने तुरन्त उन्हें अपनी गोद में उठा लिया और उन्हें सचेत करने का प्रयत्न करने लगीं। जब उन्हें कुछ चेत हुआ तब कौसल्या बोलीं—चाहे 'बिधु बिष चुवइ स्रवइ हिय आगी' तथा 'होइ वारिचर वारि बिरागी' और 'भये ज्ञान बरु मिटइ न मोहू' परन्तु 'तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू।' यह मैं भलीभाँति समझती हूँ। यदि भूल से भी 'मत तुम्हार यहु जो जन कहहीं, सो सपनेहु सुख सुगति न लहहीं।'

वह रात इसी प्रकार विलाप करते बीती। दूसरे दिन तेल में रक्खे हुए अपने पिता के 'शव' का दाह-संस्कार करने के लिए भरत ने भी वसिष्ठ जी की आज्ञा से—

चन्दन अगर भार बहु आये, अमित अनेक सुगन्ध सुहाये।
सरयु तीर रचि चिता बनाई,.... ....।

इस प्रकार शव की अंत्येष्टि-क्रिया कर चुकने के पश्चात् तिलांजलि देकर 'सोधि सुमृति सब वेद पुराना, कीन्ह भरत दसगात्र विधाना।' दशरथजी का आधिदैहिक कर्म्म कर चुकने के पश्चात् वसिष्ठ, सुमन्त, कौसल्यादि ने भरत को राज-तिलक देने की आयोजना की।

धर्मपाल भरत रामजी के होते हुए कैसे राज्य-ग्रहण कर सकते थे? उन्होंने गुरु, मंत्री आदि को सम्बोधित करते हुए कहा—मैं 'कहौं साँच सब सुनि पतियाहूँ, चाहिय धरमसील नरनाहू।' मैं तो इतना पापी हूँ कि 'मोहि राज हठि दइहऊँ जबहीं' तुरन्त 'रसा रसातल जाइहि तबहीं।' आप ही बताइए—'मोहिं समान को पाप-निवासू'? 'जेहि लगि राम सीय वनवासू!' राज्य लेने का मुझे कोई अधिकार ही नहीं। हमारे कुल की सनातन रीति के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र ही राज्याधिकारी हो सकता है। राजा तो राम हैं, वे हम सब में श्रेष्ठ हैं। अस्तु, मैं कैसे राज्य ले सकता हूँ? आपलोग मेरे इस विचार से सहमत हो कोई ऐसा उपाय करें, जिससे 'आवहिं बहुरि राम रजधानी।'

धन्य भरत! तुम्हारे विना संसार को ऐसा अपूर्व त्याग दिखा सकने में कौन समर्थ है? आखिर रामानुज ही तो ठहरे!

सारी सभा को यह सलाह अत्यन्त हितकर प्रतीत हुई। सब एक स्वर से 'भरतहिं कहहिं सराहि सराही, राम प्रेम मूरति जनु आही।' और सबने निश्चय किया कि—

अवसि चलिय वन राम जहं, भरत मंत्र भल कीन्ह।
सोकसिन्धु बूड़त सबहिं, तुम अवलम्बनु दीन्ह॥

समस्त अयोध्यावासी श्रीरामजी को मनाकर लौटा लाने के लिए भरत की अध्यक्षता में चले। भरत ने राम की धरोहर को 'सौंपि नगर सुचि सेवकनि' सबको आगे चलाकर आप शत्रुघ्न के साथ पीछे-पीछे पैदल चले। जब गुरु, माता आदि रथ में सवार होने को कहते, तो आप कहते कि 'राम पयादेहिं पाय सिधाये' और 'हम कहँ गज रथ बाजि बनाये!'

धन्य है भ्रातृ-भक्ति! रास्ते में—

पय अहार फल असन इक, निसि भोजन इक लोग।
करत राम हित नेम व्रत, परिहरि भूषन भोग॥

इस प्रकार यात्रा करते हुए शृङ्गवेरपुर पहुँचे। यहीं, श्रीराम-सखा निषादपति गुह रहता था। गुह ने जब भरत को स-दल-बल देखा, तब उसे सन्देह हुआ कि भरत को 'राज्य-मद' हो गया है, वे 'अकण्टक राज्य' करना चाहते हैं। इससे श्रीरामजी को अकेला समझकर उनपर चढ़ाई करने जा रहे हैं।

जब गुह को ज्ञात हो गया कि भरत रामजी से युद्ध करने नहीं, वरन् उन्हें मनाकर लौटाने जा रहे हैं, तब वह भरत के पास आया, तो उसे 'भरत लीन्ह उर लाइ'। यहाँ भरत ने राम-सीता की 'कुस साथरी निहारि सुहाई' अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ 'कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई।' सभी अवधवासी शिंशपा-वृक्ष की, जिसके नीचे रामजी ने रात में निवास किया था, 'परदखिना करि करहिं प्रनामा।' गुह ने राज-समाज की यथाशक्य पहुनाई की।

दूसरे दिन प्रातःकाल चित्रकूट का मार्ग दिखाने को भरत अपने साथ गुह को लेकर आगे चले। पैदल चलते-चलते तीसरे पहर श्री भरद्वाज ऋषि के आश्रम 'प्रयाग' पहुँचे। राजकुमार भरत इतनी दूर क्या, थोड़ी दूर भी कभी पाँव-पयादे चले न थे, इससे उनके पैरों में छाले पड़ गये। त्रिवेणी-स्नानकर मार्ग की थकावट दूर की और स्नान कर चुकने पर त्रिवेणी से 'जनम जनम रति राम पद' का भक्तिमय वरदान माँगा। महर्षि भरद्वाज ने भरत को सम्बोधन करते हुए कहा—यदि 'करतेउ राजु त तुमहिं न दोषू' परन्तु—

अब अति कीन्ह भरत भल, तुमहिं उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग, रघुबर चरन सनेहु॥

और भी, भरत के प्रति रामजी का स्नेह बताते हुए बोले—

सुनहु भरत रघुबर मन माहीं, प्रेमपात्र तुम सम कोउ नाहीं।
तुम पर अस सनेह रघुबर के, सुख जीवन जस जग जड़ नर के।

और अन्त में बोले—

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू, धरे देह जनु राम सनेहू।

त्रिकालदर्शी भरद्वाज के मुख से ऐसे शब्द भरत के लिए प्रयुक्त होना राम के प्रति उनकी (भरत की) असीम दृढ़ भक्ति के सूचक हैं।

उस रात भरद्वाज-आश्रम में विश्राम कर दूसरे दिन चित्रकूट के लिए भोर ही रवाना हुए। जब वे चित्रकूट-पर्वत के समीप पहुँचे तो स्वार्थी इन्द्र को यह सन्देह हुआ कि कहीं भरत के प्रेम-वश हो श्री रामजी अयोध्या लौट न जायँ और देव-कार्य पूरा न हो सके। अस्तु, उसने सोचा कि किसी देव-माया से भरत को उनके प्रेम-पथ से विचलित करना चाहिए। परन्तु सुर-गुरु महाराज बृहस्पति जी ने कहा—"यदि तुम ऐसा छल करोगे तो हमारा अबतक का सब किया-कराया मिट्टी में मिल जायेगा। भगवान राम अपने भक्त की अप्रतिष्ठा सहन नहीं कर सकते। देखो—'भरत सरिस को राम सनेही! जगु जपु राम राम जपु जेही'।

राम भगत पर हित निरत, पर दुख दुखी दयाल।
भगत-सिरोमनि भरत ते, जनि डरपहु सुरपाल॥

इस उपदेश से इन्द्र को विश्वास हुआ कि हमारे कार्य में बाधा न पड़ेगी। झट भरत के ऊपर पुष्प-वर्षा करके उनकी प्रशंसा करने लगा।

वहाँ श्री रामजी सीता और लक्ष्मण-सहित अपनी पर्णकुटी के सामने बैठे थे। उन्होंने देखा 'नभ धूरि, खग मृग भूरि भागे, विकल प्रभु आश्रम गये।' और, समझा कि शायद कोई राजा आखेट के लिए दलबल-सहित आ रहा है। परन्तु वनवासी कोल-भिल्लादि ने, जो उसी ओर से आ रहे थे, भरत के सम्पूर्ण अयोध्यावासियों के साथ आने का समाचार सुनाया। राम को भरत के आने का समाचार सुनते ही, आने का कारण जानने की उत्कंठा हुई, पर कौन बता सकता था? उनका चित्त दुविधा में पड़ गया। यह दशा देख राम-सेवकाग्रगण्य लक्ष्मण बोले, "हे स्वामी—

विषयी जीव पाइ प्रभुताई, मूढ़ मोहबस होहिं जनाई।

यद्यपि—

भरत नीति रत; साधु सुजाना; प्रभु पद प्रेम सकल जग जाना।

परन्तु—

तेऊ आजु राजपद पाई; चले धरम मरजाद मिटाई।

और आपको वन में अकेला समझकर—

करि कुमंत्र मन साजि समाजू; आये करै अकंटक राजू।

यदि उनके दिल में कुछ कपट न होता तो ऐसे दुख के समय 'केहि सोहात रथ बाजि गजाली!' इसमें भरत का दोष नहीं है। यह संसार की रीति है। सच है 'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं!' यदि सचमुच उनका यही विचार है तो उनकी 'समर सरोष राम मुख पेखी' वही दशा होगी जो सदा राम-विरोधी की होती है।"

इतना कहते-कहते उनकी क्रोधाग्नि भभक उठी। क्रोध से ज्ञान का नाश हो गया। वे नीति से अनीति की ओर चले गये और बोले—'आजु राम-सेवक जसु लेऊँ' और 'भरतहिं समर सिखावनु देऊँ।' राम के अनादर का फल आज चखाऊँगा। सब पिछला वैर आज चुकाऊँगा। यदि इस समय एक दो नहीं, सैकड़ों शिव आकर भरत की सहायता करें 'तौ मारौं रन राम दोहाई।'

सर्वज्ञ राम ने कहा, भाई, 'बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय।' दूसरे लोग राज-मद से मदान्ध हो सकते हैं, परन्तु भरत के विषय में ऐसा सन्देह करना तुम्हारी भूल है। और भी 'सुनहु लषन भल भरत सरीखा, विधि प्रपंच मँह सुना न दीखा' तथा—'विधि हरिहर पद पाइ' भी 'भरतहिं होइ न राजमद'।

इस प्रकार लक्ष्मण को शान्त करके उन्हें प्यार से रामजी ने बैठाया और कहा कि भरत हमें मनाकर अयोध्या लौटा ले चलने आ रहे हैं। उनके विषय में किसी प्रकार का सन्देह मत करो।

धर्मप्राण राम की यह बातें सुनकर लक्ष्मण को लज्जित होना पड़ा।

इसी बीच भरत कामद-गिरि के निकट, जिसमें भगवान की पर्णकुटी थी, पहुँचे। उनके साथ यहाँ का ठीक-ठीक पता जाननेवाला निषादपति तो था ही, उसने ऊँचे टीले पर चढ़कर 'कहेउ भरत सन भुजा उठाई'—हे नाथ! देखिए—उस वृक्ष-समूह के बीच में 'रघुवर परनकुटी' है।

गुह के ये वचन सुनते ही 'उमगे भरत विलोचन वारी।' यहीं से राम को प्रणाम किया। पर्वत के ऊपर चढ़कर भगवान राम को पर्णशाला के सम्मुख बैठे देखते ही कृशांग भरत 'पाहि नाथ कहि पाहि गोसांईं, भूतल परे लकुट की नाईं।'

भरत की यह शोक-मूर्त्ति देखते ही राम ने तुरन्त उठाकर हृदय से लगा लिया। उसी समय के प्रेम-सागर में सबके मन निमग्न हो गये। सब अवाक् खड़े रह गये। इस बीच निषाद ने अपने को सम्हालकर रामजी से कहा—

नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुर लोग।
सेनप सेवक सचिव सब, आये विकल वियोग॥

यह सुनते ही राम तुरन्त गुरु और माता आदि से मिलने चले। उनके पास पहुँचते ही सबसे यथाविधि मिले और सबके रूप-लालची लोचनों को तृप्त किया। जब गुरु वसिष्ठजी ने महाराज दशरथ के स्वर्ग-गमन का कष्टप्रद समाचार सुनाया तब सम्पूर्ण समाज में फिर करुण-क्रन्दन होने लगा। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ने सबको ज्ञानोपदेश दिया। रामजी ने मुनिवर की आज्ञानुसार पितृ-क्रिया की और तीन दिन में सब शास्त्रोक्त विधि करके शुद्ध हुए।

इस समय सबको इस बात की चिन्ता लग रही थी कि रामचन्द्रजी अयोध्या लौट चलेंगे अथवा नहीं। सबसे अधिक चिन्ता भरत को थी। दूसरे दिन ज्ञानी वसिष्ठजी ने उन्हें राम के लौटाने के उपायों के विषय में सलाह करने को बुला भेजा। भरत से उपाय पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि आपके होते हुए मैं क्या उपाय बताऊँ! आप जो आज्ञा दें, मुझे शिरोधार्य्य है।

इसपर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने कहा—मेरी समझ में यदि तुम इस प्रकार करो तो काम बन सकता है। यह नीति है कि 'अरध तजहिं बुध सरबसु जाता'। यदि तुम दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) वन जाना स्वीकार कर लो तो 'फेरिय लषन सीय रघुराई'।

गुरु के ये वचन सुनते ही भरत और शत्रुघ्न अत्यन्त प्रसन्न हुए। भरत ने कहा—हमें आपका यह आदेश सानन्द स्वीकार है। चौदह वर्ष की तो बात ही क्या, मुझे तो यहाँ तक स्वीकार है कि यदि आप आजन्म वन में रहने की आज्ञा दें, तो मैं 'कानन करौं जनम भरि बासू।' इसमें कुछ भी छल-छिद्र नहीं है। आप और श्रीरामजी दोनों अन्तर्य्यामी हैं। यदि मैं सत्य कहता होऊँ तो 'कीजिये बचन प्रमान'।

भरत के इन वचनों ने मुनि को मोहित कर लिया। अब यह सब लोग रामजी के पास गये। रामजी से वसिष्ठजी ने कहा कि—

सबके उर अन्तर बसहु, जानहु भाव कुभाव।
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो करिय उपाय॥

श्रीरामजी ने कहा—"महाराज, उपाय आपके ही हाथ में है। आप जो आज्ञा दें, मैं 'माथे मानि करौं सिख सोई।"

वसिष्ठजी ने कहा—"आप जो कुछ भी कीजिए, भरत की रुचि के अनुकूल ही कीजिए। मेरा तो यह हाल है कि 'भरत भगति बस भइ मति मोरी'। इससे आप पहले 'भरत विनय सुन्दर सुनिय', 'करिये विचार बहोरि' और तब 'करब साधु-मत लोक-मत, नृप-नय निगम निचोरि।"

भरतजी के ऊपर गुरुजी का ऐसा प्रेमाधिक्य देखकर श्रीरामजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने वसिष्ठजी से कहा कि हे गुरुदेव, मैं आपसे सत्य कहता हूँ—'भयउ न भुवन भरत सम भाई'। भरत मेरा छोटा भाई है। इससे उसकी प्रशंसा उसके सामने करना नीति-विरुद्ध है। जिसके ऊपर स्वयं आपका इतना प्रेम है तो 'को कहि सकै भरत कर भागू' ?

रामजी के यह प्रेम-पगे वचन सुनकर वसिष्ठजी ने भरतजी से कहा—'कृपासिन्धु निज बन्धु सों, कहहु हृदय की बात।'

गुरु की आज्ञा पाते ही भरत 'पुलक सरीर सभा भये ठाढ़े' और बोले—'मुझे जो कुछ भी कहना था, श्रीगुरुदेव ने कह दिया। अब 'यहिते अधिक कहौं मैं काहा' ? मैं तो यह जानता हूँ कि मेरे स्वामी राम से बढ़कर क्षमाशील कोई दूसरा है ही नहीं। इस षड्यंत्र का अपराधी मैं हूँ; क्योंकि यदि मैं न होता तो इस काम के करने का अवसर ही न मिलता। इसमें किसी दूसरे का दोष नहीं है। मेरे अभाग्य से ही ऐसा हुआ है।

यह सुनकर श्रीरामजी ने कहा 'तात जाय जिय करहु गलानी'। इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। यह सब मेरी इच्छा से हुआ है। यदि तुमपर कोई सन्देह करे, तो उसका 'जाइ लोक परलोक नसाई'। इस समय मेरी विचित्र दशा हो रही है। जिन वचनों का पालन करने के लिए पिताजी मेरे विरह में स्वर्ग गये, उन्हें छोड़ते हुए कष्ट होता है। तिसपर तुम्हारा संकोच। फिर भी गुरु की आज्ञा। इससे तुम 'मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु-करउँ सो आजु'।

सत्यसंध राम के ये वचन भरत के प्रति कितने अगाध प्रेम के सूचक हैं। पिता की आज्ञा तक को भंग करने के लिए वह तैयार हो गये। ऐसा क्यों ? भरत का भ्रातृप्रेम!

भरत की अगाध भक्ति ! सत्य है, भक्ति सब-कुछ कर सकती है। ब्रह्मा के लिखे अङ्क मेटने में केवल भक्ति ही समर्थ है।

भरत ने कहा—'देव एक बिनती सुनि मेरी' फिर जैसा समझिए, कीजिए। या तो आप 'सानुज पठइए मोहि बन' या दोनों भाइयों को घर लौटा दीजिए और 'नाथ चलउँ मैं साथ' अथवा हम तीनों भाई वन चले जायँ और 'बहुरिय सीय सहित रघुराई'। आप इनमें जो उचित समझें, कीजिए। मुझे तो नीति-धर्म आदि का कुछ खयाल नहीं है। मैं तो स्वार्थ-रत हूँ। कभी 'आरत के चित रहत न चेतू'। इसके अतिरिक्त 'जग मंगल हित एक उपाऊ' और भी हैं—

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि-धरि करहिं सब, मिटहिं अनट अवरेव॥

धन्य देवतुल्य भरत ! तुम्हारे अतिरिक्त भातृ-भक्ति का ऐसा आदर्श और कौन संसार को दिखा सकता है !

इस बात को सुनकर श्रीरामजी ने कहा—तुम मुझे धर्म-संकट में न डालकर पिता की आज्ञा पालन करने दो। मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि 'तुमहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई' परन्तु 'बाँटिय विपति सबै मोहि भाई।'

भगवान के इन प्रेम-पूर्ण वचनों से 'भरतहि भयउ परम सन्तोषू।' इसके पश्चात् भरत ने अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ राम-पद-चिह्न-अंकित चित्रकूट के सब स्थान देखे, और भाई की आज्ञा स्वीकार कर प्रजापालन करने के निमित्त अयोध्या लौटने को तैयार हुए। जब चलने लगे तब राम ने हृदय से लगाकर इतने अधिक काल तक के लिए एकमात्र अवलम्ब 'प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही'। उन पादुकाओं को 'सादर भरत सीस धरि लीन्ही' और 'प्रभु पद-पदुम बंदि दोउ भाई, चले सीस धरि राम रजाई।'

अयोध्या आकर मंत्री, सेवकादि को उचित शिक्षा दी। फिर शत्रुघ्न को 'सौंपि सकल मातुन सेवकाई' गुरु के मन्दिर गये। उनसे कहा—यदि 'आयसु होइ तो रहउँ सनेमा।'

वसिष्ठजी ने कहा कि तुम जो कुछ कहोगे अथवा करोगे वह 'धरम सारु जग होइहि सोई।'

शुभ मुहूर्त में 'सिंहासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि।' राज्य-प्रबन्ध के लिए शत्रुघ्न को नियत कर आप अयोध्या के समीपस्थ 'नन्दिग्राम' में पर्णकुटी बनाकर तपस्वियों की भाँति कालयापन करने लगे। व्रतादि के कारण देह तो दुबली होती जाती थी; परन्तु 'घट न तेज बल मुख छवि सोई'। वे—

नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राजकाज बहु भाँति॥

भरत की यह तपश्चर्या देखकर सब लोग कहते थे 'सब विधि भरत सराहन जोगू।' इस प्रकार कठिन तपस्या करते हुए भरत ने चौदह वर्ष तक राम की धरोहर की रक्षा की।

जब राम चौदह वर्ष की अवधि समाप्त होने पर अयोध्या लौट आये तब पादुकाओं के स्थान पर जिन चरणों में यह पादुकाएँ सुशोभित होती थीं उन्हें सिंहासनासीन कर, भरत ने उनकी धरोहर उन्हें ज्यों-की-त्यों सौंप दी। वह धरोहर पहले से उन्नतिशील ही थी। उसमें किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आने पाई थी।

यही भरत के आदर्श चरित्र की झलक है। इनका चरित्र सब प्रकार से लांछना-रहित है, उसमें किसी प्रकार का धब्बा नहीं है। इस जटा-वल्कलधारी राजर्षि के चित्र का रामायण में अद्वितीय सौन्दर्य है। सच है—

राम प्रेम भाजन भरत, बड़े न यहि करतूति।
चातक हंस सराहियत, टेक विवेक विभूति॥[1]

—मासिक 'आदर्श' (कलकत्ता); वर्ष १, संख्या ५; फाल्गुन सं० १९७९ वि० (१९२२ ई०)

आदर्श साहित्यिक

जो लेख लिखते हैं, पद्य-रचना करते हैं, पत्र-सम्पादन और ग्रन्थ-निर्माण करते हैं तथा पुस्तकों के अध्ययन में लीन रहते हैं, उन्हें प्रायः सब लोग साहित्यिक कहा करते हैं। जो कोई विद्या-प्रचार और ज्ञान-विस्तार का काम करता है वह वास्तव में धन्य है, चाहे वह जीविका के लिए करता हो अथवा यश के लिए। जो गद्य या पद्य लिखकर पाठकों के मनोविनोदार्थ तथा सर्वसाधारण के उपकारार्थ सामयिक पत्रों में प्रकाशित कराते हैं, वे सचमुच जनता के शुभचिन्तक और सेवक हैं। जो पुस्तक-प्रणयन और पत्र-सम्पादन करते हैं, उन्हें भी शिक्षा-प्रचारक और लोकोपकारक कह सकते हैं; क्योंकि उनके स्वार्थ के साथ-साथ जनता का भी स्वार्थ सधता है।

साहित्य-सेवा ही जिसकी जीविका हो जाती है, वह साहित्य का महान उपकार करता है। किन्तु, जीविका उपार्जन करना ही जिसके जीवन का प्रधान लक्ष्य है, उससे साहित्य-सेवा होती भी नहीं। साहित्य-सेवा में जिसका स्वाभाविक एवं आन्तरिक अनुराग नहीं, वह अपनी साहित्य-सेवा से राष्ट्र का विशेष हित-साधन नहीं कर सकता। हाँ, साहित्य-सेवा को अपनी जीविका का मुख्य आधार मानकर भी जो लोग अपनी आभ्यन्तरिक प्रवृत्ति से उसमें लीन होते हैं, वे जीविका को प्रधानता नहीं देते। वे जीविका को गौण और साहित्य-सेवा को मुख्य मानते हैं।

काव्य ही साहित्य का प्राण है। वास्तव में सच्चा साहित्यिक तो स्वभावतः काव्यानुरागी होता है। इतिहास, भूगोल, विज्ञान, अर्थशास्त्र आदि विषयों में भी वह काव्य-जनित अलौकिक आनन्द ही ढूँढ़ता है। उसकी आत्मा, उसकी कल्पना, उसकी भावना, उसकी स्मृति और उसकी बुद्धि, काव्य की आत्मा के साथ, दूध-मिसरी की तरह घुल-मिल जाती है। इतिहास, धर्म, राजनीति, विज्ञान, कृषि आदि विषय भी साहित्य

१. तुलसी सतसई।

की सीमा में बद्ध हैं। किन्तु, सबमें काव्य की रसमयी आत्मा की खोज करनेवाला साहित्यिक पुरुष ही, उक्त शुष्क विषयों को भी, संसार के लिए, विशेष चित्ताकर्षक और हृदयग्राही बना सकता है। ऐतिहासिक मारकाट, राजनीतिक उथल-पुथल, वैज्ञानिक आविष्कार, धार्मिक शिक्षा, भौगोलिक वर्णन और शिल्प-कौशल में भी वह साहित्य की पवित्र आत्मा 'काव्य' को ढूँढ़ता रहता है। साहित्यिक नवरस उसे सर्वत्र देख पड़ते हैं। प्रत्येक घटना की विचित्रता में, विजय और पराजय में, उन्नति और अवनति में, नदी और पर्वत में, वर्षा और वसन्त में, किसान और देश की दरिद्रता में, झोपड़ी और राज-महल में, जंगल में, पुष्पोद्यान में, पुस्तकालय में, हाट-बाट में, और जीवन-मरण में, सर्वत्र सर्वदा वह साहित्य की उसी रसवती आत्मा 'काव्य' का अनुसन्धान करता रहता है। साहित्य के नवरस, जो काव्य के प्राकृतिक अलंकार हैं, उसकी आत्मा के सर्वस्व हो जाते हैं। शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त आदि साहित्यिक रस, उसे, अवस्था और अवसर के अनुकूल आनन्द देते रहते हैं। जब वह विज्ञान का अध्ययन करने लगता है तब उसकी कल्पना आकाश में उड़ने लगती है—वह साहस और अध्यवसाय की महिमा पर विचार करने लग जाता है—वायुयान और जलयान के निर्माण का रहस्य सोचने लगता है। कभी महाकवि कालिदास के मेघदूत-महाकाव्य का यह वाक्य 'धूमज्योतःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः' याद करने लगता है और फिर कभी यह सोचने लगता है कि 'सोइ जल अनल अनिल संघाता, होइ जलद जग जीवन दाता'। इतना ही नहीं, विज्ञान-पाठ के प्रसंग में वह बिहारी के इन दोहों पर भी दाद देता है—

मेरी भव-बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होइ॥
अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष रँग होति॥

जब वह कृषि-विषयक अध्ययन आरंभ करता है तब उसकी कल्पना कमाल करती है। वह किसानों को झट भगवान 'हलधर' कहकर उन्हें प्रणाम करता है और उसी समय उसे यह पद्य स्मरण हो आता है—

मुँह तक रही थी खुश्क जमीं आसमान का।
उम्मेद साथ छोड़ चुकी थी किसान का॥
इक दिन जो अपने खेत में आकर खड़ा हुआ॥
पौदों का हाल देखके बेताब[1] हो गया॥
हर बार आसमाँ की ओर देखता था वह।
बारिश के इन्तजार में घबरा रहा था वह॥
नागाह[2] एक अभ्र[3] का टुकड़ा नजर पड़ा।
लाती थी अपने साथ उड़ाकर जिसे हवा।

१. बेचैन। २. अचानक। ३. बादल (अभ्र, मेघ)

टप-दे-सी उसकी नाक पै एक बूँद गिर पड़ी।
सूखी हुई किसान के दिल की कली खिली॥
क़िस्मत खुली किसान की बिगड़ी हुई बनी।
सूखी हुई ग़रीब की खेती हरी हुई॥"[1]

फिर वह मन ही मन कहता है—

"हल चलानेवाले .... प्रायः स्वभाव से ही साधु होते हैं। वे अपने शरीर का हवन किया करते हैं। खेत उनकी हवन-शाला है। उनके हवन-कुण्ड की ज्वाला की किरणें चावल के लम्बे और सुफेद दानों के रूप में निकलती हैं। गेहूँ के लाल-लाल दाने इस अग्नि की चिनगारियों की डालियाँ हैं। मैं जब कभी अनार के फल और फूल देखता हूँ तब मुझे बाग़ के माली का रुधिर याद आ जाता है। उसकी मेहनत के कण ज़मीन में गिरकर उगे हैं, और हवा तथा प्रकाश की सहायता से वे मीठे फलों के रूप में नज़र आ रहे हैं। किसान मुझे अन्न में, फूल में, फल में, आहुत हुआ-सा दिखाई पड़ता है। कहते हैं ब्रह्माहुति से जगत् पैदा हुआ है। अन्न पैदा करने में किसान भी ब्रह्मा के समान है। खेती उसके ईश्वरीय प्रेम का केन्द्र है। उसका सारा जीवन पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में, फल-फल में बिखर रहा है। वृक्षों की तरह उसका जीवन एक प्रकार का मौन जीवन है। वायु, जल, पृथ्वी, तेज और आकाश की नीरोगता उसी के हिस्से में है।"[2]

"विद्या यह नहीं पढ़ा; जप-तप यह नहीं करता; संध्या-वन्दनादि इसे नहीं आते; ज्ञान-ध्यान से इसे सरोकार नहीं; केवल साग-पात खाकर ही यह अपनी भूख निवारण कर लेता है। ठण्ढे चश्मों और बहती हुई नदियों के शीतल जल से यह अपनी प्यास बुझा लेता है। प्रातःकाल उठकर यह अपने हल-बैलों को नमस्कार करता है और हल जोतने चल देता है। दोपहर की धूप इसे भाती है। इसके बच्चे मिट्टी ही में खेल-खेलकर बड़े हो जाते हैं। इसको और इसके परिवार को बैल और गौवों से प्रेम है। उनकी यह सेवा करता है। पानी बरसानेवाले के दर्शनार्थ इसकी आँखें नीले आकाश की ओर उठती हैं। नयनों की भाषा में यह प्रार्थना करता है। सायं और प्रातः, दिन और रात, विधाता इसके हृदय में अचिन्तनीय और अद्भुत आध्यात्मिक भावों की वृष्टि करता है। यदि कोई इसके घर आ जाता है तो यह उसको मृदु वचन, मीठे जल और अन्न से तृप्त करता है। धोखा यह किसी को नहीं देता। यदि कोई इसे धोखा दे भी दे, तो उसका इसे ज्ञान भी नहीं होता; क्योंकि इसकी खेती हरी-भरी है; गाय इसकी दूध देती है; स्त्री इसकी आज्ञाकारिणी है; मकान इसका पुण्य और आनन्द का स्थान है।

---

१. मासिक 'सरस्वती' (प्रयाग)

२. सरदार पूर्णसिंह के 'प्रेम की मजूरी' नामक एक निबन्ध से ('सरस्वती', प्रयाग)

पशुओं को चराना, नहलाना, खिलाना, उनके बच्चों की अपने बच्चों के समान अच्छी तरह सेवा करना, खुले आकाश के नीचे रातें गुजार देना क्या स्वाध्याय से कम है ? दया, वीरता और प्रेम जैसा इन किसानों में देखा जाता है, अन्यत्र मिलने का नहीं। गुरु नानक ने ठीक कहा है; 'भोले भाव मिले रघुराई' ! भोले-भाले किसान को ईश्वर अपने खुले दीदार का दर्शन देता है। उनकी फूस की छतों में से सूर्य्य और चन्द्रमा छन-छन कर उनके बिस्तरों पर पड़ते हैं। ये प्रकृति के जवान साधु हैं। जब कभी मैं इन बे-मुकुट के गोपालों का दर्शन करता हूँ, मेरा सिर स्वयं ही झुक जाता है। जब मुझे किसी फकीर के दर्शन होते हैं तब मुझे मालूम होता है कि नंगे सिर, नंगे पाँव, एक टोपी सिर पर, एक लँगोटी कमर में, एक काली कमली कंधे पर, एक लम्बी लाठी हाथ में लिये हुए गौओं का मित्र, बैलों का हमजोली, पक्षियों का हमराज, महाराजाओं का अन्नदाता, बादशाहों को ताज पहनाने और सिंहासन पर बिठानेवाला, भूखों और नंगों का पालनेवाला, समाज के पुष्पोद्यान का माली और खेतों का वाली जा रहा है।"[१]

इसी प्रकार जब 'ताजमहल' को वे देखते हैं तब उसे 'पत्थर का महाकाव्य', हिमालय को 'पृथ्वी का मापदंड' और सजला सफला सस्यश्यामला वसुन्धरा को 'मातृभूमि की सुगापंखी साड़ी' तथा पर्वत-निर्गत नदियों को 'देशमाता के स्तनों की दुग्धधाराएँ' कह देते हैं। यदि आकाश की ओर उनकी नजर उठ जाती है तो मगन-मन होकर कहते हैं—

हे ईश तुम्हीं में रवि प्रकाश पाता है; कृश हुआ कलाधर फिर विकास पाता है।
हैं तारे करुणा-विन्दु तुम्हारे प्यारे, न्यारे-न्यारे हैं खेल तुम्हारे सारे ॥[२]

फिर जब वे अर्थशास्त्र का अध्ययन करने लगते हैं तब वे सोचते हैं कि—

हिन्द की हाय दौलत कहाँ वह गई,
और क्या इल्म का वह खजाना हुआ ?
धीरता और साहस गये हैं किधर ?
किस तरफ काफिला वह रवाना हुआ ?
देश की ओर से कान बहरे किए,
आँख रहते हुए हाय अन्धे बने।
लाख घर-घर में रोना पड़ा, पर यहाँ
रात-दिन नाच-गाना-बजाना हुआ !
सस्य से श्यामला भूमि में इस तरह
अन्न का, वस्त्र का, धन का टोटा पड़ा।
रत्नगर्भा के लालों को परदेश में
कौड़ियों में कुली बन के जाना पड़ा।[३]

१. 'सरस्वती' में ही छपे उपर्युक्त निबंध से। २. कविवर मैथिलीशरण गुप्त।
३. कविवर 'सनेही'।

यहाँ तक कि जब वे गणित पढ़ते हैं तब यह देखकर अपने-आपको भूल जाते हैं कि '९' संख्या बड़ी विचित्र है; क्योंकि इस अन्तिम अंक का आद्यन्त—सर्वाङ्ग—केवल 'नव' से ही निर्मित है। यथा—

९×१= ९ : ९=९
९×२=१८ : १+८=९
९×३=२७ : २+७=९
९×४=३६ : ३+६=९
९×५=४५ : ४+५=९
९×६=५४ : ५+४=९
९×७=६३ : ६+३=९
९×८=७२ : ७+२=९
९×९=८१ : ८+१=९

— — — — — —

८१, ४५, ४०५, ४५, ३६, ८१
८+१, ४+५, ४+५, ४+५, ३+६, ८+१

हर तरफ से 'नव' ही 'नव'

कहने का तात्पर्य्य यह है कि चाहे साहित्यिक जन इतिहास पढ़ें या भूगोल, विज्ञान पढ़ें या गणित, कृषिशास्त्र पढ़ें या अर्थशास्त्र, सबमें उन्हें साहित्य की दिव्य आत्मा के दर्शन प्राप्त होते हैं। जब वे काव्य पढ़ते हैं तब तो अपनी भावुकता की चरम सीमा अतिक्रम कर जाते हैं। जब वे कविता करने बैठते हैं तब भगवती वीणापाणि उनकी हृत्तंत्री को छेड़कर ऐसा विश्व-संगीत उत्पन्न करती हैं कि वह अनन्तकाल तक संसार के वायुमंडल में गूँजता ही रह जाता है। जब वे कविता का अध्ययन करने लगते हैं तब उसके रचयिता कवि की स्वर्गीय आत्मा का पुण्य-पुलक स्वयमेव अनुभव करते हैं। वे जिस कवि की रसात्मक रचना पढ़ते हैं उसी कवि की अतीत अनुभूति के अन्तरतम-प्रदेश में पैठ जाते हैं। वे सरस्वती के प्रसाद से काव्य का गूढ़ मर्म समझ कर रोमाञ्चित और आत्मविस्मृत हो जाते हैं। अर्थात् वे कविता का हृदय टटोलते-टटोलते सुध-बुध खो देते हैं।

जो लोग यह आक्षेप करते हैं कि शृंगाररस की कविताएँ पढ़ते-पढ़ते मनुष्य दुश्चरित्र बन जाता है, वे भूलते हैं; क्योंकि बात ऐसी नहीं है। जो वास्तव में साहित्यिक है, वह शृंगार-रस की कविताओं को पढ़कर चंचल नहीं होता। वह रसाम्बुधि में ऐसा निमग्न हो जाता है कि उसे इस संसार की कुछ चिन्ता ही नहीं रहती। वह जब कविता-गत मधुर भाव को अपनी कल्पना की कसौटी पर कसने लगता है तब उसे यह संसार सूना जान पड़ता है। उसकी कल्पना को संतुष्ट करनेवाला अनूठा साधन यहाँ मिलता ही नहीं। कल्पना की जिस ऊँची चोटी तक वह पहुँच जाता है वहाँ तक सृष्टि की निपुणता शायद

ही पहुँच सके। वह तो भाव में इस तरह डूबा रहता है कि उसकी भावुकता की अलौकिकता उसे मायावी संसार के क्षणिक चाकचिक्य पर मुग्ध ही नहीं होने देती। वह कवियों की अनोखी सूझों पर लट्टू और अपनी कल्पना के उड़ान पर विभोर हो जाता है। इसलिए, वह दुःशील नहीं, बल्कि विचारशील हो जाता है। उसका मस्तिष्क कभी निष्क्रिय नहीं होने पाता। निष्क्रिय मस्तिष्क ही निन्दनीय विचारों का अड्डा होता है। आलस्य ही पाप का मूल है। जिसका दिमाग सूखा-रूखा और निकम्मा रहता है, वह निश्चय ही जघन्य चिन्ताओं से आक्रान्त होकर हेय प्रवृत्ति को ग्रहण करता है। किन्तु, जिसके मस्तिष्क-महोदधि में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, सूर, तुलसी, कबीर, रहीम, बिहारी और देव आदि तैरते रहते हैं, वह कभी कुमार्गी हो ही नहीं सकता।

कुछ लोगों का कहना है कि प्राकृतिक सौन्दर्य्य का उपासक प्रायः सच्चरित्र और कृत्रिम सौन्दर्य्य का उपासक अधिकतर दुश्चरित्र हुआ करते हैं। इस कथन में तथ्य का अंश अवश्य है। किन्तु, यह समझ रखना चाहिए कि भावुक साहित्यिक केवल स्वाभाविक और आन्तरिक सौन्दर्य्य को ही प्रश्रय देता है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि लोचनानन्ददायक सद्भावजनक सौन्दर्य्य को ही स्वाभाविक सौन्दर्य्य कहते हैं और चारित्रिक सौन्दर्य्य—अर्थात् सच्चरित्रता को ही आन्तरिक सौन्दर्य्य कहते हैं। यदि सर्वाङ्गसुन्दर रमणी का हृदय कोमल, करुणामय और प्रेममय न होकर श्मशान की तरह भयंकर है, तो उसके मधुर कटाक्ष में, उसकी भाव-भंगिमा में अथवा उसकी विलास-लीला में साहित्यिक के लिए कुछ भी आकर्षण या आनन्द नहीं। हाँ, कुरूपा का हृदय यदि स्नेह, वात्सल्य, करुणा, श्रद्धा और सरलता से भरपूर है तो सच्चा साहित्यिक भक्तिपूर्वक उसे देवी कहकर पूजेगा।

कहने का तात्पर्य यह कि आदर्श साहित्यिक वही है जो केवल सच्चरित्रता का उपासक है। जो कवियों की रचनाओं की अलौकिकता भूलकर उनमें कृत्रिमता का आरोप करके उन्हें अपनी कुवासनाओं की तृप्ति का साधन बनाता है वह आदर्श साहित्यिक तो क्या, साहित्यिक-मात्र कहे जाने योग्य भी नहीं है। साहित्यिक पुरुष अपने देश, जाति और समाज के अलंकार हुआ करते हैं। किन्तु, जिसकी प्रवृत्ति अधोमुखी है वह कभी किसी का अलंकार हो ही नहीं सकता। जिसके विचार ऊँचे हैं, जिसकी धारणा पवित्र है, जिसकी भावना स्वर्गीय है, जिसका हृदय उदार है, जिसकी कल्पना कमनीय है; जिसकी दृष्टि निष्कलंक है और जिसका मस्तिष्क शान्त है, वही साहित्य-जनित लोकोत्तरानन्द का भागी बनता है और उसी आदर्श साहित्यिक का चरित्र भी उपास्य हो जाता है।

—मासिक आदर्श (कलकत्ता); वर्ष १, संख्या ७; वैशाख, १९८० वि०, (सन् १९२३ ई०)

परिशिष्ट

[१]

प्रस्तावना*

भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गान्धारनीलोत्पला
शल्यग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन वेलाकुला।
अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनावर्त्तिनी
सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै रणनदी कैवर्त्तकः केशवः ॥

भव-सागर में पड़ी हुई जीवन-नौका के कुशल कर्णधार श्रीकृष्णचन्द्र के चारु चरणों का ध्यान करते हुए, उन्हीं की कृपा और इच्छा से, आज मैं यह छोटी-सी पुस्तक पाठकों को भेंट करता हूँ। आशा है, मेरी यह तुच्छ भेंट पाठक पसन्द करेंगे।

मैं क्लिष्ट भाषा लिखने के लिए बहुत बदनाम हूँ। किन्तु मैंने इस पुस्तक की भाषा में सरलता और सरसता लाने की बड़ी चेष्टा की है। मालूम नहीं, सफलता कहाँ तक हुई है। इस दूसरे संस्करण की भाषा तो पहले संस्करण से भी सरल बना दी है। अतः विश्वास है, यह पुस्तक बालकों और नवयुवकों के कुछ काम की होगी।

नीति-शास्त्र-विशारद भीष्माचार्य्य की जीवनी ऐसी छोटी पुस्तक में कहाँ तक संक्षिप्त लिखी जाय? एक प्रकार से तो समस्त महाभारत ही पितामह की चारु चरितावली है। अब आप स्वयं अनुमान करें कि इतनी छोटी पुस्तक में भीष्म-चरित्र भर देना गागर में सागर भरने का दुस्साहस है या नहीं।

खैर, पाठक जानते हैं कि आज से कई हजार वर्ष पहले, द्वापर-युग के अन्त में, 'महाभारत' नामक भयङ्कर युद्ध, लगातार अठारह दिनों तक, दिल्ली के उत्तर कुरुक्षेत्र में, पांडवों और कौरवों के बीच, हुआ था। वैसी सुसंघटित लड़ाई भारतवर्ष में कभी नहीं हुई। उसमें भारत के बड़े-बड़े रणधीर वीर खेत रहे। उस महायुद्ध में भारत के बहादुर क्षत्रियों का संहार ही हो गया। सभी पराक्रमी राजा और योद्धा उस घमासान लड़ाई की धधकती हुई आग में स्वाहा हो गये। भारत की शक्ति और शोभा का सर्वनाश हो गया। विधवाओं के विलाप से भारत की दसों दिशाओं में हाहाकार मच गया।

महाभारत में तो अठारह दिन तक रक्त की नदियाँ बही थीं, विधवाओं के आँसुओं ने तो भारतवर्ष में शोक का समुद्र उमड़ा दिया! जो आकाश एक दिन महाभारत के वीरों की ललकार और गर्जन से फटा जा रहा था, वह विधवा सतियों की चिताओं के धुएँ से

* 'भीष्म' के प्रथम और द्वितीय संस्करण में प्रकाशित। दोनों संस्करण पाठक एण्ड कम्पनी (कलकत्ता) से सन् १९२३–२५ ई० में प्रकाशित हुए थे।—ले०

भर गया। जहाँ एक दिन वीर लड़े थे, वहाँ कुत्ते, गीध और गीदड़ लड़ने लगे! भाई-भाई के फूट और आपस के वैर-विरोध ने भाई-भाई का खून एक में मिला दिया!

विद्वानों की राय है कि महाभारत होने से भारत गारत हो गया। पर, नीतिज्ञ कहते हैं कि भारत गारत हो चुका था, इसलिए महाभारत हुआ। सच है, पहले ही भारत में द्वेष की आग सुलग चुकी थी। वही आग भड़क कर महाभारत के रूप में धधक उठी। फिर तो वह खून की नदियों और आँसुओं की धाराओं से भी नहीं बुझी।

उस प्रसिद्ध युद्ध के सबसे बड़े महारथी भीष्मपितामह थे। वे कौरव-दल के प्रधान सेनापति थे। उस समय सारे संसार में उनकी वीरता का डंका बज चुका था। क्षत्रियों के जानी दुश्मन परशुराम भी उनका लोहा मान चुके थे। भगवान श्रीकृष्ण ने भी अनेक बार उनकी अद्भुत वीरता को सराहा था। उनका ज्ञान समुद्र की तरह अगाध था। उनकी प्रतिज्ञा हिमालय की तरह अटल थी। उनका चरित्र सूर्य्य की उज्ज्वल किरणों के समान पवित्र था। वे बाल-ब्रह्मचारी तो थे ही, बड़े भारी पितृभक्त भी थे। संसार में कोई ऐसा काम न था, जिसे वे अपने पिता की प्रसन्नता के लिए न कर सकते थे। पिता को सन्तुष्ट रखना ही उनका मुख्य धर्म था। पिता के सुख के लिए उन्होंने अपने सुख को लात मार दिया। पिता की इच्छा पूरी करने के लिए अपनी इच्छाओं पर पानी फेर दिया! इसीलिए, भारत के तीन पितृभक्त सुपुत्रों (रामचन्द्र, परशुराम, भीष्म) में वे भी एक हैं। भारत के तीन बाल-ब्रह्मचारियों (हनुमान, शुकदेव, भीष्म) में वे भी गिने जाते हैं। चाहे जिस किसी आदर्श गुण को ले लीजिए, उनमें सबका विकास देख पड़ेगा। ऐसे ही—सब गुणों के भण्डार—महापुरुष का चरित्र संसार के लिए अनुकरणीय होता है।

भीष्म का चरित्र तो संसार की हर-एक जाति और समाज के लिए हितकर माना जा सकता है। वह उपदेश का अघट खजाना है। वह ज्ञान और राजनीति का ऐसा सोता है, जो प्रलय तक न सूखेगा। वही चरित्र आज सेवा में उपस्थित करता हूँ—इस आशा के साथ कि इसे पढ़कर आजकल के नवयुवक कुछ अच्छी बातें सीखेंगे।

भीष्म के चरित्र में एक जगह विचित्र शङ्का होती है—वह है द्रौपदी-चीरहरण के समय उनका चुप रह जाना। मालूम नहीं, उनके समान स्वतन्त्र, आत्माभिमानी, धर्म-ज्ञानी, राजनीतिज्ञ और महावीर पुरुष ने अपने सामने इतना बड़ा घोर अन्याय होते कैसे देखा; न जाने उस समय वे पत्थर की मूरत क्यों बन गये?

क्या वे युधिष्ठिर को जुआ खेलने से रोक देने में काफी समर्थ नहीं थे? क्या वे एक ही बार के सिंह-गर्जन से दुर्योधन को कँपा नहीं सकते थे? क्या दुश्शासन उनके गर्जन-तर्जन से भयभीत नहीं होता? क्या द्रोणाचार्य को उभाड़ कर वे अन्याय का पूर्ण विरोध नहीं कर सकते थे? क्या वात्सल्य ने उन्हें किसी पर हाथ ही नहीं उठाने दिया? क्या द्रौपदी उनके वात्सल्य की पात्री नहीं थी? क्या वे सभा से उठकर चले जाने में भी असमर्थ थे? क्या अपनी बातों का तिरस्कार होते देखकर वे आत्मगौरव की हानि नहीं समझते थे? क्या धृतराष्ट्र का अन्न खाने के कारण उन्हें आत्मगौरव का भी

खयाल नहीं था ? क्या अपने अन्नदाता का अन्याय देखकर भी चुप साध जाना भीष्म-जैसे आदर्श महापुरुष के योग्य ही कहा जायगा ? क्या दीना द्रौपदी ने जब 'पितामह' कहकर सहायता के लिए पुकारा, तब उन्हें कान बन्द कर ही रह जाना उचित था ? क्या उनकी समझ में अबला का अपमान भयङ्कर पाप नहीं था ? क्या धृतराष्ट्र के अन्न ने उनका स्वाभिमान नष्ट कर दिया था ? क्या अधर्म का विरोध करने के लिए भी वे अपना प्रभुत्व खो चुके थे ?

भीष्म के अलौकिक आदर्श का अभिमान रखनेवाले प्रत्येक भारतीय हृदय में ऐसे-ऐसे सैकड़ों प्रश्न उठ सकते हैं ; पर इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए यहाँ स्थान नहीं है, इस छोटी-सी पुस्तक का यह उद्देश्य भी नहीं है। यदि इन प्रश्नों की मीमांसा की जाय, तो अलग एक पोथा तैयार हो सकता है।

किन्तु, साधारणतः सब तरह के प्रश्नों पर अलग-अलग विचार करने पर भी, लाचार होकर, अन्त में, इसी नतीजे पर पहुँचना पड़ता है कि भारत का भविष्य भयङ्कर होनेवाला था, दुर्योधन के पाप का घड़ा भरनेवाला था, अशरण-शरण भगवान की भक्त-वत्सलता का महत्त्व प्रकट होनेवाला था, और दुर्योधन के भाग्य-वृक्ष में अबला पर अत्याचार करने का जहरीला फल फलनेवाला था। इसीलिए, भीष्म के हृदय में ईश्वरीय प्रेरणा नहीं हुई। यदि द्रौपदी का दुकूल खींचना वे रोक देते, तो दुर्योधन के अत्याचार से अनाथ-नाथ भगवान का सिंहासन न डोल उठता, भीम भी भयानक प्रतिज्ञा न कर पाते, 'केवल ईश्वर की ही सहायता का भरोसा रखना' संसार कभी न सीखता, और 'सतियों का पत-पानी बचाने के लिए सब जगह मौजूद रहनेवाले' ईश्वर से दुष्ट लोग हरगिज न डरते।

जो हो, भीष्म का चरित्र सब तरह से आदर्श जान पड़ता है। कुरुक्षेत्र की शर-शय्या पर पड़े हुए उस वृद्ध वीर ने जो भाषण दिया—धर्म का मर्म समझाया—शास्त्रों की आलोचना की, वह इस संसार का अद्वितीय व्याख्यान है। मौत की घड़ियाँ गिननेवाले—रणभूमि की वीर-शय्या पर इच्छा-मृत्यु के लिए ध्यानमग्न पड़े हुए एक अनुभवी वृद्ध के मुख से वैसा ओजस्वी व्याख्यान आजतक किसी देश में न कभी सुना गया, न शायद कभी सुना जायगा। धर्म का वास्तविक रहस्य समझानेवालों के लिए उनका वह अन्तिम गंभीर व्याख्यान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

वही अन्तिम भाषण देकर भारतवर्ष के गौरव-स्तम्भ गाङ्गेय गोलोकवासी हुए। उसी दिन भारत का एक प्रकाण्ड विद्वान उठ गया। भारतवर्ष का वह वयोवृद्ध वीर-व्याघ्र भारतीय क्षत्रियों के कीर्त्ति-कानन से कूच कर गया ! वह क्षात्रधर्म की तेजस्विनी मूर्त्ति, वह राजनीति और धर्मनीति का जगत्प्रसिद्ध आचार्य, वह भारतीय शास्त्रों का प्रचण्ड पण्डित, वह अखण्ड-व्रत-धारी आजन्म-ब्रह्मचारी, वह वीरता के आकाश का देदीप्यमान सूर्य और वह यशःकानन का मानी सिंह, सदा के लिए, इस देश से लुप्त हो गया ! ईश्वर से प्रार्थना है कि फिर भी इस देश में वैसे ही दृढ़-संकल्पवाले राजनीति-विशारद वीर उत्पन्न हों।

ग्राम—उनवाँस, डाकघर—इटाढ़ी, (शाहाबाद, आरा) **विनयावनत**

[प्र० सं० विक्रमसंवत् १९८०] [द्वि० सं० विक्रमसंवत् १९८२] **शिवपूजन सहाय**

[२]

भूमिका*

कौरवों-पाण्डवों के पितामह भीष्माचार्य अपने युग के बहुत बड़े ज्ञानी, रणधीर वीर, और प्रचण्ड धनुर्धर थे। वे नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र के प्रकांड पंडित थे। समय-समय पर राजनीति की जो शिक्षाएँ उन्होंने दी थीं, वे हमारे प्राचीन साहित्य की शोभा और अक्षय सम्पत्ति हैं। महाभारत का शान्तिपर्व उनके उपदेशों से भरा पड़ा है। द्वापर-युग में वेदव्यासजी भी उनके ज्ञान और अनुभव का आदर करते थे। वे जीवन-भर अखंड ब्रह्मचारी रहे। अपनी प्रतिज्ञा के पालन करने में वे हिमालय के समान अटल थे। उनके पुरुषार्थ और पराक्रम के सामने उनके गुरु परशुरामजी भी परास्त हो गये थे। अपने ब्रह्मचर्य के प्रताप से वे ऐसे दीर्घजीवी हुए कि अपने वंश की कई पीढ़ियों को देख सके। असल में वे एक गृहस्थ योगी थे। इसीलिए, उनकी इच्छा-मृत्यु हुई। मृत्यु को उन्होंने वशीभूत कर लिया था।

उनके समय में उनके समान योद्धा और सब शास्त्रों का विद्वान, भगवान श्रीकृष्ण और वेदव्यासजी को छोड़कर, दूसरा कोई था ही नहीं। महाभारत-काल में उनके ज्ञान और पौरुष की बड़ी प्रतिष्ठा थी। आर्यजाति में उनके समान तेजस्वी वीर बहुत कम हुए हैं। उनका निर्मल चरित्र और असीम विक्रम आर्यजाति के लिए अभिमान और गौरव की वस्तु है। महाभारत में भगवान श्रीकृष्ण और वेदव्यासजी ने अनेक बार खुले कंठ से उनकी प्रशंसा की है।

भीष्म पितामह का जीवन हमारे देश के होनहारों के लिए सब तरह से आदर्श है। उनकी यह संक्षिप्त जीवनी किशोर छात्रों के हित के लिए लिखी गई है। यदि उनका पूरा जीवन-चरित्र लिखा जाय तो एक बहुत भारी पोथा बन सकता है। किन्तु, विद्यार्थियों के जानने योग्य जो कुछ महत्त्वपूर्ण बातें हैं, सब इसमें बतला दी गई हैं। हमारे देश के विद्यार्थी इस जीवनी से अनेक ऐसे शुभ गुण सीख सकते हैं, जिनसे उनका जीवन अनुकरणीय और सफल बन जा सकता है।

महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़ने से सच्चा लाभ तभी होता है जब हम उनमें अंकित सद्गुणों को अपने जीवन में उतारते हैं। यदि हम महापुरुषों के गुणों को अपने आचरण में नहीं ढालते तो उनकी जीवनी पढ़ने से कोई वास्तविक लाभ नहीं। हरएक महापुरुष का एक-एक गुण भी अपनी पसन्द से चुनकर हम अपनाते चलें तो हमारा जीवन सचमुच उन्नत और यशस्वी हो जाय।

भीष्म के जीते-जी कौरवों ने उन्हें ठीक नहीं पहचाना। मदान्ध दुर्योधन ने उनका मूल्य ही नहीं समझा; उनकी नेक सलाह का उसने बराबर तिरस्कार किया। इसी कारण

*'भीष्म' के तीसरे संस्करण की। अजन्ता प्रेस (पटना-४) से सन् १९५१ ई० में निकला था।—सं०

उसका समूल नाश हुआ। पाण्डवों की श्रद्धा-भक्ति सदैव भीष्म में बनी रही। भीष्म का स्नेह भी उन लोगों पर सदा बना रहा। भीष्म ने अनेक बार उन लोगों को हृदय से आशीर्वाद दिया। वह आशीर्वाद फला भी खूब। पाण्डवों का कल्याण हुआ। गुरुजन में जो श्रद्धा रखता है, वही सफलमनोरथ होता है।

भीष्म का मूल्य सबसे अधिक भगवान श्रीकृष्ण ने ही समझा। जब कुरुक्षेत्र में शर-शय्या पर भीष्म मौत की शुभ घड़ियाँ गिन रहे थे तब भगवान श्रीकृष्ण सब पाण्डवों और कुरुवंश की स्त्रियों को साथ लेकर नित्य उनके पास जाते थे, उनसे तरह-तरह के प्रश्न पूछते और पुछवाते थे, उनके गंभीर ज्ञान और अनुभव से सबको लाभ तथा प्रकाश पहुँचाते थे। यदि भगवान इतनी बुद्धिमानी से काम लेने की कृपा न करते तो भीष्म के लम्बे और पवित्र जीवन के अमूल्य अनुभव उनके साथ ही चले जाते। भीष्म के वे अनमोल वचन महाभारत के शान्तिपर्व में हीरे-मोती की तरह जगमगा रहे हैं। भीष्म का वह प्रवचन आर्य-सभ्यता और आर्य-संस्कृति का सच्चा सन्देश है। संसार के साहित्य में शान्तिपर्व का बहुत ही ऊँचा स्थान है।

भगवान कृष्ण ने अपने समय के एक सबसे बूढ़े महात्मा के अनुभवों को संसार के हित के लिए उनके हृदयकोष से निकलवा लिया। यदि हमलोग भी आज अपने देश और समाज के सबसे बूढ़े मनुष्यों को खोज-ढूँढ़कर उनके मरने से पहले उनके अनुभवों को संचित कर लें तो हमारे साहित्य में बहुतेरी अच्छी बातें एकत्र हो जा सकती हैं! भगवान कृष्ण ने हमें यही सीख दी है कि वयोवृद्ध नर-नारियों के पास जो अनुभव के खजाने पड़े हैं, उन्हें साहित्य के भाण्डार में लेने से मत चूको। ज्ञानी पूर्वजों की संचित अनुभव-राशि ही साहित्य है।

हम अपने समाज के बड़े-बूढ़े लोगों की ओर से बहुत उदासीन हो गये हैं। उनके अनुभवों से हमारा अनन्त उपकार हो सकता है और हमारे साहित्य का कोष भी भरा जा सकता है। बड़े-बड़े ज्ञानी और अनुभवी हमारे सामने से दिन-दिन उठते चले जा रहे हैं—असंख्य तो बहुत पहले ही चले गये—किन्तु हमने बहुतों से कुछ नहीं पाया। हमारे साहित्य का सौन्दर्य, सामर्थ्य और सौरभ बढ़ानेवाला ढेर-का-ढेर सामान, हमारी अनेक पिछली पीढ़ियों के अनुभवी एवं ज्ञानी वृद्धों के साथ, बेकार चला गया। यदि हमारे देश के होनहारों को इस जीवनी से ऐसी कुछ प्रेरणा मिल सकी और वे अब भी सजग होकर इस दिशा में कुछ कर सके, तो इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य सिद्ध हो जायगा।

सम्मेलन-भवन, पटना-३ (श्रावणी, संवत् २००८ वि०) **शिवपूजन सहाय**

[३]

नम्र निवेदन*

मेरी 'भीष्म पितामह' नामक पुस्तक पहले हिन्दी-प्रेमियों की सेवा में पहुँच चुकी है।

*'अर्जुन' के दोनों संस्करण 'पाठक एण्ड कम्पनी' (कलकत्ता) से सन् १९२३-२५ ई० में निकले थे। दोनों में से संकलित।—ले०

× × × उसके प्रथम संस्करण की भूमिका में मैंने लिखा था कि महाभारत और रामायण के सभी मुख्य पात्रों की बालोपयोगी जीवनियाँ लिखूँगा। लेकिन, वह इरादा उस प्रथम संस्करण के प्रकाशक के उत्साह की बाढ़ में बह गया! पूरे दो वर्ष के बाद यह 'अर्जुन' लिखना पड़ा। जैसा कुछ लिखा है, आपके सामने मौजूद है। सफल हुआ या असफल, यह विचारना आपका काम है। मैं केवल इतना ही निवेदन करूँगा कि मैंने इसे यथाशक्ति यथेष्ट सरल, सरस, मनोरंजक और शिक्षाप्रद बनाया है। निस्सन्देह इसमें त्रुटियाँ बहुत होंगी, पर उनके लिए विनीत क्षमा-प्रार्थना करने के सिवा और कोई चारा नहीं।

'अर्जुन' का चरित्र देश के होनहार बालकों और नवयुवकों के लिए कैसा उपदेशप्रद है, यह बताने की जरूरत नहीं। विश्वास है, जिसके लिए यह पुस्तक लिखी गई है, वे इससे मनचाहा लाभ उठावेंगे। अर्जुन के आदर्श का अनुकरण करने से ही देशोद्धार होगा।

'मतवाला'-मण्डल; २३, शंकर घोष लेन, कलकत्ता
विक्रमसंवत् १६८२; सन् १६२५ ई०

विनयावनत
शिवपूजन सहाय

[४]

भूमिका*

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥—श्रीभगवद्‌गीता

अर्जुन भगवान के परम भक्त थे। परम भागवतों में उनकी गिनती होती है। उनपर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की असीम कृपा थी। भगवान का स्नेह जितना उनपर था, उतना कभी किसी भक्त पर हुआ ही नहीं। भगवान ने उन्हें अपना विराट् रूप दिखा दिया। उस अद्‌भुत रूप को देखने के लिए उन्हें दिव्य दृष्टि भी दी। उनसे कह भी दिया कि यज्ञ, दान, तपस्या आदि से इस रूप का दर्शन होना संभव नहीं; केवल अनन्य भक्ति से ही इस रूप का दर्शन संभव है।

अर्जुन की अनन्य भक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण विराट्-रूप-दर्शन ही है। इतना ही क्या, भगवान ने अपना असली ज्ञान भी उन्हें सौंप दिया। भगवद्‌गीता में उसी दिव्य ज्ञान का उपदेश है। उसी गीता में लिखा है कि सभी उपनिषदें गाय के समान हैं, गोपाल-नन्दन भगवान कृष्ण दूध दूहनेवाले हैं और दूध-रूपी गीता का अमृत पीनेवाले बछड़ा अर्जुन हैं।

हमारे पुराणों में अर्जुन और श्रीकृष्ण नर-नारायण कहे गये हैं। नारायण-श्रीकृष्ण के ही नर-रूप अर्जुन थे। गीता के दसवें अध्याय में भगवान ने स्पष्ट कह दिया है—'पंचपाण्डवों में अर्जुन मैं ही हूँ।' संसार के जीवों के कल्याण के निमित्त ज्ञान-गीता का उपदेश करने के लिए ही भगवान ने अर्जुन को अपना अंश-रूप में पृथ्वी पर प्रकट किया था।

---

*'अर्जुन' के तीसरे संस्करण की। यह अजन्ता प्रेस (पटना-४) से सन् १६५१ ई० में निकला था।—ले०

उन्होंने अर्जुन के समान श्रेष्ठ माध्यम द्वारा गीता के सच्चे ज्ञान को इस लोक में सुलभ कर दिया। यदि अर्जुन न होते तो यह मंगलमय ज्ञान दुनिया को न मिलता।

अर्जुन अपने युग के सबसे अधिक यशस्वी धनुर्धर थे। धनुर्विद्या में अपनी अलौकिक निपुणता दिखलाकर उन्होंने अनेक देवताओं से वरदान पाया था। बाण-विद्या में उनकी अपूर्व कुशलता देखकर ही महावीर हनुमान ने उनपर प्रसन्न होकर महाभारत में उनके दिव्य रथ की ध्वजा पर आसन जमाया था। अग्निदेव ने भी, खाण्डव-वन-दाह के समय उनकी वीरता से संतुष्ट होकर ही उन्हें दिव्य रथ और अस्त्र दिये थे। हिमालय की रम्य वनस्थली में तपस्या करते समय किरात-वेश-धारी देवाधिदेव महादेवजी ने उनके अदम्य साहस पर रीझकर पाशुपत अस्त्र प्रदान किया था। इन्द्र के भेजे हुए गन्धर्वों से लड़कर बन्धन-मुक्त कराने के कारण कुटिल शत्रु दुर्योधन भी उनकी युद्ध-कला का लोहा मान गया। भीष्म और द्रोण ने तो अनेक अवसरों पर उनके युद्ध-कौशल को मुक्तकंठ से बारबार सराहा था। कर्ण-जैसा धनुर्धर भी उनके युद्ध-विक्रम की ईर्ष्या से दिन-रात जलता रहता था।

अर्जुन की रणधीरता का घोर आतंक कौरवों पर सदा छाया रहता था। उन्हीं की युद्धविद्या पर उनके भाइयों का पक्का भरोसा था। उनकी माता कुन्ती के मन में उन्हीं पर शत्रु-विजय की आशा अटकी रहती थी। उनके दोनों बड़े भाइयों—युधिष्ठिर और भीम—को उनके प्रबल पराक्रम पर बड़ा गर्व था। भीम की प्रचंड गदा उनके धनुष-बाण के बल पर हमेशा उछलती रहती थी। सचमुच अपने समकालीनों में वे अद्भुत योद्धा थे।

अर्जुन भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के अन्तरंग सखा थे। दोनों की मैत्री अटूट थी। दोनों सदासंगी थे। 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—कृष्ण साक्षात् पूर्ण ब्रह्म थे—ऐसा व्यासजी ने कहा है, और अर्जुन उन्हीं कृष्ण की छाया बने फिरते थे। अर्जुन की महिमा का बखान कहाँ तक किया जाय जब ये पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण के अभिन्न मित्र थे। वे ऐसे जगत्प्रसिद्ध तीरन्दाज हुए कि आजतक सिद्धहस्त तीरन्दाज को कलियुगी अर्जुन ही कहते हैं।

मैंने अर्जुन की यह जीवनी किशोर विद्यार्थी के लिए लिखी है। इसकी भाषा इतनी सरल रखी है कि बालक भी आसानी से पढ़-समझ सकते हैं। यदि वे ध्यान देकर इसे पढ़ेंगे तो बहुत-सी शिक्षाएँ भी प्राप्त करेंगे। जीवनी पढ़ने का मुख्य उद्देश्य यही है कि उसमें अंकित महापुरुष के चरित्र का यथाशक्ति अनुकरण करने का अभ्यास किया जाय।

इस पुस्तक में अर्जुन के अधिकतर उन्हीं गुणों का वर्णन किया गया है जिनसे हमारे देश के होनहार छात्र कुछ सीख सकें और जिन्हें सुगमता से अपने आचरण में उतार सकें। साथ ही, अपने पूर्वजों की अमर कीर्त्ति का गौरव समझकर उसपर गर्व कर सकें। जबतक बालकों और नवयुवकों में अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा-भक्ति पैदा न होगी तबतक उनमें स्वदेशाभिमान नहीं जग सकता। आशा है कि यह जीवनी उनमें राष्ट्रीय चेतना जगा सकेगी।

भूल-चूक के लिए क्षमाप्रार्थी—

सम्मेलन-भवन, पटना, [भाद्रकृष्णाष्टमी, संवत् २००८ वि०] **शिवपूजन सहाय**

[५]

भूमिका*

यह 'ग्राम-सुधार' पुस्तक मैंने अपने ही अनुभव से लिखी है। इसमें ऐसी ही बातें लिखी गई हैं जो मुझे अपने अनुभव से ठीक जँची हैं।

मैं ठेठ देहात का रहनेवाला हूँ, जहाँ नई रोशनी की सभ्यता का उजाला नहीं पहुँचा है। ऐसे अँधेरे में पड़े हुए गाँव बहुत-से हैं, जहाँ न अच्छी सड़क है, न स्कूल है, न पुस्तकालय है, न अस्पताल है; न वहाँ कोई सरकारी अफसर आसानी से पहुँच पाता है और न कोई नेता ही। ग्राम-सुधार का काम अधिकतर ऐसे ही गाँवों में करना है।

मैंने अपने गाँव में बहुत दिनों से ग्राम-सुधार-सभा खोल रखी है। उसके कामों में तरह-तरह की कठिनाइयाँ आती रहती हैं। उन कठिनाइयों को देखकर यही अनुभव हुआ है कि गाँवों का सुधार करना बहुत ही कठिन काम है। लेकिन, यह कठिन दीख पड़नेवाला काम भी आसानी से हो सकता है— अगर सच्ची लगन से काम करनेवाले ऐसे लोग मिल जायँ, जो गाँववालों से सच्ची सहानुभूति रखते हों, जो गाँवों की उन्नति को ही राष्ट्र की उन्नति समझते हों।

सरकारी योजनाओं (स्कीमों) और कानूनों से भी ग्राम-सुधार का काम शायद ही पूरा हो; क्योंकि सरकारी अफसरों में अभी तक गाँवों की भलाई करने का भाव अच्छी तरह नहीं जगा है। जब वे अपनी अफसरी भूलकर गाँववालों को स्वदेशी भाई समझने और मिलनसारी के साथ अपनाने लगेंगे तब ग्रामसुधार का काम तेजी से होने लग जायगा।

मान लीजिए, गाँव की सफाई में गाँववालों को लगाना है। अगर ग्राम-सुधार के अफसर खुद टोकरी,-झाड़ू या फावड़ा लेकर सफाई के काम में हाथ लगा देंगे, तो उनको केवल श्रीगणेश ही करना पड़ेगा, आगे का सारा काम तो गाँववाले खुद ही पूरा कर लेंगे। अगर किसी तालाब से कोई अफसर, नेता या कार्यकर्त्ता एक टोकरी मिट्टी खोदकर बाहर फेंकेगा, तो गाँववाले देखादेखी तालाब खोदकर तैयार कर देंगे। गाँव-वालों से जो काम कराना हो उसको पहले खुद ही करना पड़ेगा।

ग्राम-सुधार के लिए पहले कोई एक ही काम शुरू करके उसे पूरा कर दिखाना अच्छा होगा। गाँव की सफाई का काम ही अगर सबसे पहले हाथ में लिया जाय, तो उसे पूरा करने के लिए गाँव के बड़े लोगों का झाड़ू-दल या कुदाल-टोली बनाकर गाँववालों के सामने आदर्श रखना होगा। जब वे किसी अफसर या नेता या सुधारक या गाँव के मुखिया लोगों को काम में जुटते देखेंगे तब उनका उत्साह और साहस चौगुना बढ़ जायगा। इस तरह गाँववालों की भलाई के काम गाँववालों से ही कराये जा सकते हैं। सिर्फ लेक्चर झाड़ने या प्रोपगंडा करने या रोब गाँठने से ग्राम-सुधार नहीं

*'ग्राम-सुधार' के प्रथम संस्करण की। बिहार-सरकार के वयस्क-शिक्षा-संघ से सन् १९४७ ई० में प्रकाशित।—ले०

हो सकता, उसके लिए पढ़े-लिखे और बड़े-बड़े लोगों को झिझक या संकोच छोड़कर सच्चा सेवक बनना पड़ेगा—बड़प्पन का घमण्ड छोड़ना होगा—गाँववालों के दिल में जँचाना होगा कि देहातियों के लिए बाबुओं में भी हमदर्दी है। इसी तरह, थोड़े खर्च से भी ज्यादा काम हो सकेगा।

ग्राम-सुधार के लिए पवित्र चाल-चलनवाले त्यागी पुरुषों और स्त्रियों की भी जरूरत है। गाँव की स्त्रियों में काम करने के लिए वही स्त्री जा सकती है जो गाँव की स्त्रियों के दुःख-दर्द जानती है और खुद भी सादगी से रहती है। गाँव में वही कार्यकर्त्ता गाँववालों से अपनी बातें मनवा सकता है, जो सब तरह के भेदभाव भूलकर बहुत नरमी और मिठास के साथ सबसे बर्ताव करेगा। गाँव में काम करनेवाला सुधारक या कार्यकर्त्ता चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, सबसे पहले, अच्छे चरित्र का होना चाहिए। वहाँ विशेष विद्या-बुद्धि की जरूरत नहीं है। वहाँ शुद्ध सादा चाल-ढाल और मेल-जोल से ही काम निकल सकता है। इसके लिए ग्राम-सेवक-दल का संगठन और उस दल की शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए। यह काम खुद गाँववाले ही शुरू कर दें तो अच्छा होगा। औरों के भरोसे यह काम बहुत देर से होगा।

मैंने इस पुस्तक में ग्राम-सुधार के लिए सबसे पहला जरूरी काम सड़कों का सुधार बतलाया है। गाँवों की सड़कों का सुधार होने पर ही वहाँ अफसर, नेता, सुधारक, डाक्टर, प्रचारक, अखबार आदि आसानी से पहुँच सकते हैं। अच्छी सड़कों से ही गाँवों की उपज शहर या स्टेशन तक पहुँच सकती है। इस तरह गाँववालों की माली हालत अच्छी होती जायगी।

दूसरी बात मैंने गाँव के कुँओं के सुधार की सुझाई है। यह इसलिए कि गाँव के कुँओं के सुधार से ही गाँववालों की तन्दुरुस्ती अच्छी तरह रह सकती है और गाँवों में अच्छे-अच्छे कुँओं की संख्या बढ़ाने से ही गाँववालों में सफाई आ सकती है। अच्छे कुँओं और तालाबों से गाँव के पशुओं की दशा भी सुधर सकेगी और खेतों की सिंचाई में भी मदद मिलेगी।

इसी तरह बस्ती की सफाई, मकानों की बनावट, खेतों की चकबन्दी, पशुपालन और गोरक्षा, स्कूल और पुस्तकालय, अस्पताल और बाजार, गाँवों के लिए और भी जिन चीजों की जरूरत है, सबके बारे में, थोड़े में, लिख दिया है; क्योंकि गाँवों की भलाई के जितने काम हैं, उनमें से हरएक पर अलग-अलग एक-एक ऐसी ही या इससे भी बड़ी पुस्तक लिखी जा सकती है; लेकिन इस एक ही पुस्तक में बहुत-सी जरूरी और काम की बातें इसलिए इकट्ठी कर दी गई हैं कि इसे पढ़कर गाँव के लोग अपने लाभ के खास-खास कामों को आसानी से समझ लें।

भाषा इसकी मैंने बहुत सरल रखी है। देहात में जैसी भाषा सब लोग समझ लेते हैं वैसी ही रखने की कोशिश की है। मगर इस कोशिश के लिए मैंने कोई मेहनत या दिमागी कसरत नहीं की है। बोलचाल की भाषा में जो कुछ

कलम से निकलता चला गया, मैं लिखता चला गया—ध्यान तो ग्राम-सुधार पर बँधा था ही। इस विषय का साहित्य मैंने बहुत अधिक नहीं पढ़ा, लेकिन गाँव में रह कर गाँववालों के सुख-दुःख के बारे में सोचा-विचारा बहुत-कुछ है। इसलिए अपनी ही सूझ-बूझ के मुताबिक मैंने सारी बातें लिखी हैं। मुझे आशा है कि गाँव के लोग इसमें अपने मतलब की बात पावेंगे।

हाँ, इसमें कुछ ऐसी बातें भी मिल सकती हैं जो गाँव के लोगों को नहीं रुचेंगी; मगर वे जब देश की असली हालत पर सोचने लगेंगे तब उन्हें ये बातें पसन्द आयँगी।

हमें विश्वास है कि गाँव के लोग अपने पैरों आप ही खड़े होने की कोशिश शुरू कर देंगे—दूसरों के सहारे बेखबर रहने की भूल न करेंगे; क्योंकि इसमें सुधार के ऐसे भी उपाय और तरीके बतलाये गये हैं जो विना बाहरी मदद के गावों में बरते जा सकते हैं। इससे गाँवों का कुछ भी उपकार हो सका तो मैं अपने को धन्य मानूँगा और ऐसी ही भाषा में गाँववाले भाइयों के लिए फिर कुछ लिखने की कोशिश करूँगा।

राजेन्द्र कालेज, छपरा; महाशिवरात्रि, २००४ वि० } **शिवपूजन सहाय**

[६]

बस, आधी घड़ी*

आरम्भ की सात रचनाएँ काशी के साप्ताहिक 'आज' में प्रकाशित हुई थीं। प्रकाशन का समय उनके अन्त में दिया हुआ है।

बाद की चार रचनाओं के प्रकाशन का स्थान और समय भी उनके अन्त में उल्लिखित है। इन्हीं चार में से एक पहली (आठवीं) कुछ पुरानी है। उसकी शैली भी वैसी ही है।

जो सबसे पुरानी है, वही केवल मेरे नाम से छपी थी और जो सबसे नई है वह अन्तिम (बारहवीं) भी—शेष सभी कल्पित नाम से। † पुस्तक में संग्रह करते समय किसी में भी कहीं कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं किया है।

हास्यरसात्मक रचनाएँ अभी और भी * हैं। यदि पाठक इन्हें सचमुच पसन्द करेंगे तो उन सबके संग्रह का भी प्रयत्न अवश्य करूँगा।

* 'दो घड़ी' के प्रथम संस्करण से। अजन्ता प्रेस (पटना-४) द्वारा सन् १९४९ ई० में प्रकाशित।—ले०

† अन्त की तीन रचनाएँ मेरे नाम से ही छपी थीं। सबसे अन्तिम का शीर्षक दूसरी रचना का है, जो 'भारतमित्र' (कलकत्ता) के होलिकाङ्क में छपी थी (१९२४ ई०)। दोनों का मुख्यांश इसमें मिश्रित है; क्योंकि दोनों में भावसाम्य था।—ले०

* 'मतवाला' के लेखादि और 'जागरण' के 'क्षणभर' चौथे खण्ड में छपेंगे।—ले०

इन रचनाओं का लक्ष्य मनोरञ्जन मात्र ही है। लक्ष्यसिद्धि की जाँच सहृदय पाठक ही करेंगे। यदि पाठक प्रसन्न हुए तो ऐसी कितनी ही चीजों का उद्धार हो जायगा।

हास्यरस की सृष्टि अत्यन्त कठिन कर्म है। इसकी ओर मेरी प्रवृत्ति कलकतिया 'मतवाला' के जन्मकाल से ही हुई। जब-जब मन में उमंग उठी, सूझ-बूझ के अनुसार कुछ-न-कुछ गुमनाम लिखता रहा। सच तो यह कि इन रचनाओं में केवल मन की तरंग-ही-तरंग है, कौशल या चमत्कार कहीं लेशमात्र भी नहीं।

हाँ, पाठकों के सन्तोष का प्रमाण मिलने पर शेष सभी ऐसी रचनाएँ उनकी सेवा में उपस्थित की जायँगी। आशा है, दो-घड़ी की मौज से हिन्दी-प्रेमी प्रफुल्ल होंगे।

राजेन्द्र कालेज, छपरा; श्रावणी, २००६ वि० } शिवपूजन सहाय

[७]

दो शब्द†

'माँ के सपूत' का प्रकाशन छोटे बालकों या होनहार बच्चों के लिए हुआ है। इसमें कोई लेख नया नहीं है। यह पहले के लिखे हुए लेखों का संग्रह मात्र है। ऐसे लेखों के पढ़ने से हमारे देश के बालकों को अपना जीवन सुधारने-सँवारने की प्रेरणा मिलेगी, यही सोच-समझकर इन्हें एकत्रित कर दिया।

मेरे बालकोपयोगी लेख और भी हैं, जो मिलेंगे सो छपेंगे। इन लेखों की भाषा सुबोध है। बालकों के योग्य शैली भी सुगम है। यदि बालकों के माता-पिता थोड़ा भी सहारा दे देंगे, तो बालकों को कोई कठिनाई न होगी।

शिक्षाप्रद जीवनियाँ पढ़ने से ही बालक सदाचारी, साहसी, सुशील, देशभक्त और ईश्वरानुरागी हो सकते हैं। बालकों के जीवन को सुन्दर बनाने से ही समाज भी सुन्दर हो सकता है। राष्ट्र की नींव को पुष्ट करने के लिए बालकों के जीवन और चरित्र का निर्माण अत्यन्त आवश्यक है।

आशा है कि 'माँ के सपूत' को पढ़कर हिन्दी-प्रेमी बालक बहुत-से ऐसे गुणों को अपनावेंगे, जिनसे वे आगे चलकर भारत के सच्चे सपूत बन सकेंगे।

राजन्द्रे कालेज, छपरा; गान्धी-जयन्ती, १६४८ ई० } शिवपूजन सहाय

† 'माँ के सपूत' का प्रथम संस्करण अजन्ता प्रेस (पटना) से निकला था, पर यह वक्तव्य (दो शब्द) उसमें नहीं छपा, क्योंकि पाठ्य-पुस्तक में यह अनावश्यक होता। सम्भवतः पाठ्य-पुस्तक के रूप में आगे और भी कई संस्करण छपे थे। —ले०

[८]

भूमिका*

हमारे देश की अधिकांश जनता गाँवों में रहती है, जहाँ अविद्या और अभावों का बड़ा घना अन्धकार छा रहा है। वही अन्धकार गावों का उद्धार नहीं होने देता। प्रकाश की जरूरत वहीं पर है। वहाँ की जनता हर बात में, हर दिशा में हर काम में प्रकाश चाहती है। लोगों के जीवन में पग-पग पर प्रकाश की जरूरत है। किन्तु दुर्भाग्यवश देशहितैषी भी गाँवों से उदासीन हैं।

जनता के सुख के लिए सरकार बहुत-कुछ करती है, फिर भी जनता के पास तक सुख पहुँच नहीं पाता। जनता के हित के लिए सरकार योजनाएँ बनाती है। योजनाओं को कार्य-रूप में परिणत करनेवाले अपनी सफलता की लम्बी-चौड़ी रिपोर्ट दुनिया के सामने पेश करते हैं। मगर जनता का यथार्थ और यथेष्ट हित हो नहीं पाता। जनता की भलाई की चर्चा चारों ओर सुन पड़ती है, लेकिन वह भलाई देखने के लिए बड़ी बारीक निगाह चाहिए।

सरकार देहाती स्कूलों और सड़कों के लिए लाखों-लाख खर्च करती है, मगर बेचारे गरीब गुरुओं को प्रायः समय पर वेतन नहीं मिलता और न सड़कों का ही सुधार हो पाता है। जनता को कुछ पता ही नहीं कि सड़कों के लिए मिली हुई रकम कहाँ खर्च हो गई। जब गुरुओं की ऐसी दुर्दशा है तब राष्ट्र की पूँजी कहे जानेवाले बच्चे कैसे होनहार बन सकते हैं। सड़क के लिए जनता ही टैक्स देती है, मगर उसे सुगम सड़क की सुविधा प्राप्त नहीं होती। शहरों की दुर्दशा म्युनिसिपैलिटियों से होती है, गाँवों की जिला-बोर्डों से। जनता टैक्स से पिसती है, पर सुख-सुविधा नहीं पाती। जो उन संस्थाओं के मेम्बर हैं वे अपने को जनता के प्रतिनिधि कहते नहीं लजाते। जब सरकार भी उन संस्थाओं पर अधिकार कर लेती है, तब भी हालत नहीं सुधरती। जनता हैरान है, तबाह है, अँधेरे में भटकती है, उसे कोई प्रकाश नहीं देता। आज स्वतंत्र भारत में भी सत्य को प्रकाश में लाना अपराध है। यदि जनता को खुले तौर पर प्रकाश दिया जाय कि इन दुःखों के वास्तविक कारण क्या हैं, तो जनता सत्य का स्पष्ट प्रकाश पाकर सजग होगी, ठगों के फेर में न पड़ेगी। किन्तु, प्रकाश मिल नहीं पाता।

जनता की आँखें खुल चुकी हैं; परन्तु प्रकाश उनसे अभी बहुत दूर है। यदि वह निकट लाया जा सकेगा तो देश आगे बढ़ सकेगा, नहीं तो अखबार निकलते रहें, व्याख्यान होते रहें, योजनाएँ चालू रहें, कोई लाभ न होगा। हमारी सरकार जनहित के लिए क्या कर रही है और क्या करना चाहती है—इत्यादि बातें आसानी से मालूम हो

---

*'अन्नपूर्णा के मन्दिर में' के प्रथम संस्करण की। अजन्ता प्रेस (पटना) से सन् १९५० ई० में प्रकाशित।—सं०

जाती है। लेकिन जनता के अभाव-अभियोग क्या हैं—क्यों हैं—किस तरह दूर होंगे, इन बातों पर ठीक प्रकाश पड़ने नहीं पाता। स्वतंत्र भारत के अखबार भी जनता तक प्रकाश पहुँचाने में स्वतन्त्र नहीं हैं। असली कारण कभी प्रकाश में आने नहीं पाता। कोई असलियत खोलकर रख दे, ऐसा व्यक्ति नजर नहीं आता। सरकार ने जिनपर जनता का भार सौंपा है वे जनता के सम्पर्क से बहुत दूर-दूर हैं।

गाँवों में डाकखाने आज भी बहुत कम है। मगर जो हैं भी वे जनता को कभी ठीक समय पर डाक नहीं पहुँचाते। नहरों के रहते हुए भी खेत सूख जाते हैं और नहरों का पानी नदियों में बहा दिया जाता है। परमिट रहने पर भी कोई चीज कहीं सुविधा से नहीं मिल पाती। चोरबाजारी और नफाखोरी करनेवाले मूँछों पर ताव देते फिरते हैं। जनता यह नहीं जान पाती कि यह सब क्यों और कैसे होता है। सच्ची बात जानते सब हैं, पर कोई खुल कर कह नहीं पाता। यह दशा जबतक बनी रहेगी तबतक जनता के संकट नहीं टलेंगे। सत्य जबतक दबा रहेगा तबतक अभ्युदय असंभव है। जनता घपले में पड़ी रहे और देश सुखी हो जाय, यह अनहोनी बात है।

इस समय जनता को ऐसे ही प्रकाश की जरूरत है जिसमें वह अपने हितैषी और शोषक को पहचान सके, जिसमें उसे अपना हित-अहित सूझ सके। ऐसा प्रकाश जनता को तभी मिलेगा जब हमारे लेखक और पत्रकार ग्रामवासी जनता की समस्याओं पर विचार करेंगे और उनपर सरकार का ध्यान भी आकृष्ट करेंगे—साथ ही, ग्रामीण जनता को भी कर्त्तव्यमार्ग सुझावेंगे। नगर की जनता को तो समय-समय पर प्रायः प्रकाश मिलता ही रहता है।

भारत-राष्ट्र की उन्नति एवं समृद्धि के लिए मैं पहले गाँवों की जनता के सुख-दुख पर ही ध्यान देना परमावश्यक समझता हूँ। ग्रामीण जनता के गुण-दोष और अभाव-अभियोग बहुत-से हैं—उन्हें सहानुभूति-पूर्वक समझना और पढ़े-लिखे लोगों को स्पष्ट समझाना भी परमावश्यक ही है। मैंने इस पुस्तक के लेखों में यथाशक्ति इस बात की चेष्टा की है कि जनता और जनता-हितैषियों के सामने स्पष्ट रूप में ग्राम-सम्बन्धी मुख्य बातें रख दूँ। दोनों अपनी-अपनी त्रुटियाँ समझ लें, अपनी शक्ति पहचान लें, कर्त्तव्य सोच लें, समय की पुकार सुन लें, युग की माँग पूरी करने में सजग हो जायँ।

मैंने विक्रम संवत् २००४ में 'ग्राम-सुधार' नामक पुस्तक लिखी थी, जो बिहार-सरकार के वयस्क-शिक्षा-बोर्ड से प्रकाशित हुई है। उसके बहुत दिन पहले से गाँवों की समस्याओं पर सोच-विचार करते रहने में दिलचस्पी रही। सन् १९४० ई० के पूर्व ही अपने गाँव में 'ग्राम-सुधार-सभा' की स्थापना करने के बाद मुझे जो कटु अनुभव हुए, उन्हें ग्राम-सुधार-प्रेमी सज्जनों के सामने रखना मैंने उचित और आवश्यक समझा। उक्त सभा के संचालन में जो कठिनाइयाँ, असफलताएँ और निराशाएँ हुईं उन्हें धैर्य और शान्ति के साथ बर्दाश्त कर लेने का नतीजा अच्छा ही हुआ। एक ग्रामीण† वैद्य पंडितजी के मन में सच्ची लगन पैदा हो गई। वे साहस, आशा, विश्वास और मिठास के साथ बराबर अपनी धुन में लगे रहे। उनकी निष्ठा देख एक

† श्री जगन्नाथ शर्मा।

विद्वान् संन्यासी§ ने गाँव में आसन जमा दिया। दोनों विद्वानों को आज बरसों बाद भी मनचाही सफलता नहीं मिली है; पर तब भी गाँव के कल्याण के लिए कई अच्छे काम हुए हैं और आगे भी आशा है कि गाँव की भलाई होती रहेगी। मेरा अनुमान है कि सदियों के बिगड़े गाँव के सुधरने में कई साल तो जरूर लगेंगे।

किन्तु, कुछ गाँव ऐसे भी हैं या होंगे जिनके वास्तविक सुधार में शायद कुछ ही साल लगें। गाँवों को स्वच्छ, शिक्षित, सुन्दर और सुख-सम्पत्तिपूर्ण बनाने की इच्छा से, गाँवों में ही रहकर, काम करनेवाले सुधारक यदि अध्यवसायी, सहनशील तथा राष्ट्रहित-चिन्तक हों, और ग्राम-सुधार के काम में ही अपना सारा समय लगा सकते हों, तो गये-गुजरे गाँव भी कम-से-कम दस साल के अन्दर अवश्य सुधर जा सकते हैं। आज हमारे राष्ट्र के सामने जितनी जटिल समस्याएँ या गुत्थियाँ हैं, सबमें महत्त्वपूर्ण और तुरत ध्यान देने योग्य ग्राम-समस्या ही है। इस गुत्थी के सुलझते ही सबका समाधान हो जायगा।

सबसे पहले गाँव-गाँव में ग्राम-सुधार का कार्यक्रम बनना चाहिए, जिसकी रूपरेखा हमारी सरकार निश्चित करे अथवा काँगरेस। जैसे—सर्वप्रथम गाँव के नाम का सुधार, उसके बाद गाँव के रास्तों और कुँओं तथा मकानों का सुधार, तब फिर सामाजिक कुरीतियों और पर्व-त्योहारों का सुधार; इसी प्रकार क्रमशः पशुओं की नस्ल का सुधार, पशुपालन-प्रणाली में सुधार, खेती के तरीके और औजारों में सुधार, देहातियों के खान-पान और रहन-सहन में सुधार, खँड़हरों और शौचागारों का सुधार—इत्यादि। यों तो खेतों की चकबन्दी, गोचर-भूमि की रक्षा, खाद की तैयारी, व्यायामशाला, हाट-बाजार, विद्यालय, पुस्तकालय, डाकघर, गृहशिल्पकुटीर, उद्यमशाला, हस्तलिखित पत्र-पत्रिका, नाटक-मण्डली, रामायण-दल आदि और भी कितनी ही ऐसी चीजें हैं, जिनकी जरूरत अब गाँवों में महसूस होती है। यदि उपर्युक्त सुधारों और आवश्यकता-पूर्त्तियों पर सचमुच ध्यान दिया जाय तो देश की दशा दस साल में ही और की और हो जायगी। पाठकों से प्रार्थना है कि वे मेरी 'ग्राम-सुधार' नामक उक्त पुस्तक भी एक बार अवश्य पढ़ लेने की कृपा करें।

इस पुस्तक में संगृहीत सभी लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। उनके अन्त में उनका प्रकाशन-काल दे दिया गया है। उनके प्रकाशन का उद्देश्य स्पष्ट है। यदि उन्हें पढ़कर पाठकों के मन में कुछ प्रेरणा और चेतना जगी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा। आशा है कि मेरे पास और भी जो कुछ भी ग्रामोपयोगी साहित्य है, वह काल-क्रम से जनता की सेवा में पहुँच सकेगा।

सम्मेलन-भवन, पटना, होली, संवत् २००७ वि० } **शिवपूजन सहाय**

---

§ स्वामी हरिहरानन्द जी।

[९]

अपनी बात*

'महिला महत्त्व' मेरे प्रथम-कहानी-संग्रह का नाम था। उसी संग्रह का द्वितीय संस्करण 'विभूति' नाम से प्रकाशित हुआ। तब मैंने उस पुराने नाम को कायम रखने के लिए अपने लिखे हुए महिलोपयोगी लेखों का संग्रह करके उसका वही नाम रख दिया।

इस संग्रह में पुराने लेखों का ही संग्रह है, जो समय-समय पर स्त्रियों के हितार्थ लिखे गये थे और स्त्रियों के लिए निकलनेवाली पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। संग्रह तैयार करते समय ऐसा अनुभव हुआ कि कई लेखों में भाव-साम्य भी है। अतः ऐसे कुछ लेखों को बड़ी सावधानता के साथ मिलाकर पुनः पढ़ना पड़ा। जहाँ-जहाँ उनमें विचारों की समता मिली, वहाँ पहले लेख के उस अंश को जैसा-का-तैसा रहने देकर दूसरे लेख का वह अंश निकाल दिया। इसकी सूचना ऐसे लेखों की पाद-टिप्पणी में अंकित है।

इस संग्रह के अधिकांश लेखों से महिलाओं का महत्त्व प्रकट होता है और कुछ लेखों में महिलाओं के लाभ की उपयोगी बातें भी हैं। यदि हमारे समाज की देवियाँ अपना महत्त्व समझकर उन उपदेशप्रद बातों पर ध्यान देंगी, तो इस संग्रह के प्रकाशन का उद्देश्य सिद्ध हो जायगा।

विश्वास है कि यह संग्रह जब प्रकाशित होगा तब इससे हिन्दी पढ़नेवाली महिलाओं का यथेष्ट ज्ञानवर्द्धन और मनोरंजन होगा।

राजेन्द्र कालेज, छपरा,
विजयादशमी, संवत् २००६ वि० (सन् १९४९ ई०) } शिवपूजन सहाय

[१०]

संकेत*

'बालोद्यान' में कुछ सुन्दर और सुगन्धित फूलों का संग्रह है, जिन्हें धारण करने से बालकों की शोभा बढ़ेगी और उनका चित्त भी प्रसन्न होगा। इस संग्रह के फूलों में हर तरह का रूप-रंग और सुवास है। विचारों की इस बहुरंगी फुलवारी में बालकों का मन बहलने की आशा है। चुने हुए फूलों के गुच्छे से वे अपनी पसन्द का गुलदस्ता भी बना सकते हैं। मेरी कामना है कि इस उद्यान में वे तितली की तरह थिरकें।

राजेन्द्र कालेज, छपरा; गीता-जयन्ती, संवत् २००६ वि० } —शिव०

---

* यह छपी नहीं। एक प्रकाशक के अनुरोध से संगृहीत होकर पुस्तक अप्रकाशित पड़ी थी।—ले०

* यह भी छपा नहीं, लेखों का चयन-मात्र ही हुआ।—ले०

[११]
सूचना*

मेरे कुछ भाषणों का जो यह संग्रह प्रकाशित होने जा रहा है वह मेरे साहित्यिक विचारों को स्पष्ट करेगा। विज्ञ पाठक देखें कि इन भाषणों में कहीं ऐसे विचार हैं या नहीं, जिनसे साहित्य की श्रीवृद्धि हो सकती है। इनमें शब्दाडम्बर बहुत अधिक हैं। एक प्रकाशक के आग्रह से मैंने यह 'संग्रह' तैयार कर दिया है। इस संग्रह में जहाँ-तहाँ कुछ साहित्यिक सूचनाएँ मिल जायँगी, और संभव है कि उन साधारण सूचनाओं से कोई काम की बात मालूम हो जाय। हाँ, शब्दजाल रचने की कुछ कला भी इनसे मालूम होगी।

सम्मेलन-भवन, पटना; १५ अगस्त, १९५० ई० —शिव०

[१२]
सम्पादकीय वक्तव्य†

Errors like straws upon the surface flow;
He who would search for pearls must dive below.

—Dryden.

"It is much easier to meet with error than to find truth; error is on the surface, and can be more easily met with; truth is hid in great depths, the way to seek does not appear to all the world." —Goethe

आज से सात-आठ वर्ष पहले मैंने अपने मित्र कुमार देवेन्द्र प्रसाद जैन के प्रेम-पूर्ण आग्रह से यह पुस्तक अनुवादित की थी। मूल पुस्तक (The Way of Service) के रचयिता हैं सेंट्रल हिन्दू कालेज (बनारस) के भूतपूर्व प्रिंसिपल जार्ज सिडनी अरण्डेल साहब। पुस्तक छोटी-सी है, पर बड़े काम की चीज है। अरण्डेल साहब के विचारों का सार-भाग ग्रहण करके मैंने 'सेवाधर्म्म' को अपनी सदिच्छा के अनुसार सरस और रुचिकर बनाने की चेष्टा की थी।

मित्रवर देवेन्द्र जिस समय काशी के उक्त महाविद्यालय में पढ़ते थे, उसी समय उनके हृदय में इस पुस्तक को हिन्दी-संसार में प्रेषित करने की लालसा मूलबद्ध हुई थी।

---

*अप्रकाशित प्रति से।—ले०

† यह वक्तव्य बहुत विस्तृत था। यहाँ संक्षिप्त रूप में अत्यावश्यक अंश ही दिया गया है। 'सेवाधर्म' के दूसरे संस्करण का सम्पादन करते समय उसमें बहुत-सी गद्य-पद्यमयी सूक्तियाँ भी संकलित की गई थीं। उन्हें छोड़ देना पड़ा है। मूल के अनुवाद-मात्र से यहाँ प्रयोजन है। दूसरा संस्करण 'वीरमंदिर' (आरा) और प्रथम संस्करण 'प्रेममंदिर' (आरा) से प्रकाशित हुआ था।—ले०

यह कहना अनुचित न होगा कि मेरा अपना (भाव या विचार) इस पुस्तक में कुछ भी नहीं है। मैं अनुवादक-मात्र हूँ।

एकाएक हृदय में विश्व-प्रेम का जाग्रत हो उठना परमेश्वर की अशेष अनुकम्पा का चिह्न है। विश्व-सेवा के भावों से शीघ्र ही हृदय परिप्लावित नहीं होता। पहले अभ्यास करना चाहिए।

परिवार ही प्रेम और सेवा की शिक्षास्थली है। जो अपने भाई और बच्चे को प्यार नहीं करता, वह हरगिज इतना उदार नहीं बन सकता कि समूचे देश के निवासियों को और दूसरे के बच्चों को प्यार करने लगे। जो घर में अपने देव-ऋषि-कल्प माता-पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता, वह किसी तरह आदर्श-स्वयंसेवक नहीं बन सकता। जो अपने घर के रोगियों की यथेष्ट सेवा-शुश्रूषा नहीं कर सकता वह मेले या महामारी में असहाय रोगियों की क्या सेवा करेगा? जो अपने आस-पास के मुहल्ले के अनाथों, विधवाओं और गरीबों की सेवा-सहायता नहीं कर पाता, वह देश-सेवा का भार कैसे उठा सकता है? जो अपने गाँव के लोगों और सगे-सम्बन्धियों की सहायता करने में असमर्थ होगा, वह सारे समाज की सेवा का उत्तरदायित्व कैसे ग्रहण करेगा? जो न समाज-सेवा करने में उत्साह दिखाता है और न देश-सेवा के लिए त्यागी बनने को उत्सुक है, वह भला विश्व-सेवा का स्वप्न भी कैसे देख सकता है?

इसलिए, विश्व-सेवक को अनेक छोटी-बड़ी सेवा-सोपानों के द्वारा विश्व-सेवा की सर्वोच्च आदर्श-वेदी पर आरोहण करना पड़ता है। स्वार्थ की बलि-वेदी पर आरूढ़ हुए बिना उस आदर्श-वेदी पर चढ़ना असम्भव है।

किन्तु, एकाएक स्वार्थ से पिण्ड छूट भी नहीं सकता। प्रेम का केन्द्र जितना ही विस्तृत एवं विशाल होता जायगा, उतना ही स्वार्थ का ह्रास होता चला जायगा।

इसलिए, पहले प्रेम लता को परिवार-पादप पर चढ़ाइए। उसे क्रमशः स्वच्छन्द प्रसार पाने दीजिए। पवित्रता के आल-वाल (थाले) में सावधानता के जल से उसे सींचते जाइए। फिर तो वह विश्व-विटपी की सघनता से लिपटकर इतना फूलेगी कि उसकी सुखद सुगन्ध से संसार सुरभित हो उठेगा और उसकी शीतल छाया में सारे जगत् के प्राणी सुखशान्ति पावेंगे।

किन्तु, जबतक आप परिवार से पड़ोस, पड़ोस से ग्राम, ग्राम से परगना या तहसील, परगने या तहसील से जिला, जिले से प्रान्त और प्रान्त से समस्त देश तक अपनी प्रेमलता का क्रमशः विस्तार न होने देंगे तबतक विश्व-प्रेम और विश्व-सेवा द्वारा यह नर-जन्म सार्थक करके कभी कृत-कृत्य नहीं हो सकते।

ता० १२ जून सन् १९०५ ई० बड़ा पवित्र और सौभाग्यशाली दिन था, जिस दिन राजनीतिक संन्यासी और निष्काम कर्मयोगी महात्मा गोपाल कृष्ण गोखले ने भारत-सेवक-समिति (The Servant of India Society) स्थापित की थी। यह दिन शायद भारत की जागृति का जन्म-दिन था। उस दिन से सेवा के सरल भाव देश में फैलने लगे।

122363

जहाँ पीड़ितों पर दया की जाती है, जहाँ रोगियों की सादर सेवा होती है, जहाँ असहाय विधवाओं को सात्त्विक सुख पहुँचाया जाता है, जहाँ अनाथों की रक्षा की व्यवस्था होती है, जहाँ श्रद्धापूर्वक अतिथि-परिचर्या होती है, जहाँ दुखियों का प्राण-त्राण होता है, जहाँ निर्बल जीवों पर करुणा के आँसू बरसाये जाते हैं, जहाँ प्यासे को ठंडा पानी और भूखे को भरपेट अन्न दिया जाता है, वहीं सत्ययुग है, वहीं स्वर्ग है, वहीं धर्म का अखाड़ा है, वहीं यज्ञशाला है, वहीं तीर्थ है, वहीं करुणा-वरुणालय सच्चिदानन्द का विश्राम-स्थल है।

निःस्वार्थ सेवा एक प्रकार की तपस्या है। तपस्वी को मन, वचन और कर्म से संयमी होना चाहिए। जबतक स्वयंसेवक के चित्त में संयम-शीलता नहीं आती तबतक उसकी सेवा पवित्र और सुखदायिनी नहीं बन सकता। उसे अनुभव करना चाहिए कि जड़-जगत् के जितने पदार्थ हैं, सब इस विश्व-भूमंडल के प्राणियों की सेवा में अपना सर्वस्व दे डालते हैं, तब भला प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य का क्या कर्त्तव्य है। नदी, पर्वत, वृक्ष, सूर्य, चन्द्रमा, मेघ से लेकर तृण और अन्न तक जितने कुछ पदार्थ हैं उनमें ईश्वर की ज्योति की झलक देखना और उनके द्वारा होनेवाले असंख्य उपकारों को स्मरण रखना प्रत्येक स्वयंसेवक का प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिए। रामायण में सेवा-धर्म-परायण बाल-ब्रह्मचारी हनुमान के आदर्श चरित्र को पढ़कर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। पुनः रामायण में भरत और लक्ष्मण जी का विशद चरित्र भी मनन करने योग्य है। भरत जी की भ्रातृ-भक्ति भूलोक-दुर्लभ पदार्थ है। उनका त्याग और सेवाव्रत संसार भर के लिए एक उच्चतम आदर्श है। सेवक को किस ऊँचे दर्जे तक त्याग करना चाहिए, सो लक्ष्मण जी के चरित्र से सीखिए। उन्होंने अधर्मी राक्षसों के अत्याचार से भारतवर्ष की रक्षा करनेवाले आदर्श देशभक्त भगवान रामचन्द्र की सेवा-सहायता करने के लिए सर्वस्व का बलिदान कर दिया था। वैसा होने के लिए आपको शीत-वर्षा-घाम का कष्ट भूल जाना पड़ेगा। पर, यह न भूलना होगा कि जो अपने सुख की चिन्ता एकदम छोड़ नहीं देता, वह अपनी सेवा से दूसरों को सुखी बना ही नहीं सकता। इस पुस्तक को पढ़ने से स्वयं-सेवकों को बहुत-कुछ सहायता मिलेगी।

ग्राम—उनवाँस, डाकघर—इटाढी, जि०—शाहाबाद
कार्त्तिक, १६७८ वि० (सन् १६२१ ई०)

सेवाव्रतधारियों का एक तुच्छ सेवक
शिवपूजन सहाय